कृतिका परिवार के लेखकों एवं जिज्ञासु पाठकों के लिए नवीनतम प्रकाशन

आराधना ब्रदर्स

प्रकाशक एवं वितरक

124/152, सी ब्लॉक, गोविन्द नगर, कानपुर–208006 (उ.प्र.)

मो. : 09935007102 फोन : 0512–2651490 ई–मेल : aradhanabooks@gmail.com

कृतिका वर्ष : 7, संयुक्तांक : 13–14 जनवरी–दिसम्बर 2014 कृतिका

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वर्ष : 7, संयुक्तांक : 13–14

कृतिका

जनवरी–दिसम्बर 2014

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी
एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक
अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 13–14, वर्ष : 07, जनवरी–दिसम्बर 2014

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 07 अंक : 13–14, जनवरी–दिसम्बर 2014

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

रीडर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग उ.प्र. विकलांग उद्धार
डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ,

सम्पर्क : 07607762917, 09415924888,
Email : dr.virendrayadav@gmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com
Email : virendra_kritika@rediffmail.com
http://kritika-shodh.blogspot.com

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152– सी ब्लाक,

गोविन्दनगर, कानपुर–208006, उ.प्र.

दूरभाष –09935007102, 05122651490

Email : kritika_orai@rediffmail.com, aradhanabooks@rediffmail.com

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 13–14, वर्ष : 07, जनवरी–दिसम्बर 2014

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 07 अंक : 13–14, जनवरी–दिसम्बर 2014

सामान्य अंक	:	60.00 रुपये	
इस अंक की सहयोग राशि	:	400.00 रुपये	
यू. एस. 25 $		यूरो 40 $	
व्यक्तिगत सदस्यों के लिये			
पाँच वर्ष के लिये	:	3000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	6500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
संस्थाओं के लिये			
प्रति अंक	:	500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	5000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	10000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विषेश : सभी भुगतान नकद/मनीआर्डर/बैंक ड्राफ्ट/चेक 'सम्पादक कृतिका' के नाम Payable at Orai भेजें। कृपया चेक के साथ बैंक कमीशन के रूप में निश्चित अतिरिक्त राशि जोड़ दें।

- ☞ विधिक वादों के लिये क्षेत्र, उरई न्यायालय के अधीन होंगे।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- ☞ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मंडल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व संचालन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक–डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 13–14, वर्ष : 07, जनवरी–दिसम्बर 2014

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 07 अंक : 13–14, जनवरी–दिसम्बर 2014

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

रीडर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

उ.प्र. विकलांग उद्धार डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय

लखनऊ, 226017 (उ. प्र.)

सम्पर्क – 07607782917, 09415924888

Email : dr.virendrayadav@gmail.com

Email : virendra_kritika@rediffmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com

http://kritika-shodh.blogspot.com

क्षेत्रीय प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

अरविन्द शुक्ला

आराधना ब्रदर्स, प्रकाशक एवं वितरक

124 / 152–सी–ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–06.

दूरभाष –09935007102, 0512–2651490

Email : kritika_orai@rediffmail.com

डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह

म. नं. नन्दन सदन II फ्लोर, शेरशाह रोड,

शकरी गली, पो. आ. गुलजार बाग, पटना–07

दूरभाष – 09279211509, 09334626350

Email : drsurendra25@gmail.com

डॉ. सुरेश एफ. कानडे

प्लाट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम

हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर,

गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)

सम्पर्क–09422768141

Email : sureshkande2009@rediffmail.com

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 13–14, वर्ष : 07, जनवरी–दिसम्बर 2014

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृति अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ सात समुन्दर पार यू.एस.ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो; बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से संबंधित विषयों पर समय–समय पर कृतिका परिवार विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकलता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय–समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र–पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियों के साथ लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फान्ट साइज में MS-Word Software में टाइप करके ई–मेल करें या साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।

–कृतिका परिवार

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 13–14, वर्ष : 07, जनवरी–दिसम्बर 2014

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 07 अंक : 13–14, जनवरी–दिसम्बर 2014

अनुक्रमणिका

शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
सम्पादकीय.....		i-viii
भारत में सामाजिक समस्याओं के ज्वलंत प्रश्न		
1. अपराध की तंग गलियाँ और मासूम किशोर	डॉ0 अंजना वर्मा	1-8
2. भ्रष्टाचार, लोकपाल और सुशासन के बदलते परिदृश्य	डॉ0 अर्चना दीक्षित	9-15
3. दहेज समस्या–एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ0 मधूलिका श्रीवास्तव	16-20
4. मानवाधिकार के आइने में महिला सुरक्षा : एक विश्लेषण	डॉ0 रण विजय सिंह	21-25
5. भारतीय परिवार : परंपरा की प्रासंगिकता में विघटन की उभरती काली घटाएँ	डॉ0 (श्रीमती) अर्चना कुशवाह	26-31
अतीत का भारत : विमर्श के विविध प्रसंग		
6. प्राचीन भारत में प्रजातंत्र के तत्व और वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी	32-36
7. श्रीमद्भागवत का अभिव्यक्ति पक्ष	डॉ0 जय सिंह	37-45
8. बौद्ध कालीन शिक्षा पद्धति में गुरु–शिष्य संबंध का महत्त्व	डॉ0 (श्रीमती) शालू, डॉ0 सुशील कुमार सिंह गौतम	46-51
9. श्रेष्ठतम नदियों में से एक थी प्राचीन सरस्वती नदी	डॉ0 वशिष्ठ नारायण शुक्ल, डॉ0 वन्दना शुक्ला	52-54
10. संस्कृत वाङ्मय में अर्थ चिन्तन	डॉ0 पुष्पा मीना	55-58
11. रामचरित मानस में मांसाहार के प्रमाणों का औचित्यपूर्ण मूल्यांकन	स्वामी सत्यानंद महाराज 'सत्य'	59-66
12. वेदान्त की धरोहर के प्रबल प्रणेता स्वामी विवेकानन्द का धार्मिक चिन्तन	डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ0 अभिलाष सिंह यादव	67-72
13. राष्ट्रभाषा आंदोलन में ब्रह्मसमाज तथा आर्य समाज का योगदान	डॉ0 अशोक एम0 पवार	73-76

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

इक्कीसवीं सदी के भारत में विकास के नवीन परिदृश्य

14.	भारत–चीन और ऊर्जा आवश्यकता के नवीन सन्दर्भ	डॉ0 अनुराधा सिंह	77–79
15.	गाँवों में खाद्य–प्रसंस्करण से विकास की अपार संभावनाएँ	डॉ0 प्रभा कुमारी	80–85
16.	ग्रामीण अंचल का विकास एवं आधी आबादी का योगदान	डॉ0 नीता तिवारी	86–91
17.	संचार क्रांति से ग्रामीण महिलाओं का बदलता सामाजिक स्वरूप	डॉ0 संदीप सिंह, डॉ0 (श्रीमती) शालू	92–94
18.	मध्यप्रदेश शासन की योजनाएँ एवं समाज कल्याण की सार्थकता का मूल्यांकन	डॉ0 सुमन रोहिला	95–99
19.	सूक्ष्म वित्त से ग्रामीण महिलाओं में शक्तिकरण का अध्ययन	डॉ. रजनी भारती, जितेन्द्र कुमार रामटेके	100–107
20.	सामाजिक विकास की धुंधली तस्वीर	डॉ0 आनन्द कुमार खरे	108–111

भारत में शिक्षा के उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियाँ

21.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा शिक्षा में व्यापक परिवर्तन	डॉ0 शालिनी वर्मा पुष्पा सिंह	112–114
22.	डॉ0 अम्बेडकर और उनके शैक्षिक विचार	डॉ0 कुसुम	115–120
23.	शिक्षा व समाज में अंतर्संबंध, चुनौतियाँ व सम्भावनाएँ	डॉ0 अंजना जैन	121–124

भारत में महिला सशक्तिकरण का स्याह यथार्थ

24.	मानवाधिकार और महिला : एक भारतीय सन्दर्भ	डॉ0 ऊषा दहिया	125–129
25.	वर्तमान संदर्भ में मानवाधिकार और नारी सशक्तिकरण : एक विश्लेषण	डॉ0 अलका रानी पुरवार	130–133
26.	दरिंदगी के पंजे में महिलाएँ	डॉ0 आराधना	134–137
27.	महिला–उत्पीड़न एवं हिंसा : कानून व्यवस्था के विशेष संदर्भ में	डॉ0 (श्रीमती) राजेश जैन	138–143
28.	भारतीय राजनीति और महिलायें : चिन्तन के विविध सरोकार	डॉ0 जयश्री त्रिवेदी	144–146
29.	एकल महिलाओं की समस्यायें, कारण एवं समाधान की दिशाएँ	डॉ0 मुहम्मद नईम	147–152
30.	भारत में महिलाओं की पदस्थिति का वर्तमान परिदृश्य : एक विश्लेषण	डॉ0 ममता आनन्द	153–159
31.	सूफीमत में सूफी सन्तों की नारी विषयक अवधारणा	डॉ0 सुधा सोनी	160–163

भारत के नवनिर्माण में अग्रज एवं अनुज पीढ़ी का योगदान

32.	सांस्कृतिक एकता के सूत्रधार महर्षि वाल्मिकी	डॉ0 शिवानी शुक्ला	164–170
33.	अहिंसा का पुनर्जन्म महात्मा गाँधी के राजनीतिक विचार	डॉ0 अभिलाष सिंह यादव	171–175
34.	संत कबीरदास के सामान्य दर्शन की सार्थकता	डॉ0 विनीता अवस्थी	176–179
35.	जनकवि कबीरदास का साहित्य और संस्कृत के संदर्भित प्रतीकों का अध्ययन	डॉ0 मुन्ना लाल चौधरी	180–184
36.	जनकवि कबीर के सामाजिक विद्रोह के विविध सरोकार	डॉ शोभना अवस्थी	185–186
37.	अज्ञेय : पुरातनता में नवीन सन्दर्भों के कवि	डॉ0 सियाराम	187–192
38.	सुन्दर कविराय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय	डॉ0 जयकिशोर शर्मा	193–195
39.	यशस्वी कथा शिल्पी श्री लाल शुक्ल के रचना के विविध सरोकारों का मूल्यांकन	डॉ0 सुरंगमा यादव	196–198

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

40. पूर्वांचल के गाँधी–बाबा राघवदास का मूल्यांकन — डॉ0 आदित्य प्रकाश सिंह — 199-202

भारत में लोकतांत्रिक प्रणाली के विविध सरोकारों का मूल्यांकन

41. भारत में लोकतंत्र और राजनीतिक दल : चिन्तन के नूतन आयाम — डॉ0 सुनीता त्रिपाठी — 203-206
42. अस्पृश्यता एवं भारतीय संविधान : एक विश्लेषण — डॉ0 लक्ष्मीना भारती — 207-209

भारत में संगीत एवं लोककला के उभरते स्वर्णिम क्षितिज

43. बनारसी ठुमरी की परम्परा : एक संक्षिप्त अवलोकन — डॉ0 ज्योति सिन्हा — 210-214
44. भक्ति–साधना और संगीत कला के उभरते आयाम — डॉ0 सुनीता द्विवेदी — 215-218
45. बघेली लोकगीतों का मूल्यांकन — डॉ0 अमित शुक्ल — 219-221

भारत में साहित्य चिन्तन के विविध सरोकार

46. प्रारम्भिक हिन्दी पत्रकारिता और युगीन चेतना — डॉ0 हेमलता सुमन — 222-226
47. हिन्दी उपन्यासों में व्यंग्य की परम्परा का मूल्यांकन — डॉ. मीना सिंह — 227-229
48. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में चिन्तन के विविध आयाम — डॉ0 कमलेश सिंह — 230-233
49. प्रेमचन्द की कहानियों के स्त्री पात्र : एक अनुशीलन — डॉ0 महेश सिंह यादव — 234-237
50. समकालीन उपन्यासों में नारी मुक्ति : दशा एवं दिशा — डॉ0 आशा वर्मा — 238-240
51. से.रा. यात्री की कहानियों के मध्यवर्गीय चरित्र : एक विश्लेषण — अरविन्द कुमार उपाध्याय — 241-245
52. जनता की संवेदना और मुक्तिबोध की कविता — कु0 देवकी नागोत्रा — 246-248
53. समकालीन कविता के आइने में स्त्री छवि — डॉ0 सुषमा पुरवार — 249-252
54. तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस में दलितोत्थान के विविध विमर्श — डॉ0 (श्रीमती) रानी अग्रवाल — 253-257
55. क्रोचे और उनका अभिव्यंजना सिद्धांत — डॉ0 बिपिन कुमार — 258-262
56. लोक गीतों में संस्कारों का महत्व — डॉ0 मनीषा यादव — 263-266
57. कामायनी में नारी विषयक मूल्य–बोध और आधुनिकता — डॉ0 विद्यारानी — 267-270
58. हिन्दी का कालजयी दलित साहित्य — डॉ0 सुरेश कानडे — 271-274
59. हिन्दी व्यंग्य परम्परा और हास्य–व्यंग्यकार रवीन्द्रनाथ त्यागी — सन्तोष विश्नोई — 275-280
60. हिन्दी गद्य साहित्य में व्यंग्य — अजेन्द्र सिंह (शोधार्थी) — 281-285
61. समकालीन कविता एवं ज्ञानेन्द्रपति — डॉ. के. आशा — 286-288

हिन्दी कल, आज और कल

62. वैश्वीकरण का परिदृश्य व हिन्दी (संदर्भ : भारतीय प्रजातंत्र) — डॉ0 शशि त्रिपाठी — 289-292
63. विश्व मंच पर हिन्दी : दशा एवं दिशा — डॉ0 कमलेश सिंह नेगी — 293-295
64. कम्प्यूटर और हिन्दी : विमर्श के विविध पक्ष — उमेश चन्द्र — 296-299

भारत में पर्यावरण चिन्तन–चिन्ता के विविध परिदृश्य

65. वेदों में जल के संवर्धन एवं संरक्षण के उपाय — डॉ0 दिव्या मिश्रा — 300-304
66. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ध्वनि प्रदूषण एवं मानवीय जीवन — डॉ0 मन्जू कुलश्रेष्ठ — 305-308
67. मानसून से जल भण्डारण–एक अचूक उपाय — डॉ0 मंजू अवस्थी — 309-312

भारत में सामाजिक चिन्तकों के दर्शन की प्रासंगिकता

68. डॉ0 राम मनोहर लोहिया का संगठित विरोधों का समाजवादी प्रतिमान (मार्क्स और गांधीजी के संदर्भ में) — डॉ0 सरोज बिल्लौरे, डॉ0 सरला चतुर्वेदी — 313-315

69.	समाजवादियों का समाजवाद : एक मूल्यांकन	डॉ0 रुचि दीक्षित	316-318

भारत में चिन्तन–चिन्ता के विविध सरोकारों का विश्लेषण

70.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गाँधी की प्रासंगिकता	डॉ0 रश्मि सोमवंशी	319-322
71.	प्रजातंत्र का चतुर्थ स्तंभ पत्रकारिता : चिंतन के अभिनव परिप्रेक्ष्य	डॉ0 ममता गंगवार	323-326
72.	भारत में खुदरा बैंकिंग के विविध परिदृश्य	डॉ0 आयुष श्रीवास्तव	327-331
73.	उत्तरांचल की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक विवेचना	कुँ0 संदीप कुमार सिंह	332-334
74.	सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदम : एक संक्षिप्त दृष्टि	पी.पी. यादव	335-337
75.	अतीत एवं वर्तमान आईने में महिला सशक्तिकरण के बदलते परिदृश्य	डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव	338-341
76.	बुन्देलखण्ड के स्थानों में पुरातत्व एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ	डॉ0 शबीहा ताबीर	342-344
77.	बघेलखण्ड के प्रमुख दुर्ग (रीवा, क्योंटी एवं रेवहुँटा के दुर्ग)	डॉ0 विभा श्रीवास्तव	345-348
78.	बुन्देली लोकगाथा का प्रतीक 'आल्हा'	डॉ0 सविता मसीह	349-353
79.	जनसंचार और समाज : चिन्तन–चिन्ता के विविध सरोकारों का विश्लेषण	डॉ0 मंजू सराफ	354-355
80.	नोटा के अधिकार के प्रति जागरूकता–एक अध्ययन	डॉ. सुजाता सैमुएल, डॉ. (सुश्री) सपना कॉर	356-359
81.	खेलकूद के स्तरोन्नयन की समस्या और समाधान	डॉ0 राकेश कुमार तिवारी	360-365

समीक्षायन / पुस्तक समीक्षा

82.	इक्कीसवीं सदी के भारत में विमर्श के विविध परिदृश्य	डॉ0 आलोक कुमार	366
83.	बदलते परिदृश्य में आज का भारत : चिंतन के अभिनव परिप्रेक्ष्य	डॉ0 धनंजय सिंह	367
84.	वर्तमान सदी का भारत : नई चुनौतियाँ, नए सवाल	डॉ0 अजीत सिंह राही	368
85.	साहित्य में कथ्य और शिल्प के सामाजिक सरोकार	डॉ0 अंजु दुआ जैमिनी	369
86.	नई सहस्राब्दी का भारत : वर्तमान परिदृश्य एवं भविष्य की चुनौतियाँ	डॉ0 गीता यादव	370
87.	साहित्य के बदलते परिप्रेक्ष्य : दशा एवम् दिशा	डॉ0 सरिता बुधू	371
88.	हिन्दी साहित्य में समय, समाज और संवेदना के विविध परिदृश्य	डॉ0 आशा वर्मा	372
89.	हिन्दी साहित्य में हाशिए का विमर्श : संघर्ष और मुक्ति के अभिनव क्षितिज	डॉ0 देवेनबरा	373
90.	विकासशील भारत में उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियाँ	डॉ0 विजय कुमार वर्मा	374
91.	सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लोकनायक : स्वामी विवेकानन्द	डॉ0 हरिनिवास पाण्डेय	375
92.	आज का भारत : वैचारिकी एवं समकालीन विमर्श	डॉ0 मनजीत सिंह	376
93.	स्वामी विवेकानन्द : सांस्कृतिक चेतना के वैश्विक प्रहरी	डॉ0 अजीत सिंह राही	377
94.	डॉ0 राममनोहर लोहिया : वैचारिक विमर्श	डॉ0 सुरेश एफ. कानडे	378
95.	डॉ0 राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ0 हितेन्द्र जे मौर्या	379
96.	डॉ0 राममनोहर लोहिया : समाजवादी विमर्श	डॉ. बिनोद कुमार पाल	380

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सम्पादकीय.....

वर्तमान परिदृश्य के दौर में वैश्विक आर्थिक चिंतन की यदि हम बात करें तो यह एक नये प्रकार के साम्राज्यवाद को जन्म दे रहा है। वास्तविकता तो यह है कि इसे पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का नया वैश्विक रूप भी कहा जा सकता है। इसमें उत्पादन, विज्ञान, व्यापार अधिकतम अर्जन और उपभोग को ही जीवन का सर्वस्व माना जा रहा है। दूसरे शब्दों में इसे उपभोक्ता संस्कृति का प्रवर्तक भी कहा जा सकता सकता है। कुल मिलाकर इसे पश्चिम की उपभोक्ता या भोगवादी संस्कृति का पुरस्कर्ता भी कहा जा सकता है। इसलिए इसमें विश्व को एक बाजार मान लिया गया है। इसकी दृष्टि में मनुष्य मात्र उपभोक्ता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि बाजार पर आधिपत्य जमाना वैश्वीकरण का मूल तकाजा हो गया है। इसके लिए वह नई अर्थनीति, नई अर्थदृष्टि और नई उपभोक्ता जीवन–शैली को विकसित कर रहा है। अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए उसने भाषा को औजार के रूप में इस्तेमाल किया है। एक ओर भाषाएँ वैचारिक आदान–प्रदान का माध्यम तो बन ही रही हैं तो दूसरी ओर शब्द संस्कृति का नया वैश्विक रूप धारण कर रही हैं। वैश्विक स्तर पर भाषाओं को लेकर अब नये सिरे से चिंतन शुरू हो गया है। बाजारवादी इस युग में यह समय मानवता के लिए संकट का समय है, जहाँ भाषा का भी बच पाना संभव नही दिख रहा है। वैश्वीकरण का सामान्य अर्थ सम्पूर्ण विश्व को एक गाँव (Global Village) के रूप में देखना है। 'ग्लोबल विलेज' की अवधरणा कोई नई अवधरणा नहीं है। पहले भी शक्तिशाली देश अपने राज्यों, साम्राज्यों और आर्थिक गतिविधियों के विस्तार के लिये नये तरीकों का उपयोग करते थे। वर्तमान में अमरीकी–संस्कृति विश्व संस्कृति की एकमात्र दावेदार बन गयी है। इसने दूसरे देशों की सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति को प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के निष्कंटक प्रसार से यूरोपीय देश भी परेशान हैं। वैश्वीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया ने राज्य की सम्प्रभुता को बहुत हद तक कम किया है। राष्ट्र राज्य की शक्ति समय के साथ क्षीण होती जा रही है। निर्बाध केबल चैनलों के द्वारा सारे कार्यक्रम दूर–दराज के देशों में करोड़ों व्यक्तियों के द्वारा देखे जा रहे हैं।

विश्व के समाजों में कला, संस्कृति, खेल–कूद, रहन–सहन, खान–पान आदि का परस्पर आदान–प्रदान वैश्वीकरण की प्रक्रिया को दर्शाता है। इसलिये सम्पूर्ण विश्व को एक गाँव के रूप में देखा जा रहा है। वैश्वीकरण अथवा भूमण्डलीकरण (Globlization) राज्यों की राजनैतिक सीमाओं के आर–पार आर्थिक लेन–देन की प्रक्रियाओं और उनके प्रबन्धन का प्रवाह है। विश्व अर्थव्यवस्था में आया खुलापन आपसी जुड़ाव एवं परस्पर निर्भरता के फैलाव को वैश्वीकरण कहा जा सकता है। मौजूदा वैश्वीकरण एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। इस दृष्टि से देखें तो अर्थव्यवस्था में कई तरह की रूकावटें दूर होने से भूमण्डलीकरण का रास्ता साफ हुआ है। व्यापार के क्षेत्र में खुलापन आया है और विदेशी निवेश के प्रति उदारता बढ़ी है साथ ही वित्तीय क्षेत्रों में भी उदार नीतियाँ अपनाई जा रही हैं। यातायात और संचार क्षेत्रों में आयी क्रान्ति ने दुनिया को बहुत पास ला दिया है। जेट विमान, कम्प्यूटर उपग्रह और सूचना तकनीकी की वजह से देशकाल की सीमायें समाप्त हो गयी हैं। औद्योगिक संगठनों में नयी प्रबन्ध व्यवस्थाओं के विकास ने भी वैश्वीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान की है। इसके अतिरिक्त अमेरिका की राजनीतिक प्रभुता ने भी वैश्वीकरण को बल प्रदान किया है।

भूमंडलीकरण की आँधी ने जहाँ एक ओर हमारे शहरों का नक्शा बदल दिया है, वहीं दूसरी ओर गाँव भी उससे बुरी तरह प्रभावित दिख रहे हैं। प्रत्येक प्रांत की अपनी प्रांतीय भाषा हुआ करती है, ठीक उसी तरह प्रांत में बोली जाने वाली बोलियाँ भी होती हैं, किन्तु आज भूमंडलीकरण के चलते बोलियों की उपयोगिता एवं इनकी जीवंतता समाप्त सी होती जा रही है। और वैश्विक संस्कृति का विकृति चेहरा हमारे ग्रामीण परिवेश में उत्तर

आधुनिकता के विविध रंगों में देखने को मिल रहा है। परिणामस्वरूप आज के इस उत्तर आधुनिक समाज में कुछ अवसरवादी या फर्जी ढंग की सांगठनिक अवधारणाएँ भी तेजी से पनपती हुई देखने को मिल रही हैं, जैसे ब्राह्मण महासभा, क्षत्रिय महासभा,यादव महासभा, वैश्य एवं नाई भाईचारा आदि–आदि। ये संगठन वास्तव में उत्तर आधुनिक सामाजिक परिस्थितियों में असरता बोध और व्यक्तिगत तथा छोटे–बड़े स्वार्थों के लिए ही पनपे हैं और सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि जनता से लेकर सरकारों तक किसी को इन जातिगत संगठनों के बनने–बिगड़ने से कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ रहा है। जबकि सच्चाई यह है कि भारत की अखण्डता को सबसे अधिक नुकसान इसी तरह के संगठनों के बनने–बिगड़ने से ही दिखाई दे रहा है। ये साम्प्रदायिक विद्वेष से भी अधिक जहरीले तत्व हैं। इन खण्ड–खण्ड सभाओं के सदस्य विश्वग्राम के वासिन्दे भी हैं। दुनियाँ को एक बाजार में तब्दील करके कुछ लोग बहुतों को बेच–खरीद भी रहे हैं ''यूज और 'थ्रो' कर रहे हैं। ''भूमण्डलीकरण समाज का एक अन्तर्विरोध यह है कि वह एक ही समय में विश्व नागरिक है और स्थानीय भी। इसीलिए धार्मिक विद्वेष, जातीय विद्वेष से वह ऊपर उठ ही नहीं पा रहे हैं।''

धर्म, दर्शन, कला, संगीत और विज्ञान के क्षेत्र में भारत शताब्दियों तक विश्व के मानचित्र पर चमकता रहा है। आज भी वह दुनिया के उन समृद्धतम और महानतम देशों में से एक है, जिसके पास प्राकृतिक संसाधनों और मानवीय शक्ति की कमी नहीं है। दुनिया भर में फैले भारतीय नागरिक व्यापार, चिकित्सा, इंजीनियरिंग तथा अन्य विभिन्न क्षेत्रों में सफलता के उच्चतम शिखर को छू रहे हैं। दुनियाभर के 70 प्रतिशत सिलीकान वैली पर भारतीयों का कब्जा है। कुछ स्थितियों को छोड़कर यदि बात की जाए तो भारत एक सुप्त महाशक्ति है, अगर वह जाग जाए तो विश्व की अर्थव्यवस्था पर जबरदस्त प्रभाव डाल सकता है, मगर आज हमारी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था गहरे संकट से गुजर रही है। राजनीति का अपराधीकरण हो चुका है, और अब हमारी गिनती दुनिया के भ्रष्टतम देशों में होने लगी है। आजादी के 65 सालों में जैसी धोखाधड़ी भारतीय जनता के साथ की जा रही है, वैसी मिसाल शायद ही दुनिया के किसी अन्य देशों में देखने को मिले। जनता के धन को लूटने में राजनेता और नौकरशाह दोनों कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। कुल मिलाकर भारत की राजनीतिक व्यवस्था का घोर पतन हो रहा है। यहाँ चुनाव होते हैं, पर लोकतंत्र मजाक–सा हो गया है क्योंकि जनता के प्रतिनिधि स्वार्थवश बिक जाते हैं। यहाँ कानून व्यवस्था लागू करने वाली मशीनरी मौजूद है, पर व्यवस्था नहीं। अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, जातिवाद और क्षेत्रवाद व्यवस्था पर उत्तरोत्तर हावी होता जा रहा है।

कुछ संगठनों ने पर्याप्त आर्थिक शक्ति, बाहुबल और सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है। इन्होंने सरलतापूर्वक सरकारी मशीनरी को भ्रष्ट बना दिया है। इनका प्रभाव इतना बढ़ जाता है कि जांच एजेन्सियों का महत्व ही समाप्त हो जाता है। न्याय व्यवस्था के सदस्य भी इसके शिकंजे से बचे नहीं रह सकते हैं। राजनीति और समाज के अपराधीकरण के बारे में की गयी इनकी टिप्पणियों पर कोई भी राजनीतिक दल अपनी सक्रियता नहीं दिखाता है। मानों सभी एक ही थाली के चट्टे–बट्टे हों। और अपने–अपने ढंग से सत्ता के सुख भोगने में लगे हुये हैं। पारदर्शी व भ्रष्टाचारमुक्त शासन का दावा करने वाले सभी राजनैतिक दलों में इन संगठनों का प्रभाव दिनों–दिन तेजी से बढ़ता जा रहा है, क्योंकि अपराधी राजनीतिक प्रभाव से अपने मुकदमों को प्रभावित करने लगते हैं, विधायकों और सांसदों के विशेषाधिकारों के कारण पुलिस और प्रशासन के भय से वे मुक्त हो जाते हैं, साथ ही अपराधियों को राजनीतिक नेताओं की प्रतिस्पर्धा से बड़े पैमाने पर धन भी मिलने लगता है। आज तो राजनीतिक पार्टियाँ आपराधिक पृष्ठभूमि के लोगों को मंत्रिमण्डल में भी स्थान देने लगी हैं।

वास्तविकता यह है कि उत्तर आधुनिकता ने 'मल्टी लेवल मार्केटिंग' के जरिए बाजार (समाज) को ग्लैमराइज कर इसे नया रूप देने का प्रयास किया है। समाजशास्त्रीय चिंतन और सिद्धान्त भी बीच बाजार

धकेल दिये गये अर्थात् बाजार के बाहर कुछ भी नहीं है। बाजार जो विविध–केन्द्री है, वही सब कुछ तय करता है। इसमें वस्तु का ब्राण्डेड होना जरूरी है, ब्राण्डेड वही है जिसका अधिक से अधिक विज्ञापन है। जो जितना अधिक आवाज में बोल ले रहा है वही आज सत्यवादी सिद्ध हो रहा है। और उससे अधिक तेज चिल्लाने वाला ज्यों ही प्रकट होता है, वह सत्यवादी और अधिक प्रामाणिक हो जाता है। थोड़ा पहले की बात करें तो ''केन्द्रीयकरण आधुनिक काल की विशेषता थी। तब राजनीतिक विचारधारा व ऐसे ही अन्य केन्द्र थे, परन्तु उत्तर आधुनिकता विकेन्द्रण की स्थिति का नाम है। केन्द्र इसमें भी है परन्तु कोई एक केन्द्र सम्भव नहीं है। स्त्रीवादी केन्द्र एवं पर्यावरण चेतना नये केन्द्र हैं, जो विश्वव्यापी हैं। इसके अलावा धर्म, जाति एवं वर्गों के नए उपकेन्द्र उभर रहे हैं। हमारे यहाँ दलित आन्दोलन, हिन्दू मुस्लिम एवं सिख धार्मिक पहचानों के नए सिरे से उठते आग्रह के अलावा झारखण्ड, बोडोलैण्ड, उत्तराखण्ड आदि राज्यों की मांग भी नए केन्द्र हैं। आधुनिकता ने मनुष्य को एक इतिहास दिया था पर अब उसका अन्त हो गया है। उत्तर–आधुनिकता अतीत में जाने की छूट तो देती है, परन्तु वह उसे भी उपयोग्य बनाती है। वह इतिहास का पुनर्उत्पादन सम्भव करती है, परन्तु उसकी भव्यता और महावृतान्तता को नष्ट करते हुए।''

कम से कम साहित्य और विचारधारा के क्षेत्र में उत्तर आधुनिकता की युक्तियों को व्यवहार में लाने पर 'एक केन्द्रवाद' से मुक्ति और पाठ की सरलता हासिल होती है। किसी भी कृति का मूल्यांकन रचना के भीतर और बाहर के केन्द्र–उपकेन्द्रों के इर्द–गिर्द सम्भव होता जा रहा है। कृति का हर पाठ कुपाठ भी है यही कारण है कि 'डिफरेन्स' या भेद के जरिये कृति के केन्द्र की बहुवचनीयता भी स्पष्ट हो जाती है। और यह 'भेद' पाठ के भीतर ही होता है जो विखण्डन के माध्यम से ही उजागर होता है। टैरी इगलटन का पाठ उपयोगी है। विखण्डन के संदेहवाद के आगे वे मार्क्सवाद के निश्चयात्मक बुद्धि विवेक को लगातार सक्रिय करते हैं। वे कहते हैं कि विखण्डन का स्वतंत्र 'अर्थ लेख' और 'उग्र राजनीति' में विचित्र सम्बन्ध बनता है। अर्थ का 'स्वच्छन्द खेल' कोई परिवर्तनकारी राजनीति नहीं कर सकता, वे कहते हैं। अर्थ की अनंतता वस्तुतः बुर्जुआ वर्ग के सामाजिक सम्बन्धों का प्रतिबिम्ब है। प्रामाणिक अर्थ से हटकर सभी अर्थों को सर्वतंत्र–स्वतंत्र कर देना, एक तरह का अर्थहीन आक्रोश भर है। मार्क्सवाद की नजर से विखण्डन का विखण्डन करें तो पाते हैं कि विखण्डन रहस्यभेदन की अनन्तता में विश्वास करता है।'' इन स्थितियों को संचार–क्रांति से जोड़कर देखें तो टेक्नॉलाजी के क्षेत्र में आधुनिकता की वृहत्तर फलश्रुतियाँ–कम्प्यूटर और संचार–क्रांति इस उत्तर आधुनिक समय को नियंत्रित–परिचालित कर रही हैं। मोबाइल की लोकग्राह्यता और उपयोगिता ने एक नया रूप भी धारण किया है कि यह नयी पीढ़ी का सदेह–माध्यम बन गयी। या ऐसे कहें कि मोबाइल ने इस उत्तर आधुनिक समय में प्रेम में लिप्त नायक–नायिकाओं के संयोग के मध्य आने वाली हर दीवारों या बाधाओं को खत्म कर दिया है। भले ही मध्यवर्गीय समाज इस प्रेम–प्रपंच को आज भी वर्जनीय मानता है। किन्तु मोबाइल के इस रीतिकालीन–कृष्णमय–चरित्र बाजार ने इसे ठीक से परखा एवं जॉचा है। बाजार को यह अच्छी तरह से मालूम है कि मोबाइल–सुविधा की नयी–नयी स्कीमों की लांचिंग और विज्ञापन नव–युवा पीढ़ी और प्रेम–प्रपंची जन को ध्यान में रखकर किया जा रहा है। जैसे फ्री बातचीत या सस्ती काल–दरों को रात के ग्यारह बजे से सुबह सात बजे तक के लिए उपलब्ध होना, एक–दूजे के लिए आफर आदि।

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भूमण्डलीकरण का प्रभाव देखने को मिल रहता है। सम्पन्न व्यक्ति एवं राष्ट्र इस स्थिति में आनंद का अनुभव करते हैं जबकि बाजारवाद के शिकंजे में पड़कर दम घुटने वाला आम आदमी दिग्भ्रमित होकर खड़ा हो जाता है। भूमण्डलीकरण के कारण पिछले कुछ वर्षों के अन्दर दुनिया में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए हैं। यहाँ वास्तविकता भी है कि आज का समय मिसाइलों, हथियारों की लड़ाई का नहीं, अपितु

विचारों की लड़ाई का हो गया है। और व्यक्ति दिनोंदिन बाजारवाद के चंगुल में फंसता जा रहा है। इसमें संदेह नहीं है कि भूमण्डलीकरण से व्यक्ति के आचरण और व्यवहार भी बड़ी मात्रा में प्रभावित हो जाते हैं। परम्परागत मूल्यों को नकारकर अर्थ केन्द्रित मूल्य–व्यवस्था को अपनाने के लिए व्यक्ति जाने–अनजाने तैयार हो जाता है।

इस दृष्टि सें देखें तो ताकतवर बाजार की शक्तियों के सम्मुख निष्प्रभ हो जाना वर्तमान युग के आम आदमी की नियति सी बन गयी है। यह सत्य है कि वैश्वीकरण एक अनवरत प्रक्रिया है जिससे बचकर आगे बढ़ना बिल्कुल असंभव है क्योंकि आजकल दुनिया का कोई भी राष्ट्र द्वीप की भाँति अलग नहीं रह सकता। उपभोक्तावादी संस्कृति कहकर उत्पादन के नवीन साधनों, वैज्ञानिक वितरण व्यवस्था, लाभोन्मुखी पूंजी निवेश, रोजगारपरक बाजार–व्यवस्था, गहराते अन्तर्राष्ट्रीय संबंध आदि की भर्त्सना जनहितकारी, प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था नहीं कही जा सकती। आज विश्व का कोई भी राष्ट्र या समाज स्वयंभू, स्वयंपूर्ण, निरावलम्बी, निरपेक्ष, एकाधिपति और सर्वथा असम्पृक्त नहीं हो सकता। इसलिए आज भूमंडलीकरण रूपी आकर्षक नारे के पीछे निहित विपत्तियों को पहचानने का तथा सचेत, सजग और सतर्क होकर उसकी खामियों से बचने के लिए सही कदम उठाने का वक्त आ गया है। विश्व–भर में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए साम्राज्यवादी तथा पूंजीवादी ताकतें विभिन्न मार्गों से निरन्तर प्रयास कर रही हैं। मतलब है कि पुरानी मदिरा नवीन चषकों में बिकने का प्रयास वे कर रही हैं। दूसरे शब्दों में, साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद की साजिश है भूमंडलीकरण।

भूमंडलीकरण के आ जाने से अब तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि युवा पीढ़ी जैसे ही आंख खोलती है साथ ही बंधन मुक्त होने की चाह उनमें सिर मारने लगती है। वास्तव में भूमंडलीकरण ने तो हमें वैयक्तिक स्वतंत्रता दी थी सोचने की। अपने विचार प्रकट करने की, अपनी पुरानी परम्पराओं का परिमार्जन करने की, नये प्रयोग करने की, पर युवा पीढ़ी ने इस स्वातंत्र्य के आकर्षण को जिस दृष्टि से अपनाया उसमें सबसे पहले परिवार का परित्याग किया और बिना सोचे, समझे काम के थपेड़े में बहकर अपने भविष्य को ही डुबाते जा रहे हैं। और अन्तहीन महत्वाकाक्षांओं के दौर का विस्तार करते जा रहें हैं। वैयक्तिक स्वातंत्र्य के भाव ने आज युवक–युवतियों के मन में यह भाव भर दिया है कि जब तक वे पारिवारिक परम्पराओं का परित्याग नहीं करते तब तक वे स्वच्छन्द मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकते। वे ऐसे वातावरण के इच्छुक हैं जहाँ उनकी इच्छा पूर्ति में किसी प्रकार की कोई बाधा न हो। अर्थात जब कभी माँ–बाप अपने 15 या 16 साल के बच्चों को रोकने का प्रयास भी करते हैं तो संतान का उत्तर होता है, ''हमारी उम्र में सभी लड़के–लड़कियाँ बाहर घूमते हैं मौजमस्ती करते हैं। हमें क्यों रोका जाता है। भूमंडलीकरण की इस प्रक्रिया में युवा पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के सम्मुख विद्रोह का दामन थामे हुए है। कहीं वे बड़ों का विद्रोह करते हैं तो कहीं संस्था के विरोध में खड़े हो जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीयकरण के कारण आये परिवर्तनों ने इस पीढ़ी के हाथों में विद्रोह का ध्वज दे दिया है जिसमें परिवारों का संतुलन डांवाडौल हो गया है। आज पारिवारिक बंधनों की डोर कमजोर पड़ती जा रही है। अनुशासन को सजा मानने लगी यह पीढ़ी क्योंकि मुक्त होकर अपने मन की करने की उम्र तय हो चुकी थी। अब माता–पिता किसी तरह का दबाव नहीं डाल सकते हैं अपनी संतानों पर।'' नयी पीढ़ी के पास यह विद्रोह एक अस्त्र के समान है जिसका प्रयोग करके वे मनचाही डगर पर चल सकते हैं क्योंकि भूमंडलीकरण की हामी भरने वाली सरकारें इस युवा पीढ़ी को बेरोजगारी की भत्ता देकर और प्रोत्साहित कर रही है। प्रवासी भारतीयों की संतानों और इसमें परस्पर निर्भरता के बंधन को भी तोड़ने का सम्बल पाती जा रही हैं। पश्चिमी देशों में जन्मीं भारतीय संतानें इसके प्रबल उदाहरण के रूप के रूप में देखी जा सकती हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि भूमंडलीकरण पूरे विश्व को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् 'एक परिवार के रूप में देखने, समझने व जीने की प्रेरणा देता है। इसके लिए इस प्रक्रिया ने वैयक्तिक स्वातंत्र्य, प्राचीन सांस्कृतिक

मूल्यों में परिमार्जन तथा पुरानी पीढ़ी के विचारों को परिष्कृत करने के उद्देश्य को सम्मुख रखकर यौन संबंधों को यौन शुचिता का दर्जा दे दिया है। इसी के अंतर्गत मानव रक्षा का दायित्व सरकार ने अपने हाथों में ले लिया है। इस भूमंडलीकरण ने मानव विकास के लिए ये नवीन मानदंड निश्चित किए थे पर मानव ने इसका प्रयोग अपने हित के लिए न करते हुए अपना अहित कर लिया और इसके कारण ही समाज की लघुतम इकाई 'परिवार' पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं।

भूमंडलीकरण की इस प्रक्रिया को वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य से जोड़कर देखें तो तमाम विकास योजनाओं का लाभ राजनेता, अधिकारी, इंजीनियर, बैंक मैनेजर और दलाल उठा रहे हैं। यही कारण है कि सभी राजनीतिक पार्टियाँ अपना औचित्य आज खो चुके हैं, जहां जनता अपने चुने हुये प्रतिनिधियों को घृणा और तिरस्कार से देखने लगे, भ्रष्टाचार, तस्करी, हिंसा, अपराधों के लिये नेताओं, माफियाओं, पुलिस और उच्चाधिकारियों के सम्बन्धी चर्चा के विषय बन गये हों, वहाँ इस संकट का समाधान बिना व्यवस्था के बदले कैसे हो सकता है। यह विचार गम्भीरता का विषय है कि अब यदि कोई राजनीतिक पार्टी सचमुच में दूसरी (अपवाद स्वरूप आम आदमी पार्टी का अस्तित्व आ रहा है) पार्टियों से भिन्न है और उसे इस राष्ट्र से प्रेम है तो इस स्थिति को बदलना होगा, हमें कोई न कोई निगरानी व्यवस्था उसी में बनानी होगी, जो भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता, जातिवाद, क्षेत्रवाद जैसी विभक्तकारी प्रवृत्तियों का मुकाबला कर सके ताकि सरकारी योजनाओं का लाभ आम जनता और अन्तिम व्यक्ति को मिल सके। इसके लिये जरूरी है कि भ्रष्टाचार के खिलाफ केन्द्रीय सर्तकता आयोग ने जो अभियान शुरू किया है उसे ईमानदारी से लागू किया जाये। लोकपाल विधेयक को मंजूरी देकर इसे ईमानदारी से लागू किया जाना चाहिये। राज्यों में भी ऐसी कारगर व्यवस्था बनायी जाये जिससे भ्रष्टाचारी दण्डित हो सके, भ्रष्टाचार के खिलाफ कार्यवाही ही नहीं होनी चाहिये, वरन् जनता को लगना चाहिये कि भ्रष्टाचारी सचमुच में दण्डित किये गये हैं। यह कोई मुश्किल कार्य नहीं है यदि हमारे शीर्ष राजनेताओं की नीयत साफ है, तो इस भ्रष्टाचार के कुचक्र को जरूर तोड़ा जा सकता है। लेकिन इसके लिये स्पष्ट व कठोर नियम, पारदर्शिता और कठोर सजा की जरूरत है।

इन सबके बीच आज सभी राजनीतिक पार्टियों के विधायकों, सांसदों और मंत्रियों को व्यक्तिगत सम्पत्ति घोषित करने के साथ–साथ अपनी जांच करवाने के लिये तैयार रहना चाहिये, तभी वह सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों के भ्रष्टाचार पर प्रभावी रोक लगा सकेंगे। भ्रष्ट तरीके से अर्जित की गयी सम्पत्तियों को जब्त करने के लिये बनाये गये कानून का उपयोग सख्ती और शीघ्रता के साथ किया जाना चाहिये। इससे बड़े अधिकारियों और ठेकेदारों के भ्रष्टाचार पर रोक लगायी जा सकती है और हमारे शासक जिस दिन से भ्रष्टाचार पर रोक लगाने में सफल होंगे, उसी दिन से राजनीति से अपराधियों का सफाया होने लगेगा। यदि प्रस्तावित संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार हुकुमत कम, निगरानी अधिक करें तो यह काम हो सकता है। सरकार का काम कानूनों के उल्लंघन को रोकना होना चाहिये।

सत्ता की इस बंदरबाँट में सभी राजनीतिक दल समान रूप से भागीदार हैं। अपराधी जिनके हाथ खून से रंगे हुये हैं, या घोटालों में संलिप्त रहे हैं, वे आज सभी राजनीतिक दलों में महत्वपूर्ण स्थान पर पहुँच चुके हैं। यहाँ सवाल यह उठता है कि जिन लोगों पर गम्भीर आरोप हैं, वे चुनाव कैसे जीत जाते हैं ? जब तक कोई व्यक्ति अदालत द्वारा दोषी न ठहरा दिया जाये, तब तक कानून उसे चुनाव लड़ने से रोक नहीं सकता। इसी कानून का फायदा उठाकर ये प्रभावशाली आपराधिक पृष्ठभूमि के लोग कानून व्यवस्था को भी पंगु बनाकर चुनाव लड़ते रहते हैं। अचरज और हैरानी की बात तो यह है कि सभी प्रमुख राजनीतिक पार्टियाँ भी आपराधिक पृष्ठभूमि वाले प्रत्याशियों की तलाश में रहते हैं, क्योंकि इनकी चुनाव जीतने की क्षमता को वे जानते हैं। इस राजनीतिक

भ्रष्टाचार के विस्तार से ही राजनीति के अपराधीकरण की समस्या पैदा हुई है, स्थिति इतनी अधिक निराशाजनक हो गयी है कि यहाँ हर व्यक्ति का अपना निजी एजेण्डा है, जिसे बस उसे लागू करने की फिक्र रहती है। नैतिक पतन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है और सामाजिक जीवन का शायद ही कोई क्षेत्र प्रदूषित होने से बचा हो। जो इस तंत्र से जुड़े हुये हैं, उन्होंने परस्पर स्वीकार्य ऐसे उपाय निकाल लिये हैं, जिनसे यह सुनिश्चित हो जाये कि राजनीतिक ढांचे, प्रशासनिक सेल और जांच करने वाली एजेन्सियों का कार्य कहीं रूके ही नहीं। वास्तव में आज समाज में हम जो देख रहे हैं वह एक नरभक्षी समाज है जिसमें भ्रष्ट और कानून के भक्षक निराश और अभागे लोगों का शिकार कर रहे हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के तकाजे ने निश्चित ही फासीवाद को बढ़ावा दिया है। बदलती हुई इस दुनिया में भाषा के सर्वव्यापी प्रदूषण की आड़ में फॉसीवादी शक्तियों का जो जमाव हो रहा है, उसमें एक संवेदनशील व्यक्ति, नागरिक या लेखक की भूमिका क्या हो सकती है ? व्यक्ति को सचेत होना होगा, हमारी मानव मुक्ति की आड़ में आ रहे अवांछित तत्वों को निकाल फेंकना होगा। आज एक आम नागरिक का यह दायित्व बनता है कि वह समाज और राष्ट्र निर्माण की धुरी बन सके, किंतु भूमंडलीकरण के नाम पर फिर गुलामी का नया कांड रचा जा रहा हो, तो उसे उन इरादों को नाकाम करना होगा। पुनः अपने अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई के लिए भाषा की एकता रूपी नए औजार को तलाशना होगा। विचारशील व्यक्ति या लेखक का दायित्व यह होता है कि वह हकीकत को बयां करे। और शोध कर जन उपयोगी साहित्य का मौलिक सृजन करे।

कभी मोटर–गाड़ी तो कभी मोबाइल की सहज उपलब्धता आम आदमी तक को हासिल हो जाना और सबसे बड़ी बात यह है कि अपने–अपने समय में इन चीजों की ऐसी उपलब्धता कि इनका 'स्टेट्स–सिम्बल' न बन पाना, उत्तर आधुनिकता की उस उत्तरोत्तरता की ओर संकेत है कि हो सकता है, भविष्य में कभी वैज्ञानिक उपलब्धियों और वैज्ञानिक गति पर आम आदमी का भी वैसे ही अधिकार हो जाए जितना कि आज हवा, पानी, आक्सीजन आदि पर है। यह बात हवाई भी लग सकती है, लेकिन यह ध्यान रखने की बात है कि जब मारकोनी ने बेतार दूरभाष (मोबाइल) के अनुसंधान के संकल्प की घोषणा की थी, तो लोगों को एक बारगी यह लगा था कि वह कुछ ज्यादे ही हवाई–सोच में लगा हुआ है किन्तु परिणाम आज सामने हैं। यह उत्तर आधुनिकता समाज, विज्ञान, राजनीति, आम आदमी की विचारधारा आदि अनेक मोर्चों पर बहुप्रतीक्षित और कौतूहलपूर्ण परिणामों के साथ हाजिर होती हुयी, अनवरत गतिशील रहने वाली अनिवार्य प्रक्रिया है। कभी अद्‌भुत कल्पनाएँ साकार होकर हमें चौंका देती थीं, तो अब ऐसा भी समय है कि कुछ एक चीजें ऐसे सम्भव या घटित हो जा रही हैं जिनकी हम पूर्व कल्पना ही नहीं कर सकते थे। क्या सचमुच हम यथार्थ, अति यथार्थ से गुजरते हुए कल्पनातीत यथार्थ के समय में खड़े हैं। गुब्बारे से हवाई जहाज तक की कल्पना तो साकार हो चुकी है, अब देखना है कि सुपर मैन और स्पाइडर की कल्पना कौन सा भविष्य का दरवाजा खोल सकती है।

एक अच्छे शोधकर्ता को सबसे पहले अपने आस–पास एवं वातावरण में हो रहे परिवर्तन को देखना चाहिए, फिर विचार करना चाहिए कि प्रस्तुत समस्या जनसामान्य के लिये कितनी उपयोगी और हानिकारक हो सकती है; व्यापकता एवं उपयोग की दृष्टि से। तभी उसे कलम उठानी चाहिए क्योंकि समस्या पैदा करना एक शोधकर्ता/सृजनशील व्यक्ति का काम नहीं बल्कि समस्या से रूबरू कराना और उसका कैसे समाधन किया जाये जो सम्पूर्ण मानवता के लिये उपयोगी हो। यह सब विषय उसके लेखन में/शोध में उजागर होने चाहिये तभी उस लेखन की उपादेयता एवं उस लेखक को समाज का पथ प्रदर्शक कहा जायेगा। विरोधाभाषों की वर्तमान दुनिया में सृजनकर्ताओं/शोधकर्ताओं को व्यावहारिक स्तर पर आज जमीनी सवालात से जूझने के लिये एक समग्र और

व्यापक नजरिये की आवश्यकता हो गयी है। हालाँकि यह एक मुश्किल ही नहीं वरन् चुनौती भरा तथा असम्भव कार्य है लेकिन इन दुर्गम कार्यों से विरक्ति होकर हम यथार्थ, मौलिक तथा कालजयी सृजन नहीं दे सकते हैं। कृतिका का यह 13–14 संयुक्तांक इन्हीं विचारणा और विमर्श की सार्थकता के आयाम को लेकर केन्द्रित है। इस उद्देश्य में हम कहाँ तक सफल हुये हैं यह आपकी प्रतिक्रिया पर निर्भर करेगा। पुनः एक बार हम आपके विचारों/मशविरों के कायल हैं।

कृतिका के क्रियान्वयन एवं मूर्तीकरण की प्रक्रिया इसके साथ ही रचनाओं के चयन में सम्पादक मण्डल के सदस्यों के बीच गुणवत्ता, मौलिकता एवं संख्यात्मकता को लेकर एक लम्बा विमर्श चलता है। देश एवं विदेश के रचनाकारों की रचनाएं प्राप्त करने में काफी समय लग जाता है। इसके बाद अपने सहयोगियों की लगभग हर अंक में रचनाएँ प्रकाशित करने का आग्रह ऐसे कुछ कार्य हैं जिसको लेकर सम्पादक मण्डल के लिये निर्णय के कठिन दौर से गुजरना होता है । हमारे पास लगभग दो हजार से अधिक (कई अंकों तक की पर्याप्त सामग्री है) शोध पत्र उपलब्ध हैं। परन्तु सर्वसम्मत से विषय विशेषज्ञों (भारतीय एवं प्रवासी मित्रों) के सर्वमान्य स्वीकृति द्वारा ही इन शोधपत्रों/आलेखों को गुणवत्ता की दृष्टि से इस अंक में स्थान दिया जा रहा है। जिन अध्येताओं, युवा शोधार्थियों एवं रचनाकारों की रचनाएं इस अंक में नही जा पायी हैं। उन्हें हमारे नये कार्यालय से सम्पर्क कर सूचना ले लेनी चाहिए। हमसे ई–मेल एवं दूरभाष पर भी सम्पर्क किया जा सकता है। भारत में रहने वाले अपने रचनाकारों एवं पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे हमारे क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल के सदस्यों से सम्पर्क कर रचनात्मक सहयोग एवं सदस्यता ग्रहण कर पत्रिका की प्रति उनके द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। विदेश में रहने वाले प्रवासी रचनाकार एवं पाठक कृतिका सम्पादक मण्डल के प्रवासी मित्रों से रचनात्मक सहयोग तथा प्रति (कृतिका) प्राप्त कर सकते हैं। पत्रिका प्राप्त करने के लिये कृतिका के नए प्रधान कार्यालय से भी सम्पर्क स्थापित कर इसकी प्रति सुरक्षित करवा सकते हैं। यह अंक कृतिका का संयुक्तांक के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत है। देरी के लिए हम अपने कृतिका परिवार के सदस्यों एवं पाठकों से क्षमा चाहते हैं।

विषय–विशेषज्ञों तथा गोपनीय समिति द्वारा निर्धारित 'कृतिका' की अपनी कुछ सीमाएं हैं और इन्हीं सीमाओं को दृष्टि में रखते हुये अनेक आलेख/शोध–पत्र तथा पुस्तक समीक्षाएँ हम चाहते हुये भी कभी– कभी प्रकाशित नहीं कर पाते हैं। (विशेषकर कविता, कहानी, गजल एवं लघु कथाएँ तो बिल्कुल नहीं) और न ही अगले अंक में प्रकाशन की सूचना हम दे पाते हैं। इसके लिए हमारी कुछ तकनीकि सम्बन्धित समस्याएँ हैं। हमारी इस व्यवस्था से यदि आप असन्तुष्ट हैं तो इसके लिये कृतिका परिवार क्षमाप्रार्थी है।

कृतिका परिवार में कुछ लोगों के अमूल्य सहयोग के लिए हम उन्हें धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिन्होंने हमें निरन्तर छः ह वर्ष तक सहयोग दिया,साथ ही इस अंक में कृतिका परिवार में शामिल नए सदस्यों का अभिनन्दन करता हूँ कि वह इसे नई उँचाईयों तक ले जाने का प्रयास करेंगें।

जैसा कि कृतिका के नियमों के अनुरूप वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक निकालना सुनिश्चित है। भूमण्डलीकरण के इस युग में मानव की प्रगति के अवसरों के साथ–साथ उसकी आकांक्षाएं भी बड़ी हैं। यह बात व्यक्ति और समाज दोनों के लिये सच है। आज हम एक नवजागरण एवं उत्तर आधुनिकता के द्वार पर खड़े हैं जहाँ पर प्रत्येक कदम पर प्रतिस्पर्धा एवं चुनौती का वातावरण विद्यमान है। बाजारवादी इस परिवेश में हम अपने को कितना असहाय एवं लाचार पाते हैं और अधिक से अधिक मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति के चक्कर में हम अपने को मन–मस्तिष्क को मारते रहते है। अपने फायदे के अलावा हम कुछ सोच नहीं पाते हैं । इन्हीं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये अगली कड़ी के रूप में कृतिका का अंक भारत में समाजवाद दशा एवं दिशा–विशेषाँक–2014 (भारत के भविष्य के लिए आम

आदमी की चिन्ता) प्रकाशित करने की योजना है। इस विषय पर विस्तृत सूचना अन्त के कवर पृष्ठ पर अंकित है। कृपया प्रमुख बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये अपने गम्भीर अध्ययन से सम्बन्धित शोधपरक एवं मौलिक रचना सामग्री भेजकर रचनात्मक सहयोग प्रदान करने की कृपा करें।

एक लेखक, रचनाकार एवं सम्पादक के लिए अपने शुभचिंतकों, प्रशंसकों एवं पाठकों की प्रतिक्रिया ही सब कुछ होती है। इस बात को हम गर्व एवं फक्र के साथ कह–सकते हैं कि हमें इस सम्बन्ध में अपने बुद्धिजीवी, मनीषी पाठकों से बहुत कुछ समय–समय पर मिल रहा है। इस सन्दर्भ में सम्पादित लेखों तथा सम्पादकीय में रचनात्मक और सकारात्मक बातें चिह्नित कर हमें पत्र, फोन और ई–मेल से अवगत कराते–रहते हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये पाठकगढ़ न केवल हमारी प्रशंसा और तारीफ के पुल बांधते रहते हैं बल्कि वे हमारी गलतियों को भी बताते एवं एहसास कराते रहते हैं। ये सब प्रतिक्रियाएँ हमारी पूरी टीम का मार्गदर्शन कर हमें प्रोत्साहित कर नयी ताजगी एवं ऊर्जा का संचार कर और आगे कुछ नया करने को प्रेरित तथा उत्साहित कर हिम्मत बढ़ाती हैं और हाशिए पर कर दिए गये समुदाय के लिए नया संघर्ष करने को एक आत्मीय शक्ति भी प्रदान करती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि जब कोई व्यक्ति स्वार्थ से परे रहकर जनहित के पक्ष में कार्य करने का संकल्प लेता है तो अदृश्य शक्तियाँ भी उसकी मदद करती हैं।

– सम्पादक मण्डल

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

अपराध की तंग गलियाँ और मासूम किशोर

डॉ0 अंजना वर्मा
व्याख्याता–समाजशास्त्र विभाग
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

बच्चे स्वभाव से ही चंचल होते हैं यह एक सार्वभौमिक तथ्य है किन्तु जब यह शरारतें/नटखटपन समाज की मान्यताओं को भंग करने लगता है तो वह बाल–अपराध के नाम से जाना जाता है बाल अपराध की समस्या कोई पृथक समस्या नही वरन् यह सामाजिक परिवर्तन और समाज में असामंजस्य का ही परिणाम है। पश्चिमी देशों में औद्योगीकरण के प्रभाव से सामाजिक संरचना एवं सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आ रहे हैं परिणामस्वरूप वहां बाल–अपराधों की समस्या उत्पन्न हुई है।

जब किसी बच्चे द्वारा कोई कानून–विरोधी या समाज–विरोधी कार्य किया जाता है तो उसे बाल–अपराध कहते हैं सेठना के अनुसार ''बाल–अपराध के अन्तर्गत किसी बालक या ऐसे तरूण व्यक्ति के गलत कार्य आते हैं जो कि सम्बन्धित स्थान के कानून (जो उस समय लागू हों) के द्वारा निर्दिष्ट आयु सीमा के अन्दर आते हों''। न्यूमेयर के अनुसार ''एक बाल अपराधी निर्धारित आयु से कम आयु का वह व्यक्ति है जो समाज विरोधी कार्य करने का दोषी है और जिसका दुराचरण कानून का उल्लंघन है।'' प्रत्येक देश में बाल अपराधियों की आयु सीमा भिन्न–भिन्न है भारत में 7 वर्ष से लेकर 18 साल की आयु तक का व्यक्ति बाल–अपराधी माना जायेगा।

आज वर्तमान समाज की बात करें तो देखते हैं कि समाज के नैतिक स्तर में अत्यन्त तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है वैश्वीकरण, उदारवाद तथा पश्चिमी उन्मुक्त स्वच्छन्दतावाद की वजह से किसी भी कार्य को बुरा नहीं माना जाता है ''जैसी मरजी, वैसा करो और तब तक करते चलो जब तक दूसरो को कोई क्षति न पहुँचे''। विद्यार्थियों में बढ़ती उदण्डता, उच्छंखृलता और अनुशासनहीनता आज बिल्कुल सामान्य हो गई है आज के चौथी, पाँचवी व सातवीं कक्षा के छोटे–छोटे बच्चे–बच्चियाँ जिन्हें उम्र का अहसास तक नहीं है सभी मर्यादाओं/सीमाओं को लांघ चुके हैं। स्कूली बच्चों के लिए नैतिकता और मूल्यों के वे अर्थ अब नहीं रह गये है, जिनकी उनसे अपेक्षा की जाती है। शराब, सिगरेट पीना, हल्की मादक दवाएँ लेना, चुपचाप सैर सपाटा, अचानक स्कूल से गायब हो जाना, साइबर कैफे में इंटरनेट पर अश्लीलता से सराबोर होना, बार आदि में जाने के लिए झूठ बोलना, तन पर छोटे व कम से कम कपड़े पहनना आदि प्रचलन बन गया। समस्या बड़ी गम्भीर है और यह अनियंत्रित होने की स्थिति में है क्योंकि अपराधी बालकों ने आज सारे समाज को ही कलंकित करके रख दिया है। हकीकत यह है कि आज के अधिकतर बच्चों में न माता–पिता के प्रति सम्मान और श्रद्धा का भाव ही बचा है और न समवयस्कों के साथ प्रेम और सहयोग की भावना। फैशन, सिनेमा और मटरगस्ती का अन्तहीन दौर चल निकला है स्वच्छन्द सेक्स एवं नशीले द्रव्यों का प्रयोग अमेरिका या पश्चिमी देशों के लिए अपराध की श्रेणी में नहीं आता है और इस पर वहाँ विधिवत कानूनी तौर पर वैद्यता की स्वीकृति भी दी जाने वाली है। यही कारण है कि पश्चिमी देशों के बालकों में बहुत तीव्रता के साथ नैतिक स्तर में गिरावट आ रही है उनमें अपने अथवा दूसरों के भले–बुरे के ज्ञान की भारी कमी देखी गई है। आज बाल–अपराध के आँकड़ों पर जब हम गौर करते हैं तो भविष्य के प्रति एक अन्जान भय प्रतीत होने लगता है। डर लगता है कि इसके परिणामों का असर भारत व संसार के अन्य बच्चों पर भी पड़ता है।

भारतवर्ष में बाल–अपराध कोई आज की समस्या नहीं हैं हमेशा से बालकों द्वारा छोटी–बड़ी शरारते और

समाज विरोधी कार्य होते रहे हैं यह समस्या अत्यन्त ही प्राचीन है। कानूनों का उल्लंघन चाहे बालकों द्वारा हो या वयस्कों द्वारा एक राष्ट्रीय समस्या है। आधुनिक समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि बालकों तथा युवकों में सामंजस्य की मात्रा समाप्त होती जा रही है। आधुनिक समाज सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक विघटन की परिस्थिति से गुजर रहा है। जब समाज में तीव्रता से और असन्तुलित परिवर्तन होता है, तो समाज में असामंजस्य की स्थिति पैदा हो जाती है। इन तीव्र परिवर्तनों से बालक का मस्तिष्क बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। भारत का आधुनिक समाज आज तेजी से परिवर्तित हो रहा है, इस गतिशीलता के कारण समाज में व्यक्तियों के कार्यों और उनकी भूमिकाओं में अन्तर आता है। सामाजिक मूल्यों और व्यक्तिगत दृष्टिकोणों में असामंजस्य की स्थिति पैदा हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज विघटित हो जाता है। सामाजिक विघटन बाल–अपराध की पृष्ठभूमि में है। प्राचीनकालीन समाज में स्थिरता और एकता अधिक मात्रा में पाई जाती रही है, इसके साथ ही उन समाजों में सामाजिक नियंत्रण अधिक मात्रा में प्रभावशाली रूप में पाए जाते थे। आज का समाज स्थाई नहीं रह गया है, उसमें कुछ ऐसे तत्व सम्मिलित हैं तथा ऐसी परिस्थितियाँ विकसित हो गई हैं जिनके कारण समाज विघटन की ओर गतिशील है। वर्तमान में भारतीय समाज में एकता कम होती जा रही है तथा भाषा, सम्प्रदाय, जाति और वर्ग आदि को लेकर अनेक विभेद पैदा हो गए हैं। गतिशील समाज में समूह–जीवन समाप्त हो जाता है समाजिक विभेदीकरण के कारण एकता समाप्त होती जा रही है। जटिल और परिवर्तित समाज में अनेक समस्याओं का जन्म होता है ये समस्याएँ बाल अपराधों की मात्रा में वृद्धि करती है।

वर्तमान भारत में बाल–अपराधों में वृद्धि का एक कारण यह भी है कि आधुनिक भारतीय समाज संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है। संक्रमण की अवस्था में नवीन और प्राचीन के बीच असामंजस्य की स्थिति का जन्म होता है। भारत में संक्रमण का कारण विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उन्नति है। भारत की कुछ पुरानी धारणाएँ और परम्पराएँ थीं। ये धारणाएँ और परम्पराएँ आज से भी अधिक विकसित विज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित थीं। समय के साथ ही इन धारणाओं और परम्पराओं में परिवर्तन हुआ। परिवर्तन के साथ ये परम्पराएँ अपनी वैज्ञानिकता खो बैठीं और मात्र एक रूढ़ि बनकर रह गईं। इन रूढ़ियों को हमने शताब्दियों तक अपने जीवन में अपनाया। इसलिए आज ये रूढ़ियां जीवन के अविभाज्य अंग के रूप में स्वीकार की जाती हैं विज्ञान के पुनः उदय और विकास के साथ ही हमारी परम्पराओं की उपयोगिता पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाए जाने लगे। आज इन रूढ़ियों को शंका/शक की दृष्टि से देखा जाता है और अनुपयोगी कहकर अस्वीकार किया जाता है। इस कारण नवीन और प्राचीन संघर्ष के कारण समाज संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है जिससे अपराधों/बाल अपराधों की संख्या में वृद्धि हो रही है भारतीय समाज के संक्रमण की स्थिति का कारण औद्योगिकीकरण व नगरीकरण है जिससे आधुनिक समाज में मौलिक परिवर्तन हुए हैं। हमारी प्राचीन संस्थाएँ, परिवार, विवाह जाति आदि भी टूट रही हैं।

बाल अपराध के उत्तरदायी कारण –

बाल अपराध के निम्नलिखित कारण हैं –

I पारिवारिक कारण – परिवार का व्यक्ति के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला है। परिवार में रहकर ही बच्चा प्रेम, त्याग, सहयोग, करूणा, सहानुभूति आदि गुणों को सीखता है। जिससे आगे चलकर वह अच्छा नागरिक बन सकता है। पिता शराबी हो तो निश्चित तौर पर इसका बच्चे पर बुरा असर पड़ता है ऐसे परिवारों की आर्थिक स्थिति भी निम्न होती है। जिससे बच्चे इस दमघोटू वातावरण से बचने के लिए घर से बाहर निकल पड़ते हैं। जिन परिवारों में माता–पिता साथ–साथ तो रहते हैं किन्तु आए दिन उनमें मनमुटाव व मानसिक संघर्ष एवं तनाव पाया जाता है। उन परिवारों के बच्चे भी अपराध की ओर प्रवृत्त होते हैं। परिवार से संबंधित कई कारण बालक को

अपराधी बनाने के लिए उत्तरदायी हैं जो कि इस प्रकार से है –

1.1 अपराधी भाई–बहिन – यदि परिवार में ही माता–पिता, भाई–बहिन आदि सभी अपराधी गतिविधियों में लिप्त हों तो निश्चित तौर पर उसका प्रभाव छोटे भाई–बहनों पर पड़ता है।

1.2 सौतेले माता–पिता – सौतेले माँ या बाप होने पर भी बच्चों को परिवार में जो स्नेह और प्यार मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता। उनके प्रति पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया जाता है फलस्वरूप बच्चे में ऐसे माता–पिता के प्रति विद्रोह व बदले की भावना पनपती है और वह उनसे घृणा करने लगता है वह परिवार के दूषित वातावरण से मुक्ति पाने के लिए घर छोड़ देता है और अपराधी बन जाता है।

1.3 पक्षपात – परिवार में पक्षपातपूर्ण व्यवहार होने पर भी बच्चों में निराशा और घृणा की भावना जन्म लेती है। यदि परिवार में किसी बच्चे को विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं और दूसरों के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है तो ईर्ष्या का वातावरण बनता है।

1.4 दोषपूर्ण अनुषासन – परिवार में कठोर व शिथिल अनुशासन दोनों ही स्थिति में बच्चे के बिगड़ने के आसार रहते हैं। बहुत अधिक कठोर नियंत्रण होने पर बच्चे का स्वभाविक विकास रूक जाता है और वह अपनी दबी हुई इच्छाओं की पूर्ति के लिए भी अपराध करता है। बच्चों को अत्यधिक ढ़ील देने पर उनमें स्वच्छन्दता की प्रवृति पैदा होती है।

1.5 गरीबी – गरीबी के कारण भी बच्चे अपराधी बनते हैं गरीबी में परिवार अपनी अनिवार्य मौलिक आवश्यकताएँ, चिकित्सा एवं मनोरंजन की सुविधाएँ नहीं जुटा पाता। ऐसी स्थिति में माँ–बाप दोनों ही नौकरी करने लगते हैं ऐसे में बच्चों पर नियंत्रण रखने वाला कोई नहीं रहता। बच्चों की आवश्यकताएँ जब परिवार में पूरी नहीं होतीं तो वे बाहर चोरियाँ करने लगते हैं।

1.6 बच्चे का तिरस्कार – जब माता–पिता बच्चे का तिरस्कार करते है तो बच्चे बिगड़ने लगते हैं।

1.7 भीड़–भाड़युक्त परिवार – वर्तमान में औद्योगीकरण के कारण शहरों की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है शहरों में आवास की समस्या होती है। सारा परिवार एक कमरे में रहता है, खेलकूद व मनोरंजन के लिए उपयुक्त स्थान का अभाव होता है, बच्चे बाहर निकलते हैं और अपराधी बालकों के सम्पर्क में आते हैं ऐसे परिवारों में गोपनीय स्थान का भी अभाव होता है।

II व्यक्तिगत कारण – कभी–कभी खुद व्यक्ति में ही ऐसी कमियाँ हो सकती हैं जिनसे वह अपराधी व्यवहार को प्रकट करे। व्यक्तिगत कारण इस प्रकार से हैं –

(अ) शारीरिक कारण – कमजोर, बीमार और कभी–कभी आंशिक रूप से अपंग बच्चे अपराध की ओर अधिक झुकते हैं कमजोर दृष्टि, बहरापन, अशुद्ध उच्चारण के कारण बच्चे हँसी का पात्र बनते हैं और वह क्षतिपूर्ति के रूप में अपराध करता है शारीरिक अपंगता भी अपराध को जन्म देती है।

(ब) मानसिक कारण – कमजोर मस्तिष्क वाले बच्चे शीघ्र अपराध की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं क्योंकि मानसिक पिछड़ेपन के कारण उसमें तर्कशक्ति का अभाव होता है।

III सामुदायिक कारण – जिस समुदाय में बच्चा रहता है, यदि उसका वातावरण अनुपयुक्त है तो वह बालक को अपराधी बना सकता है। सामुदायिक कारण निम्नलिखित हैं।

1.1 मनोरंजन – मनोरंजन और बाल–अपराध के सह सम्बन्ध का भी अध्ययन किया गया है। उचित मनोरंजन की सुविधा होने पर बाल अपराध की दर में कमी आती है। बड़े शहरों में मालरोड़, सिनेमा घर और पार्क ऐसे स्थान हैं जहाँ बच्चे भी मनोरंजन हेतु अपना खाली समय बिताने पहुँच जाते हैं। बच्चे को सिनेमा में दिखाये जाने वाले मारधाड़, यौन–अनाचार, चोरी, डकैती का बुरा प्रभाव बच्चे के मस्तिष्क पर पड़ता है।

1.2 स्कूल – स्कूल का वातावरण, अध्यापकों का व्यवहार, अध्यापकों की प्रभावहीनता, पाठ्यक्रम की नीरसता, अयोग्य छात्रों की क्रमोन्नति आदि ऐसे कई कारण हैं जो बच्चे के मस्तिष्क को प्रभावित कर उसे अपराधी बनाने में योग देते हैं।

1.3 अपराधी क्षेत्र – पड़ोस और अपराधी क्षेत्र में निवास का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। वेश्याओं के अड्डे, जुआरियों, चोरों, शराबियों और गुण्ड़ों के पास निवास–स्थान होने पर बच्चों के अपराधी होने के अधिक अवसर रहते हैं।

1.4 साथी – एक बच्चे को अपराधी बनाने में उसके साथियों का भी योगदान होता है। जब बच्चा समूह या गिरोह में शामिल होता है तो उसकी वैयक्तिता समूह में विलीन हो जाती है। साथियों के सम्पर्क से ही एक बच्चा धूम्रपान, शराबवृत्ति, चोरी, जुआ आदि सीखता है।

1.5 युद्ध – युद्ध सामाजिक विघटन एवं विनाश पैदा करता है तथा पारिवारिक जीवन को नष्ट करता है।

1.6 सिनेमा और अश्लील साहित्य – सिनेमा, कॉमिक्स पुस्तकें जिनमें व्यभिचार, धूम्रपान, मदिरापान और क्रूरता का चित्रण होता है, बच्चों और किशोरों के अपरिपक्व मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालते हैं कई बार वे अपराध और अपचार करने का ढंग भी सिखाते हैं। हमारे देश के विभिन्न भागों में कई बच्चे साधारण चोरी, सेंध लगाकर चोरी और अपहरण करने के लिए उन्हीं शैलियों का उपयोग करने पर गिरफ्तार किये जाते हैं सिनेमा में पैसा कमाने का शार्टकट साधन अपनाया जाता है। कामवासनाओं को भड़काकर और दिवा स्वप्न देखने की आदत बनाकर अपराधी व्यवहार उत्पन्न करते बच्चे सिनेमा के द्वारा साधारण चोरी, सेंध लगा कर चोरी और अपहरण करने के लिए उन्हीं शैलियों का उपयोग करते हैं।

IV अन्य कारण – बाल अपराध के लिए कुछ अन्य कारण भी उत्तरदायी हैं जो इस प्रकार से हैं –

(अ) मूल्यों में भ्रम – जब बच्चे के सामने विरोधी मूल्य होते हैं तो वह यह तय नहीं कर पाता है कि कौन से मूल्य सही एवं अपनाने योग्य हैं। माता–पिता बच्चों को घर पर सच बोलने एवं चोरी न करने की शिक्षा देते हैं, दूसरी तरफ वहीं पिता ऑफिस में घूस लेता है, गबन करता है इस प्रकार के विरोधी मूल्य होने पर बच्चा भ्रम में पड़ जाता है और वही व्यवहार करने लगता है जो वह लाभप्रद समझता है।

(ब) सांस्कृतिक भिन्नता एवं संघर्ष – जब भिन्न–भिन्न संस्कृति एक साथ हो या व्यक्ति एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में जाये तो वह दोनों में कई अन्तर देखता है। कई बार उनमें परस्पर संघर्ष पाया जाता है, इसका प्रभाव बालक के कोमल मस्तिष्क पर भी पड़ता है। वह अनिश्चय की स्थिति में होता है और अपराध कर बैठता है।

(स) जाति व्यवस्था – भारत में हुए अध्ययन इस बात की ओर संकेत करते हैं कि अपराध की दर अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों में अधिक है। उनके प्रति बरता जाने वाला भेदभाव, छुआछूत उन्हें अपराध करने के लिए उग्र बना देता है।

(द) नैतिक पतन – वर्तमान समय में नेताओं, व्यापारियों, सरकारी कर्मचारियों आदि का नैतिक पतन हुआ है। इसका प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है। वे भी उन्हें आदर्श मानकर उनकी तरह अनैतिक कार्य में लग जाते हैं।

(य) स्वतंत्रता में वृद्धि – नवीन समाज व्यवस्था में नियंत्रण शिथिल हुआ है। लोगों में अनैतिकता, हिप्पीवाद, व्यक्तिवाद, इच्छाओं में वृद्धि, यौन स्वतंत्रता आदि के कारण स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है और बच्चे उन्मुक्त होकर अपराध करने लगे।

(र) आर्थिक मन्दी – आर्थिक मंदी के आने पर व्यक्ति दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। मनोरंजन

एवं शिक्षा की व्यवस्था नहीं हो पाती। तब सुविधाएँ जुटाने के लिए अपराध का सहारा लिया जाता है।

V आवारागर्दी – आवारा बालक ही बड़े होकर अपराधी के रूप में बदल जाते हैं।

VI भगोड़ापन – स्कूल में बिना किसी सूचना के भागना ही कक्षा पलायन या भगोड़ापन कहलाता है। परिवार और स्कूल का अस्वस्थ पर्यावरण बालक में भगोड़ापन की प्रवृत्ति को जन्म देता है।

बाल–अपराधों की बढ़ती संख्या भविष्य के लिए खतरे का संकेत है। आज शहरी व ग्रामीण दोनों ही तरह के बच्चों में उद्‌ण्डता, उच्छृंखलता और अनुशासनहीनता देखी जा सकती है। आज हर माल, रेस्ट्रा, होटल, सार्वजनिक स्थानों, बस स्टैण्ड, रेलवे स्टेशन आदि पर बीड़ी–सिगरेट का धुँआ उड़ाते हुए, पान, सुपारी, गुटका, जर्दा, चुर्री खाते हुए दिखाई देते हैं। मद्यपान या नशीले पदार्थों का सेवन करना, लड़कियों, युवतियों व महिलाओं के पीछे फिकरे कसना, अश्लील गाने गाना, राह चलती या साईकिल/स्कूटी चलाती हुई लड़की को च्यूटी काटना व दुपट्‌टा ले उड़ना आम बात है।

बाल–अपराधियों का सुधार –

बाल–अपराधियों को सुधारने के लिए वर्तमान में दो प्रकार के उपाय किए गये हैं –

(1) उनके लिए नए कानूनों का निर्माण किया गया है और (2) सुधार संस्थाओं एवं स्कूलों का निर्माण किया गया है जहाँ उन्हें रखने की सुविधायें हैं –

(अ) कानूनी उपाय – बाल–अपराधियों को विशेष सुविधा देने और न्याय की उचित प्रणाली अपनाने के लिए बाल अधिनियम और सुधारात्मक अधिनियम बनाए गए। भारत में बच्चों की सुरक्षा के लिए 20वीं सदी की दूसरी दशाब्दी में कई कानून बने। सन् 1860 में भारतीय दण्ड संहिता के भाग 399 व 562 में बाल–अपराधियों को जेल के स्थान पर रिफोमेट्रीज में भेजने का प्रावधान किया गया। दण्ड विधान के इतिहास में पहली बार यह स्वीकार किया गया कि बच्चों को दण्ड देने के बजाए उनमें सुधार किया जाए एवं उन्हें युवा अपराधियों से पृथक रखा जाए।

मद्रास, बंगाल, बम्बई, दिल्ली, मैसूर, पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान अलग–अलग प्रान्तों में बाल अधिनियम बने। बाल अधिनियमों में समाज विरोधी व्यवहार व्यक्त करने वाले बालकों को प्रशिक्षण देने तथा कुप्रभाव से बचाने के प्रयास किए गए। उनके लिए दण्ड के स्थान पर सुधार को स्वीकार किया गया और यदि सम्भव हो सके तो उन्हें शीघ्र मुक्त करने की बात कही गई। अखिल भारतीय स्तर पर संसद में सन् 1986 ई. में बाल न्याय अधिनियम पारित किया गया जिसके अनुसार 16 वर्ष की आयु से कम के लडके व 18 वर्ष की आयु से कम की लड़की द्वारा किए गए कानून विरोधी कार्यों को बाल अपराध की श्रेणी में रखा गया। इस अधिनियम में राज्यों को कहा गया है (निर्देशित किया गया है) कि वे बाल–अपराधियों के लिए विशिष्ट गृह बनायेंगे, उनके निवास, शिक्षा प्रशिक्षण और चरित्र निर्माण की समुचित व्यवस्था करेंगे, उनके कल्याण और पुनर्वास की व्यवस्था करेंगे।

बाल न्यायालय –

वर्तमान में भारत में सभी राज्यों में बाल–न्यायालय हैं– बाल–न्यायालय में एक प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट, एक या दो ऑनरेरी लेडी मजिस्ट्रेट, अपराधी बालक, उसके माता–पिता एवं संरक्षक, प्रोबेशन अधिकारी, साधारण पोषाक में पुलिस, कोर्ट का क्लर्क और कभी–कभी वकील भी उपस्थित रहते हैं इनकी बैठक साधारण तरीके से टेबल–कुर्सी लगाकर की जाती है जिससे बच्चे को यह महसूस न हो कि वह अपराधी है सुनवाई करने वालों और बच्चे के बीच अनौपचारिक बातचीत होती है। बाल–न्यायालय का सारा वातावरण इस प्रकार का होता है कि बच्चे के मस्तिष्क से कोर्ट का आंतक और भय दूर हो जाए। ज्यों ही कोई बालक अपराध करता है तो पहले उसे रिमाण्ड होम में भेजा जाता है और 24 घण्टे के भीतर उसे बाल न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता

है। उसकी सुनवाई के समय उस व्यक्ति को भी बुलाया जाता है जिसके प्रति बालक ने अपराध किया है। इन न्यायालयों की कार्यवाही को अखबारों में छापने की मनाही होती है तथा गोपनीयता बरती जाती है। सुनवाई के बाद अपराधी बालकों को चेतावनी देकर, जुर्माना करके या माता–पिता से बॉण्ड भरवाकर उन्हें सौंप दिया जाता है अथवा उन्हें परिवीक्षा पर छोड़ दिया जाता है या किसी सुधार संस्था, मान्यता प्राप्त विद्यालय, परिवीक्षा होस्टल आदि में रख दिया जाता है। बाल न्यायालय बाल–अपराध की प्रकृति के अनुसार दण्ड देता है। बाल न्यायालय में अपराधी को दण्ड देने से पूर्व परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट देखी जाती है जो अपराधी की पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियों के संदर्भ में होती है।

(ब) सुधारात्मक संस्थाएँ – बाल–अपराधों को रोकने का दूसरा प्रयास सुधारात्मक संस्थाओं एवं सुधारालयों की स्थापना करके किया गया है जिनमें कुछ समय तक बाल अपराधियों को रखकर प्रशिक्षण दिया जाता है ऐसी संस्थाएं निम्न प्रकार हैं –

(1) रिमाण्ड होम या अवलोकन गृह – अपराध करने के पश्चात जब पुलिस बच्चों को पकड़ लेती है तो सर्वप्रथम उन्हें रिमाण्ड होम में ही रखा जाता है। जब तक बच्चे की अदालती कार्यवाही चलती है, वह रिमाण्ड होम में ही रहता है। अनाथ और निराश्रित बच्चों एवं बन्दी–गृहों से पृथक किये गये अपराधियों को भी ऐसे गृहों में रखा जाता है। रिमाण्ड होम में प्रोबेशन अधिकारी बच्चे की पृष्ठभूमि, सामाजिक वातावरण तथा शारीरिक एवं मानसिक दशाओं का अध्ययन करता है। यहाँ बच्चों को मनोरंजन, शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। ऐसे गृहों में बच्चे से सही सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं जो वे न्यायाधीश के सम्मुख देने से घबराते हैं। इनमें चिकित्सकों द्वारा भी बच्चों का अध्ययन किया जाता है। कहीं–कहीं पर लड़के व लड़कियों के लिए अलग–अलग रिमाण्ड होम हैं।

(2) प्रमाणित विद्यालय – इन विद्यालयों में भी बाल–अपराधियों को रखा जाता है। यह एक प्रकार से औद्योगिक विद्यालय हैं जिन्हें राज्य की स्वीकृति प्राप्त होती है। पहले बाल अपराधी को रिमाण्ड होम में रखा जाता है। परिवीक्षा अधिकारी उसके सामाजिक वातावरण एवं पृष्ठभूमि का अध्ययन करके न्यायालय के सम्मुख अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। इस प्रतिवेदन को ध्यान में रखते हुए यदि न्यायालय यह महसूस करता है कि उसे किसी सुधार संस्था में रखने की आवश्यकता है तो उसे इस विद्यालय में रखा जाता है। किसी भी बाल–अपराधी को कितने समय तक प्रमाणित स्कूल में रखा जाए, इस बारे में अलग–अलग राज्यों के अपने–अपने नियम हैं। इस विद्यालय को छोड़ने से पूर्व उसे एक लाईसेन्स प्रदान किया जाता है और उसे किसी न किसी के संरक्षण में ही छोड़ा जाता है। अधिकाषंतः 18 वर्ष की आयु में बच्चे को रिहा कर दिया जाता है। इन विद्यालयों में बच्चों की शिक्षा एवं प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी होता है। यहाँ बच्चों का उनके माता–पिता एवं समाज के साथ सामंजस्य कराने का प्रयत्न किया जाता है उनके लिए व्यवसाय व नौकरी की खोज भी की जाती है।

(3) बोर्स्टल स्कूल – बोर्स्टल एक स्थान है जहाँ किशोर अपराधियों को जिनकी आयु 16 से 21 वर्ष हो, रखा जाता है। उन्हें वहाँ प्रशिक्षण एवं निर्देशन दिये जाते हैं तथा अनुशासन में रखकर उनका सुधार किया जाता है। भिन्न–भिन्न राज्यों में इन स्कूलों में अपराधियों को रखने का समय अलग–अलग है जो 2 से लेकर 5 वर्ष तक है। इस संस्था में उन्हीं अपराधियों को प्रवेश दिया जाता है जिनकी सिफारिश अदालत या जेल महानिरीक्षक ने की है। अवधि समाप्त होने, अच्छे आचरण का आश्वासन देने एवं भविष्य में अपराध न करने का वचन देने पर अपराधी को इस विद्यालय से मुक्त किया जाता है। यहाँ अपराधी को मुक्त वातावरण में रखा जाता है। उसकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं चारित्रिक क्षमताओं का विकास किया जाता है। उससे उत्तरदायित्व एवं आत्म नियंत्रण की भावना का विकास किया जाता है उसके लिए जिमनास्टिक,

उधोग धन्धों के प्रशिक्षण एवं शिक्षा आदि का प्रबन्ध किया जाता है। पत्र लिखने, रिश्तेदारों से मिलने, मन पसन्द प्रशिक्षण पाने, बिना निगरानी के बाहर घूमने आदि की इन्हें छूट होती है। वर्कशाप व मनोरंजन–कक्ष तथा भोजनालय में काम करने एवं खेल–कूद प्रतियोगिताओं में भाग लेने आदि की भी इन्हें छूट होती है।

(4) परिवीक्षा होस्टल – न्यायालय जब किसी बाल–अपराधी को परिवीक्षण पर छोड़ता है और जब किसी बच्चे के माता–पिता या सरंक्षक नहीं होते हैं तो उन्हें परिवीक्षा होस्टल में रखा जाता है ऐसे होस्टल में रहने वाले व्यक्ति को दिन में नौकरी करने एवं घूमने–फिरने की स्वतंत्रता होती है किन्तु रात्रि को ठीक समय पर वापस वहाँ पहुँचना उसके लिए अनिवार्य होता है।

(5) किशोर बन्दीगृह – इस प्रकार की जेल बेरली में है। जहाँ 21 वर्ष तक की आयु के अपराधियों को रखा जाता है उन्हें जेल में शिक्षा एवं विभिन्न व्यवसायों का प्रशिक्षण दिया जाता है उन्हें जेल से बाहर जाने एवं अध्ययन करने की छूट होती है इनके लिए कैण्टीन तथा पंचायत की भी व्यवस्था होती है। पंचायत ही सफाई, भोजन एवं मनोरंजन आदि की व्यवस्था करती है यहाँ बंदियों की प्रगति का पूर्ण ब्यौरा रखा जाता है।

(6) रिफोमैट्री स्कूल – इन स्कूलों में 16 वर्ष से कम आयु के उन बच्चों को रखा जाता है जो पहले सजा काट चुके हैं या जिन्होंने गम्भीर अपराध नहीं किये हैं। इस प्रकार के विद्यालयों का उद्देश्य अपराधी बालक का सुधार और पुनर्वास करना है। इन स्कूलों में बच्चों का सुधार करके उनका समाज के साथ सामंजस्य कराना और प्रशिक्षण देकर उन्हें कमाने योग्य बनाया जाता है। इन स्कूलों में अपराधियों का अध्ययन भी किया जाता है। उन्हें शिक्षित किया जाता है एवं विभिन्न व्यवसायों में उनकी रूचि के अनुसार उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को बाजार में बेचकर लाभ को उनके कोश में जमा किया जाता है इन विद्यालयों में रेडक्रास, स्काउटिंग, कृषि, चमड़े का काम, खिलौने, दरी, निवाड़, रस्सी बनाने, बढ़ईगिरी, सिलाई आदि का काम सिखाया जाता है। यहाँ जिन बच्चों का काम अच्छा होता है उन्हें वर्ष में 15 दिन तक घर जाने की छुटटी भी की जाती है। मुक्त होने के लिए इन्हें अर्जी देनी होती है। समय समाप्त होने पर या किसी अन्य उचित कारण के आधार पर अपराधी को मुक्त कर दिया जाता है। अधिकाधिक 7 एवं कम से कम 3 वर्ष तक अपराधियों को इन विद्यालयों में रखा जा सकता है। 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों को सुधार विद्यालयों में नहीं रखा जाता है। जेल अधिकारियों का पूर्णतः प्रशिक्षित न होना, मनोवैज्ञानिक ज्ञान का अभाव, विभिन्न प्रकार के व्यवसाय हेतु प्रशिक्षण की सुविधाओं का न होना तथा सुधारालय के जेल विभाग का ही एक अंग होना आदि कुछ ऐसे कारक हैं जिनकी वजह से ऐसे विद्यालय अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल नही हो रहे हैं।

(7) पोषण गृह तथा सहायक गृह – पोषण गृहों में 10 वर्ष से कम आयु के बच्चों को रखा जाता है ये ऐसे बच्चे होते हैं जिनके माता–पिता में विवाह–विच्छेद या परित्याग हो गया है या जिनकी मृत्यु हो गई हो अथवा लम्बे समय की कैद हो गई हो। ऐसे बच्चे नियंत्रण के अभाव में आवारगर्दी करते हैं तथा उनके भरण–पोषण की कोई व्यवस्था नही होती है चूंकि 10 वर्ष से कम आयु के बच्चों को प्रमाणित स्कूलों में नही रखा जाता इसलिए उनके लिए पोषण–गृहों की व्यवस्था की गई है ऐसे गृहों का उद्देश्य बाल–अपराध को रोकना है। इन गृहों का संचालन स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा किया जाता है और सरकार अपनी ओर से अंशदान प्रदान करती है। प्रमाणित स्कूलों एवं पोषण गृहों से जुड़ी हुई संस्था सहायक गृह है। पहले बच्चे को सहायक गृह में रखने के बाद ही पोषण गृह अथवा प्रमाणित स्कूलों में भेजा जाता है। इस संस्था में बच्चों की पृष्ठभूमि का अध्ययन किया जाता है। ये स्वयंसेवी संस्था एवं सरकार दोनों के द्वारा चलाये जाते है। इनमें बच्चों को छोटा–मोटा औद्योगिक प्रशिक्षण, स्काउटिंग, प्राथमिक शिक्षा, संगीत, कृषि

आदि के शिक्षण की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं इस संस्था में रहने वाले अधिकतर बालक सामान्यतः अपराध नहीं दोहराते हैं।

(8) उत्तर–संरक्षण संस्थाएँ – जब बच्चा किसी सुधार संस्था में छः माह तक रहता है और उस दौरान उसका व्यवहार अच्छा होता है तो जेल मुख्य निरीक्षक ऐसे बच्चों को उत्तर–संरक्षण संस्था में भेज सकता है। इन संस्थाओं में बच्चों के निवास, भोजन, स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा, औद्योगिक प्रशिक्षण जैसे चटाई, टोकरी, रस्सी, दरी एवं निवाड़ बनाने, सिलाई, कढ़ाई, कताई व बुनाई आदि सिखाने की व्यवस्था होती है इन संस्थाओं का संचालन स्वयंसेवी संगठन करते हैं और केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड उन पर नियंत्रण रखता है। एक पैरोल अधिकारी इनमें रहने वाले बच्चों की देखभाल करता है। इस प्रकार की संस्थाओं का उद्देश्य है दण्ड की अवधि पूरी होने तक बच्चों की देख–रेख करना एवं उन्हें संरक्षण प्रदान करना है।

कानून देश के हर जिले में एक बाल कल्याण समिति, एक बाल हैल्पलाइन (1018), बाल अपराधी जस्टिस बोर्ड, किशोर कल्याण अधिकारी सुधार गृह और सजा पूरी होने के बाद देखभाल का एक कार्यक्रम चलाने के लिए कहता है लेकिन कानून के ये ज्यादातर प्रावधान सिर्फ कागजों तक ही सीमित हैं। खासकर इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू यानि कि परामर्श, इस तरह का कोई आंकडा उपलब्ध नही है कि कितने बाल आरोपियों का वास्तव में पुर्नवास हो पाता है, सरकारी आकड़ों के मुताबिक, पुलिस किशोर की सजा पूरी होने के बाद उसके सभी रिकार्ड नष्ट कर देती है, अगर वह वयस्क होने पर अपराध करता है तो उसका नाम दोबारा जुर्म करने वाले के रूप मे नही जोड़ा जाता है। बहुत से मामलों में अपराध के कारण किशोर का साहस और बढ़ जाता है। खासकर जब वह पकड़ा जाता है किशोर अपराधियों की गिरफ्तारी के तुरन्त बाद उनसे पूछताछ करने वाले पुलिसकर्मी इस बात से हैरान हो जाते हैं कि उन्हें अपने किए पर कोई पछतावा नही होता है।

संभव है कि दिल्ली के गैंग रेप के किशोर बलात्कारी को पीड़ित लड़की के दर्द से कराहने पर मजा आता रहा हो, अगर वह सचमुच में मनोरोगी है तो वह 20 साल की उम्र में छूटने के बाद भी अपराध कर सकता है, जुवेनाइल जस्टिस लॉ, जो उसे जल्दी ही आजाद होने की छूट देता है और जिसके अपराध के रिकार्ड को भी मिटा देने के लिए कहता है, उसमे निश्चित ही संशोधन किए जाने की जरूरत है, अब समय आ गया है कि नया बाल कानून बनाया जाए, जिसमें सिर्फ उम्र ही नहीं, बल्कि अपराध की गंभीरता को भी ध्यान में रखा जाए। समाज और सरकार खूंखार अपराधियों के आजाद घूमने का जोखिम नही उठा सकते, चाहे उनकी कोई भी उम्र हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बघेल, डी.एस. अपराध शास्त्र, विवेक प्रकाशन, 2005 संस्करण, दिल्ली।
2. गुप्ता व शर्मा, एम.एल. व डी.डी. भारतीय सामाजिक समस्याएँ, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2003, जयपुर।
3. राजोरा, डॉ0 सुरेश चन्द्र, समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएँ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्रथम संस्करण 2000, जयपुर।
4. आहूजा, राम सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण 1994, जयपुर एवं नई दिल्ली।
5. कुमारी मंजू, बाल अपराध, प्रिन्टवेल, प्रथम संस्करण 1994, जयपुर।
6. www.rachnakar.org/2012/05/blog-post-9217.html
7. www.janjwar.com/society/crime/3682-bal-apradh-choti-umra- bad he - apradhi
8. aaj/tak intoday.in/story/deadly-minors-young-and-dangerous

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भ्रष्टाचार, लोकपाल और सुशासन के बदलते परिदृश्य

डॉ० अर्चना दीक्षित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान
जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी.कॉलेज केनाल रोड, कानपुर

भ्रष्टाचार की जड़ें भारत में इतनी गहरी हैं कि इससे सार्वजनिक जीवन में विघटन पैदा हो गया है। समाज का प्रत्येक वर्ग इससे प्रभावित और आहत है। सामाजिक जीवन का कोई ऐसा अंग नहीं है जो भ्रष्टाचार से आहूत हो। समाज का हर व्यक्ति जाने अनजाने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसमें लिप्त है। नेता, मंत्री, पुलिस, प्रशासन, न्याय व्यवस्था, कारपोरेट जगत, डॉक्टर, वकील, शिक्षक लगभग सभी इसमें इसमें लिप्त हैं। हमारे राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ भ्रष्टाचार व्याप्त नहीं है। दुनियां भर में भारत की छवि एक ऐसे भ्रष्ट देश के रूप में उभर रही है जिसमें भ्रष्टाचार से लड़ने की दृढ़ इच्छाशक्ति का अभाव है। यही वजह है कि केन्द्र से लेकर राज्यों तक में भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पाने के लिये सी.बी.आई., केन्द्रीय विजिलेन्स कमिश्नर और लोकायुक्त जैसी संस्थाएँ मौजूद हैं पर भ्रष्टाचार से हमें कोई राहत नहीं मिली। अन्ना हजारे कहते हैं कि जब तक एक सशक्त लोकपाल की स्थापना नहीं होगी भ्रष्टाचार पर नियंत्रण सम्भव नहीं। और जब तक भ्रष्टाचार पर नियंत्रण नहीं होगा सुशासन तो एक सपना बन रह जायेगा।

प्राचीन काल से ही भ्रष्टाचार सार्वजनिक जीवन का अंग रहा है। अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य ने भ्रष्टाचार के चालीस प्रकार की स्थितियों का वर्णन किया है। कौटिल्य के अनुसार ''जैसे जीभ में रखे हुए मधु अथवा विष का स्वाद लिये बिना नहीं रहा जा सकता उसी प्रकार अर्थाधिकार कार्यों पर नियुक्त पुरुष, अर्थ का थोड़ा भी स्वाद न लें, यह असंभव है।''[1] मध्य युग से लेकर आधुनिक युग तक में भ्रष्टाचार के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। शासकों को पुरस्कार के बदले पद, प्रतिष्ठा, सम्मान व लाभ पाने की भावना सदा से विद्यमान रही है। ब्रिटिश काल तक आते–आते भ्रष्टाचार ने प्रशासन के प्रत्येक स्तर तक अपने पैर पसार लिये थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काले कारनामों की गूँज तो ब्रिटिश संसद तक सुनाई पड़ी थी। कम्पनी से क्राउन को शासन के हस्तान्तरण का भी अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस द्वारा ब्रिटिश शासन के समक्ष कई बार भ्रष्टाचार के खिलाफ शिकायत और प्रशासनिक सुधारों की मांग रखी गयी पर या तो उसे अनसुना कर दिया गया या वहीं तक उसे सुना गया जहाँ तक स्वयं उनके हितों को जाँच न आये। स्वाधीनता के पश्चात् नयी उमंग, नयी आशा, नयी सोच के साथ हमने काम करना शुरू किया पर जल्द ही पता लग गया कि भ्रष्टाचार से हमें मुक्ति फिलहाल मिलने वाली नहीं। आजाद भारत का सबसे पहला घोटाला 1948 का जीप घोटाला था इसमें ब्रिटिश स्थित भारतीय उच्चायुक्त श्री कृष्ण मेनन पर आरोप लगा था कि उन्होंने कमीशन लेकर बाजार से दोगुने भाव पर जीपें खरीदीं और सरकारी धन का दुरुपयोग किया।

न्याय का प्रतीक न्यायपालिका तक भ्रष्टाचार से अछूती नहीं है। पूर्व एडीशनल सोलिसिटर जनरल विवेक तन्खा से जब न्यायिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार के बारे में यह पूछा गया कि क्या वहाँ किसी केस की रिपोर्ट या किसी काम के लिये पैसा मांगा जाता है तो उन्होंने जवाब दिया ''बिल्कुल ऐसा होता है। सुनने में क्या आता है, सबको दिखता है। जिसे नहीं दिखता उसे तो मैं दृष्टिहीन ही बोलूँगा। खासकर निचली अदालतों में ऐसा बहुत ज्यादा होता है। सबके सामने होता है, जजों के सामने होता है, टेबलों पर होता है। यह सब छोटे स्तर पर होता है, लेकिन जिनके साथ होता है वे लोग भी छोटे हैं।''[2] पर लगता है भ्रष्टाचार ने न्यायपालिका के प्रत्येक स्तर पर

पैर पसार लिये हैं। उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एस.पी. भरूचा ने तो यहाँ तक कह दिया कि ''26 फीसदी जजों ने भ्रष्टाचार की तमाम हदें तोड़ दी हैं।''[3] हाल ही में कलकत्ता उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश सोमित्र सेन के खिलाफ वित्तीय अनियमितताओं को लेकर महाभियोग प्रस्ताव पास हो चुका है। 1993 में सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश रामास्वामी के खिलाफ भी भ्रष्टाचार के मामले को लेकर संसद में महाभियोग प्रस्ताव आया था यद्यपि क्षेत्रीय राजनीति के चलते यह पारित नहीं हो सकता था। गाजियाबाद के भविष्य निधि घोटाले ने भी न्यायपालिका की साख को बट्टा लगाया है।

रक्षा विशेषज्ञ ब्रह्मा चेलानी के अनुसार ''भारत में रक्षा क्षेत्र भीषण भ्रष्टाचार के स्वचलित चक्र के साथ सभी घोटालों का जनक बन गया है। भारत के नये राजनीतिक तंत्र और उसके चमचों के लिये यह सोने के अनगिनत अण्डे देने वाली मुर्गी बन गया है, भले ही देश की सुरक्षा खण्ड–खण्ड हो रही हो।''[4] यही नहीं उन्होंने राजनीतिक भ्रष्टाचार को आतंकवाद और चीन से भी बड़ा खतरा मानते हुए कहा कि ''एक बात समझ लीजियेः भारत के लिये सबसे बड़ा खतरा आतंकवाद या चीन नहीं बल्कि संस्थागत रूप से ले चुका भ्रष्टाचार है, जो राष्ट्रीय सुरक्षा को कमजोर करता है और गणतंत्र की जड़ों में मट्ठा डाल रहा है। जो लोग रक्षा सौदों में रिश्वत लेते हैं या दिलाते हैं, वे मुल्क के खिलाफ ही लड़ रहे हैं। वे अफजल गुरू से भी ज्यादा खतरनाक हैं क्योंकि उनकी हरकतों का असर ज्यादा व्यापक और खतरनाक है।''[5]

राजनीति और भ्रष्टाचार में चोली–दामन का साथ है। घूसखोरी, कमीशन खोरी का आलम यह है कि स्वयं भारत के तत्कालीलन प्रधानमंत्री स्व० राजीव गाँधी ने 1985 में कहा था कि ''विकास कार्यों के लिये मैं केन्द्र से एक रूपया भेजता हूँ लेकिन जरूरतमन्द तक 15 पैसे ही पहुँच पाते हैं'' कई बरस बाद उनके पुत्र और काँग्रेस महासचिव राहुल गाँधी ने 2008 में स्वीकार किया कि ''मेरे पिता राजीव गाँधी ने एक बार कहा था कि एक रूपये में से 15 पैसे ही आम आदमी तक पहुँच पाते हैं। मैंने कई जिलों का दौरा किया है। ऐसा नहीं लगता कि पाँच पैसे भी गरीब तक पहुँचते होंगे'' स्थिति और बदतर होती जा रही है। यही कारण है कि ट्राँसपरेन्सी इंटरनेशनल की कार्यकारी निदेशक अनुपमा झा के अनुसार करीब 86 प्रतिशत भारतीय राजनीतिक दलों को सबसे भ्रष्ट संस्था मानते हैं। देश में घोटालों की बाढ़ सी आ गयी है। सत्ता पक्ष तो बिल्कुल ही बेलगाम हो गया है। कोई प्रशासनिक अधिकारी उनके काले कारनामों को उजागर करें तो या तो उसकी हत्या कर दी जाती है या तबादला या तो उसे विपक्ष के हाथों का खिलौना बताते हैं या उसे अपनी मर्यादा में रहने के पाठ पड़ाते हैं।

मध्य प्रदेश के ईमानदार पुलिस अधिकारी नरेन्द्र कुमार की हत्या, उत्तर प्रदेश में तैनात कर्तव्यनिष्ठ आई. ए.एस. दुर्गाशक्ति नागपाल का तबादला और हरियाणा के ईमानदार आई.ए.एस. अधिकारी अशोक खेमका का तबादला इस बात का उदाहरण है कि राजनीति में ईमानदार प्रशासनिक अधिकारी की कोई कद्र नहीं है। अशोक खेमका का तो 1991 से लेकर आजतक लगभग 22 साल की नौकरी में रिकॉर्ड 44 बार तबादला हुआ। यहीं नहीं सत्ता पक्ष आज भी उन पर तरह–तरह के आरोप लगाकर उनका मानसिक उत्पीड़न कर रहा है। यहीं नहीं उन पर विपक्ष के साथ मिलकर सरकार के खिलाफ साजिश करने का आरोप लगा। इस पर व्यथित होकर श्री अशोक खेमका ने कहा ''सरकार के खिलाफ कहाँ क्या बोला? मैंने सरकार के खिलाफ एक शब्द भी नहीं बोला। जिन लोगों ने गलत किया उनके खिलाफ बोला हूँ वह भी नियमों और कायदे के दायरे में रहकर। मैं हमेशा व्यवस्था में यकीन रखता हूँ। यदि कोई वह तोड़ता है तो उसके खिलाफ बोला जाना चाहिये।''[6] इसी प्रकार कैग के पूर्व प्रमुख श्री विनोद राय ने जब अपनी रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत की जिसमें विभिन्न मंत्रालयों द्वारा सरकारी धन के खर्च में बरती गयी अनियमितताओं पर प्रकाश डाला गया था तो उन्हें संवैधानिक मर्यादा न भूलने की सलाह दी गयी इस पर उन्होंने सवाल उठाया ''अगर लोक लेखा परीक्षक केवल खर्च का जोड़–घटाव रखने तक सीमित होते तो दुनियां भर में महालेखा परीक्षकों को इतना उच्च स्थान, कार्यपालिका से स्वतंत्रता और संवैधानिक दर्जा

नहीं दिया जाता स्पष्ट है संविधान में हमसे एक एकाउण्टेन्ट से कहीं अधिक की अपेक्षा रखी गयी है।''[7] जो भी सत्ता में रहता है ऐसा ही करता है। कॉंग्रेस हो या भाजपा, सपा हो या बसपा इस मामले में सभी राजनैतिक दल एक जैसे हैं। केन्द्र सरकार हो या राज्य सरकार सभी पुलिस से लेकर नागरिक प्रशासन के कार्यों में न केवल हस्तक्षेप करते हैं बल्कि अपने स्वार्थ के लिये उनकी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। मजे की बात यह है कि एक–दूसरे के खिलाफ कीचड़ उछालने पर तत्पर ये राजनैतिक दल ऐसे मुद्दों पर एक हो जाते हैं जिस पर इनका स्वार्थ छिपा हो। केन्द्रीय सूचना आयोग ने जब मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दलों को आर.टी.आई. कानून के दायरे में लाने का फैसला सुनाया तो क्या सत्ता पक्ष क्या विपक्ष सभी इस फैसले के खिलाफ हो गए। आखिर वे देश की जनता से क्या छिपाना चाहते हैं। वे कोई हिसाब–किताब देना क्यों नहीं चाहते। राजनैतिक विश्लेषक के सुब्रह्मण्यम के अनुसार ''राजनीतिक दल अपने खातों की जॉंच कराने के लिये तैयार नहीं, वे चुनाव खर्च में रोक–टोक नहीं चाहते, आय से अधिक सम्पत्ति के मामलों को राजनीतिक द्वेष का परिणाम बताते हैं, अपराधियों को चुनाव लड़ने के अयोग्य ठहराने के उपायों का विरोध करते हैं, पुलिस तंत्र में सुधार के जरा भी प्रयास नहीं करते। फिर भी हम खुद को सजीव लोकतंत्र बताते हैं। हम वहीं तक लोकतांत्रिक हैं कि हमारे चुनाव अपेक्षाकृत स्वतंत्र और निष्पक्ष होते हैं, लेकिन इसका श्रेय राजनेताओं को न जाकर चुनाव आयोग को जाता है।''[8] सुप्रीम कोर्ट के 10 जुलाई 2013 के दागी सांसदों–विधायकों को अयोग्यता से बचाने वाले जनप्रतिनिधि कानून की धारा 8(4) को असंवैधानिक घोषित करने के फैसले को पलटने पर अमादा सरकार के अध्यादेश लाने वाले रुख ने भी सरकार की साख को बट्टा लगाया। दरअसल इस धारा के अनुसार निचली अदालत में दोषी ठहराये गए सदस्य अगर 90 दिन के भीतर ऊपरी अदालत में अपील कर देते हैं तो उनकी सदस्यता बनी रहेगी जबकि सुप्रीम कोर्ट जो उनकी सदस्यता खत्म करने का पक्षधर है ने अपने फैसले में कहा था कि अगर सांसद या विध ाायकों को 2 वर्ष से अधिक की सजा मिलती है तो उनकी सदस्यता रद्द कर दी जायेगी। इस फैसले से हड़कम्प मचना स्वभाविक था। क्योंकि शीघ्र ही चारा घोटाला मामले में सरकार के सहयोगी लालू प्रसाद यादव और बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री जगन्नाथ मिश्रा के खिलाफ कोर्ट का फैसला आना था। तभी तो सरकार हड़बड़ी में अध्यादेश लायी थी पर जब चारों ओर सरकार के इस फैसले की छीछालेदर हुयी तो आखिरकार राहुल गॉंधी के बहाने ही सही सरकार को यह अध्यादेश वापस लेना पड़ा। और उसके बाद जब सी.बी.आई. की विशेष अदालत ने लालू प्रसाद यादव को 5 वर्ष की, जगन्नाथ मिश्रा और जद(यू) सांसद जगदीश शर्मा को 4 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई तो यह तय हो गया कि उनकी संसद की सदस्यता जानी है। इस प्रकार ''लालू प्रसाद यादव और जगदीश शर्मा सदस्यता गवांने वाले लोकसभा के पहले सदस्य बन गए हैं इसके पहले रशीद मसूद राज्यसभा की सदस्यता गंवा चुके हैं।''[9] कांग्रेस सांसद रशीद मसूद को एक अन्य मामले में सजा सुनाई गयी थी। बेशक इस फैसले में लगभग 17 वर्ष लग गए पर इसने आम जनता के मन में अपनी न्यायिक व्यवस्था के प्रति विश्वास को मजबूत किया। पर राजनीति, प्रशासन और लोक सेवकों के प्रति लोगों का विश्वास दिनों–दिन कम हो रहा है आखिर इन सब की वजह क्या है। पूर्व सतर्कता आयुक्त श्री एन बिट्टल ने ठीक ही कहा है "Politics is at the root of the vicious cycle of corruption leads to bureaucratic corruption, which in turn is nurtured by corruption in business. Money power in politics inevitably paves the way for criminalization of politics. Even NGOs functioning in such an atmosphere tend to become corrupt. The cycle involves five players- Neta (politician); babu (officers); lala (businessman); jhola (NGO swindler/fixer); and dada (goon)"[10]

जिस राष्ट्र के सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार व्याप्त हो जाता है उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है, प्रगति धीमी पड़ जाती है और लोकतांत्रिक संस्थाएँ मृतप्राय हो जाती हैं। विश्व बैंक ने भी अपनी रिपोर्ट में भ्रष्टाचार को विकास विरोधी माना। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के प्रति आम जनता के मन में निराशा और उदासीनता का

सबसे बड़ा कारण भ्रष्टाचार है। यही वजह है भ्रष्टाचार के अंधकार के बीच जब जनलोकपाल को लेकर समाजसेवी अन्ना हजारे ने जन आन्दोलन किया तो उन्हें पूरे देश का समर्थन मिला। खासतौर से देश के मध्यम वर्ग का जो घोटालों से आजिज आ चुका था उसे तो जैसे अन्ना के रूप में एक मसीहा मिल गया।

आन्दोलन के बाद लोकपाल के मसौदे को लेकर टीम अन्ना और सरकार के मध्य एक 'सादा मसौदा' समिति बनी। पर शुरू से ही कुछ बिन्दुओं को लेकर उनके बीच मतभेद था। जैसे टीम अन्ना चाहती थी कि प्रधानमंत्री पद संभालते ही पहले दिन से लोकपाल के दायरे में आयें जबकि सत्ता पक्ष प्रधानमंत्री को पद में रहते इसके दायरे में रखने का विरोध कर रहा था, सरकार के विपरीत टीम अन्ना यह भी चाहती थी कि प्रधानमंत्री के भ्रष्टाचार की जाँच भी लोकपाल करें न कि सी.बी.आई. जैसा कि सरकार चाहती थीं, टीम अन्ना चाहती थी कि न्यायपालिका के भी भ्रष्टचार की जाँच जनलोकपाल द्वारा हो जबकि सत्ता पक्ष इसे न्यायपालिका के कार्य में हस्तक्षेप मानता था, सरकार केवल हायर रैंक के नौकरशाहों को ही लोकपाल के दायरे में लाना चाहती थी जबकि टीम अन्ना सभी प्रकार के प्रशासनिक अधिकारियों को इसके दायरे में लाना चाहता थी, सरकार के प्रस्ताव में लोकपाल को भ्रष्टाचार के मामले में केवल कार्यवाही की सलाह देने का अधिकार था। जबकि टीम अन्ना चाहती थी कि लोकपाल को भ्रष्टाचारी के खिलाफ कानूनी कार्यवाही करने का भी अधिकार हो, टीम अन्ना केन्द्र के साथ राज्यों में भी लोकायुक्त नामक संस्था की नियुक्ति करना चाहती थी जबकि सत्ता पक्ष इसे राज्य सरकार की इच्छा पर छोड़ना चाहती थी। सत्ता पक्ष चाहता था कि लोकपाल के पास अपनी स्वतंत्र जाँच ऐजेन्सी हो जबकि टीम अन्ना सी.बी.आई. को इसके आधीन करना चाहती थी, सत्ता पक्ष चाहता था कि स्वयं लोकपाल को दोषी ठहराने या हटाने का अधिकार केवल राष्ट्रपति के पास हो यद्यपि इस पर न्यायपालिका की सिफारिश जरूरी थी पर टीम अन्ना चाहती थी कि देश का कोई भी नागरिक लोकपाल को हटाने के लिये अदालत की शरण ले सकता है। जाहिर है इतने मतभेदों के चलते सहमति तो होनी नहीं थी और हुआ भी यही। आखिरकार समझौता टूट गया और 'साझा मसौदा' सीमित भंग हो गयी। इस पर जहाँ एक ओर सरकार की आलोचना हुयी वहीं दूसरी और जनलोकपाल के रुख पर कायम अन्ना हजारे को भी कुछ विद्वानों, विशेषज्ञों ने सलाह दी कि वे इस मुद्दे पर अड़ियल रुख न अपनाये। पूर्व पुलिस महानिदेशक प्रकाश सिंह ने कहा ''कानून बनाने का विशेषाधिकार केवल संसद को ही है। कल को कोई समुदाय विशेष खड़ा हो सकता है कि उनसे सम्बन्धित फलां बिल पास किया जाय अन्यथा वह आन्दोलन करेंगे। यह स्थिति लोकतंत्र के लिये ठीक नहीं होगी। अन्ना हजारे को यह समझना होगा कि जिस लोकशक्ति की वह बात करते हैं उसी पर अनजाने में हमला भी कर रहे हैं।''[11] यह स्थित आन्दोलन के लिये ठीक नहीं थी। इस स्थिति का फायदा उठाकर सरकार ने एक ऐसा लोकपाल बिल लोकसभा में प्रस्तुत किया जो नितान्त अप्रभावी था। लोकपाल विधेयक पहले भी संसद में पेश हो चुके हैं। 1968, 1971, 1977, 1985, 1989, 1996, 1998, 2001, 2005 और 2008 में पर हर बार किसी न किसी वजह से यह पारित नहीं हो सका। आज भी लगभग 17 राज्यों में लोकायुक्त नामक संस्था कार्य कर रही है पर क्या भ्रष्टाचार खत्म हो गया। स्वयं टीम अन्ना के सदस्य अरविन्द केजरीवाल का मानना है। ''भ्रष्टाचार का पूरी तरह खात्मा तो कभी भी संभव नहीं लेकिन जो हालात हमारे यहाँ हैं, उसे नियंत्रित करना तो संभव है और लोकपाल से इतनी ही उम्मीद करनी चाहिये।''[12]

इसी बीच राजनैतिक विकल्प चुनने के मुद्दे को लेकर टीम अन्ना में दरार आ गयी है जहाँ एक और अन्ना हजारे, किरण बेदी, संतोष हेगड़े जैसे टीम के सदस्य चाहते थे कि आन्दोलन अराजनैतिक ही रहे वहीं अरविन्द केजरीवाल, प्रशान्त भूषण कुमार विश्वास जैसे सहयोगी राजनीति में प्रवेश करके भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई लड़ना चाहते थे। आखिरकार नवम्बर 2012 को आम आदमी पार्टी का गठन हो गया। यद्यपि राजनैतिक पार्टी के गठन के उनके फैसले पर कुछ लोगों के संशय को देखते हुए केजरीवाल ने सफाई दी। ''यह आन्दोलन ही

रहेगा पार्टी नहीं बनेगा। पहले आन्दोलन के पास तीन चार हथियार थे। अनशन एक हथियार था, धरना एक हथियार था, याचिका दायर करना एक हथियार था। अब उसके अन्दर राजनीति एक और हथियार जुड़ गया है। मुख्य मकसद आन्दोलन ही है, राजनीति एक अतिरिक्त हथियार के तौर पर जुड़ जायेगी।''[13] एक अन्य पत्रिका के साथ साक्षात्कार में अरविन्द केजरीवाल ने यह भी कहा था कि ''इस देश की जनता बार–बार इस बात को कहती थी कि ईमानदार लोगों को राजनीति में आना चाहिए तो हमने विकल्प तो दे दिया है। अब जनता तय करें कि उसे यह विकल्प स्वीकार है या नहीं।''[14] और दिल्ली विधानसभा के वर्तमान नतीजों को देखकर लगता है कि जनता को उनका विकल्प पसंद आया है।

बहुत से लोगों की तरह मेरा भी यह मानना है कि केवल लोकपाल या लोकायुक्त जैसी संस्था बना देने मात्र से भ्रष्टाचार खत्म होने वाला नहीं। इसे खत्म करने के लिये जरूरी है कि ये संस्थाएँ ईमानदारी और स्वतंत्रता से अपना कार्य करें। यूँ तो सी.बी.आई. और केन्द्रीय सतर्कता आयोग जैसी संस्थाएँ पहले से ही देश में मौजूद हैं पर राजनैतिक दबाव की वजह से वे स्वतंत्रतपूर्वक कार्य नहीं कर पा रही है। सुप्रीम कोर्ट ने तो सी. बी.आई. को सरकार का तोता तक कह दिया था। भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचारी को लेकर हमें अपना नजरिया बदलना होगा। भ्रष्टाचारी का जब तक सामाजिक बहिष्कार न किया जाये, उनके खिलाफ आवाज न उठाई जाये, और उन्हें, चाहे वे कितने ही रसूख वाले हों सजा न मिले तब तक भ्रष्टाचार दूर होने वाला नहीं। और भ्रष्टाचार दूर होगा तभी सुशासन कायम होगा।

सुशासन से तात्पर्य है जनकल्याणकारी नीतियों का प्रभावशाली प्रबन्धन, उनका ईमानदारी से क्रियान्वयन और देश की समस्त जनता का समग्र विकास तभी हम जनकल्याणकारी राज्य की अवधारणा को साकार रूप दे पायेंगे। विश्वबैंक ने भी माना है कि सुशासन से तात्पर्य है जनकल्याणकारी नीतियों एवं राष्ट्रीय कार्यक्रमों का प्रभावशाली प्रबन्धन यह जरूरी नहीं कि उसके लिये शासन का स्वरूप लोकतांत्रिक ही हो। शासन के अन्य स्वरूपों में भी सुशासन संभव है। प्राचीन भारत में मनु, शुक्र एवं कौटिल्य जैसे आचार्यों ने भी सुशासन की संकल्पना की थी। इन आचार्यों ने राजा के हित को जनता के हित से जोड़कर देखा। यहाँ तक कि वेदों में भी इसका जिक्र है। ''यजुर्वेद में कहा गया है कि प्रजा में ही राजा प्रतिष्ठित है और राजा की कीर्ति प्रजा के हित पर निर्भर है।''[15] अथर्ववेद में ''राजा को विश्वरूप कहा गया है। राजा के नीचे जितने भी राजकीय अधिकारी हैं, वे राजा के ही स्वरूप या विश्वरूप है। इसका अभिप्राय यह भी है कि जैसा राजा होगा, वैसे ही उसके राजकीय अधिकारी होंगे और उसी प्रकार की प्रजा होगी।''[16] मनु ने 'मनुस्मृति' में कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में महाभारत के शान्तीपर्व में समय–समय पर अच्छे शासन के उपाय बताये गए। अकबर और जहाँगीर जैसे मुगल शासकों ने भी अच्छी शासन व्यवस्था के लिये कई व्यवहारिक उपाय अपनाये। अकबर की 'भू–राजस्व नीति' एवं जहाँगीर की 'न्याय–व्यवस्था' इसका उदाहरण है। ब्रिटिश काल में भी प्रशासनिक स्तर पर कई सुधार किये गए किन्तु वहीं तक जहाँ तक यह ब्रिटिश शासन के लिये हितकर था, आम जनता के हित का इससे कोई लेना–देना नहीं था अतः इसे सुशासन कहना ठीक नहीं होगा।

स्वाधीनता के पश्चात् जनकल्याणकारी राज्य की अवधारणा को अपनाने की वजह से हमने संविधान के अन्तर्गत नीति–निदेशक तत्वों में जनहितकारी नीतियों को जगह दी पर सम्भवतः इसको ईमानदारी से लागू नहीं कर सकें तभी चारों ओर भ्रष्टाचार का साम्राज्य दिखाई देता है। राजनीति और नौकरशाह के गठजोड़ ने इसका भरपूर फायदा उठाया। यहाँ संविधान के अनुच्छेद 310 और 311 का जिक्र करना आवश्यक है। डी.डी. बसु कहते हैं कि ''हमने ब्रिटिश प्रणाली से यह सूत्र वाक्य ग्रहण किया है कि सभी सेवाएं सम्राट के प्रसादपर्यन्त होती हैं। हमारे संविधान में यह प्राथमिक रूप से घोषित किया गया है कि कोई भी व्यक्ति जो संघ या राज्य (सिविल या सैन्य) वह, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त पद धारण करेगा। (अनुच्छेद 310(1))

इसका यह अर्थ हुआ कि कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी भी समय किसी भी आधार पर पदच्युत किया जाता सकता है और इस प्रकार सदोष पदच्युति के आधार पर कोई वादहेतुक उत्पन्न नहीं होगा।''[17] शायद यही वजह है कि नौकरशाह सत्ता पक्ष के दबाव में काम करते हैं और निष्ठा, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, काम के प्रति प्रतिबद्धता की जो दरकार आम जनता को उनसे होती है वह जनता के प्रति न होकर सत्ता पक्ष के प्रति होती है। अनुच्छेद 311 को तो भ्रष्टाचार का उद्‌गम स्रोत माना जाता है। अनुच्छेद 311(1) के अनुसार ''किसी व्यक्ति को जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का या राज्य की सिविल सेवा का सदस्य है अथवा संघ या राज्य के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है, उसकी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जायेगा या पद से नहीं हटाया जायेगा।''[18] अनुच्छेद 311(2) के अनुसार ''यथापूर्वोक्त किसी व्यक्ति को, ऐसी जाँच के पश्चात् ही, जिसमें उसे अपने विरुद्ध आरोपों की सूचना दे दी गई है और उन आरोपों के सम्बन्ध में सुनवाई या युक्तियुक्त अवसर दे दिया गया है, पदच्युत किया जायेगा या पद से हटाया जायेगा या पंक्ति में अवनत किया जोयगा, अन्यथा नहीं।''[19] यद्यपि इस अनुच्छेद का पक्ष लेते हुए सरदार पटेल ने कहा था कि इसका उद्देश्य है शीर्ष नौकरशाही निर्भीक एवं निडर होकर अपना काम कर सकें पर इसने चालाक और बेईमान अधिकारियों को ऐसा सुरक्षा कवच दे दिया कि इसका फायदा उठाकर वे भ्रष्टाचार करके भी साफ बच निकलते। अतः इस पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। यही वजह है कि प्रशासनिक सुधार आयोग के लिये जितनी भी समितियाँ बनी उन्होंने अपनी सिफारिश में अनुच्छेद 311 यहाँ तक कि 310 को हटाने की थी सिफारिशें कीं पर यह हुआ नहीं यहाँ तक कि भ्रष्टाचार दूर करने के अन्य उपायों पर भी कोई अमल नहीं हुआ। क्यों इसका उत्तर पूर्व सिविल सरवेन्ट अजय सिंह यादव ने अपनी पुस्तक Why I am not a civil servant में दिया है कि– "This system of make believe is maintained because it suits politicians. Politicians like a system which allows them be to the de facto rules while keeping up the pretence of government by officials because it gives them power without responsibility. Power without responsibility has always been, as churchill said, the prerogative of the harlot down the ages. It is attractive but ultimately fatal."[20] यहाँ अशोक खेमका जैसे ईमानदार अफसर के लिये कोई जगह नहीं है। वे कहते हैं ''हम सभी (सिविल सेवक) सरकार का हिस्सा है। प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री हमारे मालिक नहीं बल्कि जनसेवक हैं, जैसे कि बाकी हम सब लोग हैं। लेकिन हमने इन लोगों को राज–रानी की तरह समझना शुरू कर दिया, जिनके हर आदेश का पालन बिना कोई चूँ किये करते रहा जाये।''[21] अन्ना हजारे भी कहते हैं कि जनप्रतिनिधियों को ''जनता ने चुना है अपना सेवक मानकर। मालिक तो फिर भी जनता ही है। सेवक कैसे काम करता है, यह देखना उसका फर्ज है। जनता ने एक बार चुन लिया इतना ही काफी नहीं है। यह भी देखना होगा कि सेवक ठीक से काम कर रहा है या फिर देश को बेचने की तैयारी तो नहीं कर रहा।''[22] इन सबके लिये प्रशासन में अपेक्षित बदलाव की अत्यन्त आवश्यकता है।

देश के रग–रग में बसे भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिये समाज को अपने नजरिये में बदलाव लाना होगा। एक सशक्त लोकपाल की स्थापना के साथ–साथ प्रशासन के कार्यों में पारदर्शिता, जवाबदेहिता लाने के लिये और देश ही राजनीति को भ्रष्टाचार मुक्त करने के लिये उक्त सुझावों पर अमल जरूरी है। देश की समस्याओं के प्रति निजी स्वार्थों को छोड़कर व्यापक और समावेशी दृष्टिकोण अपनाना होगा। वास्तव में समाज की उन्नति तभी हो सकती है जब राजनैतिक एवं प्रशासकीय वर्ग एकजुट होकर देश व समाज हित में काम करें। निश्चित रूप से इन सब उपायों को अपनाने से हम सुशासन की कल्पना को साकार रूप में ले सकेंगे।

संदर्भ सूची

1. वाचस्पति गैरोला (हिन्दी व्याख्याकार), ''कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम्'', चौखम्भा विद्याभवन (वाराणसी) (2000) पृ० 117

2. गवर्नेंस नाऊ, 16–30 सितम्बर 2013, पृ० 21
3. द संडे इण्डियन, 22–28 जनवरी 2007, पृ० 37
4. इण्डिया टुडे, 6 मार्च 2013, पृ० 9
5. वही
6. आउटलुक, सितम्बर, 2013, पृ० 32
7. दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण), 12 फरवरी, 2013
8. दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण), 27 जुलाई, 2008
9. दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण), 4 अक्टूबर 2013
10. N. Vittal (Formers Central Vigilance Commissioners), "Ending Corruption? How to clean up India" Penguin Vibing, India (2012), Page-77.
11. दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण), 19 अगस्त, 2011
12. आउटलुक, मई 2011, पृ० 27
13. तहलका, 15 अक्टूबर 2012, पृ० 53
14. शुक्रवार, 20 जून, 2013 पृ० 25
15. डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, ''अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन'', विश्व भारती अनुसंधान परिषद ज्ञानपुर (वाराणसी), पृ० 453
16. वही, पृ० 456
17. दुर्गा दास बसु, ''भारत का संविधान एक परिचय '' छठा संस्करण प्रेंटिस हाल ऑफ इण्डिया प्रा०लि० (नई दिल्ली) (1996), पृ० 363
18. भारत का संविधान, भारत सरकार विधि और न्याय मंत्रालय (2003), पृ० 125
19. वही, पृ० 126
20. Ajay Singh Yadav, "Why I am not a civil servant, Bluejay Books (2001), Page 41.
21. इण्डिया टुडे, 31 अक्टूबर 2012, पृ० 17
22. दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण), 20 जून, 2011

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

दहेज समस्या–एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

(रीवा नगर के चोरहटा वार्ड क्र. 4 के अध्ययन पर आधारित)

डॉ0 मधूलिका श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापक–समाजशास्त्र
शा.ठा.रण.सिंह.उत्कृष्ट महाविद्यालय, ए ग्रेड नेक द्वारा मान्यता प्राप्त शोध केन्द्र ,रीवा (म.प्र.)

दहेज प्रथा वर्तमान समय में एक प्रमुख समस्या मानी जाती है। यह आज कल काफी गम्भीर रूप धारण करती जा रही हैं। हिन्दुओं में जीवन साथी के चयन का क्षेत्र अत्यन्त सीमित रहा है। इसके कारण वर मूल्य की प्रथा प्रारम्भ हुयी। जो आज दहेज के नाम से जानी जाती है। आज तो यह समस्या इतनी गंभीर हो गई है कि लड़का क्या करता है इसके आधार पर विवाह से पहले उसकी कीमत निर्धारित की जाती है। लड़की वालों से सौदा तय हो जाने के बाद ही विवाह संभव हो पाता है। दहेज न लाने के कारण अनेक नव–विवाहित स्त्रियों को जला देने के समाचार आए दिन समाचार–पत्रों में आते रहते हैं। इसके लिए उन्हें पति सास–ससुर तथा वर पक्ष के बाकी लोगों से अनेक ताने सुनने पड़ते हैं। उनका जीवन नरक बन कर रह जाता है। विवाह में दहेज का प्रचलन सदियों पूर्व से चला आ रहा है। परन्तु आज यह एक विकरात रूप धारण कर चुकी है। प्रारम्भ में दहेज देने की प्रथा पुत्री को मायके से विदा करते समय स्वैच्छिक भेंट देने की दृष्टि से हुई। इसमें माता–पिता की पुत्री के प्रति सदभावना व प्रेम प्रकट होती थी। पुत्र मॉ–बाप की सम्पत्ति में उत्तराधिकारी बन जाता था इसलिए पुत्रियों को अपने हाथों से कुछ भेंट स्वरूप देने में उन्हे हार्दिक प्रसन्नता होती थी। परन्तु आज लड़के के मॉ–बाप दहेज पाने की लालसा रखने लगे हैं। वर्षो पुरानी प्रथा रूढ़ि बनने पर अनिवार्य रीति बन गई।

दहेज प्रथा की जड़ें इतनी गहराई में पहुँच गयी है कि उन्हें उखाड़ फेंकना असंभव तो नहीं वरन् कठिन अवश्य है। दहेज एक कोढ़ की भांति हमारे समाज को निरन्तर ग्रसित कर रहा है। जिससे कई सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। दहेज न दे सकने की स्थिति में आजकल कई नई–नई दुर्घटनाएँ सूचना में आती हैं, या तो नारी को जान से मार दिया जाता है या उसे जीवन भर तड़पने के लिए छोड़ दिया जाता है। कई बार किसी कारणवश या समाज के डर से दहेज नहीं ठहराया जाता लेकिन लड़की के घर में आ जाने पर उसे ताने दे–देकर प्रताड़ित किया जाता है।

दहेज का अर्थ उस राशि, वस्तु सम्पत्ति से लगाया जाता है जिसे कन्या पक्ष विवाह के अवसर पर वर पक्ष को प्रदान करता है।

नवीन बेन्स्टर शब्द कोष के अनुसार :–

''दहेज वह धन, वस्तु एवं सम्पत्ति है जो एक स्त्री विवाह के समय पति के लिए लाती है''

चार्ल्स विनिक तथा मैक्स ने दहेज की परिभाषा'' उन बहुमूल्य वस्तुओं या सम्पत्ति के रूप में दी है जो वर पक्ष विवाह के साथ कन्या पक्ष से प्राप्त करता है''

अगर माता–पिता धार्मिक परम्पराओं से प्रेरित होकर स्वैच्छा से अपनी कन्या व पक्ष को कुछ धन या मूल्यवान वस्तुए प्रदान करते हैं तो उसे दहेज नही कहा जा सकता।

दहेज निरोधक अधिनियम 1961 में दहेज को इन शब्दों में परिभाषित किया गया है।

दहेज का अर्थ कोई ऐसी सम्पत्ति या मूल्यवान निधि से है जो विवाह करने वाले दोनों पक्षों में से किसी

एक पक्ष के माता–पिता या किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा विवाह के अवसर पर या विवाह से पहले या विवाह के बाद विवाह की शर्त के रूप में दी हो या देना मंजूर किया हो।

कानूनी रूप से दहेज का अर्थ किसी भी ऐसी सम्पत्ति अथवा मूल्यवान वस्तुओं से है जिसे विवाह की शर्त के रूप में विवाह से पहले विवाह के समय या बाद में एक पक्ष को दूसरे पक्ष के लिए देना आवश्यक होता है। दहेज को वर मूल्य भी कहा जाता है। यह एक प्रकार से वर की कुलीनता, सम्पन्नता, शिक्षा, व्यवसाय आदि के आधार पर निर्धारित होता है।

दहेज के विविध स्वरूप :–

दहेज प्रथा जिस विकृत रूप में आज है पहले कभी नही रही है। वैदिक काल में कन्या को विवाह के अवसर पर आभूषणों एवं वस्त्रों से सुसज्जित कर कुछ धनराशि सहित पति–गृह को विदा करने की प्रथा थी। यही प्रथा स्मृति काल में भी थी। रामायण और महाभारत में भी दहेज प्रथा का उल्लेख मिलता है। प्राचीन भारत में दहेज प्रथा के लिए किसी पक्ष को बाध्य नही होना पड़ता था।

व्यक्ति स्वेच्छा एवं सामर्थ्य के अनुसार ही धन, बहुमूल्य वस्तुएँ एवं सम्पत्ति वर पक्ष को प्रदान करता था।

अतः प्राचीन काल में दहेज प्रथा अपने परिष्कृत रूप में थी इस प्रथा का स्वरूप मुस्लिम शासन काल में काफी विकृत हो गया। इस काल में बाल विवाह, कुलीन विवाह जैसी रूढ़िवादी प्रथाओं को प्रोत्साहन मिला। अन्तर्विवाह के नियमों के कारण विवाह का क्षेत्र जो पहले ही से सीमित था कुलीन विवाह की प्रथा ने इस क्षेत्र को और भी संकुचित कर दिया इसके फलस्वरूप अपनी ही जाति में उच्च कुल के वरों की माँग अत्याधिक बढ़ गई इसके अलावा कुछ धार्मिक विश्वासों, परिस्थितियों तथा कन्याओं का सम्पत्ति में अधिकार न होने के प्रभाव से दहेज प्रथा का प्रचलन हुआ।

समाज में दहेज प्रथा के प्रचलन के कारण :–

1. अनुलोम विवाहों का होना
2. अन्तर्विवाहों का चलन
3. संयुक्त परिवारों में स्त्रियों का शोषण
4. विवाह की अनिवार्यता
5. धन के महत्व में वृद्धि
6. महंगी शिक्षा प्रणाली

अध्ययन का उद्देश्य :–

1. दहेज प्रथा के बारे में लोगों का दृष्टिकोण जानना।
2. दहेज लेन–देन के विभिन्न कारणों का पता लगाना।
3. दहेज प्रथा के दुष्परिणामों को रोकने के उपाय सुझाना।
4. महिलाओं को सशक्त व सक्षम बनाना ताकि वे आत्मनिर्भर हो सके।

अध्ययन क्षेत्र :– अध्ययन क्षेत्र के रूप में रीवा नगर के चोरहटा वार्ड क्र. 4 का चुनाव किया गया है। 2011 की जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार इस वार्ड क्र. की कुल जनसंख्या 2841 है। जिसमें पुरुषों की संख्या 1543 एवं महिलाओं की संख्या 1298 है। जिसमें की अनुसूचित जनजातियों की कुल संख्या 262 हैं (पुरुष 138 एवं महिला 124) शोध अध्ययन हेतु 50 उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन विधि के द्वारा साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सूचनाएँ संकलित कर तथ्यों का विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाले गए हैं।

उपकल्पना :– शोध कार्य को सम्पादित करने के लिए अनुसंधानकर्ता को उपकल्पना का निर्माण करना पड़ता है उपकल्पना एक कामचलाऊ अस्थायी निष्कर्ष है जिसका सत्यापन होना बाकी है। शोधकर्ता द्वारा कुछ प्रमुख उपकल्पना का निरूपण किया गया है।

1. व्यक्ति की सामाजिक हैसियत व प्रतिष्ठा के आधार पर दहेज का निर्धारण होता है।
2. लड़के का अच्छी नौकरी में होना उसके दहेज निर्धारण का एक प्रमुख कारण है।
3. अनुसूचित जाति जनजातियों व निचले तबकों की जातियों में भी दहेज प्रथा का प्रचलन पाया जाता है।

दहेज प्रताड़ना के आँकड़ें विगत तीन वर्षों के (चोरहटा थाना वार्ड क्र. 4)

क्र.	वर्ष	दहेज हत्या 304B-IPC		दहेज प्रताड़ना 498A-IPC		छेड़छाड 354 IPC		बलात्कार 376 IPC		आत्महत्या दुष्प्रेरण 306 IPC	
		अपराध संख्या	गिरफ्तार आरोपी	अपराध संख्या	गिरफ्तार आरोपी	अपराध संख्या	गिरफ्तार आरोपी	अपराध संख्या	गिरफ्तार आरोपी	अपराध संख्या	गिरफ्तार आरोपी
1.	2011	02	03	05	19	04	05	07	13	01	01
2.	2012	01	02	05	11	06	08	07	09	–	–
3.	2013 अप्रैल तक	–	–	–	–	05	06	03	02	–	–

उपर्युक्त आँकड़ें विगत तीन वर्षों के हैं जिनमें महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों की जानकारी थाना चोरहटा वार्ड क्र. 04 से संकालित की गई है।

सुधारात्मक उपाय :–

1. दहेज विरोधी अशासकीय संगठनों का सहयोग अपेक्षित हो।
2. दहेज विरोधी कानूनों की जानकारी का व्यापक प्रचार–प्रसार हो।
3. कानूनी सहायता प्राप्त करने में महिलाओं की असमर्थता आड़े न आए।
4. पुलिस द्वारा उचित कार्यवाही त्वरित की जाय।
5. दहेज विरोधी कानून 1961 का क्रियान्वयन प्रभावी ढंग से किया जाय।
6. अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाय।
7. पुलिस थानों व महिला थानों में ऐसी मामलों पर तत्काल कार्यवाही की जाय।

तथ्यों का विश्लेषण एवं निष्कर्ष :–

कोई भी शोध कार्य तभी सार्थक व प्रभावी होता है जब शोधार्थी द्वारा शोध अध्ययन में उपयोग किये गये समस्त शोध उपकरणों द्वारा प्राप्त जानकारियों को व्यवस्थित क्रम में सारणीबद्ध किया जाता है शोध के दौरान शोधार्थी द्वारा दहेज समस्या के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया गया है।

तालिका क्र. 1

अध्ययन समूह का पारिवारिक स्वरूप

क्र.	पारिवारिक स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
1.	संयुक्त परिवार	60	60%
2.	एकल परिवार	40	40%
	योग	100	100%

पारिवारिक स्वरूप कई दृष्टियों से अध्ययन विषय के मूल उद्देश्य को स्पर्श करता है।

यद्यपि एकल परिवारों का प्रचलन एवं वैवाहिक क्षेत्र में स्वतन्त्र निर्णयों की आवश्यकता स्वीकार की जाती है। किन्तु आज भी अधिकांश निर्णय संयुक्त पारिवारिक स्तर पर हो लिये जाते हैं।

अविवाहित युवक–युवतियों अन्य दृष्टियों से विवाह के क्षेत्र में स्वतन्त्र निर्णय लेने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं।

तालिका क्र. 2

दहेज के लेन–देन के बारे में उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण

क्र.	कारण	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	उच्च आर्थिक स्थिति	50	50%
2.	नौकरी	40	40%
3.	उच्च शिक्षा	05	05%
4.	निजी व्यवसाय	05	05%
	योग	100	100%

दहेज लेन–देन के बारे में जब उत्तरदाताओं से पूछा गया कि इसके पीछे कौन से कारण उत्तरदायी हो सकते हैं तो 50% उत्तरदाताओं का कहना था कि दहेज के लेन–देन के पीछे उच्च आर्थिक स्थिति एक प्रमुख कारण है उत्तरदाताओं का यह भी कहना था कि तिलकोत्सव में या विवाह पूर्व चेक द्वारा नगद कैस के रूप में ही लेन–देन हो जाता है।

जबकि 40% उत्तरदाताओं का कहना है कि दहेज इसलिए लिया या दिया जाता है कि लड़का नौकरी में हैं। यदि यही नौकरी सरकारी है तो उसकी डिमांड और बढ़ जाती है। 5% उत्तरदाताओं का कहना है कि यदि लड़के ने उच्च शिक्षा ग्रहण की है तो दहेज और बढ़ जाता है। 5% उत्तरदाताओं ने बताया कि यदि लड़के का निजी व्यवसाय है तो भी दहेज दिया जाता है।

तालिका क्र. 3

अपेक्षित मात्रा में दहेज न मिलने पर प्रताड़ित करने वाले पक्षों का प्रतिशत

क्र.	स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
1.	सास–ससुर द्वारा प्रताड़ना	50	50%
2.	पति द्वारा प्रताड़ना	40	40%
3.	प्रताड़ना में सम्मिलित अन्य घटक	10	10%
	योग	100	100%

प्रस्तुत तालिका के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि यदि वर पक्ष को कन्या पक्ष के द्वारा अपेक्षित मात्रा में दहेज की प्राप्ति नही होती है तो वर पक्ष के द्वारा कन्या के साथ किस प्रकार का आचरण, व्यवहार व प्रताड़ना दी जाती है।

यह प्रताड़ना कई स्तरों से गुजरती है सास–ससुर द्वारा प्रताड़ना, पति द्वारा प्रताड़ना और परिस्थिति अनुसार ससुराल पक्ष के अन्य सदस्यों द्वारा प्रताड़ना। इन क्षेत्रों के प्रभावों से पूरा समाज परिचित है।

तालिका क्र. 4

दहेज की मांग का बहू पर पड़ने वाला प्रभाव

क्र.	प्रभाव का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
1.	मानसिक तनाव में वृद्धि	50	50%
2.	होने वाली ससुराल के प्रति आक्रोश	25	25%
3.	विवाह प्रस्ताव की अस्वीकृत	15	15%
4.	आत्महत्या	05	5%
5.	मिश्रित प्रभाव	05	5%
	योग	100	100%

बहू की प्रतिक्रिया का विश्लेषण यह बताता है कि वह कई अवस्थाओं से गुजरती है दहेज की मांग का सीधा प्रभाव तनावों में वृद्धि से लगाया जा सकता है। ससुराल पक्ष के प्रति विवाह पूर्व ही एक ऐसी धारणा घर कर जाती हैं जिसकी सम्भवतः भरपाई होना मुश्किल हो जाता है। दहेज के दबाव से मुक्त होने की दिशा में वर–कन्या दोनों कोर्ट मैरिज कर लेते हैं या धार्मिक स्थलों में विवाह सम्पन्न कर लेते हैं। जब मानसिकता तनाव पर पहुँच जाती है तो कन्या द्वारा आत्महत्या का निर्णय भी ले लिया जाता है।

निष्कर्ष :–

दहेज प्रथा का प्रचलन अति प्राचीन है किन्तु वर्तमान में इसका स्वरूप विकृत हो गया है। लोगों का ऐसा भी मानना है कि वे दहेज इसलिए लेते हैं कि उन्होंने अपनी बेटी को दहेज दिया है एवं अपने बच्चे की पढ़ाई में भी खर्च किया हैं। अच्छे व कुलीन वर्ग की चाह में भी दहेज दिया जाता है। दहेज लेने व देने के लिए सबसे ज्यादा दबाव खासकर परिवार की महिला वर्ग द्वारा डाला जाता है। शिक्षित व सम्पन्न परिवारों द्वारा अपने पद व प्रतिष्ठा के लिए दहेज का लेन–देन होता है जो लोग मनमाना दहेज देने में सक्षम है वे तो मुँहमांगी रकम देकर अपनी बेटियों को ससुराल में सुखी सम्पन्न रूप में भेजते हैं किन्तु वे परिवार जिनकी आर्थिक स्थिति व हैसियत ऐसी नही है कि वे मुँहमांगा दहेज दे सके। ऐसी स्थिति में या तो उनकी बेटियाँ कुँवारी रह जाती हैं या ससुराल में दहेज प्रताड़ना ताने व उलाहना सहती हुयी अपने जीवन का अन्त कर लेती है। आज व्यक्ति कन्या के पैदा होने पर घबराता है और उसे गर्भ में ही मार डाला जाता है। यही वजह है कि आज दहेज प्रथा को एक सामाजिक समस्या के रूप में देखा जा रहा है इसी कारण शोधार्थी द्वारा उसे एक सामाजिक समस्या मानकर अध्ययन के लिए चुना गया है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राम आहूजा – भारतीय समाज रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं नई दिल्ली
2. के. भाटी – महिला उत्पीड़न, दहेज प्रताड़ना दहेज हत्या – साहित्य भवन आगरा
3. डॉ. ऊषा गोपाल – दहेज दवानल राष्ट्रीय, शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद – नई दिल्ली
4. समाज वैज्ञानिकी – भारतीय समाज विज्ञान परिषद की मुख्य शोध पत्रिका – 2013 पृ. क्र. 118–119
5. डॉ. धर्मवीर महाजन, डॉ. श्रीमती कमलेश महाजन – भारत में समाज, विवेक प्रकाशन मेरठ
6. नारी शोषण – ''आइने और आयाम'' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
7. डॉ0 एस. अखिलेश – रीवा दर्शन

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

मानवाधिकार के आइने में महिला सुरक्षा : एक विश्लेषण

डॉ0 रण विजय सिंह
प्रवक्ता–राजनीति विज्ञान विभाग
लक्ष्मी देवी राजेन्द्र सिंह यादव महाविद्यालय उसरगाँव, कालपी (जालौन, उ0प्र0) 285202

मानवाधिकार पर बात करते समय माथे पर बल तब और गहरे हो जाते हैं। जब यह जानने में आता है कि पढ़ा–लिखा कहा जाने वाला राज्य केरल भी इसका अपवाद नहीं है। इसी बीच इस पर बातें करतें चलना बेहद जरूरी है कि महिलाओं के मानवाधिकारों की बजाए उनसे कुछ और जांचना–पूछना जरूरी समझा जाता है। यह जरूरी चीज महिलाओं से ज्यादा बाजार के हित में है। यह उनका अधिकार दिलाने की बजाय बाजार को अधिकार सम्पन्न बनाती है जो मांग और पूर्ति के नियमों पर चलता है। एक उदारहण से मजाक लगने वाली इस गम्भीर बात को समझा जा सकता है। अभिनेत्री खुशबू का ब्यान आता है कि विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध कोई बुरी बात नहीं। ठीक इसी समय कुछ टेनिस महिला खिलाड़ियों की छोटी स्कर्टों को लेकर सवालों की बंदूकें दागी जाती हैं। कारपोरेट सेक्टर में देर रात तक दफ्तरों में रूकने वाली महिलाओं से सवाल पूछे जाते हैं, क्या आपने कभी दफ्तर में रोमांस किया? क्या आपके विवाहेत्तर सम्बन्धों पर पति ने आपत्ति जताई? आदि आदि.. ... इस दौरान इस तथ्य को भुला दिया जाता है कि महिलाओं की साक्षारता दर आज भी चिंताजनक स्तर तक कम है, उनके मानवाधिकारों का घर बाहर हर जगह हनन होता है। आज भी 12 करोड़ 72 लाख बीस हजार महिलाएँ श्रमिक हैं। इन्हें अपने हितों की जानकारी तक नहीं और ये बड़ी–बड़ी पूंजियों वाली प्रबंधन व्यवस्था की दया की सिर्फ याचक भर है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की हालत इतनी खराब है कि अगर सरकारी आंकड़ों की ही बात करें तो ग्रामीण अंचल की महिला मजदूरों में से 87 प्रतिशत तो खेतिहर मजदूर ही हैं।

यू.एन. चार्टर का अनुच्छेद 16 परस्पर सहमति से विवाह करने और परिवार बढ़ाने का उल्लेख करता है। मुजफ्फीलगी में दो प्रेम करने वालों को और कोई उपाय न पाकर आनन–फानन में पेड़ पर ही फाँसी दे दी जाती है। सामाजिक विसंगतियाँ जब समस्याओं का हल मानवों को ही नष्ट कर डालने में आसानी से पा जाती हों तब मानवाधिकार की इन चर्चाओं का भला क्या अर्थ रह जाता है? बहराल इस मामले में सरकार को ही दोष देना एक मूर्खतापूर्ण काम है। क्या जनता जिम्मेदार नहीं है? दरअसल हम उस चीज का पर्याप्त विकास नहीं कर पाए जिसे 'सिविक कल्चर' या नागरिक संस्कृति कहते हैं। मानवाधिकारों को लागू किया जाना शायद इससे भी एक कदम आगे की बात है। यह वह नागरिक संस्कृति है जिसका विकास करने में अमेरिका भी बुरी तरीके से असफल सिद्ध हुआ है।

यद्यपि मानवाधिकार किसी भी सभ्य समाज की आधार शिला है। यदि आम व्यक्तियों को पर्याप्त मानवाधिकार उपलब्ध हैं, तो उस समाज विशेष को सभ्य, सुसंस्कृत और विकसित कहा जा सकता है। मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव मात्र होने के नाते प्राप्त होते हैं, भले ही उसका लिंग, राष्ट्रीयता, वर्ग, धर्म आदि कुछ भी हो। आज हमें जो मानवाधिकार प्राप्त हैं वे एकदम से प्राप्त नहीं हो पाए हैं वरन् इनकी प्रगति धीरे धीरे, कदम दर कदम हुयी है। महाभारत का तो प्रसिद्ध सूत्र वाक्य है– ''मानव से बड़ा कुछ भी नहीं है।'' उस समय मौलिक मानवाधिकारों का काफी महत्व दिया जाता था। भगवद्–गीता में भी मानव के लिए उसके कर्तव्यों को सर्वोपरि माना गया है। मानवता सभी धर्मों का मूल है। सभ्यता का अर्थ है एक मानव का दूसरे मानव की सहायता करना। यदि मानव ऐसा नहीं करता है तो पशु और उसमें कोई अंतर नहीं रह जाएगा। अतः मानवतावाद

का सामान्य सा अर्थ है मानव का कल्याण। मानवाधिकार एक व्यापक संकल्पना है जिसमें दुनियाँ के तमाम बंधनों को दरकिनार रखकर ईश्वर की सर्वोत्तम रचना 'मानव' को मात्र मानव माना गया। जाति, भाषा, क्षेत्र, लिंग, व रंग के भेदभाव के बगैरह समूची मानव जाति का गरिमा व सम्मान का मुख्य क्षेत्र ध्येय माना गया है। मानव के रूप में जन्म लेते ही वह मानवाधिकारों का अधिकारी हो जाता है। मानव अधिकार जीवन की वह परिस्थितियाँ हैं जिसके बिना कोई इंसान अपना जीवन यापन नहीं कर सकता है।

दुनिया में सबसे अधिक अपराध और अत्याचार महिलाओं के खिलाफ ही होते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के मानवाधिकार काफी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। विश्व के लगभग सभी देशों में महिलाओं को विशेष अधिकार दिए हैं ताकि वे सम्मानपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें। मानवाधिकारों के नजरिए से महिलाओं को विशेष रूप से व्यवहार करने योग्य माना गया है। महिला आन्दोलन के दौर में एक ओर जहां महिलाओं को अधिकाधिक अधिकार दिए जाने की कवायद चल रही है। वहीं दूसरी ओर महिलाओं के बीच भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है। सयुंक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के साथ महिला और मानवाधिकार की अवधारणा बलवती हुई है। प्रकृति ने स्त्री को कोमल तत्व प्रदान किया है तथा पुरुष को कठोर तत्व। यही कारण है कि नारी की स्थिति पुरुष के बाद मानी जाती है। इनके अधिकारों की चर्चा के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बार–बार प्रश्न उठाए जाते हैं। सन् 1997 में महिलाओं के प्रति होने वाले भेदभाव को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मनाया गया और इसके लिए अधिवेशन भी भारत में ही हुआ। सन् 1992 में घरेलू हिंसा को लेकर लिंग के आधार पर भेदभाव को समाप्त करने के लिए स्थान–स्थान पर सम्मेलन हुए। इस तथ्य को समझने पर सयुंक्त राष्ट्र संघ ने 20 दिसम्बर 1993 को महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के विलोपन की घोषणा को स्वीकार किया। इस घोषणा में यह प्रावधान किया गया कि ''राज्य महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की निंदा करें और इसको दूर करने के अपने दायित्व से बचने के लिए किसी परम्परा या धार्मिक विश्वास का आधार न लें।''

सन् 1993 में सम्पन्न वियना मानवाधिकार सम्मेलन में 173 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में महिलाओं के अधिकारों के अनुपालन, प्रोत्साहन एवं रक्षा के लिए चल रहे अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरणा दी। सन् 1995 में चीन में महिलाओं पर चतुर्थ विश्व सम्मेलन हुआ। इसमें विश्व भर में महिलाओं के विरूद्ध होने वाली हिंसा के विरूद्ध आन्दोलन को बल मिला। महिलाओं के विरूद्ध हिंसा को समाप्त करने के लिए उक्त अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों के बावजूद महिलाएँ भारत में न सिर्फ हिंसा का शिकार बनी हुई हैं वरन् असमानता का व्यवहार भी उनके साथ होता रहा है।

मानव जाति में महिलाओं का प्रश्न सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण है। स्त्रियों के प्रति संसार में भेदभाव इसलिए विद्यमान है क्योंकि इसकी जड़ें सामाजिक प्रतिमानों एवं मूल्यों में जमी हुई हैं। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में आज जहाँ प्रत्येक स्त्री पुरुष को समान अधिकारों एवं समान अवसरों का संवैधानिक अधिकार है वहीं महिलाओं को इन अधिकारों से वंचित किया गया। जिसके फलस्वरूप महिलाओं के अधिकारों के लिए प्रथम महिला अधिकार सम्मेलन 1948 में अमेरिका से शुरू हुआ। इसके पश्चात बहुत से नियम– अधिनियम, संविधानों में संशोधन, संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र 1948 के अनुच्छेद 1, 2, 3, 4, 5, 7, मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के तहत, राष्ट्रीय–स्तर पर मानवाधिकार न्यायालय एवं महिला आयोग की स्थापना की गयी ताकि महिलाएँ सम्मानपूर्वक जीवन यापन कर सकें।

भारतीय संस्कृति में महिलाओं को विशेष दर्जा प्राप्त है, परन्तु आज की परिस्थितियों में उन्हें दयनीय हालात से गुजरना पड़ रहा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक भारतीय महिलायें उपेक्षाएँ और तरह–तरह की वर्जनाओं का शिकार हैं। चिन्ता की बात तो यह हैं कि उनके कामों को न तो महत्व दिया जाता है और न ही उनका मूल्यांकन किया जाता है। जबकि वे पुरुषों से अधिक काम करती हैं। यूनेस्कों ने सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं की दशा का

अध्ययन कराया है। उनमें भारतीय महिलाएँ 99वें नम्बर पर हैं। हमारे देश में प्रतिवर्ष 150 लाख बच्चियाँ जन्म लेती हैं। जिनमें 25 प्रतिशत की मृत्यु 15 की उम्र से भी पहले हो जाती है। भारतीय महिलाओं की औसत उम्र 58 वर्ष है। यहाँ महिलाओं को हर स्तर पर उपेक्षित रखा गया है। उन्हें पिता और पति की सम्पति में सीधा और स्वयं अधिकार सहज नहीं मिलता है। इसके अलावा देश का पाठ्यक्रम भी ग्रहस्थ जीवन के अनुकूल नहीं है। भारत में लगभग 72 प्रतिशत आबादी गांवों में निवास करती है। इसमें आधी महिलाओं की है। यहां यह स्पष्ट है कि भारत जैसे विशाल देश के विकास में ग्रामीण महिलाओं की अहम भूमिका होती है। इसे नकारा नहीं जा सकता है कि ग्रामीण महिलाओं के पिछड़ेपन के कई कारण हैं, इनमें से सबसे बड़ा कारण है उनका अशिक्षित होना है जो उनका शोषण तथा उत्पीड़न का रहा है। ग्रामीण महिलाओं के निम्न स्वास्थ्य स्तर पर चिन्ता व्यक्त करते हुए यह तथ्य स्पष्ट करना है कि चाहे कितना भी एक माँ अपने बच्चों से प्रेम करती है उसके लिए यह असम्भव है कि वह अपने बच्चों का उच्च कोटि का लालन–पालन कर सके, यदि वह गरीब, अशिक्षित, रक्त हीनता से ग्रसित एवं अस्वस्थ है, और उसे समाज का सहयोग एवं स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध नहीं हैं।

स्वास्थ्य के संरक्षण का अधिकार महिलाओं का अहम मानवाधिकार है। 2003 में हुए अनुसंधानों में यह पाया गया है कि भारतीय महिलाओं का स्वास्थ्य सेवाओं के निम्न स्तर से प्रभावित है। हर वर्ष प्रशिक्षित डॉक्टरों से 1/3 डॉक्टर ही सेवाएँ प्रदान करते हैं। एक ग्रामीण महिला प्रतिदिन 13 घण्टे काम करती है जबकि पुरुष 8 घण्टे कार्य करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में 25 प्रतिशत महिलाएँ अपना 15वाँ जन्मदिन नहीं देख पातीं।

वास्तव में आधुनिक युग में कहने के लिए लड़का–लड़की एक समान है, किंतु इसके पीछे रहस्य कुछ और ही है। यदि यह सच होता तो असंख्य मादा भ्रूणों को गर्भ में ही नहीं नष्ट किया जाता। इसके परिणाम यह निकल रहे हैं कि लड़का–लड़की के प्रतिशत में काफी अन्तर आ रहा है। इसका सीधा प्रभाव प्रकृति के संतुलन में पड़ रहा है। पिछली शताब्दी में गुजरात में 'दूधपीती' प्रथा के अन्तर्गत लड़कियों को दूध से भरे पात्र में डुबोकर मार दिया जाता था। परन्तु इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि आजकल तो अधिकांश लड़कियों को जन्म से पहले ही मार दिया जाता है। ऐसी स्थिति में लड़का–लड़की को एक समान कहना हास्यास्पद सा लगता है। अधिकांश माता–पिता लड़कियों को बोझ के रूप में देखते हैं। दहेज प्रथा की भयावहता महिला के जीवन के आकाश में धूमकेतु बनकर ही छा जाती है। लड़कियां भी घर से बाहर निकलने पर अपने आपको असुरक्षित अनुभव करती हैं। अनेक महिलाएँ विवाह के पश्चात जीवन भर तनाव सहने को विवश हो जाती हैं। यह स्थिति केवल अशिक्षित लड़कियों की ही नहीं बल्कि शिक्षित लड़कियों की भी है।

मानवाधिकार के विषय में मानव और महिलाओं के क्षेत्र में किसी प्रकार का भेद नहीं, महिलाओं को वे सब अधिकार प्राप्त है, जो पुरुषों को किन्तु समय परिवर्तनशील है। आज के समय में लोग लड़की की अपेक्षा लड़के को अधिक महत्व देते हैं। ईश्वर ने पुरुष को नारी की अपेक्षा अधिक शक्ति प्रदान की है। वह स्वयं को नारी का संरक्षक मानता है। पुरूष प्रायः धन का अर्जन करता है तथा महिला घर का दायित्व संभालती है। वर्तमान युग में भी पुरुष को नारी की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। भारत में ही नहीं अपितु विश्व के विकसित देशों में भी नारी की स्थिति शोचनीय हैं उन्हें उचित सम्मान नहीं मिलता है, जितना अधिक देश विकसित हैं, उतनी ही नारी की स्थिति अधिक दयनीय है। मानवाधिकारों में पुरुष व महिला दोनों का समान अधिकार प्राप्त हैं तो मानव अधिकारों की प्रथक व्यवस्था क्यों की जाती है? इससे तो यह जाहिर होता है कि महिलाओं के प्रति सब कुछ सामान्य नहीं है। स्थितियाँ जो भी हों, विभिन्न कालों में महिलाओं की स्थिति पृथक–पृथक रही है। परन्तु सत्य तो यह है कि पुरुष और नारी द्वारा ही सृष्टि पर निर्माण होता है। शक्ति के बिना शिव को शव कहा जाता है। ब्रह्मा स्वयं निष्क्रिय है वह शक्ति या माया के सहयोग से जगत की उत्पत्ति करते हैं। वास्तव में नर तथा नारी की सहायता से ही सृष्टि का विकास है।

महिला समाज का एक अभिन्न अंग है। अतीत में महिलाओं का समाज में सर्वोपरि स्थान रहा है। उसे सुख व समृद्धि प्रदान करने वाली देवी का रूप माना गया है। परन्तु गत वर्षों में महिलाओं के मानवाधिकारों का जितना उल्लंघन हुआ है शायद पहले कभी नहीं हुआ है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' जैसे उद्धरण का प्रयोग करने वाले देश में हर घंटे दहेज हत्या का एक, छेड़छाड़ के चार, यौन उत्पीड़न का एक, पतियों व रिश्तेदारों द्वारा उत्पीड़न के छः तथा लापरवाही से मौतों के अनगिनत मामलें दर्ज होते हैं। पुलिस का व्यवहार भी महिलाओं के प्रति अभद्रतापूर्ण एवं अमानवीय होता है जिससे वे स्वयं को समाज की अपेक्षा कहीं अधिक प्रताड़ित एवं अपमानित महसूस करती हैं। देश भले ही स्वतंत्र हो गया है लेकिन पुलिसिया रवैया आज भी ब्रिटिश कालीन है। यह एक क्रूर सच्चाई है कि इस देश में सड़क से सदन तक महिलाओं के साथ अभद्रतापूर्ण व्यवहार किया जाता है। घर, बाहर सभी जगह महिला उत्पीड़न का शिकार होती है। श्रीमती इन्दिरा गांधी के विचारों में विश्व में सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय नारी समुदाय है नारी वर्ग की क्षमता के पुरूषों को पूर्ण रूप से खिलने से सदा रोका जाता है, उन पर वैचारिक व अभिव्यतात्मक अत्याचार किये जा रहे हैं।

महिलाओं के संदर्भ में ही सन् 1952 में चलचित्र अधिनियम के अन्तर्गत सेंसर बोर्ड का गठन किया गया है। जिसे उन फिल्मों पर रोक लगाने का अधिकार होगा जिसमें महिलाओं की मर्यादा भंग होती हो तथा उन्हें अश्लील मुद्रा में प्रदर्शित किया गया हो। हत्या करने के लिए अपहरण करने पर धारा 364 के अन्तर्गत 10 साल की कैद तथा जुर्माने में दण्ड का प्रावधान है। धारा 509 के अनुसार किसी स्त्री का अनादर शब्द विशेष या अंग प्रदर्शन द्वारा किया जाये तो व्यक्ति विशेष को एक वर्ष का दंड दिया जा सकता है। सरकार ने महिलाओं की शिक्षा को हमेशा प्राथमिकता दी है। पूरी शिक्षा प्रणाली महिलाओं को अधिक से अधिक शिक्षा व अधिकार देने में लगी है। फिर भी जिस प्रकार मॉ–बाप लड़कों की शिक्षा पर व्यय करते हैं, लड़कियों की शिक्षा पर उसी प्रकार खर्च करने में हिचकिचाते हैं। इसका पूरा असर गाँव में देखा जा सकता है। महिलाओं के प्रति शिष्टता का हनन आधुनिक समाज में खुले आम हो रहा है जैसे – विज्ञापनों में नारी देह का नग्न प्रदर्शन। अगर महिलाओं का कोई अश्लील तथा भद्दा लिखा हुआ या छपा हुआ दस्तावेज किसी को ब्लैकमेल करने के उद्देश्य से किसी अखबार या पत्रिका में प्रकाशित या प्रसारित किया जाता है, बेंचा या खरीदा जाता है तो यह अपराध है। 23 सितम्बर 1986 को स्त्री अशिष्ट रूपण अधिनियम 1986 बनाया गया, यह कानून 2 अक्टूबर 1987 से देश भर में लागू किया गया है। इस अधिनियम की धारा 3 के अनुसार कोई व्यक्ति ऐसे विज्ञापन का प्रकाशन नहीं करेगा। जिसमें किसी भी तरह महिलाओं का अशिष्ट रूपण हो रहा हो।

ईसा की 21वीं शताब्दी में भी विश्व के अधिकांश देशों में नारी की दशा अच्छी नहीं है। आज संसार के अनेक देशों में असमानता, शोषण और उत्पीड़न हो रहा है। पाकिस्तान में तो स्त्रियों पर अनेक अमानवीय प्रतिबन्ध हैं। अफगानिस्तान में स्त्रियों की दशा दयनीय है। आज सम्पूर्ण विश्व में ऐसी सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को निर्माण करने की आवश्यकता है जिनमें मानव अधिकार के उपभोग और उनकी वैधानिक मान्यता स्वीकृत हो और उनकी सुरक्षा हो। इसके बिना मानव अधिकारों की सभी घोषणायें मात्र कागजी खानापूर्ति बनी रहेगीं, वे कभी साकार रूप नहीं ले सकेंगी। पुरूष व महिला समाज रूपी रथ के दो पहिये हैं, यदि एक शक्तिशाली और दूसरा कमजोर है तो एक सशक्त समाज नहीं बन सकता। नियमों को बनाने से कभी समाज नहीं चलता है, समाज चलता है नियमों को व्यवहारिक रूप देने से। अतः पुरूष और महिला को एक समान समझें, जितना सम्मान व प्रतिष्ठा पुरूष को दे उतनी ही महिलाओं को भी दें। फिर देखना हमारे समाज का रूप ही नया होगा।

महिला संरक्षण के लिए बनाये गये कानून केवल कागजी नजर आ रहे हैं, क्योंकि न्याय पाने के लिए महिलाओं को लम्बी कानूनी क्रियाओं से गुजर कर न्यायपालिका का सामना करना पड़ता है। महिला मानसिकता

शिकायत न कर चुपचाप अन्याय सह लेती हैं जिसके परिणाम स्वरूप वे विद्रोह न कर चुपचाप अत्याचार व अन्याय सहना अधिक पसन्द करती हैं। महिलाओं को अपनी इस चुप्पी को तोड़ना होगा जिससे नारी वर्ग की क्षमता सामने आये, वे अधिकारों को पा सकें। नर–नारी दोनों एक पहलू के ही दो सिक्कें हैं जिसे आपस में सन्तुलन स्थापित कर अपने–अपने विचारों को बदलना होगा तभी एक स्वस्थ्य एवं नये भारत का निर्माण किया जा सकता है– ''तूफान अगर उफान पर है, तो इरादे भी आसमान पर हैं। साहसी पंखों को न रहा अब टूटने का डर, वो तो बस अपनी उड़ान पर हैं।।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महासभा प्रस्ताव–2263 (XXII), दिनांक 7 नवम्बर 1967।
2. नारी चेतना और अपराध (1989)–एम.ए. अन्सारी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
3. क्राइम इन इण्डिया 1990।
4. महिला एवं मानवाधिकार, ज्योति प्रकाशन, जयपुर–2000
5. मानवाधिकार– टी0पी0 त्रिपाठी, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद–1999।
6. लोकतन्त्र की चुनौतियाँ–सच्चिदानन्द सिन्हा, वाणी प्रकाशन दिल्ली –2005।
7. भारतीय समाज में परिवर्तन–अजय वर्मा दिल्ली से प्रकाशित।
8. दैनिक जागरण, कानपुर, दैनिक पत्र 20जनवरी 2008 को प्रकाशित।
9. भारत में मानवाधिकार एवं महिला सशक्तिकरण–ए0 के0 तिवारी, खण्ड 37, अंक 1–4, 2005
10. भारतीय समाज–रामअहूजा, सन् 2007।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारतीय परिवार : परंपरा की प्रासंगिकता में विघटन की उभरती काली घटाएँ

डॉ0 (श्रीमती) अर्चना कुशवाहा
प्राध्यापक–समाजशास्त्र
शासकीय कमला राजा कन्या स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

हमारी भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वर्णाश्रम व्यवस्था को वैदिक मान्यता प्राप्त होने के साथ ही इसे समाज में श्रमविभाजन की उपयुक्त व्यवस्था के उद्देश्य से किया गया। चूंकि प्रारम्भिक स्तर में वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत श्रमविभाजन का आधार वैयक्तिक योग्यतायें व क्षमताएं थीं, इसलिए योग्यताओं व क्षमताओं में परिवर्तन के साथ वर्ण परिवर्तन भी संभव था। यद्यपि कालान्तर में यह संभव नहीं रहा। कालान्तर में वर्ण व्यवस्था जन्मगत् हो गयी, इसमें ऊँच–नीच का संस्तरण तेजी से विकसित हुआ और अन्तः विवाह अनिवार्य हो गया तथा विभिन्न क्षेत्रों में पारम्परिक क्रियाओं पर अनेक बंधन लागू कर दिये गये। यह सब इसलिए हुआ कि वर्णव्यवस्था को आधार प्रदान करने वाली आश्रम व्यवस्था का महत्व घट गया। वर्ण व्यवस्था के माध्यम से जहाँ सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया, वहीं आश्रम व्यवस्था के माध्यम से वैयक्तिक जीवन को भी व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया गया। आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति की दिनचर्या को चार स्तरों में विभाजित किया गया। प्रत्येक स्तर में वैयक्तिक कर्तव्यों का इस प्रकार निर्धारण किया कि व्यक्ति अधिकतम योग्यताओं व क्षमताओं का अर्जन कर स्वयं के लिये, स्वजनों के लिये तथा संपूर्ण समाज के लिए उपयोगी इकाई बन सके।

इस व्यवस्था के तहत औसत आयु एक सौ वर्ष होना असामान्य नहीं था। इसीलिए औसत आयु एक सौ वर्ष मानकर इसे पच्चीस–पच्चीस वर्षों के चार काल खण्डों में विभाजित किया गया। प्रत्येक आश्रम में पच्चीस वर्ष की कालावधि व्यतीत करने का प्रावधान था। चार आश्रमों–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास। आश्रम में गृहस्थ आश्रम को ही सर्वोपरि माना गया। इस आश्रम में व्यक्ति दोहरी भूमिका का निर्वाह करता है। प्रथम स्वजन के प्रति, द्वितीय समाज के प्रति। इस आश्रम में 'अर्थ' व 'काम' के माध्यम से जहाँ वह स्वजन का हित करता है वहीं धर्म के माध्यम से विविध यज्ञों को सम्पन्न कर ऋणों से उऋण होकर स्वयं को समाज के साथ जोड़ता है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये बिना कोई भी व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष, इन चार पुरुषार्थ में से किसी भी पुरुषार्थ की पूर्ति नहीं कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति बिना विवाह किये, बिना गृहस्थ जीवन का उपभोग किये वानप्रस्थी हो जाये या सन्यास आश्रम में प्रवेश करे तो वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। मनु ने गृहस्थाश्रम की महत्ता को इस प्रकार व्यक्त किया है–''यथा नदी नदः समस्ते सागरम् यान्ति समस्थितिम्। तथेवा श्रमिनः सर्वे गृहस्थे यान्ति समस्थितम्।।''[1]

अर्थात् जिस प्रकार समस्त नदियाँ सागर में समाहित होती हैं, उसी प्रकार समस्त आश्रमों की महत्ता गृहस्थाश्रम में समाविष्ट है। श्री शिवस्वरूप सहाय ने गृहस्थाश्रम की महत्ता को प्रतिपादित करने की दृष्टि से महाभारत के शान्तिपर्व का दृष्टान्त इस प्रकार दिया है–''शास्त्रादृष्टः परो धर्मः स्थितो गृहस्थमाश्रितम्'' अर्थात् गृहस्थ आश्रम में जीवन व्यतीत करना ही शास्त्र की दृष्टि में सर्वश्रेष्ठ धर्म है। वशिष्ठ का कथन है

कि–''चतुर्णामाश्रमाणांतु गृहस्थतु विशिण्यते।''[2] अर्थात् वशिष्ठ ने कहा कि चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्वोपरि है। व्यक्ति के लिये विवाह व परिवार का उद्देश्य गृहस्थी स्थापित कर सुखों मात्र का उपभोग करना कभी नहीं रहा है। वास्तव में परिवार व्यक्ति को स्वजनों के साथ–साथ समुदाय से भी सम्बद्ध करने की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इस प्रकार गृहस्थाश्रम में रहकर ही व्यक्ति समाज के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह कर सकता है। इस संदर्भ में यह प्रश्न उत्तर होना स्वाभाविक है कि व्यक्ति के दायित्व क्या हैं? हिन्दू दर्शन के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है परन्तु मोक्ष का मार्ग विवाह और परिवार के माध्यम से ही प्रशस्त होता है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये बिना सन्यास की साधना करने वालों का शान्तिपर्व में उपहास किया गया है। ऐसे व्यक्तियों को पापी कहा गया है। शान्तिपर्व में ही यह कहा गया है कि विवाह व परिवार के मार्ग पर न चलकर केवल मात्र सन्यास से ही मोक्ष की प्राप्ति संभव हो तब पर्वत एवं वृक्षों को सहज मोक्ष मिल जाना चाहिए क्योंकि वे सन्यास धर्म का पालन करते हैं तथा चिरन्तन ब्रह्मचारी हैं। अविवाहित व्यक्ति, पुत्र, पौत्र, देवगण, ऋषिगण और अतिथियों के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह न करते हुए वन में सुख से जी सकता है परन्तु मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते हैं।[3]

परिवार के मुख्य कर्तव्यों को हिन्दू दर्शन के अनुसार पुत्र की प्राप्ति और धार्मिक कार्यों का संपादन हिन्दू विवाह ही हैं। इसी से जुड़ा हुआ एक और कर्तव्य है रति अर्थात यौनिक आनन्द। विवाह यौनिक सुख प्रदान करता है। मनुष्य में कामवासना एवं उसकी अनिवार्यता से हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के प्रणेता तथा शास्त्रकार परिचित होने के कारण ही इसकी पूर्ति को अनिवार्य मानते हैं। उपनिषदों में इसे परमसुख कहा गया है। काम की शक्ति से शास्त्रकार परिचित होने के कारण ही इसकी पूर्ति को अन्य कर्तव्यों से अधिक प्रधानता दी गयी है। इसका महत्व उतना ही है जितना कि शरीर की अन्य आवश्यकताओं का महत्व होता है। भारतीय जीवन में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष सभी को महत्वपूर्ण माना गया है। काम को संकीर्ण अर्थ में नहीं लिया गया है। काम को केवल यौनिक सुख तक सीमित न रखकर समस्त सांस्कारिक व भौतिक आवश्यकताओं को इसमें सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार यौनिक सुख या आवश्यकता व्यापक भौतिक आवश्यकताओं का ही एक अंश है। अतः काम वासना सहित मनुष्य में उत्पन्न होने वाली समस्त इच्छाओं की प्राप्ति का परम लक्ष्य केवल मात्र विवाह व परिवार के माध्यम से ही संभव है।

विवाह का तात्पर्य वासना से नहीं होता है। मनुष्य स्वयं को जन्म–मरण के चक्र से मुक्त होकर मोक्ष या स्वर्ग को प्राप्त करने के उद्देश्य से विवाह करता है। यही नहीं बल्कि वह पितरों की सद्गति के लिये भी विवाह करता है। एक प्रथा के अनुसार यदि किसी अविवाहित स्त्री या पुरुष की मृत्यु हो जाती है तब उसके दाह संस्कार से पूर्व उसका सांकेतिक विवाह किया जाता है। इसके उपरांत ही उसका अन्तिम संस्कार किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि हिन्दू दर्शन के अनुसार विवाह और परिवार व्यक्ति के लिए कामाचार का माध्यम नहीं है। इसी प्रकार विवाह और परिवार कतिपय सांसारिक और भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए स्त्री–पुरुष के बीच कोई संविदा भी नहीं है। इस प्रकार इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि हिन्दू दर्शन के अनुसार पुत्र की प्राप्ति और धार्मिक कार्यों का सम्पादन हिन्दू विवाह और परिवार के मुख्य कर्तव्य हैं। एक भारतीय के लिये धर्म सर्वोपरि माना गया है परन्तु धर्म की पूर्ति भी 'अर्थ' की सिद्धी पर ही निर्भर करती है। सामान्यतः हम ''अर्थ'' को धन के पर्याय के रूप में प्रयुक्त करते हैं। धन, अर्थ का एक अंग अवश्य है परन्तु धन व अर्थ एक ही नहीं हैं। अर्थ एक व्यापक धारणा है। वस्तुतः अर्थ से अभिप्राय है– जीवन निर्वाह के लिए विधिसम्मत उपक्रम कह सकते हैं। यह उपक्रम प्रत्येक व्यक्ति के लिये तथा उसके आश्रितों के जीवन यापन के लिये भी आवश्यक है। इसलिए अर्थ मनुष्य का एक अनिवार्य कर्तव्य या पुरुषार्थ है। परिवार व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओं को प्रेरित, निर्देशित व नियमित भी करता है। परिवारविहीन

व्यक्ति के लिए जीवन नीरस होता है कि उसकी आर्थिक उपलब्धियों को विनियोजित करने का उसे वह अवसर नहीं मिलता है जो कि वह गृहस्थ को मिलता है। व्यक्ति अपनी आर्थिक क्षमताओं को निरन्तर विकसित करने, धनोपार्जन, सम्पत्ति संचय, भौतिक संसाधनों का संग्रह इसलिए ही नहीं करता है कि उसकी पत्नी, उसके बच्चे तथा उसके आश्रितों के लिये इसकी आवश्यकता है बल्कि इसलिये भी कि परिवार के सदस्यों के भविष्य की सुरक्षा के लिये प्रत्येक व्यक्ति विरासत में सम्पत्ति, भूमि, गृह, उपकरण, यंत्र आदि हस्तान्तरित करना आवश्यक समझता है। यदि गृहस्थी के साथ व्यक्ति की यह आर्थिक सम्बद्धता न होती तो वह भी संभवतः पशुओं के समान पेट भरने सम्बन्धी तात्कालिक आवश्यकता तथा अस्थाई आश्रय तक सीमित रहता। इसीलिए अर्थरूपी पुरुषार्थ की पूर्ति विवाह व परिवार के माध्यम से ही सम्पन्न होती है।[4]

हिन्दू दार्शनिक व्यवस्था में 'धर्म' को हिन्दू जीवन में सर्वोपरि महत्व दिया गया है। धर्म विहीन 'अर्थ' व 'काम' को निष्फल ही नहीं वरन् पापाचार माना गया है। डॉ0 के0सी0 जैन ने महाभारत के उद्योग पर्व व शान्ति पर्व के आधार पर बताया कि धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थों को व्यक्ति के द्वारा प्राप्त करना आवश्यक है। यदि तीनों की प्राप्ति न हो सके तो उसे धर्म और अर्थ को प्राप्त करना चाहिए किन्तु यदि उसे केवल एक ही चुनना हो तो उसे धर्म का ही चुनाव करना चाहिए। इन तीनों में धर्म सर्वोच्च है। 'अर्थ' मध्यम और 'काम' सबसे निम्न कोटि का है। वस्तुतः अर्थ और काम की व्यवस्था धर्म ही आधारित है। मनु का विचार है कि व्यक्ति को यद्यपि तीनों पुरुषार्थों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए परन्तु यदि अर्थ और काम, धर्म के प्रतिकूल हो तो उसे धर्म के लिए अर्थ और काम को त्याग देना चाहिए। मनुस्मृति, विष्णु धर्मसूत्र तथा भागवत् ने भी धर्म को ही प्रधानता दी है।[5] धर्म के दो व्यावहारिक पक्ष, प्रथम–भक्ति व दूसरा कर्मकाण्ड है। धर्म के कर्मकाण्डीय पक्ष की सिद्धि विवाह (एवं परिवार) के बिना संभव नहीं है। विशेषकर यज्ञों का सम्पादन पत्नी के बिना नहीं किया जा सकता है। पत्नी विहीन व्यक्ति यज्ञ करने के लिये सर्वथा अयोग्य होता है। ''अयज्ञियो व एव योषृपत्नीकः।'' अर्थात् यज्ञरूपी अनवरत् जारी रहने वाले मकान कार्य को एकाकी व्यक्ति कदापि सम्पादित नहीं कर सकता है। पत्नी के सहयोग के बिना न यज्ञ और न ही कोई अन्य धार्मिक कार्य सफलतापूर्वक सम्पादित किया जा सकता है। इसी प्रकार परिवार के अन्य सदस्यों का आत्मिक, मानसिक, शारीरिक तथा भौतिक सहयोग भी आवश्यक होता है।[6]

वास्तव में देखा जाए तो हिन्दू दर्शन के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन पर पांच ऋणों यथा देव, ऋषि, अतिथि, भूत, पितृ ऋण का भार रहता है। इन ऋणों से उऋण हुए बिना धर्म का सम्पादन तथा मोक्ष प्राप्ति सम्भव नहीं है। इन पंच ऋणों से उऋण होने के लिए पंच महायज्ञ देव यज्ञ, ऋषि यज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत यज्ञ एवं अतिथि यज्ञ का प्रावधान शास्त्रकाओं द्वारा किया गया है। मनु का मानना है कि यज्ञ में होम करने का कार्य तभी सफल माना जाता है जब इसे सपत्नीक किया जाये। शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय अरण्यक व आपस्तम्ब धर्मसूत्र में उल्लेख किया गया है कि प्रतिदिन किया जाने वाला वेदाध्ययन, विद्याध्ययन ही ब्रह्मयज्ञ या ऋषि यज्ञ है। ज्ञान भण्डार इस यज्ञ का महत्वपूर्ण पक्ष है। इसे प्रातःकाल एकांत में स्वाध्याय के द्वारा तथा तदन्तर वानप्रस्थाश्रम में ब्रह्मचारियों को दीक्षित कर सम्पन्न किया जाता है। पितृ यज्ञ चार रूपों में होता है। विवाह कर पत्नी के माध्यम से प्रजनन के द्वारा, पुरखों के लिये तर्पण कर, प्रतिदिन भोजन का भोग पितरों को समर्पित कर। स्पष्ट है कि यह यज्ञ भी पत्नी के बिना सम्पन्न नहीं किया जा सकता। अतिथि का सत्कार कर भिक्षुक को यथायोग्य दान देकर ब्रह्मचार्य को भिक्षा देकर अतिथि यज्ञ सम्पादित होता है। आपस्तम्ब, धर्मसूत्र, मनु व याज्ञवल्क्य ने व्यवस्था दी है कि गृहस्थ के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने पालित अपालित पशुओं, पक्षियों, जन्तुओं, जाति से बहिष्कृत कोढ़ियों, चाण्डालों आदि के लिए अपनी भोज्य सामग्री में से एक अंश पृथक कर उन्हें प्रदान करना ही भूतयज्ञ है। यह

भी बिना पत्नी, परिवार के सम्पन्न नहीं किया जा सकता है।[7] इस प्रकार से भली–भांति स्पष्ट होता है कि हिन्दू विवाह, परिवार विशद् सामाजिक हित, सामाजिक कल्याण पर आधारित दार्शनिक धरातल पर स्थापित एक अनिवार्य एवं पवित्र संस्था है।

आधुनिकता व भौतिकता का प्रभाव होने के परिणामस्वरूप लघु एकल परिवार की अवधारणा पारम्परिक परिवारों के स्वरूप में अस्तित्व में आयी, जहाँ पर विविध समस्यायें तथा भूमिका, तनाव, संघर्षो की चर्चायें दृष्टिगोचर होती हैं। हमारा उद्देश्य वैश्वीकरण, निजीकरण व उदारीकरण के साथ–साथ पाश्चात्यीकरण के अन्धानुकरण के फलस्वरूप परिवार के स्वरूप में आये संरचनात्मक परिवर्तन का सैद्धान्तिक अध्ययन करना है। लघु एकल परिवार प्रायः पत्नी एवं पति, दोनों के द्वारा शासित होते हैं। इस प्रकार भारतीय समाज में परम्परा से पुरुषों के लिए संरक्षित मुखिया के पद पर अब उसका एकाधिकार नहीं रह गया है। इन परिवारों में प्रायः पति अपनी आय पत्नी को सौंप देते हैं। पत्नी ही समस्त देनदारियों को चुकाना, सभी प्रकार की खरीद–फरोख्त, बच्चों की फीस, ट्यूशन, यात्रा सम्बन्धी व्यय, पति के व्यक्तिगत खर्च के लिए राशि देना आदि कार्य वे स्वयं करती हैं। इन मामलों में पति उसके सहायक के रूप में कार्य करता है। पति अब यह अनुभव करते हैं कि पारिवारिक मामलों में निर्णय लेते समय पत्नी का परामर्श प्राप्त करना या उसे विश्वास में लेना आवश्यक है। अब वे मनचाहे रूप में निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र नहीं होते हैं। बच्चे भी इसी कारण पिता की अपेक्षा माता से अधिक जुड़े रहते हैं। किसी कार्य, खरीददारी, यात्रा, ट्यूशन आदि के लिए पिता के मना करने की संभावना को देखते हुए माता से ही अनुमति ले लेते हैं। पिता के इंकार करने के बावजूद बच्चे माता से मनचाहा करवा लेते हैं। इसके फलस्वरूप परिवार के मुखिया के रूप में इनकी स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। वे अनुभव करते हैं कि मुखिया के रूप में परिवार में उनकी स्थिति दोयम दर्जे की होने के प्रति वे आशंकित हैं। नौकरीपेशा महिलाओं की सेवानिवृत्ति पर मिलने वाली मोटी रकम या पेंशन की सुविधा आदि के कारण वृद्धावस्था में भी स्त्रियों की पति पर निर्भरता कम हो गयी है। इन दशाओं ने पति और परिवार के मुखिया के रूप में पुरुष की छवि और पारम्परिक स्थिति को प्रभावित किया है। पिता की अपेक्षा माता बच्चों पर ज्यादा प्रभावशाली ढंग से नियंत्रण रख पाती है। किसी भी समूह में यदि मुखिया या नियंत्रणकर्ता एकाधिक हो तब उस समूह में संगठन की कमी, अव्यवस्था, असुरक्षा और लक्ष्यों की पूर्ति में बाधा पहुंचना अवश्यंभावी होता है। इससे उस समूह के बिखराव की संभावना भी बढ़ जाती है। स्त्रियों की भूमिकाओं में आये उपरोक्त परिवर्तनों के कारण वर्तमान में पति की स्थिति में शनैः–शनैः कमी आती जा रही है लघु एकल परिवार वर्तमान में इसी स्थिति से गुजर रहे हैं। इन परिवारों के संचालन व नियंत्रण में कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष रूप से पत्नी का प्रभाव पड़ रहा है।[8] वर्तमान में लघु एकल परिवार पति व पत्नी के द्वैध शासन की ओर अग्रसर हैं। यह परिवर्तन भारतीय परिवारों को मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था की ओर ले जा रहे हैं। अनेक व्यक्ति अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देने के लिए न केवल बच्चों या पत्नी की उपस्थिति में मद्यपान करते हैं बल्कि बच्चों से फ्रिज से मद्य की बॉटल, बर्फ, गिलास आदि लाने के लिए कहते हैं। निश्चय ही ऐसे वातावरण में बच्चों का चारित्रिक और नैतिक पतन होना तथा उनके नशाखोर बनने की संभावना अधिक दिखाई देती है। निश्चय ही यह आचरण और परिवर्तन भारतीय समाज में परिवार की पारम्परिक शुचिता व संगठन तथा चारित्रिक व नैतिक मूल्यों के साथ जुड़ी भारतीय परम्परा के विरुद्ध है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि पारिवारिक इकाई को संगठित रखने के लिए, नियंत्रण व व्यवस्था के लिए परिवार का एक मुखिया होना अत्यन्त आवश्यक है। इस मुखिया के प्रति परिवार के सदस्यों में आस्था, सम्मान और समर्पण की भावना भी होनी चाहिए। बच्चे माँ का अनुकरण करते हैं, इसलिए माता का आचरण आदि इन अपेक्षाओं के अनुरूप रहेगा तो यही संस्कार बालकों में भी पड़ेंगे। इसीलिए इस प्रकार के पर्वों का प्रचलन पड़ा

जिनमें परिवार के मुखिया के प्रति प्रत्यक्षतः सम्मान प्रदर्शित किया जाता है। धीरे–धीरे लघु एकल परिवारों से इस परम्परा का लोप होता जा रहा है। पूर्व कथित अनेक कारणों से अब पति व पत्नी के बीच की पारम्परिक दूरी घट गयी है। इस दूरी को समाप्त करने में परिवार के स्त्रियों की शिक्षा, परिवार का छोटा आकार, स्त्री का कामकाजी होना सहायक रहा है। लघु एकल परिवारों में स्त्रियों ने विशेषकर कामकाजी स्त्रियों ने पुरुषों के समकक्ष स्थिति अर्जित कर ली हैं। पुरुषों पर उनकी निर्भरता में कमी, घर व बाहर के कामकाज करने की उनकी क्षमता, स्त्रियों की उन्नत शैक्षणिक व सामाजिक स्थिति आदि के कारण वे पूर्व में प्राप्त हेय स्थिति से उबर चुकी हैं। आवश्यकता पड़ने पर अथवा पति की अनुपस्थिति में कामकाजी स्त्री स्वयं पति के समस्त दायित्वों का सक्षमतापूर्वक निर्वाह कर सकती हैं। ऐसे समाज में अनेक प्रमाण हैं। इसलिए अब लघु एकल–परिवार में यदि हम परम्परानुसार मान–सम्मान, पूजा–अर्चना, चरण स्पर्श आदि की अपेक्षा करें तो अव्यावहारिक एवं असंगत होगा। इसलिए अब पति के प्रति यथासंभव श्रद्धा रखना तथा सहयोग देना पर्याप्त माना जाता है। लघु एकल–परिवार पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से लोकतान्त्रिक परिवार है। माता–पिता को चरण स्पर्श कर सम्मान प्रदर्शित करने की परम्परा का स्थान हेलो मम्मी–पापा, गुडमार्निंग, मम्मी–पापा या नमस्ते मम्मी–पापा अभिवादन हो चुका है। चरण स्पर्श करने की परम्परा लघु एकल परिवार से पलायन कर रही है। इस परिवर्तन ने बच्चों व पिता के बीच मित्रवत् सम्बन्धों के विकास में योगदान दिया है। बालकों के विकास सम्बन्धी आधुनिक आस्थाओं के कारण अब बच्चों को डाटना–फटकारना, अनुचित माना जाता है। यही नहीं, बल्कि मान्यता यह भी है कि बच्चों की आवश्यकताएं पूर्ण न करने से, उनकी ओर ध्यान न देने से उनमें कुण्ठा व हीनभावना उत्पन्न होती है। इससे वे अन्तर्मुखी हो जाते हैं। इसलिए लघु एकल परिवार में विकसित आस्थाओं के अनुसार पिता को परिवार के शासक व अनियंत्रणकर्ता की नहीं बल्कि मित्र व सहयोगी की भूमिका निभानी चाहिए। इसका दूसरा पक्ष यह है कि लघु एकल परिवार के जनतांत्रिक स्वरूप व खुलेपन के कारण इन परिवारों में नियंत्रण की समस्या उत्पन्न हुई है तथा भविष्य में इसके और उग्र होने की संभावना है। इसका प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व पर प्रतिकूल पड़ रहा है।

भारतीय समाज का आदर्श समझा जाने वाला परिवार वर्तमान में लघु एकल परिवार में परिवर्तन के नये–नये स्वरूपों के आविर्भाव के रूप में दिखाई पड़ रहा है। माता–पिता द्वारा किये जाने वाले विविध दायित्व व कार्यों जैसे पठन–पाठन सम्बन्धी आवश्यकताएँ पोशाक, भोजन, मोबाइल, कम्प्यूटर, अच्छी शिक्षा, अच्छा वातावरण, वाहन आदि की व्यवस्था को बच्चे, इसे माता–पिता का आवश्यक कर्तव्य मान रहे हैं। प्रायः ऐसा कहते सुना जाता है कि आप क्या, सभी के मां–बाप अपने बच्चों के लिये ऐसा करते हैं आप कोई एहसान नहीं कर रहे हैं। इस प्रकार का भाव यह संकेत देता है कि उनका समाजीकरण समुचित तरीके से नहीं हुआ है अर्थात् बच्चों व माता–पिता के बीच ''शिष्टाचार दूरी'' का समाप्त होना व लघु एकल परिवार का उदय भी एक महत्वपूर्ण कारण है। माता–पिता के द्वारा बच्चों की अनुचित मांगों की प्रायः पूर्ति करने से बच्चे न केवल स्वेच्छाचारी व अनियन्त्रित बनते जा रहे हैं बल्कि वे अधिकाधिक सुविधाभोगी होते जा रहे हैं। संस्कारों का विलोपन, व्यक्तिवादिता जैसी प्रवृत्तियों का जन्म, पारम्परिक मूल्यों से विलगाव, आत्मीयता की कमी का भाव, आदान–प्रदान के तौर तरीकों पर विश्वास, तात्क्षणिक लाभ, स्वार्थपरता, समर्पण के भाव में कमी आदि लघु एकल परिवार की कमियाँ हैं। अतः मैं अपने शोध प्रपत्र में यह उल्लिखित करना चाहती हूँ कि यह अध्ययन सैद्धान्तिक तरीके से सामाजिक तथ्य को निरूपित करता है, जो सामाजिक यथार्थता से अवगत कराने का एक सचेत प्रयास है। लघु एकल परिवारों में भी संस्कारों के समुचित संवाहन के लिए हमें पारम्परिक मूल्यों, शिष्टाचार के प्रतिमानों व आदर्श माता–पिता के रूप में रोल मॉडल बनकर बच्चों के सामने आना होगा जिससे नई पीढ़ी लघु एकल परिवारों की

कमियों से दूर रह सकें। और भविष्य में भारतीय परिवार रूपी वटवृक्ष मजबूती से अपनी जड़ें और मजबूत कर सके।

सन्दर्भ सूची

1. मनुस्मृति, 6/90
2. वशिष्ठस्मृति, 1/20/273,
3. महाभारत–शान्तिपर्व 12/10/22–25
4. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव एवं डॉ0 विजय कुमार वर्मा : भारत में सामाजिक सन्दर्भों के विविध परिदृश्य,ओमेगा पब्लिकेशन्स,दिल्ली, पृ0 69–70
5. मनुस्मृति 5/561
6. मनुस्मृति.5/561
7. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव एवं डॉ0 विजय कुमार वर्मा : भारत में सामाजिक सन्दर्भों के विविध परिदृश्य,ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ. 71
8. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव एवं डॉ0 विजय कुमार वर्मा : भारत में सामाजिक सन्दर्भों के विविध परिदृश्य, ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ0 71

अन्य सहायक सन्दर्भ सूची

- काणे, पी0 बी0 : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र
- अग्रवाल, गोपाल कृष्ण : भारत में समाज, साहित्य भवन पब्लिशर्स प्रा0 लि0, आगरा
- पाटिल, ए0डी0 अशोक : भारत में परिवार एवं समाज, परिवर्तित परिप्रेक्ष्य, इलाहाबाद, पृ. 16–17
- श्रीवास्तव, प्रो0 ए0 आर0 एन : भारतीय सामाजिक समस्याएँ।
- नर्मदेश्वर प्रसाद : जाति व्यवस्था
- बुलर, जी : लॉ आफ मनु
- मोटवानी, केवल : मनु धर्मशास्त्र
- पाटिल, ए0डी0 अशोक : भारत में परिवार एवं समाज, परिवर्तित परिप्रेक्ष्य, इलाहाबाद,पृ016–17
- कुरूक्षेत्र : जनवरी, 2006, पृष्ठ पांच
- चैम्बलिस, आर0 : सोशल थॉट, 1954, न्यूयार्क
- गोनााल, यू0 एन0 : स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर
- काणे, पी0 बी0 : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र
- बनर्जी, एन0 सी0 : कौटिल्य, वाल्यूम फर्स्ट
- डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव एवं डॉ0 विजय कुमार वर्मा : भारत में सामाजिक सन्दर्भों के विविध परिदृश्य, ओमेगा पब्लिकेशन्स,दिल्ली

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

प्राचीन भारत में प्रजातंत्र के तत्व और वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष–संस्कृत
शास0 टी0आर0एस0 महाविद्यालय, रीवा (म. प्र.)

यद्यपि यूरोप की तरह प्राचीन भारत में राजतंत्र, कुलीनतंत्र व गणतंत्र तीन प्रकार के राज्यों की परम्पराएँ थीं तथापि भारत में सभी प्रकार की प्रणालियों में शासन संचालन में प्रजा के हित को प्राथमिकता दी जाती थी और शासन का उद्देश्य वृहद्तर लक्ष्य की प्राप्ति रहा है।

वर्तमान शताब्दी में भारत के प्रसिद्ध योगी और दार्शनिक श्री अरविन्द ने सृष्टि के विकास का एक आश्चर्य जनक दर्शन प्रस्तुत करते हुए भारत के पौराणिक चर्तुयुग सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया है– जिसमें राजतंत्र (साम्राज्यवादी) पद्धति तथा लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के वृत्तात्मक पुनरावृत्ति में एक मनो वैज्ञानिक उद्देश्य का हेतु जोड़ दिया है – श्री अरविंद के अनुसार – ''राजतंत्र और लोकतंत्र सृष्टि के विकास के महान उद्देश्य में एक दूसरे के पूरक हैं और वे बारी–बारी से तब तक एक परिधि में घूमते रहेंगे जब तक वह मनोवैज्ञानिक या आध्यात्मिक उद्देश्य पूरा नही हो जाता। प्राचीन समय में राजतंत्र (अधिनायकवाद) और वर्तमान समय में सम्राज्य वाद (विस्तारवाद) का उद्देश्य है, जनसम्पर्क के क्षेत्र को कृत्रिम उपायों (संघर्ष और युद्ध) द्वारा विस्तृत करना और लोकतंत्र का उद्देश्य है–अनेकत्व के अदंर एकत्व का स्वतंत्र रूप में प्राकृतिक विकास करना। प्राचीन काल में ग्रीक नगर राज्य और भारत में म्लान व गणराज्यों ने संसार में एक मनोवैज्ञानिक एकता का सूत्रपात किया था। कालान्तर में इन नगर राज्यों का अंत हुआ और बड़े साम्राज्यों का जन्म हुआ तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के स्थान पर राज्य की निरकुंशता ने एक बड़े दायरे में विभिन्न संस्कृतियों विभिन्न भाषाओं और विविधताओं में रहने वाले लोगों को एक साथ रहने के लिए बाध्य किया। आगे चलकर मानव चेतना के स्वतंत्र विकास के लिए उपायों द्वारा लोककल्याण कारी राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया है।

शासन प्रणाली के रूप में भारत में प्रजातंत्र का इतिहास काफी प्राचीन है। यद्यपि प्राचीन भारत में अधिक काल राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली ही सर्वमान्य रही है और राजतंत्रों का उदय वैदिक काल में ही हो चुका था लेकिन इन राजतंत्रो में राजा की शक्ति को नियंत्रित करने के लिए वैधानिक या जनतांत्रिक अवरोध लगाए जाते थे। 'धर्म' ही राज्य की सर्वोच्च सत्ता थी। राजा के द्वारा राज्य का विकास धर्म रक्षा और उसके पालन कराने के किया जाता था। राजा इस धर्म के पालन कराने के लिए ''दण्ड'' था।[2] ''वैदिक काल 'समितियाँ' और 'सभा' राजा की निरंकुश सत्ता पर अंकुश लगाने का कार्य करती थीं यदि 'समिति' और 'सभा' राजा का समर्थन नहीं करती थीं तो राजा को गद्दी छोड़नी पड़ती थी राजा को त्रुटियों के लिए दण्ड भी मिलता था और कभी–कभी कठोर प्रायश्चित भी करना पड़ता था।[3] परम्पराओं और रीति–रिवाजों का भी नियंत्रण रहता था। कोई भी राजा प्राचीन परम्पराओं व रूढ़ियों के विरुद्ध कोई कानून नहीं बना सकता था। इतना ही राज्याभिषेक के समय राजा को पुरोहितों और सभासदों के सामने शपथ लेनी पड़ती थी–''हे पृथ्वी माँ यदि मैं तेरे साथ धोखा करूँगा तो मेरे धर्म और दान के सारे पुण्य क्षय हो जाए व मेरा कार्य मेरी स्थान, अच्छे कार्यों के लिए मेरा सारी प्रसिद्धि नष्ट हो जाए।'' राजगद्दी का अधिकारी होने के पूर्व राजा का सर्वागीण प्रशिक्षण होता था। नियंत्रण, सुशीलता, विनम्रता, धार्मिकता, मृदुभाषण, बड़ों का आदर, सत्संगति, जनता के प्रति जागरूकता, लोकप्रशासन में दक्षता, युद्ध–विद्या में निपुणता आदि अनेक विषयों पर ''युवराज'' था। प्रशिक्षण विभिन्न विशेषज्ञों की देख–रेख में सम्पारित होना अनिवार्य या

प्रजा राजा की संतान समझी जाती थी और राजा प्रजा का ट्रस्टी। कैटिल्य के अर्थशास्त्र में भी राजा शक्ति का केन्द्र बिन्दु था लेकिन निरंकुश नहीं था वह राजार्षि था और प्रजा का पालन उसका प्रमुख धर्म था उसके वैदिक कार्य निश्चित थे। भारतीय धर्म ग्रन्थों के अनुसार यद्यपि राजा को भगवान का प्रतिनिधि माना जाता था और राजाज्ञा का पालन भगवान का आदेश मानकर किया जाता था। लेकिन यदि राजा अत्याचार प्रारम्भ कर देता था और प्रजा के हितों की उपेक्षा करता था, प्रजा के नियंत्रणों को तोड़ता था तो प्रजा को ऐसे राजा का वध भी कर डालने का अधिकार था। राजा बेन, नहुष, सुदास, सुमुख तथा मौर्य और निमि का वध उसकी पूजा द्वारा किया गया था। शुंड्ग वंश के अंतिम राजाओं को अपनी प्रजा के साथ अत्याचार करने के कारण अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा था। राजा को देश निकाला देने, उनका वध करने या गद्दी से उतारने का तात्पर्य यह था कि–राज्य की सम्प्रभुता जनता में निहित थी यद्यपि यह जनता आम जनता नही बल्कि सामन्त और सरदार थे, जिनके पास अपनी फौजें और जागीरें होती थीं। राजा को टैक्स लगाने का अधिकार था लेकिन वसूली केवल उन्हीं टैक्सों की हो सकती थी जिससे ग्रामीण सहमत होती थीं। ग्राम समुदाय और नगर परिषदें राजा की निरंकुशता पर अंकुश लगाने के लिए पर्याप्त थीं। यद्यपि राज्यों का क्षेत्रफल कुछ वर्ग मीलों का ही होता था जैसो ग्रीस के स्पाटों एथेन्स आदि नगर राज्यों का था। इनकी राजधानी चार छः गाँवो की आबादी के बराबर होती थी। गाँवों की अपनी साधारण सभाएँ होती थी और राजधानियों में एक केन्द्रीय सभा होती थी जिसे समिति कहते थे। सभा एक गाँव के लिए और समिति पूरे राज्य के लिए। इन्हें शासन व्यवस्था के संचालन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था इन्हें प्रजापति (ब्रह्मा) की जुड़वा पुत्रियाँ कहा जाता था। ऋग्वेद में समिति को विद्वानों और ''राजनीतिज्ञों की सभा कहा गया है। श्री अल्टेकर के अनुसार–समिति को ही राज्य की सम्प्रभुता प्राप्त थी क्योंकि बिना समिति के विश्वास और समर्थन के राजा को राज्य चलाना संभव नहीं था। समिति सेना और कार्यपालिका से संबंधित विषयों पर महत्वपूर्ण निर्णय देती थी और नियंत्रण करती थी और नियंत्रण करती थी। इन समितियों में प्रधान विषयों पर गंभीरवाद विवाद होते थे और इन वाद–विवादों मे कभी–कभी आज कल की तरह कटुता और दलगत भावनाओं के कारण दृश्य भी उपस्थित होते थे। ऋग्वैदिक सूत्रों में समिति की शांतिपूर्ण कार्यवाहियों के लिए देवताओं से बार–बार विनय की जाती थी। प्राचीन परम्पराओं में नजीरों और रीति–रीवाजों को ही विधि माना जाता रहा है और समिति व सभाएँ स्वयं विधि निर्मात्री सभाएँ नहीं थीं। वे केवल विधि का पालन कराने के लिए संगठित की जाती थीं।

मंत्रिपरिषद–प्राचीन राजतंत्र प्रणाली में राजा की सलाह के लिए मंत्रियों की नियुक्ति एक प्रकार से अनिवार्य थी। उन्हें रत्न कहा जाता था। वैदिक काल में रत्नों के अधिकार बहुत महत्वपूर्ण थे। महाभारत के अनुसार 'राजा मंत्रियों पर उसी प्रकार निर्भर रहा करता था जिस प्रकार जानवर वर्षा के बादलों पर, ब्राह्मण वेदों पर और स्त्रियाँ अपने पति पर ''कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भी स्पष्ट है कि ''राजा तभी सफल राजा हो सकता है जबकि उसकी सहायता और सलाह के लिए योग्य मंत्री हों क्योंकि राजा और मंत्री एक ही रथ के दो पहिए हैं। बिना दोनों के चले केवल एक के सहारे रथ आगे नहीं बढ़ सकता। ''शुक्र के अनुसार–सर्वगुण सम्पन्न राजा भी बिना मंत्रियों की सलाह के राज्य का काम कुशलता से नहीं चला सकता।'' व्यवहारिक रूप में भी मंत्रियों के हाथ में राज्य का प्रायः पूरा प्रशासन ही होता था। नीति का निधरिण, टैक्स, राज्य कोष का हिसाब, युवराजों की शिक्षा–दीक्षा का भार, राज्याभिषेक का प्रबंध विदेशी नीति का संचालन सेना का प्रबंध, इत्यादि राज्य के प्रमुख कार्य विभिन्न मंत्रियों के द्वारा ही संचालित किए जाते थे। उस समय पुरोहित प्रधान सचिव मंत्री प्रदाविवाक पंडित, सुमंत्र, आमात्य, और दूत विभिन्न Portfolio होते थे। पुरोहित–राजा का गुरु होता था और राजा को धर्म के अनुसार राज्य चलाने की सलाह दिया करता था। राजा की अनुपस्थित में वही राज्य प्रशासन का निर्देशन

करने की अधिकारी होता था। प्रधान का स्थान शासन की दृष्टि में सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता था। शुक्र के शब्दों में वह सर्वदर्शी अर्थात् सम्पूर्ण प्रशासन का निर्देशक और निरीक्षक होता था। यही वास्तविक कार्य पालिका का संचालक होता था। ''सचिव को सेनापति भी कहा जाता था। इसको कार्य थे–किलों की सुरक्षा और मोर्चा बंदी की पूर्ण व्यवस्था, राजा को युद्ध के बारे में उचित सलाह देना, सेना को अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित रखना आदि। मंत्रि का तात्पर्य–विदेशमंत्री से होता था जो वैदेशिक मामलों में राजा को सलाह देता था। इसे सामदाम, दण्ड और भेद चारों सूत्रों वैदेशिक नीति से दक्षता प्राप्त करना अनिवार्य था।

प्रदविवाक–न्याय पालिका का प्रमुख होता था और अपीलीय न्यायालय का सबसे बड़ा अधिकारी होता था। इसे स्मृतियों में विवेचित सभी विधियों का पूर्ण ज्ञान रखना अनिवार्य था। पंड़ित धर्माधिकारी होता था जिसका कार्य था राज्य के कार्यों में शास्त्रों की आज्ञा का सामंजस्य करना, वह शास्त्रों का पूर्ण ज्ञाता होता था और विभिन्न मामलों में शास्त्रों की राय को व्यक्त करता था। समय के परिवर्तन के अनुसार–वेद रीति, लोकरीति, और देशरीतियों में परिवर्तन की वही सलाह भी देता था। सुमंत्र से तात्पर्य कोषाध्यक्ष से था। आमात्य–माल विभाग का प्रधान पदाधिकारी था जिसके पास गाँव की जमीनों नगरों, खदानों और देश के जंगलों की आमदनी संबंधी लेख होते थे। राज्य के आय की वसूली उसकी जिम्मेदारी थी। इस तरह वर्तमान प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली के सभी तत्व भारत की प्राचीन व्यवस्था में दृष्टिगोचर होते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे मौर्यकालीन राज्य व्यवस्था का जो चित्र खींचा गया है उसे देखकर आधुनिक संसदीय लोकतंत्र के संविधान शास्त्री दाँतों तले, उगंली दबाते हैं। वर्तमान जनतंत्रात्मक पद्धतियाँ जैसे–मंत्रिमंडल का संगठन, उसकी गोपनीयता, विभिन्न विभागों की अध्यक्षता, उनकी सम्मिलित और व्यक्तिगत गतिविधियाँ आज की कैबिनेट प्रणाली से बिल्कुल मिलती जुलती थीं। कौटिल्य के अनुसार–संकट काल में भी राजा को अपने मंत्रिमंडल के बहुमत की राय स्वीकार करना उचित था। परिषद् के सभाओं की कार्यवाइयाँ लिखी जाती थीं। सम्राट और व्यक्तिगत मंत्रियों के आदेशों पर परिषद में सम्मिलित रूप से पुनर्विचार करने का भी प्रावधान था। परिषद की राय से सम्राट अपने आदेशों को बदल भी देता था। उपरोक्त विवेचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि राजतंत्रात्मक व्यवस्था में भी प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था के तत्व थे।

प्राचीन भारत में स्वतंत्र शासन बहुत प्राचीन काल से ही गाँव भारत में प्रशासन के केन्द्र रह है उस समय जब आवागमन के मागों की विशेष कमी थी तथा नगरों का विकास नही हुआ था यही उस समय संस्कृति, समृद्धि और प्रशासन के स्थल थे।

गाँव की सरकार प्रायः गाँव के प्रधान द्वारा पलाई जाती थी इसे ''ग्रामनी'' कहा जाता था उसे अपना पद उत्तराधिकार से प्राप्त होता था। वह गाँव की सेना का भी प्रधान होता था वेदों में ''ग्रामना'' की गिनती रत्नों में की जाती थी। जातकों में इसे राजा कहा गया है। उसके प्रमुख कार्य थे– (1) गाँव की सुरक्षा करना (2) गाँव की आय की वसूली करना उसे उसके कार्यों में सहयोग प्रदान करने के लिए ग्राम परिषद होती थी तथा हिसाब–किताब में सहायता के लिए लेखापाल होता था। वह इस ग्राम परिषद का अध्यक्ष होता था। उसे पारिश्रमिक के रूप में लगान मुक्त जमीन और कुछ कर्जो के अदायमी की खुम दी जाती थी। वह केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी होता था। प्रत्येक गाँव की अपनी एक ग्राम सभा होती थी। और प्रत्येक भला आदमी उसका सदस्य होता था। इन सदस्यों को ''महाजन'' कहा जाता था। ग्रामों के संविधान इसी सभा द्वारा तैयार किया जाता था। गाँव की सरकार उप समितियों द्वारा भी चलाई जाती थी और इनके सदस्य अवैतनिक रूप से काम करने के लिए चुने जाते थे। इन ग्रामों में वार्ड होते थे तथा हर वार्ड से कई प्रत्याशी उप–समितियों की सदस्यता के लिए खड़े होते थे। सभी सदस्यों की पर्चियाँ एक घड़े में डाल दी जाती थीं और एक अबोध बालक जिस किसी की पर्ची को उठा लेता था वही उस कई का प्रतिनिधि मान लिया जाता था। चुनाव के लिए प्रचार की

आवश्यकता नहीं पड़ती थी। गाँव की उप समितियाँ गाँव के उद्यानों, मंदिरों व तालाबों की रखवाली, पानी का वितरण, झगड़ों का निपटारा करने के लिए अलग–अलग होती थी। उप समितियों के अलावा सामान्य निरीक्षण के लिए एक समिति होती थी। गुप्त काल में विहार, मध्य भारत, महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रदेशों में ग्राम सभाओं के साथ ग्राम परिषदें भी थी इनका कार्य–गाँव की आय वसूल करना, लगान की छूट के लिए, गाँव के झगड़ों को निपटाना आदि था। लगान की अदायगी न करने पर इन्हें लोगों की संपत्ति नीलाम करने का अधिकार था। इन परिषदों को ही आगे चलकर पंचायत कहा जाने लगा।

यह गाँव की सड़कों, तालाबों और सार्वजनिक स्थलों की मरम्मत कराती थी। गाँव के सभा क्षेत्रों व भवनों का भी निर्माण कराती थी। इन कार्यों के लिए इन्हें गाँव की आय का कुछ प्रतिशत तथा अपराधियों द्वारा अदा की गई जुर्माने की कुछ रकम दी जाती थी। केन्द्रीय सरकार इन्हें अनुदान के रूप में भी कभी–कभी विशेष निधि प्रदान कर देती थी। पंचायतों को अपने अधिकार केन्द्रीय सरकार से नहीं बल्कि परम्पराओं के आधार पर पुश्त दर पुश्त प्राप्त होते थे। शासन किसी का क्यों न हो, जब राज्य अधिक संगठित होते थे, तो पंचायतों पर वे नियंत्रण करते थे। केन्द्र सरकार के प्रतिनिधि सभाओं में कभी उपस्थित होकर उनके संविधानों में परिवर्तन कराते थे केन्द्रीय सरकार गांव की सरकारों का सामान्य निरीक्षण अवश्य करती थी। दो पंचायतों के बीच झगड़ा होने पर सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता था। प्राचीन भारत में न्याय का उत्तरदायित्व राज्य का नहीं बल्कि जनता प्राचीन भारत में न्याय प्रशासन का था गांव और नगरों की पंचायतें ही झगड़ों और अपराधों पर फैसला दिया करती थी। याज्ञवल्क्य ने तीन प्रकार की जनता की पंचायतों (पूग, श्रेणी और कुल) का वर्णन किया है। न्याय के लिए देश की विभिन्न पंचायतें उत्तरदायी थीं और बाद में जब राजा ने इस उत्तरदायित्व को अपने हाथ में लिया तब भी स्वायत्त संस्थाओं को न्याय का अधिकार राजा की ओर से हस्तांतरित था। कोई भी मामला ग्राम पंचायतों की सुनवाई के बिना सीधे केन्द्रीय सरकार के पास नहीं भेजा जा सकता था। केवल गंभीर जुर्म ही राज्य की तालुका अदालत या राजा तक पहुंचाए जाते थे।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है प्राचीन भारत में लोक तंत्र के अनेक तत्व विद्यमान थे सभा, समितियाँ, पंचायतें, गण, कुल, श्रेणी, संघ जनपद अनेक संगठनों के रूप में जनता द्वारा उनसमस्त कार्यों में हाथ बटाया जाता था जो आज प्राथमिक रूप से राज्य के कर्तव्य समझे जाते हैं। प्रशासन, विधान और न्याय तीनों ही क्षेत्रों में जनता का सहयोग था। यह सच है कि प्राचीन भारत में अत्यधिक समय तक राजतंत्रों की परम्परा रही है और कुछ शताब्दियों में ही गणराज्यों का प्रभुत्व रहा पर राजतंत्र और गणराज्यों दोनों में ही इसलिए विशेष अंतर नहीं था कि राजतंत्र का आधार निरंकुशता नहीं थी। प्राचीन भारत में राजा को एक ट्रस्टी के रूप में स्वीकार किया गया है राज्य कोश उसकी सम्पत्ति नहीं अपितु जनता की सम्पत्ति समझी जाती थी – ''बल प्रजारक्षणार्थ धर्माथे कोश संग्रहः।'' अगर वह इस धन का उपयोग निजी कार्यों के लिए करता था तो वह नरक का भागी समझा जाता था। राजा प्रजा के हित के लिए अर्थात लोककल्याणकारी राज्य लिए निजी सुख, सुविधा व आराम भी परित्याग करना एक आदर्श राजा का कर्तव्य समझा जाता था। आधुनिक प्रजातंत्रीय व्यवस्था में उसके उन परम्पराओं को शामिल करें जो हमारे देश समाज और संस्कृति को समृद्धि प्रदान कर सके–

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तुप्रियं हितम।।
क्लेशाय महते पृथ्वी स्वधर्म परिपालने।।

अर्थात् प्राचीन भारत राजतंत्र की सीमाएं भी सभा और समितियों का राजा पर नियंत्रण था। अधिकतर राजाओं का पूर्ण प्रशिक्षण होता था और गुप्त काल तक तो राजा प्रायः एक नाम धारी संप्रभु ही था। अधिकतर सत्ता जनता की विभिन्न संस्थाओं या मंत्रिपरिषदों के हाथ में होती थी। और गणराज्यों के उदय से जनता की

समृद्धि में एक नए युग का आविर्भाव हुआ। उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, स्मृतियों, महाभारत, पुराणों व कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि के आधार पर कहा जा सकता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों क्रमशः राजतंत्र व गणराज्यों का अस्तित्व रहा है। इन में यद्यपि वर्तमान लोकतंत्र की तरह वैश्विक मताधिकार, आम चुनाव दलगत राजनीति चुनाव प्रचार, संसदीय सर्वोच्च मंत्रिमण्डल की निरंकुशता, प्रेस की स्वतंत्रता, लंबे व्याख्यान, विधेयकों की प्रस्तुति आदि तो विजातीय तत्वों, फिर भी जिस प्रकार ग्रीस और रोम के नगर राज्यों में सीमित जन सहयोग, प्रशासन के संचालन में आवश्यक था, भारत में भी सामाजिक चेतना को साथ में लेकर राज्य का संचालन किया जाता था तथा प्रशासक प्रजा के लिए अर्थात् लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए उत्तरदायी था। आज तो हमारे देश में लोकतंत्र है और उसे दुनिया का सबसे बड़ा प्रजातंत्र होने का गौरव भी प्राप्त है लेकिन जिस तरह दलगत राजनीति, प्रतिस्पर्धा और मिथ्या प्रचार आधुनिक लोकतंत्र की व्यवहारिकताएँ हैं उसके चलते देश की समरसता, प्रेम, सहयोग, भाई–चारा, मानवता, नैतिक मूल्य सभी का तेजी से पतन हो रहा है निश्चय ही यह चिंता और चिंतन दोनों का विषय है कि हम प्राचीन भारत की परम्पराओं का अध्ययन गम्भीरता से करें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव–प्राचीन भारतीय शासन पद्धति भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद 1959
2. आचार्य दीपंकर, कौटिल्य कालीन भारत, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1989
3. अल्तेकर, ए0एस0–स्टेट एण्ड गवर्नमेंट इन एनशिअन्ट इंडिया, नई दिल्ली 1955
4. गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1975
5. चौधरी, राजधाकृष्ण–प्राचीन भारतीय राजनीति और शासन व्यवस्था, भारतीय भवन पटना 1973
6. पाण्डेय, डॉ0 उमेशचन्द्र, याज्ञवल्क्य स्मृति, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 1990
7. पाण्डेय रामनारायण दत्त शास्त्री, महाभारत गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2041
8. बाग्ची, योगेन्द्र नाथ, प्राचीन भारत की दण्डनीति, के एल0 मुखोपाध्याय फार्मा, कलकत्ता 1961
9. चतुर्वेदी, द्वारका प्रसाद, श्रीमद्वाल्मीकि रामायण रामनारायण लाल पब्लिसर एवं बुक सेलर, इलाहाबाद 1927
10. शास्त्री, उदयवीर, कौटलीय अर्थशास्त्र, मेहरचंद, लक्ष्मण दास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 1988
11. शास्त्री, हरगोविन्द, मनुस्मृति, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 1992

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

श्रीमद्भागवत का अभिव्यक्ति पक्ष

डॉ0 जय सिंह
सांख्यिकी शोध अधिकारी
उच्च शिक्षा निदेशालय उ0प्र0 इलाहाबाद

मानव मन में अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की लालसा अदम्य होती है। इसी से वह सौन्दर्य की ओर भी स्वाभाविक रूप से आकर्षित हो जाता है। वह अपनी अनुभूति को सुन्दरतम रूप में अभिव्यक्त करना चाहता है। कवि के विषय में तो यह बात और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस आधार पर काव्य के दो पक्ष हो जाते हैं अनुभूति पक्ष तथा अभिव्यक्ति पक्ष। श्रेष्ठ काव्य में इन दोनों पक्षों का उचित समन्वय होता है – अनुभूति पक्ष के अन्तर्गत भावों का समावेश किया जाता है और अभिव्यक्ति पक्ष में उन भावों की अभिव्यक्ति पर विचार किया जाता है। प्रथक–प्रथक दो पहलू होते हुए भी वे आपस में अन्योन्याश्रित होते हैं। कुशल कवि के काव्य में अनुभूति पक्ष एवम् अभिव्यक्ति पक्ष का सामंजस्य मिलता है।

भागवत के अभिव्यक्ति पक्ष में भागवत के लक्ष्य को ध्यान में रखा गया है, इसीलिए भागवत में संस्कृत भाषा के लौकिक और परकीया रूप का प्रयोग किया गया है। पुराणों का उद्देश्य सरल भाषा में गूढ़ रहस्यों का सामान्य जन को प्रस्तुत करना है। इसीलिए लौकिक और परकीया भाषा को आधार बनाया गया है।

भागवत में पुरंजन का आख्यान लौकिक भाषा द्वारा बताया गया है –

आसीत्पुरञजनों नाम राजा राजन वृहच्छवाः।
तस्याविज्ञात नामासीत सखा विज्ञात चेष्टितः।।[1]

(राजन पूर्वकाल में पुरञजन नाम का एक बड़ा यश यशस्वी राजा था। उसका अविज्ञात नामक एक मित्र था कोई भी उसकी चेष्टाओं को समझ नहीं सकता था।)

सत्तोपरि कृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः।
प्रथग्विषर्यगत्यर्थ तस्या यः कश्चनेश्वरः।।[2]

(उस नगर में जो नौ द्वार थे, उनमें से सात नगरी वे ऊपर और दो नीचे थे। उस नगर का जो कोई राजा होता उसके प्रथक–प्रथक देशों में जाने के लिए ये द्वार बनाये गये थे।)

एवं कर्मसु संसक्तः कामात्मा वाञ्चितोऽबुधः।
महिषी यद्यदीहते तत्त देवान्ववर्तत।।[3]

(इसका चित्त तरह–तरह के कर्मों में फंसा हुआ था और काम परवश होने के कारण वह मूढ़ रमणी के द्वारा ठगा गया था, उसकी रानी जो जो काम करती वही वह भी करने लगता था।)

इस कथा में विलासी राजा के जीवन का चित्रण किया गया है इस कथा से सामान्य जन की समझ में यह आ जाता है, कि विलासिता के कारण ऐसे प्रभुत्वशाली राजा का सर्वनाश हो जाता है तो साधारण मनुष्य का क्या हाल हो सकता है ? अर्थात् किसी बात को सीधे कहने से उसका प्रभाव साधारण जनता पर इतना नहीं पड़ता जितना रूपक बाँधकर कथा के द्वारा पड़ता है।

भागवत में राजा वेन की कथा लौकिक भाषा द्वारा बतलायी गई है –

स आरूढ़नृपस्थान उन्नद्धोऽविभूलिभिः।
अवमेने महाभागान् स्तब्धः सम्भावितःस्वतः।।[4]

ख्राज्यासन पाने पर वेन आठों लोक पालों की ऐश्वर्यकला के कारण उन्मत्त हो गया और अभिमान वश अपने को ही सबसे बड़ा मानकर महपुरुषों का अपमान करने लगा। ,

इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयों रूढ़मन्वयः।
निज घ्रुर्हुङकृतैर्वेन हतमच्युत निन्दया।।[5]

(इस प्रकार अपने छिपे हुए क्रोध को प्रकट कर उन्होंने उसे मारने का निश्चय कर लिया वह तो भगवान् की निन्दा करने के कारण पहले ही मर चुका था इसलिए केवल हुकारों से ही उन्होंने उसका काम तमाम कर दिया।)

अर्थात् वैभव प्रभुत्वशाली होने के बाद भी हरि निन्दा के कारण राजा वेन की क्या दशा हुई? भागवत काल में लौकिक और परकीया दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है। परकीया में प्रत्यक्ष रूप से अंसभव दिखने वाले वैज्ञानिक सिद्धान्तों का निरूपण किया जाता है और इसमें धर्म को इतिहास के द्वार समझाया जाता है।

तत्राश्चर्य मयां दृष्ट श्रूयतां तन्मुनीश्वराः।
एका तु तरूणी तत्र निषण्णा खिन्नमानस।।
वृद्धौ द्वौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्तावचेतनौ।
शुश्रूपन्ती प्रबोधन्ती रूदती च तयोः पुरः।।[6]

(अर्थात् नारद ने कहा मैनें एक बडा आश्चर्य देखा वहाँ एक युवती स्त्री खिन्न बैठी है। उसके पास दो वृद्ध पुरुष अचेत अवस्था में पड़े जोर–जोर से सांस ले रहे हैं। वह तरुणी उनकी सेवा करती हुई उन्हें चेत कराने का प्रयत्न करती है। और कभी उनके आगे रोने लगती है।)

इसमें भक्ति को माता और ज्ञान, वैराग्य को पुत्र बताया है। कलियुग के कारण भक्ति को युवती और ज्ञान, वैराग्य को वृद्ध बताया है, जबकि माता का वृद्ध होना और पुत्रों का तरुण होना स्वाभाविक है। इस प्रकार यहाँ परकीया भाषा में ज्ञान और वैराग्य की दशा को दिखाया गया है।

इस भाषा में धर्म के किसी न किसी अंग का वर्णन दृष्टान्त के द्वारा दिया गया है। सत्य की महिमा बताने के लिए महाराज हरिश्चन्द्र की कथा, भक्ति की महिमा बताने के लिए ध्रुव और प्रह्लाद की कथा का वर्णन भागवतकार ने किया है।

मन्ये धनाभिजन रूपतपः श्रुतोजस्तेजः प्रभाव बल पौरष बुद्धि योगाः।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयुथपाय।।[7]

अर्थात प्रह्लाद जी कहते हैं धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरष, बुद्धि, और योग ये सभी गुण परमपुरूष भगवान् को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं हैं। परन्तु भक्ति से तो भगवान् गजेन्द्र पर भी सन्तुष्ट हो गये थे। इस कथा के माध्यम से भागवतकार भक्ति की महिमा बताता है।

शैली :– भागवत की भाषा जितनी सुबोध है उसकी शैली भी उतनी हृदयग्राहिणी है। भागवत का मुख्य उद्देश्य जनता के हृदय तक वैदिक तत्वों का पहुँचाना है। भागवतकार ने लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही पात्रों और शैली का भी संयोजन किया है। उसने परीक्षित को एक सामान्य जन के रूप में जिज्ञासु बनाया है और व्यास जी को उसकी जिज्ञासा शान्त करने बाला बनाया है। और फिर प्रश्नोत्तर शैली में भागवत के कथ्य को आगे बढ़ाया है। जो प्रश्न सामान्य जन के मस्तिष्क में आते हैं वही परीक्षित के मन में भी खड़े हो जाते हैं, जिनका उत्तर भागवतकार देता है, जिससे सामान्य जन की जिज्ञासा शान्त होती है और उन्हें रस का पूर्ण अनुभव होता है।

महर्ष एतर्द्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति।[8]

(महर्ष! लोगों को जो ये ऊँची–नीची गतियाँ प्राप्त होती हैं, उनमें इतनी विभिन्नता क्यों है।)

समः प्रियः सुहष्द्रहान भूतानां भगवान् स्वयम्
इन्द्रस्थार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषयो यथा।।[9]

(भगवन ! भगवान तो स्वभाव से ही भेदभाव रहित हैं, सम हैं, समस्त प्राणियों के प्रिय, और सहृदय हैं, फिर उन्होंने जैसे कोई साधारण मनुष्य भेदभाव से अपने मित्र का पक्ष ले और शत्रुओं का अनिष्ट करे, उसी प्रकार इन्द्र के लिए दैत्यों का वध क्यों किया।)

लेखन का अभिप्राय इतना ही है कि उसके द्वारा प्रतिपादित अर्थ बड़ी सरलता से अनायाश रूप में पाठकों के हृदय तक पहुँच जाय। इसके लिए आवश्यक है कि उपमायें घरेलू हों अर्थात लोक सामान्य में अनुभूत तथ्य के ऊपर ही वे आधारित हों जिस प्रकार काव्य की उपमा शास्त्रीय विषयों पर प्रायः अवलम्बित होने में ही अपना गौरव बोध करती है, उस प्रकार की अवस्था भागवत उपमा की नहीं है।

भागवत का लेखक अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन में, अपने आस–पास के क्षेत्र में जो कुछ अपनी इन्द्रियों से अनुभव करता है उसी को तथ्यों के विशदीकरण के लिए प्रयुक्त करता है। यही कारण है कि भागवतकार उन्हीं उपमाओं और दृष्टान्तों को प्रयोग में लाता है, जो सामान्य जन जीवन से सम्बन्ध रखती हैं तथा जिन्हें समझने में सामान्य जन को विशेष क्लेश उठाना नहीं पड़ता है। जैसे काल से ही प्राणी संयुक्त होते हैं और काल से ही वियुक्त होते हैं। इसका भागवतकार दैनिक जीवन उपमा लेकर समझाते हुए कहता है –

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः।।[10]

जैसे जल के वेग से बालू के कण एक दूसरे से जुड़ते और बिछुड़ते रहते हैं वैसे ही समय के प्रवाह में प्राणियों का भी मिलन और बिछोह होता रहता है।

इसी प्रकार संसार अनित्य है, प्राणी यहाँ जनमते हैं कुछ दिनों तक अपना कार्य करते हैं और फिर मर कर चले जाते हैं। फलतः एक प्राणी का दूसरे से मिलना क्षणिक है, अस्थायी है। इस सिद्धान्त को समझाते हुए भागवतकार कहता है –

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च।
एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया।।[11]

(राजन ! जैसे कुछ बीजों से दूसरे बीज उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही भगवान की माया से प्रेरित होकर प्राणियों से अन्य प्राणी उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं।)

वयं च त्वंच यं चेमे तुल्य कालाश्चराचराः।
जन्म मृत्योर्यथा पश्चात प्राड़नैवमधुनापि भोः।।[12]

(राजन ! हम, तुम और हम लोगों के साथ इस जगत में जितने भी चराचर प्राणी वर्तमान हैं – वे सब अपने जन्म के पहले नहीं थे और मृत्यु के पश्चात् नहीं रहेंगे। इससे सिद्ध है कि इस समय भी उनका अस्तित्व नहीं है। क्योंकि सत्य वस्तु तो सब समय एक सी रहती है।)

इसी प्रकार शरीर की अनित्यता के विषय में भागवतकार कहता है –

यत् प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति।
तदीयरससम्पुर्ष्टे काये का नाम नित्यता।।[13]

(जो अन्न प्रातः काल पकाया जाता है, वह सायंकाल तक बिगड़ जाता है, फिर उसी के रस से पुष्ट हुए शरीर की नित्यता कैसी।)

इसी प्रकार शुद्ध चित्त में परमात्मा के प्राप्त करने को पुष्प की गन्ध का घ्राणेन्द्रियों तक पहुँचने की तुलना करते हुए भागवतकार कहता है।

यथा वातस्थो घ्राणमावृङक्ते गन्ध आशयात्।
एवं योगरतं चेत आत्मानम विकारि यत्।।[14]

(जिस प्रकार वायु के द्वारा उड़कर जाने वाला गन्ध अपने आश्रय पुष्प से घ्राणेन्द्रियों तक पहुँच जाता है, उसी प्रकार भक्तियोग में तत्पर और राग–द्वेषादि विकारों से शून्य चित्त परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।)

इसी प्रकार लौकिक निरीक्षण का दृष्टान्त भागवत में बड़ा ही सुन्दर है। संसार के विषयों की जितनी गम्भीर अनुभूति होती है उसका परिणाम भी उतना ही सार्वभौम तथा सर्वकालिक होता है। इसी सिद्धान्त के संन्दर्भ में भागवतकार कहता है –

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम।
संदिग्धो हि हतो मन्त्रों व्यमृचित्तो हतो जपः।।[15]

(जो ज्ञान दृढ़ नहीं होता है वह व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार ध्यान न देने से श्रवण का, सन्देह से मंत्र का और चित्त के इधर–उधर भटकते रहने से जप का भी कोई फल नहीं होता।)

भागवत में अध्यात्मिक उपमायें :–

भागवतकार नें वर्षा, ऋतु तथा शरद् ऋतु के वर्णन में अध्यात्मिक उपमाओं का प्रयोग किया है। जो अपनी साहित्यिक सौन्दर्यशीलता तथा अति गम्भीर दार्शनिक चिंतन के कारण संस्कृत–साहित्य में प्रमुख स्थान रखती हैं; वस्तु–तत्व को सहज बनाने के उद्देश्य से भागवत कार ने ऐसी सहज उपमाओं का प्रयोग किया है। भागवत में बिजली की क्षणिक चमकने की उपमा क्षणिक चित्त कामिनियों के पुरूषों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार से दी गई है –

लोक बन्धुषु मेघषु विद्युतश्चलसौहृदाः।
स्थैर्य न चक्रुः कामिन्यः पुरूषेषु गुणिष्विव।।[16]

(यद्यपि बादल बड़े लोकोपकारी हैं फिर भी बिजलियाँ उनमें स्थिर नहीं रहतीं ठीक वैसे ही जैसे चपल अनुराग वाली कामिनी स्त्रियाँ गुणी पुरुषों के पास भी स्थिर भाव से नहीं रहतीं।)

इसी प्रकार भागवत में चाँद की चाँदनी और बादलों की उपमा मनुष्य और उससे आभासित अहंकार से की गई है –

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजि तैघनैः।
अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरूषो यथा।।[17]

(यद्यपि चन्द्रमा की उज्ज्वल चाँदनी से बादलों का पता चलता है, फिर भी उन बादलों ने ही चन्द्रमा को ढ़ककर शोभाहीन बना दिया – ठीक वैसे ही जैसे पुरुष के आभास से आभासित होने वाला अहंकार ही उसे ढ़ककर प्रकाशित नहीं होने देता।)

इसी प्रकार सारस और कामी पुरुष का उदाहरण देते हुए भागवतकार कहता है –

सरस्वशान्त रोध स्सु न्यूषुरङगापि सारसाः।
गृहेष्वशान्त कृत्येषु गाम्या इव दुराशयाः।।[18]

(तालाबों के तट काँटे कीचड़ और जल के बहाव के करण प्रायः अशान्त ही रहते हैं, परन्तु सारस एक क्षण

के लिए भी उन्हें नहीं छोड़ते – जैसे अशुद्ध हृदय वाले विषयी पुरुष काम – धंधे के झंझट से कभी छुटकारा नहीं पाते, फिर भी घरों में ही पड़े रहते हैं।)

भागवत में व्यंजित वस्तु – तत्त्व को सरल और हृदयंगम बनाने के लिए भागवतकार ने इस प्रकार की दैनिक जीवन से उपमाऐं दी हैं। वर्षा ऋतु की उपमा देते हुए भागवतकार कहता है

जलौघैर्निराभिद्यन्त सेतवो वर्ष तीश्वरे।
पाखण्डीनामस द्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा।।[19]

(अर्थात वर्षा ऋतु में इन्द्र की प्रेरणा से मूसलधार वर्षा होती है, इसमें नदियों के बाँध और खेतों की मेडें टूट–फूट जाती हैं जैसे कलियुग में पाखण्ड़ियों के तरह–तरह के मिथ्या मतवादों से वैदिक मार्ग की मर्यादा ढ़ीली पड़ जाती है।)

इसी प्रकार वर्षा में घास मनमाने तौर से बढ़कर रास्ता रोक देती है, यात्रियों को जिसमें मार्गों की सत्ता के विषय में सन्देह उत्पन्न होता है। इसके लिए उपमान दिया है जैसे द्विजों के द्वारा अभ्यास न की गई कालहत श्रुतियाँ –

मार्गा बभूवुः सन्दिग्धस्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कष्ताः।
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव।।[120]

(अर्थात् जो मार्ग कभी साफ नहीं किये जाते थे वे घास से ढ़क गये और उनको पहचानना कठिन हो गया – जैसे जब द्विजाति वेदों का अभ्यास नहीं करते, तब कालक्रम से वे उन्हें भूल जाते हैं।)

इसी प्रकार शरद् ऋतु के द्वारा भागवतकार विभिन्न उपमाएँ देता हुआ कहता है –

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः।
भष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया।।[21]

(अर्थात शरद् ऋतु में कमलों की उत्पत्ति से जलाशयों के जल ने अपनी सह स्वच्छता प्राप्त कर ली है ठीक वैसे ही जैसे योग भ्रष्ट पुरूषों का चित्त फिर से योग का सेवन करने से निर्मल हो जाता है।)

व्योम्नोऽब्दं भूत शाबल्यं भुवः पंकमपां मलम्।
शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णें भक्तिर्यथाशुभम्।।[22]

(शरद् ऋतु ने आकाश के बादल, वर्षाकाल के बढ़े हुए जीव, पृथ्वी की कीचड़ और जल के मटमैलेपन को नष्ट कर दिया जैसे भगवान की भक्ति ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यायियों के सब प्रकार के कष्टों और अशुभों का झटपट नाश कर देती है।)

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः।
यथा त्यक्तैष्णाः शान्ता मुनयों मुक्तकिल्बिषाः।।[23]

(बादल अपने सर्वस्व जल का दान करके उज्जवल कांति से सुशोभित होने लगे – ठीक वैसे ही जैसे लोक – परलोक, स्त्री, पुत्र, धन सम्पत्ति सम्बन्धी चिन्ता और कामनाओं का परित्याग कर देने पर संसार के बन्धन से छूटे हुए परम शान्त सन्यासी शोभायमान होते हैं।)

नै वा विदन् क्षीय माणं जलं गाधजले चराः।
यथाऽऽयुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढ़ाः कुटुम्बिनः।।[24]

(छोटे–छोटे गड्ढ़ों में भरे हुए जल के जलचर यह नहीं जानते कि इस गड्ढ़े का जल दिन – पर – दिन सूखता जा रहा है– जैसे कुटुम्ब के भरण–पोषण में भूले हए मूढ़ यह नहीं जानते कि हमारी आयु क्षण–क्षण क्षीण हो रही है।)

गाधवारिचरास्तापमविन्दंछरदर्कजम्।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः।[25]

(थोड़े जल में रहने वाले प्राणियों को शरत्कालीन सूर्य की प्रखर किरणों से बड़ी पीड़ा होने लगी जैसे अपनी इन्द्रियों के वश में रहने वाले कृपण एवम् दरिद्र कुटुम्बी को तरह – तरह के ताप सताते रहते हैं।)

भागवत की शैली की एक विशेषता यह भी है कि भागवत की रचना वक्ता – श्रोता पद्धति में हुई है। कथा की परम्परा बताने तथा शंका समाधान के रूप में कथा कही गयी है –

अज्ञान ध्वान्तविध्वंस कोटि सुर्य समप्रभ।
सूताख्याहि कथा सारं मम कर्णरसायनम्।।[26]

(शौनकजी बोले – सूतजी! आपका ज्ञान अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिए करोड़ों सूर्यों के समान है। आप हमारे कानों के लिए रसायन – अमृतस्वरूप सारगर्भित कथा कहिये।)

सनकाद्यैः पुरा प्रोक्तं नारदाय दयापरैः।।[27]

(पूर्वकाल में इसे दयापरायण सनकादि ने देवर्षि नारद को सुनाया था।)

यद्यपि ब्रह्म सम्बन्धाच्छुतमेतत्सुरर्षिणा।[28]

(यद्यपि देवर्षि ने पहले ब्रह्माजी के मुख से इसे श्रवण कर लिया था।)

भागवत में अपनी महत्ता को लेकर अतिश्योक्तिपूर्ण कथन मिलते हैं –

राज्ञोमोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धातापि विस्मितः।
सत्यलोके तुलां वद्ध्वातोल यत्साधनान्यजः।।[29]

(पूर्वकाल में श्रीमद्भागवत के श्रवण से ही राजा परीक्षित् की मुक्ति देखकर ब्रह्माजी को भी बड़ा आश्चर्य हुआ था। उन्होंने सत्यलोक में तराजू बाँधकर सब साधनों को तौला।)

लघुन्ययानि जातानि गौरवेण इदं महत्।
तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः।।[30]

(अन्य सभी साधन तौल में हल्के पड़ गये, अपने महत्त्व के कारण भागवत ही सबसे भारी रहा यह देखकर सभी ऋषियों को बड़ा विस्मय हुआ।)

मैनिरे भगवद्रुपं शास्त्रं भागवतं कलौ।
पठनाच्छवणत्सद्यो वैकुंठफलदायकम्।।[31]

(उन्होंने कलियुग में इस भवद्रुप भागवतशास्त्र को ही पढ़ने सुनने से तत्काल मोक्ष देने वाला निश्चय किया।)

भागवत में रूपक वर्णन

भागवत में रूपक अलंकार का आश्रय लेकर बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है, यह वर्णन इतना विस्तृत तथा विशद है कि वह विशिष्ट पदार्थ वर्णन के समकाल ही मानस नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाता है। ऐसे प्रसंग में 'संसार' के स्वरूप का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। कभी वह समुद्र के साथ और कभी वह अटवी के साथ रूपक–विधया संतुलित कर वर्णित है। भवाटवी का बड़ा विशद वर्णन भागवत के पंचम स्कन्ध के 13 तथा 14 अध्यायों मे दिया गया है 'अटवी' का आरोप संसार के ऊपर परम्परित रूपक के द्वारा करता हुआ कहता है –

दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितोरजस्तमः सत्त्वविभक्त कर्म दृक्।
स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन् भवाटवीं याति न शर्म विन्दति।।[32]

(राजन! यह जीव समूह सुख रूप धन में असक्त देश–देशान्तर में घूम–घूमकर व्यापार करने वाले व्यापरियों के दल के समान है। इसे माया ने दुस्तर प्रवृत्ति मार्ग में लगा दिया है; इसलिए इसकी दृष्टि सत्त्विक, राजस, तामस भेद से नाना प्रकार के कर्मो पर ही जाती है। उन कर्मो में भटकता–भटकता यह संसार रूप जंगल में पहुँच जाता हैं वहाँ इसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती।)

अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा।
अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधार्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित्।।[33]

(कभी इसे दिखायी न देने वाले झीगुरों का कर्णकटु शब्द सुनायी देता है, कभी उल्लुओं की बोली से इसका चित्त व्यथित हो जाता है। कभी इसे भूख सताने लगती है, तो यह निन्दनीय वृक्षों का ही सहारा टटोलने लगता है और कभी प्यास से व्याकुल होकर मृगतृष्णा की और दौड़ लगाता है।)

द्रमेषु रंस्यन् सुतदार वत्सलो
व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने।
क्वचित्प्रमादादिगरिकन्दरे पतन्
वल्लीं गृहीत्वा गज भीत आस्थितः।।[34]

(वहाँ वृक्षों में क्रीड़ा करता हुआ पुत्र और स्त्री के स्नेहपाश में बँध जाता है। इसमें मैथुन की वासना इतनी बढ़ जाती है कि तरह–तरह के दुर्व्यवहारों से दीन होने पर भी यह विवश होकर अपने बन्धन को तोड़ने का साहस नहीं कर सकता। कभी असावधानी से पर्वत की गुफा में गिरने लगता है तो उसमें रहने वाले हाथी से डरकर किसी लता के सहारे लटका रहता है।)

भागवत में यज्ञवराह के वर्णन में इस रूपकमयी शैली का प्रयोग किया गया है। वराह अवतार धारण कर नारायण ने वेदों का उद्धार किया, पृथ्वी का पाताल से उठाकर स्वस्थान पर प्रतिष्ठित किया जिससे मानवों की लोक यात्रा का साधन सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर वराह यज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित किया गया हैं। भागवतकार ने यज्ञ वराह का बड़ा ही विशद् तथा गम्भीरार्थ प्रतिपादक स्वरूप में वर्णन किया है –

इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसानद्य।
वराहतोको निरगादंगुष्ठपरिमाणकः।।[35]

(ब्रह्मा जी इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उनके नासछिद्र से अकस्मात् अंगूठे के बराबर आकार का एक वराह – शिशु निकला।)

इति मीमांसतस्तस्य ब्रहमणः सह सूनुभिः।
भगवान् यज्ञपुरूषो जगर्जागेन्द्रसन्नि भः।।[36]

(ब्रह्मा जी और उनके पुत्र इस प्रकार सोच ही रहे थे कि भगवान् यज्ञपुरुष पर्वताकार होकर गरजने लगे।)

घ्राणेन पृथ्व्याः पदवी विजिघ्रन
क्रोडापदेशः स्वयमध्वरांगः।
करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्या
मुद्वीक्ष्य विप्रान् गृणतोऽविशत्कम्।।[37]

(भगवान स्वयं यज्ञपुरूष हैं तथापि सूकररूप धारण करने के कारण अपनी नाक से सूँघ–सूँघकर पृथ्वी का पता लगा रहे थे। उनकी दाढ़ें बड़ी कठोर थीं। इस प्रकार यद्यपि के बड़े क्रूर जान पड़ते थे, तथापि अपनी स्तुति करने वाले मरीचि आदि मुनियों की ओर बड़ी सौम्य दृष्टि से निहारते हुए उन्होंने जल में प्रवेश किया।)

रूपं तवैततन्ननु दुष्कृतात्मनां
दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम्।

छंदांसि यस्य त्वचि बर्हिरोम
स्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषुचातुर्होत्रम्।।[38]

(देव ! दुराचारियों को आपके इस शरीर का दर्शन होना अत्यन्त कठिन है; क्योंकि यह यज्ञरूप है। इसकी त्वचा में गायत्री आदि छंद रोमावली में कुश, नेत्रों में घृत तथा चारों चरणों में होता अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा – इन चारों ऋत्विजों के कर्म हैं।)

सोमस्तु रेतः सवानान्यवस्थितिः
संस्थाविभेदास्तव देव धातवः।
सत्राणि सर्वाणि शरीर सन्धि
स्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टि बन्धनः।।[39]

(देव ! आपका वीर्य सोम है; आसन (बैठना) प्रातः सवनादि तीन सवन है; सातों धातु अग्निष्टोम अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम नाम की सात संस्थाएँ हैं, तथा शरीर की संन्धियाँ सम्पूर्ण सत्र हैं। इस प्रकार आप सम्पूर्ण यज्ञ (सोमरति याग) और क्रतु (सोमसहित याग) रूप है। यज्ञानुष्ठान रूप इष्टियाँ आपके अंगों को मिलाये रखने वाली मांस–पेशियाँ हैं।)

इसी प्रकार शरीर का रूपक बाँधते हुये भगवतकार बड़ा ही विशिष्ट और सांगोपांग रूपक बांधता हुआ कहता है –

आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि
हयान भीषून् मन इन्द्रियेशम्।
वर्त्मान मात्रा धिषणों च सूत
सत्त्वं बृहद बन्धुरमीशसृष्टम।।
अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ
चक्रेऽभिमानंरथिनं च जीवम्।
धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति
शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम्।।[40]

(उपनिषदों में कहा गया है कि शरीर रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, इन्द्रियों का स्वामी मन लगाम है, शब्दादि विषय मार्ग हैं, बुद्र्धि सारथि है, चित्त ही भगवान के द्वारा निर्मित बाँधने की विशाल रस्सी है, दस प्राण धुरी है, धर्म और अर्धम पहिये हैं और इनका अभिमानी जीव रथी कहा गया और परमात्मा लक्ष्य है।)

भागवत में सुन्दर कथनों तथा सूक्तियों का भी विशद् वर्णन किया गया है। इन सूक्तियों के द्वारा भागवतकार ने सामान्य जन को विद्वानों के दीर्घकाल के अनुभव से परिचित कराया। सूक्तियों में विद्वानों के दीर्घकाल के अनुभव से जायमान परिणत उपदेश दिये गये हैं। ये सूक्तियों नीतिशास्त्रों के नीतिवचनों के समान नीरस न होकर सरस, सहज और सुबोध हैं। इनमें सामान्य जन को उनके वातावरण से ही सम्बन्धित सहस विचारों के द्वारा श्रेष्ठ कथन कहे गये हैं।

इस प्रकार भागवतकार का उद्देश्य वेद के गूढ़ ज्ञान को सरल और सहज भाषा में प्रस्तुत कर साधारण मनुष्य के लिये सहज बनाना था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्भागवत महापुराण–गीता प्रेस, गोरखपुर
2. पुराण विमर्श आचार्य बदलेदव उपाध्याय–प्रकाशक चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

3. भागवत् दर्शन–डॉ0 हरबंशलाल शर्मा
4. भारतीय दर्शन–आचार्य बलदेव उपाध्याय–प्रकाशक चौखम्बा ओरियन्टालिया ,वाराणसी
5. श्रीमद्भागवत, चतुर्थस्कन्ध, अध्याय 14, श्लोक 34
6. श्रीमद्भागवत, माहात्म्य, प्रथम स्कन्ध, श्लोक 38, 39
7. श्रीमद्भागवत सप्तम स्कन्ध, अध्याय 9, श्लोक 9
8. श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, अध्याय 26, श्लोक 1
9. श्रीमद्भागवत सप्तम स्कन्ध, अध्याय 1, श्लोक 1
10. श्रीमद्भागवत षष्टम स्कन्ध, अध्याय 15, श्लोक 3
11. श्रीमद्भागवत, षष्टम स्कन्ध, अध्याय 15, श्लोक 4
12. श्रीमद्भागवत षष्टम स्कन्ध, अध्याय 15, श्लोक 5
13. श्रीमद्भागवत माहात्मय, अध्याय 5, श्लोक 61
14. श्रीमद्भागवत, तष्तीय स्कन्ध, अध्याय 29, श्लोक 20
15. श्रीमद्भागवत माहात्मय, अध्याय 5, श्लोक 73
16. श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20, श्लोक 17
17. भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20, श्लोक 19
18. भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20, श्लोक 22
19. भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20, श्लोक 23
20. भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20, श्लोक 16।
21. भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20, श्लोक 33।
22. भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20 श्लोक 34
23. भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20 श्लोक 35
24. भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20 श्लोक 37
25. भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय 20 श्लोक 38
26. भागवत माहात्म्य, अध्याय 1, श्लोक 4
27. भागवत माहात्म्य, अध्याय 1, श्लोक 21
28. भागवत माहात्म्य, अध्याय 1, श्लोक 22
29. भागवत माहात्म्य, अध्याय 1, श्लोक 18
30. भागवत माहात्म्य, अध्याय 1, श्लोक 19
31. भागवत माहात्म्य, अध्याय 1, श्लोक 20
32. श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 1
33. श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 5
34. श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 18
35. श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 18
36. श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 23
37. श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 28
38. श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 35
39. श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध, अध्याय 13, श्लोक 38
40. श्रीमद्भागवत, सप्तम स्कन्ध, अध्याय 15 श्लोक 41, 42

(Footnotes)

7. श्रीमद्भागवत सप्तम स्कन्ध, अध्याय 9, श्लोक 9
8. श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, अध्याय 26, श्लोक 1
9. श्रीमद्भागवत सप्तम स्कन्ध, अध्याय 1, श्लोक 1

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

बौद्ध कालीन शिक्षा पद्धति में गुरु–शिष्य संबंध का महत्व

डॉ0 (श्रीमती) शालू
प्रवक्ता–समाजशास्त्र,
सूरज प्रसाद राजकीय बा. इ. का., झांसी (उ0प्र0)

डॉ0 सुशील कुमार सिंह गौतम
प्रवक्ता, शिक्षा संस्थान
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ0प्र0)

प्राचीन भारत के इतिहास में छठी शताब्दी ई0पू0 का काल अनेकानेक नवीन परिवर्तनों का काल माना जाता है। उस समय जनजीवन की परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकने के कारण वैदिक कालीन अथवा ब्राह्मणीय शिक्षा में विशृंखलता के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे। आध्यात्मिकता विलुप्त हो गयी थी और वैदिक धर्म में कर्मकाण्ड और बाह्य आडंबर शेष रह गये थे। इसी समय गौतम बुद्ध (563 ई0पू0–483 ई0पू0) का आविर्भाव हुआ। गौतम बुद्ध ने शिक्षा को समयानुकूल बनाने के विचार से उसके कलेवर में परिवर्तन करके बौद्ध शिक्षा का सूत्रपात किया। बौद्ध शिक्षण पद्धति का आरम्भ स्वयं महात्मा बुद्ध ने किया था जिसमें सरल और सुबोध जनभाषा में जीवन के तत्वों की चर्चा की थी। व्याख्यान और प्रश्नोत्तर के आधार पर विचारों का प्रस्तुतीकरण किया गया था। उन्होंने धर्म के प्रचार में प्रासंगिक उपमा, दृष्टांत, उदाहरण, कथा आदि का समावेश किया था जिससे उसका तत्त्व श्रोताओं को सरलतापूर्वक बोधगम्य होता था। विचार–विनिमय, तर्क और पर्यालोचन को बौद्ध धर्म में प्रतिष्ठित किया गया। बौद्ध शिक्षा पद्धति में सत्य, दार्शनिक तथ्य, तर्क, पर्यवेक्षण, मनन आदि पर अधिक बल दिया गया। बुद्ध के पश्चात् समाज में बौद्ध शिक्षा का क्रमशः प्रसार होने लगा। बौद्ध मठों और विहारों के माध्यम से बौद्ध शिक्षा का प्रचार–प्रसार भारत के विभिन्न भागों में हुआ।

महात्मा बुद्ध ने जातिगत भेदभावों से अलग सभी वर्गों में धर्म का प्रचार–प्रचार किया। उन्होंने मोक्ष प्राप्ति के लिए वैदिक कर्मकाण्ड के स्थान पर ज्ञान प्राप्ति, अंहिसा, सदाचार एवं पवित्र जीवन आदि पर अधिक बल दिया था। महात्मा बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धार्मिक क्रांति का प्रभाव भारतीय शिक्षा पर भी पड़ा। यह वैदिक शिक्षा प्रणाली से भिन्न होते हुए भी अनेक बातों में समानता रखती थी, जैसा कि डॉ0 आर0 के0 मुखर्जी ने लिखा है–''बौद्ध शिक्षा उचित रूप से विचार किये जाने पर प्राचीन हिन्दू अथवा ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली का केवल एक रूप है।''[1] बुद्ध ने एक व्यावहारिक आचार–परक धर्म दर्शन को तो विकसित किया ही साथ ही एक समन्नुत शिक्षा प्रणाली को भी जन्म दिया। जिसने कालांतर में देश–काल को प्रभावित किया। बौद्ध चिन्तन धारा इस देश की सांस्कृतिक परम्पराओं में समन्वित हो गई और आज भी इस चिंतन में विश्वास रखने वाले तथा इसके अनुरूप जीवन व्यतीत करने वाले लाखों की संख्या में इस देश में विद्यमान हैं। बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षुओं द्वारा एक नई शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ जिसे बौद्ध शिक्षा प्रणाली कहते हैं। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षा से तात्पर्य बौद्ध मठों एवं विहारों में चलने वाली शिक्षा से लिया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में शिक्षा ज्ञान का पर्याय न होकर ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार की जाने लगी थी। बौद्ध शिक्षा प्रणाली के उद्देश्य एवं आदर्श अत्यन्त व्यापक थे।

वैदिक युग के समान ही बौद्ध काल में भी गुरुकुल पद्धति के लक्षण दिखाई देते हैं। बौद्ध काल में मठ, विहार एवं संघाराम गुरुकुल पद्धति पर ही आधारित थे। ये पर्वतों, गुफाओं के मध्य स्थापित होते थे जो एकान्त में तथा निरापद होते थे। जातकों से ज्ञात होता है कि आचार्यगण काशी जैसे भव्य नगरों का परित्याग कर हिमालय की कन्दराओं में ज्ञान प्राप्ति हेतु चले जाते थे।[2] गुरुकुल में रहते हुए विद्यार्थी सादा जीवन व्यतीत करते थे। उन्हें कठोर अनुशासन में रहना होता था। उन्हें घर जाने की अनुमति नहीं होती थी तथा असुविधाओं के

बीच रहना पड़ता था। वहाँ रहन–सहन, आहार–विहार का ऐसा क्रम निर्धारित था जिससे धनी और निर्धन के बीच अंतर न दिखाई दे। छात्र सुसम्पन्न परिवारों जैसी सुविधायें नहीं प्राप्त कर पाते थे। छात्रों को यहाँ अनेक कार्य अपने श्रम से मिलजुलकर करने पड़ते थे। इस प्रकार गुरुकुल पद्धति सुसम्पन्न परिवारों के दुर्बलित बालकों को ठीक करती तथा उन्हें अधिक दक्ष, आत्मनिर्भर तथा व्यवहार चतुर बना देती थी। गुरुकुल में इन असुविधाओं के होते हुए भी दूर–दूर के विचारशील व्यक्ति अपने बालकों को बड़ी उत्कंठा से उनमें प्रवेश कराते थे। ये अभिभावक अपने बालकों को आंखें के आगे सुविधाओं के बीच रखने की स्वाभाविक इच्छाओं का नियंत्रण करते हुए छाती पर पत्थर रखकर फूल से बच्चों को कष्ट साध्य जीवन में प्रसन्नता पूर्वक भेजते थे।

डॉ0 ए0 एस0 अल्तेकर के अनुसार शिक्षा आरम्भ करने की न्यूनतम आयु 8 वर्ष थी। यह आयु उन्हीं बालकों के लिए निर्धारित की गई थी जो संघ में प्रवेश करने का निश्चय कर लेते थे। संघ में प्रवेश करने वाला बालक किसी भिक्षु को अपने शिक्षक के रूप में चुनता था। गुरुकुल में रहते हुए विद्यार्थी सादा जीवन व्यतीत करते थे। उन्हें कठोर अनुशासन में रहना होता था। जहाँ एक ओर यह कहा गया है कि विहारों, संघों में विद्यार्थियों को कठोर परिश्रम करने पड़ते हैं वहीं जातकों से ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि तक्षशिला में जो छात्र, गुरुदक्षिणा का शुल्क अग्रिम चुका देते थे उनसे गृहस्थी का कोई भी काम नहीं लिया जाता था। ऐसे शिष्य आचार्य के घरों में उनके ज्येष्ठ पुत्र की भाँति रहते थे।[4] इसी प्रकार शुल्क न देने वाले विद्यार्थियों को गृहस्थी के कार्य कराये जाते थे। शुल्क मुक्त विद्यार्थियों को 'धम्मान्तेवासी' कहा गया है। ये छात्र दिन में आचार्य के खेतों में या घर पर काम करते थे तथा इन्हें रात में पढ़ाया जाता था।[5] शिष्यों में इस प्रकार का भेद बौद्ध शिक्षा की अपनी विशेषता है। ब्राह्मण शिक्षा पद्धति में ऐसा नहीं था।

गुरुकुलों में विद्यार्थियों को अनेक कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। गुरु की आज्ञा पालन करना छात्र का परम कर्तव्य होता था। विद्यार्थी प्रातःकाल के पूर्व ही शैय्या का त्याग कर देते थे, नित्य क्रिया के पश्चात् दत्तचित्त होकर अध्ययन करते थे। अध्ययन के पश्चात् भोजन तथा विश्राम की व्यवस्था थी। पुनः मध्याह्न के बाद अध्ययन किया जाता था। सन्ध्योपासना के बाद पुनः रात्रि का भोजन करके गुरु की सेवा और आज्ञा लेकर विद्याार्थी शयन करते थे। गुरु का सम्मान और इनकी इच्छा का अनुसरण करना छात्र का नैतिक कर्तव्य होता था। छात्रों को किसी की निंदा करना वर्जित था किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि छात्रों को आचार्यों के दुर्गुणों के प्रति आंख बंद रखने को कहा जाता था। गौतम बुद्ध गुरु के प्रति उच्च सम्मान का उपदेश देते हैं परन्तु साथ ही यह भी व्यवस्था देते हैं कि यदि आचार्य में बुराइयाँ हों तो शिष्य उनकी ओर एकांत में आचार्य का ध्यान आकर्षित करे तथा यदि उनकी दृष्टि बुरे कार्य में लग गई हो तो शिष्य का कर्तव्य है कि आचार्य को बुरे रास्ते पर जाने से रोके।[8] यदि आचार्य धर्माचरण से च्युत हो जाये तो शिष्य उनकी आज्ञा मानने या न मानने को स्वतंत्र है। आचार्य को इस बात का भी अधिकार नहीं था कि वह शिष्य को कोई ऐसी आज्ञा दे जिसके पालन से उसका जीवन खतरे में पड़ जाये या जो धर्म के विधान के प्रतिकूल हो। ऐसी व्यवस्था बौद्ध शिक्षा प्रणाली की अपनी निजी विशेषता थी।

लगभग 12 वर्ष की लगातार शिक्षा के पश्चात् संघ के नये भिक्षु 20 वर्ष की अवस्था में उपसम्पदा संस्कार ग्रहण करते थे। उपसम्पदा ग्रहण करने के बाद ही वे संघ के स्थायी सदस्य बनते थे। कुछ भिक्षु, जिनका आध्यात्मिक ज्ञान पर्याप्त होता था, सीधे उपसम्पदा ग्रहण कर संघ के स्थायी सदस्य बन जाते थे। इन्हें पब्बज्जा तथा संघ की प्रारम्भिक शिक्षा की आवश्यकता न रहती थी। शाक्य–वंश के राजकुमार भगवान बुद्ध के सम्बन्धियों के लिए भी पब्बज्जा की आवश्यकता न थी। कभी–कभी पब्बज्जा तथा उपसम्पदा–दोनों एक ही साथ सम्पादित हो जाते थे, जब इनके अलग–अलग सम्पादन का कोई स्पष्ट कारण न दीख पड़ता था। उपसम्पदा के सम्पादन

की विधि पब्बज्जा से कुछ भिन्न थी। उपसम्पदा समस्त संघ के द्वारा सम्पादित होता थी, न कि पब्बज्जा की भाँति किसी एक भिक्षु के द्वारा। उपसम्पदा के सम्पादन के समय संघ के कम–से–कम दस सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य थी। छोटे संघों में पांच ही सदस्य आवश्यक थे। सदस्यों के मतैक्य अथवा बहुमत से ही कोई भिक्षु उपसम्पदा में अंगीकृत होकर संघ स्थायी सदस्य बन सकता था। सदस्यों में मतभेद होने पर, विषय एक उपसमिति के विचाराधीन रख दिया जाता था। यह उपसमिति तत्काल ही नियुक्त हो जाती थी। यदि उपसमिति भी निर्णय देने में असमर्थ होती थी, तो विषय पर समस्त संघ की मतगणना होती थी। मतदान के लिए कई रंग के पत्रक व्यवहार होते थे, जिन्हें 'सलाका' कहा जाता था। सलाका की गणना पर बहुमत के द्वारा उपसम्पदा के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय होता था। मतगणना की देखरेख के लिए एक सुयोग्य तथा अनुभवी भिक्खु नियुक्त होता था।

बौद्धसंघ भिक्षुओं के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की ओर पूरा ध्यान देता था। बौद्धसंघ गृहस्थों की पारिवारिक व्यवस्था को विशृंखला नहीं करना चाहता था। अपने माता–पिता की अनुमति के बिना कोई भी अप्रौढ़ व्यक्ति संघ में प्रवेश नहीं कर सकता था। संघ उन लोगों को भी अपनी शरण में नहीं लेना चाहता था, जो अपने सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक दायित्व से पिण्ड छुड़ाना चाहते थे।

बौद्ध–भिक्षु बनने के लिए प्रव्रज्या और उपसम्पदा की दीक्षा लेना अनिवार्य होता था। आरम्भ में भगवान बुद्ध स्वयं ही प्रव्रज्या और उपसम्पदा की दीक्षाएँ देते थे। भिक्षु–धर्म की दीक्षा लेने के लिए भगवान् के निकट उन व्यक्तियों को भिक्षुगण पहुँचा देते थे जो इसके लिए कृत–संकल्प रहते। इस व्यवस्था में सबसे बड़ा दोष यह था कि दीक्षा लेने के लिए दूर–दूर से प्रत्याशियों को बुद्ध के पास जाना पड़ता था, जिससे मार्ग तय करने में काफी समय नष्ट हो जाया करता था। अतएव बुद्ध ने कहा–'हे भिक्षुओ, अब आप लोग स्वयमेव विभिन्न प्रदेशों में तथा विभिन्न देशों में प्रवज्या एवं उपसम्पदा की दीक्षाएँ दिया करें।[9] इस निर्णय ने भगवान् बुद्ध के संदेशों के प्रसार–मार्ग को प्रशस्त कर दिया, क्योंकि अब विभिन्न प्रदेशों में तीव्र–गति से भिक्षु–संघों की स्थापना होने लगी और संघ के माध्यम से बौद्ध–धर्म का जनता में प्रचार होने लगा। भिक्षुओं को प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा की दीक्षाएँ देने की छूट देना सर्वथा दोषमुक्त निर्णय नहीं हुआ। इसके फलस्वरूप दो प्रमुख समस्याएँ उपस्थित हुईं। एक तो यह कि अयोग्य भिक्षुओं ने उन लोगों को भी दीक्षित कर दिया जो इसके पात्र नहीं थे। दूसरी यह कि वरिष्ठ भिक्षुओं में अपने शिष्यों तथा अनुयायियों की संख्या–वृद्धि करने की प्रवृति हो गयी। किसी भी बड़ी संस्था में इस प्रवृत्ति की विद्यमानता अस्वाभविक नहीं मानी जायगी, परन्तु बौद्ध–संघ के लिए यह अहितकर होता। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप ही नेतृत्व के लिए प्रतिस्पर्घा होने लगती है, जिसका परिणाम संस्था के लिए घातक होता है। भगवान् बुद्ध इस तथ्य के प्रति सजग थे, अतः उन्होंने यह व्यवस्था दी कि जो व्यक्ति दस वर्षों तक भिक्षु रह चुका हो, वही उपसम्पदा की दीक्षा देने का पात्र हो सकता है; परन्तु यह भी सदोष सिद्ध हुई, क्योंकि अनेक भिक्षुओं ने दस वर्षों की अवधि तो पूर्व कर ली थी पर उनमें योग्यता का आभाव था। कभी–कभी तो ऐसा भी देखने को मिलता कि गुरु की अपेक्षा शिष्य ही अधिक योग्य रहता, अतः इस विषय में बुद्ध का यह अंतिम निर्णय हुआ कि उपसम्पदा की दीक्षा देने के अधिकारी केवल वे ही भिक्षु माने जा सकते. हैं जिन्होंने दस वर्षों की अवधि पूर्ण करने के साथ वास्तव में आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त किया हो।[10] इस प्रकार भगवान् बुद्ध अपने संघ के हितों के प्रति बड़े सजग रहे। उनका यह लक्ष्य रहा कि ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे संघ को भेद पारस्परिक वैमनस्य तथा दलगत संघर्ष से बचाया जा सके, क्योंकि इन्हीं दोषों के कारण किसी भी संस्था का सर्वनाश होता है। भगवान् बुद्ध ने संघ को ऐसा सुविचारित विधान दिया जिसमें नवागन्तुकों के मार्गदर्शन का भार उन भिक्षुओं को सौपा गया जो सच्चे अर्थ में महान थे और जिनको भिक्षु–संघ के हितों की रक्षा करने के लिए विश्वस्त समझा गया।

उपसम्पदा की दीक्षा के पूर्व पाँच वर्षों के श्रामणेर–जीवन की अनिवार्यता की प्रथा का विकास धीरे–धीरे हुआ। इस प्रथा के पूर्व प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा की दीक्षाएँ देने के पहले परिवास नामक चार महीनों के परीक्षाकाल की परिपाटी प्रचलित थी।[11] परिवास की व्यवस्था अन्यतैर्थिक परिव्राजकों के लिए की गयी थी। श्रेणिय, वत्सगोत्र तथा सभिय ने जब भिक्षु–धर्म में दीक्षित होने की अपनी इच्छाएँ व्यक्त कीं, तो उन्हें कहा गया–हे भन्ते जिन अन्यतैर्थिकों को इस धर्म–विनय की दीक्षा लेने की अभिलाषा होगी उन्हें चार महीनों के परिवास–जीवन का पालन करना होगा।[12] आरम्भ में परिवास की प्रथा का भी आभाव प्रतीत होता है, क्योंकि जटिलों को बिना किसी प्रकार के परीक्षा–काल के भिक्षु–धर्म की दीक्षा गयी। संभवतः जब यह अनुभव किया गया कि जो लोग बुद्ध की शिक्षाओं के विपरीत विचार के अनुयायी रहते थे, उन्हें बौद्ध–धर्म के आदर्शों के अनुरूप आचरण करने में कुछ समय लग जाता था, तो इस विचार से चार महीनों के परिवास की व्यवस्था की गयी कि ऐसे लोगों को नये धर्म के अनुकूल मानसिक वातावरण के निर्माण का अवसर दिया जाय। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि परिवास की अवधि में नवागन्तुक भिक्षु को ऐसा प्रयास करना चाहिए जिससे अपने पूर्व–मत के विरूद्ध बातों को सुनकर उसके मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, अपितु आनन्द के भाव उठें, साथ ही उसे बुद्ध–विरोधी बातें असह्य हों।[13]

भगवान बुद्ध के धर्मप्रचार–सम्बन्धी आचरण के कालानुवर्ती होने के कारण दीक्षा की उपयुक्त विधि रूढ़ नहीं बनी। उदाहरणार्थ, प्रत्यन्त प्रदेशों (दूरवर्ती प्रदेशों) में उपसम्पदा की विधि सम्पन्न करने के लिए केवल विनयकधर तथा चार भिक्षुओं की उपस्थिति आवश्यक मानी गयी।[14] प्रत्यन्त–भूमि में बौद्ध धर्मावलम्बियों की संख्या नगण्य होने के कारण ही वहाँ के लिए उपसम्पदा सम्बन्धी यह विशिष्ट नियम बना था। प्रत्यन्त–भूमि उन क्षेत्रों को कहा गया है जो मध्यदेश के सीमान्त क्षेत्र थे। बौद्ध–संघ ने उपसम्पदा की विधि–सम्बन्धी एक और विशिष्ट नियम बनाया था, जिसके अनुसार किन्हीं अनिवार्य कारणवश यदि कोई भिक्षु अथवा भिक्षुणी स्वयं उपस्थित होने में असमर्थ हो जाने पर किसी व्यक्ति के माध्यम से दीक्षा की याचना करता अथवा करती, तो उस अवस्था में संघ इस कार्य के लिए किसी भिक्षु को नियुक्त कर भेज देता था। इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाता था कि दीक्षा देने के लिए किसी श्रामणेर अथवा अयोग्य भिक्षु को न भेज दिया जाय। इस विधि द्वारा एक भिक्षुणी को उपसम्पदा की दीक्षा देने का उल्लेख मिलता है, अतः सामान्य परिस्थिति में भिक्षु के लिए भी यह व्यवस्था मान्य रही होगी।

बौद्ध कालीन शिक्षा में भी वैदिक शिक्षा की भाँति गुरु शिष्य संबंधों में वही पवित्रता विद्यमान थी और उन दोनों का संबंध बहुत ही घनिष्ठ स्नेहयुक्त एवं समता का था। दोनों के पृथक–पृथक कर्तत्व निर्धारित थे और अपने–अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए दोनों परस्पर संबंधित रहते थे। गुरु–शिष्य के संबंध में विस्तृत उल्लेख महावग्ग में प्राप्त होता है।[15] महावग्ग से ज्ञात होता है कि गुरु और शिष्य के संबंध परस्पर स्नेहपूर्ण थे। जिस प्रकार वैदिक शिक्षा पद्धति में शिष्य गुरु के लिए पुत्रवत् था उसी प्रकार अब भी वह गुरु की दृष्टि में पुत्रवत् ही था। ए0एस0 अल्तेकर के शब्दों में, ''श्रमण और गुरु का संबंध पुत्र. और पिता का संबंध था, वे पारस्परिक प्रेम, विश्वास और श्रद्धा से आबद्ध थे।''[16] चरित्र निर्माण पर बल देना बौद्ध शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था। आचार्य का मुख्य कार्य था नैतिक नियमों की स्थापना करके छात्रों का चरित्र निर्माण करना। मिलिन्दपन्हों के अनुसार आचार्य शिष्य का 'मानस पिता' कहलाता था तथा शिष्य का चरित्र निर्माण करना उनका नैतिक कर्तव्य था। आचार्य शिष्य को निर्देशित करता था कि उसके लिए कौन सी आदतें ग्राह्य हैं, कौन सी परित्याज्य। बौद्धों की दृष्टि में अच्छी शिक्षा वही ही है जो गुणों एवं चरित्र का विकास करे। बौद्ध धर्म में करुणा, दया, आत्मसंयम पर बहुत बल दिया गया है। बौद्धों की दृष्टि में जो इनका पालन करता है वही चरित्रवान है। इस चरित्र निर्माण के लिए बौद्ध मठों एवं विहारों में छात्रों को प्रारम्भ से ही दस नियमों का पालन कराया जाता था। उन्हें सादा जीवन जीने और विनयपूर्ण व्यवहार करने में प्रशिक्षित किया जाता था और बुरे कर्मों से दूर रखा जाता था। मठों, विहारों

एवं विश्वविद्यालयों का वातावरण भी छात्र के चरित्र निर्माण में सहायक होता था।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में गुरु–शिष्य के पवित्र संबंधों के प्रमाण मिलते हैं। उपाध्याय आदर्श जीवन व्यतीत करते थे और मितव्ययी होते थे। इनके जीवन का लक्ष्य अध्ययन–अध्यापन और बौद्ध धर्म की शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना था। गुरु आदर्श चरित्रवान व्यक्ति होते थे, वे भेदभाव से मुक्त होकर सभी शिष्यों को समभाव से शिक्षा देते थे और उनके मानसिक स्तर को ऊँचा उठाने का पूरा–पूरा प्रयत्न करते थे। वे आदर के पात्र होते थे, निःस्वार्थ भाव से शिक्षा देते थे, समाज भी उन्हें आदर प्रदान करता था क्यों कि वे ज्ञान दान देते थे। ज्ञान प्राप्ति से ही निर्वाण संभव था। बौद्ध धर्म में ज्ञान और विद्या को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, ज्ञान को निर्वाण प्राप्ति का साधन माना गया है। डॉ0 ए0 एस0 अल्तेकर के अनुसार ''शिक्षकों को दिया जाने वाला यह आदर कोई आश्चर्य जनक बात नहीं है क्योंकि यह सर्वमान्य है कि भव्य इमारतें या उपकरण विद्यार्थियों को इतना अधिक प्रभावित नहीं करते जितना कि सभ्य और योग्य शिक्षक, जो न केवल शिक्षा ही देते है वरन प्रेरणा भी देते हैं।[17] इस प्रकार गुरु महान विद्वान होते थे। वे उन्मुक्त हृदय से ज्ञान दान करते थे। उनका विषय पर पूर्णाधिकार होता था। उनकी अभिव्यक्ति क्षमता अद्‌भुत होती थी। विद्वान होते हुए भी उनका जीवन सादा होता था (नालन्दा जैसे विश्वविद्यालयों तक में वे नियमित रूप से कोई वेतन नही ग्रहण करते थे)। विश्वविद्यालय उनकी आवश्यकतायें स्वयं पूर्ति करता था।

शिष्य के गुरु के प्रति कुछ कर्तव्य थे। शिष्य गुरु की सेवा करते हुए विद्यार्जन करता था। वह गुरु के प्रातः काल उठने से पूर्व शय्या त्याग देता था और उनके नित्यकर्म की व्यवस्था करता था। वह निवास स्थान की सफाई करता था। वह गुरु के वस्त्र धोना, अस्वस्थ होने पर उनकी सेवा करना, भोजन बनाना, बर्तन साफ करना जैसे व्यक्तिगत कार्य भी करता था। गुरु को शिष्य से अपने दैनिक कार्यों में सहायता लेने का पूर्ण अधिकार था। गुरु और शिष्य का संबंध कुछ इतना अधिक धनिष्ठ था कि शिष्य आचार्य के मानसिक कष्टों से परिचित होने पर उसके निवारण की चेष्टा करता था और इसके लिए वह धार्मिक वार्तालाप तथा इसी प्रकार के अन्य उपायों द्वारा गुरु का मन बहलाकर उनका मानसिक कष्ट दूर करने का प्रयास करता था। अध्ययन करते समय भी शिष्य विनयपूर्वक विद्या लाभ करता और गुरु प्रश्नोत्तर, व्याख्यान एवं शिक्षा–दीक्षा आदि विभिन्न पद्धतियों द्वारा शिष्य का मानसिक जगत उद्‌भासित करते थे। साथ ही यदि कभी शिष्य को यह संदेह हो जाता था कि गुरु को किसी भी प्रकार की मिथ्या धार्मिक धारणा हो गई है तो वह शंका समाधान द्वारा उनकी शंका को दूर करने की चेष्टा करता था और इसके लिए वह संघ के अन्य व्यक्तियों से भी सहायता लेता था। निर्धन शिष्य विशेष रुप से गुरु के दैनिक कार्य करते थे और रात्रि के समय शिक्षा ग्रहण करते थे। तक्षशिला में इस कोटि के अनेक छात्र थे।

गुरु आत्मज्ञानी और आत्मनियंत्रक होते थे। ह्वेनसांग का उल्लेख है कि बौद्ध विहारों के अध्यापक आदर्श और अनुकरणीय चरित्र के व्यक्ति थे। वे शिष्यों को प्रोत्साहित करते थे और उनकी जिज्ञासा बढाते थे, वे शिष्यों की शंका का निवारण करते थे, वे शिष्यों की सुविधा का ध्यान रखते थे। वे शिष्यों को प्रेरित करने और उनकी उत्सुकता जगाने के लिए तरह–तरह की अध्यापन विधि का प्रयोग करते थे। जिससे शिष्यों की विषय के प्रति रूचि जाग्रत हो जाती थी और वे विषय का गहन अध्ययन करते थे।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में संघ की सत्ता सर्वोपरि थी। गुरु और शिष्य दोनों संघ पर आश्रित थे। यदि गुरु का कोई भी कार्य संघ की मर्यादा के प्रतिकूल होता था तो शिष्य का यह कर्तव्य था कि वह गुरु की त्रुटियों को संध के समक्ष प्रस्तुत कर उचित दण्ड की व्यवस्था के लिए प्रार्थना करे और गुरु के उचित प्रायश्चित के बाद उनके पुनः स्थापना के लिए भी अनुरोध करे। इस प्रकार बौद्धकाल में गुरु–शिष्य संबंध आदर्शपूर्ण समता का संबंध था और दोनों एक दूसरे के सुधार के लिए प्रयत्नशील रहते थे। एक ओर जहाँ गुरु–शिष्य के नैतिक,

बौद्धिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए उत्तरदायी था वहीं दूसरी ओर स्वयं शिष्य पर गुरु के सुधार सेवा कार्य एवं मानसिक शांति का भार था। बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता तथा आत्मसंयम का विकास करना था। भविष्य की अनिश्चितता से आत्मविश्वास डिगता है, किन्तु उस समय इसका भय नहीं था क्योंकि छात्रों का भविष्य उज्ज्वल होता था। पाठ्यक्रम व्यवसायपरक हुआ करते थे, जिससे छात्र भविष्य के प्रति चिंतित नहीं रहते थे। इससे उनमें आत्मसम्मान एवं आत्मनिर्भरता की भावना का विकास होता था। आत्मसंयम भी छात्र के व्यक्तित्त्व को उन्नत बनाने में सहायक होता था। संयमित जीवन जीने के लिए मठों, बिहारों और विश्वविद्यालयों में रहने वाले विद्यार्थियों में सादगी पर बल दिया जाता था। विद्यार्थी साधारण वस्त्रों का प्रयोग एवं सात्विक भोजन करते थे। मनोरंजन के लिए वे स्वतंत्र थे। किन्तु यह मनोरंजन मर्यादित होता था। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा सादा जीवन, उच्च विचार के सिद्धान्त पर आधारित थी। बौद्ध शिक्षा छात्र में आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता, आत्मसंयम का विकास करके उसे समाज के समक्ष 'पूर्ण व्यक्ति' के रूप में प्रस्तुत करती थी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मुखर्जी, आर0 के0; एंश्यन्ट इण्डियन एजूकेशन, दिल्ली, 1960, पृष्ठ 374।
2. जातक, 438।
3. अल्तेकर, ए0एस0, प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, वाराणसी, वर्ष 1955, पृष्ठ 46।
4. तिलमुंट्ठि जातक, 252।
5. पाठक, पी0डी0; भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, आगरा, 2001, पृष्ठ 29।
6. सिंह, मदन मोहन; बुद्धकालीन समाज और धर्म, पटना, 1993, पृष्ठ 165।
7. सिंह, मदन मोहन; पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 165।
8. सिंह, मदन मोहन; पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 166।
9. जातक, 13, पृष्ठ 187–88।
10. मज्झिम निकाय, 1.391, सुत्त निपात, 3.6।
11. महावग्ग, 5.13.12–13।
12. सारस्वत, मालती; भारतीय शिक्षा का इतिहास, इलाहाबाद, 2006, पृष्ठ 42।
13. अल्तेकर, ए0एस0; प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, वाराणसी, वर्ष 1955, पृष्ठ 48।
14. अल्तेकर, ए0एस0; पूर्वोद्धृत, वर्ष 1955, पृष्ठ 49।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

श्रेष्ठतम नदियों में से एक थी प्राचीन सरस्वती नदी

डॉ0 वशिष्ठ नारायण शुक्ल एवं डॉ0 वन्दना शुक्ला
6–एफ बैंक रोड (टीचर्स कालोनी), इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

भारत के भौगोलिक परिक्षेत्र पर दृष्टि डाली जाय तो स्पष्ट होता है कि यह देश अनेक प्रकार की शक्तियों से विभूषित प्राणदायिनी, मोक्षदायनी, जीवनदायिनी नदियों से सम्पन्न रहा है। भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी अनेक स्थानों पर भारतीय नदियों का उल्लेख किया गया है, ऋग्वेद के नदी सूक्त में भारत में बहने वाली नदियों के महात्म्य का विस्तारित उल्लेख मिलता है। नदियों की महत्ता को बताते हुए कहा गया है कि इन नदियों का सृजन व अवतरण देवों और मनुष्यों के लिए किया गया था इनको लाने का श्रेय इन्द्र को है पर दानवों और असुरों ने अपनी शक्ति सम्पन्नता से इन्हें आवृत्त कर दिया था। परम्परानुसार वेदों से लेकर समस्त परवर्ती साहित्य भारतीय नदियों का बखान करने से नहीं चूकते। ऐसे वर्णनों में इन नदियों को दैवी शक्तियों से आभूत बताया है साथ ही साथ इन नदियों के जल का वर्णन अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया गया है। और यह बतलाने का प्रयत्न हुआ है कि इन नदियों की ऊर्जा से मनुष्यों के दोषों और पापों का क्षय हो जाता है और जीवन पवित्र संस्कारमय संशुद्ध हो जाता है। ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि देवी जल हमारी रक्षा करें ''आपो देवीरिह मामवन्तु''।[1] तैत्तिरीयसंहिता में कहा गया है कि इन नदियों के पवित्र जलों में देवताओं की शक्तियाँ निहित हैं ''आपो वै सर्वा देवताः''।[2] पुराणों में तो नदियों की अनन्त महिमा गायी गयी है। ये सभी उल्लेख इन तथ्यों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि नदियों से हमारा अटूट सम्बन्ध रहा है, क्योंकि नदियों ने हमारी भारतीय धरा को शस्यश्यामला, ऊर्जायुक्त, धान्ययुक्त बनाया है। शायद इसीलिए हम इन नदियों को सामान्य नदियाँ न मानकर सर्वशक्तिसम्पन्न माँ के रूप में पूजते और मानते आये हैं। इसलिए अगर इन्हें राष्ट्र की प्राणदायिनी शक्ति कहा जाय तो अतिश्योंक्ति न होगी।

प्रायः हम सभी यह मानते हैं कि भारत में बहने वाली समस्त नदियाँ श्रेष्ठ हैं किन्तु प्राचीन परम्परा की दृष्टि में सरस्वती नदी का विशेष महत्व रहा है। ज्यादातर विद्वान उनकी तुलना वर्तमान देवनदी गंगा से करते हैं। ऋग्वेद में 40 बार सरस्वती नदी का उल्लेख प्राप्त होता है, शायद ही इतनी बार किसी अन्य नदी का उल्लेख हुआ हो यह उल्लेख ही इनकी महत्ता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है, ऋग्वेद में सरस्वती नदी को 'पुण्यतोया' नाम से अभिहित किया गया है और मन्त्रों के माध्यम से उनकी अनन्त महिमा गायी गयी है, इन वर्णनों में उनकी महिमा का गान करते हुए ऐतिहासिकता, धार्मिकता, आध्यात्मिक घटनाओं के महत्वपूर्ण तथ्यपरक सम्पुट जोड़े गये हैं। इन्हें माता कहकर सम्बोधित किया गया है, इनकी उत्पत्ति को दैवी स्थान प्राप्त है। और नदियों की श्रेणी में श्रेष्ठतर कहा गया है ''अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।''[3]

ऋग्वेद के कुछ मंत्रों में तो सरस्वती नदी की भूरि–भूरि प्रशंसा की गयी है और यह कहा गया है कि समस्त नदियों में सरस्वती नदी ही ऐसी हैं जो पर्वतों से उद्गमित होती हुई समुद्र की ओर प्रयाण करती है उन्हें प्रचण्ड वेगशाली गर्जनयुक्त शक्तिशाली शिलाओं को खण्डित करने वाली भी कहा गया है। इनकी अनन्त ऊर्जा से प्रभावित होकर ऋषि, मुनि, विद्वान, ध्यान, योग, यज्ञों का सम्पादन तथा ग्रन्थों का सृजन किया करते थे। इयं शुष्मेभिर्विसरवा इवारुजत्सानु गिरीणां ताविशेभिरूर्मिभि....यस्या अनन्तो अह्रु तस्त्वेषष्चरिष्णुरर्णवः। अमृचरति रौरुवत्।[4] इनके उद्गम और विलुप्त होने सम्बन्धी भी अनेक प्रकार के आख्यान विद्वानों द्वारा वर्णित किये गये हैं जिसमें

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि इनका उद्‌गम मेरूपुर पर्वत से होकर बीकानेर में समाप्त हो जाता है जबकि कुछ विद्वान मानते हैं कि ये कुरूक्षेत्र से बहती हुई पटियाला जाकर विलुप्त हो जाती हैं, उनका यह भी मानना है कि पटियाला की वर्तमान सुरसुति ही अदृश्य होकर प्रयाग में गंगा यमुना से मिल गयी थी, जिसके कारण प्रयाग में गंगा, यमुना एवं अदृश्य सरस्वती का संगम सम्पन्न हुआ। इन सब आख्यानों के विपरीत जैमिनीय ब्राह्मण में सरस्वती नदी के प्रकट होने का स्थल ''प्लक्ष–प्रस्रवण'' बताया गया है। ताण्ड्य ब्राह्मण में उनके विलुप्त होने का स्थान बीकानेर ही बताया गया है। इसी तरह वामनपुराण में वर्णित है कि यह नदी प्लक्षवृक्ष से उद्‌गमित होकर सहसा अनेकों पहाड़ियों को चीरती हुई द्वैतवन में प्रवेश करती हैं–

सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी।
प्रविष्टा पुण्यतोयैषा वनं द्वैतमितिश्रुतम्।।[5]

महाभारत के शल्यपर्व में सरस्वती नदी के उद्‌गम का स्थान ब्रह्मसर बताया गया है।[6] ब्रह्मपुराण में एक आख्यान वर्णित है जो सरस्वती नदी से सम्बन्धित है, इसमें कहा गया है कि शंकर ने स्वयं को ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होने के लिए सरस्वती में समाधि ले ली। जिसका परिणाम यह हुआ कि यह पवित्र नदी अन्तर्हित हो गयी[7]। महाभारत का अनुशासन पर्व कहता है कि यह नदी उतथ्य के श्राप से मुक्त होने के लिए मरूदेश चली गयी और सूखकर अपवित्र हो गयी, वहाँ से अर्न्तध्यान होकर वे चमसोद्‌भेद, शिवोद्‌भेद तथा नागोद्‌भेद पर दृष्टिगत हुई।[8]

कतिपय विद्वान यह कहते हैं कि सरस्वती नदी का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था बल्कि सिन्धु नदी को ही लोग सरस्वती नाम से सम्बोधित करते थे। परन्तु यह बात तर्कयुक्त नहीं प्रतीत होती, क्योकि सरस्वती नदी एक विशाल जलाहल नदी थी। इनका स्थान यमुना और शुतुद्रि नदी के मध्य था। ऋग्वेद में उनके स्वतंत्र नदी होने का प्रमाण उपलब्ध है।[9] निरूक्त में उन्हें एक पृथक नदी कहकर सम्बोधित किया गया है– ''तत्र सरस्वती इत्येतस्य नदीवत्..... ।''[10] वाजसनेयसंहिता में उल्लिखित है कि 5 अन्य नदियाँ अपनी सहायिकाओं के साथ पवित्र सरस्वती नदी में विलीन हो जाती थीं– ''पई नद्यः सरस्वतीमपि यान्ति सस्रोतसः।''[11]

विद्वानों की अविधारणानुसार प्राचीन ग्रन्थों में सरस्वती नदी के सम्बन्ध में मिलने वाले वर्णनों का साम्य बदरीक्षेत्र के समीप्य बताया है। जहाँ से सरस्वती नदी का उद्‌गम हुआ है। केशव प्रयाग में उनका अलकनन्दा से तादात्म्य स्थापित होता है और फिर इन्हीं सरस्वती स्वरूप अलकनन्दा से सम्मिलन करने वाली धौली, नन्दाकिनी, पिण्डर, मन्दाकिनी, भागीरथी, नयार मिलकर ऋग्वेद में वर्णित सप्त सरिताओं का स्वरूप धारण करती हैं। इन सप्तसरिताओं में सबसे ऊपर धारा होने के कारण सरस्वती नदी को लगभग सब प्रकार से उत्तम, श्रेष्ठ, शक्ति सम्पन्न माना गया है। उनका जलाहल स्वरूप भी अत्यन्त विराट है जिसके तटपर बैठकर ऋषियों, मुनियों, वेदज्ञों, तपोनिष्ठों, विद्वानों, विप्रों ने अनेक प्रकार का ज्ञानार्जन कर दुर्लभ ग्रन्थों का प्रणयन किया, जो आज भी जनमानस के लिए विशेष कल्याणकारी सिद्ध हो रहा है। व्यास ने भी बद्रिकाश्रम के समीप बैठकर जय महाग्रन्थ का सृजन किया।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं वन्दे ततो जयमुदीरयेत्।।

इस प्रकार यह कहना सर्वथा उचित है कि सरस्वती नदी प्राचीन नदियों की श्रृंखला में श्रेष्ठतम नदी थी, जिसका वर्णन ऋग्वेद सहित अनेक ग्रन्थों में प्राप्य है चूँकि दैवी उत्पत्ति से समाकृत होने के कारण इनकी महत्ता और भी बढ़ जाती है–

यह देश प्रकृति सम्पन्न रहा।
यहाँ भरा हमेशा अन्न रहा।

जलवायु रही अनुकूल यहाँ।
थी खनिज सम्पदा भरी यहाँ
नदियों ने संस्कृति पुष्ट किया।
धन–धान्ययुक्त सन्तुष्ट किया।
ऋषियों–मुनियों को उकसाया।
बहुग्रन्थ सृजन फिर करवाया।
आध्यात्मिक ऊर्जा प्रखर हुई।
दर्शन, चिन्तन अरु मुखर हुई।
नदियों ने दैवी रूप लिया।
खुद माँ स्वरूप आशीष दिया।
थी नदी सरस्वति एक शान।
वह श्रेष्ठ नदी सी थी महान।
कल कल सी बहती जाती थी।
जीवन यथार्थ बतलाती थी।
भू लोक छोड़ वह गयी धाम।
हम शत्–शत् करते हैं प्रणाम।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. ऋग्वेद, 1/49/1
2. तैत्तिरीय संहिता, 2/6/8/3
3. ऋग्वेद, 2/14/6
4. वही, 3/23/4
5. वामनपुराण, 32/1
6. महाभारत, शल्यपर्व, 51/19
7. ब्रह्मपुराण, 3/8
8. महाभारत, अनुशासनपर्व, 155/25–27
9. ऋग्वेद, 6/61/12
10. निरुक्त, 2/23
11. वाजसनेयि संहिता, 34/11

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

संस्कृत वाङ्मय में अर्थ चिन्तन

डॉ0 पुष्पा मीना
व्याख्याता–संस्कृत विभाग
गौरी देवी राजकीय महाविद्यालय, अलवर (राज0) पिन–301001

मानव जीवन का वास्तविक स्वरूप, महत्व व चरम लक्ष्य क्या है। अलग–अलग विद्वानों के कथनानुसार यह जगत पूर्णतः क्षणभंगुर है या वास्तविक है ऐसे मतभेद प्रायः भारतीय संस्कृति में विद्यमान रहे हैं। नश्वर और अनश्वर को पृथक–पृथक करना भ्रांतियुक्त है। इसलिए इन दोनों को मिलाकर मानव जीवन का वास्तविक स्वरूप, महत्व व उद्देश्य का निर्धारण करना चाहिये। इसी समन्वय की अभिव्यक्ति पुरुषार्थों के माध्यम से होती है। पुरुषार्थ में पुरुष और अर्थ दो शब्द हैं। इनका अर्थ 'विवेकशील प्राणी' तथा 'लक्ष्य' है। इसलिए पुरुषार्थ का अर्थ विवेकशील प्राणी का लक्ष्य है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है। द्वितीय पुरुषार्थ अर्थ मनुष्य की संतुष्टि और विभिन्न वस्तुओं को प्राप्त करने की उत्कंठा को व्यक्त करना है। मानव जीवन में धनार्जन की प्रवृति को पुरुषार्थ के अन्तर्गत रखकर मन की सहज आकांक्षाओं और वृतियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह पुरुषार्थ मानवीय जीवन का केन्द्र बिन्दु है। सम्पूर्ण क्रियाएँ इसके इई–गिर्द घूमती रहती हैं। वैदिक साहित्य में धर्म और मोक्ष इन दो पुरुषार्थों पर ही बल दिया गया है। अर्थ और काम नामक पुरुषार्थ उपेक्षित रहे हैं। अर्थ के बिना अर्थात धन रहित व्यक्ति किसी भी अवस्था में, किसी भी दशा में, किसी भी काल में अपना और अपने सम्पूर्ण परिवार, समाज व देश के लिए हितकारी नहीं हो सकता। क्योंकि सम्पूर्ण योजनाएं व क्रियाएं अर्थ के अभाव में प्रभावहीन हैं। इसलिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – इन चतुर्थ पुरुषार्थो को भारतीय संस्कृति में पुरुष के उद्देश्य के रूप में व्यक्त किया है। दूसरा पुरुषार्थ 'अर्थ' का अभिप्राय धन से है। वह धन सद्वृत्ति और उचित उपायों से अर्जित करना चाहियें। 'न्यायोपान्तधन' परिभाषा के अनुसार न्यायपूर्वक उपार्जित धन सद् माना जाता है और मनुष्य को श्रेयस को प्राप्त करने वाला होता है।

वैदिक काल में अर्थ की भूमिका –

प्रारम्भ में ऋग्वैदिक आर्य घुमक्कड़ थे। वे यत्र–तत्र घूमते हुए कृषि करते थे। उनकी जीविका का मुख्य साधन कृषि और पशुपालन था। पशु पालन भी सम्पत्ति के रूप में परिगणित किये जाते थे। कृषि कर्म पशुओं से सम्पन्न होता था। पशु अपना–अपना भोजन कृषि द्वारा प्राप्त करते थे। अथर्व संहिता में –पृथु राजा ने सर्वप्रथम पृथ्वी को जोतकर समतल बनाया और पृथ्वी का नाम 'पृथु' के आधार पर पड़ा। कृषि के अतिरिक्त पशुपालन भी आजीविका का मुख्य साधन था। पशुओं में गाय और बैल प्रमुख होते थे। बैल द्वारा हल जोते जाते थे। विनिमय का साधन रूप गाय धन के रूप में मानी जाती थी।

पशुपालन के अतिरिक्त कर्मार (लाहौर), वैध (भिषक), कुलाल (कुम्हार), रथकार, निषाद (मल्लाह) आदि कार्य भी आजीविका के साधन थे। शिल्पकारों, दस्तकारों, कारीगरों को विशेष स्थान प्राप्त था। वैदिक काल में आर्थिक विषमताएं नहीं थीं। कर्म प्रधान संस्कृति होने के कारण सभी कर्म समान रूप से आदरणीय थे। यद्यपि ऋग्वेद में पुनः पुत्र प्राप्ति, धन प्राप्ति, पशु प्राप्ति और शत्रु पर विजय की कामना की जाती थी। परन्तु सबके पीछे

मूल भावना धर्म की निहित थी। वह धन की प्राप्ति संग्रह के लिए नहीं अपितु दान देना ही उनकी धन प्राप्ति का प्रधान उद्देश्य होता था।

उत्तर वैदिक काल में अर्थ की भूमिका – उत्तर वैदिक कालीन संस्कृति वैदिक काल की अपेक्षा अधिक परिपक्व संस्कृति मानी जाती है। इस काल में मुद्रा का प्रचलन हो चुका था। कृषि में उन्नत साधन अपनाये गये। फलस्वरूप पर्याप्त खाद्यान्न उत्पन्न होता था। व्यवसायों और उद्योग धंधों में भी वृद्धि हुई। खेती के अतिरिक्त अनेक शिल्पों का भी इस युग में विकास हुआ। जुलाहे, रंगरेज, रज्जुकार, रजक, स्वर्णकार, रथकार, गोप, व्याध, कुम्हार, लोहार, नर्तक, गायक, वाचक आदि अनेक प्रकार के शिल्पी अपने–अपने व्यवसायों के विकास में पारंगत थे। धातुओं के ज्ञान में अति अधिक वृद्धि के कारण औद्योगिक जीवन उन्नत हो गया। जहाँ वैदिक काल में आर्यों को केवल सुवर्ण और अयस् का ज्ञान था इस युग में त्रपु (टिन), ताम्र, लोहा, रजत, हिरण्य और सीसे का भी प्रयोग करते थे। सुवर्ण व रजत का प्रयोग मुख्यतः आभूषणों व बर्तनों के लिए परन्तु अन्य धातुऐं उपकरण बनाने में प्रयुक्त होती थीं।

मानव जीवन में धर्म के समान ही अर्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। महाभारत में अर्थ को उच्चतम महत्व दिया गया है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु पर उस पर निर्भर करती है। अर्थसम्पन्न लोग सुखी रह सकते हैं। अर्थहीन लोग मृतसदृशं हैं। अर्थ को धर्म और काम का आधार माना गया है। धर्म स्थापना के लिए अर्थ अनिवार्य है। क्योंकि धार्मिक कृत्यों में धन खर्च होता है। अर्थहीन व्यक्ति ग्रीष्म की सूखी सरिता की भाँति माना जाता है।

अवदान कल्पलता में बुद्ध ने कहा है धनार्जनरहित व्यक्ति पंगू की भाँति कंदमूल आदि के भक्षण द्वारा संतोष करें। इससे अधिक की अपेक्षा नहीं करें। क्योंकि व्यक्ति जीविका के साधनों में वृद्धि नहीं करता है। तो देश, परिवार तथा समाज की स्थिति सुदृढ़ नहीं होती है।

बृहस्पति ने भी अर्थ की महत्ता को स्वीकारा है। अर्थ सम्पन्न व्यक्ति के पास मित्र, धर्म, विद्या, गुण सभी आश्रित रहते हैं। यही भाव शतकत्रयकर्ता महाकवि भर्तृहरि ने भी नीतिशतक में व्यक्त किये हैं :–

''यस्यास्ति वितं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः
स एवं वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः कांचनभाश्रयन्ति।।''

(भर्तृहरि नीति शतक, श्लोक–41)

अर्थात जिसके पास धन है वह मनुष्य कुलीन, पण्डित, ज्ञानी, गुणवान, वक्ता तथा दर्शनीय होता है। क्योंकि सारे गुण सोने में (धन) निवास करते हैं।

आपस्तम्ब में मनुष्य को धर्मानुकुल सभी सुखों का उपयोग करने के लिए निर्देश दिये हैं। मनु ने त्रिवर्ग की महत्ता प्रतिपादित कर 'अर्थ' को विशेष स्थान प्रदान किया है। परन्तु धन संग्रह धार्मिक आधार पर होना चाहिए। अधर्म और अन्याय से अर्जित धन का फल दुःखदायी होता है। मनु अनुसार धर्मविरूद्ध अर्थ और काम का त्याग करना चाहिए।

''कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः''

(भास, स्वप्नवासवदत्तम् 1/4)

समय परिवर्तनशील है। इसलिए मूल्य विश्वास और अवधारणाऐं समयानुसार परिवर्तित होते रहते हैं। इस कालक्रमानुसार वर्तमान भौतिक जगत में चारों पुरुषार्थों में केवल मात्र अर्थ ही प्रधान हो गया है। अर्थ के बिना सामाजिक प्रतिष्ठा में न्यूनता आने लगी है। अर्थसर्वोपरि हो गया है, मनुष्य का चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति न होकर अधिक से अधिक धन संग्रह ही हो गया है। वर्तमान स्थिति में चार्वाक दर्शन का ही अनुसरण हो रहा है। यथाः–

''यावतज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा धृतं पिबेत्
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमण कुतः''

(सर्वदर्शनसंग्रह चा. द. श्लोक 18)

अर्थात जब तक जीवित रहे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें। उधार लेकर भी घी का सेवन करें अर्थात् भोगविलासों का अत्यधिक सेवन करें। यही सुख है। इसके विपरीत हमें कभी भी शरीर को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। क्योंकि यह सबसे बड़ा दुःख है। अतः त्याज्य है। चार्वाक दर्शन भौतिकवादी संस्कृति का पक्षधर है। भारतीय नास्तिक दर्शनों की परिगणित अन्य दर्शन, जैन दर्शन में भी पंच महाव्रत– सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह की चर्चा के अन्तर्गत पंचम महाव्रत 'अपरिग्रह' का अभिप्राय यह है कि आवश्यकता से अधिक संचयन की प्रवृति का त्याग। हमें आसक्तिपूर्वक पदार्थों को अनावश्यक रूप से संग्रहित नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार पंच महाव्रतों के पालन पर जैन दर्शन में बल दिया है ठीक उसी प्रकार पतंज्जलिकृत योगसूत्र में भी अश्टांग योग के अनुसार भी सर्वप्रथम यम–

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

(पतंज्जलि योगसूत्र साधनपाद–30)

समाधि के आठ अंगों में सर्वप्रथम यम पाँच भेदों वाला बताया है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। यहाँ पर भी अपरिग्रह पर बल देते हुए बताया गया है। साधक के लिए जितना आवश्यक हो उसी का ग्रहण करें। अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह नहीं करें। इसे अनुचित बताया है।

उपरोक्त दृष्टान्तों के आधार पर यह बात पुष्ट होती है कि हमारी सभ्यता और संस्कृति के आधारभूत ग्रंथों में भी स्थान–स्थान पर धन की अति संग्रहण प्रवृति का निषेध कर इसे निषिद्ध बताया है।

प्राचीन काल में राजा अपनी प्रजा से कर ग्रहण करता था। राजा का आचरण मधुमक्खी जैसा होना चाहिए। जिस प्रकार मधुमक्खी रसपान पुष्प को कष्ट पहुँचाएँ बिना करती है उसी प्रकार राजा को भी अपनी प्रजा से बिना कष्ट पहुँचाएँ नियमानुसार भूमि की उपज का षष्ठांश भाग ही कर के रूप में ग्रहण करना चाहिए। कौटिल्य अर्थशास्त्र में धन को सर्वोपरि पुरुषार्थ बताया है यथा –

अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्यः अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण प्रकरण–3, अध्याय–6)

अर्थ धन, सर्वश्रेष्ठ है धर्म और काम अर्थ पर ही निर्भर करते हैं। निम्न पंक्तियों द्वारा भी अर्थ की महिमा स्वतः सिद्ध है–

जातिर्यातु रसातलं गुणगणैस्तत्राप्य गम्यतो
शीलं शैलतटान्पतत्वभिजनः सदह्नतां वह्निना।
शौर्य वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु न केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणतवप्रायाः– समस्ता इमे।।

(भर्तृहरि नीतिशतक–38)

अर्थात जाति, नीचे के लोकों में गिर जाये, सदाचार पर्वत से गिरकर चकनाचूर हो जायें, कुल अग्नि में भस्मीभूत हो जायें, शत्रु वज्र की भांति प्रहार करें इस प्रकार चाहे कितनी भी बुरी स्थिति क्यों न हो जाए परन्तु केवल मात्र धन सुरक्षित रहना चाहिए। क्योंकि धन के अभाव में सभी गुण, तृणवत है। राजा को पुरोहित राज्याभिषेक के समय कहता है कि हम तुम्हें तुम्हारी निर्वाह के लिए उचित अंश (भाग) अवश्य देंगे।

(शुक्रनीतिसार 1/188)

सम्पूर्ण वर्णन से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धन चतुर्थ पुरुषार्थों में सर्वोपरि था। अर्थ की उपयोगिता किसी भी काल में कम नहीं थी और न ही वर्तमान में है। क्योंकि मनुष्य का स्वभाव है–

न हि वित्रेन तर्पणीयो मनुष्यः

(कठोपनिषद् प्रथम अध्याय,प्रथम वल्ली–27)

अभिप्राय है कि मनुष्य की कमी भी अर्थ के प्रति लिप्सा कम नहीं हुई है और न ही धन से कभी तृप्ति हुई है। जितना मिला है वह न्यून है। और–और की भावना मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देती अपितु जानवर की कोटि में गिनती करवाती है।। इसी प्रकार बाणभट्ट की कादम्बरी के अन्तर्गत शुकनासोपदेश में वृद्ध मंत्री शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी का दारूण स्वभाव, लक्ष्मी प्राप्ति पर दोषों का आगमन इत्यादि विषयों पर चर्चा करते हुए लक्ष्मी को बहुत ही दुराचारिणी स्त्री सदृश्य बताया है। सम्पूर्ण अवगुणों का भण्डार है लक्ष्मी। अतः तुम लक्ष्मी के मद से गर्वित मत होना। यही तुम्हारी लिए श्रेयस्कर होगा। क्योंकि जब–जब लोगों द्वारा लक्ष्मी के प्रति घनिष्ठ आसक्ति रखी है। देखा जाता है। लोगों का ह्रास ही हुआ है। व्यक्ति दूसरे का हो जाता है। मानो धन की गर्मी से पकाये जाते ऐसे लोग अभिमान से परिपूर्ण हो जाते हैं। इसलिए जितना है उसमें ही संतोष करना उचित है। यह उपदेश वर्तमान पीढ़ी के लिए भी अनुकरणीय है। धन सदैव लोगों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र रहा है। वैदिक काल में धन से अभिप्राय मुद्रा, जेवरात से ही नहीं अपितु जमीन, पशुसम्पत्ति से भी लिया जाता है। आज तो अर्थ का अभिप्राय केवलमात्र रूपया पैसा है। वास्तव में धन के बिना जीवन की कल्पना करना भी निरर्थक है तभी तो इसे भारतीय पुरुषार्थों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मनुष्य धन के प्रति अत्याधिक मोह से बचने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि धन दुनिया में बहुत बड़ा स्थान रखता है परन्तु जिन्दगी नहीं है धन, सब कुछ नहीं है धन।

साँई इतना दीजिए जामें कुटुम्ब समाये,
मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाए।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

रामचरित मानस में मांसाहार के प्रमाणों का औचित्यपूर्ण मूल्यांकन

स्वामी सत्यानंद महाराज 'सत्य'
प्रख्यात दार्शनिक एवं प्रवचनकर्ता
गणेशविहार, सारंगपुर जिला–राजगढ़ (ब्यावरा) म.प्र.

हमारे हिन्दू समाज में सदियों से सभी जातियाँ मांसाहारी रही हैं! प्राचीन काल में हमारे पूर्वज मांसाहारी थे। यज्ञों में गाय, बैल, बछड़े, भैंस, बकरे व भेड़ की बलि दी जाती थी। इसके प्रमाण के लिए हमारे वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद्, रामायण, महाभारत व पुराणों में ढेरों प्रमाण हैं। सनातनी व आर्य समाजी विद्वान जब इन प्रमाणों को देखते हैं, तब उनके पैरों तले की जमीन खिसकने लगती है। तब वे शब्दों के साथ बलात्कार कर परम्परागत अर्थ से नया अर्थ करने का प्रयास करते हैं। जब वे इसमें कामयाब नहीं होते, तब प्रक्षिप्तवाद के नाम पर सारा दोष वाममार्गियों या विदेशियों की साजिश के माथे मढ़ देते हैं !

हमारे कई देवी–देवता आज भी मांसाहारी हैं, दशहरे की नवमी के दिन देवी दुर्गा के सम्मान में बकरों व पाड़ों की बलि देने की परम्परा भारत के लगभग प्रत्येक गांव में आज भी है। किंतु धीरे–धीरे पाड़ों या भैंसों की बलि खत्म होती जा रही है। नेपाल में आज भी कई हिन्दू मंदिरों में पुजारी लोग भैंसों की बलि देकर उनका मांस भी बढ़े चाव से खाते हैं ! वर्तमान युग में हिन्दू समाज में मांसाहार की सार्वजनिक वकालत स्वामी विवेकानंद ने की है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि स्वामी विवेकानंद व उनके गुरू रामकृष्ण परमहंस दोनों ही मांसाहारी थे ।

हमारा मानना है कि शाकाहार या मांसाहार का धर्म से कुछ भी लेना–देना नहीं है, फिर भी 'जैसा खाय अन्न, वैसा होय मन' की झूठी कहावतें रचकर हम अपने पूर्वाग्रह–दुराग्रह के कारण इतिहास को झुठलाने के लिए एड़ी चोंटी का जोर लगा रहे हैं। हमारे मन या दिमाग पर नशीले पदार्थों का बड़ा दुष्प्रभाव पड़ता है, इसी कारण संसार के सभी धर्मगुरुओं ने नशीले पदार्थों के सेवन को अधर्म या पाप घोषित किया है न कि मांसाहार को ।

बौद्ध–जैन व संत आंदोलनों का मुकाबला करने के लिए हमारे ब्राह्मण पूर्वज शाकाहारी बनने को मजबूर हुए थे। इसी कारण प्राचीन शास्त्रों में मांसाहार–शाकाहार दोनों के समर्थन में श्लोक या दोहे–चौपाईयाँ पाए जाते हैं। बुद्ध ने कभी मांसाहार का विरोध नहीं किया था। उनका विरोध केवल यज्ञों में गाय, बैल, सांड व भैंस आदि को लाखों की संख्या में एक साथ काटने से था। उस समय खेती का आधार भी यही थे। जैनियों का आंदोलन शुद्ध शाकाहार पर आधारित था। दुनिया के लगभग सभी धर्मों के संस्थापक मांसाहारी थे। जैसे– हजरत मूसा– यहूदी, ईसा मसीह– ईसाई, इस्लाम–हजरत मुहम्मद, बौद्ध–गौतम बुद्ध। हमारा मानना है कि शाकाहार–मांसाहार का धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य से कुछ भी लेना–देना नहीं है। हमें लोगों की खाद्य स्वतंत्रता का हन्न करने का कोई अधिकार नहीं है। अतः शाकाहारियों का मांसाहारियों से मांसाहार के नाम पर नफरत करना एक अमानवीय व्यवहार है।

वर्तमान का शाकाहारी आंदोलन मुख्य रूप से मूलनिवासी कथित दलित–आदिवासी, पिछड़ी जातियों व अल्पसंख्यकों के प्रति नफरत पैदा करने के षड़यंत्र के रूप में देखा जाना चाहिए। क्योंकि सामान्यतः यही लोग मांसाहारी होते हैं। बंगाल, कश्मीर, नेपाल व दक्षिण भारत के अधिकांश ब्राह्मण मांसाहारी हैं। उत्तर भारत में

बुद्ध–महावीर व संत आंदोलन के कारण अधिकांश लोग शाकाहारी हो गए हैं, किंतु कथित उच्चवर्ग के लोग अक्सर चोरी–छिपे मांसाहार करते हैं। जो पिछड़ी जातियाँ आज मांसाहार को नफरत की नजर से देखने लगी हैं, उसका कारण उनका शाकाहार के प्रति प्रेम या जीव दया न होकर कथित ऊँची जातियों की नजरों में सम्मान पाने की प्रवृत्ति का परिणाम है।

अक्सर यह विवाद होता रहता है कि रामायण काल में कथित सभ्य समाज में मांसाहार प्रचलित था या नहीं ? इस तरह के प्रश्नों से धर्म के तथाकथित ठेकेदार बौखला जाते हैं, विभिन्न रामायणों का तुलनात्मक अध्ययन किए बिना ही वे इस तरह के प्रश्नों को अधर्म, पाप या नास्तिकता घोषित कर देते हैं। आइए हम निष्पक्ष होकर विचार करें कि मध्यकाल में हमारे पूर्वज तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' में मांसाहार को लेकर क्या चिंतन दिया है ? मानस में कई प्रमाण मिलते हैं, जिससे यह साबित होता है कि तात्कालिक समाज के सभी अंगों में किसी न किसी रूप में मांसाहार प्रचलित था। तुलसीदासजी की निष्पक्षता और उनके द्वारा प्राचीन हिन्दू समाज में मांसाहार की स्वीकृति यही सिद्ध करती है कि हमारा प्राचीन इतिहास वैसा नहीं रहा है, जैसा हम मानते आए हैं।

राजा प्रतापभानु की कथा में मांसाहार के प्रमाण

तुलसीदासजी मानस में राजा प्रतापभानु की कथा में कहते हैं –''एक बार वह राजा एक अच्छे घोड़े पर सवार होकर, शिकार का सब सामान सजाकर विंध्याचल के घने जंगल में गया और वहाँ उसने बहुत से उत्तम–उत्तम हिरण मारे। राजा ने वन में फिरते हुए एक सूअर को देखा। (दाँतों के कारण वह ऐसा दीख पड़ता था) मानो चन्द्रमा को ग्रसकर (मुँह में पकड़कर) राहु वन में आ छिपा हो। राजा तक–तक कर तीर चलाता है, परंतु सूअर छल करके शरीर को बचाता जाता है। वह पशु कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ भागा जाता था और राजा भी क्रोध के वश उसके पीछे लगा चला जाता था। राजा बिल्कुल अकेला था और वन में क्लेश भी बहुत था, फिर भी राजा ने उस पशु का पीछा नहीं छोड़ा !!'' देखिए–

चढ़ि बर बाजि बार एक राजा । मृगया कर सब साजि समाजा ।।
बिंध्याचल गंभीर बन गयऊ । मृग पुनीत बहु मारत भयऊ ।।
फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रकि राहू।।
तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा ।।
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ सँग लागा ।।
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू ।।

बाल कां. पृ. 128–129

अब यदि इन चौपाइयों का निष्पक्ष विश्लेषण करें, तब हमें बिना किसी चूँ चकर के यह स्वीकार करना चाहिए कि हमारे पूर्वज हिरण के मांस के तो शौकीन थे ही, जंगली सुअर का मांस भी उन्हें बहुत भाता होगा। तभी तो धर्म परायण ब्राह्मण भक्त राजा प्रतापभानुजी इतने दिवाने हुए कि जंगली सुअर के चक्कर में वापसी का अपना रास्ता तक भूल गए थे। और एक कपटी साधु के आश्रम में जा पहुँचे । (जो पूर्व समय में प्रतापभानु से हारा हुआ एक राजा था।)

अब प्रतापभानु अपना अखण्ड राज्य करने के लिए कपटी साधु के बताए अनुसार एक लाख ब्राह्मणों के भोजन दान का प्रबन्ध करते हैं, तब तुलसीदासजी कहते हैं– ''अनेक प्रकार के पशुओं का मांस पकाया और उसमें दुष्ट (कपटी साधु) ने ब्राह्मणों का मांस मिला दिया। सब ब्राह्मणों को भोजन के लिये बुलाया और चरण धोकर आदर सहित बैठाया । ज्यों ही राजा परोसने लगा, उसी काल आकाशवाणी हुई– 'रसोई में ब्राह्मणों का मांस बना

है'!! (इस आकाशवाणी) का विश्वास मानकर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए।'' देखिए–

विविध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महुँ विप्र माँसु खल साँधा।।
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए ।।
परूसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला।।
भयउ रसोई भुसूर माँसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू ।।

बा.का. पृ. 140

चाहे रसोई कपटी साधु ने बनाई हो किन्तु उसे यह तो पता ही था कि ब्राह्मण भोजन में क्या पसंद करते थे। इसीलिए उसने कई प्रकार के पशुओं का मांस पकाया था। हाँ, यह बात अलग है कि उसने एक दो ब्राह्मणों को भी मारकाट कर साथ में पका दिया था। आकाशवाणी को भी ब्राह्मण मांस से तकलीफ थी न कि साधारण मांस से, तभी तो कहा गया – भयउ रसोई भुसूर माँसू। हो सकता है कि पूर्व काल में कपटी साधु का राज्य छीनने में ब्राह्मणों का विशेष सहयोग राजा प्रतापभानु ने लिया हो। इसी कारण उसने बदला लेने के लिए ब्राह्मण देवताओं को भी रसोई में पका दिया था।

प्रतापभानु भी यह जानता था कि पशुओं का मांस ही ब्रह्मणों का प्रिय भोजन है, क्योंकि वही भोजन परोसने वाला था। भला एक लाख ब्राह्मणों के भोजन में कितने पशुओं को मारना पड़ा होगा? क्या प्रतापभानु राजा का इस बात से अनजान होना, स्वीकार किया जा सकता है ? पकने पर मांस–मसालों की खुशबू से ही ब्राह्मणों को क्या पता नहीं चलता कि भोजन में मांस पका है ? जब ब्राह्मण मांस की आकाशवाणी हुई, तभी ब्राह्मणों ने बिना सोचे समझे ही, निर्दोष राजा को श्राप दे मारा। यदि सारा खेल माया या कपटी साधु का मानें तो भी ठीक नहीं, क्योंकि इतने लोगों के लिए पके मांस में मांस मिलाने पर पता नहीं चलता है कि किसका मांस मिलाया गया है। इतने बड़े पैमाने पर मांस पकाया गया था कि बिना आकाशवाणी हुए ही भू देवताओं को स्थिति स्पष्ट हो जाती कि भोजन शाकाहारी है या मांसाहारी। स्पष्ट है कि रामायण काल के हमारे ब्राह्मण पूर्वज मांसाहारी थे। बाद में बुद्ध–महावीर व संत आंदोलन ने उन्हें शाकाहारी होने पर मजबूर किया था।

हमारे ब्राह्मण या सनातन धर्म के शास्त्रों में क्षत्रियों का प्रिय भोजन मांस ही बताया गया है। आज भी हमारे क्षत्रिय समाज में हर शुभ अवसर पर शराब, कबाब व शबाब का सेवन करना क्षत्रियों की आन–बान और शान माना जाता है। किंतु फिर भी हमारे कथित धार्मिक भाई वर्तमान समाज व युग के दबाव में इस तथ्य से इन्कार करते हैं कि हमारे क्षत्रिय जाति में पैदा हुए देवी–देवता या अवतारी पुरुष मांसाहारी नहीं थे। हमारी इस धारणा का कारण हमारा मांसाहार के प्रति सदियों का पूर्वाग्रह या दुराग्रह ही काम कर रहा है। यदि ऐसा न होता तब राजा दशरथ जी हिरण के शिकार के चक्कर में बेचारे निर्दोष श्रवणकुमार को क्यों शहीद कर बैठते ?

रामजी ने बचपन में प्रतिदिन हिरणों का शिकार किया

तुलसीदास जी रामजी के बचपन का वर्णन करते हुए कहते हैं–''रामचन्द्रजी भाईयों और इष्ट मित्रों को बुलाकर साथ ले लेते हैं और नित्य वन में जाकर शिकार खेलते हैं। मन में पवित्र समझकर मृगों (हिरणों) को मारते हैं और प्रतिदिन लाकर दशरथ जी को दिखलाते हैं। जो मृग रामजी के बाण से मारे जाते थे, वे शरीर छोड़कर देवलोक को चले जाते थे। रामचंद्रजी अपने छोटे भाईयों और सखाओं के साथ भोजन करते हैं और माता–पिता की आज्ञा पालन करते हैं ।'' देखिए–

बंधु सखा सँग लेहि बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई।।
पावन मृग मारहिं जियँ जानी। दिन प्रति नृपहिं देखावहि आनी।।

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ।।
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं।।

बा.कां. पृ. 164

अब यदि हम निष्पक्ष और तटस्थ भाव से इन चौपाइयों का विश्लेषण करें, तब हमें मानना ही पड़ेगा कि रामजी बचपन से ही हिरणों के शिकार के शौकिन थे। रोज अपने इष्ट मित्रों के साथ शिकार खेलने जाते और हिरणों को ही सबसे पवित्र या खाने योग्य मानकर मार–मार कर लाते थे। फिर दशरथ जी को भी अपनी बहादुरी का परिचय देते हुए बताते थे कि पिताजी देखिए मेरा निशाना अचूक है, मैं तुम्हारी तरह हिरण के चक्कर में इंसान को नहीं मारता हूँ। फिर भाईयों व दोस्तों के साथ भोजन करते थे।

स्पष्ट है कि जो लोग मांसाहारी होते हैं, जब वे शिकार से लौटते हैं तब या तो शिकार को बाँटकर अपने–अपने घर ले जाकर पकाते हैं या फिर सब मिलकर साथ में ही भोजन करते हैं। चूँकि रामचंद्रजी उदार हृदय मित्र थे, अतः मित्रों को भी अपनी भोजन पार्टी में शामिल करते थे। तुलसीदासजी ने हिरणों के शिकार के अपराध को अपनी शाकाहारी मानसिकता के कारण कुछ हल्का करने के लिए यह भी जोड़ दिया कि जो हिरण रामजी के बाण से मारे जाते थे, वे सीधे स्वर्ग को जाते थे। हर मांसाहारी भक्त यही सोचता है कि जो पशु वह देवी–देवताओं या ईश्वर के नाम पर शहीद करता है, वे सब बैकुण्ठ में ही जाते हैं। ऐसी धारणा केवल हमारे देश में ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया के बलि प्रथा समर्थक लोगों की है।

जनक जी के राज्य में मुर्गीपालन केन्द्र

जब रामजी व लक्ष्मणजी मिथिला में राजा जनकजी के महल में सीता स्वयंवर के समय ठहरते हैं, तब का वर्णन करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं – ''रात बीतने पर, मुर्गे का शब्द कानों से सुनकर लक्ष्मणजी उठे । जगत् के स्वामी सुजान श्रीरामचन्द्रजी भी गुरू से पहले ही जाग गये।'' देखिए–

उठे लखनु निसि बिगत सुनि, अरूनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति, जागे रामु सुजान ।। 226।।

बा.कां. पृ. 181

अब यदि इस दोहे का विश्लेषण करें, तब हमें पता चलेगा कि जनकजी के महल के निकट ही उनका या किसी और का मुर्गी पालन केंन्द्र होगा। यदि मुर्गा–मुर्गी या अंडा खाने वाले लोग शहर से बाहर रहते होते, तब तो परकोटे या दूरी के कारण आवाज नहीं सुनाई देती। यदि लक्ष्मणजी मुर्गे की आवाज सुनकर उठे, इसका मतलब तो यही हुआ कि मुर्गा–मुर्गी व अंडा खाना जनकजी के राज्य में लोकप्रिय रहा होगा। यदि कोई कहे कि उन्हें खाते नहीं होंगे, तब हम यही कह सकते हैं कि जब आज हम मुर्गे–मुर्गियों को सुन्दरता, खेल या अन्य कारणों से भी अपने घरों में रखना या पालना अधर्म या गंदा समझते हैं, तब हमारे पूर्वजों ने उनकी आरती उतारने के लिए तो उन्हें नहीं पाले होंगे।

दशरथ जी के राज्य में मुर्गी पालन केन्द्र

मिथिला से बारात लौटने के दो–चार दिन बाद का वर्णन करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं– 'प्रातः काल पवित्र ब्रह्म मुहूर्त में प्रभु राम जागे। मुर्गे सुन्दर बोलने लगे।' देखिए–

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरूनचूड़ बर बोलन लागे।

बा.कां. पृ. 282

अब यदि इस चौपाई या अर्थ पर गौर करें, तब यही प्रतीत होता है कि राम जी या दशरथजी के महल के निकट ही उनका या किसी और का मुर्गीपालन केन्द्र होगा। जिससे वे रोज सुबह–सुबह मुर्गों की मधुर बाग

सुनकर जागते होंगे। वे मुर्गे का मांस खाते होंगे या नहीं, इसका निष्कर्ष तो हम पाठकों पर छोड़ देते हैं ! अयोध्या एवं मिथिला उस समय की राजधानियाँ थी, स्वभाविक है कि इनकी जनसंख्या एक लाख से कम नहीं होगी। ऐसे में मुर्गे की आवाज महल में कैसे सुनाती, यदि मुर्गा–मुर्गी पालने वाले निकट ही निवास न करते होते। स्पष्ट है कि आज की तरह रामराज्य में मुर्गा या मुर्गी पालने या खाने वालों को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता होगा।

लक्ष्मण–परशुराम संवाद में पशु बलि का समर्थन

लक्ष्मण–परशुराम संवाद में परशुराम जी कहते हैं, ''चतुरंगिनी सेना सुन्दर समिधाएँ (यज्ञ में जलायी जाने वाली लकड़ियाँ) हैं, बड़े–बड़े राजा उसमें आकर बलि के पशु हुए हैं, जिनको मैंने इसी फरसे से काटकर बलि दिया है। ऐसे करोड़ों जप युक्त रण यज्ञ मैंने किये हैं।'' देखिए–

समिधि सेन चतुरंग सुहाई । महामहीप भए पशु आई ।।
मैं एहि परसु काटि बलि दीन्हैं। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हैं ।।

बा.कां. पृ. 222

परशुरामजी ने उपमा देकर स्पष्ट कर दिया कि हमारे पूर्वज यज्ञों में पशु काट–काटकर बलि देते थे व भून–भून कर उनका मांस भी खाते थे। अब अर्थ का अनर्थ व नयी–नयी व्याख्या कर इतिहास को झुठलाने व हिन्दू समाज को बरगलाने के लिए कोई कथित विद्वान अपनी बुद्धि से वाग्जाल फैलाए तो फैलाता रहे, उसे कौन रोक सकता है ? कथावाचकों का तो काम ही है, तिल का ताड़ व राई का पहाड़ कर अपने धंधे व तोंद का विस्तार करना !

कौशल्या जी द्वारा बलि चढ़ाने की प्रतिज्ञा (मनौती)

रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही हैं, कौशल्याजी ग्राम के देवी–देवताओं की पूजा करती हैं और बलि चढ़ाने की प्रतिज्ञा करती है, इसका वर्णन करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं– ''उन्होंने (कौशल्या) ने ग्राम देवियों, देवताओं और नागों की पूजा की और फिर बलि भेंट देने को कहा।'' देखिए–

पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा।।

अयो. कां. पृ. 293

इस चौपाई के विश्लेषण में हम इतना ही कहेंगे कि जैसे भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी ग्रामीण देवी–देवताओं को बकरे–मुर्गे–सुअर या भैंसे आदि पशुओं की बलि दी जाती है, उसी प्रकार रामजी के जमाने में भी बलि दी जाती थी।

कैकयी–मंथरा संवाद में बलि प्रथा के प्रमाण

कैकयी–मंथरा संवाद में तुलसीदासजी कहते हैं– कुबरी ने कैकयी को (सब तरह से) कबूल करवाकर (अर्थात बलिपशु बनाकर) कपटरूप छुरी को अपने (कठोर) हृदय रूपी पत्थर पर टेया (उसकी धार को तेज किया) रानी कैकयी अपने निकट के (शीघ्र आने वाले) दुःख को कैसे नहीं देखती, जैसे बलि का पशु हरी–हरी घास चरता है।''(पर यह नहीं जानता कि मौत सिर पर नाच रही है) देखिए–

कुबरीं करि कबुली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई।।
लखइ न रानि निकट दुखु कैसें। चरइ हरित तिन बलिपशु जैसे।

अयो. कां. पृ. 303

काव्य में उपमा भी उन्हीं चीजों की दी जाती है, जो हमारे जीवन में रची बसी हो। बलि प्रथा हमारे समाज में तथा रामराज्य में भी आज ही की तरह आम थी। तभी तो तुलसीदास जी को बलिपशु की उपमा मानस में

बार–बार देनी पड़ती है !

आदिवासियों द्वारा रामजी को शिकार खेलने का प्रस्ताव

रामजी के स्वभाव के अनुसार ही मूलनिवासी या आदिवासी रामजी के वन आगमन पर प्रथम मुलाकात में ही शिकार खेलने का प्रस्ताव रखते हुए कहते हैं –

''हे प्रभु ! यहाँ के बीहड़ वन, पहाड़, गुफाएँ और खोह या दर्रे सब हमारे देखे हुए हैं। हम वहाँ–वहाँ (उन–उन स्थानों में) आपको शिकार खिलावेंगे और तालाब, झरने आदि जलाशयों को दिखावेंगे।'' ''शिकार के लिए फिरते हुए रामजी की छबि देखकर पशुओं के समूह विशेष आनन्दित होते हैं।'' देखिए–

बन बहेड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा।।
तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर जलठाउँ देखाउब।।
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहि मुदित मृग बृंद बिसेषी।।

अयो. कां. पृ. 388, 389

शायद रामजी का भोजन या शिकार बनने में हिरणों को मजा आता होगा। सीधी सी बात है, जंगल में कहाँ किराने की दुकानें होती थीं ! कहाँ बरतनों का इंतजाम करते फिरते। कंद–मूल–फल खा–खाकर जब रामजी परेशान हो जाते होंगे, तब शिकार द्वारा मनोरंजन, टाईमपास व भोजन का प्रबंध आदि सब हो जाता होगा। शिकार को भूनकर खाने में ज्यादा बरतनों और मिर्च मसालों की जरूरत भी नहीं होती होगी।

भरत जी के वन आगमन पर मांसाहार से स्वागत

भरतजी के वन आगमन पर उनके स्वागत भोजन प्रबन्ध की व्यवस्था निषाद राज जी करते हैं, जिसका वर्णन करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं– ''ऐसा कहकर वह भेंट का सामान सजाने लगा। उसने कंदमूल फल, पक्षी और हिरण मँगवाये। कहार लोग पुरानी (शायद सूखी या बर्फ में रखी) और मोटी पहिना (या पड़ियन) नामक मछलियों के भार (बड़ी–बड़ी डलिया) भर–भरकर लाये।'' देखिए –

अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग मागे।
मीन पीन पाठिन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने ।।

अयो.कां. पृ. 429

आदिवासी राजा गुहराज, रामजी के साथ–साथ भरतजी का स्वभाव भी जानते होंगे। इतने सारे अयोध्यावासियों के भोजन का प्रबंध रामजी से बिना पूछे तो गुहराज ने नहीं किया होगा ? कितने पक्षी, कितने हिरण और कितनी मछलियों का इंतजाम करना पड़ेगा, यह सब रामजी से आदेश लिए बिना भला गुहराज कैसे कर सकता था ? स्पष्ट है कि अयोध्यावासियों के स्वाद व रूचि का ध्यान रखते हुए ही कंद–मूल–फल के साथ–साथ कई प्रकार के मांसाहारी भोजन का प्रबंध भी गुहराज ने कहारों द्वारा करवाया था। आज हमारे सामान्य घरों में भी हम मेहमान की रूचि का ध्यान रखकर ही भोजन प्रबंध करते हैं, तब क्या अयोध्या के राजपरिवार का स्वागत छोटी बात थी, जो गुहराज ने रामजी से बिना पूछे ही मांसाहार परोसने की तैयारियाँ की होंगी ? स्पष्ट के रामराज्य में मांसाहार, एक प्रचलित सामाजिक व धार्मिक रूप से स्वीकृत भोजन था।

शिकार करना क्षत्रियों का स्वभाव है –राम जी

शूरपणखा के रूप विरूपण के बाद जब खर दूषण रामजी से लड़ने आता है, तब उसके दूतों से अपने क्षत्रिय समाज के शिकारी स्वभाव का वर्णन करते हुए रामजी कहते हैं– ''हम क्षत्रिय हैं, वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे सरीखे दुष्ट पशुओं को तो ढूँढते ही फिरते हैं।'' देखिए–

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं।।

अरण्य कां. पृ. 554

सीताहरण में हिरण के शिकार का योगदान

रामजी के जीवन की कई घटनाएँ हिरण के शिकार से संबंधित हैं, सीता जी भी हिरणों को देखकर ललचा जाती थीं, एक बार कपटी हिरण के चमड़े को देखकर सीताजी ललचा गईं और रामजी से निवेदन करते हुए कहा – ''हे देव! हे कृपाल रघुवीर! सुनिये! इस मृग की छाल (चमड़ा) बहुत सुंदर है। हे सत्य प्रतिज्ञ प्रभो! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिए।'' देखिए –

सीता परम रूचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेशा ।।
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला।।
सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही।।

अरण्य कां. पृ. 562

बुद्धिमान पाठक अब विचार करें कि रामजी न केवल हिरण मारने में माहिर थे, वरन् उसका चमड़ा निकालने में भी वे बड़े कुशल थे। हमारे देश में पशुओं का चमड़ा निकालने या चमड़े का व्यवसाय करने वालों को नीच या अछूत जाति का माना जाता है, जबकि रामजी चौदह वर्ष तक वनवास में हिरणों को मार–मार कर सीताजी व स्वयं के लिए चमड़े के जूते–चप्पल, वस्त्र व अन्य समान बनाते रहे, उन्हें हमारे समाज ने भगवान बना दिया !! जीवन में चमड़े के कई उपयोग हैं, इसीलिए सीताजी ने रामजी से चमड़ा ही मंगवाया था ! मांसाहारियों के लिए पशु मारना कोई पाप नहीं है, इसीलिए सीताजी ने हिरण मारने को कहा था, वरन् वे यह भी कह सकती थी कि कोई हिरण स्वाभाविक मौत मरा हो, उसका चमड़ा निकाल कर ले आओ। कुछ अंध–भक्त कह सकते हैं कि देखो सीताजी ने मांस नहीं केवल चमड़ा मंगवाया था, इससे सिद्ध होता है कि उनका परिवार शाकाहारी ही होगा। हमारा मानना है कि जंगल में फ्रिज आदि की व्यवस्था न होने के कारण सीताजी ने कहा होगा कि अभी बहुत सा मांस पहले ही रखा है, व्यर्थ खराब होगा। अतः केवल चमड़ा ही ले आओ।

मांसाहारियों की सबसे आसान मुक्ति (मोक्ष)

मानव की धार्मिकता या उसकी मुक्ति का शाकाहार–मांसाहार से कुछ भी लेना–देना नहीं है। यदि इंसान अपनी जान पर खेल कर भी मुसीबत से घिरे इंसान की मदद करता है, वही धार्मिक और मुक्ति का सच्चा अधिकारी है। चाहे उसका खाना शाकाहारी हो या मांसाहारी, इसी बात का समर्थन करते हुए तुलसीदासजी जटायु प्रसंग में कहते हैं –''गीध (पक्षियों में भी) अधम पक्षी और मांसाहारी था, उसको भी (रामजी ने) वह दुर्लभ गति दे दी, जिसे योगी जन माँगते रहते हैं।'' देखिए–

गीध अधम खग आमिश भोगी। गति दीन्ही जो जातक जोगी।।

अरण्य कां. पृ. 571

नरभक्षियों का भी स्वर्ग में आरक्षण ??

लंकाकांड में शिवजी रामजी की उदारता पर पार्वतीजी से कहते हैं– ''ब्राह्मणों का मांस खाने वाले वे नरभोगी दुष्ट राक्षस भी वह परम गति पाते हैं, जिसकी योगी भी याचना किया करते हैं।'' देखिए–

खल मनुजाद द्विजामिश भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी।।

लंका. कां. पृ.704

वैसे तुलसीदासजी की इस बात से सहमत नहीं हुआ जा सकता कि राक्षस या भारत के मूल निवासी लोग ब्राह्मणों का या इंसानों का मांस खाने वाले थे, यदि रावण को ब्राह्मण माना जाए, तब क्या हम यह कहेंगे कि

एक ब्राह्मण क्या इतना दुष्ट हो सकता है कि अपने ही जात भाईयों का मांस खा जाए! वास्तविकता यह है कि रावणराज्य में धर्म के नाम पर आम इंसान को ठगने वाले ठगों को, कठोर सजाएँ दी जाती थीं। चिड़े हुए पाखंडियों ने यह प्रचारित कर दिया कि रावणराज्य में धर्म–कर्म पर प्रतिबंध था। धर्म के धंधेबाजों का जब धंधा कमजोर हुआ होगा, तब वे चिल्लाने लगे होंगे– रावण राज्य में राक्षस (अनार्य या मूलनिवासी) हमारा मांस (काम–धंधे समाप्त होने के कारण तोंद का मांस कम होने लगा होगा) खा (काम–धंधा समाप्त कर) रहे हैं।

इन्द्रजीत द्वारा यज्ञ में भैंसे की बलि

हमारे देवी–देवताओं को भैंसे की बलि देना व उसका मांस खाने की हमारी प्राचीन परंपरा है। दक्षिण भारत के मध्यकालीन राजा कृष्णदेवराय के राज्य में भैंसों की बलि दी जाती थी। आज भी नेपाल में बड़े पैमाने पर ब्राह्मण पुजारी भैंसों की बलि देकर भैंसों का मांस बड़े चाव से खाते हैं। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर तुलसीदासजी ने कुंभकरण द्वारा भैंस का मांस खाने–मदिरा पीने तथा मेघनाथ या इन्द्रजीत द्वारा देवी को भैंस के खून व मांस की आहूति देने का वर्णन स्पष्ट शब्दों में किया है, देखिए–

महिश खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्र घात समाना।।
जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहूति देत रूधिर अरू भैंसा।।

लंका. कां. पृ. 720, 731

चूँकि रावण को ब्राह्मण माना जाता है, वह यज्ञ व पूजा–पाठ भी करता था, उसका बेटा इन्द्रजीत भी युद्ध में विजय के लिए देवी को प्रसन्न करने के लिए पशु बलि देता है। इससे यही सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वज मांसाहारी थे और हमारे शास्त्रकारों ने इस तथ्य को कभी छिपाया भी नहीं। मांस–मदिरा या सुरा–सुंदरी का भोग करना राक्षस, देव, आर्य–अनार्य आदि सभी जातियों में सामान्य और मान्य रिवाज था। उस युग में यह सब ध ार्मिक कार्य ही माना जाता था। इसे वर्तमान के चश्मे से देखने की बजाय हमें तात्कालिक समाज के समय और परिस्थिति के अनुसार देखने की जरूरत है। तभी हम राम एवं रामायण को वास्तविक रूप से समझ पाऐंगे।

कट्टरपंथियों के बहाने

जब वाल्मीकि रामायण व रामचरितमानस में मांसाहार के कई प्रमाण मिलते हैं, तब कट्टर शाकाहारी या अंधभक्त विद्वान भी इन श्लोकों एवं दोहे–चौपाइयों को प्रक्षिप्त घोषित करने की कुचेष्टा करते हैं। कुछ विद्वान या कथावाचक अनाप–शनाप व्याख्या कर अपने अंधभक्तों को शांत करने की कोशिश करते हैं। जैसे– हमारे पूर्वज खाने के लिए नहीं, निशाना साधने के लिए शिकार खेलते थे। मांस को कुत्तों व पालतू शेरों को खिलाया जाता था। या जिन–जिन हिरणों की उम्र पुर्ण हो चुकी थी या उनकी पशु योनि से मुक्ति के लिए उन्हें मारा जाता था। जो जन्मा है, उसका मरण निश्चित है, जो मरा है, उसका जन्म निश्चित है। आत्मा को न मारा जा सकता है, न काटा जा सकता है। वह सनातन है, शाश्वत है ! अतः चोले को मार कर पशुओं का मांस खाने में क्या बुराई है !!! ऐसे–ऐसे तर्क देकर कथित विद्वान अपने पूर्वजों की कथित नाक बचाने की कोशिश करते हैं ! जब इनसे भी काम नहीं चलता है, तब वे निष्पक्ष विद्वानों को विदेशियों का दलाल, धर्म का दुश्मन, नास्तिक या मार्क्सवादी– अम्बेडकरवादी कहते हुए अपने अंधभक्तों की अंधभक्ति बनाए रखने की कोशिश करते हैं।

इस शोधपत्र का उद्देश्य किसी की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाना नहीं, बल्कि सत्य का अनुसंधान करना व इतिहास के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करना है। और न ही हम मांसाहार के प्रचारक हैं।

(उपुर्यक्त शोध में सभी प्रमाण रामचरितमानस मझला साईज, गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित संवत् 2055 सन् 1998 के 56 वें संस्करण से लिए गए हैं, जिसके टीकाकार श्री हनुमान प्रसाद पोद्धार जी हैं।)

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वेदान्त की धरोहर के प्रबल प्रणेता स्वामी विवेकानन्द का धार्मिक चिन्तन

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
उ.प्र.वि.उ.डा.श.मि.विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ0 अभिलाष सिंह यादव
असि0 प्रो0–राजनीति विज्ञान
महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर, इला.

स्वामी विवेकानन्द ने जीवन को जिस रुप में स्वीकार किया था उसका आधार था, वैदान्तिक धर्म। उनकी इच्छा थी कि भारत के सर्वसाधारण में यदि धर्म का संचार हो जाय तब हम छोटी–छोटी समस्याओं से मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। राष्ट्रीय जीवन में व्याप्त बुराइयों को, जड़ता को, तथा उदासीनता को यदि समाप्त करना है तब धर्म का सहारा लेना होगा। सम्पूर्ण भारत में शिक्षित वर्ग की आस्था धर्म से हटने लगी थी क्योंकि धर्म सदाचरण से भिन्न व्यवहार में अभिव्यक्त हो रहा था। स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव ने धर्म के आलोच्य स्वरुप की निन्दा की और वास्तविक धर्म का मर्म समस्त जनता को समझाया।

स्वामी जी के आविर्भाव के साथ बहुत से उद्देश्य सामने आ खड़े हुए। भारत का कल्याण किस प्रकार से हो सकता है, स्वामी जी ने इस पर घोर चिंतन किया था। उनके सामने मुख्य तीन उद्देश्य थे। सर्वप्रथम वह धर्म को पुनः स्थापित करना चाहते थे। समाज में ऑग्ल भाषा–भाषी लोगों के बढ़ते हुये प्रभाव ने भारतीय युवकों की चिंतना और तर्कनाशक्ति को इस तरह प्रभावित और कुंठित किया था कि वह स्वयं अपने धर्म के प्रति आस्था खो बैठे थे। द्वितीय, हिन्दू समाज में धर्म को जिन हीन दृष्टि से देखा जा रहा था वह दृष्टि उनकी अपनी नहीं थी, उस पर ईसाई धर्मावलम्बियों का प्रभाव था। स्वामी जी हिन्दू समाज के लोगों को उनके प्राचीन गौरव की, धर्म की मान्यताओं का स्मरण कराना चाहते थे, उन्हें सच्चे धर्म से सम्बद्ध करना चाहते थे। तृतीय, भारतीय जनमानस को खोया हुआ आत्म–गौरव प्रदान करना इतिहास के धूमिल पृष्ठों पर लिखी भारतीय कहानी को फिर से भारतीय समाज को स्मरण कराना है। इस पुनरावृत्ति से भारतीय जनता में अपने गौरवशाली इतिहास को समझने और अनुसरण करने की प्रवृत्ति जन्म लेगी। भारतीय जनता ने यदि अपनी संस्कृति, आध्यात्मिक मान्यताओं तथा इतिहास के प्रति आदर व्यक्त किया तब उसमें पुनर्जीवन आ सकता है।

स्वामी जी धर्म को मनुष्य में निहित देवत्व का प्रतीक मानते थे। धर्म को वह अनुभव और अनुभूति की वस्तु मानते थे। रुढ़ियों और आडम्बरों से मुक्ति का मार्ग अलौकिकतापूर्ण विश्वासों के प्रति भाग दौड़ नहीं, बल्कि जीवन के स्वाभाविक तत्व की प्राप्ति है। यह स्वाभाविक तत्व धर्म है। धर्म के आधार पर वह व्यक्ति और समाज में पवित्रता, भक्ति, विनयशीलता, सत्यता, प्रेम तथा निःस्वार्थ सेवा की प्रवृत्ति को पुनर्जीवित करना चाहते थे। आध्यात्मिक उन्नति की छाया में भौतिक उन्नति यदि चले तब उनका मूल्य स्थायी हो सकता है, परन्तु यदि आध्यात्मिक मूल्यों को तिलांजलि देकर भौतिक उन्नति की जाय तब मनुष्य में मानवोचित गुणों का अभाव हो जायेगा। यह पतन का प्रतीक है।[1]

भारत का भविष्य :

धार्मिक चिंतन से आबद्ध – स्वामी विवेकानन्द ने एक जिज्ञासु की तरह भारतीय मन को समझा था।

भारत के अतीत से उन्होंने अपनों को आत्मसात किया था। वह भारत के लिये जिस नये सन्देश की रुप–रेखा लेकर आये थे, उसका आधार धर्म था। धर्म के बिना न भारत प्राचीन काल में गौरवपूर्ण हुआ और न भविष्य में ही गौरवपूर्ण हो पायेगा। अतीत ही दुहाई देने की अवहेलना करने वालों को स्वामी जी यह कहकर प्रताड़ित किया करते थे कि जिस जाति का अपने अतीत से कोई सम्बन्ध नहीं होता वह जाति आने वर्तमान के प्रति तो उदासीन रहती ही है, वह भविष्य के प्रति भी लापरवाह हो जाती है। अतीत हमें एक अच्छे साथी की तरह प्रेरणा देता है।

भारत की विभिन्न समस्यायें हैं। स्वामी जी इन्हें जाति, धर्म और भाषा के सन्दर्भ में देखते थे। इन समस्याओं के हल करने का मार्ग भी उनके पास धर्म था। मद्रास में अपार जनसमूह के सम्मुख स्वामी जी ने उद्घोषित किया, ''यही वही प्राचीन भूमि है, जिसे दूसरे देशों को जानने के पहले तत्व ज्ञान ने आकर अपनी वास भूमि बनाई थी; यह वही भारत है, जहॉ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरुप उसके बहने वाले समुद्रकार नद हैं, जहॉ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्गराज के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर संसार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरण रज पड़ चुकी है।

यही दर्शन और धर्म के आदर्शों ने चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहॉं से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्वों ने समग्र संसार को बार–बार प्लावित कर दिया और यही भूमि है, जहॉं से पुनः ऐसी ही तरगें उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगी। यह वही भारत है, जो शताब्दियों के आघात विदेशियों के शतशत आक्रमण और सैकड़ों आचार–व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है।[2]

उन्हें हिन्दू धर्म की महानता और सार्वदेशिकता में अखण्ड विश्वास था और वह यह कहते अघाते नहीं थे कि ''पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है जो हिन्दू धर्म के सामने इतने उच्च स्वर से मानवता की गौरव का उद्घोष करता हो।''[3]

उनका यह विश्वास था कि ''आध्यात्म विद्या के सम्बन्ध में पृथ्वी का कोई भी देश हिन्दुओं का मार्गदर्शन नहीं कर सकता।''[4]

अतीत से भविष्य का निर्माण होता है। भारत के अतीत का निर्माण धर्म तत्व से हुआ था और वर्तमान एवं भविष्य का आधार भी यही धर्म हो सकता है। ''हमारे पास एक मात्र सम्मेलन भूमि है। हमारी पवित्र परम्परा हमारा धर्म। एकमात्र सामान्य आधार वही है, और उसी पर हमें संगठन करना होगा। यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया में राष्ट्रीय ऐक्य का आधार धर्म ही है। हम जानते हैं कि भारतीय जन के लिये धार्मिक आदर्श से बड़ा और कुछ भी नहीं है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूल मंत्र है। यह केवल सत्य ही नहीं कि धार्मिक आदर्श यहॉं सबसे बड़ा आदर्श है, किन्तु भारत के लिये कार्य करने का एकमात्र सम्भाव्य उपाय यही है। हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज, हमारे बल, यही नहीं हमारे जातीय जीवन की मूल भित्ति है। धर्म ही हमारे राष्ट्रीय जीवन का प्राण है। तुम उससे निकल नहीं सकते। अभी और चिरकाल के लिये भी तुम्हें उसी का अवलम्ब ग्रहण करना होगा और तुम्हें उसी के आधार पर खड़ा होना होगा, चाहे तुम्हें इस पर उतना विश्वास हो या न हो, जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बंधे हुये हो, और अगर तुम इसे छोड़ दो, तो चूर–चूर हो जाओगे।''[5] भारत की समस्त समस्याओं के निराकरण के लिये उन्होंने धर्म की बॉह गही। भारत के लिये उनका सन्देश धर्म पर आधारित प्रेम के क्षेत्र, त्याग के क्षेत्र, साहस और निर्भयता के क्षेत्र का विस्तार करना है। स्वामी जी के अनुसार, यदि भारत ने अपने दर्शन से, संस्कृति से और आध्यात्म से, जिनके मूल में धर्म निवास करता है, अपना सम्बन्ध त्याग दिया तो भारत का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। पाश्चात्य समाज के अनुकरण से भारत का कल्याण सम्भव नहीं है, ''हम लोगों में पाश्चात्य जातियों की नकल करने की इच्छा ऐसी प्रबल होती

जाती है कि भले–बुरे का निश्चय अब विचार–बुद्धि, शास्त्र या हिताहित ज्ञान से नहीं किया जाता। गोरे लोग जिस भाव और आचार की प्रशंसा करें, वही अच्छा है और वे जिसकी निन्दा करें, वही बुरा है। अफसोस! इससे बढ़कर मूर्खता का परिचय और क्या होगा।[6] स्वामी जी देश के मानस को रुढ़ियों, अन्ध–विश्वासों और अन्धानुकरण से मुक्त करना चाहते थे। वह तो उपनिषदों, गीता तथा व्यास के सूत्र एवं शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, तथा चैतन्य जैसे महान् पुरुषों की शिक्षाओं को वह धर्म के प्रतीक रुप में स्वीकार करते थे। किस धर्म को श्रेष्ठ कहा जाये, इस विवाद में वह नहीं उलझना चाहते थे। वह तो परम सत्य की खोज में व्यस्त थे।

स्वामी जी कोटि–कोटि भारतीयों में विभिन्न प्रकार की एकता को आवश्यक मानते थे। जातीय आधार पर निम्न से निम्न व्यक्ति के उत्थान को पुनीत धर्म समझना होगा। यही बात नारियों के उत्थान के सम्बन्ध में करनी होगी। भारत को विश्व के रंग–मंच पर एक विशेष दायित्व का निर्वाह करना है। भारत को वह पहले धर्म के सहारे उठना होगा, गरीबों का सहारा बनना होगा, शिक्षा का विस्तार करना होगा तथा पुरोहितों के प्रपंचों की बुराइयों और सामाजिक अत्याचारों को मिटाना होगा। आध्यात्मिकता के परिवेश में ही उसे जीवित रहना है और विश्व को अपने संदेशों से उपकृत करना है, ''कोई भी व्यक्ति भारत के राष्ट्रीय जीवन का कोई भी ऐसा काल मुझे दिखला दे जिसमें यहाँ समस्त संसार को हिला देने की क्षमता रखने वाले आध्यात्मिक महापुरुषों का अभाव रहा हो। परन्तु भारत का कार्य आध्यात्मिक हैः और यह कार्य रणभेरी के निदान से या सैन्य दलों के अभियानों से तो पूरा नहीं किया जा सकता। भारत का प्रभाव धरती पर सर्वदा मृदुल ओस कणों की भाँति बरसा है, नीरव और अव्यक्त, पर सर्वदा धरती के सुन्दरतम् सुमनों को विकलित करने वाला। प्रत्येक सभ्य देश में लाखों उस सन्देश की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो उन्हें भौतिकता के घृणित गर्त में गिरने से बचा देगा, जिसकी ओर आधुनिक अर्थोपासना उन्हें आँखें मूँदकर ढकेल रही है।[7]

धार्मिक एकता : अपरिहार्य :

स्वामी विवेकानन्द वेदान्ती धर्म के उस साकार अस्तित्व का सही प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसके अनुसार समानता आत्मा का तत्व है। ईश्वर एक है, अराधना का माध्यम भले ही अलग अलग हो किन्तु उनमें विरोध के लिये कोई भी स्थान नहीं है, हिन्दुओं का ब्रह्म, पररसियों का अहुर्मज्य, बौद्धों का बुद्ध, यहूदियों का जिहोवा, ईसाईयों का स्वर्गस्थ पिता तथा मुसलमानों का मोहम्मद विभिन्न नामों में एक ही शक्ति है। हमें उस शक्ति के लिये आराधना करनी चाहिये, अपने को भिन्न–भिन्न धर्म सम्प्रदायों में विभाजित नहीं करना चाहिये।

धार्मिक एकता को दृढ़ करने से पूर्व यह जान लेना परमावश्यक है कि स्वामी जी सभी धर्मों में मूलभूत एक ही तत्व की समानता अनुभव करते थे। इस कारण से वह कभी भी धर्म परिवर्तन को उपयुक्त अनुभव नहीं करते थे। अपने धर्म की पूजा के साथ–साथ हम दूसरे धर्म के श्रेष्ठ तत्व ग्रहण कर लें, यह बिल्कुल एक पृथक ही बात है, इससे धार्मिक सद्भाव का मार्ग प्रशस्त होगा। ''ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिये और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर हाँ प्रत्येक को चाहिये कि वह दूसरों के सार भाग को आत्मसात करके पुष्टि लाभ करें और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुये अपनी निजी बुद्धि के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।[8]

मानव धर्म को इसलिये अंगीकृत करता है जिससे उसमें श्रेष्ठ तत्वों का समावेश हो जाये।

प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक राष्ट्र की महानता के लिये तीन बातें आवश्यक है –

(अ) सदाचार की शक्ति में विश्वास।

(ब) ईर्ष्या और सन्देह का परित्याग।

(स) जो सत्कर्म करने के लिये यत्नवान हों या कर रहे हों, उनकी सहायता करना।[9]

''बन्धुओं यदि आप किसी बाह्य सहायता के बिना निराकार परामात्मा की उपासना करने में समर्थ हैं, तो

ऐसा ही करें, लेकिन आप लोग उन दूसरे लोगों की निन्दा क्यों करते हैं, जो ऐसा नहीं कर सकते।''[10]

स्वामी विवेकानन्द ने संसार के प्रमुख धर्मों में सार्वभौमिक दार्शनिक तत्व, सार्वभौमिक पौराणिक तत्व, तथा सार्वभौमिक अनुष्ठान तत्व के विद्यमान होने का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। विश्व में सभी धर्म एकाकार या एक हो जायें, ऐसी कल्पना स्वामी जी नहीं करते थे। सभी धर्म–तत्व समान हैं, हमें विविधता में एकता स्थापित करनी है। किसी सम्प्रदाय या धर्म के मान्य सिद्धान्तों को मिटाना या समाप्त नहीं करना है। कुछ विनाश न करो वरन् उसका गठन करो। यदि हो सके, तो सहायता करो, नहीं तो चुपचाप हाथ उठाकर खड़े हो जाओ, यदि सहायता न कर सको तो अनिष्ट मत करो। इस मान्य नैतिकता के सहारे हम विश्वधर्म की भावना को दृढ़तर कर सकते हैं। ब्रह्म शिक्षा देने वाले केवल ज्ञान लाभ ही प्रदान कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि आत्मा की शिक्षा ग्रहण की जाये। ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म इन चार तत्वों पर सम्पूर्ण धर्म आधार टिके हुये हैं। आत्मा की ब्रह्मस्वरुपता को ज्ञान लेना, तद्रूप हो जाना, उसका साक्षात्कार करना, यही धर्म है– वह केवल सुनने या मान लेने की चीज नहीं है। समस्त मन–प्राण विश्वास की धरोहर है। यही सच्चा धर्म है।

अपने युग के सभी धर्म पुरुषों के प्रति स्वामी जी स्नेह–भाव और श्रद्धा–भाव रखते थे, इसी प्रकार वह सभी धर्मों के प्रति भी उदार थे। इस्लाम के प्रति उनके हृदय में किसी प्रकार का द्वेष नहीं था। इस्लाम के प्रति उनके हृदय में द्वेष भावना इसलिये सम्भव नहीं थी क्योंकि वह सच्चे धर्म के अर्थ को समझते एवं उसका अनुकरण भी करते थे। स्वामी जी के गुरु रामकृष्ण परमहंस ने तो इस्लाम धर्म में दीक्षा ली थी, फिर भला उनके जीवन पर उस प्रभाव को कैसे ओझिल किया जा सकता था। इस्लाम के प्रति प्रारम्भ में स्वामी जी इसलिये शकालु थे, क्योंकि मुसलमान राजाओं ने अपने धर्म के प्रसार से अधिक हिन्दू मन्दिरों की मूर्तियों को तुड़वाया था, किन्तु यह प्रश्न भी माता महाकाली की कृपा से स्वमेव ही हल हो गया। इस प्रसंग का उल्लेख उनकी शिष्या सिस्टर निवेदिता की पुस्तक 'माई मास्टर' में इस प्रकार है, ''मेरे मन में यह सोचकर बराबर क्षोभ उठता था कि मुसलमानों ने हिन्दुओं के मन्दिरों को क्यों तोड़ा, उनके देवी–देवताओं की मूर्तियों का क्यों भ्रष्ट किया।'' किन्तु आज माता ने मेरे मन को आश्वस्त कर दिया। उन्होंने मुझसे कहा, ''अपनी मूर्तियों को मैं कायम रखूँ या तुड़वा दूँ, यह मेरी इच्छा है। इन बातों पर सोच–सोचकर तू क्यों दुःखी होता है?'' सिस्टर निवेदिता ने अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द के स्वतः कथन को जिन शब्दों में प्रस्तुत किया उनसे इस्लाम धर्म के प्रति उनकी उपेक्षा एवं अनास्था समाप्त होने की संकेतिका हमें मिलती है।

पश्चातवर्ती वर्षों में वेदान्त को स्वामी जी ने इस्लाम धर्म के निकट स्वीकार किया है। इस स्वीकारोक्ति का उल्लेख उनके एक पत्र से मिलता है। यह पत्र उन्होंने अल्मोड़ा प्रवास काल में मोहम्मद सरफराज हुसैन को लिखा था, ''हमें दृढ़ विश्वास है कि वेदान्त के सिद्धान्त कितने की उदार और विलक्षण क्यों न हों, परन्तु व्यावहारिक इस्लाम की सहायता के बिना मनुष्य जाति के महान् जनसमूह के लिये वे मूल्यहीन हैं। हम मनुष्य जाति को वहाँ पहुँचाना चाहते हैं, जहाँ न वेद है, न बाइबिल है, न कुरानः परन्तु वह वेद, बाईबिल और कुरान के समन्वय से ही ऐसा हो सकता है। मनुष्य जाति को यह शिक्षा देनी चाहिये कि सब धर्म उस धर्म के उस एकमेव अद्वितीय के भिन्न–भिन्न रुप हैं, इसलिये प्रत्येक व्यक्ति इन धर्मों में से अपना मनोकूल मार्ग चुन सकता है।[11] मस्तिष्क और शरीर में यदि मेल नहीं होगा तो गति की कल्प असम्भव है, इसी प्रकार भारतीय समाज में गतिशीलता के निमित्त वेदान्ती मस्तिष्क को इस्लामी शरीर की अवहेलना नहीं करनी बल्कि प्रगति ओर सद्भाव के लिये उसका साथ उपयोगी है।

धर्म की वैज्ञानिकता में विश्वास व्यक्त करते हुये विवेकानन्द ने कहा ''सभी विज्ञानों की अपनी विशेष पद्धतियाँ होती हैं, धर्म विज्ञान की भी है। उसकी पद्धतियों की संख्या तो और भी अधिक है, क्योंकि उसकी विषय

सामग्री भी अधिक प्रचुर होती है।[12]

मूर्ति–पूजा सहायक प्रतीक –

स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को मनुष्य के हाथ में ऐसा सबलमत यन्त्र माना है, जिससे उसकी मुक्ति होनी है। धर्म जड़ता को भंग करता है। मोह, संघर्ष, पलायनवाद, ईर्ष्या एवं संदेह से मुक्ति दिलाता है। यह दूसरों के अनुभवों से ग्रहण करने वाली वस्तु नहीं है, इसमें अनुभूतिजन्य भावनाओं का सम्मिश्रण है। त्याग, सेवा तथा प्रेम की विविध धारा के प्रेम प्रवाह में धर्म और ईश्वर दोनों की अनुभूति होती है। जिस धर्म में त्याग की आंकाक्षा और सेवा करने की जिज्ञासा ही सर्वाधिक प्रेरक तत्व है। धर्म किसी आस्था पर ही टिका है। यह आस्था व्यक्तिगत धरोहर है। मूर्तिपूजा भी ईश्वर की अनुभूति के मार्ग में एक सहायक तत्व है। कुछ व्यक्तियों में यह धारणा है कि मूर्तिपूजा कोरा अंधविश्वास है, अज्ञानता का प्रतीक है एतदर्थ इसे स्वीकार करना जागरुक समाज का अपमान करना है।

स्वामी विवेकानन्द ने मूर्तिपूजा को ध्यान केन्द्रित करने का एक साधन माना। इसकी उपेक्षा करने वालों के लिये उनका स्पष्ट उत्तर था कि इसे कभी भी उच्च मनःस्थिति के साथ सम्बद्ध नहीं किया जा सकता बल्कि ध्यान, साधना के निमित्त सहायक क्रिया के रुप में इसका प्रयोग उचित है। ''मेरे भाइयें! मन में किसी मूर्ति के बिना आये कुछ सोच सकना उतना ही असम्भव है, जितना श्वास लिये बिना जीवित रहना। साहचर्य के नियमानुसार भौतिक मूर्ति से मानसिक भाव विशेष का उद्दीपन हो जाता है, अथवा मन में भाव विशेष का उद्दीपन होने से तद्नुरुप मूर्ति विशेष का भी आविर्भाव होता है। इसीलिये तो हिन्दू आराधना के समय ब्राह्म प्रतीक का उपयोग करता है। वह आपको बतलायेगा कि यह ब्राह्म प्रतीक उसके मन को अपने ध्यान के विषय में परमेश्वर में एकाग्रता से स्थिर रहने में सहायता देता है।''[13] हम प्रतीकों के सहारे एकाग्रता लाने का प्रयत्न करते हैं, तो क्या अहित करते हैं। हम दूसरों को इस कार्य से न अपमानित करते हैं और न परेशान ही। ''भारतवर्ष में मूर्तिपूजा कोई जघन्य बात नहीं है। वह व्यभिचार की जननी नहीं है। वरन् यह अविकसित मन के लिये उच्च आध्यात्मिक भाव ग्रहण करने का भाव है। अवश्य, हिन्दुओं के बहुतेरे दोष है, उनके अपने कुछ अपवाद हैं, परन्तु यह ध्यान रखिये कि उनके वे दोष अपने शरीर को ही उत्पीड़ित करने तक ही सीमित हैं, वे कभी अपने पड़ोसियों का गला काटने नहीं जाते।''[14]

स्वामी जी इन छोटे–छोटे प्रश्नों पर अपनी शक्ति का क्षय नहीं करना चाहते थे, वह भारत के सम्मुख अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं के निराकरण को आवश्यक मानते थे। यह सही है कि मूर्ति अल्पविकसित मस्तिष्क के लिये एक सहायक प्रतिमान है, पर वह आपको क्या कष्ट देता है? स्वामी जी ऐसे समाज सुधारकों को बड़ी प्रताड़ना देते थे, जो मूर्ति पूजा के खण्डन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण समाज–सुधार मानते थे। स्वामी जी का यह स्पष्ट मत था कि यह जातियों के आधार पर जो पारस्परिक दुर्व्यवहार चल रहा है, गरीबी हँस रही है, झोपड़ी बिलख रही है, इनका सही निराकरण होना चाहिये। हमें समाज को उस शिक्षा से अवगत कराना है, जो उसे संघर्षों से लड़ने की प्रेरणा और शक्ति दे सके, जो उसे परहित चिंतन से सक्रिय रहने के लिये तैयार कर सके।

मूर्तिपूजा के समर्थन और विरोध के समय नष्ट करने से अच्छा यह है कि हम गरीबों के दुःखों को दूर करने के लिये विकल्प ढूंढें। गरीबी ने भारत में अज्ञानता से समझौता कर लिया है। इस समझौते को तोड़ने के लिये गरीब का जीवन स्तर उठाना होगा, झोपड़ी के अंधकार को समाप्त करना होगा। ज्ञान के प्रकाश की किरण उसे नया जीवन देगी। विवेकानन्द चाहते थे कि वेदान्त के आधार पर भारत को चिन्तन के क्षेत्र में एक बार फिर अतीत का गौरव प्राप्त हो जाये, लेकिन उनकी दृष्टि कितनी व्यापक थी कि राष्ट्रीय गौरव की सीमाओं से प्रतिबन्धित नहीं थे। उनकी भावन में अन्तर्राष्ट्रीयता विद्यमान थी।[15]

स्वामी विवेकानन्द का धार्मिक चिन्तन पूरे विश्व के लिये धार्मिक आस्था के प्रतीक के रुप में स्वीकार किया

जाता है। जो आज भी प्रासंगिक है।

सन्दर्भ सूची

1. डा0 वीरेन्द्र सिंह, आधुनिक भारतीय राजनीति विचारधारायें, पृष्ठ सं0 95
2. विवेकानन्द संचयन, पृष्ठ सं0 168
3. स्वामी विवेकानन्द, पत्रावली प्रथम भाग (श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर), पृष्ठ सं0 80
4. भारतीय राजनीतिक विचारक, डा0 ए0 पी0 अवस्थी, पृष्ठ सं0 171
5. विवेकानन्द, संचयन, पृष्ठ सं0 169
6. सलैक्टेड वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द (खण्ड 9), पृष्ठ सं0 226
7. विवेकानन्द संचयन (विश्व को भारत का सन्देश), पृष्ठ सं0 465–66
8. शिकागो धर्म संसद में अन्तिम भाषण का साथ 27 सितम्बर 1893
9. शिकागो से श्री हरिदास बिहारीदास देसाई को लिखे पत्र से 22 जनवरी 1894
10. भारतीय राजनीतिक चिंतक, जीवन मेहता, पृष्ठ सं0 108
11. अल्मोड़ा प्रवासकाल में मौ0 सरफराज हुसैन का लिखा पत्र, 10 जून सन् 1898
12. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, डा0 ए0 अवस्थी, डा0आर0के0 अवस्थी, पृष्ठ सं0 119
13. शिकागो धर्म संसद के सामने हिन्दी धर्म पर पढ़ा लेख, 19 सितम्बर सन् 1893
14. शिकागो धर्म संसद के सामने हिन्दी धर्म पर पढ़ा लेख, 19 सितम्बर सन् 1893
15. राजनीति विज्ञान, डा0 पुखराज जैन, पृष्ठ सं0 111

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

राष्ट्रभाषा आंदोलन में ब्रह्मसमाज तथा आर्य समाज का योगदान

डॉ0 अशोक एम0 पवार
स्नातक एवं स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
गजमल तुलशीराम पाटील महाविद्यालय, नंदुरबार

आंदोलन की विशेषता यह होती है कि वह किसी चीज की प्रतिक्रिया स्वरुप उभरता है और आंदोलन किसी न किसी माध्यम से लड़े जाते हैं। राष्ट्रीय आंदोलन की बात करें तो वह विदेशी जीवन शैली या संस्कृति के साथ उनकी ज्यादतियों के खिलाफ चलाया गया है। वैसे भी राष्ट्रीय आंदोलन 19 वी शती की देन है। यही वह समय है जब अंग्रेज भारत की सत्ता में बैठा था, भारत को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और व्यक्ति को मानसिक तथा आर्थिक दृष्टि से गुलाम बना बैठा था। हर भारतीय के लिए उसे यहाँ से हटाना चुनौती का कार्य था इसलिए कई भारतीय नेताओं ने विभिन्न स्तरों पर आंदोलन चलाये। उनमें से कुछ सांस्कृतिक और भाषिक आंदोलन भी थे।

भारतवासियों के लिए खासकर हिन्दुओं के लिए एक चिंता का विषय था कि ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन 1893 के आस–पास भारत में ईसाई मिशनरियों को अपने धर्म के प्रचार की अनुमती प्रदान की थी। परिणामस्वरुप अनेक भारतीय धर्म परिवर्तन कर चुके थे। "इससे पूर्व सन 1541 तक गोवा में कूजेवियर के आगमन के पश्चात साठ हजार मछुआरों को ईसाई बनाया जा चुका था। नोबेल ने ब्राह्मण वेषधारण करके सन 1607 से सन 1611 तक 27 ब्राह्मणों और एक लाख अन्य लोगों को ईसाइयत के रंग में रंग दिया।"[1] इसके पश्चात भी धर्म परिवर्तन लगातार जारी रहा। भारतीय धर्मों के लिए एक चुनौती का विषय बन गया था।

भाषा, समाज और संस्कृति ये ऐसे क्षेत्र हैं जो एक–दूसरे के बिना विकसित नहीं होते। तीनों का आपस में अटूट संबंध है। हर भाषा का अपना समाज और संस्कृति होती है। इसी तरह हर समाज की एक भाषा एवं संस्कृति होती है। भाषा और समाज के बिना संस्कृति अधूरी है। यही बात अंग्रेज मिशनरियों ने तथा ईसाई धर्मप्रचारकों ने जान ली और भारतीय आम जनता की भाषा में श्रीरामपुर के पादरियों ने बाइबिल का 26 भाषाओं में अनुदान किया। "श्रीरामपुर के पादरियों का श्रेष्ठ काम यह था कि उन्होंने सबसे पहले हिन्दी भाषा को आधुनिक रुप देना शुरु किया।"[2] इससे हिन्दी को बढ़ावा मिला।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय भारत की सबसे बड़ी जनता हिन्दी भाषा जानती थी। कम्पनी की अपनी भाषा अंग्रेजी थी। मुसलमानों के शासनकाल से फारसी भाषा राजभाषा के रुप में प्रयुक्त होती चली आ रही थी। ये भाषाएँ रोमन, नागरी तथा फारसी लिपि में लिखी जाती थीं। अंग्रेजों ने हर तरह से हिन्दुस्तानी का उपयोग करके सत्ता पर कब्जा कायम रखना चाहा। शिक्षा क्षेत्र में जैसे फोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से कम्पनी के कर्मचारियों को शिक्षा दी जाने लगी। परिणामतः अंग्रेज सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सत्ता हिन्दी के माध्यम से मजबूत करने में लगे थे तब जाकर भारतीय धर्मों के अनुयाइयों ने हिन्दी की ओर ध्यान दिया। आ॰ रामचंद्र शुक्ल ने लिखा–"अनेक नगरों में बालकों की शिक्षा के लिए ईसाइयों के छोटे–मोटे स्कूल खुलने लगे और शिक्षा संबंधी नई पुस्तकें भी निकलने लगीं। इन पुस्तकों की हिन्दी भी वैसी ही सरल और विशुद्ध थी जैसी बाईबिल के अनुवाद की अंग्रेजी की शिक्षा के लिए कई स्थानों पर स्कूल और कॉलेज खुल चुके थे। जिसमें

अंग्रेजी के साथ हिन्दी–उर्दू की पढ़ाई भी चलती थी।"[3] शिक्षा संबंधी पाठ्य पुस्तकों को बनाने हेतु मिशनरियों ने सन 1817 में 'कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी' तथा सन 1833 में आगरा स्कूल बुक सोसायटी, इलाहाबाद में 'नादर्न टेक्स्ट एण्ड बुक सोसाइटी' की स्थापना करके हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की निर्मिती पर बल दिया।

ईसाई धर्म प्रचारकों ने "जबरदस्ती न कर भारतियों को अपने धर्म के मानसिक और बौद्धिक परिवर्तन से काम लिया। हिन्दू धर्म की खामियों को वे अतिश्योक्ति के साथ बताते थे। जात–पात, छुआ–छूत, बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा आदि विकृतियों से ऊबकर भोली–भाली हिन्दू जनता और पढ़े–लिखे लोग भी ईसाई धर्म को स्वीकार करने लगे। ऐसे समय में नई शिक्षा से प्रभावित नवीन चेतना को आत्मसात करनेवाले अनेक विचारक आगे आए और उन्होंने समाज सुधार का कार्य किया।"[4] यहीं से विभिन्न आंदोलनों का सूत्रपात होता है।

हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने हेतु राष्ट्रभाषा आंदोलन भी आरंभ हुआ। राष्ट्र आंदोलन में सांस्कृतिक, राजकीय आंदोलन तो चल ही रहा था। धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन चलानेवाली संस्थाओं में राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित 'ब्रह्मसमाज', परमहंस सभा के केशवचंद्र सेन ने 'प्रार्थना समाज', स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'आर्य समाज', पंडित दीनदयाल शर्मा ने 'सनातन धर्म सभा', स्वामी श्रद्धानंद के प्रयास से 'गुरुकुल कांगडी हरिद्वार' की स्थापना हुई। ऐसी अनेक संस्थाएँ बनी, जिन्होंने हिन्दी भाषा के माध्यम से धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का प्रावधान किया।

राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव देश के जन–जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ा। भारत की स्वतंत्रता के साथ भाषा की समस्या का सवाल उपस्थित हुआ और एक सामान्य भाषा की आवश्यकता अनुभव हुई। हिन्दी के महत्व को जानते हुए विभिन्न संस्थाओं के अथक प्रयत्नों द्वारा उसके लिए 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' अथवा 'राष्ट्रभाषा' नाम प्रचलित हो गया था। इसी राष्ट्रभाषा हिन्दी ने समग्र राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ॰ शिवराज वर्मा ने ठीक ही लिखा है – "राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रुप में प्रतिष्ठित करने में उन्नीसवीं शती से ही एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार हो गयी थी, जिसने हिन्दी को एक अतिव्यापक भाषा बना दिया था। वह राष्ट्रीय भावनाओं के सर्वथा उपयुक्त समझी जाने लगी थी।"[5]

राजा राममोहन राय बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा के विद्वान तो थे ही साथ ही अरबी, फारसी तथा हिन्दी भाषा के भी जानकार थे। ईसाई धर्म का बढ़ता प्रभाव देखकर उन्होंने सन् 1828 ई. में 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना की। इस संस्था ने ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म की तरह एकेश्वरवाद का समर्थन करते हुए मूर्तिपूजा का विरोध किया। हिन्दुओं में जागरण लाने और धर्म परिवर्तन को रोकने का कार्य ब्रह्म समाज ने किया। इस संस्था ने सामाजिक सुधार लाने का महान कार्य किया। इस संस्था के संबंध डॉ॰ शिवराज वर्मा ने लिखा है–"ब्रह्मसमाज ने देश में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रादुर्भाव किया, इसलिए इस संस्था के सदस्यों में यह विचार उत्पन्न हुआ कि देश की एक 'राष्ट्रभाषा' होनी चाहिए। इसलिए अपने विचारों के प्रचार के लिए अधिकांश पुस्तकें हिन्दी में ही छापी जाती थीं।"[6] संस्था के सदस्यों ने केशवचंद्र सेन, राजनारायण बोस, भूदेव मुखर्जी तथा नवीनचंद्र बांगला भाषी होते हुए भी हिन्दी भाषा का समर्थन किया तथा राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर हिन्दी को ही इस पद के योग्य समझा। नवीनचंद्र राय ने पंजाब जाकर हिन्दी भाषा के माध्यम से अपने विचार जनता को समझाये। इन्होंने अनेक हिन्दी पुस्तकों के लेखन के साथ मार्च, 1867 में शिक्षा तथा ज्ञानविज्ञान संबंधी 'ज्ञान प्रदायनी पत्रिका' हिन्दी में प्रकाशित की। भूदेव मुखर्जी ने बिहार में हिन्दी को प्रवेश दिलाया। केशवचंद्र सेन ने 'सुलभ समाचार' के माध्यम से सबको बताया था कि भारत की सबसे अधिक प्रचलित हिन्दी ही है और भारतीय एकता के लिए हिन्दी को ही महत्व प्रदान किया। "राजा राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना करके देश के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन को प्रभावित तो किया ही उसके साथ–साथ देश में राष्ट्रीय भावना की भी नींव रखी। इससे हिन्दी का महत्व भी बढ़ा"[7] राजा राममोहन राय जी समन्वयकारी थे। उन्होंने हिन्दूधर्मेतर धर्मग्रंथों की अच्छाइयों की भरपूर प्रशंसा

की और ब्रह्म समाज में समन्वय स्थापित किया जिससे संस्था भारत के अधिकांश राज्यों में अच्छा कार्य कर सकी। संस्था ने देशहित ध्यान में रखते हुए कार्य किया। हिन्दी भाषा प्रारंभिक अवस्था में होते हुए कार्य किया। वह सराहनीय कहा जा सकता है।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने वैदिक धर्म, सभ्यता तथा संस्कृति का प्रचार करने के लिए सन् 1875 ई. में मुंबई में आर्य समाज की स्थापना की। ईसाईयों के भारत आगमन के पश्चात ज्ञानविज्ञान एवं वैज्ञानिक आविष्कारों से भारतीयों में नवचेतना निर्माण हुई। भारत अनेक पौराणिक कुरीतियों एवं कुप्रथाओं तथा परंपराओं से ग्रस्त था। राजनीतिक हस्तक्षेप एवं सत्ता परिवर्तन के साथ सांस्कृतिक परिवर्तन के परिणाम स्वरुप भारतीय समाजसुधारों की दृष्टि इस ओर गयी जिससे स्वामी दयानंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, रवींद्रनाथ तथा तिलक पैदा हुए। स्वामी दयानंद जी के व्यक्तित्व का परिणाम यह था कि आंदोलन का प्रचार संपूर्ण उत्तर भारत में हो गया। "देश के धार्मिक, सामाजिक, शिक्षा संबंधी और साहित्यिक क्षेत्र में आर्य समाज की सेवाएँ स्मरणीय रहेंगी।"[8] संस्था के कार्य से खड़ीबोली गद्य को बढ़ावा मिला और हिन्दी साहित्य प्रभावित हुए बिना न रह सका।

आर्य समाज एक ऐसी संस्था है जिसने "अखिल भारतीय स्तर पर स्वभाषा, स्वधर्म, स्वदेश तथा स्वराज्य का सर्वप्रथम व्यापक आन्दोलन किया।"[9] आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों तथा वार्षिक अधिवेशनों में सारा कार्य हिन्दी में ही होता था। इससे हिन्दी का प्रचार बढ़ा। इस संस्था ने हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाया। पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार आदि प्रदेशों में अनेक शिक्षण संस्थाएँ स्थापित की। आर्य समाज ने कन्याओं की शिक्षा आरंभ की। कानपुर, सोलापुर, अजमेर में दयानंद कॉलेज की स्थापना की तथा जालन्धर में कन्या महाविद्यालय आरंभ किया। आर्य समाज को दो धर्मों का सामना करना पड़ा। एक ओर ईसाई धर्म प्रचारक और राजनेता थे तो दूसरी ओर इस्लाम धर्मावलंबी। आर्य समाज की सहिष्णुता के कारण कट्टर हिन्दुओं का भी विरोध सहना पड़ा। स्वामी दयानंद सरस्वती के हिन्दी प्रचार के तीन पडाव थे– साहित्य लेखन, व्याख्यान एवं शास्त्रार्थ तथा पत्र–व्यवहार। स्वामीजी ने 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दी में प्रकाशित कराया था। स्वामीजी ने हिन्दी साहित्य को वैदिक साहित्य की निधी प्रदान की जिससे हिन्दी भाषा एवं साहित्य की वृद्धि हुई। कहा जाता है–"हिन्दी के संस्कृतिकरण और राष्ट्रभाषा पद पर स्वीकार करने के अतिरिक्त आर्य समाज ने हिन्दी गद्य को नयी शैली प्रदान की, जो शास्त्रार्थ और खण्डन–मण्डन के उपयुक्त थी। भाषा में आलोचना और वाद–विवाद करने की शक्ति आयी।"[10]

कोई भी राष्ट्रीय आंदोलन केवल नैतिक विचारों या शस्त्र के बल पर नहीं चलाया जाता। ऐसे आंदोलनों को अपने उद्देश्य तक पहुँचना मुश्किल होता है इसलिए कोई भी आंदोलन धार्मिक, सांस्कृतिक और भाषिक आधार पर चलाया जाना जरुरी हो जाता है क्योंकि हमारा जीवन इन्हीं चक्रव्यूहों में फँसा हुआ है। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन भी विभिन्न स्तरों पर दिखाई देती है। राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में सांस्कृतिक एवं भाषिक आंदोलन को महत्वपूर्ण माना गया। किसी भूप्रदेश पर राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के लिए बल का प्रयोग किया जाता रहा है परंतु उस प्राप्त सत्ता को चिरकाल तक संजोये रखने के लिए प्रदेश विशेष की धार्मिक–सांस्कृतिक, जातिगत और भाषिक व्यवस्था को बदल दिया जाता रहा है। वहाँ के लोगों का धर्म परिवर्तन किया जाता रहा है। इसी की प्रतिक्रिया स्वरुप पुनः शुद्धिकरण भी होता रहा है। इस प्रक्रिया में अनेक सामाजिक, धार्मिक और जातिगत सुधारवादी परिवर्तन किये गये। अतः कहा जा सकता है कि आंदोलन केवल किसी समाज व्यवस्था में परिवर्तन ही नहीं लाते बल्कि मानवीय दृष्टि से सुधार लाते हैं।

हमारे राष्ट्रीय आंदोलनों ने यही कार्य किया है, जिससे हमारे यहाँ आम जनता की भाषा राजभाषा बन गयी तथा जनतंत्र लागू हो गया। ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज जैसी संस्थाओं के द्वारा हिन्दी का आधार लेकर धार्मिक और

शैक्षिक कार्य किया गया। इससे राष्ट्रभाषा हिन्दी का सम्मान बढ़ा है। दोनों संस्थाओं की मूल प्रेरणा देश और जातीय और धार्मिक थी। उन्हें अभिव्यक्त करना तथा समाज में तद्विषयक चेतना निर्माण करना इन संस्थाओं का कार्य था। उनका एक महत् उद्देश्य भी रहा है कि देश को समग्र बनाकर समाज की जातीय, धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता स्थापित करके अपने 'स्व' की रक्षा करना। इन दोनों संस्थाओं ने आर्य समाज एवं उपनिषदों के ब्रह्म को अक्षुण्य रखने की अथक कोशिश की है। यह कोशिश राष्ट्रीय आंदोलन का एक हिस्सा माना गया और वह कुछ हद तक अपने कार्य में सफल भी सिद्ध हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आधुनिक भारत का सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास–संपा॰ शिवकुमार गुप्त, पृ. 21
2. वही– पृ. 45
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास– रामचंद्र शुक्ल, पृ. 91
4. हिन्दी राष्ट्रभाषा से विश्वभाषा–डॉ॰ सुरेश माहेश्वरी, पृ. 50
5. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रुप में विकास–डॉ॰ शिवनारायण वर्मा, पृ. 158
6. वही– पृ. 161
7. वही– पृ. 163
8. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1–प्र.सं.धीरेंद्र वर्मा, पृ. 92
9. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रुप में विकास–डॉ॰ शिवराज वर्मा, पृ. 163
10. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1–प्र.सं.धीरेंद्र वर्मा, पृ. 92

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत–चीन और ऊर्जा आवश्यकता के नवीन सन्दर्भ

डॉ0 अनुराधा सिंह
सहा. प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान
शास.श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, सीतापुर, सरगुजा (छ.ग.) पिन कोड– 497111

यथार्थवादी प्रतिमान की मान्यता है कि विश्व विभिन्न राज्यों के पारस्परिक संबंधों का एक संजाल है जिसमें प्रत्येक राज्य एक मौलिक, स्वतंत्र एवं विवेकशील अभिकर्ता है। राज्यों की पहचान समाजशास्त्रीय न होकर भू–क्षेत्रीय है। राज्यों में शक्ति के असमान वितरण को देखते हुए सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य इस विश्व–व्यवस्था का निर्धारण करते हैं – जो एकध्रुवीय, द्विध्रुवीय या बहु–ध्रुवीय व्यवस्था को जन्म दे सकती है। स्पष्टतः विश्व राजनीति को नियमित करने में शक्तिशाली राज्यों की विदेश नीतियों का सर्वाधिक महत्व होता है। हेनरी किसिंगर का अनुमान था कि, इक्कीसवीं सदी में अंतराष्ट्रीय व्यवस्था पर छः प्रमुख शक्तियाँ हावी होंगी– संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप, चीन, जापान, रूस और भारत। शक्ति के संदर्भ में अब राजनीतिक शक्ति के बजाय आर्थिक शक्ति प्रधान हो गई है तथा ऊर्जा की ओर से असुरक्षित देश विश्व मंच पर एक महाशक्ति का स्थान नहीं ग्रहण कर पायेगा।

तेल और गैस ऊर्जा के महत्वपूर्ण स्रोत हैं तथा सुरक्षा व विकास के लिए इसकी मॉग उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। बढ़ती कीमतों और इसकी कमी की आशंका से ऊर्जा सुरक्षा के मुद्दे देशों के नीतिगत कार्यक्रमों में प्राथमिकता पर हैं। तेल की माँग में वृद्धि को राष्ट्रों के विशाल और मजबूत अर्थव्यवस्था के विकास से जोड़ा जाता है। वैश्विक ऊर्जा की प्रतिशत मॉग की पूर्ति तेल के द्वारा ही की जा रही है। अतः वैश्विक शक्तियाँ सैन्य और राजनीतिक प्रभुत्व की प्राप्ति हेतु पेट्रोलियम पदार्थों पर प्रभुत्व चाहती हैं।

दक्षिण और पूर्व एशियाई क्षेत्र में भारत और चीन दो तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाएँ हैं जिनकी बढ़ती हुई ऊर्जा की खपत ने वैश्विक ऊर्जा समीकरण को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। चीन और भारत विश्व की सबसे बड़ी जनसंख्याओं वाले देश हैं जो मिलकर 2.5 बिलियन लोग बनते हैं। 2050 तक अनुमानतः चीन व भारत आर्थिक संदर्भ में क्रमशः प्रथम व द्वितीय स्थान पर होंगे। विकास की राह पर तीव्र गति से अग्रसर चीन और भारत की अर्थव्यवस्थाएँ अनुमानतः विश्व के तेल खपत वृद्धि के प्रतिशत के लिए जवाबदेह होंगे और 2030 तक दोनों देश क्रमशः 71 प्रतिशत और 87 प्रतिशत तेल का आयात करेंगे। ऊर्जा आर्थिक विकास का मुख्य कारक है। इसकी आपूर्ति के लिए गुणवत्तापूर्ण उपलब्धता स्थायी विकास के लिए महत्वपूर्ण है। ऊर्जा आपूर्ति में बाधा से दोनों देशों की मुख्य और अनिवार्य जरूरत पर विपरीत असर पड़ता है। इस संदर्भ में सबसे बड़ी चुनौती इसकी वैश्विक स्तर पर बढ़ती मॉग, विद्यमान आपूर्ति दबाव और भूराजनीतिक बदलाव है। इसका असर इसके स्रोतों को हासिल करने की होड़ के रूप में सामने है। यह विडम्बना ही है कि महत्वपूर्ण तेल क्षेत्र इनके वास्तविक उपभोक्ताओं की पहुँच से काफी दूर है।

चीन ने आर्थिक विकास तथा सैन्य ताकत के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में एक शक्तिशाली देश की उपाधि ग्रहण कर ली है और वर्तमान समय में उसकी सामरिक रणनीति आर्थिक विकास में मदद कर रही है। वर्ष 2000 से 2005 की अवधि में चीन का ऊर्जा उपभोग साठ प्रतिशत तक बढ़ा है जो कि विश्व ऊर्जा उपभोग का लगभग आधा है। यद्यपि चीन अपनी 90 प्रतिशत ऊर्जा जरूरतों को अपनी घरेलू आपूर्ति से पूराकर सकने में सक्षम है फिर भी यह अपने उपयोग का आधा तेल आयात करता है। घरेलू मॉग और आपूर्ति में अंतर बढ़ता

जा रहा है। चीन की सरकार का आकलन है कि 2020 तक उसे 600 मिलियन प्रतिवर्ष क्रूड ऑयल की आवश्यकता होगी। विश्लेषकों का अनुमान है कि 2020 तक तेल की मॉग 11 मिलियन बैरल प्रतिदिन पहुँच जायेगी, प्राकृतिक गैस का उपयभोग तीन गुना (triple) बढ़ जायेगा और यह 3.6 ट्रिलियन क्यूबिक फीट वार्षिक होगा तथा कोयले के प्रयोग में 7.6 प्रतिशत की वृद्धि होगी और इसकी खपत 2.4 बिलियन टन प्रतिवर्ष होगी। चीन के तेल आयात में 2020 तक 77 प्रतिशत की वृद्धि होगी।[1]

इक्कीसवीं सदी में एक वैश्विक ताकत के रूप में उभरने की अभिलाषा लिए भारत तेजी से प्रगति कर रहा है। पिछले दस वर्षों में इसका आर्थिक विकास दर औसतन 7–8 प्रतिशत रहा है। पिछले आर्थिक विकास को बनाए रखने के लिए भारत को अपनी एक अरब जनसंख्या की ओर से बढ़ रही माँग को पूरा करने के लिहाज से ऊर्जा सुरक्षा के लिए संघर्ष करना होगा। ऊर्जा उपलब्धता और कमी और भविष्य में ऊर्जा की आवश्यकता के मौजूदा आँकड़े के हिसाब से भारत समाज के सभी वर्गों से पर्याप्त और वहन योग्य ऊर्जा उपलब्ध कराने की बड़ी चुनौती का सामना कर रहा है। सैम्युअल हटिंगटन का मानना है कि आने वाले दशकों में भारत त्वरित आर्थिक विकास कर सकता है और विश्व मामलों में प्रभाव डालने वाले प्रतियोगी के रूप में उभर सकता है।[2] विभिन्न संकेतकों के अनुसार भारत स्पष्टतः एक उभरती शक्ति है, चाहे यह शक्ति अभी पूरी तरह से साकार नहीं हुई है या अन्तर्राष्ट्रीय समाज के प्रमुख अभिनेताओं द्वारा पहचानी नहीं गई है, अन्य संकेतकों के अलावा इन संकेतकों में शामिल है– विश्व की दूसरी बड़ी जनसंख्या और जल्द ही चौथी बड़ी सेना।[3] भारत ऊर्जा का बड़ा उत्पादनकर्ता और उपभोक्ता दोनों है उसका स्थान विश्व में सातवें बड़े ऊर्जा उत्पादक का है जो कि विश्व भर के वार्षिक ऊर्जा का 2.49 प्रतिशत है। इसके साथ ही वह दुनिया का पाँचवा सबसे बड़ा ऊर्जा उपभोक्ता भी है जो कि विश्व के वार्षिक ऊर्जा उपभोग का लगभग 3.45 प्रतिशत प्रयोग करता है।[4]

यद्यपि अपने विशाल जनसंख्या के अनुपात में भारत का प्रतिव्यक्ति ऊर्जा उपभोग विश्व के निम्नतम में से एक है ऊर्जा के तीन बड़े स्रोतों कोयला, तेल और गैस क्रमशः 50, 30 और 10 फीसदी भारत की ऊर्जा जरूरतों को पूरा करते हैं। निम्न कोटि, जलवायु परिवर्तन आदि पर्यावरणीय चिन्ताओं के मद्देनजर कोयला भारत की सम्पूर्ण ऊर्जा जरूरत को पूरा करने में सक्षम नहीं है। भारत में प्राप्त, सम्भावित और दोहन योग्य कुल तेल व गैस भंडार का अनुमान 11 अरब बैरल है और यह तेजी से बढ़ रही ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। बढ़ती हुए तेल की खपत और सापेक्षिक रूप से सतही उत्पादन ने भारत को उत्तरोत्तर पेट्रोलियम में आयात पर निर्भर बना दिया।

अमेरिका से लेकर चीन व भारत तक तेल की माँग में वृद्धि को उनकी विशाल और मजबूत अर्थव्यवस्थाओं के विकास से जोड़ा जाता है। एशिया के कुछ हिस्सों में खासकर पूर्वी और दक्षिण एशिया ऊर्जा की कमी का सामना कर रहे हैं और अपने ऊर्जा की कमी को पूरा करने के लिए आयातित ऊर्जा पर निर्भर हैं। चीन और भारत की बढ़ती ऊर्जा खपत ने वैश्विक ऊर्जा समीकरण को प्रभावित किया है। कोयला और प्राकृतिक गैस पर बढ़ती निर्भरता को देखते हुए चीन और भारत सामूहिक रूप से अगले दो दशकों में पेट्रोलियम की माँग में 50 से 65 फीसदी वृद्धि करेंगे।[5] चीन की प्रमुख तेल कम्पनियाँ चाइना नेशनल पेट्रोलियम कार्पोरेशन, चाइना नेशनलन पेट्रो केमिकल कार्पोरेशन (साइनोपेक) और चाइना नेशनल ऑफशोर ऑयल कार्पोरेशन विदेश स्थिति भण्डारों के वृहत्तर और तीव्रतर अधिग्रहण में संलग्न हैं। चीन विकास और स्थिरता के लिए विश्व के अधिक से अधिक तेल क्षेत्रों पर अपना प्रभाव चाहता है। देश के विकास हेतु ऊर्जा माँग में वृद्धि और वाह्य ऊर्जा स्रोतों पर दिन–प्रतिदिन बढ़ती निर्भरता की वजह से दोनों देशों के मध्य संघर्षों में बढ़ोत्तरी हो रही है। एशिया प्रशांत, अफ्रीका, मध्य एशिया और लैटिन अमेरिका में भारत और चीन की ऊर्जा कम्पनियों ने अनेक मसौदों पर करार किए हैं परन्तु चीन भारत के विदेशी ऊर्जा स्रोतों की प्राप्ति में प्रमुख बाधा है। 2004 में अंगोला, 2005 में कजाखस्तान और इक्वेडोर में भारतीय विदेशी कम्पनियों को चीन से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। दक्षिण चीन सागर

में चीन पूरे क्षेत्र पर अपनी सम्प्रभुता का दावा करता है तथा उसका कहना है कि उसकी अनुमति के बिना इस क्षेत्र में घुसना व व्यवसायिक उद्यम संचालित करना गैर कानूनी है। भारत के लिए दक्षिण चीन सागर आर्थिक व सामरिक दोनों दृष्टियों से खास अहमियत रखता है। तेल एवं गैस भण्डारों से सम्पन्न यह क्षेत्र भविष्य में भारत की तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था के लिए ऊर्जा की निरंतर और अबाध आपूर्ति का महत्वपूर्ण स्रोत साबित हो सकता है। भारत की सार्वजनिक क्षेत्र की सबसे बड़ी तेल कम्पनी (विदेश लिमिटेड) दक्षिण चीन सागर में वियतनाम के अधिकार क्षेत्र वाले ब्लाकों (06, 1, 127 और 128) में खोज एवं दोहन कर रही हैं।

बीजिंग का दावा है यह पूरा इलाका उसके अधिकार क्षेत्र में आता है इसलिए उसकी अनुमति के बिना संचालित किसी भी तरह की व्यवसायिक गतिविधि अवैध मानी जाएँगी। जबकि भारत का दावा है कि क्षेत्र में उसके उपक्रम विशुद्ध रूप से व्यवसायिक हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुरूप हैं। स्पष्टतः दक्षित चीन सागर में चीन का आक्रामक रवैया ना केवल भारत के व्यवसायिक व सामरिक हितों के खिलाफ है अपितु ऊर्जा स्रोतों के पहुँच में बाधा उत्पन्न करता है।

पेट्रोलियम करारों और व्यापार के संबंध में चीन ने न केवल कूटनीति एवं राजनैतिक उपकरणों का प्रयोग किया अपितु ऊर्जा दाता देशों के हिस्सेदारी मूल्य में वृद्धि तथा संरचनागत विकास में सहायता व समर्थन प्रदान किया। इसके विपरीत भारतीय कम्पनियों की सफलता सीमित ही रही।

ऊर्जा पर बढ़ती निर्भरता बाहरी रणनीतिक चुनौतियों तथा आधारभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए भारत को ऊर्जा का उत्पादन और उपभोग करने वाले क्षेत्रों को आपस में जोड़ने के लिए एशियाई गैस ग्रिड पर कार्य करना होगा। भारत मध्य एशिया को अनंतर व सामरिक महत्व का पड़ोसी समझता है, न केवल ऐतिहासिक व सांस्कृतिक कारणों से बल्कि भू राजनीतिक व आर्थिक कारणों से भी। भारत को अपने ऊर्जा स्रोतों के विविधिकरण को बढ़ावा देना होगा न केवल मध्य पूर्व के देशों अपितु मध्य एशिया के ऊर्जा स्रोतों व प्राकृतिक संसाधनों तथा अफ्रीकी देशों में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करानी होगी। अक्षय ऊर्जा भविष्य में ऊर्जा संकट हल करने में कारगर तरीका हो सकता। तेल की आपूर्ति में आने वाली संभावित कमी व जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए शहरी परिवहन तंत्र में मौलिक पुनर्गठन की आवश्यकता है। इस दिशा में जो हमें संभावित बदलाव देखने को मिल सकते हैं उनमें दूरी घटाने के लिए छोटे शहर, घर में काम करने की सहूलियत, फ्यूल सेल से चलने वाले वाहन और सार्वजनिक परिवहन तंत्र शामिल हैं।

वर्तमान समय में ऊर्जा की माँग और आवश्यकताएँ जितने तीव्रतर ढ़ंग से बढ़ रही हैं उसी गति से ऊर्जा के संसाधनों में कमी तथा उसके तक देशों की पहुँच में संघर्ष में वृद्धि भी हो रही है। इन परिस्थितियों में विश्वसनीय वहनीय और दीर्घकालिक ऊर्जा की खोज और उसकी आपूर्ति आवश्यक हो गई है। इसलिए भारत और चीन द्वारा इस क्षेत्र में सहयोग आवश्यक है।

सन्दर्भ सूची

1. Zhao suisheng china's global search for energy security : cooperation and competition in Asia pacific,Journal of contemporary china (03 Apr. 2008), available at http// dxdoi.org/ 10.10,1080/10670560701809400
2. Samuel Huntington,The clash of civilization and the remaking of world order, New York, simon & Schuster 1996, P-12
3. Baldev Raj Nagar and T.V. Paul , India in the world order : searching for Major- power status and Cambridge university press, 2003, P-10
   (साभार–वर्ल्ड फोकस जनवरी 2013)
4. वर्ल्ड फोकस, जनवरी 2013, अंक 13 वर्ष 2, सम्पादक, जी किशोर बाबू पी 49 जोशी कालोनी, आई.पी.एक्सटेंशन
5. वर्ल्ड फोकस, जुलाई 2013, अंक 16 वर्ष 2 ,सम्पादक, जी किशोर बाबू पी 49 जोशी कालोनी, आई.पी.एक्सटेंशन

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

गाँवों में खाद्य–प्रसंस्करण से विकास की अपार संभावनाएँ

डॉ0 प्रभा कुमारी
व्याख्याता–सह–अध्यक्षा–अर्थशास्त्र विभाग
मुरारका कॉलेज सुलतानगंज, ति.माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, इसलिये इसके विकास में खाद्य–प्रसंस्करण का महत्वपूर्ण स्थान हो सकता है। 1988 ई. के जुलाई से ही खाद्य–प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना की जा रही है। आज की तिथि में खाद्य–प्रसंस्करण उद्योगों का काफी महत्वपूर्ण स्थान है। इससे गाँवों का विकास संभव हो सकता है, क्योंकि लोगों को रोजगार मिलेगा अपने–अपने गाँवों में। इसलिये कृषि कार्यकलापों के विविधिकरण, कृषि उत्पादों के मूल्यवर्द्धन इत्यादि आज की तिथि में निर्यात संवर्द्धन के लिये खाद्य–प्रसंस्करण क्षेत्र अत्यंत ही अहम् भूमिका निभा सकता है।

खाद्य प्रसंस्करण के अंतर्गत खराब होने वाली वस्तुओं को सुरक्षित रखने की सुविधा प्रदान करने की समस्या का समाधान उनकी उपज के प्रसंस्करण में निहित है, प्रसंस्कृत खाद्य–पदार्थों को उचित समय पर निर्यात सहित व्यापक विपणन कर कृषकों के लाभ–दर में सुधार किया जा सकता है।

खाद्य–प्रसंस्करण क्षेत्र कृषि के विविधीकरण तथा व्यापारीकरण, कृषि उपज का उचित मूल्य, रोजगार के अवसर का सृजन, कृषकों की आमदनी बढ़ाने तथा कृषि खाद्यों में निर्यात के लिये अधिशेष उत्पन्न करने के लिये महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

1988 के जुलाई में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय की स्थापना की गई थी। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और लक्ष्यों की सीमा के अंतर्गत खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के लिये नीति तथा योजनाएँ बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

भारत में खाद्य प्रसंस्करण, मांस प्रसंस्करण, अंडा प्रसंस्करण, पॉल्ट्री प्रसंस्करण, फल और सब्जियाँ प्रसंस्करण उपभोक्ता खाद्य उद्योग इत्यादि फर्मों का प्रसंस्करण मंत्रालय द्वारा किया जाता है और इस क्षेत्र में नियमन एवं नियंत्रण भी करता है।

एक मजबूत और गतिशील भारत के लिये खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम में सभी कृषि उत्पादनों एवं अन्य उत्पादन को प्रसंस्कृत करके निर्यात करने पर ऐसी वस्तुओं को व्यापक बाजार मिलने में आसानी होती। इससे गाँवों में कृषि उपज विविधिकरण को खूब बढ़ावा मिल रहा है। कृषकों को उच्च कीमत पर अपने अनाज, फल, सब्जियाँ, मसाले, तथा अन्य कृषि जनित चीजों को बेचना होता है। जिससे उनकी स्थिति ठीक हो रही है। इसमें प्रति यूनिट निवेश से सर्वाधिक रोजगार सृजन करने की क्षमता होती है। इस तरह खाद्य के प्रसंस्करण और इसके विपणन से कृषि आधी–शेष का सदुपयोग कर ग्रामीण दरिद्रता को दूर किया जा सकता है जिससे किसानों की स्थिति ठीक हो सकती है।

ग्रामीण खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों में बाधक तत्व

सबसे पहले अगर गाँवों में आधारभूत संरचना की सुविधाएँ नहीं हैं तो इस उद्योग को पनपने में दिक्कत आती है। दूसरी बात यह कि फल, सब्जियाँ में 1997–98 में संघीय उत्पाद शुल्क लगने के कारण इस उद्योग की वृद्धि में बाधा आयी थी जिससे इसकी उत्पादन क्षमता और स्थापित क्षमता में गिरावट आयी जिसके कारण उपभोक्ताओं को इस उत्पादों के लिये अधिक मूल्य चुकाने पड़े थे।

1996–97 में 9.5 लाख टन इस उद्योग का उत्पादन था जो 1999–2000 तथा 2000–01 में प्रतिकूल प्रभाव

भी इस उद्योग के उत्पादन पर पड़े थे।

केन्द्र सरकार ने 2001–02 के बजट में फूलो, फलों, सब्जियों के प्रसंस्कृत उत्पादों को 16 प्रतिशत केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से मुक्त रखा था, इनदिनों ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य–प्रसंस्करण के उत्पादित वस्तुओं के भंडारण, रखरखाब इत्यादि सुविधाओं का काफी अभाव पाया जाता है। इसमें ताजे फलों, फूलों और सब्जियों, दूध, अंडे की बर्वादी बड़े पैमाने पर हो रही है समुचित रख–रखाव के अभाव में। लेकिन विगत वर्षों में सब्जियाँ, मसालें पेस्ट, अचार, मशरूम के उत्पादन में धनात्मक वृद्धि हो रही है। और डिब्बा बंद मिर्च, टमाटर चटनी, फल–रस सांद्रणों, सिरके तथा जैम इत्यादि के उत्पादनों में उतार–चढ़ाव देखने को मिलता है।

आज इस उद्योग के सामने मूल्य वर्धित फल एवं साब्जियों के उत्पादों की घरेलू खपत प्रसंस्कृत खाद्यों से कम है, इसका प्रमुख कारण पैकिंग सामग्री, लागत इत्यादि पर ध्यान ना देना। बुनियादी सुविधाओं के अभाव में किसानों और खाद्य–प्रसंस्करण के बीच पर्याप्त लिंकेज का न होना, जिससे बिचौलियों पर निर्भर रहना होता है।

इन उद्योगों की संख्या का कम होना भी बाजार नहीं बढ़ने का कारण होता है। बाजार का अपर्याप्त विस्तारीकरण भी इस उद्योग के सामने एक समस्या है।

खाद्य प्रसंस्करण के लक्ष्य

इस आर्थिक उदारीकरण के युग में खाद्य–प्रसंस्करण उद्योग के तीव्र विकास में निजी एवं सार्वजनिक और सहकारी क्षेत्र की अहम् भूमिका निभानी पड़ रही है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय भी इस क्षेत्र में अधिक पूँजी निवेश को आज बढ़ावा दे रही है ताकि निर्यात को काफी बढ़ावा मिल सके, इसके लिये निम्नलिखित तथ्य रेखांकित करने लायक हैं –

- कृषि खाद्य उत्पादों का भंडारन, सावधानी पूर्वक ढुलाई और प्रसंस्करण हेतु बुनियादी सुविधाओं को प्राप्त करवाना।
- न्यूनतम अपव्यय की गुंजाइश पर ध्यान देना।
- घरेलू और बाहरी दोनों खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में आधुनिक तकनीकी का प्रयोग होना।
- खाद्य–प्रसंस्करण उद्योगों में अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहन देना।
- मूल्य संवर्धित निर्यात को बढ़ावा देने हेतु नीति–समर्थन प्रोत्साहनात्मक पहल और भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध कराना।
- खाद्य–प्रसंस्करण क्षेत्र के स्वस्थ विकास हेतु एक नीति अनुरूप वातावरण के निर्माण की सुविधा प्रदान करना।
- खाद्य–प्रसंस्करण क्षेत्र से संबंधित सीमा शुल्कों को तर्क संगत बनाने को बढ़ावा देना।
- विभिन्न तरह के शोध और विकासात्मक पहलू को आधार बनाना विकास कार्य–कलापों को सहायता देने के लिये।
- नये–नये प्रयोगशालाओं की स्थापना कर अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप सक्रिय भागीदारी तय करना।
- भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की अपार संभावनाओं के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने हेतु यह मंत्रालय निम्न सहायता देता है जैसे–

(1) कार्यशाला, प्रदर्शनियों, मेलों और सम्मेलनों का आयोजन करवाना, (2) अध्ययनों/सर्वेक्षणों आदि के लिये सहायता प्रदान करना।

खाद्य–प्रसंस्करण उद्योगों को कई क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। इसे विभिन्न तरह की सहायता भी पहुँचायी जा रही है। इसकी भूमिका संभावनाओं, समस्याओं और वर्त्तमान स्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता है और उसे राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में पारदर्शी और प्रभावी बनाया जा सकता है।

खाद्य–प्रसंस्करण उद्योग की वस्तुएँ और क्षेत्र

खाद्य–प्रसंस्करण उद्योग के निम्नलिखित वस्तुएँ और क्षेत्र हैं–

- फल तथा सब्जी प्रसंस्करण उद्योग (हिमीकरण और निर्जलीकरण समेत)
- कतिपय कृषि उत्पादों (जैसे–मिल्क पाउडर, शिशु दूध आहार, माल्टेड मिल्क फूड, कंडेंस्ट मिल्क, घी तथा अन्य डेरी उत्पाद पाल्ट्री और अंडा, मांस तथा मांस उत्पाद) का प्रसंसकरण एवं प्रशीतन इत्यादि।
- मछली–प्रसंस्करण (डिब्बाबंदी और फ्रिजिंग समेत)।
- डबल रोटी, तिलहन, भोजन (खाद्य) नाश्ता, आहार बिस्कुट मिष्ठान (कोको प्रसंस्करण) और चाकलेट उत्पादन सहित माल्ट एक्स्ट्रे वट, प्रोटीन आइसोलेट, अधिक प्रोटीन वाले खाद्य, वीनिंग फूड और एक्सइडिड खाद्य उत्पादन (खाने के लिये तैयार अन्य खाद्य सहित) से संबंधित उद्योगों की आयोजन, विकास और नियंत्रण तथा सहायता।
- बीयर, जिसमें गैर–अल्कोहलयुक्त बीयर शामिल हो।
- गैर सीसा आधारित अल्कोहल पेय।
- वातित जल, शीतल पेय।
- खाद्य–प्रसंस्करण उद्योगों हेतु विशेषीकृत पैकेजिंग।
- खाद्य–प्रसंस्करण उद्योग हेतु विकास।

सारणी–1

नवीं योजनाविधि में प्रमुख स्कीमों को दी गई वित्तीय सहायता

राज्य	कुल	1997–98	1998–99	1999–02	2000–01	2001–02	2000
1. अंडमान निकोबार द्वीप समूह	6.90	.000	6.90	0.00	0.00	0.000	6.90
2. आंध्र प्रदेश	720.93	82.50	40.50	241.39	320.55	35.99	720.93
3. असम	839.69	8.80	217.00	247.56	278.79	87.54	839.69
4. बिहार	105.55	52.00	19.00	9.78	23.77	1.00	105.55
5. छत्तीसगढ़	200.00	0.00	0.00	0.00	000.0	200.00	200.00
6. दिल्ली	10.07	0.00	8.10	1.07	1.00	0.00	10.07
7. गोवा	6.38	0.00	0.00	1.25	0.00	5.13	6.38
8. गुजरात	409.98	31.50	35.00	218.58	92.50	32.40	409.98
9. हरियाणा	387.90	0.00	0.00	57.50	65.00	265.40	387.90
10. हिमाचल प्रदेश	169.98	113.08	41.15	15.75	0.00	0.00	169.98
11. जम्मू एवं कश्मीर	480.22	0.00	7.50	82.57	200.00	190.15	480.22
12. कर्नाटक	1074.22	145.83	77.70	204.10	68.99	578.30	–
13. केरल	1311.58	102.00	297.88	334.10	233.10	344.50	131.58
14. लक्ष्द्वीप	22.00	22.00	0.00	0.00	0.00	0.00	22.00
15. मध्य प्रदेश	1025.57	54.00	73.00	44.57	243.00	615.00	1025.52
16. महाराष्ट्र	1214.09	263.38	180.67	264.65	327.23	178.16	1214.09
17. मणिपुर	679.67	18.77	34.41	59.68	334.39	232.42	697.67
18. मेघालय	44.30	0.00	0.00	44.30	0.00	0.00	44.30
19. मिजोरम	253.57	36.87	0.00	0.00	0.00	217.10	253.97
20. नागालैंड	348.07	10.50	99.00	104.72	97.25	36.60	348.07
21. उड़ीसा	545.72	23.05	140.00	94.61	42.60	245.16	545.72

22. पांडिचेरी	3.00	0.00	0.00	0.00	0.00	3.00	3.00
23. पंजाब	777.17	94.45	173.75	352.32	132.25	132.25	777.17
24. तमिलनाडु	133.20	239.17	127.93	111.60	670.055	670.05	1331.20
25. त्रिपुरा	240.10	0.00	9.05	231.05	0.00	0.00	240.10
26. उत्तर प्रदेश	1176.26	58.80	130.98	204.73	560.13	221.62	1176.26
27. उत्तरांचल	18.94	0.00	1.59	0.00	0.00	17.35	18.35
28. पश्चिम बंगाल	1180.67	70.41	493.95	252.96	236.00	127.35	1180.67

स्रोत : वार्षिक प्रतिवेदन 2000–03 खाद्य–प्रसंस्करण, मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग और पूँजी विनियोग

1991, जुलाई से दिसम्बर तक खाद्यान्न तेलों, तिलहनों और चीनी सहित खाद्य प्रसंस्करण के विभिन्न क्षेत्रों से 54,527 करोड़ रुपये की पूँजी विनियोग और लगभग 11.73 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार देने वाले 67715 औद्योगिक उद्यमी ने अपना ज्ञापन दिया है। इस अवधि के दौरान प्राप्त कुल औद्योगिक उद्यमी ज्ञापनी में से 47,550 करोड़ रुपये की पूँजी निवेश वाले और 10.89 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार देनेवाले 5824 ओद्योगिक उद्यमी का ज्ञापन गैर–शहरी इलाको के लिये यानी 43 प्रतिशत पूँजी निवेश पिछड़े इलाकों के लिये है। 7512 करोड़ रुपये की पूँजी और उसका निवेश वाले और 92175 लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार देने वाले 715 ओद्योगिक उद्यमी ज्ञापनों को कार्यान्वित किया जा चुका है।

सरकार ने 20,097 करोड़ रुपये की पूँजी निवेश वाले तथा लगभग 2.79 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार देने वाले औद्योगिक लाइसेन्स तथा शत–प्रतिशत निर्यातोन्मुखी इकाइयों सहित 1172 प्रस्तावों को भी अनुमोदित किया है। इनमें से 4575 करोड़ रुपये की पूँजी निवेश वाले और लगभग 0.9 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार देने वाले 281 प्रस्ताव कायर्यान्वित किये जा चुके हैं। 74,525 करोड़ रुपये के प्रस्तावित पूँजी निवेश में से विदेशी निवेश की मात्रा 10600 करोड़ रुपये है। 31 दिसम्बर 2002 को 3162 करोड़ रुपये से अधिक वास्ताविक विदेशी निवेश हो चुका था।

खाद्य–प्रसंस्करण उद्योगों की क्षेत्रवार प्रगति

देश में खाद्यान्न प्रसंस्करण मांस प्रसंस्करण, पॉल्ट्री प्रसंस्करण, अंडा प्रसंस्करण, दूघ–दही उत्पाद प्रसंस्करण, मछली प्रसंस्करण, फल तथा सब्जी प्रसंस्करण इत्यादि क्षेत्रों का नियंत्रण एवं नियमन खाद्य–प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय करता है।

1. खाद्यान्न प्रसंस्करण– विगत पाँच वर्षों में आटा मिलों की संख्या में समुचित बढ़ोतरी हुई है। इन मिलों की उत्पादन क्षमता लगभग 55 प्रतिशत है। इससे दलहन और तेलहन के प्रसंस्करण के विकास को भी बढ़ावा मिल रहा है। देश में धान प्रसंस्करण अनुसंधान केन्द्र को सुदृढ़ बनाया गया ताकि खाद्यान्न मिंलिग क्षेत्र का तेजी से विकास हो सके।

2. चावल मिलिंग– पाँच वर्षों में चावल मिलों यानी धान कुटाई की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्त्तमान समय में देश में 90 हजार से अधिक चावल की भूसी निकालने के संयंत्रों के आधुनिकरण की आवश्यकता है। 2002 ई. में चावल मिलों की संख्या 35088 थी औरी भूसी निकालने की संयंत्रों की संख्या 8384 थी। आधुनिक चावल मिलों के संयंत्रों से अच्छी गुणवत्ता वाली तेल निकालने लायक धान की भूसी प्राप्त होती है जिसकी मात्रा 35 लाख टन है, निर्यात के लिये बड़ी मात्रा में वासमती चावल को पॉलिश करने के निर्यातोंन्मुखी 40 ईकाइयाँ स्थापित की गई हैं।

3. फ्लोर मिलिंग– गेहूँ की पिसाई के लिये 820 ईकाईयाँ कार्यरत थीं और इसकी पैकिंग की भी ईकाइयाँ लगायी गई हैं।

4. दाल मिलिंग– आज की तिथि में 10 हजार दाल की मिलें है जिनकी मिलिंग क्षमता 14.0 मिलियन टन

है। इन मिलों के आधुनिकीकरण करने और खाद्य प्रसंस्करण के घाटे को कम करने के लिये सरकार वित्तीय सहायता देती है।

5. मांस–प्रसंस्करण– भारत में मांस और मांस से बने उत्पादों की प्रगति निरंतर बढ़ती जा रही है। देश में मांस उत्पादों के प्रसंस्करण के लिये लाइसेन्स मांस खाद्य उत्पाद इत्यादि 1973 के अंतर्गत दिया जाता है।

तलिका–2

मांस उत्पादन

नाम	1995	1996	1997	1998	1999	2000	2001	2002
भेड़ और बकरी के मांस	647	669	670	675	800	825	850	870
सुअर के मांस	420	420	420	420	464	480	495	502
भैंस के मांस	1204	1204	1205	1210	1250	1270	1300	1365
अन्य पशु के मांस	1292	1292	1292	1292	1292	1300	1305	1330

स्रोत : खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय भारत सरकार (रिपोर्ट)

भारत में मांस एवं मांस से निर्मित वस्तुओं के निर्यात में लगातर वृद्धि होती जा रही है। जबकि 1960–61 ई. में मांस और इससे बनी वस्तुएँ का निर्यात एक करोड़ रुपये का होता था। लेकिन 2008–09 में 5371 करोड़ रुपये हो गया था।

तलिका–3

मांस और इससे बनी वस्तुओं का निर्यात (करोड़ रू0 में)

वर्ष	1990–91	2000–01	2003–04	2004–05	2008–09
निर्यात मूल्य	140	1470	1714	1905	5311

स्रोत : आर्थिक समीक्षा 2009–10, पृ.– ।88

6. पॉल्ट्री एवं अंडा प्रसंस्करण– भारत में निरंतर वृद्धि हो रही है। अंडों और ब्रायलरों की उपलब्धता में भी तेजी से वृद्धि हुई है। कुक्कुट पालन क्षेत्र में 2005 ई. में 15000 करोड़ रुपये से अधिक कुल मूल्य का उत्पादन किया गया जिसे तालिका 4 में देखा जा सकता है।

तलिका–4

वर्ष	अंडा (मिलियन में)	बायलर (मिलियन में)	पाल्ट्री मांस (हजार टन में)
1995	27.275	350	578
1996	28,162	400	480
1997	30,000	450	600
1998	31,000	500	675
1999	32,000	550	725
2000	32,500	600	775
2001	33,000	700	875
2002	38,600	800	975
2003	40,403	–	–
2004	41,000	–	–
2008	55,638	–	249

स्रोत : आर्थिक सीमक्षा 2009, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय

7. मछली प्रसंस्करण– इस क्षेत्र में भारत के विश्व में छठा स्थान है। मत्स्य पालन रोजगार धंधे प्रदान करने वाला क्षेत्र है। यह मुद्रा अर्जन का स्रोत है। भारत के पास मत्स्यपालन के बहुत से संसाधन हैं।

तलिका–5

समुद्री उत्पादों का निर्यात

वर्ष	समुद्री	अतर्देशीय	कुल	मात्रा (हजार टन)	मूल्य (करोड़ रु0)
1990–91	2.3	1.5	3.5	140	873
2000–01	2.8	2.8	5.6	503	6296
2003–04	30.0	3.4	6.4	412	5739
2007–08	2.9	4.2	7.4	541	7620
2008–09	2.9	4.7	7.6	603	8608

8. दूध– श्वेत क्रांति के फलस्वरूप भारत में दूध का प्रसंस्करण हुआ है। और भारत विश्व में दूध उत्पादक का सबसे बड़ा उत्पादक बन गया है। वर्ष 2008–09 में 108.5 मिलियन टन तक दूध का उत्पादन हुआ है।

दूध एवं दुग्ध उत्पादों के तेजी से बढ़ते बाजार के कारण डेयरी उत्पादों का बाजार 20 से 30 प्रतिशत प्रतिवर्ष अधिक तेजी से बढ़ रहा है।

9. फल एवं सब्जी प्रसंस्करण– भारत में विभिन्न जलवायु के फल–सब्जियाँ, फूलों एवं मसाले का उत्पादन होता है। जिसमें भारत का विश्व में द्वितीय स्थान है। और सरकार की सहायता से फूल, फल एवं सब्जी के प्रसंस्करण उद्योग तेजी से फैलाये जा रहे है। संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में कुल फल–सब्जी उत्पादन में से लगभग 2 प्रतिशत का प्रसंस्करण किया जाता है। इस उद्योग की क्षमता 1990 में 7.08 लाख टन और 2004 में 23–28 लाख टन बढ़ी थी।

10. उपभोक्ता खाद्य उद्योग– उपभोक्ता खाद्य उद्योग में ब्रेड, केक, पेस्ट्र, रोल, नूडल्स कार्नफ्लैक्स, राइस फ्लैक्स, कोको, बिस्कुट, शीतल पेय, बीयर, अल्कोहल, मिनरल और बोतल बंद पानी शामिल है जिसका उत्पादन बढ़ रहा है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के आधुनिकीकरण एवं विस्तार के लिये 6.97 करोड़ रुपये वित्तीय सहायता के रूप में स्वीकृति दी गई थी केन्द्र सरकार के खाद्य संस्करण मंत्रालय द्वारा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. योजना, अक्टूबर 2003, नई दिल्ली, सं. राजेन्द्र राय, दिल्ली 1, पृ0 29–33
2. वही
3. वही
4. योजना, वर्ष 48, अंक 12 मार्च 2005, प्र.सं. अनुराग मिश्रा, नई दिल्ली–1, पृ0 14–15
5. योजना, वर्ष 50, अंक 9, दिसम्बर 2006, नई दिल्ली, पृ0 52–53
6. कृषि अर्थशास्त्र (2005), डॉ0 जय प्रकाश मिश्र, साहित्य भवन पाब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0–519–525
7. वही

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

ग्रामीण अंचल का विकास एवं आधी आबादी का योगदान

डॉ0 नीता तिवारी
प्रवक्ता–बी0एड0
कुटीर पी0जी0 कालेज, चक्के, जौनपुर

दुनिया में ऐसा कोई देश नही है जहाँ महिलाओं को हाशिए पर रखकर आर्थिक विकास संभव हुआ हो महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़े बिना किसी समाज, राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की कल्पना भी नही की जा सकती है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नारी ने सदैव पुरूष के साथ सहधर्मिणी का रूप निभाया है, इसके लिए सबसे अच्छा उदाहरण आचार्य मण्डन मिश्र की पत्नी शारदा देवी का है। जिन्होंने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। इसमें न केवल उन्होंने पति सहधर्मिता निभाई थी। बल्कि ज्ञान के क्षेत्र में भी अपनी योग्यता प्रदर्शित की थी। इस प्रकार से मैत्रैयी, गार्गी, सीता, अनुसूया, सावित्री, द्रौपदी आदि विदुषी महिलाओं के नामों से हमारा इतिहास परिपूर्ण है। मध्यकालीन भारत में अहिल्या बाई, रानी दुर्गावती, रानी लक्ष्मीबाई ने राजनीतिक प्रशासनिक और सामाजिक क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आधुनिक काल में राजनीति के क्षेत्र में सरोजनी नायडू, विजय लक्ष्मी पण्डित, सुचेता कृपलानी और इन्दिरा गाँधी आदि इसी श्रृंखला की एक कड़ी हैं।

वर्तमान में नारियाँ जिन पदों पर कार्य कर रही हैं, उनमें वे पुरुषों की अपेक्षा कम बुद्धिमता का परिचय नहीं दे रही हैं। जहाँ सेवाभाव इनकी मूल धरोहर है। वहीं ये शिक्षा, विभिन्न प्रकार के व्यवसाय प्रशासन सुरक्षा जैसे संवेदनशील स्थानों व क्षेत्रों में कार्यरत है। आज महिलाएँ पुलिस अधिकारी, पायलट जलपोत संचालक आदि के दायित्वों को संभाल रही हैं। महिलाओं ने अनवरत संघर्ष करके सत्ता के सर्वोच्च शिखर तक चढ़कर हर क्षेत्र में स्वयं को पुरुषों के समकक्ष साबित किया है। सत्य तो यह है कि जब तक महिलाएं शिक्षित नहीं होंगी तब तक उनमें जागरूकता नहीं आयेगी और यही नहीं उन्हें परम्परागत कार्यों से मुक्ति नहीं मिल पायेगी। तो वे समाज में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन एवं अपनी भूमिका का निर्वाह करने में स्वतंत्रता नहीं होगी। माना कि स्वतंत्रता के पश्चात उत्तरोत्तर ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता में बढ़ोतरी हुई है, लेकिन जब तक उनके हाथ में काम नहीं होगा इसके लिए उन्हें रोजगार सम्पन्न नहीं बनाया जायेगा तब तक उनका जीवन जैसा का तैसा ही रहेगा।

साक्षरता दर – 1901–2001

जनगणना वर्ष	कुल	पुरुष	महिला	स्त्री पुरुषों के साक्षरता दर में अन्तर
1901	5.35	9.83	0.60	9.23
1911	5.92	10.56	1.05	9.57
1921	7.16	12.21	1.81	10.40
1931	9.50	15.59	2.93	12.30
1941	16.10	24.90	7.30	17.60
1951	18.33	27.16	8.86	18.30
1961	28.30	40.40	15.35	25.05
1971	.34.45	45.96	21.97	23.98
1981	43.57	56.38	29.76	26.62

1991	52.21	64.13	39.29.	24.84
2001	64.84	75.26	53.67	21.59
2011	74.04	82.14	65.46	———

सन् 1901 में स्त्री साक्षरता दर 0.60 प्रतिशत था जो एक 1951 में 8.86 सन् 1991 के 39.29 प्रतिशत तथा 2001 में 54.16 प्रतिशत था 2011 में..... हो गया है। परन्तु 100 से भी अधिक वर्षो के विकास के पश्चात भी लगभग आधी स्त्रियाँ आज भी निरक्षर हैं, जो एक चिन्ता का विषय है। क्योंकि शिक्षा ही वह माध्यम है जो स्त्रियों को सबल बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है, क्योंकि शिक्षा से ही स्वरोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं और यही सत्य है कि जिस प्रकार पुरुषों और महिलाओं की साक्षरता में काफी अन्तर है। उसी प्रकार स्वरोजगार के मामले में स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा काफी पीछे हैं। उनके मानस पटल पर स्वरोजगार और उद्यमिता की लकीरें अभी खिंच नहीं पाई हैं। अभी तक महिलाएं स्वरोजगार हेतु स्वप्रेरित नहीं हो पाती हैं। यह खासतौर से ग्रामीण क्षेत्रों की तरफ दृष्टव्य हैं।

ध्यातव्य है कि क्योंकि ग्रामीण महिलाओं के पास वर्ष के अधिकांश समय चूल्हे–चौके के सिवाय कोई और काम नहीं होता है, फिर वे अपने समय का सदुपयोग करने की बात क्यों नहीं सोचती हैं, क्या उनमें पैसा कमाने की ललक नहीं होती है। क्या वे आत्मनिर्भर नहीं बनना चाहती हैं ? लेकिन वास्तव में सामाजिक–आर्थिक कारक व्यक्ति की उद्यमिता भावना को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने समाज के मूल्यों व परम्पराओं की परिधि में जीता है ये मूल्य और परम्पराएं उसके जीवन में बहुत गइराई तक समाए रहते हैं। हमारे मूल्य, हमारी परम्पराएं महिलाओं को बपचन से ही भेदभाव का शिकार बना देती हैं। हर मामलों में लड़कों के सामने लड़कियों की उपेक्षा की जाती है। चाहे वह खानपान का मामला हो या फिर शान शौकत का, पढ़ाई लिखाई का या बीमार होने पर दवा दारू का, हर स्थान पर महिलाओं को दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता है। जिसके कारण वे बाल्यावस्था से ही उनमें आत्मविश्वास की कमी पायी जाती है, और स्वयं कोई भी सशक्त कदम उठाने में स्वयं को पूर्ण रूप से सक्षम नहीं पाती हैं।

लेकिन एक ओर यह भी सच है कि आज के आर्थिक युग में महिलाएँ अधिक स्वावलम्बी हुई हैं उनमें आत्मविश्वास और मनोबल भी बढ़ा है, आज वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई हैं। मगर महिलाओं में आर्थिक क्रान्ति की लहर अधिकतर शहरी क्षेत्रों में ही देखने को मिलती है। यह नहीं कि ग्रामीण महिला कामकाजी नहीं हैं लेकिन फिर भी वे आत्मनिर्भर नहीं हैं इसका एक सबसे बड़ा कारण है उनका असंगठित होना। ग्रामीण महिला अधिकतर असंगठित क्षेत्रों में कार्य करती हैं इसलिए उन्हें बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। असुरक्षित वातावरण में कठोर श्रम करने के बावजूद उन्हें बहुत कम पारिश्रमिक मिलती है और दूसरी ओर उन्हें कई सुविधाओं से वंचित रखा जाता है।

किसी भी देश के सामाजिक, आर्थिक विकास को ज्ञात करने के लिए वहाँ की महिलाओं की स्थिति एवं स्तर का आकलन करना अति आवश्यक है। क्योंकि जब तक हम आधी आबादी के यथार्थ से परिचित होना होगा क्योंकि समाज में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। आधी आबादी को विकास की मुख्य धारा से जोड़े बिना किसी भी परिवार, समाज, राज्य, देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती हैं। भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी 72 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। यह जनसंख्या कृषि, कुटीर उद्योग, हथकरघां जैसे कार्यो से जुड़ी हुई है। देश के आर्थिक विकास में भी कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। कृषि के क्षेत्र में महिला श्रमिकों द्वारा किया जाने वाला कार्य जैसे– बुवाई, गोड़ाई, निराई, चारों की कटाई, अनाज निकलवाने आदि तक सीमित है इसके अतिरिक्त महिलाएँ मुर्गी पालन, पशुपालन और मधुमक्खी पालन के भी कार्य करती हैं। भारत सरकार ने ग्रामीण विकास में महिला रोजगार की भागीदारी बढ़ाने के लिए

समय–समय पर नीतियों का निर्माण किया है। महिलाओं और बच्चों के समग्र विकास हेतु 1985 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन महिला और बाल विकास विभाग गठित किया गया है और 2006 में इसे मंत्रालय का दर्जा दे दिया गया है। महिला और बाल विकास मंत्रालय महिलाओं की देखरेख करने वाली प्रमुख एजेन्सी के रूप में योजनाएं, नीतियां और कार्यक्रम तैयार करता है। महिलाओं के बारे में कानून बनाता है और उनमें संशोधन करता है। महिलाओं के विकास के क्षेत्र में काम करने वाले सरकारी और गैर सरकारी दोनों तरह के संगठनों के प्रयासों का दिशा–निर्देशन और समन्वय करता है। इसके अलावा विभाग महिलाओं के लिए कुछ अभिनव कार्यक्रमों को भी लागू करता है। ये कार्यक्रम प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण रोजगार और आमदनी बढ़ाने, कल्याण और क्षमता निर्माण रोजगार और सहायक सेवाओं तथा जागरूकता पैदा करने और महिलाओं में चेतना पैदा करने के क्षेत्र में होते हैं। इन सब कार्यक्रमों का अन्तिम उद्देश्य महिलाओं को आत्मनिर्भर और सक्षम बनाता है। भारत में ग्रामीण विकास, रोजगार संवर्धन व विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं को हल करने के लिए कई योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा हैं। इन योजनाओं में हैं।

समेकित बाल परियोजना – प्रत्येक माँ और बच्चा स्वस्थ और सुपोषित बन सके इसके लिए हर गॉव में आंगनबाड़ी केन्द्रों के माध्यम से कई सुविधाएं और दी जा रही हैं। 6 साल तक के बच्चे और शिशुवती महिलाएँ इसका लाभ ले सकती हैं। भाँति–2 के व्यंजन का पोषक आहार, टीकाकारण, स्वास्थ्य जॉच, वनज, खेल–खेल में पढ़ाई और सरकारी योजनाओं का लाभ आंगनबाड़ी केन्द्र से प्राप्त कर सकते हैं।

पूरक पोषण आहार योजना – आंगनबाड़ी केन्द्र में तरह–तरह के मीठे नमकीन स्वादिष्ट व्यंजन बॉटें जाते हैं। 6 साल तक के बच्चों, गर्भवती और शिशुवती महिलाएँ आंगनबाड़ी केन्द्र पर यह लाभ ले सकती हैं।

गोद भराई योजना – गर्भवती महिला की पूरी देखभाल एवं सुरक्षित प्रसव हेतु आंगनबाड़ी केन्द्र पर पंजीयन कराकर गोद भराई योजना का लाभ दिया जाता है। माह में प्रति मंगलवार गॉव–शहर की आंगनबाड़ी में गर्भवती महिला की गोद भराई जाती है। उसे उपहार मातृ शिशु रक्षा कार्ड, आयरन की गोली, पोषण स्वास्थ्य सलाह पर गर्भवती महिला के लिए चलाई जा रही योजनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

मातृ एवं शिशु रक्षा कार्ड– आंगनबाड़ी केन्द्र पर मातृ एवं शिशु रक्षा कार्ड बनाया जाता है। इसमें मॉ और बच्चे के टीका लगाया जाता है दोनों की नियमित देखभाल की जाती है।

अति गरीब महिलाओं का प्रसव के पूर्व सहायता राशि – यदि गर्भवती महिला गरीबी रेखा से नीचे जीवन पसर कर रही है और उसकी उम्र 19 साल की हैं और उसका प्रसव पहला या दूसरा प्रसव हैं तो आंगनबाड़ी केन्द्र पर योजना का लाभ दिया जाता है इस योजना के तहत प्रसव के 6 माह पूर्व 500 रूपये की सहायता मिलती है।

जननी सुरक्षा योजना– अस्पताल में सुरक्षित प्रसव को बढ़ावा देने के लिए यह योजना चलाई जा रही हैं गरीबी रेखा के नीचे के परिवार की गर्भवती महिला यदि सरकारी अस्पताल में प्रसव कराती है तो ग्रामीण क्षेत्रों में 700 रूपये, शहरी क्षेत्रों में 600 रूपये नगद दिये जाते हैं। अब यह राशि बढ़ा दी गयी हैं। गर्भवती को अस्पताल लाने वाले प्रेरक को ग्रामीण क्षेत्रों में 600 तथा शहरी क्षेत्रों में 200 रूपये दिये जाते हैं।

प्रसव परिवहन एवं उपचार योजना – प्रसव अस्पताल में ही कराएं अपने घर के पास के अस्पताल तक जाने के लिए सरकार गर्भवती को 300 रूपये देती है साथ ही प्रेरक को भी 200 रूपये देती है यदि गर्भवती स्त्री को दूसरे अस्पताल में भेजा जाता है तो फिर से 300 रूपये दिये जाते हैं। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति वर्ग की सभी महिलाएं तथा अन्य वर्गों की गरीबी रेखा से नीचे की महिलाएँ लाभ ले सकती हैं।

प्रसव सहयोगी योजना– इस योजना के तहत सभी गर्भवती महिलाओं को अस्पताल के लेबर रूम में प्रसव के दौरान परिवार को एक अनुभवी महिला सदस्य को अपने साथ रखने का अधिकार है।

राष्ट्रीय टीकाकरण– बच्चों और गर्भवती महिलाओं को सभी टीके अवश्य लगवायें और उन्हें बीमारियों, परेशानियों से बचायें, सभी टीके समय–समय पर निःशुल्क लगाये जाते हैं।

अन्नप्राशन योजना– अपने बच्चों को स्वस्थ तंदुरूस्त बनाने हेतु अन्नप्राशन योजना का लाभ दिया जाता है।

जन्म दिवस योजना – आंगनबाड़ी केन्द्र में हर माह के तीसरे मंगलवार को बच्चों का जन्म दिवस मनाते हैं और उन्हें उपहार देते हैं।

लाडली लक्ष्मी योजना – इस योजना में बालिका को 6 वीं कक्षा में 2000 रूपये, 9 वीं कक्षा में 4000 रूपये, 10 वीं कक्षा में 7500 रूपये और 11 कक्षा में 2000 रूपये प्रतिमाह दो वर्ष तक दिए जायेंगे, 21 वर्ष पूरा होने पर हमारी बिटियाँ को पूरे एक लाख रूपये मिलेंगे।

किशोरी बालिका दिवस योजना – किशोरियों की देखभाल संतुलित आहार, स्वास्थ्य एवं आर्थिक गतिविधि ायों के प्रशिक्षण के लिए आंगनबाड़ी केन्द्र पर प्रतिमाह चौथे मंगलवार को किशोरी बालिका दिवस मनाया जाता है। सभी किशोरियों को इसका लाभ दिया जाता हैं।

प्राथमिक विद्यालय में बालिकाओं को गणवेश – प्राथमिक विद्यालयों में बालिकाओं को निःशुल्क प्रवेश प्रदान किए जाते हैं

गॉव की बेटी योजना – प्रतिभाशाली गाँव की बेटी की उच्च शिक्षा की जिम्मेदारी सरकार की है। गॉव के स्कूल से 12 वीं कक्षा में सर्वोत्तम अंकों से पास करने वाली एक बालिका को इस योजना का लाभ दिया जाता हैं।

साइकिल प्रदान योजना – इस योजना के तहत 9 वीं कक्षा में प्रवेश करने वाली अनुसूचित जाति जनजाति की एवं गरीबी रेखा के नीचे के परिवार की बालिकाओं को सरकार मुफ्त साइकिल उपलब्ध कराती हैं।

कन्या साक्षरता प्रोत्साहन योजना – अनुसूचित जाति की ऐसी लड़कियां जो कक्षा 6 व एवं 11 में प्रवेश ले रही हैं। उन्हें सरकार प्रोत्साहन के रूप में क्रमशः 500 रूपये 1000 रूपये एवं 2000 रूपये प्रतिवर्ष उपलब्ध कराती हैं।

महिला खेलकूद प्रतियोगिता – महिलाओं को खेल के क्षेत्र में आगे बढ़ाने एवं प्रतिभाओं का चयन करने के लिए विकास खण्ड जिला राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर तरह–तरह की खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है इस तरह आर्थिक सहायता प्रदान किया जाता है।

मुख्यमंत्री कन्यादान योजना – योजना के तहत निराश्रित/निर्धन परिवार की कन्या/विधवा परित्यक्ता को सामूहिक विवाह हेतु आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। विवाह हेतु 5000 तथा गृहस्थी हेतु 1000 रूपये सामूहिक विवाह हेतु दिये जाते हैं

सौभाग्यवती योजना – अनुसूचित जाति कन्या विवाह हेतु यह योजना है। इस हेतु कन्या के माता–पिता को शादी के लिए 5000 रूपये उपलब्ध कराये जायेंगे।

समस्याग्रस्त महिलाओं की सहायता – कभी–कभी घरेलू सामाजिक या आर्थिक परिस्थितियों के कारण महिलाएं संकट में आ जाती हैं और उन्हें शीघ्र सहायता की आवश्यकता होती है ऐसी महिलाओं के लिए राज्य सरकार स्वयं स्वैच्छिक संस्थाओं के सहयोग से संस्थाऐं चला रही है। सरकारी संस्थाओं में प्रमुख नारी निकेतन है। यहाँ कोई भी समस्याग्रस्त महिला आकर रह सकती है जहाँ उसकी सुरक्षा, खानपान और पुनर्वास की निःशुल्क व्यवस्था है।

महिला जागृति शिविर – महिलाओं के कानूनी अधिकार शासकीय योजनाओं का लाभ देने के विकास खण्ड ग्राम स्तर पर महिला जागृति शिविर लगायें जाते हैं इसका लाभ सभी महिलाएँ ले सकती हैं।

विपत्तिग्रस्त महिलाओं को कानूनी सहायता – कोई भी उत्पीड़ित महिला जिन्हें कानूनी सहायता की आवश्यकता होती है। वह इस योजना का लाभ ले सकती है। विभाग द्वारा अनुदान प्राप्त स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से कानूनी सलाह दी जाती है।

विपत्तिग्रस्त महिलाओं की पुनः स्थापना के लिए प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना – बेसहारा महिलाएँ एवं उनके 6 वर्ष तक के बच्चों को इस योजना के तहत आवास भोजन, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा प्रदान की जाती है।

उषा किरण योजना – घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम 2005 के अन्तर्गत पीड़ित महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने हेतु उषा किरण योजना लागू की गयी हैं इसके तहत विधिक परामर्श सेवा प्रदान की जाती हैं।

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना – बाढ़ सूखा या अन्य प्राकृतिक कारणों से गाँव में रोजगार का अभाव हो जाता है इसलिए गाँव के लोग रोजगार हेतु दूसरी जगह पलायन करते हैं इसका सबसे ज्यादा असर ग्रामीण महिलाओं और बच्चों पर पड़ता है। गाँव वालों को गाँव में ही रोजगार उपलब्ध कराने के लिए ग्रामीण विकास द्वारा सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना चलाई जा रही है इसमें मजदूर को 5 किलोग्राम अनाज तथा शेष नगद राशि प्रदान की जाती हैं इस योजना में विभिन्न निर्माण कार्य कराये जाते हैं ताकि गाँव की स्थिति और माली हालत सुधरे। इस योजना में महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत रोजगार के अवसर सुरक्षित रखने का प्रावधान हैं।

स्वाधार योजना – कठिन परिस्थितियों में जीवन यापन करने वाली महिलाओं के आश्रय एवं पुनर्वास के लिए योजना चलायी जा रही हैं। योजना के तहत महिलाओं को आश्रय गृह पुनर्वास हेतु प्रशिक्षण परामर्श एवं हेल्पलाइन का प्रावधान हैं।

इन्दिरा आवास योजना – इस योजना के तहत ग्राम क्षेत्रों में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों को विशेषकर महिलाओं को निःशुल्क आवास उपलब्ध कराये जाते हैं।

महामाया आवास योजना – उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री सुश्री मायावती के द्वारा अनुसूचित जाति/जनजाति के परिवारों को विशेषकर महिलाओं को निःशुल्क आवास उपलब्ध कराये जाते हैं।

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना – गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के स्वसहायता समूह बनाकर स्वरोजगार के लिए ऋण एवं अनुदान उपलब्ध कराया जाता है। प्रत्येक विकास खण्ड पर गठित स्वसहायता समूहों में से 80 प्रतिशत केवल महिलाओं के होते हैं।

कचिन अनुदान

सूत उत्पादन कार्य में लगी महिलाओं के लिए शासन द्वारा अतिरिक्त श्रमिकार्य के रूप में 20 पैसे प्रति गुण्डी का भुगतान किया जाता है।

प्रधानमंत्री रोजगार योजना :– शिक्षित बेरोजगार युवक–युवतियों को स्वयं का उद्योग/सेवा /व्यवसाय कराने के लिए सरकार द्वारा एक लाख रूपये तक की राशि पर कोई धरोहर/प्रतिभूति नहीं ली जाती है।

दीन दयाल रोजगार योजना :– प्रदेश के पढ़े–लिखे रोजगार युवक–युवतियों को उद्योग सेवा व्यवसाय के क्षेत्र में स्वरोजगार स्थापित करने के लिए बैंकों/वित्त संस्थाओं द्वारा दिये जाने वाले ऋण में अपेक्षित मार्जिन मनी को जमा कराने में सहायता देने के लिए उद्योग विभाग द्वारा यह योजना चलाई जा रही है।

महिला डेयरी परियोजना :– इस योजना को महिला दुग्ध सहकारी समितियों का गठन डेयरी व्यवसाय में महिला भागीदारी के लिए प्रोत्साहन, दूध संकलन संसाधन और विपणन का प्रभावी संचालन तथा दूध उत्पादकों को उचित मूल्य के भुगतान के लिए पशुपालन विभाग द्वारा चलाया जा रहा है।

रानी दुर्गावती अनूसूचित जाति/जनजाति स्वरोजगार योजना :– यह योजना अनुसूचित जाति/जनजाति के शिक्षित बेरोजगार लोगों को खुद का रोजगार शुरू करने के लिए है।

राष्ट्रीय परिवार सहायता योजना :– गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवार का ऐसा सदस्य जो कि कमाई करता हो की मृत्यु हो जाने पर सरकार द्वारा दस हजार रूपये की एकमुश्त सहायत राशि उपलब्ध करायी जाती है।

दीन दयाल अन्त्योदय उपचार :– गरीबी रेखा के नीचे के परिवार को योजना के तहत निःशुल्क उपचार का लाभ दिया जाता है।

कामकाजी महिलाओं हेतु छात्रावास सुविधा :– इसके तहत कामकाजी महिलाओं को छात्रावास की व्यवस्था का प्रबन्ध किया जाता है।

राष्ट्रीय महिला कोष :– 31 करोड़ की मूल राशि से 1993 में स्थापित यह कोष एक राष्ट्रीय स्तर का सूक्ष्म ऋण संस्थान है जो देश की गरीब महिलाओं को अपनी सामाजिक, आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु आय सृजन की गतिविधियों को बढ़ाती है।

प्रियदर्शिनी :– महिला सशक्तिकरण तथा आजीविका के रूप में यह परियोजना उत्तर प्रदेश के चार जिलों और बिहार के दो जिलों में कृषि विकास हेतु अन्तर्राष्ट्रीय निधि की विदेशी सहायता से संचालित है।

अल्पसंख्यक महिलाओं के नेतृत्व क्षमता विकास योजना :– अल्पसंख्यक वर्गों के कल्याण हेतु गठित सच्चर समिति की रिपोर्ट में इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि भारत का सर्वाधिक अल्पसंख्यक समूह यानी मुस्लिम जिनकी संख्या लगभग 13.83 करोड़ है को विकास की मुख्यधारा से विमुख रखा गया है इनमें मुस्लिम महिलाओं की स्थिति काफी दयनीय है इसलिए इन वंचित महिलाओं को केन्द्र प्रायोजित योजना बतौर इस योजना में प्रायोगिक रूप में अपनाया गया है।

जैंडर बजटिंग तथा जैंडर डाटा :– इसकी मुख्य मंशा महिलाओं के प्रति बरते जा रहे भेदभाव को समाप्त करना और इस हेतु उनके लिए बजटीय व्यवस्था करके उनके सशक्तिकरण पर जोर देना है।

स्वधार :– वर्ष 2001–2002 में प्रारम्भ इस योजना में कठिन परिस्थितियों में रह रही महिलाओं की आवश्यकताओं के समाधान हेतु परियोजना आधारित दृष्टिकोण पर बल दिया गया है।

उपरोक्त योजनाएँ महिला के विकास को ध्यान में रखकर चलाई जा रही हैं ताकि असहाय कमजोर वर्ग की महिलाएँ भी अपना विकास कर सकें तथा पिछड़ी हुई व्यवस्था से उभर सकें तथा समाज में तेजी से बढ़ रहे अपराध, भ्रष्टाचार, अराजकता को रोकने के लिए इन महिलाओं की अहम् भूमिका हो सकती है। अनियमित कार्य करने वाले, अनैतिकता को बढ़ावा देने वाले जन प्रतिनिधि हों, गाँव के संभ्रांत लोग हों, चाहे वह सरकारी कर्मचारी और अधिकारी हों, उनके द्वारा पंचायत के माध्यम से इस प्रकार के लोगों के प्रति पूरी पंचायत का ध्यान आकृष्ट कराया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर किसी भी संविधान सम्मत तरीके का सहारा भी लिया जा सकता है। देश की कुल आबादी में यदि महिलाओं का अनुपात देखें तो वह 47 करोड़ पुरुषों के विपरीत लगभग 43.5 करोड़ है। अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम है। देश में महिला श्रम बल 22.2 है इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में अपना योगदान बढ़ाना होगा और इसके लिए पंचायतों की इन नव निर्वाचित महिला जन–प्रतिनिधियों को मार्गदर्शन देना होगा। आर्थिक विकास हेतु चलाये जा रहे योजनाओं से उन्हें सीधे–सीधे जोड़ना होगा।

ग्रामीण महिलाओं के विकास में आने वाली बाधाओं का पता लगाकर उनके निराकरण के उपाय ढूढने होंगे तथा जितनी योजनाएँ और कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं उन्हें सरकार तथा निजी संस्थाओं को ईमानदारी से क्रियान्वयन करना होगा। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षित महिलाओं को आगे आना होगा क्योंकि वे ही सक्रियता से उनका संचालन एवं निरीक्षण कर सकती हैं। इसके अलावा स्थानीय संस्थाओं में अलग–अलग कार्य करने का उन्हें अवसर मिलेगा, जिससे कि वे स्वजीवन से स्वनिर्भर के पथ पर अग्रसर हो सकेंगी।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

संचार क्रांति से ग्रामीण महिलाओं का बदलता सामाजिक स्वरूप

डॉ0 संदीप सिंह
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
झाँसी (उ0प्र0)

डॉ0 शालू
प्रवक्ता –समाजशास्त्र
सूरज प्रसाद रा. बा. इ. कॉलेज,
झाँसी (उ0प्र0)

कोई भी राष्ट्र तभी विकास कर सकता है, जब उसकी आधी आबादी जो कि महिलाओं की है वह आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि समस्त क्षेत्रों में मजबूत एवं सशक्त हो, उनका स्वास्थ्य उत्तम हो एवं स्वयं के निर्णय लेने में वे पूर्णतः स्वतन्त्र एवं सक्षम हो। वर्तमान समय को पुरूष प्रधान समाज कहा जाता है, लेकिन जब हम इतिहास के पन्ने पलटते हैं तो भारत की प्रथम प्राचीन सिंधु सभ्यता को मातृ सत्तात्मक के रुप में देखते हैं, उसके उपरान्त वैदिक काल की महिलाओं को भी समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। अपाला, घोषा, गार्गी, लोपामुद्रा जैसी महिलायें पठन–पाठन करती थीं, तथा यज्ञों में बैठने का उनको अधिकार प्राप्त था। अपनी इच्छा से वर चुनने हेतु स्वयंवरों के आयोजन किये जाते थे, रामायण, महाभारत में इस प्रकार के उदाहरणों का उल्लेख है, महिलायें युद्धों में भाग लेती थीं व शासन भी चलाती थीं। भारत में मुस्लिमों के आक्रमण के साथ ही महिलाओं की सामाजिक स्थिति कमजोर होने लगी। लेकिन इस पर भी रजिया सुल्ताना, महम अनगा, गुलबदन बेगम, नूरजहाँ, मुमताज महल इत्यादि महिलाओं को शाही सम्मान प्राप्त था। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि कुछ मुट्ठी भर महिलाओं के सशक्त होने से महिलाओं की स्थिति को उत्तम नहीं कहा जा सकता, क्योंकि लगभग आधी आबादी महिलायें की होती है, और उन्हें अधिकार के नाम पर अपमान, खरीद फरोख्त, वेश्यावृत्ति, बाल–विवाह, सतीप्रथा, दहेज प्रथा, आदि का सामना करना पड़ता है।

देश को आजाद हुये 66 वर्ष हो चुके हैं, लेकिन महिलायें आज भी अपने अधिकारों से वंचित हैं, जबकि देश की आधे से अधिक महिलायें गांवों में निवास करती हैं, ग्रामीण महिलाओं को आज भी पर्दे में रहना पड़ता है, अशिक्षा के कारण उनका विकास अवरुद्ध हुआ है, अभी हाल ही में महिलाओं पर हो रहे अत्याचार, जैसे बलात्कार, यौन शोषण जैसी घटनाओं की बाद सी आ गई है। सत्य यह नहीं कि अचानक ऐसी घटनायें समाज में तेजी से बढ़ गयीं, बल्कि सत्य तो यह है कि संचार क्रांति ने महिलाओं के शोषण के इस दबे स्वर को समाज के सामने ला दिया। 26 दिसम्बर को दिल्ली में हुई पैरामेडिकल छात्रा के साथ बलात्कार की घटना उजागर करने में मीड़िया ने अहम् भूमिका निभाई, जिससे हर आयु वर्ग के लोग, जिनका उस घटना से कोई निजी लेना–देना नहीं था, वो भी अधिकारों एवं इंसाफ के लिये सड़कों पर उतर आये।

जनसंचार माध्यमों ने महिलाओं को केवल उनके अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं किया है, अपितु उन्हें स्वावलंबी बनाने, उनकी आर्थिक–राजनैतिक स्थिति सुधारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इलेक्ट्रानिक मीडिया में अब तक के अंगों में सबसे सशक्त अंग रेड़ियो है। इसमें दो राय नहीं कि इसकी

पहुंच तीव्र और प्रभावी रही है। घर–घर तक ही नहीं खेत, चौपालों, खलिहानों तक पहुँच रखने वाले इस माध्यम से कृषि को नया बल मिला। रेड़ियों, टी0वी0, डी0टी0एच0, इन्टरनेट, मोबाइल फोन इत्यादि ने महिला उद्यमियों एवं कृषि क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार कर उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त किया है, महिलाओं को कौन–कौन सी ब्याज रहित ऋण उपलब्ध हो रहा है, आदि जानकारियाँ संचार माध्यमों से उन तक पहुँच रही है।

ग्रामीण स्त्रियों पर परम्परागत व्यवस्था का प्रभाव बना है, परम्परायें उनके विचारों को प्रभावित करती हैं। मजदूर महिलायें, निम्न सामाजिक व आर्थिक वर्गों की महिलायें आज भी पुरूषों पर निर्भर हैं, जिससे उनकी स्थिति व भूमिकाओं में परिवर्तन नहीं आ रहा है। लेकिन टी0वी0 व रेडियों पर आधारित कार्यक्रम जैसे कल्याणी, इत्यादि प्रसारित किये जाते हैं, जिसमें विषय विशेषज्ञों द्वारा उनकी समस्याओं का समाधान किया जाता है, कृषि दर्शन द्वारा कृषि सम्बन्धित समस्याओं का निदान होता है, जिससे आय बढ़ती है व आर्थिक स्थिति में सुधार आता है।

महिलाओं को घर से बाहर कार्य करने की अनुमति नगर निकट गांवों में अधिक है, जबकि दूर दराज के गांवों में कम है। गांवों में उन महिलाओं की सामाजिक स्थिति ऊंची मानी जाती है जो कार्यरत हैं, ऐसी महिलायें जो घर के कार्यों तक सीमित हैं उनकी सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं है, संचार क्रांति के कारण महिलाओं के जीवन स्तर में गुणात्मक परिवर्तन आया है। प्रारम्भ में टेलीविजन तथा फिल्मों के द्वारा महिलाओं के आदर्श बहू, आदर्श पत्नी, आदर्श बहन, आदर्श बेटी, आदर्श माँ, के रूप में दिखाया जाता था। लेकिन आज तस्वीर बदल गयी है। महिलाओं के विभिन्न सख्त व सशक्त रूपों को भी समाज के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। जिससे महिलायें उनका अनुकरण कर अपने अधिकारों को प्राप्त करने में सक्षम बन रही हैं।

आज केन्द्र सरकार व राज्य सरकारें ग्रामीण महिलाओं, बालिकाओं के सुरक्षा व विकास के लिये अनेकों योजनायें चला रही हैं, जिनका मीडिया द्वारा समाचार पत्रों, टी0वी0 इत्यादि के द्वारा तेजी से प्रचार–प्रसार किया जाता है और ग्रामीण महिलायें आसानी से उनका लाभ प्राप्त कर लेती हैं। अनेकों जन सेवा केन्द्र व हेल्पलाइन नम्बर हैं जो आपको निशुल्क सूचनायें प्रदान करते हैं। महिलाओं की समस्याओं के निराकरण हेतु वर्तमान उ0प्र0 सरकार द्वारा एक कम्पलेन नम्बर 1090 प्रारम्भ किया है जिस पर 24 घण्टे सुविधा उपलब्ध है। महिलायें बिना अपना नाम बताये अपने खिलाफ हो रहे शोषण की शिकायत दर्ज करा सकती हैं। इंटरनेट एवं मोबाइल एसोसियशन ऑफ इण्डिया की जून 2012 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 137 मिलियन व्यक्ति इंटरनेट का उपयोग करते हैं, जिनमें 99 मिलियन शहरी एवं 38 मिलियन ग्रामीण जनसंख्या है।

आज के इस आर्थिक युग में महिलायें स्वावलम्बी हुई हैं, उनमें आत्म विश्वास और मनोबल भी बढ़ा है। अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई है। कर्नाटक के कोलार जिले के बउगरपेट नामक स्थान से नम्मा ध्वनि (हमारी आवाज) कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है, इसके श्रोता अधिकांश गरीब और निरक्षर महिलायें हैं, इसके अलावा उत्तराखण्ड में मंदाकिनी की आवाज, बंगलुरू में केलु सखी (सुनो सखी) इत्यादि ग्रामीण महिलाओं के लिये सूचनायें प्रसारित की जाती हैं। इसी प्रकार 26 जनवरी 1967 को दूरदर्शन पर 'कृषि दर्शन' नामक कार्यक्रम शुरू हुआ। तथा विभिन्न विज्ञापनों द्वारा गर्भवती महिलाओं को पोषण, टीके, जांच, रोग, बच्चे के पालन पोषण, बच्चों में अन्तराल व जनसंख्या नियंत्रण जैसी बातों से जागरूक कराया गया।

आज चूंकि संचार क्रांति के कारण सूचनायें शहरों के साथ–साथ ग्रामों में भी घर–घर तक पहुंच रही हैं। अतः महिलायें यह समझने लगी हैं कि उनकी दुर्गति के लिये अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, परम्परागत मान्यतायें व समाज का पुरूष प्रधान होना है, जिससे उन्हें गरीबी, शोषण, पक्षपात, दहेज प्रथा, बलात्कार, यौन शोषण, इत्यादि का शिकार होना पड़ता है, जो संचार साधनों व मीड़िया द्वारा तेजी से लोगों तक पहुंच रही है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं के उस आधुनिक व ग्लैमर रूप के साथ–साथ खेत–खलिहानों की महिलाओं व गोद में नवजात शिशु को लिये ईंट पाथती औरत की बेवसी को भी समाज के सामने वास्तविक रूप में प्रस्तुत करें तथा ग्रामीण महिलायें संचार के साधनों का भरपूर उपयोग कर अपने आपको आत्म निर्भर करते हुये देश की उन्नति में सहायक बनकर गौरवान्वित महसूस कर सकें एवं हमारे देश की महिलाओं के समक्ष ऐसा उदाहरण प्रस्तुत कर सकें ताकि अन्य सहयोगी महिलायें भी उनका अनुकरण कर स्वयं को तथा राष्ट्र को भी शक्तिशाली बना सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रावत, ज्ञानेन्द्र, (2009) विश्वभारती पब्लिकेशन्स, अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली।
2. प्रतियोगिता दर्पण, (फरवरी 2011) साहित्य पब्लिकेशन, आगरा।
3. कुरूक्षेत्र (मार्च, 2013) निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
4. योजना, (जु0 2013) योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

मध्यप्रदेश शासन की योजनाएँ एवं समाज कल्याण की सार्थकता का मूल्यांकन (मध्य प्रदेश के संदर्भ में)

डॉ0 सुमन रोहिला
प्रा. अर्थशास्त्र
मा.जी.वा.शास.स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

''सबके के लिए स्वास्थ्य'' 'सबके लिए शिक्षा' 'सबके लिए आवास' और 'सबके लिए रोजगार' के साथ यदि सबके लिए 'खाद्य सुरक्षा' को भी जोड़ लिया जाए तो इससे लोक कल्याणकारी समाज की स्थापना स्वयंमेव सार्थक होने लगती है। पिछले दशकों में केन्द्र एवं राज्य सत्तासीन सरकारों ने इन लक्ष्यों के प्रति वचनबद्धता तथा प्रतिबद्धता दर्शायी है, इन्हें कार्यरूप प्रदान करने में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अनेक सामुदायिक विकास योजनाएँ और कार्यक्रम बनाएं तथा क्रियान्वित किये हैं।

विश्व बैंक द्वारा पोषित गरीबी उन्मूलन योजना की दिशा में स्वःसहायता समूहों के माध्यम से गरीबों का आर्थिक एवं सामाजिक विकास करने हेतु म.प्र. के चयनित 14 जिलों के 55 विकास खण्डों के 4888 ग्रामों में क्रियान्वित किया जा रहा है। इस योजनान्तर्गत गरीब एवं अतिगरीब परिवारों की महिलाओं को 30.00 हजार से अधिक स्व सहायता समूह के रूप में संगठित किया जाकर आजीविका गतिविधियों से जोड़ा जा रहा है एवं 20 हजार से अधिक ग्रामीण युवाओं को विभिन्न उद्योगों में रोजगार हेतु प्रशिक्षित किया जाकर नियोजित किया जा रहा है। दिसम्बर 2012 तक 27.56 हजार स्व सहायता समूहों का गठन किया जाकर 193.20 करोड़ रू. का व्यय दिये गये तथा ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु एवं निश्चित रोजगार की उपलब्धता हेतु कौशल आधारित प्रशिक्षण 229 रोजगार मेलों के 94.60 हजार से अधिक युवाओं को नियोजन के अवसर विभिन्न संरचनाओं के माध्यम से दिये गये। अक्टूबर 2009 से 2012 तक इस परियोजना पर 540 करोड़ व्यय किये जा चुके हैं।

समाज कल्याण क्षेत्र में चल रही अन्य योजनाएँ, एकीकृत बाल विकास सेवाएं, मध्याह्न भोजन राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना, जननी सुरक्षा योजना राष्ट्रीय सामाजिक सहायता योजना–विधवाओं अपंगों, वृद्धा अवस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना में गरीब तबके को शामिल किया गया हैं। सरकारी अस्पताल में दवाओं की मुफ्त आपूर्ति, गाँवों में स्वास्थ्य सुविधा सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा कवरेज (U.H.L.) से स्वास्थ्य बीमा 40 प्रतिशत वार्षिक गति से बढ़ रहा है, किन्तु इनकी सुविधाओं का लाभ अभी 12 प्रतिशत लोग ही उठा रहे हैं।

सर्व स्वास्थ्य अभियान के तहत् राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन तथा नगरीय स्वास्थ्य मिशन, सर्वशिक्षा अभियान और मध्याह्न भोजन योजना के क्रम में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा पाने का अधिकार अधिनियम 2009 महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 इंदिरा आवास योजना, एकीकृत बाल विकास सेवाएं तथा सार्वजनिक वितरण कन्यादान योजना, निकाह योजना, मध्याह्न योजना, जननी सुरक्षा योजना, लाड़ली लक्ष्मी योजनाएँ जैसे कार्यक्रमों का वास्तविक लक्ष्य विकास के लाभ समाज के कमजोर वर्गों तक पहुँचाना ही रहा है।

नवाचारी तथा पारम्परिक पहलों में अति महत्वपूर्ण खाद्य सुरक्षा विधेयक 2010 को संसद में पारित करवाना। जिसके अंतर्गत प्रावधान किया गया हैं कि ''निर्धनता रेखा से नीचे रह रहें प्रत्येक परिवार को तीन रूपये प्रति कि.ग्राम. की दर से प्रतिमाह 25 कि.ग्रा. खाद्यानों की आपूर्ति सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम

से सुनिश्चित की गई है। वास्तविक रूप से खाद्यान्न आत्मनिर्भरता का अर्थ समाज के सबसे निचले पायदान पर बैठे लोगों को सभी को उनकी आवश्यकता के अनुरूप खाद्यान्न की उपलब्धता से है। जिससे वह अपने जीवित रहने तथा शारीरिक विकास होने के लिए आवश्यक खाद्यान्न क्रय कर सकें। लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत निर्धन तथा निर्धनतम परिवारों को चिन्हित करके उन्हें रियायती मूल्य पर खाद्यान्न मुहैया कराया जाता है।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अर्न्तगत खाद्यान्नों का निर्गम मूल्य

निर्गम मूल्य तालिका–1

(रू. प्रति किलोग्राम)

अन्नपूर्णा योजना अंतर्गत 2008 से

	गेहूँ	चावल	प्रति परिवार वितरित किये जाने वाले खाद्यान्न की मासिक सीमा
अन्त्योदय अन्न योजना	2.00	3.00	–
निर्धनता रेखा से नीचे (BPL)	4.15	5.65	25
निर्धनता रेखा से ऊपर APL	6.10	8.30	35

8 दिसम्बर 2013 को मुख्यमंत्री की घोषणानुसार 01रू प्रतिकिलो चावल और गेहूँ प्रदान किया जायेगा।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की प्रभावी क्रियान्वयन हेतु प्रदेश 20.92 हजार उचित मूल्य की दुकानें हैं जिनमें 4.01 हजार शहरी एवं 16.91 हजार ग्रामीण क्षेत्रों में संचालित हैं। वर्तमान में गरीबी रेखा के उत्तर के 82. 92 लाख तथा गरीबी रेखा से नीचे परिवारों के 55.82 लाख राशन कार्ड तथा ''अन्त्योदय अन्न योजना'' के अंतर्गत 15.82 लाख राशन कार्ड प्रचलित हैं। ग्रामीण एवं शहरी उपभोक्ताओं को खाद्यान्न शक्कर एवं मिट्टी का तेल आदि वस्तुएँ उचित दर पर उचित मूल्य की दुकानों से उपलब्ध करवाई जा रही हैं। भारत शासन से राज्य को वर्तमान में 20 अति गरीब जिलों के लिए प्राप्त BPL के आवंटन से इन जिलों में 35 कि.ग्रा खाद्यान्न प्रदान किया जा रहा है।

तालिका–2

गरीबी उन्मूलन परियोजना

स्वसहायता समूह

विवरण	इकाई संख्या	2011–12		2012–13	
		लक्ष्य	उपलब्धि	लक्ष्य	उपलब्धि
1. स्व सहायता समूह गठन	संख्या	8000	10744	8000	5912
2. रोजगार मेलों के माध्यम से नियोजित सदस्य	संख्या (सदस्य)	6000	30639	6000	15482
3. वित्तीय निवेश	करोड़ रू.में	100.00	127.82	105.85	100.00

गरीबी उन्मूलन हेतु महात्मा गांधी ''राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (एन.आर.ई.जी.एस) फरवरी 2006 से प्रारंभ की गई है। योजनान्तर्गत ग्रामीण परिवारों के वयस्क सदस्यों द्वारा एक वित्तीय वर्ष में रोजगार की मांग करने पर अधिकतय 100 दिवस का रोजगार एक परिवार को उपलब्ध कराना है। योजना प्रदेश में तीन चरण में लागू की गई। प्रथम चरण में 18 जिले, द्वितीय चरण में 13 जिले एवं तृतीय चरण में 17 जिलों में योजना प्रारंभ की गई तथा अलिराजपुर एवं सिंगरोली जिलों में पृथक से अंकित करते हुये समस्त 50 जिलों में योजना चल रही है। योजनान्तर्गत आजीविका सुनिश्चित करना एवं ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी परिसम्पत्तियों का सृजन करना है।

अधिनियम की धारा 13(1) के अनुसार योजना क्रियान्वयन एवं नियोजन हेतु ग्राम, जनपद जिला पंचायत प्रमुख संस्थाएँ होंगी और लागत के आधार पर 50 प्रतिशत कार्य ग्राम पंचायतों द्वारा क्रियान्वित किये जायेंगे। मजदूरी टास्क रेट जितना काम, उतना दाम के आधार पर भुगतान की जाती है। 1 अप्रैल 2012 से न्यूनतम मजदूरी दर 132 रूपये निर्धारित की गई है। योजनांतर्गत पंजीकृत परिवार का सदस्य अकुशल मानव श्रम हो।

तालिका – 3

''महात्मा गाँधी ग्रामीण रोजगार योजना की उपलब्धियाँ''

क्रं.	विवरण	2010–11	2011–12	2012–13
1	जॉब कार्ड संख्या (करोड़ों में)	1.13	1.19	1.20
2	कार्य पर उपस्थित परिवारों की संख्या (लाख में)	43.84	38.59	25.43
3	कुल सृजित मानव दिवस (लाख में)	2204	1674.66	791.75
4	महिलाएँ मानव दिवस (लाख में)	978	717	337
5	100 दिवस कार्य पूर्ण करने वाले परिवार संख्या	465391	294085	54825

स्रोत : ग्राम पंचायतों की मासिक प्रगति पत्रक के आधार।

योजनान्तर्गत इस प्रकार प्रदेश की 23010 ग्राम पंचायतों द्वारा दिसम्बर 2012 में 1837.58 करोड़ रू. व्यय किये गये।

हथकरघा कुटीर उद्योग :– प्रदेश के बुनकरो को वर्ष भर रोजगार उपलब्ध कराता है। वर्तमान वर्ष 2012–13 में राज्य में कुल 35.22 हजार स्थापित हथकरघों में से 19.98 हजार हथकरघे कार्यशील हैं जिनमें 67.51 हजार बुनकर कारीगरों रोजगार उपलब्ध कराया गया है। कार्यशील करघों पर 291.00 लाख मीटर वस्त्रों का उत्पादन किया गया है।

स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना :– योजनान्तर्गत शहरी दोनों में रोजगार का सृजन करना है। वर्ष 2011–12 में स्वयं का व्यवसाय शुरू करने हेतु 1532.25 लाख रुपये अनुदान के रूप उपलब्ध कराकर 117.24 हजार हितग्रहियों को लाभान्वित कर 5.02 लाख मानव दिवसों के रोजगार का सृजन किया गया। वर्ष 2012–13 में माह नवम्बर 2012 तक 834.86 लाख रू. अनुदान 6552 हितग्राही को दिया गया जिससे 158 लाख मानव दिवसों का रोजगार सृजित किया गया।

इंदिरा आवास योजना :– ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों को नवीन आवासों हेतु वर्ष 2012–13 में 208.86 करोड़ रू. व्यय किया जाकर 34.76 हजार नवीन आवासों का निर्माण किया गया, जबकि लक्ष्य 84.36 हजार आवासों का था।

मुख्यमंत्री अंत्योदय आवास योजना :– के अंतर्गत वर्ष 2010–12 में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के निर्धन परिवारों को आवास हेतु 15.06 करोड़ का व्यय किया जाकर 3.33 हजार नवीन आवास निर्माण कार्य पूर्ण कराया गया तथा 4.61 हजार नवीन आवासों का निर्माण कार्य प्रगति पर है।

सामाजिक सुरक्षा एवं न्याय :– राज्य में सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना अंतर्गत 15.20 लाख व्यक्तियों को लाभान्वित किया जा रहा है। तथा परिवार सहायता योजनान्तर्गत 26.73 हजार हितग्राहियों को लाभान्वित किया गया। 1 अप्रैल 2009 से प्रारंभ इंदिरा गांधी राष्ट्रीय निःशक्त पेंशन योजना में 1.53 लाख हितग्राहियों को लाभान्वित किया गया।

लाड़ली लक्ष्मी योजना :– प्रदेश में माह अप्रैल 2007 से राज्य शासन द्वारा बालिकाओं के सर्वांगीण विकास एवं हितों के संरक्षण हेतु महत्वाकांक्षी योजना ''लाड़ली लक्ष्मी योजना'' आरंभ की गई है। इस योजना के तहत्

दिनांक 01 जनवरी 2006 के बाद जन्मी बालिकाओं को पंजीकरण के समय से लगातार 5 वर्ष तक 6.00 हजार रू. के राष्ट्रीय बचत पत्र अर्थात् कुल 30000 रू. के बालिका के नाम क्रय किये जायेंगे।

बालिका के कक्षा 6 में प्रवेश लेने पर 2000 रू. कक्षा 9 में प्रवेश लेने पर 4000 रू. तथा कक्षा 11वीं में प्रवेश लेने के पश्चात् आगामी 2 वर्ष के लिये 200रू. प्रतिमाह भुगतान बालिका को किया जावेगा। वर्ष 2012–13 के माह नवम्बर 2012 तक 1.27 लाख बालिकाओं को 313.71 करोड़ रू. व्यय कर लाभान्वित किया गया।

मुख्यमंत्री कन्यादान योजना :– राज्य शासन द्वारा गरीब, जरूरत मंद, निराश्रित/निर्धन परिवारों की विवाह योग्य कन्या/विधवा परित्यक्ता के सामूहिक विवाह हेतु 15.00 हजार रूपये के मानसे कन्या की गृहस्थी की स्थापना हेतु 2000/– रू. प्रति आवेदक के मान से दी जाती है। वर्ष 2011–12 में 38.31 हजार कन्याओं का और वर्ष 2012–13 में 39.64 हजार कन्याओं का सामूहिक विवाह सम्पन्न कराये गये तथा 16 दिसम्बर 2013 से कन्यादान राशि 25000/– रु. की गई है।

मुख्यमंत्री निकाह योजना :– वर्ष 2012–13 से प्रभावशाली है। निर्धन परिवारों की मुस्लिम कन्याओं/विधवा/परिव्यक्ता के सामूहिक विवाह सम्पन्न कराये जाने का प्रावधान है। कन्या की गृहस्थी हेतु 15.00 हजार रू. के मान से वर्ष 2012–13 में 926 कन्याओं के निकाह सम्पन्न कराये गये। 16 दिसम्बर 2013 की घोषणानुसार अब निकाह राशि 25000/– रू. दी जायेगी।

दीनदयाल अन्त्योदय उपचार योजना :– इस योजनान्तर्गत गरीब रेखा से नीचे जीवन व्यापन करने वाले परिवारों को शासकीय चिकित्सालय में भर्ती होने पर जांच एवं उपचार हेतु एक वित्तीय वर्ष में 3000 रू. प्रति परिवार की सीमा तक निःशुल्क चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। इस योजनान्तर्गत 39.41 लाख हितग्राहियों को लाभान्वित किया गया है। वर्ष 2012–13 में 4.91 लाख हितग्राहियों ने लाभ लिया है। प्रदेश में कार्डधारी हितग्राही संख्या 58.85 लाख परिवार हैं।

जननी सुरक्षा योजना :– इस योजना के अंतर्गत गर्भवती महिला को संस्थागत प्रसव कराने पर निम्नानुसार सहायता दी जाती हैं –

1. शहरी क्षेत्र में निवास करने वाली महिला को 1000/–रू.
2. ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाली महिला को 1400/–रू.
3. गर्मवती महिला को प्रसव हेतु अस्पताल जाने के लिये जननी एक्सप्रेस की निःशुल्क सुविधा।
4. आशा कार्यकर्ता को ग्रामीण क्षेत्र के लिये प्रेरक राशि 350/– रू.
5. घर पर प्रसव होने पर बीपीएल परिवार की गर्भवती महिला को 500/– रू.।

वर्ष 2011–12 दिसम्बर में 766 वाहनों के माध्यम से लगभग 51 प्रतिशत महिलाओं की और वर्ष 2012–13 में माह दिसम्बर तक प्रदेश में 313 विकासखण्डों में 832 वाहनों के माध्यम से 58 प्रतिशत महिलाओं को संस्थागत प्रसव हेतु निःशुल्क परिवहन साधन उपलब्ध कराया गया और 27 प्रतिशत महिलाओं को प्रसव पश्चात् संस्था से निवास तक छोड़ा गया है।

संकल्प 2013 के अनुसार प्रदेश में मातृ मृत्यु दर को 225 प्रति लाख और नवजात शिशु मृत्यु दर 44 प्रति हजार जीवित जन्म पर है। वार्षिक स्वास्थ्य सर्वे रिपोर्ट 2011–12 के अनुसार प्रदेश में 76 प्रतिशत प्रसव संस्थागत हो रहे हैं।

विकास कार्यक्रमों के फलस्वरूप समाज में कार्यशील जनसंख्या की दर में वृद्धि हुई है जो किसी भी राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक विकास को गति देने में सहायक है। समाज में शिक्षा का स्तर भी बढ़ा है। साक्षरता दर लगभग 72 प्रतिशत पहुँच चुकी है। जिसके फलस्वरूप समाज में जागरूकता एवं उनके ज्ञान यें तीव्र वृद्धि हुई है इससे उन्हें अपना जीवन स्तर सुधारने में सफलता मिली है। ग्रामीण जनता अब स्वच्छ शोचालयों का प्रयोग कर रही हैं, स्वच्छ पेयजल का उपयोग कर रही है। तंत्र मंत्र के स्थान पर अस्पतालों में जाकर चिकित्सा कराने

लगी है। इससे संक्रामक रोगों की दर में कमी आयी है तथा स्वास्थ्य का स्तर ऊँचा उठा है। साथ ही इन कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण समाज में परिवार नियोजन का प्रसार किया गया, फलस्वरूप ग्रामीण समाज में न केवल जनसंख्या वृद्धि में कमी आयी है बल्कि मृत्युदर भी घटी है।

कल्याणकारी समाज की स्थापना के लिये समाज के सभी वर्गों का संतुलित विकास करना आवश्यक होता है। इस योजनाओं द्वारा निर्बल एवं सुविधा हीन वर्गों के कल्याण के अनेक कार्यक्रमों को चलाकर समाज के सामाजिक जीवन पर्याप्त प्रगति लाने का कार्य किया है, तथा निरंतर जारी है। इससे आत्मविश्वास में वृद्धि हुई हैं जिससे उनके व्यक्तित्व का विकास हुआ है। ग्रामीण समाज में महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिये सिलाई, कड़ाई, बुनाई, स्वसहायता समूह तथा अन्य रचनात्मक कार्य प्रारंभ किये हैं। सामाजिक मुद्दों से संबंधित शिविरों एवं गोष्ठियों का संचालन किया जा रहा है। इससे प्रदेश के समस्त क्षेत्रों में सामाजिक आर्थिक विकास को गति मिली है। यद्यपि नगरीय एवं ग्रामीण समाज की तुलना की जाये तो ग्रामीण समाज पर्याप्त पीछे हैं, किन्तु आज का ग्रामीण समाज 65 वर्ष पूर्व के ग्रामीण भारत से बहुत आगे है। आज भी ''ग्रामीण समाज का समग्र विकास होना शेष है।'' वास्तविकता यह है कि वृहत स्तर पर चलाई गई व्यापक योजनाएँ कभी भी अपनी पूर्ण क्षमता के साथ क्रियान्वित नहीं हो पाई और नहीं इन विभिन्न विकास कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित किया जा सका है, जो मौलिक रूप से जरूरी था, दूसरी ओर योजनाओं के क्रियान्वयन के हर स्तर पर भ्रष्टाचार, बेईमानी से जनसहयोग एवं जन सहभागिता शत–प्रतिशत प्राप्त नहीं हो सकी है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न शासकीय योजनाओं के माध्यम से दी जाने वाली सहायता अनुदान कर्ज माफी ने उन्हें स्वावलम्बी होने के स्थान पर बैसाखियों के सहारे चलते रहने की आदत डाल दी, जिसे अतिशीघ्र बदलने की आवश्यकता है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों की उपलब्धता सीमित हैं क्योंकि कृषि क्षेत्रों में प्राप्त विभिन्न प्रकार के जोखिम और कोई दूसरे आर्थिक क्रियाकलापों के अभाव के कारण शहरों की ओर पलायन की समस्या भी बढ़ती जा रही है। यदि ग्रामीण समाज के लोगों की गरीबी और अभावों को स्थायी रूप से दूर करने के लिए उन्हें उत्पादक गतिविधियों से जोड़ सकते हैं। जिसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में कच्चे माल के रूप में संसाधनों की कमी नहीं है। इसका समाधान व्यापक वित्तीय समावेशन के द्वारा किया जा सकता है। तथा सूक्ष्म एवं लघु वित्त सुविधा गरीब व्यक्तियों को समय पर बिना औपचारिक झंझटों के तथा बिना जमानत बिना ब्याज के छोटे–छोटे ऋण उपलब्ध करवाये जाऐं ताकि गरीब वर्ग अपना छोटा व्यवसाय व व्यापार प्रारंभ करके अपने आय स्तर को बढ़ाकर गरीबी के चक्रव्यूह से बाहर निकल सकें। आवश्यकता हैं– समाज के लोगों की जागरूकता की जिसके लिए शिक्षित, कार्यकुशल एवं ईमानदार कार्यकर्ताओं का चयन किया जाऐं ताकि जनता को कल्याण योजनाओं की उपयोगिता, महत्व व प्रक्रिया को समझाकर लाभान्वित करवा सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. परिवर्तन एवं विकास समाजशास्त्र–डॉ0 डी0 एस0 बघेल, प्रकाशक–कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।
2. परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र–डॉ0 जी0 आर0 मदन, प्रकाशक–विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली।
3. भारतीय आर्थिक नीति : डॉ0 पी0 डी0 माहेश्वरी एवं गुप्ता, प्रकाशक–कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।
4. विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन –सिंघई, प्रकाशक–साहित्य भवन आगरा।
5. गाँधी जी का दर्शन, लेखक–प्रताप सिंह, प्रकाशक–रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर
6. मध्यप्रदेश का आर्थिक सर्वेक्षण प्रकाशक–आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय मध्यप्रदेश, भोपाल वर्ष 2012–13।
7. मध्यप्रदेश के जिलेवार समाजार्थिक विकास संकेतांक आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय (म.प्र.)
8. कुरूक्षेत्र–सितम्बर 2013
9. दैनिक सामाचार पत्र

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सूक्ष्म वित्त से ग्रामीण महिलाओं में शक्तिकरण का अध्ययन

(म.प्र. के बालाघाट जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ0 रजनी भारती
सहायक प्राध्यापक
महारानी लक्ष्मीबाई स्नात. महाविद्यालय,
इन्दौर (म.प्र.)

जितेन्द्र कुमार रामटेके
शोधार्थी स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स,
देवी अहिल्या वि.वि. इन्दौर (म.प्र.)

सूक्ष्म वित्त सूक्ष्म बचतों, सूक्ष्म विश्लेषण, सूक्ष्म पेंशन एवं आजीविका से संबंधित है। इसके सतत् विकास से ही भारत के ग्रामीण गरीबों का समूचित आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सशक्तिकरण हुआ है। सूक्ष्म वित्त संस्था ग्रामीणों को व्यक्तिगत उपभोग, उत्पादन अथवा गतिविधिया, व्यवसाय आदि हेतु वित्त प्रदान करती है। सम्पूर्ण विश्व में सूक्ष्म वित्त व्यवस्था को महिला निर्धनता – उन्मूलन के एक सबल विकासात्मक आधार के रूप में जाना जाता है। देश में 1980 के बाद से सूक्ष्म वित्त संस्थाओं का विस्तार एवं विकास हुआ है। देश में वित्तीय समायोजन के अन्तर्गत स्वयं सहायता समूहों के स्थापना एवं बैंक लिंकेज कार्यक्रमों के आधीर पर ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक विकास किया गया है। ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त बनाकर सम्पूर्ण विकास के मार्ग तक पहुँचाने का कार्य इन्हीं संस्थाओं के द्वारा किया जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन द्वारा बालाघाट जिले की ग्रामीण महिलाओं की व्यवसायिक संरचना, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति पर सूक्ष्म वित्त की प्रभावशीलता का अध्ययन किया गया है। इस हेतु ग्रामीण महिलाओं से सामान्य जानकारी, ऋण उपभोग, मासिक आय, सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव आदि से संबंधित जानकारियां साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से एकत्रित की गई है। सूक्ष्म वित्त के माध्यम से महिलाओं के द्वारा सेवा क्षेत्र, विनिर्माण उद्योग क्षेत्र, पशुपालन, मुर्गीपालन, डेयरी उत्पाद आदि से संबंधित व्यवसायिक कार्य किए जाते है जिससे महिलाओं में आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है। साथ ही महिलाओं में घरेलू बचत प्रवृत्ति आर्थिक सम्पन्नता एवं अतिरिक्त रोजगार की भी प्राप्ति होती है। अतः सूक्ष्म वित्त संस्थाओं का ग्रामीण महिला उद्यमियों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति तथा व्यवसायिक संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका है यह वित्त संस्थाएं बैंक लिंकेज कार्यक्रमों एवं स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को जोड़कर उन्हें सशक्तिकरण का कार्य करती हैं जो कि देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास हेतु एक महत्वपूर्ण कदम है।

देश की आबादी का लगभग 50% हिस्सा महिलाओं का है। विगत कुछ दशकों में महिलाओं की हिस्सेदारी में व्यापक वृद्धि हुई है। महिलाऐं वर्तमान में आत्मनिर्भर सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान हुआ है। किन्तु ग्रामीण क्षैत्रों में विशेषकर आदिवासी महिलायें आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से आज भी पिछड़ी हुई दशा में है। आदिवासी ग्रामीण महिलाऐं मुख्य रूप से कृषि कार्य ही करती है। कम मजदूरी एवं अधिक श्रम के कारण इनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति दयनीय रहती है। समाज एवं राष्ट्र की प्रगति के लिए नारी शक्ति का विशेष महत्व है। देश का वास्तविक विकास महिलाओं के विकास पर ही निर्भर करता है। केन्द्र सरकार एवं की राज्य सरकारों ने महिलाओं के आर्थिक सुधार एवं सामाजिक विकास हेतु अनेक प्रयास किए हैं। देश में वित्तीय समायोजन के अर्न्तत स्वयं सहायता समूहों के स्थापना एवं बैंक लिंकेज कार्यक्रमों के आधीर पर ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक विकास किया गया है। इसके अन्तर्गत ''सूक्ष्म वित्त'' एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

सूक्ष्म वित्त सूक्ष्म बचतों, सूक्ष्म बीमा, सूक्ष्म विश्लेषण, सूक्ष्म पेंशन एवं आजीविका से संबंधित है। इसके सतत्

विकास से ही भारत के ग्रामीण गरीबों का समूचित आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सशक्तिकरण हुआ है। सूक्ष्म वित्त के अंतर्गत महिलाऐं स्वयं आत्मनिर्भर होकर, स्वयं की अभिरूचि के अनुसार व्यवसाय संचालित करती है। सूक्ष्म वित्त वित्तीय सेवाओं की एक शाखा होती है, जो कि लोगों की व्यक्तिगत उपभोग, उत्पादन अथवा गतिविधियाँ, व्यवसाय आदि हेतु वित्त प्रदान करती है। देहा में सूक्ष्म वित्त के द्वारा विशेषकर ग्रामीण महिलाओं को ''स्वयं सहायता समूह'' के माध्यम से जोड़कर उनका आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान किया गया है। सूक्ष्म वित्त के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि व्यवसाय संचालित किए है। धार जिले के ग्रामीण क्षैत्रों में महिलाओं का ''सूक्ष्म वित्त संस्थाओं'' के माध्यम से आर्थिक विकास किया गया है। स्वयं सहायता समूह एवं ''बैंक लिन्केज कार्यक्रमों'' के द्वारा महिलाओं को वित्तीय सहायता दी गई है।

इस दृष्टि से महिलाओं के द्वारा अनेक व्यवसाय जैसे – आटा चक्की, झाड़ू बनाना, मत्स्य पालन, मुर्गीपालन, किराना दुकान, कास्मेटिक दुकान, दुग्ध व्यवसाय, मध्यान्ह भोजन बनाना आदि संचालित किए हैं। इसके फलस्वरूप ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है। सूक्ष्म वित्त के द्वारा राष्ट्रीकृत बैंक, गैर सरकारी संगठन समूह के माध्यम से महिलाओं को स्वरोजगार प्रदान करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन धार जिले के सूक्ष्म वित्त का ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक–सामाजिक स्थिति पर प्रभावों का विश्लेषण है।

तालिका क्रं. 1

भारत में लघु वित्त कार्यक्रम की प्रगति

वर्ष	वर्ष के दौरान नए SHGs		वर्ष के दौरान संचयी			बैंक ऋण (करोड़ रू. में)
	संख्या लाख में	वृद्धि दर (प्रतिशत में)	संख्या (लाख में)	राशि (करोड़ में)	वृद्धि दर (प्रतिशत में)	
2006–07	11.06	–	28.94	6570.39	–	12366.49
2007–08	12.28	11.00	36.26	8849.26	35.00	1699.90
2008–09	16.09	31.10	42.24	12256.51	38.50	22679.85
2009–10	15.87	–1.40	48.52	14453.30	17.90	28038.28

स्रोत – (नाबार्ड) भारत का आर्थिक सर्वेक्षण 2010–11 पृ. 106

तालिका क्रं. 1 से स्पष्ट है कि प्रति वर्ष स्वसहायता समूह की संख्या में वृद्धि हो रही है। जहां 2006–07 में 28.94 लाख स्वसहायता समूह थे जो बढ़कर 2009–10 में 48.52 लाख हो गये अर्थात लगभग 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा 2006–07 में बचत राषि 6570.39 करोड़ रू. थी जो 2009–10 में बढ़कर 14453.30 करोड़ रू. हो गई अर्थात् राशि में 119 प्रतिशत वृद्धि हुई है। इसी तरह बैंक ऋण में भी 2006–07 की तुलना में 2009–10 में 126.72 वृद्धि हुई है।

संबंधित साहित्य की समीक्षा – प्रस्तुत अध्ययन से संबंधित से साहित्य ग्रामीण महिला सशक्तिकरण सूक्ष्म वित्त बैंक लिंकेज कार्यक्रम, स्वयं सहायता समूहों से संबंधित अध्ययनों से है। साहू बासुदेव एवं दास संध्या ने अपने अध्ययन ''वुमन इम्पावरमेंट थ्रो सेल्फ–हेल्प ग्रुप–ए केस स्टडी (2008) में महिला सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूहों की प्रभावशीलता को बताया है। समूहों से ग्रामीण महिलाओं में बचत प्रवृत्ति, आर्थिक आत्मनिर्भरता आत्मविश्वास एवं स्वालंबन में वृद्धि होती है। सूक्ष्म वित्त से महिलाओं में सामाजिक स्तर में परिवर्तन एवं आर्थिक स्थिति को मजबूत किया जा सकता है। योजना आयोग ने अपने अध्ययन में बताया कि ग्रामीण महिलाओं में सशक्तिकरण सूक्ष्म वित्त के द्वारा लाया जा सकता है। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया की ग्रामीण महिला उद्यमियों में नेतृत्व क्षमता, निर्णय क्षमता तथा राजनीतिक हस्तक्षेप बढ़ता है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं

सहायता समूहों की महत्वपूर्ण भूमिका है। शुक्ला दीप्तिया – (2003) ने अपने अध्ययन में बताया कि सरकार द्वारा विभिन्न गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों द्वारा ग्रामीण गरीबी निवारण हेतु प्रयास किये है। सूक्ष्म वित्त द्वारा ग्रामीण महिलाओं कों वित्त प्रदान कर गरीबी की दर में कमी की जाती है। असंगठित क्षेत्रों में सूक्ष्म वित्त के द्वारा ऋण सबंधित आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। अतः स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं का विकास संभव है। सागवान एस. ने अपने अध्ययन में बताया कि भारत में वित्तीय समायोजन की प्रक्रिया तीव्र गति से बढ़ रही है जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक खातों एवं बचत प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है। स्वयं सहायता समूह में वित्त समायोजन के कारण साक्षरता दर, महिला विकास, ग्रामीण गरीबी एवं बचत प्रवृति को प्रोत्साहन मिला है। अध्ययन में पाया कि कृषि श्रमिक सीमान्त श्रमिक एवं आदिवासी महिलाओं में आय कमी के कारण बैंकिग क्षेत्रों में सहभागिता भी कम होती है। चावन पल्लवी एवं ब्रीजदार भास्कर ने अपने अध्ययन में शासन द्वारा संचालित बैंक लिंकेज कार्यक्रमों का विश्लेषण किया है। लिंकेज माडॅल के द्वारा स्वयं सहायता समूहों को वित्त प्रदान किया जाता है। जिससे महिलाएँ ऋण लेकर स्वयं का उद्योग स्थापित करती हैं। अतः महिला उद्यमी के रूप में आर्थिक एवं सामाजिक स्तर में सुधार आता है।

अध्ययन का उद्देश्य – प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र में सूक्ष्म वित्त संस्थाओं द्वारा संचालित स्वयं सहायता समूह का महिला सशक्तिकरण में भूमिका एवं प्रभावों का अध्ययन करना है।

1. सूक्ष्म वित्त का ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक, एवं व्यवसायिक कार्यरत स्थिति का विश्लेषण करना।
2. सूक्ष्म वित्त के कारण महिलाओं की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन का अध्ययन करना।
3. सूक्ष्म वित्त की ग्रामीण क्षेत्रों में समस्या का पता लगा कर उचित समाधान प्रस्तुत करना।

अध्ययन विधि –

प्रस्तुत अध्ययन हेतु मध्यप्रदेश के धार जिले का चयन किया है। जिले की 5 तहसीलों (लांजी, बैहर, बालाघाट, वारासीवनी, कटंगी) में बैंक लिंकेज प्रोग्राम एवं गैर सरकारी संगठन द्वारा संचालित स्वयं सहायता समूह से जुड़ी ग्रामीण महिलाओं का चयन किया जाना है। इस हेतु जिले के कुल 10 स्वयं सहायता समूह एवं प्रत्येक समूह से 5–5 महिलाओं का चयन सुविधानुसार पद्धति से किया है। इस प्रकार अध्ययन हेतु कुल 10 स्वयं सहायता समूह से कुल 50 महिलाओं का चयन किया है।

आंकड़ों का एकत्रीकरण एवं विश्लेषण – प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्राथमिक समंकों का उपयोग किया है। इनका एकत्रीकरण हेतु साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया है। धार जिले में संचालित स्वयं सहायता समूह से जुड़ी महिलाओं से सामान्य जानकारी आयु, शैक्षणिक स्थिति, आय, व्यवसायिक सरलता, ऋण स्रौत, ऋण उपभोग आदि से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित की हैं।

आंकड़ों का विश्लेषण – सामान्य जानकारी

तालिका क्रं.–2 आयु

विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
20 वर्ष से कम	10	20
20–40 वर्ष	32	64
40 वर्ष से अधिक	08	16
जाति		
अनुसूचित जाति	14	28
अनुसूचित जनजाति	28	56
पिछड़ा वर्ग	05	10
सामान्य	03	06

शैक्षणिक स्थिति

अशिक्षित	29	58
माध्यमिक स्तर	12	24
हा. स्कूल / हा. सेकेण्ड्री	06	12
स्नातक या अधिक	03	06
कुल	50	100

स्रोत :– सर्वेक्षित आंकड़े

प्रस्तुत तालिका में बालाघाट जिले में सूक्ष्म वित्त के अंतर्गत स्वयं सहायता से जुड़ी महिलाओं की सामान्य जानकारी दी गई है। तालिका में महिलाओं की आयु संबंधी जानकारी से स्पष्ट है कि 20–40 वर्ष की महिलाएँ सर्वाधिक 64 प्रतिशत हैं, जबकि 40 वर्ष से कम आयु वर्ग वाली महिलाएँ 16 प्रतिशत सबसे कम हैं। जाति आधार वर्गीकरण में अनु. जनजाति वर्ग की 56 प्रतिशत महिलायँ सर्वाधिक हैं जबकि सामान्य एवं अ.पि. वर्ग की क्रमशः 6 प्रतिशत एवं 10 प्रतिशत महिलाएँ हैं। शैक्षणिक स्थिति की जानकारी से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 58 प्रतिशत महिलाएँ निरक्षर हैं। माध्यमिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त महिलाएँ 24 प्रतिशत, स्नातक या अधिक तक शिक्षा प्राप्त महिलाएँ 6 प्रतिशत हैं।

तालिका क्रं.–4

सूक्ष्म वित्त संस्था से ऋण लेने से पूर्व आय स्तर

सूक्ष्म वित्त संस्था से ऋण लेने से पूर्व आय स्तर		
3000 से कम	25	50
3000 – 5000	14	28
5000 – 7000	07	14
7000 – से अधिक	04	08
कुल	50	100
सूक्ष्म वित्त संस्था से ऋण लेने से पश्चात आय स्तर		
3000 से कम	07	14
3000 – 5000	11	22
5000 – 7000	17	34
7000 – से अधिक	15	30
कुल	50	100

स्रोत :– सर्वेक्षित आंकड़े

प्रस्तुत तालिका में स्वयं सहायता समूह से जुड़ने के बाद महिलाओं की मासिक आय संबंधित जानकारी एकत्रित की गई है। इसमें पाया गया कि स्वयं सहायता समूह में जुड़ने से पूर्व महिलाओं की आय स्तर बहुत निम्न था। अतः 3000 से कम आय प्राप्त करने वाली महिलाएँ सर्वाधिक 50 प्रतिशत थीं। जबकि 7000 से अधिक आय प्राप्त करने वाली महिलाएँ सबसे कम 8 प्रतिशत थीं। सूक्ष्म वित्त संस्थाओं से ऋण लेने के पश्चात महिलाओं की मासिक आय स्तर में व्यापक परिवर्तन हुआ है। अतः स्पष्ट है कि सर्वाधिक 17 प्रतिशत महिलाएँ 5000–7000 रू. मासिक आय प्राप्त करती हैं। जबकि 3000 से कम आय प्राप्त करने वाली महिलाओं का प्रतिशत सबसे कम 14 प्रतिशत है।

तालिका क्र. 5

सूक्ष्म वित्त से संचालित ग्रामीण महिलाओं की व्यवसायिक संरचना

1.	आटा चक्की	06	12
2.	मत्स्य पालन	03	06
3.	मुर्गीपालन	04	08
4.	किराना दुकान	06	12
5.	दुग्ध व्यवसाय	04	08
6.	झाड़ू–टोकनी बनाना	08	16
7.	टेलरिंग	03	06
8.	आगरबत्ती बनाना	04	08
9.	पापड़–बढ़ी बनाना	03	06
10.	मध्याह्न भोजन बनाना	07	14
11.	अन्य	04	08

स्रोत :– सर्वेक्षित आंकड़े

प्रस्तुत तालिका में बालाघाट जिले में सूक्ष्म वित्त के माध्यम से स्वयं सहायता समूह के द्वारा ग्रामीण महिलाओं के द्वारा संचालित व्यवसायों का विश्लेषण किया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि ग्रामीण महिलाएँ निर्माण क्षेत्र, सेवा क्षेत्र आदि कार्य करती है। इनके द्वारा वनोपज उत्पादों, व्यक्तिगत व्यवसाय, मुर्गीपालन, डेयरी उत्पाद अन्य व्यवसाय किया जाता है। स्पष्ट है कि महिलायें आटा चक्की (6%), मत्स्य पालन (3%), मुर्गी पालन (4%), झाड़ू–टोकनी बनाना (08%), अगरबत्ती बनाना (04%) , मध्याह्न भोजन बनाना (07%) एवं (04%) अन्य कार्य किया जाता है।

तालिका क्र. 6

ग्रामीण महिलाओं द्वारा ऋण उपभोग संबंधी जानकारी

क्र.	ऋण उपभोग	आवृत्ति	प्रतिशत
2.	घरेलू उपभोग	5	10
3.	स्वास्थ्य	3	06
4.	उत्सव / त्यौहार	2	04
5.	पुराने ऋणों का भुगतान	8	16
6.	व्यवसाय संचालन	29	58
7.	बच्चों की शिक्षा एवं अन्य	3	06
	कुल	50	100

स्रोत :– सर्वेक्षित आंकड़े

प्रस्तुत तालिका में धार जिले की ग्रामीण महिलाओं के द्वारा सूक्ष्म वित्त संस्थाओं के द्वारा दिये जाने वाले ऋण का उपभोग अथवा उपयोग संबंधी जानकारी प्राप्त की गई है। स्पष्ट है कि सर्वाधिक 58% महिलाओं के द्वारा ऋण राशि का उपयोग स्वयं के उद्योग स्थापित करने हेतु किया जाता है। जबकि 10% महिलाओं के द्वारा घरेलू उपभोग तथा 16% महिलाओं द्वारा पुराने ऋणों का भुगतान हेतु किया जाता है। शेष महिलाओं द्वारा ऋण राशि का उपयोग स्वास्थ्य, उत्सव / त्यौहार, बच्चों की शिक्षा एवं अन्य कार्यों हेतु किया जाता है।

तालिका – 7

सूक्ष्म वित्त का ग्रामीण महिलाओं में आर्थिक एवं सामाजिक प्रभावशीलता

1.	बचत प्रवृत्ति	41	82%
2.	आर्थिक सम्पन्नता	43	86%
3.	अतिरिक्त रोजगार	27	54%
4.	ऋणों से मुक्ति	35	70%
5.	आत्म निर्भरता एवं आत्मविश्वास	45	90%
6.	सामाजिक प्रतिष्ठा	42	84%

स्रोत :– सर्वेक्षित आंकड़े

प्रस्तुत तालिका में बालाघाट जिले मे सूक्ष्म वित्त के द्वारा स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी महिलाओं की आर्थिक व सामाजिक स्थिति पर प्रभावशीलता का विश्लेषण किया गया है। सूक्ष्म वित्त के कारण ग्रामीण महिलाओं की बचत प्रवृत्ति में 82%, वृद्धि आर्थिक सम्पन्नता 86%, अतिरिक्त रोजगार की प्राप्ति 54%, पुराने ऋणों अथवा ऋणों से छुटकारा 70%, आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास में 90% वृद्धि तथा सामाजिक प्रतिष्ठता 42% महिलाओं में हुई है। अतः सूक्ष्म वित्त के परिणामस्वरूप महिलाओं के द्वारा स्वयं का रोजगार स्थापित करने से आर्थिक व सामाजिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव होता है।

निष्कर्ष :– भारत में ग्रामीण गरीबी एक प्रमुख समस्या है, आर्थिक विकास के कारण शासन द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास विशेषकर महिला सशक्तिकरण हेतु अनेक प्रयास किये है। सूक्ष्म वित्त के द्वारा महिलाओं में आत्मनिर्भरता, स्वरोजगार की भावना, सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है। यह एक ऐसी संस्था है, जिसके द्वारा महिलाएँ अपनी रूचि के अनुसार स्वयं का व्यवसाय संचालित करती हैं। शासन के द्वारा बैंक लिकेज कार्यक्रमों एवं स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु प्रयास किये गए हैं।

- सूक्ष्म वित्त के माध्यम से जुड़ी धार जिले की महिलाओं में आयु संबंधित जानकारी में सर्वाधिक 64% महिलाएँ 20.40 आयु वर्ग वाली हैं। जबकि 40 वर्ष से अधिक आयु वर्ग वाली महिलाएँ सबसे कम 16% हैं। अतः स्पष्ट है कि 20.40 वर्ष की आयु वाली महिलाएँ सर्वाधिक स्वयं सहायता समूह से जुड़कर कार्य करती हैं।
- अध्ययन में पाया गया कि सर्वाधिक 56% महिलाएँ अनुसूचित जनजाति वर्ग की, जबकि अनुसूचित जाति 28%, अन्य पिछड़ा वर्ग 10% तथा सामान्य वर्ग की सबसे कम महिलाएँ 6% हैं। क्योंकि धार जिले में ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश जनजाति वर्ग के लोग ही निवास करते हैं।
- अध्ययन में शैक्षणिक स्थिति से स्पष्ट है कि स्वयं सहायता समूह से जुड़ी महिलाओं में साक्षरता का अभाव पाया जाता है। सर्वाधिक 58% महिलाएँ निरक्षर हैं। जबकि स्नातक या अधिक शिक्षा प्राप्ति महिलाएँ केवल 6% हैं। अतः निम्न शैक्षणिक स्तर के कारण ही स्वयं सहायता समूह का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। जो कि अपने उद्देश्य पूरे नहीं कर पाते हैं।
- सूक्ष्म वित्त के द्वारा महिला उद्यमियों की मासिक आय में परिवर्तन हुआ है। सर्वाधिक आय का स्तर (5000–7000) प्राप्त करने वाली महिलाएँ 34% है। जबकि 3000 से कम आय प्राप्त करने वाली महिलायें 14% हैं। 22% महिलाएँ 3000–5000 रू. मासिक आय जबकि 7000 से अधिक आय प्राप्त करने वाली महिलाएँ 30% हैं।
- प्रस्तुत अध्ययन में सूक्ष्म वित्त के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं की व्यवसायिक संरचना का विश्लेषण किया है। सूक्ष्म वित्त प्राप्ति से पूर्व महिलाओं का मुख्य व्यवसाय कृषि अथवा कृषि मजदूरी था। किंतु सूक्ष्म वित्त के बाद महिलाओं के द्वारा विनिर्माण, सेवाक्षेत्र आदि से संबंधित जैसे आटा चक्की, किराना दुकान, टेलरिंग,

कास्मेटिक दुकान, मध्यान्ह भोजन बनाना, झाड़ू टोकनी बनाना, मुर्गी पालन, डेयरी व्यवसाय, मत्स्य पालन आदि से संबंधित कार्य किये जाने लगे। अतः महिलाओं की व्यवसायिक संरचना में सूक्ष्म वित्त के कारण परिवर्तन होता है।

- सूक्ष्म वित्त संस्थाओं के द्वारा महिला उद्यमियों को अनेक कार्यों एवं उद्देश्यों हेतु ऋण प्रदान किया जाता है। किंतु मुख्य उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को आत्म निर्भर बनाकर उनमें सशक्तिकरण लाना है। सूक्ष्म वित्त संस्थाओं द्वारा जो ऋण प्रदान किया जाता है उनमें से सर्वाधिक 58% महिलाओं द्वारा ऋण राशि का उपयोग स्वयं व्यवसाय संचालन हेतु किया घरेलू उपभोग हेतु 10% महिलायें ऋण का उपयोग किया। जबकि 16% महिलायें पुराने ऋणों की अदायगी हेतु किया।
- प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा बालाघाट जिले की ग्रामीण महिलाओं को सूक्ष्म वित्त के माध्यम से स्वयं सहायता समूह से जुड़ी महिलाओं की आर्थिक व सामाजिक स्थिति पर प्रभावषीलता का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट है कि सूक्ष्म वित्त के द्वारा ग्रामीण महिलाओं में स्वावलंबन तथा आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है। 82% महिला उद्यमियों में बचत की प्रवृत्ति बढ़ी है। जबकि 86% महिलाओं में आर्थिक सम्पन्नता आई है। सूक्ष्म वित्त के द्वारा महिलायें मुख्य व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय भी कर सकती हैं। लगभग 54% महिलाओं के द्वारा अतिरिक्त रोजगार भी किया जाता है। 70% महिलाओं का मत है कि सूक्ष्म वित्त संस्थाओं द्वारा प्रदत्त ऋणों से उनके पुराने ऋणों से मुक्ति मिली है।
- सूक्ष्म वित्त संस्थाओं के द्वारा महिलाओं की सामाजिक प्रवृत्तियों में भी व्यापक परिवर्तन हुआ है। अध्ययन में पाया गया कि बालाघाट जिले की लगभग 90% महिला उद्यमियों में आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है। जबकि सामाजिक प्रतिष्ठा व दायित्वों में 82% महिलाओं में वृद्धि हुई है।
- अतः प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सूक्ष्म वित्त संस्थाओं का ग्रामीण महिला उद्यमियों की व्यवसायिक संरचना, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति की मजबूती में महत्वपूर्ण भूमिका है। महिलाओं के द्वारा व्यवसाय संचालित किये जाते हैं। जिससे उनमें आर्थिक सम्पन्नता, सामाजिक प्रतिष्ठा, बचत प्रवृत्ति आदि होती है। सूक्ष्म वित्त संस्थाओं को ग्रामीण महिला निर्धनता–उन्मूलन के एक सबल विकासात्मक आधार के रूप में माना जाता है। अतः इन संस्थाओं के द्वारा ही वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण का मार्ग संभव हो पाया है।

समस्या –

1. ग्रामीण महिलाओं में शिक्षा की कमी होती है। जिसके कारण महिलायें अपने अधिकारों एवं शक्ति का पूर्ण रूप से उपयोग नहीं कर पाती हैं।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षाकृत कम सूक्ष्म वित्त संस्थाएं कार्यरत हैं। जिसके कारण यह अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर पाती हैं।
3. सूक्ष्म वित्त संस्थाओं के कर्मचारीयों एवं अधिकारियों का व्यवहार ग्रामीण महिलाओं के प्रति कठोर एवं दोषपूर्ण होता है।
4. ग्रामीण महिलाओं को सूक्ष्म वित्त संस्थाओं द्वारा जो वित्त प्रदान किया जाता है। सामान्यतः वह राशि आवश्यकता अथवा व्यवसाय संचालन की दृष्टि से कम होती है।
5. महिला उद्यमियों के द्वारा जो माल निर्मित किया जाता है। उसकी विपणन की स्थानीय स्तर पर विशेष सुविधायें नहीं होती हैं।
6. उद्यमियों को माल निर्माण में कच्चे माल की आवश्यकता होती है। जो कि आसानी से स्थानीय क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं होता है।

नीतिगत सुझाव :–

1. वित्त समायोजन के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों की अधिकतम स्थापना की जानी चाहिए।

2. ग्रामीण महिलाओं को सूक्ष्म वित्त संस्थाओं के द्वारा उद्यम स्थापित करने हेतु विशेष प्रशिक्षण एवं शिविर आयोजित किये जाने चाहिए।
3. महिला उद्यमियों को सूक्ष्म वित्त संस्थाओं द्वारा आवश्यकता अनुसार पर्याप्त राशि दी जानी चाहिए।
4. उद्यम संचालन हेतु आवश्यक कच्चे माल की उपलब्धता स्थानीय स्तर पर एवं पर्याप्त मात्रा में की जानी चाहिए।
5. महिला उद्यमियों को प्रदान ऋण राशि को उचित उपयोग हेतु संस्थाओं के द्वारा प्रेरित किया जाना चाहिए।
6. प्रशासन को ग्रामीण क्षेत्रों में वित्त समायोजन एवं बैंक लिंकेज कार्यक्रमों की प्रगति करना चाहिए।

उपसंहार –

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गरीबी उन्मूलन तथा ग्रामीण विकास के मूल उद्देश्य को प्राप्त करने में वित्तीय समावेशन के अन्तर्गत लघु वित्त प्रभावी भूमिका निभा रहा है क्योंकि इसके द्वारा ग्रामीण भारत की 'जड़ों' तक साख व्यवस्था को पहुंचाया जा रहा है। इसके 90 प्रतिशत स्वसहायता संगठन स्त्रियों के होने के कारण स्त्री शक्ति को बल मिला है। वास्तव में वित्तीय समावेशन में लघु वित्त की भूमिका को सुदृढ़ करने के लिए इस कार्यक्रम को और विस्तारित करना होगा, जनता को जागरूक करना होगा, ऋण राशि की मात्रा बढ़ानी होगी तथा बैंकों को और वित्तीय सहायता उपलब्ध करानी होगी। ''सामाजिक शक्ति प्रदान करने तथा आर्थिक उत्थान के दृष्टिकोण से स्वसहायता संगठनों की भूमिका ग्रामीण विकास के अन्य कार्यक्रमों की तुलना में कहीं अधिक कारगर रही है।''

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मिश्रा एवं पुरी–भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, पृ. 397–400।
2. खांडकर एस. (1995) ''द इम्पैक्ट ऑफ फारमल फाईनेन्स ओन रूरल इकोनोमी ऑफ इण्डिया''–जर्नल ऑफ डेवलपमेन्ट स्टडीज।
3. सिंग एस., मलीक एस. ''भारत में अनुसूचित जाति का आर्थिक–सामाजिक विकास'' आलेख पब्लिकेशन, जयपुर 2001।
4. मदन जी. आर., ''भारतीय ग्रामीण समस्याएँ'', राधा पब्लिकेशन, दिल्ली 2002।
5. मिश्रा रश्मी, ''पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास'', इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल डेवलपमेन्ट 2001।
6. सुबोध अग्रवाल (2004) कुरूक्षेत्र –ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
7. डॉ0 अरुण कुमारी सिंह (1991) जनजातीय समाज में स्त्रियाँ, जयपुर।
8. Ananta Basude Sahu (2007) Women Impowerment thorough self Help Groups A Case Study
9. M.L. Narasiah, 2004 Women and Micro Credit New Delhi.
10. www.nabard.org
11. Indian economics Survey 2011-12,
12. जिला कार्यालय बालाघाट जिला।
13. पूर्व शोध पत्र एवं मासिक पत्रिकायें।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सामाजिक विकास की धुंधली तस्वीर

डॉ0 आनन्द कुमार खरे
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
दयानन्द वैदिक कालेज, उरई, जालौन–285001

बहुत से लोगों को विभिन्न क्षेत्रों में देश की कामयाबी पर गर्व है और इसके सबूत के तौर पर आजादी के वक्त से आज की तुलना कर वे जश्न मना लेते हैं। लेकिन इसमें खामियाँ निकालने वाले भी कम नहीं हैं। भारत के विकास का गुणगान करने वालों का नशा इस कदर है कि उन्हें यदाकदा रूपये में गिरावट और वर्तमान समय में अर्थव्यवस्था में सुस्ती के दौर से कोई फर्क नहीं पड़ता, उनकी नजर में भारत नाम के बाजार का दबदबा हमेशा कायम रहेगा। वर्तमान में सीमायें गायब होती जा रही हैं और दक्षिण एशिया में सबसे अधिक टिकाऊ लोकतंत्र होने का तगमा भी कोई नहीं छीन सकता, वैसे ये सारे तर्क बेतुके भी नहीं हैं। देश की आजादी के बाद छह से ज्यादा दशकों में कम विकसित समाजों वाले इस क्षेत्र में भारत व्यक्तिगत आजादी की आश्वस्ति देने वाले देश के रूप में उभरा है। भारत ने औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के बाद मुक्तिदाता के तानाशाह बन जाने के रूख को भी आइना दिखा दिया।

राष्ट्र निर्माण के शुरुआती दौर में थोड़े बहुत पूंजीवादी रूझान के साथ देश के सोवियतीकरण की कोशिशें हुई। नेहरू की वैज्ञानिक सोच को ऐसे समाजवादी शासन का सहारा था, जिसने समस्त संसाधन विशाल सरकारी क्षेत्र को खड़ा करने में झोक दिये। समाज की आराम कुर्सी को तोड़ने और दुनिया को शीत युद्ध के चश्में से देखने की आदत को बदलने में चार से ज्यादा दशक लगे और सत्ता में बैठे कुछ लोगों को वास्तव में बहादुरी से काम लेना पड़ा। शायद देर से आयी जाग्रती और तेज वृद्धि दर, आकांक्षाओं से भरा हुआ मध्यम वर्ग और महत्वाकांक्षी उद्यमी वर्ग अब तक के पारम्परिक स्थिर भारत की जगह उभरते हुए भारत ने ले ली।

भारत सपनों का देश नहीं बना :– भारत के वैभव के इस चकाचौंध का बेपर्दा होना भी बहुत जरूरी है। ऊँची विकास दर की उपलब्धियों का मूल्याकंन यह होना चाहिए कि उस विकास दर ने आम लोगों की जिंदगी एवं आजादी पर क्या प्रभाव डाला है। मीडिया और मुक्त बाजार के प्रतिनिधि भारत के जिस विकास कथा का गुणगान कर रहे हैं उसमें पूर्वाग्रह नजर आता है, देश को ऐसा बतलाया जा रहा है मानों वह सहारा रेगिस्तान के बीच में कोई कैलिफोर्निया हो। इसीलिए ग्लोबलाइज्ड भारत के बहु प्रचारित तीर्थों से अलग थलग धूल भरे इलाकों में मौजूद अभावों के रेगिस्तान की झलक हमारी नजरों से छिप नहीं पाती। हर बंगलुरू के सामने एक बस्ती खड़ा दिखाई देता है। वास्तव में भारतीय लोकतंत्र में पिछले छह दशकों में कुछ तो भयंकर गड़बड़ जरूर हुई है जिसके कारण सामाजिक क्षेत्र–स्वास्थ सेवा हो या शिक्षा या स्त्री पुरूष न्याय में हमारा रिकार्ड अच्छा नहीं है, रहन–सहन के स्तर के मामले में हम बांग्ला देश से भी पीछे हैं।

सामाजिक बुनियादी ढाँचा विकसित करने में भारत की असफलता लोकतंत्र की असफलता नही है, यह असफलता राजनीति की, प्रशासन की नीतियों और प्राथमिकताओं की है। क्योंकि हम वृद्धि दर को विकास से जोड़ने में असफल रहे हैं। आर्थिक वृद्धि का शोर झूठे ही हमारे कान फाड़ रहा है, क्योंकि स्वास्थ्य, शिक्षा और मानवीय क्षमताओं के विकास के अन्य पहलुओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। स्पष्ट है कि लम्बे समय तक वृद्धि और सहभागी विकास को कैसे हासिल किया जाए और जारी रखा जाए, इस बारे में हमारी समझ निश्चित रूप से धुंधली है। मुक्त बाजार के पैरोकारों की यह मान्यता भी अस्पष्ट ही है कि अन्त में गरीब भी

ग्लोबलाइजेशन के दायरे में आ जायेंगे। सुविधा सम्पन्न अभिजात्य वर्ग का यह एक तरह से भ्रम ही है। यही वर्ग विकास का एक मात्र लाभार्थी है और यही सामाजिक असमानता के विरुद्ध शोर मचाने में भी सबसे आगे है।

इण्डिया में भारत खो सा गया है :– देश ने हाल के समय में तेजी से आर्थिक विकास किया है, जिसका जश्न पूरे जोश के साथ मनाया जाता है। लेकिन हमें इस तथ्य पर भी गौर करना चाहिए की भारत में हुई आर्थिक प्रगति ने सामाजिक स्थितियों पर कुछ खास असर नहीं डाला है। हाल के वर्षों में सिर्फ आय के वितरण में ही असमानता नही आयी है बल्कि चीन में वास्तविक मजदूरी में हुई तेज वृद्धि के साथ भारत की अपेक्षाकृत स्थिर पड़ी वास्तविक मजदूरी मेल नहीं बैठा पायी। एक और विशेष बात यह है कि तेज आर्थिक विकास से एकत्रित पूंजी को सामाजिक और भौतिक बुनियादी ढाँचें का विस्तार करने के लिए निर्धारित और सुनियोजित तरीके से इस्तेमाल नहीं किया गया। आबादी का एक बड़ा हिस्सा आज भी बुनियादी सुविधाओं– स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य, साफ पानी और जल निकासी के साधनों से वंचित है। एक ओर भारत अपनी वास्तविक आय के मामले में अन्य देशों से आगे निकल रहा है वहीं दूसरी ओर दक्षिण एशियाई क्षेत्र में ही इन्हीं देशों से वह कई सामाजिक संकेतकों के मामले में पिछड़ रहा है। हालांकि भारत की जी0 डी0 पी0 विकास दर के बारें में चीन के साथ बराबरी पर चल रही है, लेकिन लम्बी आयु, साक्षरता, बच्चों में कुपोषण और मातृ मृत्यु दर जैसे संकेतकों पर वह चीन से काफी पीछे है। दक्षिण एशिया में ही एक कमजोर अर्थव्यवस्था वाला देश बांग्ला देश कई सामाजिक संकेतकों (बच्चों का टीकाकरण, शिशु मृत्युदर, बच्चों में अल्प पोषण और लड़कियों की स्कूली शिक्षा) के मामले में भारत से आगे निकल गया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि बीस वर्ष पहले सर्वश्रेष्ठ सामाजिक संकेतकों के सन्दर्भ में भारत छह दक्षिण एशियाई देशों में दूसरे स्थान पर था जबकि वर्तमान में वह लगभग आखिरी स्थान पर खड़ा दिखाई दे रहा है। भारत में प्रति व्यक्ति आय तो ऊपर जा रही है लेकिन सामाजिक संकेतक लगातार नीचे जा रहे हैं।

आजादी की लड़ाई के पीछे भी भारत का मुख्य उद्देश्य विकास और समानता लाना था लेकिन वह इस मामले में निश्चित रूप से असफल रहा है। आर्थिक विकास से पैदा आय का विभाजन ही असमान नहीं रहा, बल्कि नये संसाधनों का भी उपयोग इस तरह नही किया गया कि समाज के वचित समूहों की जरूरतों की पूर्ति की जा सके। आर्थिक सुधार के बाद की अवधि में वास्तविक कृषि मजदूरी की बढ़ोतरी में भारी कमी आयी है। भारत के विकास मार्ग में कुछ तो कमियाँ हैं इसका संकेत इस बात से मिलता है कि प्रति व्यक्ति आय में शानदार वृद्धि के बाद भी भारत कई सामाजिक संकेतकों के सन्दर्भ में दूसरे पड़ोसी देशों के मुकाबले पीछे चल रहा है।

देश में जहाँ दक्षिण एशियाई तुलनाओं पर बिल्कुल ध्यान नही दिया जाता है वहीं ब्रिक देशों (ब्राजील, रूस, भारत और चीन) का समूह मित्र माना गया है। इन देशों की कुछ समान विशेषताएँ हैं, जैसे उनकी विशाल आबादी, भारत इस समूह में अपवाद ही है। इस समूह के प्रत्येक देश में कम उम्र के आयु समूहों में पूर्ण साक्षरता प्राप्त कर जी गयी है या होने वाली है। लेकिन भारत अब भी विकास के इस बुनियादी ढाँचें को पूरा करने में पिछड़ा हुआ है। बच्चों में कुपोषण की स्थिति भी भारत में बहुत गम्भीर है। जब कि अन्य ब्रिक देशों में इस भयानक समस्या का लगभग निवारण हो चुका है। देश में पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों में लगभग 40 प्रतिशत का वनज अपेक्षित वनज से कम है। अधिकतर बच्चों का शारीरिक विकास सही नहीं हो पाता है। भारत का प्रति व्यक्ति सकल घरेल उत्पाद ब्राजील की तुलना में एक तिहाई, चीन से आधा और रूस से एक चौथाई से कम है। इस विशाल अन्तर को खत्म करने के लिए गम्भीरता से काम करने की जरूरत है।

कागज पर स्वास्थ्य सुविधाएं :– स्वास्थ्य सुविधाओं की समस्या देश के सामने एक गम्भीर चुनौती है। लेकिन इस चुनौती से डरने के बजाय हमें इस पर काबू पाने के तरीके और साधन तलाशने ही होगें। साथ ही उन कारकों पर भी गौर करना होगा जो इस समस्या से बेहतर ढंग से निबटने वाले दूसरे देशों के अनुभवों से

निकले। हम तमिलाडु एवं केरल जैसे राज्यों से बहुत कुछ सीख सकते हैं, जिन्होंने अन्य भारतीय राज्यों की तुलना में अपनी जनता के स्वास्थ्य की देखभाल बहुत बेहतर ढंग से की है। सम्पूर्ण देश के लिए स्वास्थ्य सेवा की संकल्पना में सभी के लिए समान सुविधा की महत्ता को समझना पहली और सबसे अहम जरूरत है। थाईलैण्ड, ब्राजील और मैक्सिको जैसे देशों ने हाल के वर्षों में यह स्थान हासिल किया है और अपनी जनता के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुँच का स्वरूप ही बदल दिया है।

परिवर्तन होना ही चाहिए :– वर्तमान समय में देश एक अजीब तरह के संक्रमण और विरोधाभासी दौर से गुजर रहा है। देश में शिकायतों एवं विरोधों की भी कमी नही है। लेकिन हमें यह ध्यान देना होगा कि शोर मचाने वालों में और होने वाले विरोधों में क्या उन वंचनाओं और अन्यायों की भी झलक शामिल है, जिनसे देश की अधिकांश सुविधाविहीन गरीब आबादी लगातार त्रस्त है। अधिकतर कम सम्पन्न भारतीय (मध्यम वर्ग) जो आम आदमी से ऊपर हैं, उनकी मांग, राजनीतिक पहुँच, ताकत वास्तविक गरीबों की राह में बाधा बन जाती है। यही कारण है कि अनेक राजनैतिक मुद्दों एवं ज्वलंत समस्याओं के सन्दर्भ में देश के बेहद गरीबों की बहुसंख्या को कोई जगह नही मिल पाती, उनके हितों की हमेशा उपेक्षा होती रहती है। देश में आम लोगों की स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, सामाजिक सुरक्षा एव अन्य मामलों की उपेक्षा इसी का परिणाम है।

क्यों न खुद को पहचानें :– ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारी जार्ज लिण्डसे जानस्टोन ने सन् 1801 में लंदन की संसद में एक बहुत ही गहरी बात कही थी कि भारत में ब्रिटेन का साम्राज्य सोच का साम्राज्य है, और यह अपनी शक्ति को पहचानने से सभी भारतवासियों के इनकार की नींव पर खड़ा है। अपनी ताकत को पहचानने के आम भारतीयों की आनाकानी जानस्टोन के जमाने में बिट्रिश शासन के सामने भारत की गुलामी जारी रहने की प्रमुख वजह थी। कुछ हद तक भारत के राजनैतिक हालात की वजह से यह आज भी सच है। देश का सुविधाविहीन गरीब भारतीय जाग्रत होने और खुद को इस असाधारण घोर अभाव से हमेशा के लिए मुक्त किये जाने की मांग करने में हिचकते हैं। देश में वास्तविक कमजोर वर्गों की समस्याओं पर कम ही ध्यान दिया जाता है।

आधुनिक भारत का निर्माण अवश्य हुआ है लेकिन वह संतुलित नही है। बदलाव का दौर महानगरों या शहरों तक ही सीमित है। ग्रामीण क्षेत्र शहरों की ओर टकटकी लगाए रहते हैं। गाँव के विकास के लिए जो योजनाएं बनती हैं वे भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाती हैं। आज भी बहुत से गाँव पक्की सड़कों और साफ पानी के लिए तरस रहे हैं। अगर हमें भारत को उन्नत बनाना है तो गाँवों की दशा सबसे पहले सुधारनी होगी। देश के अधिकांश हिस्सों में कई वर्षों से बिजली संकट है। देश में लगभग तीस करोड़ घर आज भी बिजली के संकट का सामना कर रहे हैं। आज भी देश बहुत सी औद्योगिक एवं अन्य जरूरतों के लिए दूसरे देशों पर निर्भर है, यह निर्भरता ही भ्रष्टाचार की जननी है। जनता तमाशबीन की तरह देख रही है कि देश की हर योजना, हर अन्तर्राष्ट्रीय सौदा भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ रहा है।

आजादी मिलने के वक्त हम गरीबी, भूख और अशिक्षा से जूझ रहे थे। हमने संघर्ष किया, और एक नये देश का निर्माण किया। और अब तक एक इकाई के रूप में अपना आस्तित्व बचाये रखा है। हमने काफी कुछ हासिल भी किया है, लेकिन कई क्षेत्रों में असफल भी रहे हैं। क्रय क्षमता के आधार पर हम दुनिया के तीसरे प्रमुख देश हैं, लेकिन देश में अनेकों बच्चे भूख से जूझ रहे हैं। हमलावरों से सुरक्षा के लिए हमारे पास एक शक्तिशाली सेना है लेकिन हमें सेना के लिए इजराइल जैसे देश से प्रति वर्ष करीब दो अरब डालर के हथियार खरीदने पड़ते हैं। जिसकी आबादी दिल्ली की आबादी के आधे से भी कम है। आधुनिक शासन प्रणाली में भी देश में महिलाएं और आम नागरिक सुरक्षित नहीं हैं। हम चन्द्रमा पर राकेट भेज चुके हैं, लेकिन अपने जनमानस को साफ पानी उपलब्ध नही करा पाये। हमारे महानगरों में अनेक पाँच सितारा होटल हैं, लेकिन पचपन प्रतिशत आबादी के घरों

में अभी भी शौचालय नही हैं। अनेक शानदार शैक्षणिक संस्थान होने के बाद भी केवल बाइस प्रतिशत युवा ही कालेज जा पाते हैं और चालीस प्रतिशत से अधिक बच्चे स्कूल में दस वर्ष भी नहीं गुजार पाते हैं। हमारे यहाँ आम आदमी को न्याय देने की व्यवस्था तो मौजूद है, लेकिन नागरिकों को सही समय सीमा में न्याय दिलाने में हम विफल रहे हैं। हमने परमाणु एवं युद्धपोत तो बनाये हैं लेकिन देश की सड़कों से गड्डे खत्म नहीं हो पाये हैं। औपनिवेशिक शासन से बाहर निकलने के लिए हमने अनेक देशों की मदद की है लेकिन खुद हमारे यहाँ बंधुआ मजदूरी एवं बाल मजदूरी खत्म नहीं हो पायी है।

आशायें अभी भी जिंदा हैं :– लेकिन इसके बाद भी देश की लोकतांत्रिक प्रणाली निम्न वर्गों को अपनी शक्ति को पहचानने और अपनी मांगों को रखने का अवसर प्रदान करती है। जिसमें यही संदेश छिपा होता है कि उनके जीवन को कष्टमय बनाने वाली असमानताओं एवं समस्याओं को अतिशीघ्र दूर किया जाय। आज देश में अभाव और बढ़ती असमानता की प्रकृति और विस्तार को समझना अत्यंत आवश्यक है। यही आज के भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- ''जिन्हें नाज है हिन्द पर वो कहाँ हैं'', इण्डिया टुडे, 17 जुलाई 2013
- ''विदेशियों को सब्सिडी और घर में कटौती'', तथ्य भारती, मई 2013
- ''निर्भरता भ्रष्टाचार की जननी है'', इण्डिया टुडे, 06 मार्च 2013
- ''यह फिजा बदल सकती है'', अमर उजाला, चण्डीगढ़, 15 अगस्त 2013
- ''मंहगाई की राजनैतिक सजा'', दैनिक जागरण, कानपुर, 14 दिसम्बर 2013

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा शिक्षा में व्यापक परिवर्तन

डॉ0 शालिनी वर्मा
प्रवक्ता, संगीत
आर्य कन्या इण्टर कॉलेज, हापुड़ (उ0प्र0)

पुष्पा सिंह
एम0फिल0, शिक्षा संकाय,
बुन्देलखण्ड, विश्वविद्यालय, झांसी

शिक्षा शब्द अपने आप में अथाह सागर का समग्र रूप है। प्राचीन काल हो, या वर्तमान परिस्थिति, शिक्षा का महत्व या उपयोग जितना महत्वपूर्ण था उतना ही महत्व मनुष्य के जीवन में जन्म–जन्मान्तर तक रहेगा।

'शिक्षा' शब्द 'विद्या', 'विनय', 'बोध' एवं 'ज्ञान' के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति वैदिककालीन भाषा संस्कृत भाषा के ' शिक्षा ' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से हुई है। शिक्षा का अर्थ होता है 'सीखना या सिखाना' अर्थात इस भॉति शिक्षा का शाब्दिक अर्थ हुआ– 'सीखने–सिखाने की क्रिया।

प्राचीन भारतीय वैदिक काल में 'शिक्षा' को पुस्तकीय ज्ञान के पर्यायवाची एवं जीविकोपार्जन के साध ान से इतर शिक्षा को वह प्रकाश माना गया जो बालक का सर्वांगीण विकास करने, उत्तम जीवनयापन करने और मोक्ष दिलाने में योग प्रदान करती थी अर्थात शिक्षा मनुष्य को अन्धकार से प्रकाश की तरफ ले जाती थी अल्तेकर के शब्दों में कहा जा सकता है कि– ''वैदिक काल से आधुनिक काल तक शिक्षा के विषय में भारतीयों की मुख्य धारण यही रही है कि शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ–प्रदर्शन करता है।''

लेकिन वर्तमान समय में शिक्षा का अर्थ संकुचित हो गया है। आधुनिक शिक्षा का अभिप्राय बालक के विद्यालय की चारदीवारी में प्रदान की जाने वाली शिक्षा से है। इसके तहत बालक को एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार एक निश्चित समय तक निश्चित विधियों के माध्यम से एक या कुछ निश्चित व्यक्तियों द्वारा निश्चित प्रकार का ज्ञान प्रदान किया जाता है। विद्यालय में बालक को वही शिक्षा दी जाती है जो समाज और बालक के उन्नयन के लिए आवश्यक है।

जी0एच0 थामसन के अनुसार– ''शिक्षा एक विशेष प्रकार का वातावरण है जिसका प्रभाव बालक के चिन्तन, दृष्टिकोण तथा व्यवहार करने की आदतो पर स्थायी रूप से परिवर्तन के लिए डाला जाता है।''

वर्तमान समय में शिक्षा को प्रबन्धन के तहत बांध दिया गया है। जिसकी कुछ खामियाँ हैं तो कुछ अच्छाईयों भी हैं। वर्तमान में शिक्षा में सुधार के लिए विभिन्न संस्थायें चलायी गयी हैं। जैसे– CABE केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदाता बोर्ड (संगठन–1920, संशोधित संगठन–1935), NCERT (संगठन–1961) (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद) इस संगठन ने The curriculum for the Ten year school नामक एक दस्तावेज निर्मित किया। इसमें स्पष्ट किया गया कि पाठ्यक्रम को शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों विशिष्ट उद्देश्यों, शिक्षण अधिगम अनुभवों, शिक्षण सामग्री, मूल्यांकन व पृष्ठपोषण आदि पर आधारित होना चाहिए। मुक्त शिक्षा के लिए IGNOU (इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय) की स्थापना सितम्बर 1985 में की गई थी। इसका उत्तरायित्व भारतीय शिक्षा व्यवस्था में मुक्त विश्वविद्यालय को बढ़ावा देना तथा दूरस्थ शिक्षा प्रणाली की शुरूआत करने के साथ ही ऐसी प्रणाली में समन्वय और मानकों का निर्धारण करना है।

भारत सरकार ने शिक्षा के पुनर्गठन पर समग्र रूप से सोचने समझने और देशभर के लिए समान शिक्षा नीति का निर्माण करने के उद्देश्य से 14 जुलाई 1964 को डी0एस0 कोठारी की अध्यक्षता में 17 सदस्यीय राष्ट्रीय शिक्षा आयोग' का गठन किया जिसमें शैक्षिक अवसरों की समानता पर अधिक बल दिया तथा शैक्षिक

क्षेत्र में व्याप्त असमानता के कारणों तथा उनके निराकरण पर विस्तारपूर्वक विचार किया।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग में शिक्षण शुल्क व अन्य व्यक्तिगत लागत, छात्रवृत्तियों तथा क्षेत्रीय असमानताओं के विषय में गहनतापूर्वक मंथन किया एवं विकलांगों, बालिकाओं व अनुसूचित जनजातियों के विषय में कई सुझाव प्रस्तुत किये।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का मानना था कि वर्तमान समय में समाज के एक छोटे से वर्ग के बालक ही उच्च स्तरीय शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। तथा यह वर्ग योग्यता पर आधारित न होकर शुल्क देने की क्षमता पर आधारित है। भारतीय प्रतिभा का एक बड़ा भाग अपरिचित ही रह जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय विकास एवं सामाजिक व राष्ट्रीय एकीकरण के लिए यह बहुत जरूरी है कि समाज के प्रत्येक वर्गों के सभी बालकों प्रमुख रूप से सभी योग्य बालकों को उच्च–स्तरीय एक समान शिक्षा अवश्य प्रदान की जानी चाहिए।

वर्ष 1976 से पहले शिक्षा पूरी तरह राज्यों का विषय था। केन्द्र सरकार की भूमिका तकनीकी और उच्च शिक्षा आदि के क्षेत्र में समन्वय तथा मानकों के निर्धारण तक सीमित थी। 1976 में किए गए संविधान संशोधन के बाद शिक्षा केन्द्र और राज्यों की साझा जिम्मेदारी बन गई है। शिक्षा प्रणाली और उसके ढांचे के बारे में फैसले आम तौर पर राज्य ही करते हैं लेकिन शिक्षा के स्वरूप और गुणवत्ता के निर्धारण का दायित्व स्पष्ट रूप से केन्द्र सरकार का ही है। नीति–निर्धारण के अलावा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय का शिक्षा विभाग शैक्षिक आयोजना की जिम्मेदारी राज्यों के साथ मिलकर निभाता है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय का भूतपूर्व शिक्षा विभाग दो अलग–अलग विभागों अर्थात प्रारम्भिक शिक्षा और साक्षर विभाग तथा माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग के रूप में पुनर्गठित किया गया है। शिक्षा एक समवर्ती विषय है जिसके सम्बन्ध में विभाग, राज्यों और संघशासित क्षेत्रों के साथ निकट वैचारिक आदान–प्रदान में लगा है जिससे कि वह राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा उसे सौंपी गई भूमिका का निर्वाह कर सके।

1935 में जिस आयोग की स्थापना की गई थी वह शैक्षिक नीतियों और कार्यक्रमों के मूल्यांकन तथा उनकी निगरानी में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) कार्य योजना (1986) और संशोधित नई शिक्षा नीति एवं कार्य योजना (1992) इसकी उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (NPE और POA) जो कि विचार–विमर्श, परामर्श और मतैक्य का परिणाम थी, उनकी 1992 में समीक्षा की गई और उसे अद्यतन बनाया गया। कार्य योजना के प्रस्तावना भाग में कहा गया है कि हमारे राष्ट्र में मौजूद अत्यधिक विविधता को देखते हुए बेहतर होगा यदि प्रत्येक राज्य और संघ शासित क्षेत्र अपने हालात की आवश्यकताओं के हिसाब से और साथ ही कार्य योजना 1992 के अनुरूप एक राज्य कार्ययोजना तैयार करे। 1992 में अद्यतन बनाई गयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NPE) 1986 में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा सहित सभी क्षेत्रों में शिक्षा में सुधार और उसके विस्तार, शिक्षा की सुलभता से जुड़ी विषमताओं के उन्मूलन और प्राथमिक से लेकर उच्चतर शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षा की गुणवत्ता और प्रासंगिकता में सुधार लाने पर बल दिया गया है। राष्ट्र सभी को शिक्षा प्रदान करने के प्रति दृढ़ता से प्रतिबद्ध है और उसकी प्राथमिकता के क्षेत्र हैं। निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों का समाकलन, निरक्षरता का उन्मूलन, व्यवसायीकरण महिलाओं को समानता के लिए शिक्षा, अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों और अल्पसंख्यकों की शिक्षा पर विशेष बल।

शैक्षिक तकनीकी के एक भाग 'अभिक्रमित अधिगम' के विकास हेतु India Association for Programmed learning (IAPL) की सन् 1966 ई. में स्थापना की गई। वर्तमान में इसका नाम बदलकर 'Indian Association for Educational Technology (IAET) कर दिया गया है। यह संस्थान अनेक पत्रिकाओं, पुस्तकों, समाचार–पत्रों, सेमीनार सिम्पोजियम आदि के माध्यम से अपने क्षेत्र में बेहतर कार्य कर रहा है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, स्टेट इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन एवं विभिन्न विश्वविद्यालयों में इस क्षेत्र में शोध सम्पूर्णता के

साथ किया जा रहा है।

वर्तमान समय में इस बात की आवश्यकता महसूस की जा रही है कि प्रशिक्षण कॉलेजों के पाठ्यक्रम में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जाएँ। सैद्धान्तिक एवं अनुपयोगी ज्ञान को निकालकर व्यावहारिक एवं उपयोगी विषय–वस्तु (जो अध्यापक में योग्यता एवं कुशलता का विकास करे) को प्रयोग में लाया जाना चाहिए। अधिकतर विश्वविद्यालयों ने अपनी बी0एड0, एम0एड0 एवं एम0 फिल0 आदि पाठ्यक्रमों में शैक्षिक तकनीकी का समावेश किया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में राष्ट्र विकास के सन्दर्भ में शिक्षा की कल्पना को साकार करने का प्रयास किया गया है। पहली बार राष्ट्रीय शिक्षा नीति के साथ–साथ एक्शन प्लान भी तैयार किया गया। इस प्लान के मुताबिक कार्य करके राष्ट्रीय शिक्षा नीति के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली ने देश की शिक्षा को एक स्वरूप प्रदान किया। सम्पूर्ण देश में 10+2+3 शिक्षा प्रणाली लागू हो गई। साथ ही उन लोगों के लिए भी शिक्षा की व्यवस्था की गई जो किसी कारण अपनी शिक्षा बीच में ही छोड़कर जीविकोपार्जन में लग गये। ऐसे व्यक्तियों को व्यावसायिक कौशल के विकास के पूर्ण अवसर दिये गये।

इस नीति ने समाज के पिछड़े वर्गों को समाज के अन्य वर्गों के समान लाने हेतु विशेष व्यवस्था की गई। ग्राम क्षेत्रों में नवोदय स्कूलों को इस लिए खोला गया कि ग्राम क्षेत्रों के प्रतिभावान बालकों की उचित शिक्षा हो सके।

सम्पूर्ण देश में पाठ्यक्रम में प्रवाह को समान बल दिया गया है। भाषा, विज्ञान, सामाजिक ज्ञान, मानविकी तथा तकनीकी विषयों को कार्यानुभव के रूप में अपनाकर प्रत्येक बालकों को श्रम के प्रति निष्ठावान बनाने का प्रयास किया गया है।

यों कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति का आधार शिक्षा मनोविज्ञान है। इसके आधार पर ही शिक्षाविदों ने शिक्षा नीति तथा शिक्षा योजना की रचना की और सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बॉधने का प्रयास किया। वैज्ञानिक तथा तकनीकी की प्रगति का शैक्षिक उपयोग शिक्षा की तकनीकी या शिल्प के रूप में उभरा है। शिक्षा मनोविज्ञान पर आधारित राष्ट्रीय शिक्षा नीति कितनी प्रभावशील है, यह तो समय बतायेगा।

नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास हैं। इस प्रयास में हर विषय को एक मजबूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल–केन्द्रित व्यवस्था की दिशा में काफी दूर तक ले जाएंगे।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- प्रतियोगिता साहित्य सीरीज 2012 (जनवरी अंक)
- यादव प्रमोद कुमार एवं श्रीवास्तव रूपाली (2008), 'भारतीय शिक्षा का विकास एवं उसकी समस्याएँ' आगरा–2 संजय पब्लिकेशन, आनन्द कॉम्पलेक्स, किदवई पार्क, राजा मण्डी, प्रथम संस्करण।
- आजाद, जे0 एल0, 'भूमण्डलीकरण का शिक्षा पर प्रभाव' पूर्व सलाहकार शिक्षा प्रभाग योजना, भारत सरकार।
- सक्सेना सरोज, (2008) 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार', आगरा–3 साहित्य प्रकाशन', आपका बाजार हॉस्पीटल रोड, नवीन संस्करण।
- श्रीवास्तव रूपाली, सिंह मृदुला, चतुर्वेदी शारदा, शर्मा आशा, 2009, 'शैक्षिक तकनीकी के नूतन आयाम' संजय पब्लिकेशन आगरा–2, शैक्षिक पुस्तक प्रकाशक आनन्द काम्पलेक्स, किदवई पार्क, राजा मण्डी।
- भटनागर सुरेश, 2010, 'शिक्षा मनोविज्ञान' मेरठ C/o आर0 लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेण्ट कॉलेज।
- NCERT, 'सामाजिक विज्ञान' 'संसाधन एवं विकास' कक्षा 8 के लिए भूगोल की पाठ्य पुस्तक।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

डॉ० अम्बेडकर और उनके शैक्षिक विचार

डॉ० कुसुम
सहा० प्रो० हिन्दी
राजकीय शिक्षा महाविद्यालय, सेक्टर 20डी, चण्डीगढ़

''जिनके पैर न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई''—यह उक्ति बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर जी पर चरित्रार्थ होती है। किसी भी वस्तु का मोल वही समझ सकता है जिसको वह वस्तु अत्याधिक परिश्रम और संघर्ष के पश्चात मिली हो। डॉ० अम्बेडकर के विद्यार्थी जीवन का आंकलन करने के पश्चात शिक्षा के महत्व को अनुभूत किया जा सकता है अगर ज्ञान रूपी प्रकाश की जीवन में आवश्यकता न होती तो डॉ० अम्बेडकर इस शिक्षा जैसी तुच्छ चीज के लिये क्यों समाज से संघर्ष करते, उपेक्षा को सहन करते, लोगों की दुतकार को सुनते, पल.पल ताने. उलाहनें से भरे जीवन को व्यतीत करते क्योंकि वे जानते थे कि एक मात्र शिक्षा ही है जो मुझे इस दल—दल से निकालकर समान अधिकार दिलाने में सहायक होगी और समान स्थान और स्तर के योग्य बनायेगी और मैं अपने जीवन के साथ—साथ अपने जैसे लोगों का भी जीवन सुधारने में समर्थ होऊँगा इसीलिये उन्होंने उस समय लोगों के द्वारा दी जा रही पीर को पुरस्कार समझकर प्राप्त किया और निरन्तर अपने लक्षित लक्ष्य पर चलते हुये सर्वाधिक उपाधियाँ प्राप्त कीं तथा शिक्षा के सारभूत महत्व को शब्दायित किया। संविधान निर्माता होने के साथ—साथ वे कुशल प्रशासक, शिक्षाविद, शिक्षा के प्रचारक और प्रसारक भी थे।

शिक्षा विहीन लोगों का समाज विकास करेगा तो ये बात उसी प्रकार से है जैसे बिना पहियों की गाड़ी में बैठकर व्यक्ति ये सोचे कि वह अपने गन्तव्य पर पहुँच जायेगा। व्यक्ति, परिवार, कुटुम्ब, ब्लॉक, तहसील, जिला, मण्डल, प्रदेश, देश, विदेश सभी के लिये शिक्षा अत्यधिक आवश्यक है। ये प्रत्येक जीवन को सुखद मंत्र प्रदान करने में समर्थ है। इसलिये इसके महत्व को जानना और पहचानना आवश्यक है। इसीलिये डॉ० अम्बेडकर ने मूलमन्त्र दिया ''शिक्षित करो, संगठित करो, संघर्ष करो" उनका मानना था कि यह शिक्षा है जो व्यक्ति को विवेक की दृष्टि देती है, उचित अनुचित का बोध कराती है उसके चारित्रिक गुणों का विकास करती है।

उनके मूलमन्त्र का पहला मन्त्र "शिक्षित करो", "विद्या विहीन गुरू" विद्या शब्द की चीर—फाड़ से भी यही पुष्टि होती है कि उसकी धार इतनी तेज है कि वह अज्ञान के काले राक्षस को काटने में सक्षम है। विद् या त्र विद्या यानी विद् का अर्थ जानना ज्ञान और या का अर्थ है जाना, पहुँचना अर्थात ज्ञान को पाना। विद्ययाऽमृतमश्नुते — कि विद्या, शिक्षा से अमृत पिया जा सकता है। अमरत्व प्राप्त हो जाता है। उनकी ज्ञान की प्यास शिक्षा के समुन्द्रों को सुखाने के लिये समर्थ थी, उनकी प्यास का अनुमान उनके द्वारा स्थापित उन महाविद्यालयों से लगाया जा सकता है। जो आज आकाश दीपों की तरह जगमगा रहे हैं । शिक्षा और शिक्षक के सम्बन्ध को प्रदर्शित करने वाली सूक्ति डॉ० अम्बेडकर पर पूर्णतयः चरितार्थ होती है —

आकारै रिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नैत्र.वक्त विकारैश्च ज्ञायतेऽन्तर्गतं मनरूम

अर्थात आकार संकेतों एवं गति, चेष्टा और भाषण तथा नेत्र एवं मुख भंगिमाओं से मनुष्य का आंतरिक मन पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है।

स्त्री शुद्रो नाऽधीयेताम् इति यह उक्ति सोचने के लिये विवश करती है कि जब शिक्षित पशु—पक्षियों से

मनुष्यों के समान कार्य कराये जा सकते हैं तब मनुष्य को वर्ग भेद के आधार पर शिक्षा से वंचित करना क्या न्याय संगत था, ऐसा क्यों हुआ, इससे किन लोगों को लाभ था् वे कौन लोग थे, जो शिक्षा के प्रकाश से मानव समाज के दो तिहाई भाग को वंचित कर मनुष्येत्तर जीवनयापन व्यतीत करने के लिये वाध्य कर रहे थे। जब प्रकृति सभी को समान रूप से दिव्य वस्तुयें प्रदान करती है तब शिक्षा को देने में भेदभाव क्यों ?

डॉ० अम्बेडकर शिक्षा के महत्व को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही समझ गये थे तभी उन्होंने सर्वहारा समाज के समक्ष तीन सूत्र रखे। शिक्षित करो, संगठित करो और संघर्ष करो। इन सूत्रों को जिस क्रम में रखा गया है वह मात्र संयोग नही है अपितु उनकी विवेक, तर्कशक्ति का बोधक बोध कराता है। अर्थात पहले शिक्षित करो उसके बाद संगठित करो और संगठन की शक्ति को पहचान कर सुखी और श्रेष्ठ जीवन के लिये संघर्ष करो। शिक्षा ही उस विवेक को जन्म देती है जो सत्य के दर्शन कराता है, मंगलकारी होता है तथा सौन्दर्यबोध को जन्म देता है। शिक्षा–भारती के तीन लोक.उन्नायक पुत्र सत्य, शिव, सुन्दर हैं। अतः स्पष्ट है कि शिक्षित करो सूत्र के अभाव में समाज, संरचना, सभ्यता और संस्कृति का प्रादुर्भाव होना ही दिवा स्वप्न है।

आज भी तथाकथित परिगणित वर्गों में दोनों रोशनियों का अभाव है। न ही बिजली का प्रकाश उनके घरों को रोशन करने को तैयार है और न ही शिक्षा का प्रकाश उनके जीवन को आलोकित करने को तैयार है। डॉ० अम्बेडकर शिक्षित करो सूत्र को व्यावहारिक तल पर उतारने के शक्ति पुंज थे। वे स्वयं शिक्षित करो के साकार सजीव तथा सशक्त आदर्श स्तम्भ पुष्प थे। आचरण के धनी और व्यावहारिक चिन्तक थे। वे उपदेशक नहीं अन्वेषक प्रक्षेपक थे मगर उपदेश कुशल बहुतेरों से कोसों दूर थे। यही कारण है कि वे आधारहीन आलोचना की परिधि से बाहर हैं।

मानव मानव को अछूत माने, समझे और कहे, यह शिक्षा की अधकचरी और अभाव की ही कहानी तो है। यदि अछूत कहने वाला सही अर्थों में शिक्षित होता तो वह अपने ही हमशक्ल को अछूत कहता मानता ही नही बल्कि उसे शिक्षित कर अपने जैसा बनाता और मानता। पाखण्ड और धर्म में कितना अन्तर है शिक्षित करो में अपार शक्ति सूत्र छिपा है जिसे प्रत्यक्ष करने से ही मानवीय मूल्यों की स्थापना सम्भव है। यही शिक्षा नीति का मूल है। शिक्षा एक तरह से दूध पदार्थ है जो सभी के लिये हितकारी और स्वास्थ्यवर्धक है।

जब डॉ० अम्बेडकर शिक्षित करो की उद्घोषणा कर रहे थे तब उनका तात्पर्य ऐसी शिक्षा–नीति या प्रणाली से था जो मनुष्य समाज को दुराचारों, कुप्रथाओं, कुविचारों और कुसंस्कारों को पहचानने और समझने के बोध से समर्थ कर सके। नैतिक मूल्यों सरलता, सहजता, सजगता और सेवा, त्याग, शक्ति–शौर्य तथा दया, करुणा, मैत्री और स्वच्छता, स्वस्थता सफाई आदि को आत्मसात् कर मनुष्य को मनुष्यत्व के मार्ग पर अग्रसर कर सके।

स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, शोषण, उत्पीड़न, भय, भ्रम, भटकन, आतंकवाद और उग्रवाद आदि मनुष्य और मनुष्यता को निगलने वाले छोटे–बड़े अजगर हैं जिन्हें शिक्षा के तीर से ही नष्ट किया जा सकता है और सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोया जा सकता है। अतः आवश्यक है कि मनुष्यों को दी जाने वाली शिक्षा में एकरूपता हो और उसके द्वारा समता और बंधुत्वता के अंकुर अंकुरित हों। राष्ट्र भक्ति का संगीत उदित हों और सेवा–त्याग का संकल्प जन्मित हो। क्योंकि शिक्षा आत्मज्ञान और भौतिकज्ञान का आधार है। शिक्षा ही वह आधार है जो जीवन को अपूर्णता से सुरक्षित करके पूर्णता की ओर अग्रसारित करती है। मनुष्य को हर क्षेत्र में अच्छे–बुरे से परिचित कराकर सावधान रखती है और दिशा बोध के साथ युगबोध का आभास कराती रहती है अतः जीवन के प्रारम्भिक क्षणों से ही शिक्षा अपना कार्य करना प्रारम्भ कर देती है और जीवनांत तक सक्रिय रहती है। तभी तो आचार्य विष्णु गुप्त को कहना पड़ा –

अजर–अमरवत् प्राज्ञो विद्मामर्थे च चिंतयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत म

अर्थात विद्या शिक्षा को प्राप्त करने के लिये बुद्धिमान मनुष्य स्वयं को सदा युवक और न मरने वाला समझे। यानी बुढ़ापा आएगा और न कभी मृत्यु होगी, अतः शिक्षा ग्रहण करते रहो।

विद्मा नाम नरस्य रूपमाधिकं, विद्मानाम यषः करीच अर्थकरी।

यानी विद्या से अलंकृत कुरूप व्यक्ति भी स्वरूपवान सुन्दर मनुष्य है। विद्या यश, धन–दौलत प्रदान करने वाली है। ये सर्वहितकारी, मंगलमयी है। यह मनुष्य, समाज, राष्ट्र को उदार चित्त बनाती है।

अछूत कौन और कैसे में यज्ञ स्तम्भ यानी यूप की चर्चा करते हुये पवित्र विद्या का उल्लेख किया है कि विद्या मनुष्य और समाज को सौन्दर्य प्रदान करती है तथा विद्या पवित्र तत्व है जिसके ग्रहण करने से मनुष्य, समाज में पवित्र भावों का उदय होता है। नीतिकार ने कहा है, बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् अर्थात् बुद्धि वाले ही बलशाली होते हैं। बुद्धिहीनों के पास बल कहाँ। मनुष्य को अपनी शक्ति, बल निरर्थक कामों, बातों पर नहीं गवानी चाहिए यह बोध भी शिक्षा द्वारा ही उपलब्ध होता है शिक्षाहीन तो कर्तव्य–अकर्तव्य बोध से भी खाली होता है।

शिक्षा के स्रोत –

1. प्राणी, माता–पिता और परिवारजन
2. समाज
3. गुरूजन या श्रेष्ठजन यद् वद् आचरति श्रेष्ठजनः तत् करोति इतरो जनः।
4. विराट प्रकृति जो हमें स्वयं भी समय–समय पर शिक्षा देती है और उसके भिन्न–भिन्न रूपों से हम शिक्षा लेते हैं ।

डॉ० अम्बेडकर उपर्युक्त सभी स्रोतों से न केवल परिचित थे अपितु उक्त स्रोतों के दोहन अथवा अवगाहन के द्वारा समग्र ज्ञान मंडित होकर श्रेष्ठजन आभावान बनें। विश्व मानव समाज रंग, भेद, राष्ट्र, धर्म, मत के भेद से मुक्त मानव समाज बनना चाहिए। ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जा सके कि मनुष्य–मनुष्य के अपमान, तिरस्कार तथा उत्पीड़न को अनैतिक, अव्यावहारिक तथा अहितकारी समझकर सहज, सरल मनुष्य बन सके। सभ्य समाज का आधार निर्मित कर सके। समरूप, रूपविहीन संस्कृति जन्म ले सके।

डॉ० अम्बेडकर इसी तरह की शिक्षा पद्धति के पक्षधर थे जो सबको सहजता से सुलभ हो और छल, कपट को जन्म न दे। मनुष्य–मनुष्य के मध्य अन्दर घृणा, द्वेष, अलगाव तथा आतंक को समाप्त करे, आपस में मतभेद पैदा न होने दें।

उनका आशय यह था कि हम भारतीयों को ऐसी शिक्षा की जरूरत है जो यह बोध दे कि धर्म जल की तरह स्वच्छ एवं निर्मल, शीतल है जिसका कोई रंग नहीं, जिसमें मनुष्यता को जलाने वाली तपन का अभाव है, जो प्राणी मात्र की प्यास को शान्त करता है। आत्म–तृप्ति देता है। यदि हम निर्मल, शीतल जल में प्रदूषण उत्पन्न करते हैं तो वह अपेय हो जाता है। स्नान के योग्य भी नहीं रहता, पीना तो सम्भव ही नहीं है।

वह कैसा धर्म जो एक वर्ग या मनुष्य की प्यास बुझाने के लिये दूसरे वर्ग या मनुष्य का रक्त पीकर तृप्त होता है मानवीय गुणों को नकारता है, दानवता फैलाता है। समता की पुष्टि और विषमता का उच्छेद ही शिक्षा का शाश्वत लक्ष्य है। इस तरह बोध को जागृत करना ही शिक्षा की परिणति है जो ऐसा करने में समर्थ नहीं, वह शिक्षा–कुशिक्षा है। इससे तो अशिक्षित रहना ही ठीक है। मनुष्य पढ़ा–लिखा जानवर तो नहीं कहलायेगा।

शिक्षा का स्वरूप इससे अच्छा हो सकता है इसमें सन्देह है अन्ततः सन्देहों को नष्ट करना ही शिक्षा का सच्चा स्वरूप है। उसी का जन्म होना चाहिए, ताकि युगानुरूप मनुष्य, समाज बन सके। निष्कलंक, निष्कपट व्यवस्था का निर्माण हो सके।

शिक्षा के महत्व को बताते हुए सन् 1930–31 में लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेस में डॉ० अम्बेडकर ने कहा था। ये लोग हमारी कठिनाईयाँ दूर करने में बाधक हैं और हमें अपनी प्रबल अभिलाषाओं की ही ओर से विमुख एवं उदासीन नहीं किए हैं वरन् हमें शिक्षा से भी वंचित रखते हैं।

डॉ० अम्बेडकर सर्वहारा वर्ग की अशिक्षा से बहुत चिन्तित थे और वे एक ऐसी शिक्षा, पद्धति बनाने के पक्ष में थे जो सिद्धान्ततः सब भारतीयों के लिए उपयोगी तथा समता और एकता के निर्माण में सहायक हो और समान अवसर जुटाने में समर्थ हो।

नीति, नियम तथा संविधान–कानून का निर्माण भी तो सुशिक्षित होने पर ही सम्भव होता है। नैतिकता, मनुष्यता का जन्म तथा विकास भी शिक्षा पर निर्भर करता है। सामाजिकता और आर्थिक विकास एवं व्यापार बुद्धि भी शिक्षा की ही देन होती है। सभ्यता, संस्कृति, शासनतन्त्र का उदय और सुचारूता भी शिक्षा द्वारा ही सम्भावित होती हैं। ये सब बातें शिक्षा की अनिर्वायता को अनिवार्य करार देती हैं, इसलिये डॉ० अम्बेडकर द्वारा शिक्षा पर जोर दिया जाना स्वाभाविक ही था। शिक्षा कर्तव्य और अधिकार तथा आत्म–सम्मानी होने के लिए आवश्यक है।

डॉ० अम्बेडकर ने महिलाओं की एक सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि – ''तुम अपने बच्चों को स्कूल क्यों नही भेजती हो, जहाँ वे शिक्षा ग्रहण करें । एक अन्य सभा में महिलाओं को सम्बोधित करते हुए उनके सतीत्व की बात कही कि तुम अपने शरीर को पूरा क्यों नहीं ढकती हो और अपने सतीत्व की रक्षा करो तभी तुम सम्मानजनक जीवन जी पाओगी, अपने जीवन में बदलाव लाओ।''

अक्टूबर 1951 में केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र देकर जब डॉ० अम्बेडकर आर्य समाज की एक सभा को सम्बोधित करने गए तो उन्होंने कहा कि– ''मुझे पढ़ाने का पेशा अत्यन्त प्रिय है। मुझे विद्यार्थी भी बहुत अच्छे लगते हैं । मुझे उसे वरतना पड़ा है। मैंने उनके लिए बहुत व्याख्यान दिए हैं, लेकिन मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र देने के बाद यह आज पहला अवसर है, जब मैं विद्यार्थियों के सम्मुख बोल रहा हूँ। देश का भविष्य प्रायः विद्यार्थियों पर निर्भर करता है। विद्यार्थी देश का समझदार वर्ग होता है। विद्यार्थी जनमत को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए आप लोगों और प्रतिनिधि सभा को सम्बोधित करके कुछ कहना मेरे लिए आनन्द का विषय है। उपयुक्त शब्द बाबा साहब ने दयानन्द एंग्लोवैदिक कालेज, जालंधर, पंजाब में कालेज के प्रिंसिपल के आमन्त्रण पर वहाँ के छात्रों को कहे थे जो उनके शिक्षा, प्रेम और उसके महत्व को प्रतिपादित करते हैं। बाबा साहब सर्वहारा वर्ग के उद्धार के लिये राजनीति में गए थे। स्वभाव और आचरण तथा ज्ञान से वे महान शिक्षक थे। डॉ० अम्बेडकर पाँच साल तक राजकीय लॉ कालेज बुम्बई में प्राचार्य रहे। उससे पूर्व वे प्रोफेसर भी रहे और कुरीतियों को काटने का काम करते रहे।

स्वदेश पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते।

वे एक मीनार थे लेकिन कुतुब की मीनार की तरह निर्जीव और मात्र मनोरंजक नही अपितु मानवता, समता, एकता, प्रतिभा तथा आचरण की ऊँची मीनार थे।

यदि शिक्षा के प्रकाश को जन–जन तथा हर मन–मस्तिष्क तक जाने से रोकने के घिनौने हथकंडे अपनाए गए तो मनुष्य एवं मनुष्यता की नियति का नाम विनाश होगा। मनुष्य, परिवार और समाज तथा शासनतन्त्र, चाहे वह राजतन्त्र हो या एकतन्त्र अथवा लोकतन्त्र और सभ्यता, संस्कृति सब शिक्षा के खेल हैं । खिलौने हैं । शिक्षा नही तो असामाजिकता, अराजकता और असभ्यता, असंस्कार के अतिरिक्त और का होना सम्भव ही नहीं। फिर रोशनी तो रोशनी है यानी शिक्षा तो शिक्षा है। उजाले का लाभ सबको पहुँचना चाहिए। चोरी, व्यभिचार आदि बीमारियों का निदान शिक्षा है। शिक्षा वह औषधि है जो राष्ट्रीय तथा सामाजिक स्तर की समस्त कुरीतियों का इलाज कर सकती है।

सच तो यह है कि यदि संविधान के निर्माण की तरह शिक्षा–नीति का निर्माण उन पर छोड़ा गया होता तो शिक्षा की वह दुर्गति न होती जो आज हमें नजर आ रही है और भारतीय समाज ऐसी अधोगति का शिकार न बनता, भ्रष्ट न होता और विषमता की पुरानी दीवारों के रहते नई दीवारें न खड़ी होतीं। पंथ, मजहब अथवा तथाकथित धर्म, मानवता और राष्ट्रीयता के सिर सवार होकर स्वार्थ के हथौड़े की चोट मारकर उन्हें लहुलुहान न करता।

हमारी शिक्षा हमें मनुष्य और भारतीय नहीं बना सकी। असल में सोचा यह जाना चाहिए कि छात्रों को पढ़ाया क्या जाना चाहिए जिससे सार्वभौम सत्ता सम्पन्न भारत को महान राष्ट्र होने का गौरव मिल सके। यदि महान त्याग और सेवा तथा ऊँचे आदर्श लक्ष्य की उपलब्धि का भार हमारी शिक्षा नही उठा पा रही अथवा इसमें असमर्थ है तो ऐसी शिक्षा को रद्दी कागज की तरह बेचना ही हितकर होगा। उसी तरह जैसे घर से कूड़ा–करकट को निकाल कर कूड़े के ढेर पर फेंक दिया जाता है।

ऐसी शिक्षा जो मनुष्य को निर्भय बनाए, एकता सिखाए और अपने जन्मजात अधिकारों का बोध कराए तथा अपनी अस्मिता, स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष, युद्ध लड़ना भी सिखाए और मार्ग प्रशस्त करे। वही वास्तविक शिक्षा है।

शिक्षा ही वह केन्द्र–बिन्दु है शरीर में नाभि–केन्द्र की तरह जो विराट समाज के हर वर्ग, इकाई को आर्थिक, सामाजिक तथा बौद्धिक, आध्यात्मिक रूप से सम्पन्न बनाना है, रस पहुँचता है पुष्ट बनाता है। एकता का उदय होता है।

1930 में गोलमेज कांग्रेस में कहा – सिर्फ लिखाई–पढ़ाई का नाम ही शिक्षा नही। आचरण की शिक्षा, व्यवहार की शिक्षा तथा संगठन बनाने और संघर्ष करने की शिक्षा, लक्ष्य, उद्देश्य को पाने की शिक्षा, पाकर उसे सुरक्षित रखने की शिक्षा। अनुभव, अनुभूति तथा अभिव्यक्ति ये सब शिक्षा के ही अंग हैं। जो जीवन को सार्थक, सफल बनाने में मद्दगार सिद्ध होते हैं। कार्य की सफलता के चिह्न होते हैं । प्रगति, विकास के साधन होते हैं। इस बात को डॉ० अम्बेडकर ने बीस–तीस वर्ष की उम्र में ही जान लिया था। परिपक्व समाज उदार होता है और परिपक्वता उसके आचरण, व्यवहार से जानी जाती है तथा आचरण एवं व्यवहार का अच्छा होना विवेक पर निर्भर करता है और विवेक का जन्म शिक्षा, अनुभव एवं अनुमान, प्रत्यक्ष यानी साक्षात्कार से होता है।

शिक्षा क्रान्ति का पर्याय है। भ्रम, कपट, छल के लिए चमकदार, तेज धारवाली छुरी है। रूढ़ियों, अंध ाविश्वासों को नष्ट करने के लिए सशक्त कुल्हाड़ी है। यदि शिक्षा यह सब नही कर सकती तो ऐसी शिक्षा मात्र शव है। उसे दफनाना या जलाना ही उचित कार्य हो सकता है। प्रथम तो शिक्षा जैसी होनी चाहिए वह वैसी नही है फिर शिक्षक और समाज भी अपने दायित्वों का निवर्हन पूर्ण निष्ठा से नहीं कर रहे हैं। शिक्षा प्रमाण–पत्र तक ही सीमित रह गयी है उसके विकासशील गुण समाप्त हो गए हैं। आत्मनिर्भरता, उदात्त भावना, उच्च विचार और विनम्रता आदि गुण मानों बीते समय की कहानी बन गए हैं। शासनतन्त्र चिल्ला–चिल्लाकर 21वी शताब्दी की बात कर रहा हो लेकिन वास्तविकता पर पर्दा नही डाल सकता, जन–मानस को गुमराह कर सकती है।

"संगठित रहो", संगठन बनाओ अपनी बटी हुई शक्ति को ज्वालामुखी में बदलो और फूंक दो उन विषमता की झाड़ियों और जंगलों को जो मानव के प्रगति–विकास पथ पर उगे अड़े खड़े हैं। मनुष्य को अपना हक नही छोड़ना चाहिए, लेकिन अपने साथी का हक भी नही हड़पना चाहिए। यही शिक्षा का उद्देश्य एवं लक्ष्य है। डॉ० अम्बेडकर इस अनर्थ को मिटाने और सही अर्थ को बताने के काम में जीवन पर्यन्त जुटे रहे। यदि हमारी शिक्षा ऐसे व्यक्तियों को जन्म दे सके, निर्मित कर पाये तो न मनुष्य टूट सकता है, न मनुष्यता विखन्डित हो सकती है। तब ही समता–धर्म का उदय सम्भव होगा। तो क्या ऐसे प्रयास किए गए यदि नहीं तो क्यों ? ऐसी वे कौन सी विषम परिस्थितियाँ थीं! जिन्हें हटा पाने में तन्त्र असमर्थ था। शायद एकमात्र स्वार्थ, सत्ता की भूख, सम्पत्ति के ढेर, पहाड़ खड़े करने की अंधी–घिनौनी लिप्सा।

जिस देश में "गुलों से शिकवा, यारों से मुहब्बत" वाली शिक्षा का पढ़ना–पढ़ाना रस्मो रिवाज बन गया हो, चलन हो गया हो, वहाँ चमन के गुलों को नोचने से पैदा हुए गमों के मारों को कौन पूछे ? क्यों पूछे ? उनकी बला से।

ईद मनाकर और गंगा स्नान से पाक–पवित्र हुई शिक्षा क्या हमें राष्ट्र एकता, मनुष्य समता की पावन शिक्षा दे पाएगी ? सच्चाई यह भी है कि मौजूदा शिक्षा न रोचक है, न ही उत्साहवर्धक और न ज्ञान–विज्ञान दृष्टिपरक। वह रेत के कणों की तरह है जिससे जैसे–तैसे तेल निकालने की निरर्थक कोशिश की जा रही है।

यदि आज मनीषी और पूर्ण मानव डॉ० अम्बेडकर हमारे मध्य होते तो वे ऐसी शिक्षा पर लानत की बौछार करते और शासकों, पाखण्ड रचने वाले ठेकेदारों से कहते कि तुम लोग राष्ट्र और जनता को नष्ट करने पर क्यों तुले हो ? कुछ तो शर्म करो। यदि स्वयं सुशिक्षित नही बन पाए तो भारत के लोगों को तो अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध करो, जिसे पाकर वे राष्ट्र एवं युग धर्म को समझते हुए, मनुष्यता को धर्म का समानार्थी समझ सकें।

शिक्षा सब को मिलनी चाहिए,
माता शत्रुः पिता बैरी, येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्ये बको यथाम ।

हमारी सरकारी समझ बिना जड़ की आकाश वेल–शिक्षा का समारम्भ कर रही है, जो मनुष्य के दिमाग में आचरण–व्यवहार में नहीं पेड़ों के ऊपर फैलेगी। आकाश वेल की तरह शिक्षा की वेल अर्थात् आकाश वेली शिक्षा बिना मूल के फलने–फूलने वाली आजकल के शिक्षाशास्त्री खद्मोत सम जहं–तहं करत प्रकाश। बिना जड़ वाली आकाश–वेल को शिक्षा में महान क्रान्ति का पदार्पण कह रहे हैं आदमी ना सही पेड़–पौधे शिक्षा की क्रान्ति से पीलिया जायेंगे।

जब विभिन्न राष्ट्रवाद में बटे मनुष्यों के बीच समरस शिक्षा, भाईचारे की लहर का प्रसारण करेगी अर्थात् सारी बुराइयों की जननी अशिक्षा है तो समस्त अच्छाइयों की जननी भी शिक्षा है, जो बाहर–भीतर और चारो तरफ से उज्ज्वल है, जिसमें तिल के समतुल्य भी काला दाग नही हैं। जो "निःशेषः जाड़यापहा? अर्थात् सम्पूर्ण, समस्त जड़ता, मूर्खता को नष्ट करने वाली शिक्षा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मोहन सिंह, 2006 डॉ० अम्बेडकर व्यक्तित्य के कुछ पहलू, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. सूर्य नारायण त्रिपाठी, 1996, डॉ० भीमराव अम्बेडकर, जीवन–चरित्र पॉप्युलर प्रकाशन, नई दिल्ली
3. डी.आर. जाटव, 2004, डॉ० अम्बेडकर एक प्रखर विद्रोही, एबीडी पब्लिशर्स, जयपुर
4. नानकचंद सत्तू, 2004, डॉ० अम्बेडकर जीवन के अंतिम कुछ वर्ष, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
5. डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर रायटिंग्स एण्ड स्पीचेज, 1982, खण्ड–२, महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित, मुम्बई
6. डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर रायटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड 8, महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित, मुम्बई
7. भारतीय आधुनिक शिक्षा, अक्टूबर, 2005, प्रकाशन प्रभाग, नई दिल्ली
8. बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर के सम्पर्क में पच्चीस वर्ष, सोहन लाल शास्त्री, भारतीय बौद्ध महासभा, नई दिल्ली

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

शिक्षा व समाज में अंतर्संबंध, चुनौतियाँ व सम्भावनाएँ

डॉ0 अंजना जैन
प्राध्यापक–अर्थशास्त्र विभाग
शासकीय म.ल.बा. कन्या. स्नात. महा., इन्दौर (म.प्र.)

तेरहवीं शताब्दी तक भारत विश्व का ज्ञान गुरू कहलाता था। भारत के विश्वविद्यालय दुनिया भर में पठन–पाठन के लिए प्रसिद्ध थे। जिनमें तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला, वल्लभी, सोमपुरा एवं ओदन्तपुरी जैसे विद्यालय विश्व संस्कृति व शिक्षा के संगम स्थल बन गये थे। जो अपने ज्ञान की गरिमा व कुशल प्रबन्ध के लिए जाने जाते थे। लेकिन आज देश के सर्वोत्तम 200 अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में भारत का कोई स्थान नहीं है। इसके लिए हमारी शिक्षा व समाज दोनों उत्तरदायी हैं। क्योंकि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सामाजीकरण की प्रक्रिया पूरा करने में है। समाज के प्रमुख स्तम्भ स्त्री पुरुष एवं बच्चे हैं और इनके अन्तर सम्बन्धी होने पर परिवार बनता है एवं परिवारों का समूह समाज कहलाता है। परिवार शिक्षित होगा तो समाज शिक्षित व प्रगतिशील होगा। किन्तु भारत की वर्तमान शिक्षा पद्धति बच्चों का सामाजीकरण करने के बजाय शिक्षा का व्यापारीकरण कर दिया है। एक प्रगतिशील समाज वही हो सकता है जहाँ शिक्षा उद्देश्य पूर्ण हो, जो देशभक्ति की भावना जागृत करे, जो सच्चरित्र नागरिक बनाए, जो देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर करे। अतः प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान भारतीय शिक्षा का प्रयोजन क्या है? मानव जीवन व समाज के मूल उद्देश्यों से इसका क्या अन्तर सम्बन्ध है ?

एक स्थिर समाज में शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य नई पीढ़ी को सांस्कृतिक व बौद्धिक विरासत हस्तान्तरित करना है। लेकिन एक बदलते समाज में इन सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विरासत को जिसे हम हस्तान्तरित कर रहे हैं क्या उसमें कोई परिवर्तन की आवश्यकता है? क्या बार–बार शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करना उचित है? कभी शिक्षा प्रणाली समाज को प्रभावित करती है तो कभी समाज शिक्षा प्रणाली को प्रभावित करता है।

वर्तमान में प्रायवेट स्कूल पैसा कमाने के उद्योग हो गये हैं एवं सरकारी स्कूल सिर्फ एक रस्म निभा रहे हैं और शिक्षक नौकरी करके आजीविका चला रहे हैं या ट्यूशन की दुकान बनते जा रहे हैं। विद्यार्थियों के लिए शिक्षा का अर्थ भविष्य के लिए रोजगार तलाशने का जरिया है या समय व्यतीत करना है। जबकि एक प्रगतिशील समाज में शिक्षा उद्देश्यात्मक होनी चाहिए।

समाज में शिक्षा का उद्देश्य –

(1) शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सामाजीकरण की प्रक्रिया पूरा करना है – शिक्षा जिम्मेदार नागरिक, चरित्रवान नेता, ईमानदार अधिकारी व कर्मचारी बनाती है। शिक्षा देशभक्त बनाती है एवं वतन पर मर मिटने का जज्बा पैदा करती है।

(2) शिक्षा विरासत को हस्तान्तरित करने वाली हो – शिक्षा ऐसी हो जो कौशल, कला, साहित्य, दर्शन, धर्म, संगीत और विश्वासों को बढ़ाए इसके लिए और गम्भीर प्रयास करना चाहिए।

(3) शिक्षा से समाज में सुधार हो व मनुष्य शिष्ट बने – शिक्षा मनुष्य को शिष्ट बनाने वाली हो, व्यवहारिक,

विश्वासप्रद व वफादारी के गुणों को जागृत करे। घृणा, पूर्वाग्रहों को अवशोषित करे।

(4) शिक्षा सिर्फ आजीविका कमाने का साधन न हो – शिक्षा रोजगारोन्मुखी हो किन्तु केवल आर्थिक मानव या यान्त्रिक मानव उत्पन्न न करे। शिक्षा आजीविका कमाने का साधन है यह सोच बदलना होगी। शिक्षा जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

(5) सामाजिक व्यक्तित्व का गठन करना – शिक्षा का मुख्य लक्ष्य सामाजीकरण की प्रक्रिया पूरा करना है। वर्तमान शिक्षा से बच्चों का सामाजीकरण करने के बजाए व्यवसायीकरण किया जा रहा है।

(6) अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कौशल की शिक्षा आवश्यक है।

(7) शिक्षा सहभागी लोकतंत्र को बढ़ावा देने वाली हो – किसी बड़े और जटिल समाज के सहभागी लोकतंत्र साक्षरता पर निर्भर करता है लोकतंत्र की सफलता ही शिक्षित जनता पर निर्भर है। साक्षरता लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और प्रभावी मतदान में लोगों की पूर्ण भागीदारी की अनुमति देती है। साक्षरता शिक्षा का एक उत्पाद है। शिक्षा प्रणाली का आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक महत्व है। शिक्षा मूल्यों को प्रदान करती है।

(8) शिक्षा एकीकृत शक्ति के रूप में कार्य करे – शिक्षा मूल्य सम्प्रेषण के द्वारा समाज में एकीकृत शक्ति के रूप में कार्य करे। समाज के विभिन्न वर्गों को एकजुट करती है। बच्चों को सामाजिक कौशल, मूल्यों, आवश्यक ज्ञान को प्रदान करने वाली हो।

शिक्षा व समाज के अंतर्सबंध के मार्ग की चुनौतियाँ – बट्रेंड रसल के अनुसार "शिक्षा का कार्य केवल तथ्य संग्रह करना नही है बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मानव समाज अपना अस्तित्व तलाशता है।" भारत में शिक्षा व समाज के अन्तर्सबंध के मार्ग की मुख्य चुनौतियाँ हैं –

- शिक्षा के व्यवसायीकरण को रोकना।
- शिक्षक के सम्मान को पुनर्जीवित करना।
- शैक्षणिक सुधार हेतु आर्थिक संसाधन जुटाना।
- शिक्षण संस्थाओं को नोकरशाहों व राजनेताओं के नियन्त्रण व हस्तक्षेप से मुक्ति दिलाना।
- बच्चों पर से बस्ते के बोझा को कम करना।
- मूल्य आधारित शिक्षा को पुनर्जीवित करना।
- सामाजिक लक्ष्यों और उद्देश्यों को स्थापित करना।
- संस्थागत सामाजिक बदलाव लाना–शिक्षण सामग्री, शिक्षण संस्थाओं में शिक्षण की विधि में बदलाव लाना।
- शिक्षक की शिक्षा और विद्यार्थी शिक्षकों के सम्बन्धों में सम्मान लाना।
- शोध व ज्ञान आधारित शिक्षा का विस्तार करना।
- समाज से वर्गभेद, जातिभेद को समाप्त करना।
- विद्यार्थियों की शिक्षण संस्थाओं में उपस्थिति।
- भारत में शिक्षा के आधुनिकीकरण की चुनौती।
- शिक्षण की भाषा समस्या।
- भारत की भिन्नता के साथ एकता स्थापित करना।
- देश प्रेम की भावना को जागृत करना।

भारत में शिक्षा स्तर को ऊंचा उठाने एवं समाज से अंतर्संबंध प्रगाढ़ करने के सुझाव – भारत में शिक्षा को समाजोपयोगी बनाना है तो शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आवश्यक है–

- शिक्षा तंत्र को आवश्यक स्वायतता देना – प्राचीन समय में गुरूकुल राजनैतिक प्रशासनिक हस्तक्षेप से मुक्त होते थे। आजादी के 20 वर्षों बाद भी विद्यालयों और विश्वविद्यालयों को काफी स्वायतता थी किन्तु वर्तमान में शिक्षण संस्थाओं एवं शिक्षक पूरी तरह राजनैतिक व प्रशासनिक सत्ता के अधीन हैं जो शिक्षा के लिए घातक है।
- गुरू शिष्य परम्परा को पुनर्जीवित करना–शिक्षा की सार्थकता गुरू शिष्य सम्बन्धों पर निर्भर है। लेकिन वर्तमान में यह व्यवस्था ध्वस्त हो चुकी है। राजनैतिक व प्रशासनिक हस्तक्षेप ने इस गौरवशाली सम्बन्धों को समाप्त कर दिया है। जिसने शिक्षा के कार्य को बदलकर मूल्यों को समाप्त कर दिया है। आज शिक्षक मात्र ट्यूटर व व्यवसायी हो गया है। सिनेमा व विज्ञापनों में शिक्षक मजाक की विषय वस्तु बन गये हैं। अतः शिक्षकों को सम्मान स्थापित करना आवश्यक है।
- अच्छी शिक्षा अच्छा वेतनमान हो – आज शिक्षा देने वाले शिक्षकों को अपना वेतन बढ़ाने के लिए बार–बार आन्दोलन करना पड़ रहा है। वेतनमान में भी भेदभाव किया जा रहा है। इससे शिक्षा का स्तर नीचे गिरता जा रहा है। आज लोग शिक्षक बनने में शर्म महसूस करते हैं। आज जनभागीदारी नियुक्ति, अतिथि शिक्षक, दैनिक वेतनभोगी शिक्षक, प्रायवेट शिक्षक, के वर्ग भेद कर दिये हैं। सर्वशिक्षा अभियान के तहत् स्कूलों के भवन तो बन गये हैं लेकिन पूर्णकालिक शिक्षकों का अभाव है। अतः इस व्यवस्था को समाप्त कर अच्छी शिक्षा के लिए अच्छा वेतन देना आवश्यक है।
- समाज में शिक्षण संस्थाओं के लिए सहयोग व दान लेना – भारत में शिक्षा के निम्न स्तर का कारण धन की कमी है, इसलिए शिक्षा के उन्नयन हेतु आर्थिक संसाधन जुटाने हेतु उद्यमियों, उद्योगपतियों, व्यापारियों व व्यापक रूप से समाज को इससे जोड़ा जाना चाहिए। जनभागीदारी के माध्यम के बिना निजीकरण किये शासकीय शिक्षण संस्थाओं को नवजीवन मिल सकता है।
- शिक्षकों को वेतन देना फिजूलखर्ची है, इस गलत मानसिकता से उभरने की जरूरत है। सर्वप्रथम पूर्णकालिक शिक्षकों की नियुक्ति आवश्यक है।
- शिक्षा को प्रशासनिक अधिकारियों व राजनेताओं के दबाव से मुक्त करना आवश्यक है –पहले जाने माने शिक्षक ही स्कूली शिक्षा, मण्डल, निकायों के संचालक होते थे पर अब अपने आपको सर्वज्ञ समझने वाले प्रशासकीय अधिकारियों ने इस पर कब्जा जमा लिया है। इसके परिणाम आए दिन शिक्षा जगत में नये–नये अल्प जीवी प्रयोग होने लगे हैं। अतः इस दोषपूर्ण व्यवस्था को बदल कर एक पारदर्शी नीति अपनाना चाहिए तथा शिक्षाविदों, अनुभवी व्यक्तियों को संचालक व अन्य पदों पर नियुक्ति देना चाहिए।
- शिक्षा का तकनीकिकरण होगा–वैश्वीकरण के इस दौर में शिक्षा को और अधिक उपयोगी बनाने हेतु इसका तकनीकीकरण करना आवश्यक है। अंतरिक्ष, अन्वेषण, व संचार, मास मीडिया के साथ जोड़ना होगा।
- सामाजिक लक्ष्यों, उद्देश्यों और मूल्यों में बदलाव लाया जावे।
- विद्यालयों में छात्र अनुपस्थिति रोकने के लिए फसल की कटाई, बुवाई के समय छुट्टियां दी जाएं ताकि अनुपस्थिति रोकी जा सके।
- सम्पूर्ण भारत में पाठ्यक्रम में एकरूपता लाई जाए।
- शिक्षकों को निरन्तर प्रशिक्षित किया जाए।
- शिक्षण का एक आम संचार (भाषा) माध्यम करना।

- गाँवों में पर्याप्त स्कूल व भवन बनवाए जाएं।
- देश की विविधता पूर्ण समाज के साथ समन्वय किया जाए।
- शिक्षा में जातिवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद को समाप्त कर राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने वाली शिक्षा दी जाए।
- शिक्षा का व्यवसायीकरण रोक जाए इस हेतु कानून बनाया जाए।
- शोध आधारित शिक्षा को बढ़ावा देना ताकि सामाजिक बदलाव व विकास को गति मिल सके।
- शिक्षा का आधुनिकीकरण किया जाए। इस हेतु संस्थागत बदलाव किया जाए, शिक्षण संस्थाओं में शिक्षण विवि व संसाधनों में बदलाव किया जाए।

निष्कर्ष–भारतीय शिक्षा प्रणाली इतनी सारी खामियों से ग्रस्त है लेकिन इसके बावजूद भारत में शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के प्रभावी उपकरण में से एक है। शिक्षा ने समाज को विकास और परिवर्तन करने के लिए लामबन्दी करके प्रेरित किया है। इस प्रकार आधुनिक जटिल राष्ट्रीय समाज में शिक्षा न तो सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए एक नियन्त्रित शक्ति के रूप में देखा जा सकता है और न ही सामाजिक परिवर्तन के ऐजेन्ट के रूप में देखा जा सकता है। इसे एक सहकारी बल के रूप में देखा जा सकता है और इन शिक्षण योजनाओं में समाज की भागीदारी आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में नेतृत्व की आवश्यकता है जो समाज की मूलभूत खामियों को पहचान कर नई सोच व प्रणालियों के साथ देश में ज्ञान का प्रकाश फैला सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा शरद– "भारत में शिक्षा और समाज"– countercurrents.org लेख, जननीति 27 जुलाई 2009, पृ. 02
2. गुप्ता जे.पी.–शिक्षा स्वायत्तता, सम्मान और समाज –जनसत्ता, 2 दिसम्बर 2010, पृ. 01
3. कुमार अम्बुज–पूंजीवादी समाज में परिवार का स्वरूप–हिन्दी समय" वर्ष, 2013, पृ. 01

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

मानवाधिकार और महिला : एक भारतीय सन्दर्भ

डॉ. ऊषा दहिया
असिस्टेंट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान विभाग
सी. आर. ए. कालेज, सोनीपत, हरियाणा–131001

मानवाधिकार एक व्यापक संकल्पना है जिसमें दुनिया के तमाम बंधनों को दरकिनार रखकर ईश्वर की सर्वोत्तम रचना 'मानव' को मात्र मानव माना गया है। मानव के रूप में जन्म लेते ही वह मानवाधिकारों का हकदार हो जाता है। संक्षेप में वे अधिकार जो मानव को भय और भूख से मुक्ति दिलाने के लिए आवश्यक हैं मानवाधिकार कहे जा सकते हैं। मानवाधिकारों के नारे में व्यवस्थित रूप से पहल अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास 25 सितम्बर 1926 में दासता के विरुद्ध हुए विश्व सम्मेलन के रूप में सामने आया। मानवाधिकारों की सुव्यवस्थित घोषणा 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने की। मानवाधिकारों के व्यवहारिक विघटन की दासता हर कहीं चीखती पुकारती नजर आ जाती है। लिंग–भेद, नस्ल–भेद और जाति–भेद से उपजी उत्पीड़न की कहानियाँ आज भी जीवंत हैं। नारी मानवता का आधारभूत अंग है। इसलिए यदि वह सबल होगी तो आधी दुनिया अवश्य ही परिवर्तित होगी। किसी भी विकसित समाज के निर्माण में स्त्री एवं पुरुष दोनों की सहभागिता आवश्यक है। परन्तु यह एक विडम्बना है कि समाज में उन्हें बराबर का दर्जा अभी भी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार द्वारा महिलाओं की स्थिति बेहतर बनाने के लिए अनेक योजनाएँ बनाई गईं। वर्तमान समय में महिलाएं अपने गुण एवं शिक्षा के दम पर बड़ी संख्या में राजनीतिज्ञ, डॉक्टर, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, प्रशासनिक अधिकारी, वकील और इंजीनियर जैसे पदों पर आसीन हैं लेकिन साथ ही यह भी सच है कि सामाजिक स्तर, राजनैतिक जागरुकता, प्रतिभागिता एवं आर्थिक स्वावलम्बन के क्षेत्र में जिस अनुपात में उन्हें अपनी उपस्थिति दर्ज करानी चाहिए थी उतनी वर्तमान समय में संभव नहीं हो पाई।

जस्टिस रंगनाथन के शब्दों में ''इंसान का इंसान के साथ सम व्यवहार मानवधिकार है।'' ऐतिहासिक अवलोकन किया जाए तो न्याय, समानता एवं अधिकारों के लिए प्रथम महिला अधिकार सम्मेलन वर्ष 1948 में अमेरिका में संपन्न हुआ। यद्यपि इससे पूर्व सती प्रथा का समापन (1829 भारत), विधवाओं का पुनर्विवाह (1956 भारत) जैसे प्रयास किए जा चुके थे। वर्ष 1840 में ब्रिटेन एवं अमेरिका में मताधिकार हेतु महिलाओं के आन्दोलन की परिणति नेशनल वुमेन सफरेज एसोसिएशन (1869 अमेरिका) के रूप में हुई। जिसका विश्वव्यापी प्रभाव रहा कि महिलाओं को प्रथम बार मताधिकार का अधिकार (न्यूजीलैंड 1893, अमेरिका 1920, ब्रिटेन 1928) प्राप्त हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के साथ महिलाओं के क्रांतिकारी प्रयास भी प्रारम्भ हुए। यह संयुक्त राष्ट्र संघ ही था जिसने सर्वप्रथम महिलाओं की दयनीय स्थिति में सुधार के लिए एक आयोग (कमीशन ऑन द स्टेटस ऑफ वूमेन 1946) की स्थापना की।

स्वतंत्र भारत में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए महिलाओं को भी पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किए गए हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि उन्हें अपने अधिकारों की सही जानकारी नहीं है। महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण हेतु सरकारी प्रयास सराहनीय रहे हैं। 1975 को महिला वर्ष घोषित कर समाज कल्याण मंत्रालय भारत सरकार द्वारा एक स्त्री विकास ब्यूरों की स्थापना की गई। इसके अतिरिक्त महिला समृद्धि योजना आदि कार्यों के अथक प्रयास से महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने का प्रयास किया है।

राजनीतिक एवं आर्थिक स्वावलंबन से युक्त 21वीं सदी की नारी ने अपना विभिन्न क्षेत्रों में परचम

लहराया। संयुक्त राष्ट्र संघ में भी महिलाएँ अनेक पदों पर कार्यरत हैं। देश–विदेश में महिलाओं ने 21वीं सदी में अपना परचम बड़ी तेजी से लहराया है। राजनीतिक परिदृश्य में भारत की चर्चा करना समीचीन होगा, चाहे राजनीति में 33 प्रतिशत आरक्षण की बात हो या पंचायतों में आरक्षण का प्रावधान। आज लाखों महिलाएं पंचायत या नगर निगम में सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं लेकिन महिलाओं की राजनीतिक यात्रा एक चुनौती भरा कदम है और कदम–कदम पर उन्हें पुरुष–प्रधान समाज के गतिरोध का सामना करना पड़ा है। महिलाओं को संविधान द्वारा कानूनी संरक्षण प्रदान किया गया है। जैसे दहेज प्रथा अधिनियम–1955, अनैतिक व्यापार पर रोक लगाने का अधिनियम–1956, हिंदू विवाह अधिनियम–1956 आदि।

लोकतंत्र में महिलाओं के मानवाधिकारों की वर्तमान दयनीय दशा एवं स्थिति :– भारत आर्थिक एवं तकनीकी रूप से दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की कर रहा है लेकिन यहाँ अभी भी महिलाओं के खिलाफ भेदभाव बरता जा रहा है। मनुस्मृति में लिखा है 'ना स्त्री स्वतन्त्रयम् मर्हती'। इसका अर्थ है कि महिला स्वतंत्रता के योग्य नहीं है। यह वाक्य महिलाओं के प्रति भारतीय समाज की मानसिकता को सामने लाता है। आज भी देश में हर स्तर पर महिलाओं को भेदभाव और अन्याय सहन करना पड़ता है। कुछ एक राज्यों को छोड़कर देश भर में घटना लिंग अनुपात महिलाओं के प्रति जन्म–स्तर पर ही शुरु हो जाने वाले हमारे भेदभाव को दर्शाता है। लिंगानुपात महिलाओं के खिलाफ रहा है जो निम्न तालिका से स्पष्ट है :–

क्रम सं.	वर्ष	पुरुष	महिला
1.	1901	1000	972
2.	1911	1000	964
3.	1921	1000	955
4.	1931	1000	950
5.	1941	1000	946
6.	1961	1000	941
7.	1971	1000	930
8.	1981	1000	934
9.	1991	1000	927
10.	2001	1000	933
11.	2011	1000	940

21वीं सदी की वैज्ञानिक प्रगति ने महिला उत्पीड़न के स्वरूप को भी प्रभावित किया है। अब महिलाओं का उत्पीड़न इतना सक्षम हो गया है कि वह कन्या भ्रूण हत्या के माध्यम से महिलाओं को इस सृष्टि में प्रवेश से ही वंचित करने लगी है।

पूर्व राष्ट्रपति के0आर0 नारायणन् ने महिलाओं की आलोच्च स्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि ''महिलाओं के लिए कोई जगह नहीं, यहाँ तक कि माँ की कोख भी सुरक्षित नहीं। जन्म से पहले ही उन्हें मार दिया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय जनसंख्या अध्ययन संस्थान मुम्बई के एक सम्मेलन में फ्रेड अर्नाल्ड और टी0के0 राय ने अपने शोध पत्र में परिवार के अंतिम बच्चों के लिंग अनुपात की गणना की है उनका निष्कर्ष था कि मेघालय को छोड़कर शेष समस्त राज्यों के परिवारों में अंतिम बच्चों में लड़कियों का अनुपात अन्य बच्चों में लड़कियों के अनुपात से कम है।

महिलाएं बलात्कार, यौन शोषण तथा छेड़छाड़ के दुष्चक्र में फंसी हैं। भारत में हर घण्टे औसतन एक

औरत बलात्कार का शिकार होती है। भारत के क्राइम इन इंडिया की रिपोर्ट से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि हमारे देश में बलात्कार के मामले प्रतिवर्ष बढ़ते जा रहे हैं जो निम्न तालिका से स्पष्ट है :–

भारत में दर्ज बलात्कार के प्रकरण

वर्ष	प्रकरण	वर्ष	प्रकरण
1995	13754	2003	17500
1996	14846	2004	18239
1997	15330	2005	18359
1998	15033	2006	19348
1999	15496	2007	20737
2000	16496	2008	21467
2001	15264	2009	21397
2002	16827	2010	22172

आजकल बालिकाओं के साथ बलात्कार की घटनाओं में भी वृद्धि हुई है। ''राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो भारत सरकार की 'क्राइम इन इंडिया' 1993 से 2000 के अनुसार 16 वर्ष तक की बालिकाओं के साथ बलात्कार की घटनाएं बढ़ी हैं। बाल वेश्यावृति एक गंभीर समस्या है। भारत में वेश्यावृति में लिप्त बालिकाओं की समस्या अनेक वर्षों से समाज की नजरों में है। अवैध देह व्यापार में नाबालिग को जबरन वेश्यावृति में धकेलना तथा भारतीय अधिकारों के हनन पर अनेक क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर विचार विमर्श, सेमीनार, घोषणाएँ व वायदे किये गये हैं लेकिन फिर भी भारत में वेश्यावृति, शारीरिक व यौन शोषण आदि भयानक रूप लेता जा रहा है। ''एक आश्चर्यजनक रिपोर्ट के अनुसार केवल उत्तर प्रदेश राज्य में प्रतिवर्ष कोई छह लाख लड़कियाँ जानबूझ कर गायब कर दी जाती हैं। मध्य प्रदेश में भी छोटी उम्र की कन्याओं के गायब कर देने का अपराध धड़ल्ले से हो रहा है।'' भारत में महिलाओं के प्रति की जाने वाली हिंसा का स्वरूप भी बहुत व्यापक है। इसका बड़ा हिस्सा घरेलू हिंसा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। हाल में कराये गये ''नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे–3'' की रिपोर्ट के अनुसार 37.2 फीसदी महिलाएँ घरेलू हिंसा का शिकार हैं। पढ़ी–लिखी महिलाओं में घरेलू हिंसा के शिकार होने की संख्या 16 फीसदी है। ग्रामीण इलाकों में घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं की संख्या 40 फीसदी जबकि शहरी इलाकों में 30.4 फीसदी है।''

दहेज प्रथा अभी भी देश में महिलाओं के प्रति भेदभाव का सबसे प्रमुख भयावह हथियार है। 1961 में पारित ''दहेज निषेध कानून'' के बावजूद यह प्रथा न केवल प्रचलन में है बल्कि इसने अपना एक उच्च संस्थागत स्वरूप हासिल कर लिया है।

समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए कानून व न्याय की व्यवस्था की गई है लेकिन पुरुषों के विरुद्ध महिलाओं को न्याय मिलना बहुत ही कठिन है। पुरुष प्रधान व्यवस्था का लाभ न्यायायिक ढांचे में पुरुषों को ही मिलता है। ''शशि मौर्य–न्याय की तलाश में जूझती महिलायें'' जनवरी 2003 में भारत के एक जिले के दस वर्ष के दौरान महिलाओं पर की गई हिंसा से सम्बन्धित न्यायालय में आये मामलों की स्थिति का अध्ययन किया जिसके निष्कर्ष निम्न तालिका द्वारा दर्शाये गये हैं:–

अपराध	धारा	कुल प्रकरण	बरी हुए	सजा	विचारधीन
बलात्कार	376, 134, 376 (क)	435	299	65	71
दहेज मृत्यु	304(ख)	88	46	20	22
ससुराल में प्रताड़ना	498(क)	119	70	16	33
आत्महत्या	306	196	122	20	54
हत्या या अपहरण	363, 366	140	100	11	29
कुल		978	637	132	209

''महिलाओं के लिए न्याय प्राप्ति उसी प्रकार महत्वपूर्ण होता है जैसे रेत में तड़फती हुई किसी मछली को वापिस सरोवर में डाल दिया जाए।'' अर्थात् भुक्तभोगी महिला को समय पर न्याय प्राप्त न होना उसके साथ पूर्व में हुए अन्याय के समान ही एक कृत्य है। भारत में महिलाओं की स्थिति कुछ इस प्रकार की है कि अन्याय, हिंसा, अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न के बाद न्याय प्राप्ति की आस में अदालत की शरण में जाने वाली महिलाओं को भी न्याय नहीं मिल पा रहा है। महिलाओं के मानव अधिकारों का उल्लंघन पूरे समाज के मानव अधिकारों का उल्लंघन स्वीकार किया जाना चाहिए। एक प्रसिद्ध कथनानुसार ''यदि 100 शिक्षित माँ हों जायें तो एक विकसित राष्ट्र की संरचना की जा सकती है।'' निःसंदेह पुरुषों की तुलना में महिलाओं की सुशिक्षा, सुसंस्कार रचनात्मक/व्यक्तित्व व प्रगति का सकारात्मक प्रभाव परिवार और परिवार के माध्यम से शेष समाज पर अधिक पड़ता है। उसी प्रकार व्यक्तित्व और कुंठा का भी प्रभाव पुरुषों की तुलना में परिवार व समाज पर अधिक पड़ता है।

नारी के मानवाधिकार एवं उनका हनन किस प्रकार किया जाता है इन समस्त विचारों का वर्णन करने के बाद महिला मानवाधिकारों का निवारण का एक अथक प्रयास इस अध्ययन में प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम महिलाओं को अधिकारों के प्रति सजग होना चाहिए। महिला जागरुकता को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा के प्रसार को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। बालिकाओं की शिक्षा पूर्णतः शुल्क मुक्त होनी चाहिए साथ ही साथ सम्बन्धित संस्था द्वारा आवश्यक पढ़न–पाठन सामग्री भी प्रदान की जानी चाहिए।

1. ऐसी संस्था को समुचित प्रोत्साहन दिया जाए तो स्त्री शिक्षा के प्रचार प्रसार हेतु वास्तविक रूप में कार्यरत हो।
2. दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि महिला का आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना अति आवश्यक है। किसी महिला के सम्मानित जीवन की प्रत्याभूति का एक सशक्त आधार होता है उसकी आर्थिक निर्भरता।
3. महिला के नाम पर प्रत्येक क्षेत्र में सुविधाओं, रियायतों एवं छूट का इतना प्रबन्ध होना चाहिए कि प्रत्येक परिवार मन से यह चाहने लगे कि उसके परिवार में अधिकतम महिला हो।
4. महिलाओं के लिए राजनीति में आरक्षण की भी आवश्यकता है। राजनीति की दशा एवं दिशा में सुधार करती है। महिलायें राजनीति के माध्यम से स्वयं अपने लिए गतिशील एवं समयानुकूल नीतियाँ बनाने में सक्षम होंगी।
5. एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि अगर महिलायें जागरुक हो जाएं और और आर्थिक रूप से सक्षम हो जाएँ तो उनका शोषण, अत्याचार व उत्पीड़न रूक सकता है।
6. एक भ्रूण हत्या जैसे निकृष्ट अपराध से मुक्ति मात्र विधि द्वारा सम्भव नहीं है बल्कि इसके लिए मनुष्यों की मानसिकता में बदलाव व महिलाओं की जागरुकता द्वारा निदान सम्भव है।

अंत में हम कह सकते हैं कि स्वतंत्रता व समानता मानवाधिकारों का प्राथमिक आग्रह है। यदि किसी समाज में महिलाओं की स्वतंत्रता व समानता का अभाव अर्थात् भेदभाव की भावना विद्यमान है तो उस समाज में महिलाओं के मानवाधिकार की बात करना व्यर्थ है क्योंकि स्वतंत्रता एवं समानता वे दो प्रमुख हिमखण्ड हैं जहाँ

से मानव अधिकारों की विभिन्न नदियां निकलकर मनुष्य जीवन को प्रगति व विकास के जल में अभिसिंचित करती हैं।'' भारतीय समाज में महिलायें जिस प्रकार उपेक्षा, शोषण, यंत्रणा, अन्याय, हिंसा, बलात्कार, उत्पीड़न का आखेट होती रही हैं और हो रही हैं इन समस्याओं से जब तक मुक्ति नहीं मिलेगी तब तक मानवाधिकारों की वास्तविक अर्थों में स्थापना व विकास की बात करना हास्यप्रद होगा।

भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका के समस्त पक्षों एवं उनको प्रदान संवैधानिक अधिकारों का अवलोकन करने के पश्चात निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि महिलाओं का समाज निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान है। देश का समग्र विकास महिलाओं की भागीदारी के बिना संभव नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि उनके मानवाधिकारों के संरक्षण के पुख्ता प्रबन्ध किये जाएं एवं उपलब्ध कानूनों के व्यवहारिक रूप में लागू करवाने के भरसक प्रयत्न किए जाएँ। भारत जैसे विकासशील देश में महिलाओं के मानवाधिकार का मुद्दा एक ऐसा मुद्दा है जिसके लिए दीर्घकालीन नीति और सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों ही स्तरों पर सहयोग की जरुरत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, इक्कीसवीं सदी का महिला सशक्तिकरणः मिथक एवं यथार्थ, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010
2. एम.ए. अंसारी, महिला एवं मानवाधिकार।
3. आशीष बोस, कन्या भ्रूण हत्या कानून क्यों नाकाम है? दैनिक जागरण 10 अप्रैल 2002, झांसी।
4. कैलाश नाथ गुप्त, मानवाधिकार और उसकी रक्षा, 2004, पृ. सं. 39
5. वही, पृ0 सं0 42
6. पुनीत कुमार, मानव अधिकार एवं लोकतंत्र, 2008, पृ0 सं0 96
7. वही, पृ0 सं0 106
8. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, इक्कीसवीं सदी का महिला सशक्तिकरणः मिथक एवं यथार्थ, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ0 सं0 98–99

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वर्तमान संदर्भ में मानवाधिकार और नारी सशक्तिकरण : एक मूल्यांकन

डॉ0 अलका रानी पुरवार
रीडर एवं विभागाध्यक्ष (अंग्रेजी)
डी0वी0 कॉलेज, उरई

मानवता को तार–तार करती दरिंदगीपूर्ण हाल में घटित तमाम घटनाओं के मद्देनजर यह विषय बहुत ही प्रासंगिक हो गया है। नारी सशक्तिकरण की अवधारणा वास्तव में नारियों को समानता के अवसर उपलब्ध कराना है जिसमें कि जन्म का अधिकार, शिक्षा का अधिकार एवं अपनी जिन्दगी से सम्बन्धित निर्णय लेने का अधिकार आदि शामिल है पर आज के परिप्रेक्ष्य में स्त्री का एक मानव रूप में मान्यता दिए जाने का अधिकार सर्वोपरि हो गया है। प्रस्तुत शोध पत्र नारी सशक्तिकरण के लिए मानवाधिकारों की पुरजोर वकालत करता है।

वास्तव में स्त्री अधिकारों को मानवाधिकार से अलग करके नहीं देखा जा सकता। स्त्री रूप में उसे कोई विशेषाधिकार की दरकार भी नहीं है पर कम से कम एक मानव होने के नाते उसे उसके मूलभूत अधिकारों से वंचित न किया जाए। खेद का विषय है कि आज विकृत मानसिकता युक्त कुछ पुरुष भाग्य विधाता बन उससे जीने का, साँस लेने का अधिकार भी छीन रहे हैं कभी कन्या भ्रूण हत्या के रूप में और कभी बलात्कार कर उसे शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक रूप से पंगु बनाकर। शिक्षित, सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज में इस तरह की घटनाएं आज इतनी आम हो गई हैं कि समाचार पत्रों में ऐसी कोई खबर अब हमें विचलित नहीं कर जाती, जब तक अमानवीयता की पराकाष्ठा न हो जाए। यह बहुत ही निंदनीय है, चिन्तनीय है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सार्वभौम मानव अधिकार घोषणा–पत्र के अनुसार– ''स्त्रियों को भी वे सब अधिकार मिले हुए हैं, जो पुरुषों के पास हैं। लेकिन जब अधिकारों के हनन की बात आती है तो स्त्रियों को ही इसका शिकार बनना पड़ता है।'' संयुक्त राष्ट्र संघ के 1993 (विएना) और 1995 (पेइचिंग) में हुए सम्मेलनों में इस पर गम्भीर चिंतन के बाद प्रस्ताव पारित किया गया कि चूँकि महिलाएँ भी मानवाधिकारों के घोषणा–पत्र की परिधि में अनिवार्य रूप से आती हैं। अतः इनके अधिकारों को सुनिश्चित किया जाए। लेकिन इससे भी स्त्रियों की दशा में कोई खास सुधार नहीं हुआ बल्कि आज स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। प्रमुख साहित्यकार आशारानी व्होरा ने अपनी पुस्तक की भूमिका में स्त्रियों से सम्बन्धित कुछ संजीदे प्रश्न उठाए हैं – ''देश की आजादी के लिए साझी लड़ाई के बाद, भारतीय स्त्रियों को प्राप्त समान संवैधानिक अधिकारों के बावजूद, इधर स्त्री–शोषण क्यों बढ़ा है? स्त्री अधिकार और स्त्री अस्मिता को लेकर स्त्रियों को अपनी लड़ाई अलग क्यों लड़नी पड़ रही है? राजनीति में बराबर के पचास प्रतिशत अधिकार के बाद तैंतीस प्रतिशत आरक्षण की माँग क्यों उठ रही है? राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महिला मंचों की आवाज नीचे आम स्त्री तक क्यों नहीं पहुँच रही है? अधिकार–चेतना पूर्वापेक्षा अधिक जागृत होने पर भी स्त्रियों को बराबर के अवसर व लाभ क्यों नहीं मिल रहे हैं?''[1] वर्तमान संदर्भ में हमें इन प्रश्नों के जबाब गम्भीरता से व पूर्ण मनोयोग से ढूँढने होंगे वरना स्त्री सशक्तिकरण बस एक परिकल्पना बनके ही रह जाएगी।

मेरा मत है कि स्त्रियों को देवी मानने की परम्परा ने स्त्रियों का सर्वाधिक नुकसान किया है। आखिर

उसे देवी बनाने की कवायद क्यों? क्यों पूजने की चाह ? जबकि वस्तु स्थिति यह है कि इस पितृ सत्तात्मक समाज में उसे अपना मातहत बनाकर रखने की मानसिकता ही चारों ओर नजर आती है। दिखावा मस्तक पर बैठाने का और चाह पैरों तले रखने की, आखिर क्यों? क्यों नहीं उसे मात्र एक मानव मात्र बने रहने दिया जाए? और वे सब अधिकार उपलब्ध कराए जाएं जो एक इंसान होने के नाते उसे दिये जाने चाहिए? यूँ तो विश्व के लगभग सभी देशों में महिलाओं को विशेष अधिकार देने की वकालत की जाती है ताकि वे सम्मानपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकें लेकिन सिर्फ सैद्धान्तिक रूप में ही। व्यवहारिक रूप में आज भी नारी को एक मानव न मानकर सिर्फ एक 'वस्तु' या 'भोग्या' ही माना जाता है और उसे आज भी पुरुषों के आश्रित ही रहना पड़ता है। उसके प्रति मानसिक व शारीरिक हिंसा जन्म से मृत्यु तक बराबर होती रहती है। यूँ तो भारतीय संस्कृति में महिलाओं को विशेष दर्जा प्राप्त है, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में उन्हें दयनीय हालात से गुजरना पड़ रहा है। वे जीवन भर उपेक्षाएँ और तरह–तरह की वर्जनाओं की शिकार हैं। वास्तविकता यह है कि वे पुरुषों से अधिक काम करती हैं पर उनके श्रम को न तो महत्त्व दिया जाता है, न ही उसका मूल्यांकन किया जाता है। उसे 'विशिष्ट' न माना जाए, न ही 'विशेष अधिकार' दिए जाएं पर कम से कम वे मूलभूत मानवाधिकार तो उपलब्ध कराए जाएं जो मानव होने के नाते उसका हक बनते हैं।

आज महिला आन्दोलन (Feminism) के दौर में जहां एक ओर महिलाओं को अधिकाधिक अधिकार दिए जाने की कवायद चल रही है वहीं दूसरी ओर दुनिया में सबसे ज्यादा अपराध व अत्याचार आधी आबादी के खिलाफ ही हो रहे हैं। यह बहुत ही चिन्तनीय विषय है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष, महिला सशक्तीकरण वर्ष, महिला दशक, अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च), अंतर्राष्ट्रीय परिवार दिवस (15 मई), अंतर्राष्ट्रीय महिला–हिंसा उन्मूलन दिवस (25 नवम्बर) आदि निश्चित दिवस मनाये जाने की परम्परा ही इस बात की सूचक है कि महिलाओं को मिलने वाले अधिकारों में कहीं न कहीं, किसी न किसी स्तर पर अवरोध विद्यमान है परन्तु ये सब दिवस सरकारी आयोजन, भाषण, समारोह एवं सेमिनार आयोजित करने तक ही सीमित रह जाते हैं और महिलाओं की स्थिति जस की तस रह जाती है।

एक ओर महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण में पुरुष का अहंभाव प्रभावित होता दिखता है, दूसरी ओर अधिकारों की अधिक मांग तथा स्वतंत्रता ने स्वच्छन्दता का रूप ले लिया है। सच तो यह है कि मानवाधिकार और स्वतंत्रता इन दोनों के सहअस्तित्व में ही समस्त मानवता का विकास छिपा है। स्त्री हो या पुरुष सामाजिक सीमाओं की परिधि में रहकर शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्वतंत्रता का सकारात्मक उपयोग ही समाज के लिए हित कर है। एक लोकगीत के अनुसार – ''स्त्री धनी व्यापारी से नहीं, सुनार से नहीं, लुहार से विवाह करना चाहती है, जो उसकी बेड़िया गला दे।'' उसे विचारों को कार्य रूप में परिवर्तित करने की आजादी दे।

स्त्री सौन्दर्य का प्रतिमान है, पृथ्वी की सुंदरतम सृष्टि है वह। साथ ही तमाम सारे मानवीय गुणों एवं शक्ति से युक्त है वह। रमणिका गुप्ता का कहना है– ''दरअसल स्त्री पैदा नहीं होती पैदा होने के बाद वह स्त्री बनाई जाती है। पैदा तो वह मनुष्य के रूप में ही होती है जो लिंग की भिन्नता रखता है। लेकिन इस लिंग की भिन्नता के साथ जो मातहती और मिलकियत की मानसिकता थोपी जाती है वह स्त्री और पुरुष बनाती है।''[2]

कई सर्वे यह सिद्ध कर चुके हैं कि कुदरती तौर पर महिलाएँ ज्यादा योग्य व समर्थ हैं। उनके पास मानवीय संवेदनाएँ, सहानुभूति, व्यक्ति को समझने की क्षमताएँ पुरुषों के मुकाबले अधिक होती है शायद इसी वजह से वे विभिन्न समस्याओं को आसानी से समझ व सुलझा सकती हैं। प्रसिद्ध लेखक व पत्रकार राजकिशोर स्त्रीत्व का उत्सव मानने की बात करते हैं और उसे पुरुषों के मुकाबले बेहतर मनुष्य मानते हैं

– ''.....स्त्रीत्व का उत्सव इस तथ्य में निहित है कि अमनुष्य बनाये जाने की तमाम कोशिशों के बावजूद ज्यादातर स्त्रियाँ ज्यादातर पुरुषों से ज्यादा मनुष्य होती हैं। इतने दमन और इतने शोषण के बावजूद वह निर्मल हँसी कहाँ से आती है जो क्षण भर के लिए पुरुष के सारे अंधकार को मिटा देती है और स्त्री के अपने नरक को सहनीय बनाती रहती है? अपनी इस हँसी को बचाकर स्त्री ने साबित किया है कि उसकी नाभि का अमृत न तो सूख सकता है और न ही किसी इंजेक्शन से उसे बाहर खींचा जा सकता है। स्त्री की यह अपराजेयता, दरअसल, मनुष्य की ही अपराजेयता है, जिसे स्त्री संजोकर रख पाती है और पुरुष ने उसे लगभग बरबाद कर दिया है।''[3] मनुष्यता की प्रतीक वही स्त्री आज अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष कर रही है उन मूलभूत अधिकारों के लिए भटक रही है जिन पर मनुष्य होने के नाते उसका जन्मसिद्ध अधिकार है? शिक्षा का अधिकार अपने जीवन से सम्बन्धित निर्णय लेने के अधिकार, आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार के साथ–साथ वर्तमान समय में उसे जन्म लेने के अधिकार के लिए भी संघर्ष करना पड़ रहा है।

विभिन्न गोष्ठियों, चर्चाओं, परिचर्चाओं से भरपूर सम्पूर्ण विश्व में चर्चित 'जयपुर साहित्य सम्मेलन' में एक परिचर्चा सत्र का नाम 'स्त्री होकर प्रश्न करती हो?'– न केवल वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों की दशा, उसके अन्तर्मन की पीड़ा बयाँ करता है बल्कि पितृसत्तात्मक समाज की दम्भपूर्ण मानसिकता पर भी करारी चोट करता है। निश्चित रूप से सम्मेलन के आयोजकों ने इस माध्यम से स्त्री के मानवाधिकारों के हनन का प्रश्न बखूबी उठाया है, जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

वास्तव में आज जरूरत स्त्री को मनुष्य समझने की है उन्हें मानसिक रूप से सम्मान देने की है, स्वस्थ मानसिकता के साथ उन्हें समाज की संपूर्ण प्रक्रिया में शामिल करने की है जैसा कि किरन बेदी जी का कहना हैः ''महिलाओं का सम्मान कोई अलग चीज नहीं है। यह सामाजिक मूल्यों और आदर्शों का अभिन्न अंग है। यह हमारी विरासत है, जिसे दिन–प्रतिदिन के व्यवहार में उतारना है।''[4]

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का जहाँ तक सवाल है तो साहित्य में भी स्त्री पुरुष का भेद गाहे–बगाहे सामने आता रहता है। जब स्त्रियाँ आत्मकथा लिखती हैं तो उसे ''गुनाहों का एहसास'' माना जाता है और पुरुषों की कलम से लिखी ऐसी किसी किताब पर कोई टिप्पणी नहीं होती, गोया गुनाह सिर्फ स्त्रियाँ ही करती हैं। जबकि सत्यता यह है कि आत्मकथा में उपन्यास से ज्यादा बेबाकी, हिम्मत और हौसले की दरकार होती है। अमृता प्रीतम ने बहुत ही संजीदगी से इस मुद्दे को यूँ उठाया – ''मेरी और कमलादास (भारतीय अंग्रेजी लेखिका) की किताब को लेकर किसी ने यह भी लिखा – टू नॉटी बुक्स ऑफ दी ईयर।'' वे आगे कहती हैं, ''तनकीद की जा सकती है, मुख्तलिफ राय रखी जा सकती है, लेकिन महज़ 'नॉटी बुक्स' कहकर उनके मसायल को नजरन्दाज कर देना – इसलिए है कि ये किताबें औरतों की कलम से हैं।''[5]

वर्तमान समय में 'पुरुष' शब्द शक्ति, योग्यता एवं सफलता का पर्याय बन गया है और 'स्त्री' शब्द दया, दुर्बलता एवं शोषण का प्रतीक बन गया है। इसी मानसिकता की वजह से हम पुरुष बनने की होड़ में लगे हैं, अपनी बेटियों को बेटा बनाना चाहते हैं। हमें इस घटिया मानसिकता से उबरना होगा और एक परिपक्व सोच के साथ स्वयं पर विश्वास करना सीखना होगा, तभी हम अपने अधिकारों को पाने का संघर्ष कर पायेंगे और तभी सही मायने में सशक्तिकरण होगा। अमृता प्रीतम कहती भी हैं, ''ख्यालों की नजाकत बहुत बड़ी चीज है, लेकिन तब जब उस नजाकत में ताकत भी शामिल हो।''[6]

धीमी गति से ही सही पर समय बदल रहा है। स्त्री जीने की राह निकाल रही है, नये सन्दर्भ तलाश रही है। किसी आन्दोलन, विद्रोह या क्रान्ति से नही वरन् अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर। अधिकारों

के प्रति यह लड़ाई निश्चित रूप से पुरुष वर्ग के सहयोग के बिना संभव नहीं जो उसके प्रति होने वाले हर अमानवीय व्यवहार के विरोध में उसका साथ देंगें, उसकी हौसला अफजाई करेंगे, इसलिए नहीं कि वह एक स्त्री है बल्कि इसलिए क्योंकि वह भी एक मानव है। वह समय दूर नहीं जब उसे भी खुले आकाश की सीमाएँ नापने का व खुले आकाश पर अधिकार का अवसर मिलेगा। आइए बात करें, मानव और मानवीयता की, इंसान और इंसानियत की न कि स्त्री और पुरुष की। जिएँ और जीने दें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आशा रानी व्होरा, स्त्री सरोकार, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, 2006, पृष्ठ 13
2. रमणिका गुप्ता, स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल, शिल्पायन, दिल्ली के बहाने, पृष्ठ 56
3. राजकिशोर, स्त्रीत्व का उत्सव, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृष्ठ 10
4. किरण बेदी, स्त्री शक्ति जैसा मैंने देखा, फ्यूजन बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 26

5–6. अमृता प्रीतम, अक्षरों की अज़मत, हिन्द पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 142–143

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

दरिंदगी के पंजे में महिलाएँ

डा0 आराधना
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

दरिंदा और दरिंदगी। दरिंदगी बनाम महिलाएँ। महिलाओं के साथ दरिंदगी। आखिर हो क्या रहा है देश में ना 2 माह की बच्ची सुरक्षित है ना 65 साल की वृद्धा। फिर 12 साल, 24 साल, 40 और 45 साल की लड़कियों/युवतियों/महिलाओं की तो बात ही क्या ? दिल्ली में गैंगरेप पीड़ित युवती की चिता की आग अभी ठंडी भी नहीं हुयी थी कि भारत के हर कोने से महिलाओं के साथ होने वाली शर्मनाक घटनाओं को टी.वी. न्यूज चैनल पर सुनकर मन आक्रोश से भर गया। सवेरे अखबार उठाओ तो हर पेज पर ऐसी कुछ खबरें अवश्य होंगी जो दिल दहलाने के लिए काफी हैं। छोटी अबोध बालिका को किसी अजनबी तो क्या पड़ोसी या जानकार पुरुष की गोद में देने से भी डर लगने लगा है। आखिर कहाँ चली गयी मानवता, कहाँ खो गया अपनापन। क्यों कंकरीट के जंगल में बसने लगे दरिंदे ? क्यों बढ़ रही है, दरिंदगी ? कैसे बचेंगी महिलाएँ, लड़कियाँ, अबोध बच्चियाँ ?

आज टी.वी. पर न्यूज–24 में कुछ खबरें देखीं, जो शर्मनाक होने के साथ–साथ भयावह भी थीं। बिहार में छेड़खानी से बचने के लिए गर्भवती महिला चलती ट्रेन से कूदी।[1] अरे ! वाह रे मानवता, क्या ट्रेन के उस डिब्बे में एक भी मर्द (किसी का पति, भाई, पिता या कोई अन्य) मौजूद नही था। जो उस वक्त गर्भवती महिला को उस दरिंदे से बचाता जो उसके गर्भवती होने के बाद भी उससे छेड़खानी पर उतारू था।

श्री नगर में महिला के चेहरे पर तेजाब फेंका।[2] क्योंकि दरिंदे उससे रेप करना चाहते थे। पर अपने मकसद में नाकाम होने पर उन्होंने उस महिला के चेहरे पर तेजाब डाल दिया और महिला झुलसकर रह गयी। एक स्कूल में शिक्षिका थी यह महिला, लम्बे ईलाज के बाद यदि यह ठीक भी हो जाती है तो क्या सामान्य जिंदगी जी पाएगी।

जयपुर के सवाई मानसिंह अस्पताल में पिता का ईलाज कराने आयी लड़की से रात में वार्ड ब्वाय द्वारा छेड़खानी।[3] घर में कोई दूसरा शख्स न होने के कारण पिता के इलाज और देखभाल हेतु अस्पताल में रूकने वाली लड़की को इस बात का अंदाजा भी नहीं था कि रात में वहीं का वार्ड ब्वाय बुरी नियत से उस पर टूट पड़ेगा। वो तो समय रहते ही लड़की की आवाज सुन कर लोगों ने उस वार्ड ब्वाय को पकड़ कर पुलिस के सुपुर्द कर दिया। अन्यथा ?

बम्बई के ''बोनोबो बार में ''बलात्कारी ड्रिंक'' नाम से बेची जाने[4] वाली ड्रिंक का पता लगने पर महिला संगठनों ने वहां प्रदर्शन किया। उनका कहना था कि बलात्कारी शब्द जो कि अपने आप में वीभत्स और घृणित है तथा जिससे महिलाओं के सम्मान को ठेस लगती है। उस नाम से ड्रिंक परोसा जाना निंदनीय है। परन्तु दुर्भाग्य, कि पिछले एक साल से उस बार में बलात्कारी ड्रिंक बेची जा रही थी। और लोग मजे–ले–लेकर उसे पी भी रहे थे। पीने वालों ने यह भी विचार करना उचित नहीं समझा कि आखिर उस नाम को ही हटा दिया जाए। इसका क्या अर्थ निकाला जाए। विचारणीय है कि बलात्कार पुरुष की मर्दानगी का सुबूत है, उसकी दरिंदगी का या उसकी कुंठाओं का।

संभल में एक जीजा ने अपनी साली को अपने दोस्त की मदद से अगवा कर उसके साथ दुष्कर्म किया। लेकिन दोषी इतने पर भी रूके नहीं, वरन् उन्होंने युवती के चेहरे पर तेजाब डालकर उसे जलाने का भी प्रयास किया[5] (वाह रे जीजा) एक पत्नी से मन नहीं भरा, जो साली के साथ ऐसा किया। मन नहीं पसीजा ऐसा करते।

सारे देश में दिल्ली की 'दामिनी' पर दरिंदगी करने वाले आरोपियों को फांसी की सजा की मांग हो रही है। पर दरिंदों को तो किसी का खौफ ही नहीं है। सरूरपुर में किशोरी से गैंगरेप किया।[6] गांव के ही 3 लोगों ने। 13 वर्षीय मंदबुद्धि किशोरी के साथ रेप करने वाले क्या किसी के पति, भाई या पिता नहीं थे। क्या उनकी स्वयं की बहन, बेटी, पत्नी ना सही, मां का भी ख्याल नहीं आया उन्हें।

सीकर में एक 11 वर्षीय बच्ची का बलात्कार हुआ। उस बच्ची का जयपुर में 12 बार आपरेशन हो चुका है। उसके दोषी 6 दरिदों में से 4 जमानत पर बाहर हैं। जबकि बाकी 2 की शिनाख्त होनी है।[7] छोटी बच्ची खेलने कूदने की उम्र में 12 आपरेशन झेल चुकी है। एक सॉफ्टवेयर इंजीनियर ने अपनी पत्नी के टुकड़े–टुकड़े करके उन्हें अलग–अलग बैग में रखकर जंगल में फेंक दिया।[8] कारण उसे किसी और लड़की से प्रेम हो गया था। उस प्रेम को निभाने के लिए वह सात फेरे भूल कर कसाई बन गया।

मुंडाली के गांव नंगला कबूलपुर में संगीता की हत्या उसी के ससुरालियों ने दहेज के लालच में कर दी जबकि उसकी डेढ़ साल की बच्ची भी है। उसके परिजनों का इंतजार किए बिना ही उसके शव का दाह–संस्कार भी इसलिए कर दिया कि उनके विरूद्ध कोई सबूत ही न बचे।[9] धन क्या पौत्री और बहू से बढ़कर था। बहू कुछ समय बाद नौकरी करके पति का, परिवार का सहयोग करती तो परिवार का स्तर ओर रूतबा दोनों बढ़ते । लेकिन नहीं, धन मतलब बहू। यदि बहू मायके से धन लाने में असमर्थ मतलब उसकी हत्या।

मेरठ, लिसाडी गेट क्षेत्र की जाकिर कालोनी में एक किशोरी से उसके 3 पड़ौसियों ने सामूहिक दुष्कर्म किया तथा उसकी विडियो क्लीपिंग बनाई। डेढ़ साल तक वह उसे, ब्लैकमेल करते रहे। फिर उसकी क्लीपिंग कालोनी के अन्य युवकों को बांटने के साथ ही, उसे इंटरनेट पर भी डाल दिया।[10] वजीरगंज (गोंडा) में एक महिला के साथ 3 युवकों ने गेहूँ के खेत में सामूहिक दुराचार किया तथा उसे धमकी देकर वहां से भाग गए।[11] आज की नौजवान पीढ़ी के लिए सिर्फ अपना मनोरंजन जरूरी है, चाहे वह किसी की जिंदगी और इज्जत से खिलवाड़ ही क्यो न हो।

दिल्ली में अक्षरधाम मंदिर के पास कार सवार लोगों ने 35 वर्षीय महिला को अगवा कर उससे गैंगरेप किया। बाद में वह महिला को भैरो मंदिर के पास फैंक कर फरार हो गए। घटना से पहले युवती अक्षरध ाम मैट्रो स्टेशन के पास खड़ी थी। कि एक कार वहाँ आकर रूकी और उसे कार के अंदर खींच लिया।[12] क्या स्वतंत्र भारत में महिलाएँ कुछ देर के लिए अकेली खड़ी भी नहीं हो सकतीं। गंगोह (सहारनपुर) गाँव कुंडाबसी की 14 वर्षीय किशोरी को गाँव का एक युवक भगा ले गया था। करीब दो महीने तक उसने और उसके साथियों ने लड़की से गैंग रेप किया। मामला खुलने के डर से उसकी हत्या कर शव मंगलौर में दबा दिया।[13]

आगरा (दयाल बाग एजूकेशनल इंस्टीट्यूट DEI) में बायो टैक्नोलॉजी में शोध कर रही छात्रा नेहा शर्मा की नैनो बायोटैक्नोलॉजी लैब में बर्बरतापूर्वक हत्या कर दी गयी। साथी छात्र–छात्राओं ने घटना की जानकारी मिलने पर काली पट्टी बांधकर जुलूस निकाला। जुलूस की वजह से हाईवे पर जाम लग गया। जिसे हटाने के

लिए पुलिस ने लाठी चार्ज किया तो छात्रों ने भी जवाबी कार्यवाही करते हुए वाहनों पर पथराव किया। सवाल यह है कि शोध छात्रा की हत्या आखिर हुयी कैसे ? इसके लिए जवाबदेही इंस्टीट्यूट प्रशासन की बनती है या नहीं।[14]

इटावा/औरैया में मालदा निवासी (पश्चिमी बंगाल) एक महिला को शादी का झांसा देकर एक युवक ने पहले उससे दुष्कर्म किया और बाद में उसे जिंदा जलाकर मार डालने की कोशिश की। गंभीर हालत में महिला को अस्पताल में भर्ती कराया गया। जबकि आरोपी फरार हो गया।[15]

शिवरामपुर (चित्रकूट) पथरौड़ी मोड़ के पास एक आल्टो दुर्घटनाग्रस्त हो गयी थी। उसमें बैठी युवती घायल हो गयी थी। तब भी उसकी हालत पर तरस ना कर ड्राइवर और उसके साथी ने घायल युवती से रेप कर उसकी हत्या कर दी।[16] वाह रे ! पुरुष, हवस तो मानवता से भी बड़ी हो गयी। महेश्वरी कलां में 1 वर्षीय बच्ची घर से बाहर कूड़ा डालने गयी। पड़ोस के ही एक युवक ने उसे दबोच कर उसके साथ दुष्कर्म का प्रयास किया। अफजलगढ़ (बिजनौर) में रात नौ बजे एक पड़ोसी युवक ने ही घर में घुसकर अकेली लड़की का मुंह बंद कर उससे दुष्कर्म का प्रयास किया।[17]

ना केवल भारत वरन् विश्व के हर देश, हर शहर में ऐसी घटनायें लगातार बढ़ रही हैं। जहां पुरुष की दरिंदगी का शिकार बच्चियाँ/महिलाएँ लगातार हो रही हैं।

दुबई में 4 वर्षीय भारतीय बच्ची के साथ उसकी, स्कूल बस के ड्राइवर और कंडक्टर समेत 3 लोगों ने दुष्कर्म किया। यह घटना उस वक्त अंजाम दी गई जिस समय स्कूल में बाल दिवस मनाया जा रहा था। घटना के बाद से बच्ची सहम गयी ना वह ठीक से कुछ बता पाई, ना सो पाई। और तो और अब तो वह बच्ची ताउम्र स्कूल जाने से भी डरेगी।[18] पाकिस्तान में एक 17 वर्षीय लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार करके उसे गांव में निर्वस्त्र घुमाया गया। यह दुष्कर्म इसलिए किया गया क्योंकि वह लड़की मकान मालिक की इच्छापूर्ति नहीं कर रही थी।[19]

आखिर दुष्कर्म पीड़ित युवती ही बदनाम क्यों होती है ? दुष्कर्म करने वाला पुरुष अपनी मूंछों पर ताव देता घूमता रहता है और पीड़ित युवती/महिला ताउम्र शर्म, अपमान, अवहेलना, गंदी दृष्टि आदि झेलती है। क्यों नहीं बदलती उस महिला के प्रति समाज की दृष्टि। यदि आधुनिक कहा जाने वाला भारतीय समाज विधवा विवाह को स्वीकार कर सकता है, तलाक शुदा, लड़की की दूसरी शादी हो सकती है, तो एक ऐसी पीड़िता जिसका कोई दोष ही नहीं, समाज उसे स्वीकारने के लिए तैयार क्यों नहीं होता? उससे विवाह करने में आखिर समस्या क्या है ? वह स्वयं तो गयी नहीं थी बलात्कृता होने के लिए। पुरुष की मर्दानंगी का दंड भुगतती महिला को पुरुष ही स्वीकारने को तैयार नहीं होता। वाह रे ! पुरुष दरिंदगी भी करो और मूछों पर ताव भी दो।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. न्यूज 24, समय 6 बजे सायं दिनांक 03.01.2013, गुरूवार, बिहार (आरा) में छेड़खानी से बचने के लिए ट्रेन से कूदी गर्भवती महिला।
2. News 24 time 12.45, 03.01.2013 खबर का शीर्षक शहर, शहर शैतान। रेप नहीं कर सके तो श्री नगर में महिला के चेहरे पर फेंका तेजाब।
3. वही, पिता का इलाज कराने आयी लड़की से Ward boy द्वारा छेड़खानी।
4. वही, बोनोबो बार, बलात्कारी ड्रिंक।

5. अमर उजाला, 4 जनवरी 2013, शुक्रवार मेरठ।
6. वही
7. वही, 5 जनवरी 2013 शनिवार, मेरठ
8. वही 15 दिसम्बर 2010, शव के टुकड़ों को मसूरी में फेंकता था राजेश
9. दैनिक जागरण 10 जनवरी 2011
10. किशोरी से सामूहिक दुष्कर्म, किलपिंग बॉटी, अमर उजाला, 7 मार्च 2013
11. गोंडा में महिला से गैंगरेप, अमर उजाला, 11 मार्च 2013, सोमवार, मेरठ।
12. दिल्ली में चलती कार में गैंगरेप, अमर उजाला, 11 मार्च 2013, वही।
13. गैंगरेप के बाद किशोरी की हत्या, लाश दबाई, 3 महीने पहले घर से ले गए थे दरिदें, अमर उजाला, 7 मार्च, 2013, मेरठ
14. छात्रा की हत्या पर आगरा में बवाल, अमर उजाला, 17 मार्च, 2013, रविवार, मेरठ।
15. दुष्कर्म के बाद महिला को जिंदा जलाने की कोशिश, अमर उजाला, 17 मार्च 2013, वही।
16. घायल युवती की रेप के बाद हत्या, अमर उजाला, 19 मार्च 2013, मंगलवार, मेरठ।
17. लड़कियां कहीं भी सुरक्षित नहीं, हिन्दुस्तान 11 मार्च, 2013, सोमवार, मेरठ
18. दैनिक जागरण, 19 जनवरी 2011, चार वर्षीय भारतीय बच्ची से दुष्कर्म
19. वही, बलात्कार के बाद लड़की को निर्वस्त्र घुमाया।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

महिला–उत्पीड़न एवं हिंसा

(कानून व्यवस्था के विशेष संदर्भ में)

डॉ0 (श्रीमती) राजेश जैन
प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान
ज्ञानचंद श्रीवास्तव शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दमोह (म.प्र.)
एवं
विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी, उच्च शिक्षा क्षेत्रीय अतिरिक्त संचालनालय, सागर संभाग, सागर (म.प्र.)

महिलाओं की सुदृढ़ एवं सम्मान जनक स्थिति एक उन्नत विकसित समृद्ध देश एवं मजबूत समाज का द्योतक है। समाज एक परिवर्तनशील व्यवस्था है और आज प्रत्येक क्षेत्र में सतत् बदलाव हो रहा है। लड़के और लड़कियों में कोई भेदभाव नहीं किया जा रहा है। आज शिक्षण संस्थाओं में लड़कियों की संख्या पहले के मुकाबले बहुत तेजी से बढ़ रही है और उनसे अपेक्षा की जा रही है कि वे समाज और देश के निर्माण में अपना भूरपूर योगदान प्रदान करें। लेकिन आज भी महिलाओं के प्रति हिंसा और अपराध की भावना का अन्त नहीं हुआ है अपितु पिछले कुछ वर्षों में और अधिक तेजी आई है। नगरीकरण और प्रवासिता की प्रक्रिया से उपजा अभाव और आक्रोश भी कुछ हद तक अपराध की मानसिकता पैदा करता है। अतः घर से लेकर बाहर तक कहीं भी महिला अपने आपको सुरक्षित महसूस नही करती है। चाहे दिल्ली में हुई गैंगरेप की घटना हो या मध्य प्रदेश में पाँच वर्षीय बालिका के साथ बलात्कार की घटना हो या घरेलू हिंसा हो, ये ऐसी घटनायें हैं जो मानव आत्मा को झकझोर कर रख देती है। जिन पर भारतीय सामाजिक–राजनीतिक चिंतकों, नीति निर्माताओं एवं कानून निर्माताओं को गम्भीरता से सोचना होगा। ऐसी घटनाओं को लेकर यदि जन–आक्रोश और जन आन्दोलन हो तो कोई आश्चर्य जनक बात नहीं है।

शोध की परिकल्पना – इसमें शोधार्थी की मूल पकिल्पना यह है कि पुरुष प्रधान भारतीय समाज में महिलाओं के साथ हिंसा और अपराध की घटनाओं को नियमित किया जाये तथा समाज में नैतिकता, मानवीय मूल्यों और मानवीय संवेदना को जाग्रत कर कानून व्यवस्था सुदृढ़ की जाये।

शोध विधियाँ – महिलाओं के प्रति हिंसा रोकने के लिये शोधार्थी द्वारा प्राथमिक एवं द्वितीय समंक संकलन स्रोत का प्रयोग किया गया है। समाज के कुछ वर्गों द्वारा प्रश्नावली भरवाकर निष्कर्ष ज्ञात किये गये। इन्टरनेट, समाचार पत्र–पत्रिकायें साहित्य, टेलीविजन आदि के द्वारा आँकड़ों एकत्रित कर उनका वर्गीकरण सारणीयन एवं विश्लेषण कर महत्वपूर्ण निष्कर्ष एवं सुझाव प्रस्तुत किये गये।

दिल्ली में हुई गैंगरेप के विरुद्ध जारी जन–आन्दोलन के दौरान लड़के–लड़कियों के बीच वेमिसाल आपसी समझ, समाज और सुरक्षा हक के लिये किसी भी हद तक जाने की जिजीविषा देखी गई है। इस आन्दोलन ने लड़के–लड़कियों को लेकर सदियों पुरानी गुलाम मानसिकता को एक झटके में तोड़ दिया है। देश के आम आदमी के परिवर्तित व्यवहार और आचरण में विधायिका और कार्यपालिका के माथे पर गहरी चिंता की लकीरें उभर आई हैं। बलात्कार की घटनायें देश में नई बात नहीं है लेकिन फिर ऐसा क्या हुआ कि दिल्ली एवं मध्य प्रदेश में रेपकांड को लेकर एकाएक वर्षों से सुस्त पड़े आम आदमी की अन्तरात्मा जाग गई। उन अमानवीय रैपकांड घटना की दोनों लड़कियों ने खुद गहरी नींद सोकर भी देश की सुस्त पड़ी चेतना और आम आदमी की

संवेदना, भावना और सामाजिक सरोकारों को जगाने का महान कार्य किया है जो स्वतंत्र लोकतंत्र का एक लक्षण है। यह सकारात्मक और सुखद भविष्य का संकेत है।

भारत में महिलाओं के प्रति हिंसा एवं बलात्कार एक राष्ट्रीय समस्या बन गई है। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के मुताबिक पूरे देश में दर्ज हुए बलात्कार के मामलों में तेजी से इजाफा हुआ है। जैसे 2009 में 5.9 प्रतिशत 2010 में 7.1 प्रतिशत 2011 में 9 प्रतिशत की 2012 में लगभग 11 प्रतिशत की बृद्धि हुई है। कुल दर्ज मामलों में से 94.2 मामलों में दुष्कर्म करने वाला उस महिला का अपना रिश्तेदार या पड़ोसी होता है अर्थात् 5.2 प्रतिशत मामलों में ही महिला किसी अपरिचित की कुदृष्टि का शिकार हुई वरना उसकी इज्जत को लूटने वालों में उसके अपने ही थे।

एन.सी.आर.बी. (N.C.R.B.) के आँकड़े बताते हैं कि दुष्कर्म के कुछ मामलों में से 11 प्रतिशत मामलों में पीड़िता की उम्र 14 वर्ष से कम थी। स्टॉकिंग यानी फोन पर परेशान करने, अश्लील मैसेज एवं अभद्र बातें करने वाले और धमकाने के लगभग 91 प्रतिशत मामलों में लड़के दोषी पाये गये।

महिला हिंसा एवं महिलाओं के विरुद्ध अपराध क्यों होते हैं। इसके लिये अनेक कारण उत्तरदायी हैं जैसे सामाजिक, आर्थिक, अशिक्षा, बढ़ती जनसंख्या, असमानता आदि प्रमुख हैं। आज भी महिलाओं के विरूद्ध की जाने वाली हिंसा के अनेक तरीकों में मनोवैज्ञानिक उत्पीड़न, अश्लील, साहित्य, पत्नी को पीटना, दहेज उत्पीड़न, कन्या भ्रूण हत्या और बलात्कार आदि ऐसे घिनौने कृत्य हैं जिन्हें सुनकर मानव आत्मा चीख उठती है। अतः भारत में लगभग प्रत्येक 20 मिनिट में एक बलात्कार की घटना होती है। इस प्रकार एक दिन में 72, एक माह में 2160 बलात्कार होते हैं। उनमें से कितने मामले पुलिस में दर्ज होते हैं, कितने अपराधी गिरफ्तार होते हैं तथा कितने दोषी सिद्ध होते हैं उसे निम्नलिखित तालिका में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है–

बलात्कार के मामले

क्र.	वर्ष	दर्ज मामले	गिरफ्तार आरोपी	दोषी सिद्ध
1.	2007	450	580	39
2.	2008	466	604	52
3.	2009	469	675	82
4.	2010	507	685	37
5.	2011	572	745	18
6.	2012	695	776	19

अतः उपर्युक्त आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि देश में महिला उत्पीड़न एवं हिंसा पर दर्ज मामले में प्रत्येक वर्ष उत्तरोत्तर वृद्धि हुई तथा दोष सिद्ध का अनुपात बहुत कम है जिससे अनेक सवाल उठ खड़े हुए हैं। देश में महिला की अस्मिता और सुरक्षा पर बढ़ते हमलों से देश का हर सोचने समझने वाला व्यक्ति शर्मसार है और ''महिला भी इंसान'' है का नारा देश के हर कोने में गूंज रहा है। आखिर आधुनिक युग में औरत को क्यों केवल भोग की वस्तु के रूप में देखा जा रहा है? क्यों महिलाओं के बढ़ते कदमों को समाज बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है? क्या मई 2013 में न्यूयार्क में महिलाओं की स्थिति पर बने आयोग का 57वां सम्मेलन महिलाओं और लड़कियों पर हर प्रकार की हिंसा का खात्मा करने में सफल होगा? अतः दिल्ली गैंगरेप एवं म.प्र. में पाँच वर्षीय बच्ची के साथ हुए बलात्कार जैसे घिनौने कृत्य ने भारत में बनाये गये बलात्कार कानून पर प्रश्नचिह्न लगा दिया।

अपराधिक कानूनों में संशोधन हेतु न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा समिति की रिपोर्ट–23 जनवरी 2013

दिल्ली गैंगरेप जैसी घटनाओं को रोकने तथा दोषियों को त्वरित ढंग से सजा दिलाये जाने के लिए

अपराधिक कानूनों – भारतीय दण्ड संहिता (IPC) अपराधिक प्रक्रिया संहिता (CRPC), भारतीय साक्ष्य अधि ानियम, सैन्य बलों अधिनियम (AFSPA) में संशोधन हेतु सुझाव देने के लिए सर्वोच्य न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाध ीश न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा की अध्यक्षता में एक तीन सदस्यीय समिति गठित की गई। अन्य सदस्यों में उच्च न्यायालय की सेवानिवृत्त न्यायाधीश न्यायमूर्ति लीला सेठ तथा भारत के पूर्व सॉलिसिटर जनरल गोपाल सुब्रमण्यम थे। वर्मा समिति ने मात्र एक माह के भीतर अपनी रिपोर्ट 23 जनवरी 2013 को भारत सरकार को सौंप दी। इस समिति ने बलात्कार, यौन उत्पीड़न, पीड़ितों का चिकित्सकीय परीक्षण पुलिस निर्वाचन तथा शैक्षणिक सुधारों आदि पर व्यापक सुझाव प्रस्तुत किये जो निम्नलिखित हैं–

- आपराधिक मामले में अदालत के संज्ञान लेते ही आरोपी के चुनाव लड़ने पर रोक लगे।
- दुष्कर्म के आरोपी को सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून के तहत सुरक्षा प्राप्त, न दी जाये।
- आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए सरकार से पूर्व अनुमति आवश्यक न हो।
- अपराध कानून संशोधन विधेयक 2012 में यौन उत्पीड़न (सेक्सुअल असॉल्ट) की जगह पहले से मौजूद दुष्कर्म (रेप) शब्द का प्रयोग किया जाये।
- छेड़खानी एवं दुष्कर्म के मामले में एफ.आई.आर. नहीं करने वाले अधिकारी के लिए पाँच वर्ष तक की सजा का प्रावधान किया जाये।
- दुष्कर्म की परिभाषा में संशोधन कर अप्राकृतिक यौनाचार को भी शामिल किया जाए।
- दुष्कर्म की सजा सात वर्ष से उम्रकैद की जाए तथा पीड़िता को मुआवजा मिले।
- दुष्कर्म में मौत या मौत की स्थिति तक पहुँचने पर कम से कम 20 वर्ष या जीवनपर्यन्त जेल की सजा हो।
- नाबालिग से दुष्कर्म की स्थिति में 10 वर्ष से उम्रकैद तक की सजा हो।
- सामूहिक दुष्कर्म की नई धारा बनाकर 20 वर्ष से जीवनपर्यन्त कैद की सजा और मुआवजा।
- सुरक्षा का दायित्व निभाने में नाकामी की वजह से दुष्कर्म की स्थिति में जिम्मेदार अधिकारी को सात से 10 वर्ष की सजा।
- महिलाओं के साथ अश्लील हरकते करने पर एक वर्ष की सजा, शारीरिक छेड़छाड़ करने पर पांच वर्ष, महिला का पीछा करने वाले के लिए एक से तीन वर्ष की तथा महिला के वस्त्रों के साथ छेडछाड़ करने पर एक से सात वर्ष की सजा का प्रस्ताव समिति ने किया है।
- इंटरनेट पर जासूसी करने पर एक वर्ष की सजा।
- पुलिस के ढांचे एवं कार्य संस्कृति में सुधार हो।
- यौन–उत्पीड़न से जुड़े मामलों की सुनवाई महिला जज ही करें।
- संघर्षरत क्षेत्रों में महिला यौन उत्पीड़न की शिकायतों के निपटारे के लिए विशेष आयुक्त नियुक्त हो।
- हर जिलाधिकारी को अपने इलाके के लापता बच्चों की भी गणना करनी चाहिए।

इस प्रकार जस्टिस वर्मा समिति ने रेप और महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अन्य अपराधों के लिए कानून के प्रावधान कड़े करने की आवश्यकतायें बतायी हैं किन्तु कहा है कि ये अपराध कानून की कमी के कारण नहीं बल्कि सुशासन की कमी के कारण होते हैं। समिति ने रेप के लिए मौत की सजा को भले ही ठुकरा दिया लेकिन सरकार ने 01 फरवरी 2013 को ऐतिहासिक कदम उठाते हुए महिलाओं के विरूद्ध जघन्य यौन अपराध करने वालों को अब फांसी की सजा के संबंध में एक महत्वपूर्ण अध्यादेश को स्वीकृति दे दी जिसके कारण पूर्व कानून जिसमें रेप की सामान्य घटना में धारा 376 के अंतर्गत न्यूनतम 7 वर्ष और अधिकतम 10 वर्ष की सजा का प्रावध ाान है उसमें संशोधन कर 376–ए के नये प्रावधान में महिलाओं के विरूद्ध जघन्य यौन अपराधों के लिए फांसी

की सजा तथा न्यूनतम सजा 20 वर्ष होगी। जबकि कनाडा, चीन, सऊदी अरब, ईरान और अफगानिस्तान आदि देशों में पहले से ही यौन अपराधों के मामलों में फांसी की सजा का प्रावधान है।

अतः केन्द्र सरकार द्वारा स्वीकृत किये गये अध्यादेश में जस्टिस वर्मा समिति की सिफारिशों के अनुरूप दुष्कर्म मामले के दोषियो को सजा बढ़ाने का निर्णय भी किया गया है तथा जघन्य किस्म के यौन हमले में फाँसी या आमरण जेल की सजा का प्रावधान प्रमुख है। ऐसे यौन अपराधों में जिसमें पीड़ित स्थायी रूप से शारीरिक या मानसिक क्षति का शिकार हो जायें, दोशी को फाँसी देने का प्रावधान किया गया है। अध्यादेश में दुष्कर्म सहित महिलाओं के विरुद्ध सभी तरह के अपराधों को यौन हमले की श्रेणी में रखा गया है। लेकिन यह अध्यादेश दिल्ली गैंगरेप की घटना के बाद आया है इसलिए कोर्ट में चल रहे केस पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

जस्टिस वर्मा समिति ने खाप पंचायतों पर नकेल कसने, मामला दर्ज न करने वाले पुलिस अफसरों को कड़ा दण्ड देने, चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की सम्पत्ति की जांच के साथ गलत विवरण देने पर आयोग्य घोषित करने, अपर जुडिशरी द्वारा लोअर जुडिशरी के कामकाज पर नजर रखने, राजनीतिक अपराधीकरण रोकने, शिक्षा और सामाजिक व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता एवं लापता बच्चों का रिकार्ड रखने आदि बातों पर जोर दिया है।

भारतीय दण्ड प्रक्रिया में संशोधन संबंधी अध्यादेश

आधुनिक दौर में महिला यौन उत्पीड़न एवं हिंसा से जुड़ी मौजूदा कानून व्यवस्था को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए जस्टिस वर्मा समिति के द्वारा दिये गये सुझावों के तहत 3 फरवरी 2013 को एक अध्यादेश जारी कर भारतीय दण्ड प्रक्रिया सहित कुछ संशोधन कर न्यायालय में सुधार किये गये है। जो इस प्रकार हैं–

1. तेजाब फेंकने की मंशा – भारतीय दण्ड संहिता की धारा 326–ए एवं बी के तहत किसी भी महिला पर तेजाब फेंकने की स्थिति में अपराधी को एक वर्ष से आजीवन तक की सजा सुनाई जा सकती है। दस लाख रूपये तक का जुर्माना लगाये जाने का भी प्रावधान भी है। धारा 326 बी में यह भी उल्लेखित किया गया है कि अभियुक्त के पास मौजूद किसी वस्तु में तेजाब का अंश मात्र होने पर माना जायेगा कि वह तेजाब फेंकने का दोषी है। ऐसे प्रमाण प्राप्त होने पर अभियुक्त को 5 से 7 वर्ष तक कारावास और जुर्माने का दण्ड दिया जा सकता है।

2. मोबाईल या इंटरनेट का दुरूपयोग – भारतीय दण्ड संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम आपराधिक प्रक्रिया संहिता में संशोधन द्वारा धारा 354 का विस्तार कर धारा 354ए, बी, सी और डी जोड़ी गई है। इनके अंतर्गत किसी महिला को स्पर्श करना उससे अनुचित प्रत्याशा के अंतर्गत यौन संबंध स्थापित किये जाने की माँग करना, महिला पर ताने या छीटा–कशी कसना, अभद्र भाषा या संकेतों के जरिए मानसिक या किसी भी शारीरिक प्रताड़ना को यौन प्रताड़ना माना जायेगा। महिलाओं को मोबाइल या इंटरनेट के जरिए अश्लील संदेश या तस्वीरें भेजने को भी जुर्म माना गया। धारा 354–ए के अंतर्गत यौन उत्पीड़न के लिए एक वर्ष से पांच वर्ष की सजा का प्रावधान है। बुरी नजर से घूरने पर एक से सात वर्ष तक सजा का प्रावधान है।

धारा 354–बी के अनुसार सार्वजनिक स्थल पर महिला से बदतमीजी करने पर तीन से सात साल की सजा एवं जुर्माना हो सकता है।

धारा 354–सी के तहत इंटरनेट मोबाइल या अन्य आधुनिक साधनों के जरिए महिला से अश्लील संवाद कर उसे मानसिक पीड़ा पहुँचाने पर जुर्माना समेत तीन साल तक की सजा हो सकती है।

3. गलत है ईरादा – भारतीय दण्ड संहिता 376 की धारा 376–ए, 376–बी, 376–सी और 376–डी जोड़ी गई है जिसमें सार्वजनिक स्थल पर भीड़ का फायदा उठाकर गलत ईरादों से महिला का स्पर्श करने को यौन

प्रहार माना जायेगा। इन धाराओं के तहत अपराधी को दो वर्ष से दस वर्ष तक की सजा और गंभीर स्थितियों में आजीवन कारावास तक दिया जा सकता है।

4. लोक सेवकों की लापरवाही अपराध – भारतीय दण्ड संहिता 166 में धारा 166–ए जोड़ी गई है जिसके अनुसार विधान 354 की धाराओं 354–ए, 354–बी, 354–सी और 354–डी के तहत शिकायत किये जाने की स्थिति में लोकसेवक द्वारा चूक करने या निर्देशों का पालन न किये जाने की स्थिति को अपराध माना गया है।

प्रश्न है कानून निर्माण एवं कानून क्रियान्वयन का, बलात्कारियों को दण्डित करने के लिए कानून तो है लेकिन उनमें इतनी खामियाँ हैं कि उसका फायदा उठाकर बलात्कारी बच जाते हैं। देश में रेप के मामलों में सुनवाई का आंकड़ा केवल 26 प्रतिशत है। यह स्थिति बताती है कि बलात्कार की शिकार महिला थाने जाने से कतराती है क्योंकि थाने जाने पर उन्हें पुलिसिया मनोवृत्ति का शिकार होना पड़ता है। इसलिए सरकार को कानून बनाना पड़ा कि अंधेरा हो जाने के बाद पुलिस किसी भी महिला को गिरफ्तार नहीं कर सकती। मगर इसका भी उल्लंघन होता है इसलिए वर्मा समिति ने इस बात पर अपनी मोहर लगाई है कि फिलहाल सबसे अधिक बल पुलिस की कार्यप्रणाली बदलने पर ही दिया जाना चाहिए। इसके बिना कोई भी कानूनी बदलाव, केवल किताबी चीज बनकर रह जाता है और जनरक्षक ही भक्षक की कुत्सित मानसिकता वाले लोगों से कानूनी व्यवस्था संचालित हो तो बदलाव की समस्त बातें कोरी कल्पना मात्र रहेंगी। इसलिए आवश्यकता इस बात की है समाज में चाहे पुलिस हो या अन्य कोई पुरुष उनमें मानवीय संवेदना जाग्रत करनी होगी। कुछ कतिपय सुझाव निम्नलिखित हैं–

- महिलाओं पर हिंसा को खत्म करने के लिए सभी को एकताबद्ध होना चाहिए।
- भारतीय कानून व्यवस्था में जस्टिस वर्मा समिति की रिपोर्ट में उल्लिखित सुझावों का क्रियान्वयन कठोरता से होना चाहिए।
- पुलिस व्यवस्था की कार्यप्रणाली में परिवर्तन कर उनकी महिलाओं के प्रति सोच को बदलना होगा।
- प्रशिक्षित महिला पुलिसकर्मी द्वारा दुष्कर्म मामलों की पूछताछ की जानी चाहिए। इसके लिए प्रशिक्षण मनोदशा मनौवैज्ञानिक एवं पीड़ित की मनोस्थिति से संबंधित विषय पर आयोजित किये जाने चाहिए।
- यौन शोषण की शिकार महिला के बयान महिला पुलिस द्वारा मित्रवत तरीके से लेना चाहिए।
- पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता है ताकि लड़कों एवं लड़कियों की भूमिका एक समान हो।
- शिक्षा में जेंडर इक्वलिटी और उससे जुड़े बिन्दुओं को विषय के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए शिक्षण संस्थाओं में मूल्यपरक शिक्षा एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ायी जाये।
- हम न केवल अपनी अकादमिक शिक्षा व्यवस्था में बदलाव लायें बल्कि ऐसे विकल्प भी तलाशें जिनके माध यम से समाज के हर वर्ग में महिलाओं के प्रति बराबरी और संवेदनशीलता के बीज बोये जा सकें।
- कानून का पालन करने वाली संस्थायें तथा हमारी न्यायिक प्रणाली को सक्षम एवं सशक्त बनाया जाये।
- महिलाओं के खिलाफ ऐसे अमानवीय जुर्म करने वालों को जल्दी से जल्दी सजा दिलाने के लिए विशेष अदालतें कायम की जायें, साथ ही उनकी सजा ऐसी होनी चाहिए जो दूसरों को ऐसे अपराध करने से रोक सकें और संभावित अपराधियों के मन में डर पैदा करने में समर्थ हो।
- समाज को महिलाओं के प्रति अपनी सोच में बदलाव लाने की आवश्यकता है। महिलाओं को दया की

जगह अधिकार सम्पन्न सशक्त और स्वावलम्बी बनाने का दायित्व समाज और कानून सभी का होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- ओझा, डॉ0 विनय : भारत का संविधान एवं राज व्यवस्था, मंथन प्रकाशन, इलाहाबाद 2012, पृ. 244
- दैनिक भास्कर, भोपाल, 8 अप्रैल 2013, पृ. 04
- प्रतियोगिता दर्पण, आगरा, मई 2013, पृ. 1640
- इंटरनेट : गूगल पर महिला हिंसा एवं उत्पीड़न
- जस्टिस जे.एस. वर्मा, समिति की रिपोर्ट, 23 जनवरी 2013
- जस्टिस जे.एस. वर्मा, समिति की रिपोर्ट, 23 जनवरी 2013
- कम्पीटिशन सक्सेस रिव्यू, मार्च 2013, नई दिल्ली, पृ.09
- कम्पीटिशन सक्सेस रिव्यू, मार्च 2013, नई दिल्ली, पृ.10
- इण्डिया टुडे, नई दिल्ली, 9 मई 2013, पृ.15
- टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 7 मई 2013, पृ.04

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारतीय राजनीति और महिलायें : चिन्तन के विविध सरोकार

डॉ0 जयश्री त्रिवेदी
प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान
शास. पी.जी. कॉलेज, दतिया (म.प्र.)

किसी भी देश की संस्कृति, उसकी समृद्धि, उसका इतिहास, वहाँ की महिलाओं के विकास, समृद्धि और प्रगति में परिलक्षित होता है, महिलायें समाज की रचनात्मक शक्ति हैं, उनके आगे बढ़ने से ही देश आगे बढ़ता है। वैश्वीकरण के इस युग में देश के हर कोने से आवाज उठ रही है कि महिलाओं को राजनीति में स्वयं ही अपनी भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। आज का युग प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली है। जिसमें नारी–पुरुष को समान रूप से जीवन जीने, उन्नति एवं उत्थान के समान अवसरों की अपेक्षा करता है किंतु यदि व्यवहारिक दृष्टि से देखा जाए तो सभी देशों में वहां कि संसद में पुरुषों की तुलना में महिलाओं का नेतृत्व क्रमशः नगण्य रहा है। किंतु इस प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली में पुरुष समाज द्वारा नारी समाज को राजनीतिक सत्तातंत्र में प्रभावी रूप से भागीदारी देनी होगी उसके लिये उसे आरक्षण एवं प्रभाव नीति अपनाकर संरक्षण देना होगा। जिससे महिलायें आगे बढ़ेंगी एवं राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी कर सकेगी।

महिलायें जो हमारे देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा हैं वे आगे बढ़ें, महिलायें निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल हों और नीति–निर्माण स्तर पर भी उनकी पूर्ण सहभागिता रहे। आज महिला समानता, कल्याण, सुरक्षा, लिंग, न्याय, सामाजिक न्यास, महिला के समुचित विकास की अभिव्यक्ति हेतु व्यक्त की जाती हैं, किंतु जब तक महिलाओं को पुरुषों के संदर्भ में समान राजनीतिक रूप से सबलता प्राप्त नहीं होगी तब तक उनका समग्र विकास संभव नहीं है।

भारतीय राजनीति में महिलाओं के योगदान का यदि विभिन्न युगों का अध्ययन किया जाए तो प्राचीन युग से ही भारतीय नारी को सम्मान दिया जाता था। महाभारत में इस सम्बन्ध में लिखा है मधुर भाषिणी पत्नियाँ प्रसन्नता के अवसर पर पिता हैं, बीमारी और कष्ट के समय माता हैं और राजनीति में पथ प्रदर्शक हैं। इसी प्रकार मुगलकाल में नूरजहाँ, गुलबदन बेगम, माहम, अनगा, जोधाबाई, रूवमति, जहाँआरा, रोशनआरा जैसी महिलाओं ने राजनीति में भागीदारी कर इतिहास के पृष्ठों में अपना नाम उद्धृत किया। यद्यपि अंग्रेंजों के शासनकाल में महिलाओं की स्थिति कुछ दयनीय अवश्य हुई। किंतु देश के सुधार आंदोलनों के सूत्रवात से महिलाओं की स्थिति को ऊॅचा उठाया गया, और उसी समय से ही महिलाएँ राजनीति में अपनी भागीदारी तय करने लगीं। उन्नीसवीं सदी के समाज सुधारकों ने राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, एनी बीसेन्ट आदि ने महिलाओं के शिक्षा हेतु विद्यालय खोले, कुप्रथाओं को समाप्त किया, स्त्रियों में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने एवं नारियों की दशा सुधारने वाले अधिनियम तैयार करने सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्य किये गये। 20वीं सदी में भी नारी शिक्षा के विकास हेतु तीव्र प्रयास किये गये। 1901 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन में स्त्री शिक्षा विभाग की स्थापना की जिसमें शिक्षित नारियों का रूझान राजनीति की ओर बढ़े। राष्ट्रीय आंदोलन एवं जनजागरण एवं नारी शिक्षा के तीव्र गति से विकास से नारी ने राजनीति में अपनी भागीदारी की। महात्मा गांधीजी ने भी नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया, उनका विचार था कि शिक्षित महिला ही अपने दायित्वों का उचित निर्वहन समाज में, प्रशासन में, व्यापार में, विज्ञान के क्षेत्र में एवं राजनीति में सुस्थापित कर सकेगी।

वर्तमान समय में महिलाओं को पुरुषों के समान राजनीति में सहभागिता की है। यह एक चिंता का विषय

है? क्योंकि अन्य देशों में वहाँ की संसद में पुरुषों की तुलना में महिलाओं का नेतृत्व कम रहा है। इण्डियन इंस्टिट्यूट आफ ओपिनियन के सर्वेक्षण के आधार पर विश्व के प्रमुख देशों में वहाँ की संसद में महिलाओं की तुलनात्मक स्थिति के आंकलन से स्पष्ट बल मिलता है कि विकासशील देशों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता है।

भारतीय राजनीति में महिलाओं के योगदान को क्रमशः अवलोकन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संसद से लेकर पंचायती स्तर तक महिलायें निरंतर आगे बढ़ते हुये अपनी महत्वपूर्ण भूमिका सुस्थापित कर रही हैं। 15वीं. लोकसभा में महिलाओं की संख्या 59 तक पहुंच चुकी है। इसी प्रकार भारतीय महिलाओं की स्थिति को उपर उठाने, उनके सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन स्तर को आदर्श स्वरूप देने, जागरूकता, साक्षरता आदि में वृद्धि करने के उद्देश्य से शासन की सबसे छोटी ईकाई में भागीदारी किया गया। अनुच्छेद 243 घ (1) के अनुसार प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिये स्थान आरक्षित होगें, साथ ही प्रत्येक पंचायत चुनाव में प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे गये स्थानों की कुल संख्या का 1/3 स्थान महिलाओं के लिये आरक्षित रहेंगे।

राज्य विधान मंडलों में महिलाओं की प्रस्थिति के संदर्भ में यह कहा जा सकता है चूंकि भारत में संघीय शासन स्वरूप को अपनाया गया है। राज्य स्तर पर श्रीमती शीला दीक्षित, नई दिल्ली, श्रीमती ममता बनर्जी पश्चिम बंगाल, सुश्री मायावती उत्तर प्रदेश, सुश्री जयललिता तमिलनाडु, श्रीमती रावड़ी देवी बिहार, उमा भारती मध्यप्रदेश, श्रीमती बसुन्धरा राजे राजस्थान, आदि महिलाओं ने स्वयं की राजनीतिक क्षमताओं का परिचय देकर भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इसी प्रकार राज्य कार्यपालिका राज्यपाल के रूप में श्रीमती सरोजनी नायडू ने उत्तर प्रदेश की राज्यपाल के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। देश की राष्ट्रपति रही प्रतिभा पाटिल भी पूर्व में राजस्थान की राज्यपाल थीं, इसी तारतम्य में सरला ग्रेवाल भी मध्य प्रदेश में राज्यपाल के पद पर रहकर भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण कार्य किया गया।

भारत सरकार के तीनों अंगों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका में महिलाओं की भागीदारी उनकी साक्षरता एवं शैक्षिक उपलब्धि के साथ ही नारी जागरण के प्रति पुरुषों एवं महिलाओं की बढ़ती रूचि के चलते ही बढ़ी है। केन्द्रीय व्यवस्थापिका के दोनों सदनों राज्य सभा एवं लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व रहा है।

स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय राजनीति में महिलाओं ने अपने प्रतिनिधित्व द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारतीय राजनीति में सर्वप्रथम सबसे प्रभावशाली महिला श्रीमती इंदिरा गांधी 1971–1984 देश की प्रथम महिला प्रधानमंत्री के रूप में 24 जनवरी 1966 को पदासीन हुईं। अद्भुत व्यक्तित्व, साहस की धनी इस महिला ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण पहचान बनाई एवं उनकी विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों से भारतीय नारियों को स्वयं का राजनीति–पथ प्रशस्त करने का अवसर मिला।

इसी प्रकार भारतीय संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार संसद के उच्च सदन में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व रहा, भारतीय राज्य सभा में श्रीमती बी.एन.दुर्गा (आन्ध्र प्रदेश) श्रीमती सुमित्रा महाजन (हरियाणा) श्रीमती मोहसिना किदवई (छत्तीसगढ़) प्रो. अलका बलराम क्षत्रिय (गुजरात) श्रीमती सुषमा स्वराज्य, श्रीमती अनुसया उड़के, श्रीमती माया सिंह (मध्यप्रदेश) सुश्री सुशीला तिरिया, सुश्री प्रिभाल बेहिदार व श्रीमती देवी (उड़ीसा) श्रीमती अम्बिका सोनी, श्रीमती सुखवंश कौर (पंजाब) श्रीमती नजमा हेपतुल्ला (राजस्थान) श्रीमती एम.जी. इन्दिरा, तमिलनाडु निर्वाचित सदस्या के रूप में तथा कुमारी निर्मल देशपांडेय, श्रीमती हेमामालिनी, श्रीमती शोभना मरतिया श्रीमती रेखा राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्या के रूप में पदासीन होकर भारतीय राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित की गई है

किन्तु अनुच्छेद 74 के प्रावधान के अनुसार उसका प्रयोग मंत्रिपरिषद की मंत्रणा से करेगा। सर्वप्रथम इस पद पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद भारत के राष्ट्रपति बने। तब से इस गौरवमय पद पर पुरुष ही पदासीन रहे। महिला उम्मीदवार के रूप में महामहिम राष्ट्रपति के पद पर लक्ष्मी सहगल ने सर्वप्रथम भाग लिया किन्तु इस पद पर स्वंतत्रता के बाद पूर्व में राजस्थान की राज्यपाल रही श्रीमती प्रतिभा सिंह पाटिल ने 25 जुलाई 2007 से महिला के रूप में प्रथम नागरिक (राष्ट्रपति) के पद को प्रतिष्ठित किया। स्वतंत्रता की 60वीं वर्षगाठ पर महिलाओं की प्रस्थिति के विषय में उनका विचार था – ''महिलाओं के हर क्षेत्र में भागीदारी को और अवसर देने तथा विकास का लाभ देने का आव्हान किया। उन्होंने कहाकि महिलाओं का सशक्तिकरण ही भारत को उच्चशिक्षा पर पहुंचाने में मददगार होगा। इस सम्बन्ध में महामहिम प्रतिभा पाटिल ने महात्मा गांधी के विचारों को उद्धृत करते हुये कहा ''इतिहास गवाह है कि हमारी महिलाओं ने केवल ग्रहिणी के रूप में ही नहीं अपितु राष्ट्र निर्माण के कार्य में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

केन्द्रीय मंत्रिपरिषद में भी महिलाओं के प्रतिनिधित्व ने प्रशासन में अपनी महती भूमिका अदा की है। अप्रैल 2007 की स्थिति के अनुसार केन्द्रीय मंत्रिपरिषद में मीरा कुमार (सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता) श्रीमती अंबिका सोनी (पर्यटन एवं संस्कृति) को कैबिनेट में स्थान मिला। श्रीमती रेणुका चौधरी (महिला एवं बाल बिकास) कुमारी शैलजा शहरी विकास एवं गरीबी उन्मूलन को राज्यमंत्री स्वतंत्र प्रभार दिया गया। इसके अतिरिक्त सुश्री सूर्यकांता पाटिल जगदीशन 'सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता, श्रीमती कांतारसिंह (भारी उद्योग) राज्यमंत्री के रूप में नियुक्त हुईं।

राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्षा के रूप में श्रीमती एनी बीसेंट पदासीन रहीं। स्वतंत्रता पश्चात् भारत में केन्द्रीय मंत्रिपरिषद में शीर्ष स्थान प्रथम महिला प्रधानमंत्री के रूप में दिवंगत श्रीमती इंदिरा गांधी को उनके कार्यो से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। श्रीमती गांधी योजना आयोग की पहली महिला अध्यक्ष भी रहीं। उन्होंने अपने पद की गरिमा के अनुरूप कार्य कर विश्व की चुनौतियों का डट कर सामना किया एवं देश की राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिये अपने प्राण तक न्योछावर कर दिये।

वर्तमान समय में महिलायें जहां प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में अपनी महत्वपूर्ण एवं सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर रही हैं वहीं अप्रत्यक्ष रूप से माता, पत्नी, बहन, बेटी आदि की भूमिकाओं के माध्यम से सामाजिक मूल्यों एवं संस्कृति के पोषण में उसकी अहं भूमिका है। नवीन पीढ़ी को संस्कारवान बनाना, राष्ट्र भावना जागृत करना, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा देना आदि विभिन्न कार्यो द्वारा नारी समाज की नवीन पीढ़ी को सुसंकृत एवं सदाचरण की शिक्षा प्रदान करती हैं, उसके द्वारा दी गई इसी शिक्षा से भविष्य में उसका राजनीतिक व्यवहार की अभिवृत्तियों एवं मनोदशाओं का निर्माण होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोयल सुनील – भारतीय समाज में नारी, पृ. 157
2. मजूमदार आरसी – भारत का बृहद् इतिहास, भाग–3 पृ. 290
3. वरे.एस.एल. – भारतीय इतिहास में नारी
4. शर्मा सी.पी. – राजनीति विज्ञान
5. श्रीमती व्होरा आशा रानी – भारतीय समाज और महिलायें
6. योजना – माह मार्च 2006–07
7. प्रतियोगिता दर्पण – माह, मई 2008
8. शोध समीक्षा और मूल्यांकन, जयपुर – 2008
9. दैनिक समाचार पत्र/नई दुनिया दैनिक भास्कर पत्रिका
10. कुरूक्षेत्र – माह मार्च 2008

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

एकल महिलाओं की समस्यायें, कारण एवं समाधान की दिशाएँ

डॉ0 मुहम्मद नईम
प्रवक्ता एवं समन्वयक, समाज कार्य विभाग
बुन्देलखण्ड़ विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रायः यह देखा गया है कि बाल्यकाल के पारम्परिक संस्कारों के चलते किशोरियाँ व युवतियाँ सोचती हैं कि एक खूबसूरत सा राजकुमार घोड़ी पर चढ़कर आयेगा ब्याहने, जगमग बारात होगी, खुशी की वो रात होगी, यही ख्वाब होता था हर लडकी का पहले, पर अब न तो खूबसूरत राजकुमार की चाह है, न जगमग बारात का इंतजार....., शादी ब्याह आज की लड़कियों को बोझ लगने लगा है। विवाह को जिन्दगी की अनिवार्यता व अन्तिम लक्ष्य मानने की परम्परा को आधुनिक लड़की ने धीरे–धीरे नकारना शुरु कर दिया है। जीवन को अपनी शर्तों पर जीने की ललक ने उसे विवाह न करने के फैसले की ओर मोड़ दिया है। स्त्री को बचपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्रों के सहारे जीने का फैसला करने वाले पुरुष प्रधान समाज में उसके इस फैसले को बहुत सरलता से नहीं लिया गया, जो कि स्वाभाविक भी था, भला अपने द्वारा बनाये गये समाज के ढर्रे को पुरुष डाँवाडोल कैसे होने देता।

तुम विवाह नहीं करोगी तो बिना किसी के सहारे जिन्दगी कैसे बिताओगी, जैसे खौफ भी उसे दिखाये जाते रहे, लेकिन जिस बैंक बैंलेंस, कार, बंगला, शोहरत, समाज में स्ट्टेस पाने की खातिर उसे विवाह को जिन्दगी का एकमात्र विकल्प बताया जाता रहा, वह सब जब उसने अपने पैंरों पर खडी हो स्वयं पा ही लिया तो विवाह की अनिवार्यता भला कहाँ रह गई।

माना कि विवाह जिन्दगी का अन्तिम लक्ष्य नहीं होता, पर जिन्दगी में पति, पत्नी के रिश्ते के महत्व को नकारा भी नहीं जा सकता। जिन्दगी में एक पड़ाव ऐसा भी आता है, जब बेटे बेटियों की पढाई–लिखाई पूरी हो जाती है, वे अपने अपने कैरियर में लग जाते हैं। उनकी शादियाँ कर माँ–बाप थोड़ी फुर्सत पा लेते हैं, तब पति पत्नी ही सुख–दुःख के सच्चे साथी बने रहकर शेष जिन्दगी काटते हैं। शादी सुख–दुख में साथ निभाने के बन्धन के साथ–साथ अपने बुढापे के सहारे के रुप में संतान को दुनिया में लाने का सबब भी बनती है।

लेकिन शादी के बाद हमेशा हालात एक जैसे नहीं रहते। कभी वक्त की बेरहम मार भी पड़ती है। कभी जीवन साथी हमेशा के लिए जुदा हो जाता है। तो कभी मन न मिलने से तलाक भी हो जाता है। ऐसे में संतान ही सहारा बनती है। संतान में यदि लड़की बड़ी हो तो वह पूरे परिवार की बड़ी बन जाती है। उसे न केवल माँ की घर गृहस्थी की जिम्मेवारी उठानी पड़ती है, बल्कि उस वक्त विवाह न करने का निर्णय भी लेना पड़ता है। सिर्फ घर, परिवार की जिम्मेदारी ही नहीं, बल्कि कैरियर में ऊँचाईयों को छूने की कोशिश भी उन्हें शादी न करने के लिए बाध्य करती है। इसके अलावा स्वावलम्बी महिलायें बेचारी गऊ की तरह किसी भी खूंटे से बंधने को तैयार नहीं होतीं, इसलिये अकेले रहने का वे फैसला करती हैं। एकल महिलाओं की शृंखला में आने वाली औरतों में कुँवारी, तलाकशुदा, विधवा व छोड़ी हुई औरतें शामिल होती हैं।

आज समाज में बिन ब्याही अकेली लड़की को भले ही अचरच की निगाह से नहीं देखा जाता, पर समाज ब्याह न करने के उसके फैसले के बारे में बारम्बार सवाल अवश्य करता है। ''जिन्दगी के किसी मोड़ पर तुम्हें जीवनसाथी की जरुरत महसूस होगी.... चाहरदीवारी और उसमें भरे सामान को घर नहीं कहते।'' इत्यादि बातें उसे समझायी जाती हैं। उसे इस बात का भी भय दिखाया जाता है कि जब वह कभी बीमार पड़ेगी तो सिरहाने

बैठकर उसे कोई दवा खिलाने वाला भी नहीं होगा। बीमारी में खाना बनाना पड़ेगा, या किसी संगी– सहेली को फोन कर बुलाना पड़ेगा तो हो सकता है कि वह आये ही नहीं। सामान, सुख सुविधाओं व चकाचौंध की चीजें भी मन का अकेलापन दूर नहीं कर सकतीं। कहीं तुम्हें अपने निर्णय के लिए पछताना न पड़े, इसलिये शादी कर लो, अभी देर नहीं हुई है, इस तरह की तमाम बातें अविवाहित महिलाओं को समझाई जाती हैं, ताकि भविष्य के हालात से डरकर वह अपने विवाह न करने के फैसले को बदल दे।

हमारा समाज शादी–शुदा औरतों को एक तरफ और एकल औरतों को दूसरी तरफ रख कर ही इतिहास लिखता रहा है, जो महिलायें विधवा, तलाकशुदा, परित्यक्ता अथवा स्वेच्छा से अलग रहती हैं, उन्हें परिवार अथवा समाज दोनों ही हीन दृष्टि से देखता एवं तरह–तरह से प्रताड़ित करता है। अपशकुनी मानना, डायन कह कर प्रताड़ित करना, कम भोजन देना, घर–सम्पत्ति व जमीन से बेदखल करना आम महिला की तरह जीवन जीने से वंचित करना इत्यादि इसके आम उदाहरण हैं।

हमारे समाजीकरण में धर्म, परम्परा और परिवार की अहम् भूमिका होती है। इसी प्रक्रिया ने शादी–शादीशुदा औरतों और गैर शादी–शुदा औरत की जिन्दगी और परिवार के बीच एक लक्ष्मण रेखा खींच दी है। शादीशुदा औरतें समाज और परिवार के आँगन में इज्जत और सम्मान से बैठती हैं, अधिकांश रीति–रिवाज शादीशुदा महिलाओं द्वारा ही मनाये जाते हैं। तलाकशुदा और विधवा महिलाओं को उनके कार्यक्रमों में शामिल होने की अनुमति नही होती है। समाज में यह एक विश्वास है कि अकेली औरत बदनसीब होती है, उसकी उपस्थिति अशुभ समझी जाती है, तथा वे धार्मिक कार्यक्रमों पर और दूसरों के हित पर बुरा प्रभाव डालती हैं। परिवार द्वारा भी उन्हें ऐसे समारोहों में शामिल न होने का दबाब डाला जाता है। अगर कभी उन्हें ऐसे समारोहों में शामिल होने की इजाजत मिलती भी है तो भी उन पर क्या पहनना है, कैसा पहनना है, गहने और अन्य प्रसाधन के प्रयोग पर परिवार एवं समाज द्वारा पाबंदियाँ लगायी जाती हैं। यदि वो इन पाबंदियो का पालन नही करती हैं तो तुरन्त बुरी औरतों की श्रेणी में आ जाती हैं। इन पहचानों के वैचारिक आधार को स्थापित करने के लिए धार्मिक व सामाजिक रीति–रिवाज, पहनावे, संस्कार आदि हैं, जिनके द्वारा इन पहचानों को दूर से ही समाज में पूरी तरह से प्रतिष्ठित किया जाता है।

हमारे समाज का पितृसत्तात्मक ढाँचा हमेशा एक ही खाँचें में औरत की छवि को देखना चाहता है और वह एक ऐसी औरत, जिसके साथ उसका पति बच्चा व पूरा परिवार होगा और औरत का अस्तित्व ही उसके परिवार के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है और जब भी वह इस खाँचे से बाहर निकलती है या निकाल दी जाती है तो उसके खिलाफ हमारा समाज बड़ी ही क्रूरता से पेश आता है। एक विधवा औरत की प्रताड़ना के लिए हमारी तथाकथित संस्कृति, रीति रिवाजों ने ऐसे षड़यन्त्र बुने हैं कि उसका गरिमा से जीवन जीने का हक ही छीन लिया है। एक ओर जहां धर्म, समाज और संस्कृति उसके खिलाफ खड़े हैं वहीं हमारी व्यवस्था भी उससे कोई सहानुभूति नही रखती है। विधवा पेंशन की धांधलियाँ किसी से छिपी नहीं हैं। पति की मृत्यु के बाद अब उसके स्थान पर नौकरी मिलने के नियम भी सरकार द्वारा सख्त कर दिये गये हैं।

एक तलाकशुदा या पति द्वारा छोड़ी हुई औरत की समाज में न कोई आर्थिक, सामाजिक हैसियत है और न ही हमारे कानून उन्हें किसी प्रकार की सुरक्षा देते हैं। पारिवारिक न्यायालयों में दिनों दिन बढ़ती भीड़ और लम्बित प्रकरणों की फाइलों का बढ़ता अम्बार बताता है कि पारिवारिक हिंसा की शिकार औरतों के प्रति हमारी अदालतें और कानून कितने असंवेदनशील हैं। पारिवारिक हिंसा की शिकार औरतें कभी अकेली और कभी अपने बच्चों को जिम्मेदारी को सम्हालते हुए सालों–साल इन्साफ का इन्तजार करती हैं और कभी–कभी तो यह भी होता है कि वह थककर बैठ जाती हैं और दूसरी ओर उसका तथाकथित पति मूँछों पर ताव दिये बच्चों की जिम्मेदारियों से मुक्त छुट्टा घूमता है। बस उसकी सारी कोशिशें अपनी आमदनी को छिपाने के लिए होती हैं।

हमारे समाज के पूर्वाग्रह उस औरत का पोस्टमार्टम करने में अपनी सारी ऊर्जा लगाता है जैसे कि उसने मायके से डोली और ससुराल से अर्थी वाली मान्यता को तोड़कर कितना बड़ा गुनाह किया है और उसने ही ससुराल में स्वयं को वहां के वातावरण के योग्य नहीं बनाया होगा या फिर कोई दूसरा चक्कर होगा..... आदि आदि.....।

हर वक्त सवालों और सन्देहों से जूझती एकल औरत के प्रति हमारे समाज की कोई सहानुभूति नही होती है और यदि किसी लड़की ने शादी न कर अकेले ही आत्मनिर्भर हो जीवन जीने का फैसला किया तो परिवार, रिश्तेदारों और समाज में जैसे भूचाल सा आ जाता है। समाज की तमाम परम्परागत मान्यताओं पर जैसे ही चोट होती है, उस लड़की का चरित्र हनन शुरू हो जाता है। जो किसी की नही, वह सबकी है, जैसी मानसिकता के शिकार समाज के सफेदपोश ठेकेदार भी परम्पराओं, रीतियों और नैतिकता का पाठ उसे पढाने लगते हैं। उन्हें यह कतई स्वीकार नहीं कि एक लड़की अकेले आत्मनिर्भर हो समाज के तथाकथित नियमों को धता बताते हुए गरिमापूर्ण जीवन जीने का साहस कर सके।

किन्तु आज इस अन्धेरे में भी उजाले की किरणें फूट रही हैं और तमाम लड़कियाँ इन तथाकथित मान्यताओं को तोड़कर अपने जीवन के तमाम फैसले स्वयं ले रही हैं। वे परम्पराओं, रूढ़ियों से जकड़े इस समाज को चुनौती दे रही हैं क्योंकि उन्हें पता है कि हर बहादुर औरत के पीछे खड़ा होता है पूरा समाज, यह कहने के लिए कि वह गलत है।

जिस प्रकार शरीर एक डिब्बे की मानिन्द है। उसके भीतर आवेग, संवेग, अनुभूति, मनोविज्ञान, भावात्मक संपदा का गहवर जंगल है, जैसे टेलीफोन का फ्यूज बॉक्स, अनेकानेक महीन तारों का जाल, सब में हर समय बहता एक करंट, अपनी अपनी सीमाओं में बहता यह करंट उत्पादक है, पर कहीं ये तार बीच से उघड़ कर करंट मिल जाये तो मानो सब भस्म, ठीक उसी प्रकार मानव मन की भी यही दशा है, सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए इन विभिन्न भावनाओं का होना और उनकी पूर्ति एवं प्रतिक्रिया अनिवार्य है, पर उनका पारस्परिक टकराव, व्यक्तित्व को निष्प्राण कर डालता है। मानसिक तथा शारीरिक धर्मों की पूर्ति में जीवन की नित्यता है। यों शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति सामाजिक बंधन की मोहताज नहीं है, पर उससे बढ़कर मानवीय आवश्यकता है– सामाजिक सुरक्षा व स्थायित्व। इस स्थायित्व के लिए ही मानव स्वयं को परिवार की मर्यादाओं से बांध लेता है।

बाबजूद इसके तमाम स्त्री और पुरुष इस सामाजिक धर्म की अवहेलना करके अकेला रहना पसन्द करते हैं। इसलिये समाज उन्हें तमाम उम्र आलोचना या सहानुभूति की नजरों से बींधता रहता है। समाजशास्त्रियों का मानना है कि अकेलापन स्त्री के लिए ही नहीं वरन् पुरुष के लिए भी एक असामाजिकता की स्थिति मानी जाती है।

एकल महिलाओं के मुद्दे पर कार्य कर रही प्रयत्न फाउण्डेशन की मुख्य कार्यकारी सुश्री नाहीद अकील ने बताया कि संस्था के शुरूआती दौर में जब वह और उनके साथी जब ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक मुद्दों को लेकर काम कर रहे थे। उसी दौरान उन्होंने व उनके साथियों ने महसूस किया कि दुनिया की आधी आबादी कही जाने वाली ये महिलायें भी कई वर्गों में बटी हैं शहरी महिलायें– ग्रामीण महिलायें, शादीशुदा महिलायें और गैर शादीशुदा महिलायें आदि, आदि।

प्रयत्न फाण्डेशन उत्तर प्रदेश द्वारा किये गये एक सर्वे के अनुसार जब उनके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य किया गया तो देखा गया कि राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत् मायके में रहने वाली विधवा व तलाकशुदा बेटी को अलग परिवार के रूप में नही पहचाना जा रहा है और उसका जॉब कार्ड नही बनाया जा रहा है। कानून में उन्हें एक अलग परिवार के रूप पहचानने का प्रावधान होने के बाद भी सामाजिक पूर्वाग्रहों के चलते उन्हें नजरअन्दाज कर दिया जाता है।

मुख्य कार्यकारी सुश्री नाहीद अकील ने बताया कि सर्वे में शामिल की गयी महिलाओं को उन्होंने तीन श्रेणियों मे रखकर (अधिक पढ़ी–लिखी संगठित क्षेत्रों में काम करने वाली,कम पढी–लिखी अंसगठित क्षेत्रों में काम

करने वाली एवं बिना पढ़ी–लिखी घर में रहने वाली बुजुर्ग महिलाएँ) यह जानने की कोशिश की कि प्रत्येक स्तर पर महिलाओं को किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। और हर श्रेणी की महिलाओं की समस्याएँ कितनी अलग हैं। पहली श्रेणी में प्रयत्न फाउण्डेशन द्वारा रेलवे में कार्यरत महिलाओं, शिक्षिकाओं, स्वास्थ्य विभाग में कार्यरत महिला डाक्टर्स, नर्स, प्रशासनिक अधिकारी एवं विभिन्न संस्थाओं में उच्च पदों पर आसीन महिलाओं को लिया, दूसरी श्रेणी में उनके द्वारा घरों में झाड़ू बर्तन करने वाली महिलाओं, मजदूर महिलाओं, कैन्टीन में खाना बनाने वाली महिलाओं, सिलाई और आया का काम करने वाली महिलाओं का सर्वेक्षण व शोध में शामिल किया तथा तीसरी श्रेणी में उन महिलाओं को शामिल किया, जो घरेलू कार्य के अतिरिक्त अन्य कोई आर्थिक उपार्जन का काम नहीं करतीं, बल्कि वो किसी न किसी रुप में अन्य व्यक्ति के ऊपर आश्रित हैं।

पहली श्रेणी की रेलवे में काम करने वाली 8 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उन्हें उनकी योग्यता के आधार पर काम नहीं दिया जाता है, बल्कि पति की मृत्यु के उपरान्त उन्हें विश्रामगृहों की निगरानी का काम दिया जाता है, जिसमें उन्हें अन्य कर्मचारियों की अपेक्षा चार घंटे अधिक काम करना पड़ता है। महिलाओं ने बताया कि रात की शिफ्ट में केबिन न होने की वजह से अक्सर यात्रियों द्वारा शारीरिक एवं मानसिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। प्रशासनिक सेवा में कार्यरत महिलाओं ने बताया कि पति की मृत्यु के उपरान्त परिवार एवं ऑफिस में कार्यरत लोगों का नजरिया भी एकदम से बदल जाता है, जो पति की मौजूदगी में भाभी जी अथवा मैडम कहते थे, वही लोग 'यार' कह कर सम्बोधित करने का प्रयास करते हैं।

दूसरी श्रेणी की 10 प्रतिशत कोठियों में झाड़ू–पोंछा का काम करने वाली महिलाओं ने बताया कि काम के दौरान उन्हें शारीरिक शोषण का सामना करना पड़ता है। बड़े आदमी होने एवं काम छूटने के डर के कारण वो कुछ कह नहीं पाती। इसी प्रकार गरीब एकल महिलाओं ने जो सिलाई, कढ़ाई या फाल लगाकर छोटे–छोटे काम कर रही हैं, उन महिलाओं ने बताया कि पति की मृत्यु के बाद हमारे पास गारंटी के लिए कोई गारंटर नही होता है और न ही कोई सामान, इसलिए हमें बैंक से लोन नही मिल पाता।

तीसरी श्रेणी की 32 प्रतिशत महिलायें जो 50 से 60 साल के भीतर की थीं, उन्होंने बताया कि हमें सरकार से कोई पेंशन नहीं मिल पाती है और न ही किसी अन्य तरह का सहयोग। सर्वे के दौरान प्रयत्न फाउण्डेशन की जानकारी में यह तथ्य आया कि जिन परिवारों में अधिक उम्र की विधवा महिला ही परिवार की मुखिया है और उसके बच्चे विदेशों में बस गये हैं, उन्हें उनकी शारीरिक, आर्थिक व घरेलू सुरक्षा का हमेशा खतरा बना रहता है।

सर्वे के दौरान प्राप्त कुछ मुख्य तथ्य :

- 41 प्रतिशत एकल महिलायें आवासीय हैं जो माँ, बाप अथवा किराये के मकान पर निर्भर हैं।
- 56 प्रतिशत एकल महिलायें दिन में सिर्फ एक बार भोजन कर पाती हैं। आर्थिक तंगी एवं चिन्ता के कारण उन्हें भूख नहीं लगती।
- 68 प्रतिशत एकल महिलाओं ने बताया कि लगातार समस्याओं से जूझने के कारण उन्हें रात में नींद नही आती है।
- 94 प्रतिशत एकल महिलाओं ने बताया कि विवाह के उपरान्त माँ–बाप भी बदल जाते हैं। इसलिए लड़कियाँ सालों–साल ससुराल में मार खाती रहती हैं और तलाक नहीं लेती हैं।
- 16 प्रतिशत एकल महिलाओं ने बताया कि आर्थिक तंगी से परेशान होकर उन्होंने आत्महत्या करने का प्रयास किया।
- 94 प्रतिशत एकल महिलाओं ने बताया कि वे अपने जीवन को असुरक्षित मानती हैं।

- 82 प्रतिशत एकल महिलाओं ने बताया कि बच्चों एवं दोस्तों के अलावा परिवार से कभी स्नेह नही मिलता हैं।
- 44 प्रतिशत एकल महिलाओं का मानना है कि बढ़ती महंगाई में बच्चों का खर्चा पूरा करना ही एकल महिलाओं के तनाव का सबसे बड़ा कारण है।
- 92 प्रतिशत महिला धार्मिक रीति रिवाजों में हिस्सा लेना चाहती है, किन्तु घर, परिवार और समाज के लोग उन्हें शामिल नही होने देते।
- 58 प्रतिशत एकल महिलाओं ने बताया कि धार्मिक कार्यक्रम में भाग न लेने का दबाव सबसे ज्यादा परिवार का होता है।
- 68 प्रतिशत एकल महिलाओं ने बताया कि रीति–रिवाज में सहूलियत के हिसाब से बदलाव लाना चाहिए।

नई दिल्ली की मलिन बस्तियों व आस–पास के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्था जागोरी वर्ष 2007 से दिल्ली की बस्तियों में एकल महिलाओं के साथ काम करना शुरु किया तो उन्हें अनेकों हैरतअंगेज जानकारियां प्राप्त हुई, जिसके अनुसार एकल औरतें, वे चाहे हिन्दू धर्म में हों या मुस्लिम धर्म में, अमीर हों या गरीब, सभी को गैर बराबरी का दंश झेलना पड़ता है। जागोरी के अनुसार एकल औरतें वे औरतें या महिलायें हैं,– जो शादी के रिश्ते से बाहर हैं, विधवा औरतें, छोड़ी हुई औरतें, वैश्या, साध्वी। पति न होने से उनकी समस्यायें शादीशुदा औरतों से अलग हैं। ऐसा नहीं है कि शादी–शुदा औरतों को अपने सारे हक मिल जाते हैं, लेकिन कानून और समाज उनके कुछ हक मानता हैं, लेकिन एकल औरत को इस तरह की कोई भी कानूनी और सामाजिक मान्यता व सामाजिक सुरक्षा प्राप्त नहीं है। वो तो बस एक बदनाम रंडी या फिर बेचारी बन जाती हैं।

जागोरी की सुश्री कमला भसीन के अनुसार, अकेली औरत के दर्द को अकेली औरत ही समझ सकती है। ये डोर ही अनोखी है, जो हर एकल पीड़ित महिला को दूसरी एकल पीड़ित महिला से जोड़ती है।

दिनांक 03 अप्रैल 2011 के राष्ट्रीय सहारा लखनऊ संस्करण पृष्ठ 16 के अनुसार, लंदन में सबसे अधिक सिंगल मदर पाई जाती हैं। समाचार पत्र में प्रकाशित समाचार के अनुसार ब्रिटेन में सिंगल मदर की संख्या दूसरे किसी भी यूरोपीय देशों के मुकाबले अधिक है। ब्रिटेन में हर पंद्रहवें घर में अपने बच्चों के साथ अकेली महिला आपको दिख जायेगी। न सिर्फ एस्टोनिया में इसकी संख्या अधिक है, बल्कि 27 देशों में किए गए सर्वे में यह बात सामने आई कि ब्रिटेन में कपल्स फेमिली की संख्या काफी कम है।

समाचार के अनुसार, यूरोपियन देशों के सांख्यिकी सलाहकार यूरोस्टेट के विश्लेषक इस तथ्य तक पहुँचें हैं कि ब्रिटेन के कर और लाभ प्रणाली मामले में फायदा होने के कारण लोग सिंगल रहना पसंद करते हैं। यही कारण है कि और कहीं के मुकाबले पश्चिमी दुनिया के लोग पारम्परिक परिवारों के खिलाफ हैं। बच्चों के साथ रहने वाले वैवाहिक जोड़े सिंगल पैरेंट की तुलना में 73 फीसदी अधिक टैक्स देते हैं। इस शोध में यह बात भी सामने आई है कि वर्ष 2009 में ब्रिटेन में 6.7 फीसदी घरों में सिंगल मदर अपने 15 साल या इससे अधिक उम्र के बच्चों के साथ रह रही थीं।

ब्रिटेन जैसी स्थिति आयरलैण्ड, तीन बॉल्टिक देश, लातविया के अलावा लिथुआनिया, और एस्टोनिया भी हैं। लेकिन ब्रिटेन में आज हर पांचवे घर में अपने बच्चों के साथ कपल्स रह रहे हैं।

लातविया और बुलगेरिया में ऐसे लोगों की संख्या काफी कम है। वास्तविक तौर पर सिंगल मदर के बच्चे स्कूलों में बेहतर प्रदर्शन नहीं करते। साथ ही, उनका न तो स्वास्थ्य बेहतर होता है और जल्द ही वे अपराध की ओर कदम बढ़ा देते हैं। रिसर्च में यह भी पाया गया कि सिंगल पैंरेट परिवार की लडकियाँ युवा होते ही गर्भवती हो जाती हैं।

आज आवश्यकता इस बात की है कि एकल महिलाओं के अधिकारों व जरुरतों को पहचाना जाये, एकल औरतों के लिए वित्तीय सुरक्षा के तहत् घर/मकान का पट्टा, जमीन का पट्टा, राशनकार्ड आदि शासकीय सुविधायें मुहैया कराई जायें। एकल औरतों के जायदाद आधारित मुकद्मों पर ठीक से ध्यान देने की आवश्यकता है। उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उन्हें उचित स्वास्थ्य सुविधायें भी मुहैया कराई जानी चाहिये।

साथ ही देखा जाये तो ब्याह न करने की कोई एक वजह नहीं होती, कभी परिवार की जिम्मेवारियां, मजबूरियां, कभी कैरियर, तो कभी समाज में शादी के बाद घर टूटने, बहुओं को जलाने जैसी घटनाओं को देखकर लड़कियों को विवाह के नाम से ही चिढ़ हो जाती है और लड़कियाँ विवाह न करने का फैसला कर लेती हैं।

प्रायः कामकाजी एकल महिलाओं का मानना होता है कि उम्र के पाँचवें या छठवें दशक में अकेलेपन का आभास होता है। कभी कभी उन्हें यह लगने लगता है कि काश, अपना भी एक घर होता।

फिर भी आज समाज में अविवाहित लड़कियों की संख्या जिस तरह बढ़ रही है, यह निश्चय ही पूरे समाज के लिए चिन्ता की बात है। लड़कियों को शादी करने के लिए पुरुष–प्रधान समाज में नारी को बराबर का दर्जा देना होगा, और नारी को अपने से हेय समझने की प्रवृत्ति पुरुषों को त्यागनी होगी, जब तक सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में बदलाव नहीं होगा, तब तक वे विवाह या पुनर्विवाह के लिए उन्मुख नहीं होंगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- मृदुला हालन, जुलाई (प्रथम) 1987, सरिता,
- जी0के0अग्रवाल, सामाजिक समस्यायें, (1996), साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा
- नूर फातिमा, घर प्रभात, मई 1997, न्यूट्रल पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड, रांची
- महिला आन्दोलन का छठा राष्ट्रीय सम्मेलन, दिसम्बर 28–30, 1997, रिपोर्ट, द्वारा जागोरी, नई दिल्ली
- आपका पिटारा, फरवरी–मार्च 2000, सद्भावना ट्रस्ट प्रकाशन, द्वारा निरन्तर, नई दिल्ली
- आदित्य, मेरी सहेली, अक्टूबर 2000, पायनियर बुक कं0 प्रा0 लिमिटेड, मुम्बई
- डा.एस.आर.बाजपेयी (2002) सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण (किताब घर कानपुर)
- आदित्य, मेरी सहेली, अक्टूबर 2004, पायनियर बुक कं0 प्रा0 लिमिटेड, मुम्बई
- एम0एल0 शर्मा (2005) भारतीय सामाजिक समस्यायें नगीन प्रकाशन मेरठ
- डा0 राम अहूजा (2007) भारतीय सामाजिक समस्यायें, साहित्य भवन प्रकाशन आगरा।
- एम0एल0 गुप्ता एवं डी0डी0 शर्मा (2008) भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक समस्यायें
- डा0 एम0एम0 लवानिया, शशि जैन, (2008) भारतीय महिलाओं का समाजशास्त्र,
- राम अहूजा, सामाजिक समस्याऐं, 2009, साहित्य प्रकाशन, आगरा
- शशि मौर्या, न्याय की तलाश में झूलती महिलाएँ. 2003, सहयोगनी, छतरपुर
- महिला हिंसा व जेण्डर समानता पर पुरूषों में बदलाब की संभावनाओं की तलाश – मैसवा, लखनऊ
- मुमकिन है महिलाओं पर हिंसा का अन्त – ऑक्सफैम (इण्डिया) ट्रस्ट
- शोधपत्र – महिलाओं के प्रति हिंसा (बुन्देलखण्ड के सन्दर्भ में) 2009 (डॉ0 मुहम्मद नईम, डा0 आर0वी0 सिंह) प्रस्तुतिकरण मैसवा संगोष्ठी, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- लेख – महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा, 2000, डॉ0 मुहम्मद नईम, राधाकमल मुकर्जी चिन्तन परम्परा, बिजनौर,
- राष्ट्रीय सहारा, दिनांक 03 अप्रैल 2011 (रविवार) लखनऊ संस्करण

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत में महिलाओं की पदस्थिति का वर्तमान परिदृश्य : एक विश्लेषण

डॉ0 ममता आनन्द
प्रवक्ता–समाजशास्त्र
महिला महाविद्यालय, बहराइच, उ.प्र.

भारतीय संविधान जिसमें महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त हैं, के लगभग छः दशक बाद भी स्त्रियों का उत्पीड़न किया जा रहा है। कारण भले ही आज हम 21वीं सदी में पहुंच गये हों, लेकिन हमारी मानसिकता उसी हजारों, साल पुरानी हिन्दू जड़वत सामाजिक व्यवस्था, रूढ़ियों, परम्पराओं एवं हिन्दू धर्मशास्त्रों, की पोषक है, जिसमें महिलाओं के शोषण की अनेकानेक मान्यतायें/युक्तियां सुझायी गयी हैं।

प्राचीन 'धर्म ग्रन्थों' में महिलाओं को भारतीय समाज में 'अर्द्धांगिनी, गृह–स्वामिनी' एवं 'देवी' जैसे शब्दों से सम्बोधित करते हुए, महिमामण्डित किया गया है, किन्तु व्यावहारिक रूप में यह सम्मान उन्हें कभी भी प्राप्त नहीं हुआ। बल्कि इनकी आड़ में और भी उनका शोषण एवं उत्पीड़न होता रहा है। कोई दिन ऐसा नहीं जाता होगा, जबकि दैनिक पत्र–पत्रिकाओं में महिलाओं के ऊपर हो रहे अपराध, हिंसा या बर्बरता की खबर न हो। महिलाओं को अत्यधिक कानूनी सुविधा प्राप्त होने के साथ तथा महिला–आन्दोलन, समाज सेवी संगठनों, राजनेताओं के भरसक प्रयत्नों के पश्चात् भी महिलायें पुरुषों द्वारा अमानवीय हिंसा की शिकार हो रही हैं। आज भी महिलाओं को मारा–पीटा जाता है, दहेज के लिए उनके माता–पिता को मजबूर किया जाता है, बलात्कार, यौन–उत्पीड़न किया जा रहा है। महिलाओं के विरूद्ध हिंसा एक पुरूष के मानसिक असंतुलन एवं भावनात्मक अस्थिरता व अपरिपक्वता का पहलू है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा विवाह के संन्दर्भ में अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, जबकि पति, जिसके लिए यह समझा जाता है, कि वह अपनी पत्नी से प्रेम करेगा और उसे सुरक्षा प्रदान करेगा, उसे पीटता है। एक स्त्री के लिए उस आदमी द्वारा पीटा जाना, जिस पर वह सर्वाधिक विश्वास करती थी, एक छिन्न–भिन्न करने वाला अनुभव होता है। हिंसा, चांटे और लात मारने से लेकर हड्डी तोड़ना, यातना देना, मार डालने की कोशिश और हत्या तक हो सकती है''।

घरेलू हिंसा की परिभाषा – इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये प्रत्यर्थी का कोई कार्य, लोप या किसी काम का करना या आचरण, घरेलू हिंसा गठित करेगा यदि वह–

(क) व्यथित व्यक्ति के स्वास्थ्य, सुरक्षा, जीवन, अंग की या चाहे उसकी मानसिक या शारीरिक भलाई की अपहानि करता है, या उसे कोई क्षति पहुँचाता है या उसे संकटापन्न करता है या उसकी ऐसा करने की प्रवृत्ति है और जिसके अन्तर्गत शारीरिक दुरूपयोग, लैंगिक दुरूपयोग, मौखिक और भावनात्मक दुरूपयोग और आर्थिक दुरूपयोग कारित करना भी है; या (Harms or injures or endangers the health, safety, life, limb or well-being, whether mental or physical, of the aggrieved person or tends to do so and includes causing physical abuse, sexual abuse, verbal and emotional abuse and economic abuse; or)

(ख) किसी दहेज या अन्य संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए किसी विधि विरूद्ध मांग की पूर्ति के लिए उसे या उससे सम्बन्धित किसी अन्य व्यक्ति को प्रपीड़ित करने की दृष्टि से, व्यथित व्यक्ति का उत्पीड़न करता

है या उसकी अपहानि करता है या उसे क्षति पहुँचाता है या संकटापन्न करता है; या (Harasses, harms, injures or endangers the aggrieved person with a view to coerce her or any other person related to her to meet any unlawful demand for any dowry or other property or valuable security; or)

(ग) खण्ड (क) या खण्ड (ख) में वर्णित किसी आचरण द्वारा व्यथित व्यक्ति या उससे सम्बन्धित किसी व्यक्ति पर धमकी का प्रभाव रखता है; या (Has the effect of threatening the aggrieved person or any person related to her by any conduct mentioned in clause (a) or clause (b); or)

(घ) व्यथित व्यक्ति को, अन्यथा क्षति पहुँचाता है या उत्पीड़न कारित करता है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक। (Otherwise injures or causes harm, whether physical or mental, to the aggrieved person.)

स्पष्टीकरण 1– इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(i) शारीरिक दुरूपयोग– से ऐसा कोई कार्य या आचरण अभिप्रेत है जो ऐसी प्रकृति का है, जो व्यथित व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा, अपहानि या उसके जीवन, अंग या स्वास्थ्य को खतरा कारित करता है या उससे उसके स्वास्थ्य या विकास का ह्रास होता है और इसके अन्तर्गत हमला, आपराधिक अभित्रास और आपराधिक बल भी है; (*Physical Abuse*- means any act or conduct which is of such a nature as to cause bodily pain, harm , or danger to life, limb, or health or impair the health or development of the aggrieved person and includes assault, criminal intimidation and criminal force;)

(ii) लैंगिक दुरूपयोग– से लैंगिक प्रकृति का कोई आचरण अभिप्रेत है, जो महिला की गरिमा का दुरूपयोग, अपमान, तिरस्कार करता है या उसका अन्यथा अतिक्रमण करता है; (*Sexual Abuse*- includes any conduct of a sexual nature that abuses humilities, degardes or otherwise violates the dignity or woman;)

(iii) मौखिक और भावनात्मक दुरूपयोग– के अन्तर्गत निम्नलिखित हैं, –

(क) अपमान, उपहास, तिरस्कार, गाली और विशेष रूप से संतान या नर बालक के न होने के सम्बन्ध में अपमान या उपहास; और (*Verbal and emotional abuse*- Insults, ridicule, humiliation, name, calling and insults or ridicule specially with regard to not having a child or a male child; and)

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा कारित करने की लगातार धमकियां देना, जिसमें व्यथित व्यक्ति हितबद्ध है; (Repeated threats to cause physical pain to any person whom the aggrieved person is interested;)

(iv) आर्थिक दुरूपयोग– के अन्तर्गत निम्नलिखित हैं –

(क) ऐसे सभी या किन्हीं आर्थिक या वित्तीय संसाधनों, जिनके लिए व्यथित व्यक्ति किसी विधि या रूढ़ि के अधीन हकदार है, चाहे वे किसी न्यायालय के किसी आदेश के अधीन या अन्यथा संदेय हों या जिनकी व्यथित व्यक्ति, किसी आवश्यकता के लिए, जिसके अन्तर्गत व्यथित व्यक्ति और उसके बालकों, यदि कोई हों, के लिए घरेलू आवश्यकताएं भी हैं, अपेक्षा करता है, किन्तु जो उन तक सीमित नहीं हैं, स्त्रीधन, व्यथित व्यक्ति के संयुक्त रूप से या पृथक्तः स्वामित्वाधीन सम्पत्ति, साझी गृहस्थी और उसके रखरखाव से सम्बन्धित भाटक का संदाय, से वंचित करना।

(ख) गृहस्थी की चीजबस्त का व्ययन, आस्तियों का चाहे वे जंगम हो या स्थावर, मूल्यवान वस्तुओं, शेयरों, प्रतिभूतियों, बंधनपत्रों और उसके सदृश या अन्य संपत्ति का, जिसमें व्यक्ति कोई हित रखता है या घरेलू नातेदारी के आधार पर उसके प्रयोग के लिए हकदार है या जिसकी व्यथित व्यक्ति या उसकी संतानों द्वारा युक्तियुक्त

रूप से उपेक्षा की जा सकती है या उसके स्त्रीधन या व्यथित व्यक्ति द्वारा संयुक्ततः या पृथक्तः धारित किसी अन्य सम्पत्ति का कोई अन्य संक्रामण; और

(ग) ऐसे संसाधनों या सुविधाओं तक, जिनका घरेलू नातेदारी के आधार पर कोई व्यथित व्यक्ति, उपयोग या उपभोग करने के लिए हकरदार है, जिसके अन्तर्गत साझी गृहस्थी तक पहुँच भी है, लगातार पहुंच के लिए प्रतिषेध या निर्बन्धन। यह अवधारित करने के लिये कि क्या प्रत्यर्थी का कोई कार्य, लोप या किसी कार्य का करना इस धारा के अधीन है। 'घरेलू हिंसा' का गठन करता है, मामले के सम्पूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किया जाएगा।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की प्रकृति है :

1. कामवासना के उद्देश्य से की गयी हिंसा।
2. आपराधिक मानसिकता।
3. परिवार की आर्थिक तंगी और तनावपूर्ण वातावरण।
4. सम्पत्ति को ध्येय में रखकर की गयी हिंसा।
5. पुरुषों के झूठे अहम् का वहम् आदि महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को अंजाम देने वाले प्रायः वे होते हैं, जो–
   (I) हीनभावना से तथा अवसादग्रस्त होते हैं,
   (II) मानसिक रूप से कमजोर होते हैं अथवा मनोरोगी होते हैं,
   (III) जिनका जीवन अभाव में गुजरता है,
   (IV) बचपन में हिंसक वातावरण में पले–बढ़े हों,
   (V) शराबी,
   (VI) शंकालु स्वभाव के होते हैं आदि।

भारतीय समाज में महिलाएं इतने लम्बे काल से अवमानना, यातना और शोषण की शिकार रहीं हैं, जितने काल के हमारे पास सामाजिक संगठन और पारिवारिक जीवन के लिखित प्रमाण उपलब्ध हैं। अग्नि पुराण (169) में बताया गया हैं कि 'स्त्री हत्या करने वाले को 'कुत्ते', 'उल्लू' और कौवे की हत्या के बराबर पाप लगता है।' मनुस्मृति के अनुसार 'स्त्री के अपराध करने पर उसे बांस के डंडे से मारना चाहिए।' विचारधाराओं, संस्थागत रिवाजों और समाज में प्रचलित प्रतिमानों ने महिलाओं के उत्पीड़न में काफी योगदान दिया है। इनमें से कुछ व्यावहारिक रिवाज आज भी पनप रहे हैं।

घरेलू हिंसा : एक विश्वव्यापी समस्या :

महिलाओं के विरूद्ध किए जाने वाली हिंसा सम्बन्धित अध्ययनों से यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि भारत सहित दुनियां के सभी देश किसी न किसी रूप में महिलाओं के विरूद्ध होने वाली घरेलू हिंसा की समस्या का सामना कर रहे हैं। यह बात अलग है कि विकसित देशों में इसका प्रतिशत बहुत कम हैं, लेकिन तीसरे विश्व के देशों विशेषकर दक्षिण एशिया के देशों में इसकी स्थिति चिंताजनक कही जा सकती है। दक्षिण एशिया के प्रमुख देशों भारत, नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान, अफगानिस्तान एवं श्रीलंका में महिलाओं के विरूद्ध होने वाली घरेलू हिंसा में उत्तरोत्तर वृद्धि देखने को मिलती है। इन देशों में घरेलू हिंसा पर किये गये अध्ययनों से स्पष्ट होता है, कि पाकिस्तान में 80 % महिलाएं घरेलू हिंसा का सामना करती हैं, सर्वेक्षणों से यह ज्ञात होता है, कि श्रीलंका में 60 % महिलाएं घरेलू हिंसा से पीड़ित हैं। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ है, कि चिली, मैक्सिकों, पापुआ, न्यूगिनी और कोरियाई गणतंत्र में दो तिहाई विवाहित युवतियों के साथ परिवार में हिंसक व्यवहार किया जाता है। न्यूयार्क से प्रकाशित 'ट्रिब्यूशन' के अनुसार – अमेरिका में छः में एक महिला अपने पति द्वारा पीटी जाती है

तथा 67 प्रतिशत घरों में महिलाओं के साथ पतियों द्वारा मारपीट होती है। पाकिस्तान में 99 प्रतिशत गृहणियां और 77 प्रतिशत काम–काजी महिलाएं पतियों द्वारा प्रताड़ना और हिंसक घटनाओं की शिकार होती हैं। भारत में महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की स्थिति दक्षिण एशिया के अन्य देशों की तुलना में और भी अधिक गम्भीर है। महिलाओं की जितनी हत्याएं होती हैं, उनमें बांग्लादेश ब्राजील, कीनिया, पापुआ, न्यूगिनी और थाइलैण्ड में आधी से अधिक महिलाओं की हत्या वर्तमान या भूर्तपूर्व पतियों द्वारा की जाती है। वहीं इन देशों में महिलाओं की आत्महत्या का प्रमुख कारण वैवाहिक झगड़े और हिंसा होती है। जहाँ अमेरिका में प्रतिवर्ष 30 हजार महिलाओं की हत्या होती है, वहीं भारत में प्रतिदिन 33 महिलाएँ या तो जिन्दा जला दी जाती है या मार दी जाती है। भारत में हर 102 मिनट में एक दहेज सम्बन्धित हत्या होती है। लगभग 70 प्रतिशत पीड़ित महिलाएं 21–24 वर्ष की आयु समूह की होती है। मध्यम वर्ग की महिलाओं के उत्पीड़न की दर निम्न वर्ग या उच्च वर्ग की स्त्रियों से अधिक होती है।

हमारी परम्पराएं पितृसत्तात्मक होने के कारण स्त्री की उपेक्षा एवं पुरूषों को महत्व देती हैं, सोलहवीं शताब्दी की सामन्ती सोच पुरूषों में आज भी कायम है। सामाजिक जागरूकता और विकास के आंकड़े कुछ भी कहें, हकीकत यही है, कि स्त्रियों के प्रति परम्परगत पुरूषवादी रवैये में कोई बदलाव नहीं आया हैं, जिस पश्चिम उपभोक्तावाद को अक्सर हम समाज की मूल्य विहीनता के लिए दोषी ठहराते हैं, उससे जन्मी नई जीवन शैली में स्त्री उत्पीड़न कम होना चाहिए, पर ऐसा नहीं हो पा रहा है, क्योंकि स्त्रियों के मामले में हमारा यह समाज चेतना के स्तर पर सामन्ती हैं। एक ओर हम आधुनिकता की बात करते हैं, बदलाव की बात करते हैं, पर विचारों व मानसिकता में जो बदलाव अपेक्षित हैं, वह अभी तक नहीं हुआ है।

महिलाओं को प्रभावित करने वाले अपराधों की सूची

क्र. सं.	अपराध	भारतीय दण्ड संहिता की धारा	अधिकतम सजा
1	दहेज मृत्यु	304 बी	आजीवन कारावास
2	आत्महत्या के लिए दबाव डालना	306	10 वर्ष
3	कत्ल करने की कोशिश	307	आजीवन कारावास
4	मार–पीट गम्भीर चोट पहुँचाना	319,323	3 माह से 7 वर्ष
5	औरत की शालीनता भंग करने की मंशा से हिंसा या जबरदस्ती करना	354	2 वर्ष
6	पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा औरत पर क्रूरता	498–ए	3 वर्ष
7	बेइज्ज़ती करना, झूठे आरोप लगाना	499	2 वर्ष
8	महिला की शालीनता को अपमानित करने की मंशा से अपशब्द कहना या अश्लील हरकतें करना	509	1 वर्ष
9	ऐसे कार्य जिनमें दूसरों की सुरक्षा और जीवन पर खतरा उत्पन्न हो	334,336,338 336	3 माह से नरम 7 माह से कठोर
10	नज़रबन्द रखना (साधारण या 10 दिन से अधिक)	340 344	3 वर्ष 7 वर्ष

भारतीय पार्लियामेन्ट ने 1983 में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कानून बनाया जिसने पहली बार घरेलू हिंसा को कानूनी मोहर लगाई, इसके अन्तर्गत पति या उसके सम्बन्धी पत्नी के साथ क्रूरता या हिंसा करते हैं, तो वह

कानूनी दण्ड का भागी होगा, साथ ही यह भी संशोधन किया गया, कि यदि पत्नी अपने विवाह के 7 वर्ष के अन्दर आत्महत्या करती है, तो पति व उसके परिवार के सदस्य को जिम्मेदार माना जायेगा, इतना कानूनी संरक्षण प्रदान करने के बाद भी महिलायें चाहे किसी भी जाति धर्म या वर्ण की हों शिक्षित हों या अशिक्षित, रोजगार करने वाली हों या न करने वाली हों किन्तु आर्थिक व राजनैतिक शक्ति पुरुषों के हाथों में होने के कारण उनके साथ अत्याचार व हिंसात्मक व्यवहार होना स्वाभाविक ही है।

जनगणना 2001 के अनुसार सन् 1951 में केवल 8.86% शिक्षित महिलाएं थी, किन्तु वर्तमान समय में उनका शैक्षिक स्तर बढ़कर 54.16% हो गया है, जो पुरुषों की तुलना में कम ही है,जो निम्न सारणी से स्पष्ट है :–

Year	Total Literacy (in Percent)	Women Literacy (in Percent)
1951	18.33	08.86
1991	52.11	39.25
2001	60.38	54.16

वर्ष 2001 को यू0एन0ओ0 द्वारा महिला अधिकार वर्ष घोषित किया गया है। डा0 सरला गोपालन, (सचिव, भारत सरकार महिला एवं शिशु विकास विभाग,मानव संसाधन मंत्रालय) ने एक अवसर पर कहा कि विष्व की महिलायें अवसर और सुविधाओं से लिंग भेद के कारण वंचित है। संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायता से महिलाओं की पद स्थिति में सुधार करना तथा समान विकास शक्ति स्थापित करना, उन्हीं के शब्दों में – "The women of the world have been affected more by poverty. Lake of opportunities and facilities owing to the innate discrimination an equal status with men. In the last twenty years there has been a globle effort with a strong support from the United Nations to understand the discrimination and restore the status to women. The slogan has been equality development and peace.

वास्तविकता ये है, कि भारत में महिलाओं के शैक्षिक स्तर में अत्यधिक वृद्धि होने के बावजूद, यू0एन0ओ0 की महिलाओं में सशक्तिकरण की घोषणा के बाद भी, भारत सरकार द्वारा महिलाओं को पुरुषों के समान बराबरी का कानूनी अधिकार प्रदान करने के बाद भी, आज भी महिलाओं की पद स्थिति अत्यन्त निम्न है। वे मारी–पीटी जाती हैं, बलात्कार, आत्महत्यायें, हत्यायें, दहेज उत्पीड़न एवं अनेक प्रकार के भेद–भाव अपमान अमानवीय व्यवहार का केन्द्र बिन्दु बनी हुयी है। (University news, Monday March 25, 1996.)

भारत एवं उसके राज्यों में अनुसूचित – जातियों की जनसंख्या जनगणना 2001 के अनुसार – भारत की कुल जनसंख्या में से 16.5% जनसंख्या अनुसूचित जातियों की है। जिसमें सबसे अधिक 28.9% अनुसूचित जातियां पंजाब में है इसके बाद घटते हुए क्रम में क्रमशः हिमांचल प्रदेश (24.7%), पश्चिम बंगाल (23.2%), हरियाणा (19.35%), तमिलनाडू (19.0%) एवं उत्तर प्रदेश (2.11%), में हैं ।

पुरुष–महिला लिंग अनुपात जनगणना 1901–2001 के अनुसार :–

जनगणना वर्ष	स्त्री–पु0 अनुपात प्रति हजार पु. में महि.
1901	972
1911	964
1921	955
1931	950

1941	945
1951	946
1961	941
1971	930
1981	934
1991	926
2001	933

उपयुर्क्त सारणी से स्पष्ट हैं, कि देश में प्रारम्भ से ही स्त्री– पुरुष अनुपात स्त्रियों के प्रतिकूल रहा हैं, किन्तु परिवार नियोजन के नाम पर कुछ स्थितियों में गर्भपात को वैध घोषित किये जाने को लड़कों की चाहत रखने वाले लोगों ने बालिकाओं की भ्रूण हत्या करानी शुरू कर दी, यही कारण है, कि लगातार पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या, विभिन्न राज्यों में निरन्तर कम होती जा रही है।

भारत[4] में ही नहीं बल्कि विश्व के सभी देशों में महिलायें अपने आपको असुरक्षित महसूस करती हैं और उनके प्रति हिंसा का डर सदैव बना ही रहता है। 'Violence Against Women in the United States' अमेरिका में महिलाओं के प्रति हिंसा का यह रूप देखें –

1. हत्या :– इस देश में घरेलू हिंसा के परिणामस्वरूप हत्या होती है, जिसमें या तो पति द्वारा या उनके दोस्तों द्वारा महिलाओं की हत्या की जाती है। F.B.I. के अनुसार – एक साल में लगभग 1400 महिलाएँ अपने पति या अपने दोस्तों के द्वारा मारी जाती है।

2. पति द्वारा पत्नी को पीटना :– लगभग एक लाख 70 हजार महिलायें पति द्वारा पीटी जाती हैं, उनको अस्पताल में भर्ती कराया जाता है।

3. यौन उत्पीड़न :– लगभग एक लाख 32 हजार महिलाओं ने बताया कि या तो वे बलात्कार का शिकार हैं, जिनमें से आधी से ज्यादा महिलायें बलात्कार करने वालों को पहुँचानी हैं। यद्यपि इस प्रकार की दुगुनी एवं छः गुनी महिलायें कोई सूचना नहीं देती है। प्रत्येक वर्ष 12 लाख महिलायें अपने पति या अपने दोस्त द्वारा बलात्कार का शिकार होती है।

4. लक्ष्य :– पुरुषों की तुलना में 10 गुनी महिलायें अपने सबसे निकट सम्बन्धियों द्वारा उत्पीड़ित की जाती हैं। युवा महिलायें जो तलाकशुदा हैं; परित्याग तथा जो अकेले रहती हैं। बहुत निम्न आर्थिक आय की महिलायें तथा अमेरिका में अफ्रीकन महिलायें जो समलैंगिक पुरूष हैं, वे भी हिंसा का शिकार हो रही हैं।

5. बच्चों के ऊपर प्रभाव :– हिंसात्मक बाल अपराधी जैसे घरों में जहाँ पर हिंसा होती रहती है, में पले हैं, और जब वे बड़े होते हैं, तो हिंसा का प्रयोग करते हैं।

6. स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं का प्रभाव : जो महिलाएँ मारी–पीटी जाती हैं, उनका स्वास्थ्य बनाये रखने की तुलना में, जो नहीं मारी पीटी जाती उनसे दुगुना से अधिक होता है। लगभग 70 प्रतिशत गर्भवती महिलाओं ने बताया कि वे मारी–पीटी जाती हैं, जिससे या तो उनका गर्भपात हुआ या उनके बहुत कम वजन का बच्चा हुआ, जो उपेक्षित हैं और गाली–गलौज पायी जाने वाली महिलायें में अधिकतर आत्महत्या की शिकार होती हैं। या घर से बाहर होती हैं।

7. LEGISLATIONS – in 1994 esa 'National Organization for women' ने महिलाओं के प्रति हिंसा के लिए एक कानून बनाया, जो कि एक डालर प्रत्येक महिला के प्रति हिंसा की रिपोर्ट किये जाने पर इक्कठ्ठा

होता है। (LEGISLATION: In 1994, the national organization for women, the now legal defiance and education fund, organization finally secured passage of the violence against women act, which provides a record breaking $ address issues of violence against women)

महिलाओं के ऊपर हो रहे विभिन्न प्रकार के अत्याचार जैसे–बलात्कार, यौन–उत्पीड़न, बाल–विवाह, महिलाओं को जलाना, मारना–पीटना, दहेज की मांग करना या सती होने के लिए प्रेरित करना एवं जबरदस्ती सती करना आदि का पुर–जोर विरोध किया एवं महिलाओं में इन अत्याचारों के विरुद्ध जागृत पैदा कर उन्हें सशक्त बनाने एवं जनमत तैयार कर उनके न्याय के लिए संघर्ष करने का काम किया ।

महिला आयोग का गठन भी, इन्हीं उद्देश्यों को लेकर किया गया है, किन्तु विडम्बना यह है, कि इन सबके बावजूद भी महिलाओं का उत्पीड़न किया जा रहा है, शिक्षित एवं बड़ी पोस्टों पर कार्यरत पुरुष भी महिलाओं के उत्पीड़न में पीछे नहीं हैं। आर्थिक शक्ति एवं राजनैतिक चेतना के बाद भी महिलायें, इन जघन्य अपराध एवं अमानवीय दृष्टिकोण व व्यवहार की शिकार हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा राम–सामाजिक समस्याएँ : रावत पब्लिकेशन जयपुर, नई दिल्ली 2010 ।
2. Tripathi R.C.- The protection of women from domestic violence Act, 2005 ALONGWITH the protection of women from domestic violence rules, 2006.
3. यादव डॉ0 वीरेन्द्र सिंह– समकालीन परिवेशः विकल्प नीतियाँ और सुझाव, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली–सं. 2010
4. A National Crime Victimization Survey Report U.S.A. 1994

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सूफीमत में सूफी सन्तों की नारी विषयक अवधारणा

डॉ0 (श्रीमती) सुधा सोनी
प्राध्यापक–इतिहास
शा0 कन्या महाविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

इस्लामी रहस्यवाद को ही सूफी धर्म कहा जाता है। सूफी धर्म इस्लामी रहस्यवाद का ही एक रूप है। सूफी धर्म एक सम्प्रदाय भी है और एक आन्दोलन भी। इसने भारत में दिल्ली की सल्तनत स्थापित होने (1206 ई0) के कई वर्षों पूर्व प्रवेश किया था। लेकिन दिल्ली में तुर्की शासन की स्थापना के पश्चात ही बाहरी इस्लामी देशों से सूफी एक बड़ी संख्या में भारत में आये और इसे विभिन्न भागों में बस गये। कालान्तर में सूफी एक बड़ी संख्या सारे उत्तरी भारत में फैल गये ओर उनके नेताओं या शेखों ने देश को अपना–अपना धार्मिक प्रभाव क्षेत्रों में विभाजित कर लिया।

सूफीमत का उद्‌गम तथा विकास –

सूफी शब्द का व्यवहार इस्लाम शब्द धर्म के रहस्यवादी के लिये किया जाता है। सूफी वही कहलाता है। जो तसब्बक का अनुयायी और सारे धर्मों से प्रेम करने वाला होता है। वैसे विद्वानों ने अनेक दृष्टिकोणों से सूफी शब्द को व्यक्त करने का प्रयास किया है। सफ का अर्थ है। ऊन या (बकरी या भेड़ के बाल का कपड़ा) ऊनी कपड़ा। सूफ के वस्त्र जो पहनता था वह सूफी कहलाता था। अनेक विद्वान सफा से सूफी शब्द की व्युत्पत्ति मानते हैं। सफा का अर्थ है पवित्रता या शुद्धता अर्थात् जो आचार–विचार से पवित्र थे वे सूफी कहलाये। देखा जाये तो इस्लाम में हिंसा के बाद से क्षुब्ध 8वीं, 9वीं, शती ई. के कुछ विचारकों ने धर्म के सार पर विचार करते हुये एक पंथ (मत) शुरू किया जो सूफी मत कहलाये। इस मत के विचारक काली, सफेद, ऊनी वस्त्र (सूफ) पहनते थे। अपने आचरण की पवित्रता के कारण वे सूफी कहलाने लगे।

सूफी दर्शन के मूल तत्व –

प्रेम सूफी दर्शन का सार है। सूफी दर्शन में प्रेम का बड़ा महत्व है। प्रेमी जिस प्रकार प्रेमिका के विरह में तड़पता है। उस प्रकार सूफी परमात्मा के विरह में तड़पती है। आत्मा परमात्मा में मिल फना हो जाता है। सूफी दर्शन में वह एक है। वह प्रत्येक वस्तु में है और प्रत्येक वस्तु उसमें है। ब्रह्म (अल्लाह) आदि अनन्त व सर्वशक्तिमान है। वह ही सृष्टि का कर्ता, धर्ता वह हर्ता है। जीव अर्थात् आत्मा एक बन्दे रूप में है। जिसमें ब्रह्म का अंश है। आत्मा शरीर रूपी पिंजड़े में कैद है। किन्तु पिंजड़ा पीछे बना और पक्षी (आत्मा) पहले से ही मौजूद है। पिंजड़े के टूटे बिना पक्षी (आत्मा) स्वाधीन हो सकता है। अतएव मृत्यु का भय है। क्योंकि मृत्यु के बाद ही आत्मा परमात्मा को प्राप्त करती है। फना ब्रह्म मिलन की स्थिति है। जिसके लिये सूफी भक्त (जीव) बेकरार रहता है। फना की सर्वोच्च स्थिति तब होती है। जब फना को प्राप्त कर लेने की चेतना भी विलुप्त हो जाये। इस स्थिति को सूफी लोग फना अल–फना कहते हैं। फना की अंतिम स्थिति अहं का पूर्ण रूप में लोप हो जाता है। जिसे बंका अर्थात् परमात्मा में सतत् निवास करने का आरम्भ माना जाता है।

सूफी रहस्यवादी ब्रह्म और जीव (परमात्मा और आत्मा) के मिलन में शैतान को बाधक मानते हैं। इस शैतान से बचने और सच्चा मार्ग दिखाने के लिये सूफीमत में गुरू को बड़ा माना गया है। सूफीमत का मुख्य कर्तव्य ध्यान व समाधि है प्रार्थना और नाम स्मरण है। इन्हीं साधनों से परमात्मा में मिलन (फना) की ओर अग्रसर होता

है। सूफी मत में संगीत मन को केन्द्रित करता है वह मन को ऊपर उठाने की शक्ति प्रदान करता है। अतः सूफी संगीत के माध्यम से सूफी साधना का अभ्यास होता है। वह सूफी संगीत साधक को भावाविष्टावस्था में पहुँचा देता है। जिससे वह परमात्मा का साक्षात्कार करने लगते है। सूफी संत हृदय की पवित्रता पर बहुत बल देते हैं। वे हृदय को शीशे के समान मानते हैं। जो यदि शुद्ध और पवित्र है। तो उसमें ब्रह्म की छाया भी स्पष्ट होगी।

सूफीमत में नारी की स्थिति –

सूफियों की साधना में प्रेम तत्व प्रधान है। प्रेम ही कर्म है प्रेम ही धर्म है प्रेम ही पंथ है, यहाँ तक कि परमात्मा भी प्रेममय है। प्रेमतत्व की प्रधानता होने के कारण 'नारी' ही प्रेम का स्थान है। किन्तु सूफी कवियों के अनुसार नारी महाविकार नहीं है। सूफी कवियों ने नारी को अपने यहां अपनी प्रेम साधना के सहायक रूप में स्वीकार किया है। जिसके कारण वह किसी प्रेमी के लौकिक जीवन की निरी भोग्य वस्तु मात्र नहीं रह गई। इसी प्रकार वह साधना सामग्री भी नहीं कहला सकती जिसमें उसे बौद्ध सहजयानियों ने 'मुदा' नाम देकर साधना के लिये अपनाया था। वह उन साधकों की दृष्टि में स्वयं एक सिद्धि बनकर आती है और इसी कारण इन प्रेमाख्यानों में उसे अलौकिक गुणों से युक्त बताया गया है। सूफी प्रेम गाथाओं में आमतौर पर सभी नायिकाएँ एक ही सांचे में ढली चली आती हैं किन्तु प्रेम के क्षेत्र में परकीया को कहीं भी प्रश्रय नहीं मिला है। नायक–नायिका का पारस्परिक मिलन विवाह के उपरान्त ही होता है।

सूफीमत साहित्य के सभी साहित्यकारों एवं कवियों ने परमात्मा को प्रेयसी का रूप देकर चित्रित किया है। सूफी कवियों की अधिकांश रचनायें नायिका प्रधान हैं। इनकी प्रेमकथाओं में नायक किसी रमणी के प्रेमपाश में बद्ध होकर योगी होकर निकलता है। अनेक कष्टों को सहकर वह प्रेयसी को प्राप्त करता है। पद्मावत में गुण श्रवण से, चित्रावली में चित्र दर्शन से अनुराग बांसुरी में मोहनयाका देखकर नायक के मन में प्रेम जागता हैं तत्पश्चात सर्वत्र वह प्रेम का ही दर्शन करता है।

जायसी ने नारी को ब्रम्ह स्वरूप माना है। सूफी सिद्धान्तों के अनुसार उन्होंने परमात्मा को भावुक के रूप में स्त्री रूप में देखा है। पद्मावती का चित्रण करते समय लौकिक जगत की सुंदर से सुंदर वस्तुओं और मूल्यवान वस्तुओं के उपमान उसके रूप वर्णन के लिये जुटाये हैं। वही नारी नायक की प्रेमिका है जिसके रूप में परमात्मा का अपार सौन्दर्य विद्यमान है।

सूफी कवियों के अनुसार कन्या माता–पिता की चिन्ता का कारण थी, क्योंकि उस युग में विवाह के नियम कठोर थे। कन्यादान पुनीत कर्तव्य माना जाता था, इस दान से माता–पिता अपना उद्धार माने थे।

आत्मजा जो होत एक, होत सदन उजियार।
कन्यादान हिहै ते होत कुमत हमार

पुत्री के रूप में कन्या पिता के यश–अपयश का कारण मानी जाती थी जो कन्या प्रेम को उसे अपयश के डर से या तो उसे महल में कैद कर दिया जाता था अथवा विशेष परिस्थितियों में मृत्यु के घाट उतार दिया जाता था।

पिता जो सुनै मार जिउ डारै।
माता सुनै घोर विष मारौ।
कासिमशाह – हस जवाहर

सूफी कवियों के पुरुष पात्रों की तुलना में नारी की स्थिति –

सूफी कवियों के कुछ पुरुष पात्र नारी के विचारों को अपने विचारों से अधिक वरीयता नहीं देते। उसके

विचारों का सम्मान करना उनके लिये आवश्यक नहीं। वे उसकी अप्रिय लगने वाली बातों को नहीं मानते। जिस कर्म को करना वे अनुचित मानते हैं उसे नारी द्वारा करने पर उसे प्रताड़ित करते हैं वे भी पुरुष को स्वामी व नारी को सेविका मानते हैं। राजा रत्नसेन नागमती द्वारा हीरामत तोते को मार डाले जाने की सूचना पाकर उस पर बहुत क्रोधित होता है और उसे फटकारता है। उसे कुपथगमिनी, दुष्ट और हत्यारी तक कहता है।

पंडित सुमति देय पथ लावा। जो कुपथि तेहि पंडित न भावां।
पंडित राजा बदन सरेखा। जो हत्यार रूहिर सो देखा।
की परान घट आनहुमती। की चलि होहु सुआ संग सटी।
जिनि जानहु कै औगुन, मंदिर साइ सुखराज।
आयसु मेटें कंत कर, काकर भा न अकाज।।

डा0 वल्लभदास तिवारी ने अपनी पुस्तक हिन्दी काव्य में नारी में लिखा है – इन कवियों ने पत्नियों द्वारा पति की श्रेष्ठता को महत्व प्रदान कराया है। उनकी पत्नी अपना पृथक अस्तित्व न बनाकर पति की अथवा पति के लिये ही हो जो जाना चाहती है, सूफी कवियों ने नारी की पति–भवति, सौतों से ईर्ष्या न करना, पति को सन्तुष्ट रखने के लिये स्वयं कष्ट उठाना।

पतियों से दूर रहना, पति के न रहने पर जीवन त्याग देना और पति न रहने पर श्रृंगार न करना आदि नारी के प्राचीन आदर्शों का भी सुन्दर चित्रण किया है।

औ चित लाइ करब पिउ सेवा। एक पीउ दोउ जग सुत देवा।
मत तंत्र साधव जनि कोई, सेवा एक पीउ बस होई।
सो बस होई तो गरब न करिये, आपु अधीन होई मन हरिये।
सौतिन कर दूरसा नहि करना, साई संग सदा जिय करना।
अलप मानसेवा अधिक, रिसि राखब जिउ मारि।
जेरि घर मंह ते तीन गन, सोई सोहागिन नारि।

सूफी कवियों के नारी पात्र जीवन पर्यन्त पति की सेविका बनकर रहते हैं और पति की मृत्यु के पश्चात उसके न रहने पर अपना भी अस्तित्व मिटा देते हैं। पति की चिता में जलकर उसका सती हो जाना इस बात का प्रमाण है।

डॉ0 तिवारी ने लिखा है पति एक पहुंचने के लिये नारी अपना अस्तित्व तक मिटाकर मार्ग की धुलि तक होने को तैयार है। जिससे वह उड़कर पति के मार्ग में पहुंच जाये।

यह तन जारौ छार कै कहौ कि पवन उड़ऊ।
मकु तेहि मरग होई परौ केत धरै जहां पाउ।।

डा0 तिवारी ने लिखा है आगे – इन कवियों का नारियों का आदर्श पवित्र ही है उन्होंने नारी की परम गति पति की सेवा ही माना है।

सोई पियारी पियहि पिरीती, रहै जो सेवा आयसु जीती।

त्याग, सहिष्णुता और आज्ञापालन भारतीय नारियों का आदर्श रहा है।

सूफी कवियों ने नारी पर लगे हुये सामाजिक बंधनों का चित्रण किया है। उनके काटरा में नारी को चहार दीवारी के भीतर की वस्तु माना गया है। ऐसे स्थलों पर सूफी कवियों का नारी के प्रति अनुदार दृष्टिकोण प्रकट हुआ है।

तब लगि तिरिया नीके अइई, जब लबि मंदिर भीतर रहई।
जब मंदिर सों बाहर कढ़ई कुल की लाज खोय सब गई।।
उनके अनुसार नारी को से बाहर नहीं निकालना चाहिये
पारा लाजवन्ती जो होई, रहे सलज मदीर मां सोई।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. के.ए. निजामी–निरीजन एण्ड पालिटिब्स, पृ. 178
   के.ए. निजामी–मध्यकालीन भारत सम्पादक हरिश्चन्द्र शर्मा, पृ0 410
2. यूसुफ हुसैन मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति, पृ0 788
3. रामधारी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 205
4. रामपूजन तिवारी द्वारा सन्दर्भित प्रथम मालावार में मुसलमान तीर्थयात्रियों का एक संत आया जो सीलोन में आदम के पद चिह्न दर्शन करने जा रहा था, इस संत का नेता शेख शंकर विनय मालिक था। जो करइगनोर (मालाबार) के राजा को धर्मोपदेश द्वारा मुसलमान बनाने में सफल हुआ। लोगों का विश्वास है कि यह घटना हजरत मोहम्मद के जीवनकाल की है।
5. रामपूजन तिवारी–सूफीमत साधना और साहित्य, पृ0 492
6. यूसुफ हुसैन–मध्यकालीन संस्कृति, पृ0 103
7. उपरोक्त, पृ0 136
8. जेड अहमद ए. डिक्शनरी आफ इस्लाम 1885, पृ0 609
9. रामाधारी सिंह दिनकर – संस्कृति क चार अध्याय, पृ0 382
10. उपरोक्त, पृ0 400
11. रामचन्द्र शुक्ल–त्रिवेणी, सम्पादक कृष्णानंद, पृ0 3
12. कृष्णलाल हंस–हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ0 129
13. जायसी ग्रंथावली –सम्पादक राजनाथ शर्मा, पृ0 84
14. वही, पृ0 387
15. डॉ0 सरला शुक्ला–जायसी के परवर्ती हिन्दू सूफी कवि और काव्य लखनऊ विश्वविद्यालय, पृ0 185
16. इन्द्रावती हिन्दी के कवि और काव्य, पृ0 83
17. कासिम शाह – हंस जवाहर, पृ0 39
18. जायसी, ग्रंथवली, पृ0 206
19. डॉ0 वल्लभदास तिवारी–हिन्दी काव्य में नारी, पृ0 35

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सांस्कृतिक एकता के सूत्रधार – महर्षि वाल्मीकि

डॉ. शिवानी शुक्ला
एम.ए., पीएच. डी.
गोविन्द नगर, कानपुर

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि विशाल भारतीय संस्कृति प्रसाद के अप्रतिम शिल्पी हैं। पुरातन आर्य संस्कृति के श्रेष्ठ समरूप तत्वों को चारूतम रूप में उन्होंने अपने कालजयी आदिकाव्य 'रामायण' में चित्रित करते हुए समस्त संसार में महान् भारत देश की विशिष्ट पहचान बना दी है। भारत को छोड़कर विश्व के किसी भी देश ने 'रामायण' जैसे श्रेष्ठ साहित्यिक समुत्कर्षयुक्त महाकाव्य की रचना नहीं की, जिसमें आदर्श, मानव जीवन के स्वाभाविक, सुन्दर तथा समुज्ज्वल सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष की प्रभविष्णु अभिव्यंज्जना पायी जाती है।

परम प्राज्ञ प्राचेतस महर्षि वाल्मीकि ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के नैतिक आदर्श से परिपूर्ण दिव्य जीवन चरित के माध्यम से सहस्त्रों वर्ष पूर्व आदर्श भारतीय समाज के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि विविध पक्षों को स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन राष्ट्र की हमें बांकी– झाँकी दिखाई हैं। उनके इन विविध पक्षीय काव्यात्मक वर्णनों में आदिकवि द्वारा प्रतिपादित राष्ट्र व्यापी सांस्कृतिक एकता विचारणीय है। जिसे उन्होंने तत्कालीन विभित्र क्षेत्रों के मानव समाज में समान रूप से प्रचलित मानवीय संस्कारों को सम्पत्र कराकर अभिव्यक्त किया है।

उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में महोदधि तक सहस्त्रों मील तक विस्तृत इस विशाल देश की सांस्कृतिक एकता को किस प्रकार उन्होंने जन्म से लेकर मृत्यु तक एक से मिलते–जुलते संस्कारों को पारस्परिक रूप से सम्पन्न कराकर अभिव्यक्त किया– राष्ट्रीय एकता की व्यापक सुदृढ़ समान पृष्ठभूमि निर्मिति के लिए यह एक महत्वपूर्ण विचारणीय तथ्य है। चाहे उत्तर में उत्तराखण्ड (आर्यावर्त) का विशाल भूभाग हो, अथवा दक्षिणापथ के सुदूरवर्ती राज्य, चाहे आर्यजन हों अथवा अनार्थ, राक्षस या वानरगण सभी सामाजिक संस्कारगत एकता सूत्र से परस्पर अनुस्यूत एवं निबद्ध परिलक्षित होते हैं।

सामान्यतः शोक या करुणा की अनुभूति सार्वजनीन एवं सार्वभौमिक होती है। जिसे विश्व मैत्री का प्रथम सोपान कहा जाना सर्वथा उपयुक्त ही है। आदिकवि द्वारा स्वयंमनुभूत इसी करूणा की मार्मिकता को हृदय....म कराते हुए व्यापक सम धरातल पर अपने कुछ पात्रों के निधन पर उनके समान अन्त्येष्टि संस्कारों के माध्यम से सांस्कृतिक एकता प्रतिष्ठापित करने का समीचीन प्रयास किया है। यहाँ हम उत्तराखण्ड के हृदयराज कोसल (अवध) के सूर्यवंशी क्षत्रिय आर्य नरेश दशरथ, दक्षिणापथ के सुदूर किष्किन्धा (वर्तमान कर्नाटक के वेल्लारी क्षेत्र के आस–पास) के शासक वानरराज बालि तथा लंकाद्वीप के अधिपति राक्षसराज रावण के मरणोपरान्त उनके शोकाकुल परिवारीजनों द्वारा सम्पत्र अन्त्येष्टि संस्कारों की समानता के विविध मिलते–जुलते बिन्दुओं पर विचार कर रहे हैं–

(1) कोसल महाराज दशरथ, किष्किन्धाधिपति बालि तथा लंकाधिपति रावण–इन तीनों का अन्तिम संस्कार एक समान वैदिक विधि से सम्पत्र हुआ, जिसमें मृतक के शव को भूमि में गाड़ने के स्थान पर अग्नि से दग्ध कर संस्कृत किये जाने का वर्णन किया गया है।

यथा–

(i) महाराज दशरथ के शव के वैदिक रीति से दाह–संस्कार किये जाने से सम्बन्धित ये श्लोक दृष्टव्य हैं–

''ये त्वग्नयो नरेन्द्रस्य अग्न्यागाराद् बहिष्कृतः।
ऋत्विग्भिर्याजकै श्चैव ते हूयन्ते यथाविधि।।''
तदा हुताशनं हुत्वा जेपुस्तस्य तदृत्विजः।
जगुश्च ते यथाशास्त्रं तत्र सामानि सामगाः।।

(रामा. अयोध्या. 76/13, 18)

(ii) इसी प्रकार वानरराज बालि के दाह कर्म से सम्बन्धित प्रस्तुत श्लोक उल्लेखनीय हैं–

ततोऽग्निं विधिवद् दत्तवा सोअपसव्यं चकार ह।
पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः।।

(किष्किन्धा. 25/50)

तुलनीय राक्षसराज रावण के दाहकर्म से सम्बन्धित यह वर्णन –

अग्नयो दीप्यमानास्ते तदाध्वयुं समीरिताः।
स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः।।
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भविमिश्रितान्।।

(युद्ध. 111/110, 120)

(2) सभी मृतकों के शव को परिवारीजनों द्वारा समलंकृत शिविका ;पालकी या विमानद्ध पर लिटाकर सरिता, सागर या सरोवर जैसे जलाशय के तट समीप श्मशानभूमि दाह–संस्कारार्थ लाया जाता था।

(i) राजा दशरथ की शवयात्रा के सन्दर्भ में यह श्लोक दृष्टव्य है–

शिविकायामथामारोप्य राजनं गतचेतनम्।
वाष्पकण्ठा विमनसस्तमुचः परिचारिकाः।।

(राम. अयोध्या, 76/14)

(ii) शवयात्रार्थ शिल्प सौष्ठवयुक्त समलंकृत शिविका बालि के मृत शरीर को कैसी सुलभ हुई, इसके वर्णन में अधोलिखित श्लोक देखें–

दिव्यां भद्रासनयुतां शिविकां स्यन्दनोपमाम्।
पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्मविभूषिताम्।।
आचितां चित्रपत्तीभिः सुनिविष्टां समन्ततः।
विमानमिव सिद्धानां जालवातायनायुताम्।।
सुनियुत्क्तं विशालां च सुकुतां शिल्पिभिः कृताम्।
दारूपर्वतकोपेतां चारूकर्मपरिष्कृताम्।
वराभरणहारैश्च चित्रमाल्योपशोभिताम्।
गहागहनसंच्छत्रां रक्त चन्दनभूषिताम्।।
पुष्पौर्धः समधिच्छत्रां पद्यमालाभिरेव च।
तरुणादित्य वर्णाभिभ्रजिमानाभिरा वृताम्।।

ईदृशी शिविकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
क्षिप्रं विनीयतां बाली प्रेतकार्य विधीयताम्।।

(रामा. किष्किन्धा 25/22/27)

ततो बालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिविकां तदा।
आरोपयत विक्रोशत्रडग्देन सहैव तृ।।

(किष्किन्धा. 25/28)

(iii) राक्षसराज रावण के शव के लिए प्रयुक्त शिविका का यह वर्णन देखिये

ततो माल्यवता सार्ध क्रियामेव चकार सः।
सौवर्णीं शिविकां दिव्यामारोप्य क्षौमवाससम्।।
रावणं राक्षसाधीशमश्रुवर्णमुखाः द्विजाः।
तूर्यघोषैश्च विविधैः स्तुवद्भिश्चाभिनन्दितम्।।

(युद्ध 111/107–108)

3. मृतक की शवयात्रा में शिविका मार्ग में सामान्यतः समृद्ध मृतक के शोकाकुल परिवारीजन शव पर सुवर्ण, हिरण्य, वस्त्र, रत्न, आभूषण, आदि बिखेर देते थे। यथा–

(i) महाराज दशरथ को शवयात्रा में यह वर्णन देखें–

हिरण्यं च सुवर्ण च वासांसि विविधानि च।
प्रक्रिरन्तो जना मार्गे नृपतेरग्रतो ययुः।।

(अयोध्या 76/15)

(ii) तुलनीय वानरराज बालि की शवयात्रा विषयक यह वर्णन –

विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहूनि च।
अग्रतः प्लवगा यान्तु शिविका तदनन्तरम्।।

(किष्किन्धा, 25/36)

(iii) इसी प्रकार राक्षसराज रावण की शव यात्रा वर्णन दृष्टव्य है–

मणिमुक्ता प्रवालानि निर्वापयति राक्षसः।
आजगाम मुहूर्तेन राक्षसै पारिवारित।।

(युद्ध. 111/106)

4. मृतक के शव के साथ श्मशानभूमि तक परिवारीजनों के साथ ही उसकी शोकाकुल स्त्रियाँ भी जाती हैं। इस दृष्टि से कौशल्या, तारा और मन्दोदरी जैसी दुःखी रानियों की श्मशानभूमि में एक समान समुपस्थिति दृष्टव्य है। यथा–

(i) कौशल्या का दशरथ के शव के साथ जाना।

शिविकाभिश्च यानैश्च यथार्ह तस्य योषितः।
नगरात्रियर्युस्तत्र वृद्धै परिवृतास्तथा।।
स्त्रियश्च शोकसंतप्ताः कौसल्या प्रमुखास्तदा।
क्रौंचीनामिव नारीणां निनादस्तत्र शुश्रुवे।।
आतीनां करुणं काले क्रोशन्तीनां सहस्त्रशः।

ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य च पुनः पुनः।
यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुनृै पाङृनाः।।

(अयोध्या. 76/19–22)

(ii) तुलनीय तारा के शवानुगमन का यह मिलता–जुलता वर्णन–

चुक्रु शुर्वीरवीरेति भूयः क्रोशन्ति ताः प्रियम्।
ताराप्रभृतयः सर्वा वानर्यो हतबान्धवाः।।

(किष्किन्धा. 25/35)

अनुजग्मुश्च भर्तारं क्रोशन्तयः करुणस्वनाः।
तासां रुदित शब्देन वानरीणां वनान्तरे।।

(किष्किन्धा, 25/36)

ततस्तारा पतिं दृष्टवा शिपिकातलशायिनम्।
आरोप्यांके शिरस्तस्य विललाप सुदुःखिता।।

(किष्किन्धा. 25/39)

(iii) इसी प्रकार मन्दोदरी सहित रावण की स्त्रियों की भी यह स्थिति कितनी शोकजनक है –

रावणं विहतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना।
अन्तः पुराद् विनिस्पेतू राक्षस्याः शोककर्षिताः।।
उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण यह राक्षसैः।
प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्तयत्यो हतं पतिम्।

(युद्ध. 110/1,3)

ताः स्त्रियोअनुनयामास शान्तयित्वा पुनः पुनः।
गम्यतामिति ताः सर्वा विविशर्नुगरं ततः।।
प्रविष्टासु पुरीं स्त्रीसु राक्षसेन्द्रों विभीषणः।

(युद्ध. 111, 121, 122)

5. प्रत्येक मृतक की चिता में सामान्यतः एक जैसे सुगन्धित स्निग्ध, द्रवों (घृत, तैल आदि) के साथ अगरू, चन्दन, देवदारू आदि सूखे, सुगन्धित काष्ठों का शवदाहार्थ प्रयोग होता था। यथा–

(i) महाराज दशरथ की चिता में प्रयुक्त सुगन्धित पदार्थों का उल्लेख द्रष्टव्य है–

चन्दनागुरुनिर्यासान् सरलं पद्यकं तथा।
देवदारूणि चाहृत्य क्षेपयन्ति तथापरे।।
गन्धानुच्यावचां श्चान्यांस्तत्र गत्वाथ भूमिपम्।।
तत्र संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः।।

(अयोध्या. 76,16,17)

(ii) तुलनीय बालि की चिता में ऐसे ही प्रयुक्त ये पदार्थ–

समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च।
चन्दनानि च दिव्यानि बालिसंस्कारकारणात्।।

अंगदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च।
घृतं तैलमयो गन्धान् यच्चान्न समनन्तरम्।।

(किष्किन्धा, 25, 14, 16)

(iii) इसी प्रकार रावण की चिता में प्रयुक्त ये मिलते–जुलते पदार्थ–

शकटान् दारुपात्राणि अग्नीन् वै याजकास्तथा।
तथा चन्दनकाष्ठानि काष्ठानि विविधानि च।।
अगरूणि सुगन्धीनि गन्धाश्च सुरभीस्तथा।

(युद्ध 111/104–105)

6. सभी मृतकों के शव का दाहकर्म याज्ञिक ब्राह्मणों के निर्देशानुसार यजुर्वेदीय वैदिक विधि से एक साथ ही सम्पन्न होता या ब्राह्मण या मृतक के पुत्र/भाई जैसे निकटतम रक्त सम्बन्धी चिता को अग्नि देते थे।

(i) राजा दशरथ के दाहकर्म का यह वर्णन दृष्टव्य है–

तथेति भरतो वाक्यं वसिष्ठास्याभिपूज्य तत्।
ऋत्विक् पुरोहिताचार्यास्त्वरयामास सर्वशः।।

(अयोध्या, 76/12)

तदा हुताशनं हुत्वा जेपुस्तस्य तदृत्विजः।
जगुश्च ते यथाशास्त्र तत्र सामानि सामगाः।।
प्रसव्यं चापि तं चक्रर्द्धुत्विजोअग्निचिंत नृपम्।

(अयोध्या, 76/18, 20)

(ii) तुलनीय वानर राज की यह दाह किया–

ततोडग्निं विधिवद् दत्त्वा सोअपसव्यं चकार ह।
पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः।।

(iii) रावण की दाहक्रिया भी यजुर्वेदीय कल्पसूत्र निर्दिष्ट विधि से सम्पन्न हुई, जिसमें राक्षस रीति का अपना कुछ वैशिष्ट्य दृष्टिगत होता है। रावण की चिता पर रंकु मृगचर्म बिछाकर उस पर रावण का शव रखते हुए ब्राह्मी (यजुर्वेदीय) विधि पूर्वक पितृमेघ में चिन्ता के दक्षिण–पूर्व में वेदी बना कर उस पर अग्नि को स्थापित किया गया। तदुपरान्त दधि मिश्रित घृत भरी स्त्रुवा रावण के कन्धे पर, फिर पैरों पर शकट और जांघों पर उलूखल रखा गया। फिर काष्ठ के सभी पात्र, अरूणि, उत्तरारणि और मूसल आदि को यथास्थान रख दिया गया। राक्षसी रीति के अनुसार मेध्य पशु को मारकर घृत से रावण का शव तर कर चन्दन, पुष्पादि से अलंकृत कर शोकायुक्त विभीषण ने वस्त्र लावा बिखेर कर विधिपूर्वक चिता में आग लगाई थी–

चितां चन्दनकाष्ठैश्य पद्य कोशीर चन्दनैः।
ब्राह्मया संवर्तयामास राड्.क्वास्तरणावृताम्।। (युद्ध 111/113)
प्रचक्रे राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुत्तमम्।
वेदिं च दक्षिणा प्राची यथास्थानं च पावकम्।।
पृषदाज्येन सम्पूर्ण स्त्रुवं स्कन्धे प्रचिक्षिपुः।
पादयोः शकटं प्रापुरूर्वोश्चोलूखलं तदा।।
दारूपात्राणि सर्वाणि अरणिं चोत्तरारणिम्।
दत्त्वा तु मुसलं चान्यं यथास्थानं प्रचक्रमुः।।

शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च।
तत्र मेध्यं पशुं हत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः।।
स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः।
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान् दर्भबिमिश्रितान् ।।

(रामा. युद्ध. 111/114–119)

7. सभी मृतकों के निकटतम रक्त सम्बन्धी प्रायः धर्मशास्त्रानुसार दाहकर्मोपरान्त एक समान श्राद्धादि प्रेत्यकर्म नदी आदि जलाशय के समीप एकान्त में करते थे, जहाँ दर्भ तिल मिश्रित जलांजलि से मृतक का तर्पण विधिवत् किया जाता था।

(i) भरत द्वारा दशरथ की और्ध्वदैहिक क्रिया किस प्रकार हुई, यहाँ देखिये–

कृत्वोदकं ते भरतेन सार्ध नृपाडग्नामग्नि पुरोहिताश्च।
पुरं प्रविश्याश्रुपरीतनेत्रा भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम्।। (अयो. 76/23)
ततो दशाहेअतिगते कृतशौचो नृपात्मजः।
द्वादशेअहनि सम्प्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत्।। (अयो. 77/1)
ब्राह्मणेभ्यो धनं रत्नं ददावत्रं च पुष्कलम्।
वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च।।
ततः प्रभातसमये दिवसे च त्रयोदशे।
विललाप महाबाहुर्भरतः शोकमूर्च्छितः।। (अयो. 77/3,4)
दृष्ट्वा भस्मारुणं तच्च दग्धास्थिस्थानमण्डलम्
पितुः शरीरनिर्वाणं निष्टनन् विषाद ह।। (अयो. 77/8)

(ii) तुलनीय वानरराज बालि की और्ध्वदैहिक क्रिया–

संस्कृत्य बालिनं तं तु विधिवत् प्लवगर्षभाः।
आजग्मुरुदकं कर्तु नदी शुभजलां शिवाम्।।
ततस्ते सहितास्तत्र ह्मडदं स्थाप्य चाग्रतः।
सुग्रीवतारासहिताः सिषिचुर्वानरा जलम्।। (किष्किन्धा 25/51/52)

(a) इसी प्रकार राक्षसराज रावण को समान प्रतिक्रिया का यह वर्णन दृष्टव्य हैं।

स्नात्वा चैवार्द्र वस्त्रेण तिलान् दर्भ विमिश्रितान्।
उदकेन च सम्मिश्रान् प्रदाय विधिपूर्वकम्।।
ताः स्त्रियोअनुनयामासशा न्तयित्वा पुनः पुनः। (युद्ध 111/120, 121)

रामायण के उपर्युक्त उद्धरणों में आर्यावर्त के सूर्यवंशीय क्षत्रिय कोसल नरेश दशरथ, किष्किन्धा नरेश बालि तथा लंकापति रावण की वैदिक विधि से सम्पत्र और्ध्वदैहिक क्रियाओं में हम अद्‌भुत एकरूपता (समानता) पाते हैं, जिसके आधार पर हम सुनिश्चित रूप से कह सकते हैं कि इस विशाल भारत देश के जन–मानस में पुरातनकाल से ही कितनी व्यापक सांस्कृतिक एकता विद्यमान थी।

चाहे कोई किसी भी क्षेत्र का, किसी भी जाति और धर्म का क्यों न हो, वह मूलभूत समान सामाजिक दायित्वों एवं नैतिक कर्त्तव्यों से पराङ्.मुख कदापि नहीं रहता था। प्रत्येक पुत्र अथवा उत्तराधिकारी वंशधर

अपने दिवंगत पिता या गुरुजन का समान श्रद्धाभाव से दाहकर्म कर श्राद्धतर्पण सम्पन्न कर समान रूप से अति तृप्ति का अनुभव करता था। यह समान सत् क्रिया अपने पूज्य पितरों के प्रति शोकमूलक उतनी नहीं है, जितनी श्रद्धामूलक! इससे हम भारतीयों की 'पितृदेवो भव' जैसी उदात्त एवं व्यापक श्रद्धामय मनोभावना सम धरातल पर पुष्ट होकर समस्त राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता स्वतः प्रकट हो जाती है। आदि कवीश्वर महर्षि वाल्मीकि ने अपने कालजयी अद्‌भुत आदि काव्य 'रामायण' में धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि विविध मानवीय पक्षों के आधार पर इसी विराट सांस्कृतिक एकता को प्रतिपादित करने का समीचीन प्रयास कर समस्त कवीश्वरों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया है। आज उनकी पावन जयन्ती के शुभअवसर पर उन आदि कवि महर्षि को सश्रद्ध प्रणाम करते हुए उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित कर परम कृतार्थ हो रहे हैं। विश्वास है, भारत ही नहीं, अपितु समस्त संसार का समस्त मानव समाज उनके बताये आदर्शों पर चलकर चारित्र्य–गौरव से कृतकृत्य होगा। इतिशम्।

टिप्पणी 1. वैदिक साहित्य (तैत्तिरीय संहिता, काठक सं. 26, 3, 5 मैत्रायणी आदि याजुस संहिताओं में गर्त खोदकर शव संस्कार किये जाने के पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होते हैं।

इस सन्दर्भ में अधोलिखित ऋचाएँ उल्लेखनीय हैं –

उपसर्प मातरं भूमिमेतामुरुन्व्यचसं पृथिवीं सु शेवाम्।
आर्ग म्रदा युवतिर्दक्षिणावतं एसा त्वा पातु निर्द्धतेरुपस्थात्।।
ऊच्छ्वच्चगाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्त्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गुहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहाअस्मै शरणाः सन्त्वग्रे।।
उत्ते स्तम्नामि पृथिवी, त्वत् परीमं लोगं निदधन् मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेअत्रायमः सादना ते मिनोतु।।

जिसके आधार पर मृतकों के शव का भूमिसात् ;कब्र जैसी भूकन्दरा में गाड़करद्ध संस्कृत करना ज्ञात होता है। द्रष्टव्य 'सागरिका' 10/2 सं. 2068 पृ. 31–37 श्री शिव नारायण शास्त्री का भारते शवस्य भूमिशयनं दाहो वा शीर्षक शोध लेख।

2. अपसव्यमग्नौ सर्वमावृत्य विक्रमम्।
अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुकं भुवि।। तुलनीय मनुस्मृतिः 3/214

पितृकर्म के निमित्त अग्नीकरण होम 'अपसव्य' अर्थात् दाहिने कन्धे पर जनेऊ रख बाँया हाथ जनेऊ के बाहर रखकर करना चाहिये।

3. तिलैव्रीहियवैर्मासैरद्‌भिर्मूलफलेन वा।
दत्तन मासं तृप्यन्ति विधिवत् पितरो नृणाम्।। तुलनीय मनुस्मृति : 3/267
यदेव तर्पत्यद्‌भिः पितृपृन स्नात्वा द्विजोत्तमः।
तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम्।। मनु. 3/283

4. आज भी मनु द्वारा प्रतिपादित धर्मशास्त्रीय पितृ तर्पण क्रिया समस्त भारत में एक जैसी सभी वर्गों में प्रचलित है, जो रामायण से भी पूर्व वैदिक काल से समाज में निरन्तर अविकृत रूप में चली आ रही है।

तिलैर्व्रीहियवैर्मासैरद्‌भिर्मूं लफनेन च।
दत्तेन मासं तृप्यन्ति विधिवत् पितरौ नृणाम् ।। दृष्टव्य मनु, 3/267
यदेव तर्पयत्यदभिः पितृपृन् स्नात्वा द्वितीत्तमः। मनु, 3/283

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

अहिंसा का पुनर्जन्म महात्मा गाँधी के राजनीतिक विचार

डा0 अभिलाष सिंह यादव
असि0 प्रो0–राजनीति विज्ञान
महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर, इलाहाबाद

गाँधी जी ने भारत में आकर जितने भी कार्य किये उन सभी का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव देश की राजनीति पर पड़ा। सन् 1915 से वह भारत की राजनीति को निकट से देख रहे थे। सन् 1948 की 30 जनवरी तक उन्होंने अपने को राजनीति से पृथक नहीं किया। उनके सतत् कठोर प्रयासों के परिणामस्वरुप देश नव जागरण की नई मिशाल और नई रोशनी को लेकर जिस अप्रत्याशित रुप से खड़ा हुआ वह इतिहास के लिये प्रेरणा और शान्ति के प्रतीक हैं। उन्होंने प्रचलित राजनीति को सात्विक रुप देकर जिस नये रूप में प्रस्तुत किया है वह सभी के लिये आकर्षण था। उस आकर्षण में ही राजनीति का स्वरुप नये दिशाबोधक के रुप में स्वीकार हुआ है।

राजनीति का आध्यात्मिकरण :

गाँधी जी का धर्म केवल मात्र रुढ़िवादी मान्यताओं और पौराणिक गाथाओं वाला ही धर्म नहीं है। उनके धर्म में वह सभी आदर्श समाहित हैं, जो मानव–जाति के कल्याण के लिये सदैव उपेक्षित होते हैं। गाँधी जी के लिये अर्थ का क्षेत्र हो या राजनीति का सामाजिक हो या आध्यात्मिक, सभी उनके धर्म तत्व से प्रभावित हैं। उन्होंने अपने विषय में यह ठीक कहा था कि ''मैं जो एक राजनीतिज्ञ का परिधान पहने हूँ, हृदय से एक धार्मिक व्यक्ति हूँ।'' गाँधी जी राजनीति में नीति के समावेश का समर्थन किया। वह उचित और अनुचित के बीच अन्तर की स्पष्ट रेखा खींचना चाहते थे। उचित को पूर्ण मर्यादा के साथ पालन करने का नाम ही वास्तव में धर्म है। गाँधी जी की यह मान्यता थी कि मनुष्य–जीवन की विभिन्न क्रियाओं को पृथक–पृथक नहीं रखा जा सकता। इसलिये उनका धर्म–तत्व सभी क्रियाओं में समान रुप से प्रवाहित अनुभव होता है। उन्होंने स्वयं को सार्वजनिक जीवन सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर व्यतीत कर राजनीति में आध्यात्मिकता को प्रविष्ठ किया।[1]

''मनुष्य की समस्त क्रियाओं का क्षेत्र–विस्तार एक अविभाज्य पूर्णता का द्योतक है। तुम मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा पूर्ण धार्मिक क्रियाओं को पृथक जलरुद्ध विभागों के रुप में विभाजित नहीं कर सकते। मैं ऐसी किसी धर्म को नहीं जानता जो पूर्णरुपेण मानव क्रियाओं से पृथक हो। यह अन्य समस्त क्रियाओं को नैतिक आधार प्रस्तुत करता है।[2]

प्रचलित राजनीति अमान्य –गाँधी जी यह मानते थे कि प्रत्येक मनुष्य पर राजनीति का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है। राजनीति सर्प कुँडली की तरह हमारे जीवन के चारों तरफ बैठ गई है। हम इससे मुक्ति भी लेना चाहें तो लेना कठिन है। गाँधी जी राजनीति की अपरिहार्य महत्ता को अनुभव करते हुये भी प्रचलित राजनीति को छल–कपट का अंग मानने के कारण उपयुक्त नहीं मानते। गाँधी जी छल–कपट का अंग मानने के कारण उपयुक्त नहीं मानते। गाँधी जी छल–कपट, दम्भ और विश्वास का पोषण करने वाली राजनीति की कल्पना नहीं कर सकता। वास्तव में, धर्म तो हमारे हर कार्य में व्याप्त होना चाहिये। यहाँ धर्म का अर्थ कट्टर पन्थ से नहीं है। उसका अर्थ है कि विश्व की एक नैतिक सुव्यवस्था में श्रद्धा।[3]

गाँधी जी के लिये प्रचलित राजनीति में 'धर्म तत्व का अभाव' था इसलिये वह उसे न अपने लिये और न

समाज के लिये उपयुक्त अनुभव करते हैं। उन्होंने प्रचलित राजनीति को धर्म विहीन राजनीति की संज्ञा देकर छोड़ दिया था। ''मैं देश की आँखों में धूल न झोकूँगा। मेरे नजदीक धर्मविहीन राजनीति कोई चीज नहीं है। नीति शून्य राजनीति सर्वथा त्याज्य है।[4] सत्यशोधक के नाते गाँधी जी का मानस ऐसी राजनीति की दल–दल में न खुद फंसना चाहता था और न समाज को फंसाना चाहता था जो मनुष्य के नैतिक विकास की गति को अवरुद्ध करती हो। डी0 मित्रा के अनुसार, ''गाँधी जी का रास्ता कूटनीतिज्ञता एवं प्राप्त करो कि चतुरता को अंगीकार नहीं करता तथा उनकी राजनीति राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीतिज्ञता को छोड़कर निश्चित रुप से स्पष्ट, स्वतन्त्र और निष्काम भावना से प्रेरित विषयों के चिन्तन के लिये मार्ग प्रशस्त करती है।[5]

राजनीति के मानस सेवा– गाँधी जी राजनीति को धर्म और आचार–शास्त्र के एक अंग के रुप में स्वीकार करते हैं। वह राजनीति में भी ऐसे आदर्श की स्थापना करना चाहते हैं, जिससे मानवसेवा सम्भव हो। उनके लिये राजनीति ईश्वर की सेवा करने का एक मार्ग था। यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपने कार्यों को शुद्ध बनाये। धर्म मनुष्य का इस शुद्धता के लिये आग्रह ही तो है और यदि प्रत्येक राजनीतिज्ञ इस आग्रह को स्वीकार कर ले तो मानव–जाति सुखमय है और यदि प्रत्येक राजनीतिज्ञ इस आग्रह को स्वीकार कर लें तो मानव–जाति सुखमय स्थिति में पहुँच सकती है। गाँधी जी अपने जीवन की समस्त राजनीतिक क्रियाओं को इसी आदर्श के अनुरुप ढ़ालने का प्रयास किया। वह इस प्रयास में व्यक्तिगत आधार पर सफल हुये।

उन्होंने नैतिक आदर्शों और मान्यताओं के सन्दर्भ में साधनों की पवित्रता का आग्रह करके नैतिक, उपदेशक की भूमिका को ही सम्पन्न नहीं किया, बल्कि उदार राजनीतिज्ञ के रुप में मानव–जाति की अनथक सेवा की। उनके राजनीतिक आदर्श प्रत्येक क्षण व्यावहारिक रुप में मुखरित रहते थे। द0 अफ्रीका के प्रवास काल में उन्हें अनेक अवसरों पर अपमानित होना पड़ा, लेकिन उन्होंने अपमानकर्ता को किसी प्रकार की हानि पहुँचाने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने अपनी धार्मिक वृत्ति के आधार पर पवित्र साधनों की छाया में द0 अफ्रीका के प्रवास काल को राजनीतिक माधुर्य से भर दिया। अन्त में गोरे अंग्रेजों ने दया की जीवित सजीव प्रतिमा पर उदारता दिखाई। भारत में गाँधी जी का सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन यद्यपि संघर्षों से परिपूर्ण रहा, लेकिन उनमें कटुता के भाव नहीं थे। उन्होंने अंग्रेजों से कहा था कि आप जब तक चाहें भारतवर्ष में रहें केवल शासन–सत्ता से आपको पृथक होना पड़ेगा। उन्होंने अंग्रेज जाति को हिंसा से भयभीत नहीं करना चाहा। वह तो अपनी अहिंसा से उन्हें जीतना चाहते थे। पवित्र साधनों के प्रति आस्थावान दृष्टिकोण के कारण ही उन्होंने 'चोरी–चौरा काण्ड' के कारण सन् 1920 का आन्दोलन बन्द किया था। वह धर्म पुरुष थे। उन्होंने प्रचलित राजनीति को भी इन्हीं सन्दर्भों को अपनाने के लिये विवश किया था।

अधिकार एवं कर्त्तव्य : –

मानव जाति के हितों का समर्थन करने वाले विचारकों ने व्यक्ति के विकास को सर्वोपरि महत्व दिया है। पाश्चात्य भैतिकवादी वातावरण में लिप्त लोगों ने सुविधाओं को प्राप्त करने में प्रतियोगिता प्रारम्भ कर दी। इन सुविधाओं को लोगों ने अधिकारों की संज्ञा देकर उन्हें प्राप्त करने का अथ्क प्रयास किया। राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्त, वैधानिक अधिकार सिद्धान्त, ऐतिहासिक अधिकार सिद्धान्त, सामाजिक कल्याण अथवा उपयोगिता अधिकार सिद्धान्त तथा आदर्शवादी अथवा व्यक्तिवादी अधिकार सिद्धान्तों का पर्याप्य महत्वपूर्ण स्थान है। गाँधी भौतिकवादी चिन्तक नहीं थे, उनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण अधिकार–सम्बन्धी विवेचना को दो पक्षों में प्रस्तुत करता हैः (अ) गाँधी के अधिकार कर्त्तव्यों के बिना अधूरे हैं अथवा कर्त्तव्यों से पूर्व गाँधी जी के अधिकारों का कोई महत्व नहीं है। (ब) गाँधी ने जीवन–पर्यन्त नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिये संघर्ष किया। यह स्थिति किसी भी रुप में विरोधाभास नहीं है, बल्कि एक ही तथ्य का विस्तार मात्र है।

अधिकारों के लिये संघर्ष –गाँधी जी को जन्मजात संस्कारें के रुप में मानवीय समानता के आदर्श मिले

थे। वह वैयत्तिक स्वतन्त्रता के लिये स्वराज्य को आवश्यक मानते थे। समानता के आदर्श की पूर्ति प्रजातन्त्र में ही हो सकती है। इस व्यवस्था ससमान अवसरों की उपलब्धि होती है। समान अवसरों से गाँधी जी का अभिप्राय अधिकारों से ही था। वह अधिकारों को सर्व–जन हितार्थ आवश्यक मानते थे। अपने राजनीतिक जीवन में उन्होंने सदैव मनुष्य के अधिकारेां पर बल दिया।[6] लेकिन वह अधिकारों की आकांक्षा किसी वर्ग विशेष के लिये नहीं करते वह तो निम्न से निम्न व्यक्ति की उन्नति के लिये अधिकारों को आवश्यक अनुभव करते हैं। गॉधी जी का अफ्रीका में सत्याग्रह का नेतृत्व नागरिक अधिकारों की अभय घोषणा है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को प्राप्त उनका नेतृत्व मुख्य रुप से राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये था।[7] उनके सभी आन्दोलन इसके प्रमाण ही तो हैं।

कर्त्तव्यों के अभाव में अधिकार नहीं– गाँधी जी के लिये अधिकार कर्त्तव्य की प्रयोगशाला के प्रतिनिधि हैं। ''अधिकारों के सत्य श्रोत कर्त्तव्य हैं। यही सिखावन कृष्ण ने अपने इन अमर शब्दों में व्यक्त की है। 'कर्म कर', परिणाम की अभिलाषा को पूर्णतः छोड़ दें।''[8] गाँधी जी ने जितना बल अधिकारों पर दिया है उससे कहीं अधिक बल कर्तव्यों पर दिया है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि प्रत्येक अधिकार के साथ एक कर्तव्य जुड़ा है।''[9] यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं के विकास के लिये पहले कर्त्तव्य करेगा तब स्वतः समाज हित की भावना जागृत होगी, और वह श्रेष्ठ नागरिक की भाँति समाज की सच्चे अर्थों में सेवा कर सकेगा। ''नागरिकता के अधिकार केवल उन्हीं को मिल सकते हैं, जो इस राज्य (अंहिसा पर आधारित स्वराज्य) में उसकी सेवा करते हों। और वे ही इन अधिकारों के साथ पूरा न्याय कर सकते हैं।'' भौतिकवादी चिन्तन अधिकारों की व्याख्या में अत्यधिक सजग रहा इसलिये समाज में असन्तुलन आ गया। गॉधी जी ने इस असन्तुलन की स्थिति को अनुभव किया, और कर्त्तव्य करने की प्रेरणा प्रदान की। ''जो अपने कर्त्तव्य का उचित पालन करता है। उसे अधिकार अपने आप मिल जाते हैं।''[10]

गॉधी जी के अनुसार मनुष्य का कोई अधिकार अबाधित या पूर्ण नहीं कहा जा सकता। ''हमारे जीवित रहने का अधिकार भी तभी तक हमें प्राप्त होता है, जबकि हम विश्व नागरिकता के अपने कर्त्तव्य पूर्ण करते हैं।''[11] यदि मूल रुप से बिना कर्तव्य की पूर्ति के अधिकार के लिये प्रयास किया जाय, तो उसका यह स्वाभाविक परिणाम होगा कि न तो अधिकार सही अर्थों में प्राप्त हो सकेंगे, और न ही उनके सही प्रयोग के प्रति व्यक्ति की क्षमताओं का उपयोग किया जा सकेगा। गेपीनाथ धावन के अनुसार, ''यदि कोई अधिकार मॉगा जाता है अथवा कर्त्तव्य की क्षमता के अभाव में उसे स्वीकृति प्राप्त होती है, तब अधिकार का उद्देश्य प्राप्त नहीं होता है तथा अधिकार को भी संचित नहीं रखा सकता।''[12]

दोनों परस्पर पूरक–यदि राज्य अधिकारों को अबाधित रुप से प्रदान करता है, किन्तु नागरिक अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरुक नहीं है, तब ऐसी स्थिति में समाज विश्रृंखलित, असंयमित और दुराग्रही हो सकता है। इसका ध्येय भी मानव सेवा न होकर कुशासन की स्थापना करना होगा। गाँधी जी अधिकारों को मानव निर्मित मानते थे। गाँधी जी का समाज तभी व्यवस्थित, सुखी और सन्तुष्ट रह सकता है जबकि अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के मध्य सम्बन्धों में उचित समन्वय हो। यदि ऐसा नहीं है तो वह संग्रह योग्य नहीं है। ''मैं यह कहने की हिम्मत करुँगा कि जो अधिकार हमें पूरी तरह अदा किये गये फर्ज से नहीं मिलते, वे प्राप्त करने और रखने लायक नहीं हैं।'' गाँधी जी ने प्रत्येक छोटे और बड़े से बड़े व्यक्ति से अपने कर्त्तव्य पूरा करने के लिये कहा। अधिकारों का उनके दर्शन में कर्त्तव्य के बिना कोई स्थान नहीं।

शासन संगठन : राज्यविहीन व्यवस्था– आदर्शवादी विचारक हीगल राज्य को अपरिहार्य मानता है। ग्रीन उसे नैतिकता का प्रतिनिधि मानता है। अरस्तू उसे सभ्य जीवन की प्रथम आवश्यकता स्वीकार करता है। गाँधी जी की दृष्टि में राज्य व्यक्ति की अपूर्णता का द्योतक है तथा यह हिंसा और शक्ति पर आधारित है।

गाँधी जी ऐसी व्यवस्था की कल्पना करते हैं, जबकि शक्ति और हिंसा पर आधारित राज्य स्वमेव समाप्त हो जायेगा। हिंसा पर आधारित राज्य को गाँधी जी हिंसा से नहीं मिटना चाहते, इसलिये वह उग्र अराजकतावादियों की श्रेणी में पहँचते–पहुँचते रह जाते हैं। कुछ लोग उन्हें अराजकतावादियों की श्रेणी में और कुछ साम्यवादियों की श्रेणी में रखने की बात करते हैं, क्योंकि दोनों ही राज्यविहीन व्यवस्था का समर्थन करते हैं, किन्तु ऐसा सोचने वाले यह भूल जाते हैं कि गाँधी जी राज्य के सन्दर्भ में भी पूरी तरह अहिंसात्मक आदर्श से बँधे हैं। वह हिंसा पर आधारित राज्य को हिंसा से मिटाना नहीं चाहते। गाँधी आत्म–अनुशासन की बात करते हैं। साम्यवादियों के लिये तो गाँधी जी का दर्शन और मार्ग अरुचिकर है। अराजकतावादियों के लिये भी उनका आत्मानुशासन का दर्शन बोझिल है। गाँधी जी ''कम से कम राज्य सत्ता और अधिक से अधिक स्वतन्त्रता'' रुपी सिद्धान्त में उनका दृढ़ विश्वास था।[13]

रामराज्य का आदर्श–गाँधी की व्यक्ति की आत्मा को इतना अनुशासित बनााने की इच्छा रखते हैं कि उसे राज्य की आवश्यकता ही अनुभव न हो। राज्य अपनी उपादेयता समाप्त हो जाने पर स्वयं भी समाप्त हो जायेगा। इसलिये, गाँधी जी परम्परागत अराजकतावादियों से पृथक है। गाँधी जी ने ऐसे राज्य की व्यवस्था का आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसमें शक्ति, सत्ता, और हिंसा को कोई स्थान प्राप्त न हो। वह ''राम राज्य'' को राज्य का आदर्श मानते हैं। गाँधी जी परमुखापेक्षी नागरिकों के लिये स्वराज्य को अर्थहीन मानते हैं। उनके रामराज्य में किंचित मात्र भी आश्रित रहने की प्रवृति विकसित होनी सम्भव नहीं। उनके आदर्श रामराज्य में व्यक्ति नियन्त्रण से मुक्त होने के लिये प्रयत्नशील रहता है। उनके शब्दों में, ''रामराज्य में एक ओर अथाह सम्पत्ति और दूसरी ओर करुणाजनक फाकेकशी नहीं हो सकती। उसमें कोई भूखे मरने वाला नहीं हो सकता।[14] उनके रामराज्य की कल्पना अहिंसा के सन्दर्भ में ही अनुभव की जा सकती है। ''मेरी कल्पना का स्वराज्य तभी आयेगा जब हमारे मन में यह बात अच्छी तरह जम जाये कि हमें अपना स्वराज्य सत्य और अहिंसा के युद्ध साधनों द्वारा ही हासिल करना है।''[15] ऐसे अहिंसक समाज में किसी प्रकार के विद्वेष की कल्पना भी सहज नहीं हो सकेगी। ''यदि मनुष्य अहिंसक है तब किसी भी रुप में शोषण नहीं हो सकेगा, तथा सभी सामाजिक कार्य सहयोग के सिद्धान्त पर आश्रित रहेंगे। यदि मनुष्य स्वेच्छा से सहयोग करना सीख ले तब राज्य का बाध्यकारी तत्व स्वयं तिरोहित हो जायेगा।''[16] गॉधी जी का राज्य कुछ लोगों के हित साधन की अपेक्षा करोड़ों लोगों के हित साधन में व्यग्र होगा।

गाँधी ने अहिंसा, सत्य और प्रेम की वाणी में अपने मन्तव्यों को अभिव्यक्त किया। इसी विचार की छाया में उन्होंने जाति से प्रेम किया। सत्याग्रह के शस्त्र का प्रयोग करके शत्रु को भी अपने पक्ष में कर लिया। गाँधी के आदर्श, विचार तक ही सीमित नहीं थे। उन्होंने कर्म के रुप में भारत और विश्व का अभिवादन किया था। गाँधी ने हरिजनों के प्रति जितना सद्भाव वाणी से दिखाया उतना ही कर्म से। यही कारण है कि आज भी देश का हरिजन वर्ग उस महान् आत्मा के प्रति श्रद्धानत है। नारी समाज की जागृति के लिये उन्होंने कार्य किया। खादी के प्रयोग करने के लिये दूसरों को कहने से पूर्व उन्होंने स्वयं चर्खा कातना शुरु किया और खादी पहनना शुरु किया।

गाँधी ने संरक्षकता के सिद्धान्त को तब प्रस्तुत किया, जबकि अपने जीवन से सम्बद्ध प्रत्येक भौतिक सम्पत्ति को त्याग दिया। उनके विचार ही उनकी सम्पत्ति ही उनकी सम्पत्ति थे। वह जो कहते थे, वही करते थे तथा जो करते थे, वही कहते थे। उनके किसी भी कार्य में तनिक भी विरोध नहीं मिलता। उन्होंने स्वतन्त्रता का जयघोष अपने लिये नहीं दिया था। वह तो दुःखी भारत को परतन्त्रता के बन्धनों से मुक्त करके एक नये समाज की रचना करना चाहते थे। यह बात बिल्कुल भिन्न है कि उन्हें उसकी रचना का समय नहीं मिला, लेकिन उन्होंने अन्तिम क्षण तक सेवा धर्म के परिपालन से उसी व्रत के प्रति आस्था बनाये रखी। उनकी मृत्यु एक स्वधर्मी के

हाथ हुई, लेकिन वह साम्प्रदायिक एकता के जिन उच्च आदर्शों को स्वीकार कर चुके थे, उससे हटे नहीं। देश में जब स्वतन्त्रता के गीत का जिन उच्च आदर्श को स्वीकार कर चुके थे। उससे हटे नहीं। देश में जब स्वतन्त्रता के गीत का पहला स्वर गूँजा तब यह महात्मा नोआखाली के दंगाग्रस्त क्षेत्रों में घावों पर मरहम लगा रहे थे। उसने हर आँख के आँसू का दर्द समझा था। वह व्यावहारिक आदर्शवादी था, वह एक युग पुरुष था।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. राजनीति विज्ञान, डा0 पुखराज जैन, पृष्ठ संख्या 174
2. हरिजन, 24 दिसम्बर, सन् 1938
3. हरिजन सेवक, 10 फरवरी, सन् 1940
4. हिन्दी नवजीवन, 30 नवम्बर, सन् 1940
5. मित्रा, डी लेख गॉधी डी पोलिटिकल साइंसटिस्ट (रचयिता) गॉधी मार्ग, जुलाई 58 पृष्ठ संख्या 225, 226
6. डा0 बी0पी0वर्मा, डी0 पोलिटिकल फिलासफी एण्ड सर्वोदय, पृष्ठ संख्या 169
7. डा0 बी0पी0वर्मा, डी0 पोलिटिकल फिलासफी एण्ड सर्वोदय, पृष्ठ संख्या 162
8. वर्मा मिशन स्वरुप गॉधी ऐज ए पोलिटिकल थिंकर, पृष्ठ संख्या 74
9. हरिजन 25 मार्च 1939
10. हरिजन 27 मार्च 1939
11. प्यारे लाल पिलग्रिम फार पीस, पृष्ठ संख्या 197
12. धावन गोपीनाथ, डी0 पोलिटिकल फिलासफी ऑफ महात्मा गॉधी, पृष्ठ संख्या 313
13. भारतीय राजनीतिक चिन्तन जीवन मेहता, पृष्ठ संख्या 182
14. मशरुवाला किशोरीलाल घ0 –गॉधी विचार दोहन, पृष्ठ संख्या 64
15. हरिजन, 27 मई सन् 1939
16. शर्मा, बोधराज (लेख) दि स्टेट इन गॉधीनियन फिलासफी, (पुस्तक) गॉधीयन कन्सैप्ट ऑफ स्टेट , पृष्ठ संख्या 110

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

संत कबीरदास के सामान्य दर्शन की सार्थकता

डॉ0 विनीता अवस्थी
प्रो0 एवं अध्यक्ष दर्शनशास्त्र विभाग
राजकीय नर्मदा कॉलेज, होसंगाबाद (म.प्र.)

महात्मा कबीरदास उस महान संत परंपरा की मणि–माला के मनकों में अग्रगण्य हैं, जिन पर भारत वर्ष को गर्व है। सामान्य जन–जीवन को उसकी भाषा में ही उदबोधित करने की उनकी शैली की अपनी विशेषता है। कोई भी समाज तब तक उन्नत नहीं हो सकता, जब तक जनसाधारण सदाचारी जीवन को स्वयं ही न ग्रहण कर ले।

जनता की पैठ बड़ी पक्की एवं सतर्क रहती है। वह बहुत सोच समझकर ही दूसरों का अनुगमन करती है। संत–विद्वानों का समादर करना उसकी सामान्य प्रकृति है, किन्तु उनका अनुभव अपनाते समय वह खासी जाँच पड़ताल किए बिना उसे स्वीकृत नहीं करती। विद्वानों के बीच प्रतिष्ठा पा लेना फिर भी सरल होता है, किंतु साधारण लोगों में समाहत होने का प्रयत्न टेढ़ी खीर है। कबीरदास जी जैसे संत जिन्होंने किसी बड़े प्रतिष्ठान में कोई पद्वी या उपाधि प्राप्त नहीं की, केवल अपनी साधारण प्रतिभा, सतसंगति और अनुभव से प्राप्त निष्ठा के द्वारा जनता की श्रृद्धा पा लेने में समर्थ हो पाते हैं। उनके विचारों में जो दार्शनिक गहराई है, वह उन्हें स्वतः ही प्रथम पंक्ति में खड़ा कर देती है।

कबीर की वाणियों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से यह स्वतः ज्ञात होता है कि उनमें तत्त्व चिंतन बड़ा ही गभीर है। यद्यपि कबीर ने पुस्तक ज्ञान का खण्डन किया है।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पण्डित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़ै सौ पण्डित होय।।

प्रेम के ये ढ़ाई अक्षर परमात्मा–जीव और अहंकार के स्वरूप ज्ञान तथा विनाश रूपी तत्त्व की पहचान है। कबीर का मानना था कि ये ढ़ाई अक्षर जीवन की पोथी से ही पढ़ने पड़ेंगे। जीवन रूपी विद्यालय में आना पड़ेगा। उनका अर्थ बहुत गहरा है। प्रेम कभी तृप्त नहीं होता, वह परमात्मा जैसा है। वह कितना भी विकसित होता जाए, पूर्ण से पूर्णतर होता जाता है तथा विकास जारी रहता है। इसी तरह वास्तविक ज्ञान को पाने की अभिलाषा जिसकी होती है, वह कमी भी संतुष्ट (पूर्ण) नहीं हो पाता। मनुष्य में व्याप्त यह अपूर्णता का अहसास तथा पूर्णता को प्राप्त करने की अभिलाषा ही उसकी संपूर्ण प्रगति का द्वार है, जो ज्ञान के प्रति अनुराग से ही संभव है। ज्ञान की प्राप्ति होते ही द्वैत से अद्वैत की प्राप्ति स्वतः हो जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें तत्कालीन दार्शनिक चिन्तन प्रणालियों की खासी सूक्ष्म जानकारी थी। कबीर ने स्वयं कहा है, उनकी कही गयी बातें (गीत) को साधारण न समझें, इसमें उन्होंने अपना ब्रह्म विचार आत्म–साधन सार प्रस्तुत किया है।

तुम्ह जिन जानो गीत है यहु निज ब्रह्म विचार।
केवल कहि समुझाइया आतम साधन सार रे।।[1]

प्रसिद्ध इतिहासकार मोहसिन फानी ने 'दविस्तान' में कबीर को मुबाहिद अर्थात ऐकेश्वरवादी कहा है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने कबीर को अद्वैतवादी अथवा ब्रह्मवादी माना है। रेवेरेंड अहमद शाह का मत है कि ''उनके

उपदेश न तो वेदांताश्रित हैं, ना सम्पोषक और न ही सांख्य, न्याय, मीमांसा पर आधारित हैं। उनके विचार उनके मौलिक चिंतन के साक्षी हैं। वस्तुतः कबीर का चिन्तन सर्वथा मौलिक था, उन पर अनेक दर्शनों का प्रभाव तलाश किया जा सकता है।

महात्मा कबीरदास जी का मार्गदर्शन न केवल तब वरन् कालांतर में भी उतना ही अपेक्षित एवं सामयिक रहा जितना वह तब था। वे स्वामी रामानंद को अपना गुरू मानते थे। उनमें पूर्ण श्रृद्धा और भक्ति भाव रखते थे। इस प्रसंग में एक जनश्रुति अत्यन्त प्रसिद्ध है। स्वामी जी प्रातःकाल नित्यगंगा स्नान के लिए तड़के ही निकल पड़ते थे। कबीरदास ने उनके मार्ग का विधिवत अवलोकन किया तथा एक दिन गंगा घाट की सीढ़ियों पर लेट गये। स्वामीजी निःशंक सीढ़ियों उतर रहे थे, उनका पैर कबीर पर पड़ा घबराकर उन्होंने कहा ''राम–राम को है रे'' राम–राम कह। तुरंत गुरू चरणों में सिर नवाकर उन्होंने कहा धन्य हुआ प्रभु आपने राम मंत्र देकर मेरा उद्धार कर दिया।

कबीर गुरू महिमा का विवेचन करते हुए कहते हैं कि –

सतगुरू साँचा सूखिाँ तातै लोहिं लुहार।
कसणी दे कंचन किया नाई लिया तत् सार।।

सद्गुरू वह सूरमा (लुहार) है, जो तामसिक वृत्ति वाले शिष्य का तमस दूर करता है। शिष्य के तमस को लोहे की संज्ञा दी है। दूसरी पंक्ति में गुरू को सुनार कहा है, जो सोने के समान शिष्य को ज्ञान की कसौटी पर घिस कर शुद्ध करता है।

गुरू हैं बड़े गोविंद ते मन में देखु बिचारि।
हरि सिरजे ते वार है गुरू सिरजे ते पार।।

यहाँ कबीर कहते हैं गुरू भगवान से बड़े हैं, अर्थात भगवान ने जिसको पैदा किया है वह मोक्ष से वर्जित है, जन्म मरण के चक्र में पड़ा है, किंतु गुरू द्वारा शिक्षित जन्म मरण के पार हो जाता है अर्थात मोक्ष पा लेता है। यहाँ वेदांत दर्शन का ''ऋते ज्ञानान् न मुक्ति'' अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं, भाव परिलक्षित होता है। वेदों व शंकर वेदांत में अज्ञान को ही बंधन का कारण व ज्ञान को मुक्ति का मार्ग माना है। यहाँ कबीर दास अत्यन्त सहजता से यह संदेश देते हैं कि अविद्या अर्थात् अज्ञान ही माया है तथा ज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति है। यह मार्ग गुरू ने ही बताया है।

उनका मत था कि लोभ और मोक्ष ही वैषम्य का कारण है। इस जगत में इसे छोड़कर जीवन को मृत्यु से उबार लो। अपने एक पद में कबीर ने इसे स्पष्ट किया है।

संतो भाई आई ज्ञान की आँधी रे।
भ्रम की ताती सकल उड़ाणी माया रही न बाँधी
हित चित की द्वै थूनी गिरांनी मोक्ष बलींड़ा टूटा
त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि कुबुधि का भांड़ा फूटा।।

कबीर ज्ञान की उस आँधी को बहाना चाहते हैं जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि नहीं होते, वैषम्य टूटकर साम्य की प्राप्ति होती है। विषय ज्ञान, बाह्य ज्ञान है वे आत्म ज्ञान् व निर्गुण धारा के प्रवर्त्तक थे।

मनुष्य का सबसे बड़ा भय मृत्यु है और यह अटल सत्य भी है। कबीर इस अटल मृत्यु के भय को अपने काव्य द्वारा कुछ कम कर देना चाहते हैं। गीता में भी आत्मा को अजर–अमर बताकर नश्वर शरीर के मोह को व मृत्यु के भय को दूर करने का प्रयास किया है।

जनमानस में उसके सहज ज्ञान को उद्बोधित करने वाले इस जीवंत दार्शनिक ने गूढ़ तत्वों को इतना

सरल बनाकर अपने जीवन में अपनाकर जनता के मनोबल को उठा देना, ऐसे ही संतों द्वारा संभव है, जो हर स्थिति में समभाव से रहते हैं।

सोना, सज्जन, साधुजन, टूटि जुरे सौ बार।
दुर्जन कुंभ कुम्हार के एकै धका दरार।।

आत्मा तथा ब्रह्मा की एकता का वर्णन करते हुये वे कहते हैंः–

जल में कुंभ, कुंभ में जल, है बाहरि भीतरी पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना यह तत कथौ गियानी।।[2]

अर्थात जैसे जलाशय में पड़े हुये घड़े के भीतर–बाहर पानी रहता है और जब घड़ा फूट जाता है तब उसमें भीतर का पानी बाहर (जलाशय) के पानी से मिल जाता है, उसी प्रकार शरीर के ना रहने से आत्मा–परमात्मा एक हो जाते हैं।

कबीर किसी भी धर्म, सम्प्रदाय या विचारधारा में नहीं बंधे रहे। सत्य को सहज ढ़ंग से कहने की उनकी आकांक्षा इतनी प्रबल थी कि वेद, कुरान, बाइबिल की चिंता किये बिना वे मानव हितों की बात सीधी कहते थे।

नव्य वेदांत दर्शन का प्रभाव जो बौद्ध दर्शन के प्रभाव व शंकराचार्य के वेदांत दर्शन के प्रचार–प्रसार का परिणाम था, एक नया दौर शुरू हुआ। इस पुनर्जागरण के प्रमुख नेता मुगलकालीन धार्मिक कट्टरता के युग में हिन्दू धर्म के प्रभाव को (चौदहवीं शताब्दी में) एवं मर्यादा को बचाने में कबीर और नानक ही थे। उन्होंने सती प्रथा, पर्दा प्रथा, छुआछूत आदि कुरीतियों का विरोध किया। उस समय के सूफी संतों की परंपरा को बढ़ावा देते हुये कबीर ने उसमें हिन्दू दर्शन का सम्मिश्रण किया।

जन साधारण के सामान्य ज्ञान से उपजी वाणी भी सत्य का जीवंत दर्शन प्रस्तुत करती है। कबीर के दोहे उनकी जबान पर रहते हैं और वे जनमानस को मांजते निखारते रहते हैं। संप्रदायों का संघबद्ध होना चिंतन की स्वतंत्र विचारधारा को कुंठित करता है। इन संतों ने उसे आगे बढ़ाया और नवीन क्रान्ति चेतना को जाग्रत किया।

यह एक सामाजिक धार्मिक क्रान्ति थी, जिसमें हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायों के बीच समन्वय स्थापना तथा सामन्जस्य पूर्ण सहयोग स्थापित करवाया। इसने शुष्क दार्शनिक चिन्तन को भावनात्मक प्रेम तथा एकान्तिक नैतिकता को भगवत–निष्ठा और आचरणगत पवित्रता में बदल दिया। उनका सबसे अधिक आग्रह सतसंग पर था। संत, मुनष्य के मनोमालिन्य को धोता है। मान का मर्दन करता है। ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश देता है। शत्रुओं को मित्र बनाता है। पारस्परिक विद्वेष, संकीर्ण स्वार्थपरता को हटाकर सब पर समभाव रख सकना ही संतों का प्रधान लक्षण है।

कबीरा खड़ा बाजार में सबकी मांगे खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।

सांई इतना दीजिये जामें कुटुम्ब समाये।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाये।।

रामानंद के प्रभाव से हरिनाम को परम पवित्र करने वाला मंत्र जान लेने पर उन्होंने जमकर मूर्तिपूजा को आडम्बर, कठिन व्रतोपवास तथा तीर्थाटन आदि को बाहरी स्वरूप बताकर उसकी निन्दा की। उन्होंने दोनों धर्मों (हिन्दू और मुसलमान) के सब लोगों स्त्री–पुरुष, बालक वृद्धों को अपनी वाणी से उद्‌बोधित किया। इससे उनकी निर्गुण ब्रह्म पर आस्था परिलक्षित होती है।

कबीर पर निर्गुण भक्ति कैसे संभव है? यह प्रश्न उठाया जाता है। कबीर जब अपने और भगवान के

मध्य अभेद मानते हैं तो फिर भक्ति किसकी? इस शंका का समाधान डॉ. एस.एन. दास गुप्त ने करते हुये कहा है कि भक्ति के स्वरूप को दृढ़ता प्रदान करने के लिये ही भक्त और भगवान के दार्शनिक अभेद का निरूपण किया गया है।

The assertion of the philosophic identity of the self and the Brahman is only for the purpose of strengthening the nature of Bhakti. It merely shows that the oneness that is felt through attachment can also be philosophically supported.[3]

कबीर के दार्शनिक विवेचन में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि कबीर का निर्गुण ब्रह्म वस्तुतः अभाव का सूचक नहीं है, उसमें सगुणता वर्तमान है, क्योंकि कबीर उसकी सार्वकालिक सत्ता स्वीकार करते हैं वहीं से उसकी सगुण कल्पना का आरम्भ हो जाता है। संत ज्ञानेश्वर ने स्वीकार किया है ''कि पराभक्ति का अनुभव भक्त को उसी समय पूर्ण रूप से हो सकता है जब वह परामात्मा के निर्गुण रूप से तादात्म्य प्राप्त कर ले।''[4]

विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से उनका अध्ययन कर कभी उनके दार्शनिक रूप को प्रधानता दी तो कभी उनके कवि, योगी अथवा भक्त स्वरूप को प्रधान माना। कबीर दार्शनिक उस सीमा तक हैं, जिस सीमा तक तुलसी या सूर। कबीर ने जनमानस की मानसिकता को समझते हुये उसे रूग्ण मुक्त करने का प्रयास किया। आत्म मंथन पर उन्होंने बल दिया। यह स्पष्ट है कि कबीर दार्शनिक नहीं थे, परन्तु उनकी वैचारिक क्षमता किसी भी दार्शनिक से कम नहीं थी।

तत्कालीन विद्वत समाज में उनके योगदान की महत्ता प्रदर्शित करते हुये यह जनश्रुति है :–

सार–सार सब सूरा कहिगा तुलसिऊ कही अनूठी।
बचा खुचा सब कबिरा कहिगा और कही सब जूठी।।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- कबीर ग्रन्थावली प्रयाग संस्करण, पद 10
- कबीर ग्रन्थावली पद 194
- A History of Indian philosophy Vol. IV P. 353
- डॉ0 केदारनाथ द्विवेदी, कबीर और कबीर पंथ, पृ. 126 पर डॉ0 मालती श्रीखंड़े के विचार।
- कबीर वाणी संग्रह, डॉ पारसनाथ तिवारी।
- कबीर समग्र, डॉ योगेश्वर।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

जनकवि कबीरदास का साहित्य और संस्कृत के संदर्भित प्रतीकों का अध्ययन

डॉ0 मुन्ना लाल चौधरी
सहायक प्राध्यापक –संस्कृत
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति ''कन्'' धातु में दीर्घ निपात् पूर्वक ''प्रति'' उपसर्ग से हुई है। जिसमें कन् का अर्थ है :– चमकना, शोभित होना। तथा ''प्रति'' का आशय है ''की ओर मुड़ा हुआ, उल्टा, विरुद्ध। इस प्रकार सभी प्रतीक चिह्न तो होते है किन्तु सभी चिह्न प्रतीक नहीं होते। सामान्य अर्थ में जिस पर किसी का आरोप किया गया हो प्रतिरुप, प्रतिमा, ''वह दृश्य वस्तु या तथ्य जो किसी अदृश्य वस्तु या तथ्य के प्रायः अनुरुप होने के कारण उसके प्रतिनिधि या प्रतिरुप के रुप में मान ली जाए'' किसी वाक्य पद मन्त्र आदि के कुछ अक्षर जिससे पूरे वाक्य का बोध हो। भारतीय विचारधारा में ''किसी अन्य स्तर की समरुपता, किसी वस्तु द्वारा अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है।[1] पश्चिमी विद्वानों के अनुसार ''प्रतीक किसी विचार, भाव या अनुभव का दृष्टिगत या श्रवणीय चिन्ह या संकेत है, जो उन तथ्यों को स्पष्ट करता है जो मस्तिष्क, कल्पना या निरीक्षण के क्षेत्र में आने वाली वस्तुओं द्वारा ग्रहण किये जाते हैं।[2] इस तरह प्रतीक अप्रस्तुत का विधान कर, इनके प्रयोग में अभीष्ट अर्थ अथवा प्रस्तुत अर्थ का संकेत करते हैं। काव्य सृष्टा जब अपने भावों को सामान्य शब्दों में व्यक्त करने में असक्षम हो जाता है तब प्रतीकों को ग्रहण करता है, जिसकी अभिव्यक्ति आध्यात्मिक व दार्शनिक प्रसंगों में अनुभूत होती है। प्रस्तुत के स्थान पर, अप्रस्तुत का प्रयोग करना ही प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। प्रतीक आधार, सादृश्य या साधर्म्य नहीं है, अपितु कवि के साथ ही साथ पाठक या श्रोता के हृदय में भावना जाग्रत करने की शक्ति है।

काव्य में प्रतीक का स्थान :–

मानव जीवन पर्यन्त अपनी गति के लिये प्रतीक पर निर्भर करता है।[3] मानव की वाणी अपने आप में प्रतीक है। तथापि प्रतीकों का प्रयोग एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए होता है। कुतूहल और विस्मय उत्पन्न करने तथा गोपनीय वस्तुओं को दूसरों में गुप्त रखने के निमित्त भी प्रतीकों का सहारा लिया जाता है। ये ही प्रतीकों के प्रयोजन हैं।

1. भावना को मूर्त रुप प्रदान करने हेतु।
2. कुतूहल और विस्मय उत्पन्न करने हेतु।
3. गोपनीय को दूसरों से गुप्त रखने के लिए।

कबीरदास ने प्रतीकों का प्रयोग प्रथम एवं द्वितीय प्रयोजन सिद्धि हेतु किया है। गोपनीय को गुप्त रखने की प्रवृत्ति उनमें नहीं थी, चूँकि वे कवि और भक्त दोनों के साथ ही समाज सुधारक भी थे। कबीरदास ने अपने काव्य में प्रतीकों का चयन तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार कुछ किया है।

कबीर प्रतीक के रुप में दाम्पत्य प्रेम का चित्रण किया हैं उनके साहित्य में सांसारिक जीवन की पवित्रता, सात्विकता एवं आध्यात्मिकता अवलोकित होती है। यह प्रेम इतना पावन और निर्मल है कि कबीर साहिब ने इसे आत्मा और परमात्मा के लौकिक विवाह की संज्ञा दी है। इस विवाह में साधक की ''आत्मा'' ही 'वधू' है।

''परमात्मा'' (राम) 'वर' हैं। शरीर ''वेदिका'' है। ब्रह्माजी पुरोहित हैं। तैंतीस करोड़ देवता तथा अट्ठासी हजार ऋषि इस संबन्ध के साक्षी व बराती हैं। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का आध्यात्मिक संबन्ध स्थिर हो जाने पर भी यदि आत्मा में किसी प्रकार का द्वेष शेष रह जाता है तो मिलन नहीं होता। इस स्थिति में आत्मा–वधू किस तरह उद्विग्न और विह्वल हो उठती है :–

कियो सिंगार मिलन के ताई, हरि न मिले जगजीवन गुसॉई
हरि मेरो पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।।
धनि पिय एकै संग बसेरा, सेज एक पे मिलन दुवेरा।
धन्न सुहागिन जो पिय भावै, कहि कबीर फिर जनमि न आवे।। क. ग्र. पृ 277

जब आत्मा–रुपी वधू का परमात्मा–रुपी प्रियतम से इस प्रकार संबन्ध स्थापित हो जाने पर भी मिलन नहीं होता तभी वह तड़प उठती है :–

वै दिन कब आवहिंगे माय।
जा कारन हम देह धरी है मिलवो अंग लगाय।। क. ग्र. पृ 191

कबीर की रचनाओं में आध्यात्मिक ''प्रणय'' के ऐसे अनेक दृश्य हैं, जिसके कारण उनके काव्य में एक प्रकार से आध्यात्मिक रस की वर्षा होती है।

दाम्पत्य प्रतीकों के अतिरिक्त कबीर ने माता और पुत्र के प्रतीकों के सहारे भी अपनी भक्ति भावना व्यक्त की है। हरि रुपी जननी के प्रति उनका आत्मनिवेदन कितना रमणीय है :–

हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहैं न तेते।।
कर गहि केस करै जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता।
कहै कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुःखी दुःखी महतारी।। क. ग्र. पृ 123

मानवीय संबन्धी प्रतीकों के अतिरिक्त कबीर साहब ने पशु और उसके स्वामी के प्रतीक भी परिकल्पित किये हैं। एक स्थान पर उन्होंने अपने को 'गोरु' और ''भगवान'' को 'चरवाहा' के प्रतीक की संज्ञा दी। एक अन्य स्थल पर उन्होंने स्वयं को ''कुत्ता'' और ''राम'' को अपना स्वामी (अराध्य) माना है। इस प्रकार के प्रतीक योजना के सहारे वे अपने विषय वस्तु की अभिव्यक्ति में सफल रहे हैं। इन मूल प्रतीकों के अलावा संत कबीर की काव्यकृतियों में अनेक प्रकार से प्रतीक योजना मिलती हैं :–

1) सांकेतिक प्रतीक :– कबीर इससे बहुत प्रभावित थे। अतः उन्होंने नाथ–पन्थी योगियों में प्रचलित प्रतीक योजना को ज्यों का त्यों प्रयोग किया है। उन्होंने भी गगनमंडल का प्रयोग ब्रह्म रन्ध्र के अर्थ में किया है। बंकनाल का प्रयोग भी उन्हीं के अनुकरण पर सुषुम्ना के पर्याय के रुप में किया है।

2) पारिभाषिक प्रतीक :– योगियों में बहुत से पारिभाषिक प्रतीक प्रचलित थे। कबीर ने उसी परम्परा का निर्वाह अपने काव्य में किया है।

इड़ा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।
इड़ा पिङ्गलयोर्मध्ये बालरंडा च कुण्डली।। क. ग्र.

यहॉ पर इड़ा नाड़ी के लिये गंगा, पिंगला के लिये यमुना और कुण्डलिनी शक्ति के लिये बालरंडा नाम के पारिभाषिक प्रतीक प्रयुक्त किये हैं। नागपन्थियों में मूलाधार के लिये सूर्य और सहस्रार के अमृत तत्व के लिये चन्द्र पारिभाषिक प्रतीक माने जाते हैं। कबीर इन पारिभाषिक प्रतीकों को योनियों के अर्थ में ही प्रयुक्त करते हैं :–

सूर्य समाणा चन्द में दुहूँ किया घर एक।
मन कर चिंता तब भया कुछू पूर्वला लेख।। क. ग्र.

3) संख्यामूलक प्रतीक :– कबीरदास ने सिद्ध एवं नाथपंथियों की प्रवृत्ति को जस का तस आत्मसात् किया है। यहाँ पर ''चौदह'' शब्द 14 विद्याओं का, व ''चौंसठ'' 64 कलाओं का सूचक है। इसी प्रकार के और भी संख्यामूलक प्रतीकों के प्रयोग पाए जाते हैं।

चौंसठ दीया जोय के चौदह चन्दा माहिं।
तेहि घर किसका चानडो जेहिं घर गोविंद नाहिं।।

4) रुपात्मक प्रतीक :– कबीर के काव्य में ऐसे अनेक प्रतीकों की योजना देखने को मिलती है जो किसी रुपक विशेष के अंगों के लिये कल्पित किये गए हैं। ऐसे स्थलों पर रुपक योजना प्रतीकात्मक हो जाया करती है। कबीर के रुपकों का विवेचन करते समय इस बात को और स्पष्ट किया गया है।

संस्कृत में प्रयुक्त प्रतीक योजना :–

वेद भारतीय चिंतनधारा के आदि स्रोत हैं। जिनमें साम्यमूलक व विरोधमूलक दोंनो ही प्रतीक के बीज विद्यमान हैं। इनमें आध्यात्मिक और रहस्यात्मक विचारों की अभिव्यक्ति के लिये प्रतीकात्मक शैली है। इन्द्र, मित्र, मरुत्, सवित, वरुण, रुद्र, अश्विन आदि विभिन्न देवता विभिन्न प्रतीकों के प्रतीक हैं। जो क्रमशः शक्ति, चेतना, बल, प्रेरणा, धर्म, दण्ड तथा दिव्य भेषज के लिये वर्णित किये गये हैं।

साम्यमूलक प्रतीक योजना :–

ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में प्रयुक्त विभिन्न उपमान प्रतीक–रुप में व्यवहृत किये गये हैं। संख्यावाची शब्दों को भी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के सहायक रुप में ग्रहण किया गया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले तृण, औषधि आदि के लिये ''रोम'' शब्द का प्रयोग प्रतीकात्मक रुप में हुआ है :–

यद् वातजूतो, वना व्यवस्थादग्निर्ह दाति, रोमा पृथिव्याः। ऋग्वेद 1, 65–8

इसी प्रकार त्वष्टा (बल) के रुप में अगिन का उल्लेख है जिसका भरण पोषण दश अथक कुमारियों द्वारा किया जाना वर्णित है :–

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विमृत्रम्।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परिशीं नयन्ति ।। ऋग्वेद 1, 96–2

दश अथक कुमारियाँ दस अँगुलियों की प्रतीक हैं। प्रतीकात्मक शैली में किया गया सूर्य के रथ का वर्णन भी उल्लेखनीय है जिसमें विभिन्न संख्याओं का आश्रय ग्रहण किया गया है :–

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्व यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्युः।। ऋग्वेद 1, 164–2

एक अन्य मन्त्र में यही चक्र 'वर्ष' के प्रतीक–रुप में प्रयुक्त हुआ है :–

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणिनम्यानिक उतच्चिकेत।
तस्मिंत्साकं त्रिशता शंकवोऽर्पिताः शष्टिर्नचलाचलासः।। ऋग्वेद 1, 164–48

चक्र वर्ष, बारह प्रधियाँ बारह मास, तीन नाभियाँ, तीन ऋतुओं तथा तीन सौ साठ शंकु दिनों के प्रतीक हैं। इसी प्रकार पंच अराओं वाले चक्र का सारे लोकों में घूमने का वर्णन किया गया है :–

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्त चक्रे शलर आहुरपितम् ।। ऋग्वेद 1, 164–12

यजुर्वेद के एक मन्त्र में 'सप्त परिधय' तथा 'त्रिः सप्त समिधः प्रतीक क्रमशः सात गायत्री आदि यज्ञ के मन्त्रों तथा प्रकृति, महत्त्व, अहंकार आदि 21 तत्त्वों के लिए प्रयुक्त हुए हैं।[4] अथर्वेद में एक वृक्ष पर साथ साथ रहने वाले दो पक्षियों का वर्णन भी प्रतीकात्मक ही है :–

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य, नृनन्नन्यो अभिचाकशीति।। अथर्वेद 9–9–20

इस मन्त्र में वृक्ष संसार का और दो पक्षी जीवात्मा तथा परमात्मा के प्रतीक हैं।

विरोधमूलक प्रतीक योजना :–

वेदों में रहस्यात्मक और दार्शनिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति विपर्ययोक्तियों में भी हुई है। विपर्ययोक्तियाँ तो असंख्य हैं किन्तु ऐसी विपर्ययोक्तियाँ, जिसमें प्रतीकों का अर्थ ग्रहण किया गया है, अल्प हैं। इस प्रकार की युक्तियों में प्रयुक्त प्रतीक विरोध मूलक प्रतीक योजना के अन्तर्गत ही हैं।

इदं वपुर्निवचनं जनासृचरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः। ऋग्वेद 1, 164–2

इस शरीर में नदियाँ बहती हैं और जल स्थिर रहता है। एक अन्य मन्त्र में पिता के पुत्री में गर्भाधान किये जाने का उल्लेख है :–

उत्ताननयोश्चम्वोइर्यानिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्। ऋग्वेद 1, 164–33

वृषभ के चार श्रृंग, तीन पाद, दो सिर तथा सात हाथों का वर्णन भी इसी प्रकार का है :–

चत्वारि श्रृंगात्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्ष सप्त हस्तासौ अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महीदेवो मर्त्यां आ विवेश।। ऋग्वेद 4, 58–3

उपनिषदों में प्रतीक योजना :–

वेदों की अन्तिम कड़ी होने के कारण इन्हें वेदान्त की संज्ञा दी गयी है। वेदों की तरह इनमें अनेक देवी देवताओं का उल्लेख प्रतीकात्मक शैली के रुप में हुआ है। तैत्तिरीयोपनिषद् के प्रथम् श्लोक में आए मित्र, वरुण, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णु आदि नाम क्रमशः दिन और प्राण, रात्रि और अपान, बल और भुजा, वाणी और बुद्धि तथा पैरों के अधिष्ठाता के रुप में प्रतीक ही हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म–रुप की उपासना के प्रसंग में वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि में पुरुष का उल्लेख प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ही है। कठोपनिषद् में ग्यारह द्वारों वाले शरीर का प्रतीकात्मक चित्रण है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में नौ द्वारों वाले पुर का वर्णन है।

उपनिषदों में विरोधमूलक प्रतीक योजना के स्वरुप के भी विद्यमान हैं। उस ब्रह्म और आत्मा की अभिव्यक्ति विपर्ययोक्तियों में अनेक उपनिषदों में की गई है। कठोपनिषद् में ऊपर की ओर मूल वाले और नीचे की ओर शाखा वाले सनातन पीपल के वृक्ष का वर्णन है :–

ऊर्ध्वमुलोऽवाक्शाखा एषोऽश्वत्थः सनातनः।
त्देव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।। कठोपनिषद् 213

पुराण साहित्य में प्रतीक योजना :–

पुराणों में विभिन्न आख्यान है जो आख्यान प्रतीकात्मक शैली में वर्णित हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि आराध्य देवताओं का वर्णन है। मूलतः ब्रह्म ज्ञान और सृष्टि निर्माणकर्ता के रुप में, विष्णु व्यापकत्व और सृष्टि पालन के रुप में तथा शिव–शिवत्व और सृष्टि–संहारक रुप में प्रतीक ही हैं। विभिन्न शक्ति रुप देवियाँ लक्ष्मी, पार्वती, दुर्गा, काली आदि भी क्रमशः वैभव, कला (ज्ञान), सुन्दरता, शक्ति और भयंकरता की प्रतीक हैं। देवी देवताओं के वाहन के रुप में वर्णित गरुड़, तीव्र गति के लिए, हंस विवेक ज्ञान के लिए तथा नान्दी कृपा के लिए प्रसिद्ध हैं। गणेश सिद्धि प्रदाता तथा विघ्न नाशक के रुप में प्रतिष्ठित हैं। ये प्रतीक कबीर के समय में भी प्रचलित थे। इसलिए कबीर इनसे प्रभावित हैं। वास्तव में कबीर द्वारा व्यवहृत इस प्रकार के प्रतीक तत्कालीन वातावरण के प्रभाव स्वरुप ग्रहण किए गए हैं। पुराणों से इनका तो प्रत्यक्ष संबंध नहीं है।

अतः कबीरदास ने विभिन्न स्रोतों से अनेक प्रतीकों को ग्रहण किया है, परन्तु उनकी अभिव्यक्ति मौलिक

व स्पष्ट होने के कारण उनकी प्रतीक योजना अपने आपमें विशिष्ट है। कबीर ने 'कनक' और 'कामिनी' को माया का प्रतीक माना है इस माया का अपार प्रभुत्व है। वह तीनों लोकों को लूट चुकी है ''रमैया की दुलहिन ने लूटा बाजार'' तथा उन्होंने इस पर विजय प्राप्त करने हेतु कहते हैं ''जाके मन विश्वास है, सदा गुरु है संग। कोटि काल झकझोरहीं तऊ न हो चित भंग''।। उनकी प्रतीक योजनाओं से केवल समकालीन कवि ही नहीं अपितु आधुनिक काल के कवि भी प्रभावित हुए हैं। अपने आसपास के पर्यावरण से प्रभावित होकर काव्य सृजन करने वाले इस मस्तमौला कवि के प्रतीकों का स्थान अद्वितीय व अनुपमीय है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य कोश प्रतीकवाद, पृ. 471
2. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान – डॉ. नित्यानन्द शर्मा
3. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय – डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल पृ. 377
4. यजुर्वेद 31/51
5. कबीर ग्रन्थावली

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

जनकवि कबीर के सामाजिक विद्रोह के विविध सरोकार

डॉ0 शोभना अवस्थी
विभागाध्यक्ष–इतिहास विभाग
शासकीय स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

भारतीय परम्परा के अनुसार जब भी संस्कृति और सभ्यताएं अद्यः पतित हुई हैं, तब जीवन की नई दिशाओं की ओर संकेत करने तथा मानव हृदय में शक्ति और विश्वास की लहर जगाने के लिये महान कवियों लेखकों का जन्म हुआ है। मानवता के मसीहा संत कबीर काशी में लहरतारा नामक स्थान में ज्येष्ठ सदी पूर्णिमा के दिन अवतरित हुये जिस युग में कबीर आविर्भूत हुये उसके कुछ ही पूर्व भारत में इस्लाम जैसे सम्प्रदाय का आगमन हुआ था। जिसने भारतीय समाज व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया था।उस समय की परिस्थितियाँ बड़ी विषम थीं।

डॉ रामकुमार वर्मा ने लिखा है – 'उस समय राजनीति कटी हुई पतंग की भाँति पतनोन्मुख हो रही थी। जो उसकी घिसटती हुई डोर को पकड़ लेता वही उसे भाग्याकाश की ऊँचाई तक खींच ले जाता था। शासक वर्ग जनता की सहानभूति खो चुका था, और जनता 'कोउ नृप होई' की मनोवृति से राजनीति के प्रति उदासीन हो चुकी थी ऐसे समय में कबीर ने तत्कालीन समाज में प्रचलित समस्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धांतों द्वारा प्रचलित सामाजिक विषमताओं को दूर कर जनता को राह दिखाने का बीड़ा उठाया तथा लोगों के मन में सामाजिक चेतना जागृत करने के लिए सभी पाखण्डों पर निर्ममतापूर्वक प्रहार किया। उन्होंने गुमराह लोगों की गलतियों की निर्भीकता के साथ इंगित किया एंव सामाजिक और धार्मिक बुराईयों का खुलकर खंडन किया तथा सामाजिक विकृतियों पर मार्मिक चेतना जागृत की। कबीर जाति–पाँति में विश्वास नहीं करते थे, सबको एक ईश्वर की संतान मान भेद–भाव एवं जाति–पाँति की बात करने वालों के लिये वे कहते हैं –

एक जाति से सब उत्पन्ना, का बामन का सूद्रा।

इसी प्रकार'' –

जे तू बामन बमनी जाया।
आन बार ह्वै क्यों नहीं आया।।

कबीर जाति–पाति को महत्व न देकर मनुष्य के कर्म को महत्व देते थे। तभी तो अपने आपको सबसे ऊँची जाति का मानने वाले ब्राह्मणों तथा मुल्ला मौलवियों पर कड़ा प्रहार किया–

हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई।
वैश्या के पायनतर सौवे यह देखो हिन्दुआई।

इसी प्रकार–

मुसलमानों के पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहे घर में करे सगाई।

कबीर जी इस प्रकार के शोषण को चाहे वह सामाजिक हो, धार्मिक हो या आर्थिक, समाप्त करना चाहते थे। ''डॉ शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में ''साई के सब जीव हैं कीरी कुजॅर दोय'' कहकर उन्होंने मानव मात्र की समानता का सिद्धांत प्रचारित किया और ईश्वर की धर्मोपासना के लिए सबके लिए समान अधिकार की माँग की। कबीर ने समाज की बुराईयों को अच्छी तरह समझा, देखा था। तभी तो उन्होने जो प्रहार किया उसका

समाज सुधार की दृष्टि से बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में नवीन चेतना का स्वर फूकॅने वालों में शंकराचार्य के बाद कबीर का ही स्थान है।

हिन्दु अपनी बैर बड़ाई, गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन तर सौवे यह देखो हिन्दुआई।।

हिन्दुओं में व्याप्त ऊँच–नीच की भावना तथा मुसलमानों की अनैतिकता, ढकोसलों तथा ढोंगी माला फेरने वालों की भर्त्सना करते हुये कबीर कहते हैं –

माला तो कर में फिरै, जीव फिरै मुख माहि।
मनवा तो द्वै दिसि फिरै, यहै तो सुमिरन नाँहि।।

कबीर ने रूग्ण समाज के प्रति कठोर रवैया अपनाया था वे सीधा प्रहार करते थे। उन्होंने हिन्दुओं की पूजा एवं स्थापना का भी विरोध करते हुये कहा है कि –

पाहन पुजै हरि मिलै, तो मै पुजूं पहाड़।
घर की चक्की कोई न पूजै,जाको पीस्यो खाय।।

कबीर ने रूढ़ियों और आडम्बरों की कटु आलोचना की उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुये कहा ''तुम किस प्रकार ब्राह्मण हो और हम किस प्रकार सूद्र, हम किस प्रकार घृणित रक्त हैं और तुम किस प्रकार पवित्र दूध हो।''

राज्य की न्याय व्यवस्था पर भी वे व्यंग्य करते हैं ''काजी तुमसे ठीक तरह बोलते नहीं बना, हम तो दीन बेचारे ईश्वर के सेवक हैं और तुम्हारे मन को राजसी बातें की भांति है।

कबीर मनुष्य को ईश्वर की संतान मानते थे उनकी नजरों में जाति और धर्म का कोई भेद नहीं है उन्होंने छल कपट ढोंग फरेब आदि पर प्रहार किया है, कबीर ने मंदिर के बारे में कहा कि मंदिर में सूद्र प्रवेश नहीं कर सकता इसके विरोधी थे उनका मानना था कि ब्राह्मणवाद के कारण ही समाज में छुआछूत है–

बामन के घर बामन आया, और मारग है क्यों नही आया।

संत कबीर ने हिन्दू और मुसलमान विषयक दोनों शब्दों का प्रयोग कर जाति भेद का खण्डन कर आत्म–पर्यचेतना को महत्व दिया–

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय
जो दिल खोजू आपना, मुझसा बुरा न कोय

कबीर ने तीर्थ व्रत आदि का भी विरोध किया, उनका कहना था कि अत्याचारी मनुष्य के लिए तीर्थ व्रत का क्या काम। इसी प्रकार उन्होंने मुसलमानों के आडम्बरों का भी विरोध किया और मानव धर्म की स्थापना की। उनका धर्म आडम्बर विहीन सर्वसुलभ धर्म है कबीर निराकार में विश्वास करते थे उन्होंने जाति व धर्म की विभिन्नता को अस्वीकार करते हुये कहा है–

एक निरंजन अलह मेरा, हिन्दू तुरक दहुं नहीं नेरा।
पूजा करौ न नमाज गुजारौ, एक निराकार हिरदै नमस्कारौ।।

कबीर ने अपने समाज की कुरीतियों पर करारा व्यंग कसा है। उन्होंने अपना सारा समय सामाजिक व ध ार्मिक विषमताओं पर तीखा प्रहार करने में लगाया था। उन्होंने जिस उदात्त समाज की परिकल्पना की थी वह उनके सबल एंव श्रेष्ठ वैचारिक पक्ष की देन है। भारतीय परम्परा में वे आज जुझारू प्रेरणा के प्रतीक हैं।

जनकवि के रूप में कबीर प्रथम अग्रज कवि रहे हैं। उन्होंने सामाजिक विद्रोह के द्वारा समकालीन जनता को जनचेतना के साथ जाग्रत किया। उनका समाज के प्रति विद्रोह का काव्य व्यंग्य के रूप में व्यक्त हुआ है। हिन्दी कवियों में प्रथम समाज सुधारक तथा जनचेतना के काव्य के रूप में उनका स्थान सर्वोपरि रहा है।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

अज्ञेय : पुरातनता में नवीन सन्दर्भों के कवि

डॉ0 सियाराम
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
तिलक महाविद्यालय, औरैया

हिन्दी की छायावादी कविता में जीवन–सौन्दर्य के प्रति आकर्षण का भाव तो विद्यमान था किन्तु वह केवल कलात्मक सौन्दर्य से नयनों को ही अभिराम लगती थी। उसका मानव जीवन में कोई सार्थक उपयोग नही हो सका। छायावादी कवियों ने जीवन को केवल स्वप्न मात्र माना, उन्हें जीवन में सत्य एवं यथार्थ की गंध स्यात् कभी नही मिली। यही कारण है, छायावादी कविता के स्वप्न सत्य के ताप से झुलसने लगे और शनैः–शनैः जनसाधारण में इसके विरुद्ध सुगबुगाहट शुरू हो गयी। जीवन चेतना ने करवट बदली और साहित्य में नये अध्याय और नूतन जीवन मूल्य विकसित होने लगे। इसके मूल में प्रगतिवादी दृष्टि एवं शोषित–पीड़ितों के प्रति सहानुभति का भाव था। प्रयोगवाद के आते ही कविता के क्षेत्र में वैचारिकता और बौद्धिकता का दौर चल पड़ा। देखते ही देखते बिम्बों, प्रतीकों तथा उपमानों के मिथकीय प्रयोग होने लगे और छोटी कविताओं का फैशन चल पड़ा जिसे साहित्य में प्रयोगवादी युग कहा गया।

प्रयोगवादी नूतन काव्यधारा को जन्म देने और विकसित करने का अत्यधिक श्रेय 'अज्ञेय' जी को है। उन्होंने प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्ति एवं चिन्तन पद्धति का न केवल सर्वाधिक विवेचन किया बल्कि तदनुरूप साहित्य सृजन भी किया। प्रथम काव्य संग्रह 'अग्रदूत' (1933 ई0) से ही उनके प्रयोगवादी स्वर सुनाई देने लगते हैं जो कालान्तर में चिन्ता (1942 ई0), इत्यलम् (1947 ई0), हरी घास पर क्षण भर (1949 ई0), बावरा अहेरी (1955 ई0), इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे (1957 ई0), अरी ओ करुण प्रभामय (1959 ई0) और आँगन के पार द्वार (1959 ई0) आदि ग्रन्थों में निरन्तर प्रखर होते गये। इन संग्रहों की कविताएँ जीवन में व्याप्त विषमताओं और कुण्ठाओं से द्वन्द्व ही नहीं करती वरन् वास्तविक तथ्यों का उद्घाटन, आत्मान्वेषण एवं सत्यान्वेषण से भी संपृक्त हैं।

चूँकि अज्ञेय चिन्तनशील कवि हैं। इसीलिए उनकी कविता में वैचारिकता एवं चिन्तन के वे तत्त्व विद्यमान हैं जिनसे आज का मानव प्रभावित हो रहा है। अज्ञेय ऐसे सवालों का सामना करने को तत्पर दिखते हैं जो उनके समय में बल्कि सम्प्रति भी विद्यमान है। आधुनिक युगीन मनुष्य, व्यक्ति और समाज पर मध्ययुगीन चिन्तन (जीव, ब्रह्म, माया, जीवन, जगत आदि) से भिन्न हैं। अज्ञेय भी आधुनिक मानव की भाँति व्यक्ति को ही मूल्यों का प्रतिष्ठाता मानते हैं। तभी तो वे कहते हैं– ''समाज और व्यक्ति की परस्पर निर्भरता भी उन मूल्यों में से एक है जिसका सृष्टा और प्रतिष्ठाता मानव है। यह परस्परता विवेक पर आश्रित है और स्वतंत्रता के आधारभूत मूल्य की रक्षा और उसके विकास के लिए भी वांछनीय है।''[1] मानव मूल्य किसी व्यक्ति द्वारा ही बनाये जाते हैं और समयान्तराल पर बहुपयोगी होने के कारण समाज उन्हें अंगीकार कर लेता है। इस प्रकार के मूल्य सामाजिक ढाँचे के अनुकूल होने पर शीघ्र स्वीकृति पा जाते हैं जबकि विपरीत होने की स्थिति में उन्हें स्वीकृत होने में समय लगता है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने सामाजिक दायित्वों का सम्यक् निर्वाह करे। इस सम्बन्ध में अज्ञेय का स्पष्ट मानना है– ''समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति कुछ दायित्व होता है। समाज जितना ही कम विकसित हो उतना ही वह दायित्व अधिक स्पष्ट और अनिवार्य होता है – अविकसित समाज में विकल्प की गुंजाइश कम रहती है। इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति का एक निश्चित धर्म होता है और जितना ही समाज अविकसित होता है, उतना ही वह धर्म रूढ़ और अनिवार्य।''[2]

अज्ञेय परम्पराधर्मी प्रयोग कर्त्ता कवि हैं। इसीलिए उनकी कविता में जाँच और पड़ताल की मानसिकता विद्यमान है। वे सच्चे अर्थों में आधुनिक कवि हैं। तभी वे बदलते हुए परिवेश के प्रतिपूर्ण सजग हैं। उन्हें नये भावों से सम्बन्ध स्थापना करना एवं उन्हें दूसरों पर व्यक्त करना बखूबी आता है। इसीलिए उनकी कविता में एक ओर तो अपने समय को उद्घाटित करने वाले जीवन सत्यों को प्रस्तुत किया गया है वहीं दूसरी ओर परम्परागत सत्यों को नये संदर्भों में परखा गया है।

अज्ञेय का 'अहं' एक ऐसी चेतना है जिसे उन्होंने सामाजिक–मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओंसे उत्पन्न नयी अवधारणा में व्यक्त किया है। उनका 'अहं' सजीव गतिशील तत्त्वों की पहचान करके सृजनात्मक भूमिका अदा करता है। अज्ञेय का 'अहं' रूढ़िगत अवधारणाओं को नकारता है और वर्तमान परिवेश के सन्दर्भ में एक क्रान्तिकारी भूमिका निभाता है। उन्होंने 'भग्नदूत' में इसका स्पष्ट वर्णन किया है–

कानन का सौन्दर्य लूटकर,
सुमन इकट्ठे करके
यों सुरक्षित नीहार कणों से
आँचल में मैं भरके,
देव! आऊँगा तेरे द्वार।
किन्तु नही तेरे चरणों में दूँगा वह उपहार।

तोड़ मरोड़ फूल अपने मैं
पथ में बिखराऊँगा,
पैरों से फिर कुचल उन्हें मैं
पलट चला जाऊँगा।[3]

यहाँ कवि का अहं पारस्परिक पुरानी रूढ़ि से विद्रोह करता है। वह फूलों को मात्र देवताओं पर चढ़ाने की वस्तु नही मानता बल्कि वह स्वयं फूलों से अपना पथ आच्छादित करना चाहता है। इसी प्रकार अज्ञेय का कवि अंधविश्वास को भी दृढ़ चुनौती देता है–

मंदिर तुम्हारा है/देवता हैं किसके ?
प्रणति तुम्हारी है/फूल झरे किसके ?
नहीं, नहीं मैं झरा, मैं झुका,
मैं ही तो मन्दिर हूँ/ओ देवता! तुम्हारा।[4]

यहाँ मन्दिर, देवता, फूल, प्रणति आदि परम्परागत प्रतीकों का नये सन्दर्भ में प्रयोग किया गया है। जब कवि कहता है 'नहीं, नहीं मैं झरा, मैं झुका, मैं ही तो मन्दिर हूँ' तो वह स्पष्टतः पुरानी परम्परा को नूतन सन्दर्भ में देखने का प्रयास करता है। इसी प्रकार जब अज्ञेय समाज में व्याप्त रूढ़ियों तथा शोषण एवं अमानवीयता के पुराने ढाँचे को देखते हैं तो उनका 'अहं' आहत हो उठता है और वे इन अगतिशील जड़ तत्त्वों को ललकार उठते हैं–

तुम सत्ताधारी, मानवता के शव पर आसीन।
जीवन के चिर रिपु, विकास के प्रतिद्वन्द्वी प्राचीन।
तुम, श्मशान के देव! सुनो, यह रणभेरी की तान'
आज तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।[5]

अज्ञेय जहाँ कहीं भी मनुष्य का अपमान होते देखते हैं उनका मन विद्रोह कर उठता है। उनका यह विद्रोह

सदियों से चली आ रही अमानवता के खिलाफ एक मानवीय दृष्टि प्रदान करता है। इसीलिए अज्ञेय 'सेक्स' सम्बन्धी रुढ़िवद्ध नैतिकता को नकार कर प्रेमानुभूति को नये सिरे से परिभाषित करते हैं–

थोड़ी देर/खुली–खुली/आँखें मिलीं
बिजलियों – से दौड़े संकेत।
सदियों की संस्कारों की/नीवें हिलीं
अभिप्रेत हुए प्रेत।
न देहें हिली–डुलीं/न कोई बोला,
गुँथ गयीं दो दुरन्त/ जिजीविषाएँ/फिर पलटी तुरन्तः
सहजता पर/ हम लौट आये
कौंध में/मैंने पहचाना/मेरे भीतर जो असुर हैं।
रुंधा, छटपटाता/प्रबल पर भोला।[6]

'यौन और प्रेम' के भाव प्राचीन काल से ही साहित्य के विषय बनते रहे हैं किन्तु वर्तमान सन्दर्भ के विकास के साथ–साथ यौन और प्रेम जैसे मूल राग सम्बन्धी अवधारणा भी बदल गयी है। इस संबंध में अज्ञेय स्पष्ट कहते हैं – ''हमारे मूल राग–विराग नही बदले, प्रेम अब भी प्रेम है और घृणा अब भी घृणा। यह साधरणतया स्वीकार किया जा सकता है पर यह भी ध्यान में रखना होगा कि राग वही रहने पर भी रागात्मक सम्बन्धों की प्रणालियाँ भी बदल गयीं हैं।''[7]

स्पष्ट है कि मौन एवं प्रेम जैसे मूल रागों को अज्ञेय नवीन संदर्भ में देखते हैं। वे इन्हें किसी रहस्य में न लपेटकर नितान्त मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा देते हैं। वे मनुष्य की मूल वृत्तियों में नैतिक–अनैतिक के बन्धन को अस्वीकार करते हैं तथा इन्हें अपराधबोध से स्वतंत्र करते हुए स्पष्ट कहते हैं–

आह, मेरा श्वास है उत्तप्त,
धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो, नारी ?[8]

'तुम कहाँ हो, नारी' यह कहना आधुनिक मनोविज्ञान की देन है जहाँ सेक्स को चरित्रहीनता नही माना जाता है। यह सम्बन्ध आधुनिक काल में मुक्त प्रेम के मनोवैज्ञानिक सत्य से कवि को परिचित कराता है। अज्ञेय की प्रयोगशील दृष्टि स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को मनोवैज्ञानिक आधार पर देखती है। इनकी कविता में यौन और प्रेम की अनुभूति लौकिक स्तर पर अभिव्यक्त हुई है–

मुझे सब कुछ याद है। मैं उन सबों को भी
नही भूला! तुम्हारी देह पर जो
खेलती हैं अनमनी मेरी उंगलियाँ– और जिन का खेलना
सच है, मुझे जो भुला देता है–
सभी मेरी इन्द्रियों की चेतना उनमें जगी है।[9]

अज्ञेय प्रेम को छायावादी कवियों की भाँति अमूर्त व वायवी न बनाकर मुझे मूर्त्त जीवन से जोड़ते हैं। सांसारिक प्रेम में आशा–निराशा, आशंका–कुण्ठा सभी विद्यमान रहती हैं तथा यही प्रेम को वास्तविकता से जोड़ती हैं। अज्ञेय के लिए प्रेमिका इसी दुनिया की जीती जागती स्त्री है, इसीलिए वह स्पष्ट कहते हैं–

इसी जमुना के किनारे एक दिन
मैने सुनी थी दुःख की गाथा तुम्हारी

और सहसा कहा था बेबसः
तुम्हें मैं प्यार करता हूँ।
गहे थे दो हाथ मौन समाधि में,
स्वीकार की।[10]

अज्ञेय की कविता में प्रेम, वासना और विवेक जीवन के यथार्थ से टकराते हैं। यहाँ प्रेम मात्र भोग का ही नहीं अपितु संघर्ष का भी प्रतीक है। प्रेम और यौन मानव जाति के ही नही वरन् सम्पूर्ण जीव–जगत के शाश्वत भाव हैं। इनकी बदलती हुई मान्यताओं के प्रति अज्ञेय सचेत हैं। वे इन भावों को फ्रायड के मनोविज्ञान के अनुसार मानवीय रूप में ही देखते–परखते और स्वीकारते हैं तभी तो कहते हैं–

मैंने तुम्हें छुआ है/मेरी मुट्ठियों में भरी हुई तुम
मेरी उंगलियों बीच छनकर बही हो–
कण प्रतिकण आप्त, स्पष्ट, मुक्त।
मैंने तुम्हें चूमा है
और हर चुम्बन की तप्त, लाल, अयस्कठोर छाप
मेरा हर रक्त–कण धारे है।''

'यौन और प्रेम' प्रत्येक युग और समाज में चर्चित एवं चित्रित होते रहे हैं। इनका अपना एक सामाजिक सन्दर्भ रहा है। इन सम्बन्धों से जहाँ सामाजिक ताना–बाना प्रभावित होता रहा है वहीं ये सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण रहे हैं। समय–समय पर इनका रूप बदलता रहा है किन्तु कला के स्तर पर स्त्री–पुरुष सम्बन्धों एवं यौन–प्रेम रागों का नकार ही अधिक मिलता है। आधुनिक कवि इस सच्चाई से मुँह न फेरकर इन्हें असली रूप में देखता है। अज्ञेय की कविता में स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों को रूढ़ि एवं परम्परा से मुक्ति मिली है। उनके अनुसार प्रेम की रागात्मक अवधारणा की अपेक्षा यौन–तृप्ति का एक क्षण अधिक सार्थक व अच्छा है क्योंकि इसमें छद्म मूल्यों का कोई आवरण नही होता। यही है अज्ञेय की प्रयोगशील दृष्टि।

व्यक्ति की इयत्ता या अस्तित्त्व का समाज में सम्पूर्ण विलयन समाज एवं व्यक्ति किसी के हित में नही हो सकता है क्योंकि समाज का सतत् विकास जागरुक व्यक्तियों पर ही निर्भर है। विवेक सम्पन्न व्यक्ति अपना अस्तित्त्व बरकरार रखते हुए समाज को दिशा देने हेतु रूढ़ियों से टकराता है, असहमत होता है। अज्ञेय जी इस तथ्य से पूर्ण परिचित हैं, तभी वे कहते हैं–

किन्तु हम हैं द्वीप।
हम धारा नही है।
स्थिर समर्पण है हमारा/हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं हैं क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे/प्लवन होगा/ढहेंगे/सहेंगे/बह जायेंगे।
और फिर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे।
अनुपयोगी ही बनायेंगे।[12]

यहाँ समाज एवं व्यक्ति के बारे में कवि की स्पष्ट धारणा है कि जिस तरह नदी में द्वीप के विलय हो जाने से न तो द्वीप की अर्थवत्ता रहती है और न ही नदी का विकास होता है क्योंकि बहना रेत होना है, उसी तरह व्यक्ति' की इयत्ता का खत्म होना, सब कुछ खत्म हो जाना है। अज्ञेय व्यक्ति के निर्माण में समाज के योगदान को भी स्वीकार करते हैं। वे व्यक्ति को एक सामाजिक इकाई मानकर इसे पूर्ण समर्थ देखना चाहते हैं क्योंकि

व्यक्ति के समर्थ होने से समाज स्वमेव समर्थ हो जायेगा।

आज हम जिस युग में जी रहे हैं वहाँ वैज्ञानिक प्रगति से हमारी मान्यताओं और उनके आधारों में मूलभूत परिवर्तन आ गया है किन्तु हम इस परिवर्तन को उतनी ही तीव्रता से जीवन और व्यवहार में स्वीकार नही कर पा रहे हैं। इस सम्बन्ध में अज्ञेय का मानना है कि यांत्रिक उन्नति आत्मा को प्रेरणा नही देती जबकि यह प्रेरणा मानव जीवन के लिए आवश्यक है। यांत्रिक उन्नति के परिवेश ने मनुष्य के समक्ष एक नया संकट उत्पन्न किया है जो पहले कभी न था। इसे अज्ञेय का कवि मन बखूबी महसूस करता है–

किन्तु यहाँ आसपास/घुमड़न है, त्रास है।
मशीनों की गड़गड़ाहट में।
भोली (कितनी भोली) आत्माओं की
अनुरणन की मोहमयी प्यास है।
यंत्र हमें दलते हैं/और हम अपने को छलते हैं
थोड़ा और खट लो थोड़ा और पिस लो–
यन्त्र का उद्देश्य तो बस अवकाश है।
और अवकाश मात्र अवकाश है।
बाहर हैं वे–वही तारे, वही एक शुक्र तारा
वही खूनी ममता से भरा आकाश है।[13]

स्पष्ट है कि कवि यहाँ यांत्रिक परिवेश और प्राचीन परिवेश को नये सन्दर्भ में विचित्र करते हुए यह बताना चाहता है कि आज के वैज्ञानिक परिवेश में व्यक्ति प्रकृति से लगातार दूर होता जा रहा है और मानसिक शान्ति खोता जा रहा है। इसी प्रकार कारखानों और उनमें उबलते हुए आदमी की पीड़ा को व्यक्त करते हुए अज्ञेय कहते हैं–

पहाड़ियों से घिरी हुई इस छोटी सी घाटी में
ये मुँहझोसीं चिमनियाँ बराबर
धुआँ उगलती जाती हैं
भीतर जलते लाल धातु के साथ
कमकरों की दुस्साध्य विषमताएँ भी
तप्त उबलती जाती हैं।[14]

अर्थात जिस उद्यम से मानव–मुक्ति सम्भव थी वही उद्यम बदलते परिवेश में मानव के शोषण एवं पीड़ा को और बढ़ाते जाते हैं, उसे छलते जा रहे हैं।

इसी प्रकार अज्ञेय की कविता पश्चिम के अंधानुकरण पर भी व्यंग्य करती है और भारतीयों के नकली व्यवहार पर भी। आज के वातावरण में नकलीपन एक विशेषता बन गया है, आज प्रेम भी छल बन गया है और मुस्कराहट के पीछे घृणा छिपी है अर्थात् पूरे मानवीय सम्बन्धों में कृत्रिमता एवं नकलीपन उतर आया है। यह कटु सत्य है जिस पर अज्ञेय लिखते हैं–

नहीं, ये मेरे देश की आँखें नही हैं
पुते गालों के ऊपर/नकली भवों के नीचे
छाया प्यार के छलावे बिछाती
मुकुर से उठायी हुई/मुस्कान मुस्कुराती

ये आँखें – नही मेरे देश की नहीं हैं–
तनाव से झुर्रियाँ पड़ी कोरों की दरार से।
शरारे छोड़तीं घृणा से सिकुड़ी पुतलियाँ–
नही, ये मेरे देश की आखें नही हैं–[15]

'नही, ये मेरे देश की आखें नही हैं' कहकर कवि यह बताना चाहता है कि वह अपने देश की वास्तविक आँखों को पहचानता है अर्थात अपनी जातिगत अस्मिता और जीवन व्यवहार की पहचान उसे है। नकली और असली से परिचित कवि की यही दृष्टि परम्परा और नवीनता के फर्क को स्पष्ट करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय प्रयोगशील मानसिकता के कवि हैं। वे अपनी पूर्व की काव्य परम्परा की सदैव जाँच–पड़ताल करते हुए मानव को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करते हैं। अहं, प्रेम, व्यक्ति और समाज पर अज्ञेय ने अपनी लेखनी चलायी और कविता द्वारा अपने समय के उद्घाटित नये जीवन सत्यों को नवीन संदर्भों में परखा। इसीलिए अज्ञेय को हिन्दी जगत् में आधुनिक साहित्य की शुरुआत करने वाला कवि माना जाता है। वे घोर परम्परावादी और अपने को जनवादी कहने वाले एवं यथार्थ साहित्यिक मूल्यों की स्थापना करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अज्ञेय : स्रोत और सेतु (प्र0सं0), पृष्ठ–118।
2. सच्चिदानंद वात्सायन : त्रिशंकु (सं0–1973), पृष्ठ–27।
3. अज्ञेय : पूर्वा' भग्न दूत (सं0–1965), पृष्ठ–26।
4. अज्ञेय : क्योंकि मैं उसे जनता हूँ (प्र0सं0), पृष्ठ–43।
5. अज्ञेय : पूर्वा' बंदी स्वप्न (सं0–1967), पृष्ठ–49।
6. अज्ञेय : क्योंकि मैं उसे जनता हूँ (प्र0सं0), पृष्ठ–47।
7. सच्चिदानंद वात्स्यायन : आधुनिक हिन्दी साहित्य (प्र0सं0), पृष्ठ–229।
8. अज्ञेय : पूर्वा, पृष्ठ–132।
9. अज्ञेय : पूर्वा, पृष्ठ–216।
10. अज्ञेय : पूर्वा, पृष्ठ–238।
11. अज्ञेय : कितनी नावों में कितनी बार (द्वि0सं0), पृष्ठ–32।
12. सच्चिदानंद वात्स्यायन : आधुनिक हिन्दी साहित्य (प्र0सं0), पृष्ठ–97।
13. अज्ञेय : आत्मनेपद (प्रं0सं0), पृष्ठ–263।
14. अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय (प्रं0सं0), पृष्ठ–45।
15. अज्ञेय : नदी की बाँक पर छाया (प्रं0सं0), पृष्ठ–11।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सुन्दर कविराय के व्यक्तित्व एवम् कृतित्व का संक्षिप्त परिचय

डॉ0 जयकिशोर शर्मा
प्रवक्ता– हिन्दी विभाग
चौ0 हरचन्द सिंह महाविद्यालय, गोठनी, बुलन्दशहर (उ०प्र०)

सुन्दर कविराय भक्ति और रीतिकाल के संधिकाल के प्रमुख कवि हैं। इनका पूरा नाम सुन्दर है और 'कविराय' (कविराज) – आश्रयदाता मुगल सम्राट शाहजहाँ द्वारा प्रदान की गई उपाधि। सुन्दर ने अपने विषय में अल्प परिचय दिया है। इन्होंने अपने माता–पिता, पुत्र–पुत्री, गुरूजन आदि के विषय में 'सुन्दर श्रृंगार' जो कि इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है, में कोई उल्लेख नहीं किया है। उपलब्ध सामग्री से पता चलता है कि सुन्दर जाति से ब्राह्मण थे। "परवर्ती आलोचकों ने भी उन्हें ब्राह्मण ही माना है। ब्राह्मणों में वे गौड़ थे या कान्यकुब्ज अथवा सनाढ्य– इसे न तो सुन्दर ने स्पष्ट किया है और न ही परवर्ती विद्वानों ने ही इसमें रुचि ली है।"[1] सुन्दर ग्वालियर नगर के रहने वाले थे, इसका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने "सुन्दर श्रृंगार" में किया हैः

विप्र ग्वालियर नगर को, वासी है कविराज।
जासौ साहि मया करै, सदा गरीब नवाज।।[2]

ग्वालियर नगर का वासी होने से यह आशंका भी निर्मूल हो जाती है कि शायद वे ग्वालियर राज्य, जनपद या सम्भाग के किसी गाँव के रहने वाले हों। वास्तव में वे ग्वालियर नगर के नागरिक थे, किसी ग्राम्य संस्कृति में पले–बढ़े ग्रामीण नहीं। सुन्दर कविराय ग्रन्थावली के सम्पादक एवम् काव्यमर्मज्ञ पूज्यपाद डॉ0 रामानन्द जी शर्मा ने इनका जन्मकाल संवत 1645 वि0 माना है। "यदि शाहजहाँ के साथ सम्पर्क सम्वत् 1675 वि मान लिया जाये और उस समय उनकी अवस्था तीस वर्ष मान ली जाये जो नितान्त तर्कपूर्ण है, तो उनका जन्मकाल संवत 1645 वि0 के लगभग निश्चित होता है। इस प्रकार 'सुन्दर श्रृंगार' के रचनाकाल (सं. 1688) के समय वे तैंतालीस वर्ष के ठहरते हैं। ग्रन्थ की रचना के समय वे शाहजहाँ के आश्रय में 13–14 वर्ष व्यतीत कर चुके थे।"[3] इनका शरीरपात कब हुआ, कहा नही जा सकता। विद्वान सम्पादक डॉ0 रामानन्द जी शर्मा ने संवत 1700 वि0 में सुन्दर का शरीरपात हुआ, ऐसा स्वीकार किया है।

सुन्दर के काव्य में श्रृंगार के उभयपक्ष – संयोग एवम् वियोग श्रृंगार का वर्णन मिलता है। इसके साथ–साथ सात्विक भावों का संक्षिप्त कथन भी उपलब्ध होता है। नायक–नायिका का परस्परिक मिलन, नायक का नायिका के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध होना, प्रेम के वशीभूत होकर विभिन्न प्रकार की कामोद्दीपक चेष्टाएँ आदि ऐसे प्रसंग है जो रसिकजनों के चित्त को अनायास ही आकर्षित करते हैं। संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत कवि ने सोलह हावों का विवेचन प्रस्तुत किया है। हेला नामक भाव का नमूना दर्शनीय है जिसमें नायिका कामक्रीड़ा हेतु नायक से पहल करती है।

सेज के समीप आइ, लालन जगाइ पुनि,
आपुही ते उपजाइ लीजियतु काम है।

उर सो लगाइ उर, उरू पर उरू धरि,
कहूँ कछू कम्प, कहूँ नैसुक विराम है।
पिय मुख तन कियो, चुंबन को निज मुख
'सुन्दर' सुधार्‌यो विधि, मानों सुधा – धाम है।

(आ) कैसो नीकौ नायक सकल सुखदायक है,
कैसी नीकी चाँदनी औ, कैसो नीकौ चन्दु है।[4]

सुन्दर कविराय की यमक की ओर विशेष रूचि रही है। उनके यमक प्रयोगों की विशेषता इस बात में है कि वे कठिन या अप्रचलित शब्दों का प्रयोग नहीं करते, बल्कि सरल व प्रचलित शब्दों का प्रयोग ही करते हैं, जिससे काव्य में सरसता का संचार हो जाता है। सुन्दर कविराय ने यमक के सार्थक एवं निरर्थक प्रयोग स्थल–स्थल पर किये हैं –

(अ) बिनु गुन माल उर धरी है गोपाल लाल,
आँखें लाल–लाल कौन लेखे लेखियतु है।[5]

(आ) कहि सुन्दर नन्द कुमार लिए, तन को तनकौ नहिं चैन कहूँ।[6]

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सुन्दर ने यमक के सरल एवं सरस प्रयोग किये हैं, जो अनायास ही आये हैं, सायासपूर्वक नहीं।

अर्थालंकारों के अन्तर्गत सुन्दर कविराय ने उपमा, उत्प्रेक्षा एवं संदेह में रूचि दिखाई है। रूपक का प्रयोग उनके काव्य में अल्प ही है। उत्प्रेक्षा के प्रयोग में उन्हें आशातीत सफलता अर्जित हुई है। जब भी कवि वस्तुवर्णन प्रारम्भ करता है तो उसका अन्त उत्प्रेक्षा से ही करता है। प्रौढ़ा नायिका ने नायक के साथ जमकर रमण किया है। इसी समर–संग्राम में उसके स्तन पर नायक का नख लग गया जो देखने में आठ का अंक जैसा लगता है। कवि सम्भावना करता है मानों काम देव का हाथी चढ़ गया हो और यौवन रूपी महावत उसे रोकने के लिए अंकुश लिए हुए हों। यहाँ स्तनों में हाथी की कल्पना की गई है, वैसे भी स्तनों का उपमान करिकुम्भ (हाथी की कनपटी) माना गया है। नखक्षत उपमान है अंकुश का। उत्प्रेक्षा कितनी सुन्दर एवं सार्थक है देखिये :

कुच ऊपर देख्यो नखक्षत 'सुन्दर', आठ के आँक सो ऐसो लसै।
मनहू मनमत्थ को हाथी चढ्यो, है महाउत–जोबन आँकुस लै।।[7]

सुन्दर कविराय ने रूपक का प्रयोग स्वल्प ही किया है, लेकिन जितना किया है वह बेजोड़ है। उनका एक सांगरूपक देखिये, कितना सुन्दर और प्रभावी है–

"चिबुक–कूप मद डोल–तिल, बाँधि अलक की डोरि।
दृग– भिस्ती हित ललकि बल, छवि जल भरत झकोरि।।" [8]

यहाँ पर चिबुक के गर्त पर कूप का, डोल पर आँखों के तिल का, डोरी पर अलक का, नेत्रों पर भिश्ती तथा कान्ति पर जल का आरोप किया है। समस्त अंगों का आरोप होने के कारण सांगरूपक अलंकार है।

सारतः सुन्दर कविराय ने अलंकारों के स्वल्प प्रयोग में ही रूचि दिखाई है, वे कविता–कामिनी के त्वचा निखार एवं सहज सौंदर्य के संवर्धन में प्रयत्नशील दिखते हैं, कृत्रिम श्रृंगार में नहीं। इनके काव्य में अलंकारों का स्वल्प प्रयोग भले ही है, लेकिन है वह अत्यन्त सटीक।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सुन्दर कविराय भक्ति एवं रीतिकाल के संधिकाल के महत्वपूर्ण

कवि है जिन्होंने मुगल सम्राट शाहजहाँ के आश्रय में रहकर काव्यसाधना की। इनका सौन्दर्य वर्णन, ऋतु वर्णन, प्रकृति चित्रण उत्कृष्ट कोटि का है। इनकी कविता प्रौढ़ एवं प्रांजल है। उनमें कवित्व–शक्ति पर्याप्त मात्रा में थी तथा वे साहित्यिक ब्रजभाषा लिखने वाले कवियों में अग्रणी थे। उन्होंने तत्कालीन युगानुरूप श्रृंगाररस को प्रमुखता प्रदान की।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 रामानन्द शर्मा (सम्पा0 सुन्दर कविराय ग्रन्थावली), पृष्ठ 25
2. सुन्दर श्रृंगार, छन्द 12
3. डॉ0 रामानन्द शर्माः सुन्दर कविराय ग्रन्थावली (भूमिका), पृष्ठ 27
4. वही, छन्द 217
5. वही छन्द 124
6. वही छन्द 148
7. वही छन्द 144
8. सुन्दर कविराय ग्रन्थावलीः विप्रकीर्ण छन्द 10

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

यशस्वी कथा शिल्पी श्री लाल शुक्ल के रचना के विविध सरोकारों का मूल्यांकन

डॉ0 सुरंगमा यादव
विभागाध्यक्ष–हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय, बदायूँ (जालौन)

प्रख्यात व्यंग्यकार और उपन्यासकार श्री लाल शुक्ल का जन्म 31 दिसम्बर 1925 में 'अतरौली' लखनऊ में हुआ। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक (1947) श्री लाल शुक्ल ने 1949 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में प्रवेश किया। आपका अधिकांश समय उ0प्र0 की राजधानी लखनऊ में सचिव के रूप में व्यतीत हुआ। यद्यपि उच्च प्रशासनिक सेवा में रहकर साहित्य सृजन जैसा भाव प्रधान कर्म कम ही लोग कर पाते हैं, परन्तु आपने अपने प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का सफल निर्वहन करते हुए अपनी लेखन प्रतिभा से साहित्य की श्री वृद्धि की। व्यंग्य आपकी प्रमुख विधा रही और आप व्यंग्यात्मक निबंधकार के रूप में साहित्य जगत में प्रसिद्ध हुए।

श्री लाल शुक्ल के कई उपन्यास, व्यंग्य एवं कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। जो इस प्रकार हैं, उपन्यास–सूनी घाटी का सूरज, रागदरबारी, अज्ञातवास, बिस्रामपुर का संत, सीमाएं टूटती हैं, मकान, आदमी का जहर, पहला पड़ाव, राग–विराग आदि। व्यंग्य–अंगद का पाँव, यहाँ से वहाँ, उमराव नगर में कुछ दिन, कुछ जमीन में कुछ हवा में आदि।

कहानी संग्रह–यह मेरा घर नहीं, सुरक्षा, इस उम्र में आदि।

आपको बहुत से सम्मान और पुरस्कार भी प्राप्त हुए–

2011	–	ज्ञानपीठ पुरस्कार (2009)
2008	–	पद्मभूषण
2005	–	यशभारती
1999	–	व्यास सम्मान
1997	–	मैथिली शरण गुप्त सम्मान
1994	–	लोहिया सम्मान (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान)
1978	–	मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य परिषद सम्मान
1970	–	'रागदरबारी' साहित्य अकादमी पुरस्कार

वर्ष 2011 में आपको और कथाकार अमरकान्त को संयुक्त रूप से 2009 का ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। भारतीय ज्ञानपीठ ने पहली बार किसी साहित्यकार को घर जाकर सम्मानित करने की परम्परा की शुरूआत श्री लाल शुक्ल से की। यह देश का अपनी तरह का पहला अवसर था जब किसी लेखक को आईसीयू में पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। 18 अक्टूबर 2011 को अस्पताल में ही राज्यपाल बी0एल0जोशी ने उन्हें 45 वें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया। अद्‌भुत व्यक्तित्व के धनी श्री लाल शुक्ल 28.10.2011 को अनन्त यात्रा पर चले गये।

व्यंग्यकार श्री लाल शुक्ल के पहले व्यंग्यात्मक निबन्ध 'अंगद का पाँव' को साहित्य प्रेमियों द्वारा पर्याप्त

सराहना मिली। आपने अपने इस निबन्ध में अधिकारियों की चाटुकारिता करने वालों पर व्यंग्य किया है। इस निबन्ध का संक्षिप्त सार इस प्रकार है–किसी अधिकारी का स्थानान्तरण हुआ है और वे किसी महानगर के स्टेशन से अपने नये कार्य स्थल पर कार्यभार ग्रहण करने जा रहे हैं। उन्हें विदा करने और उनकी गुड बुक्स में अपने को शामिल करने के लिए चाटुकारों की भीड़ प्लेटफार्म पर एकत्र हो जाती है। प्रत्येक कर्मचारी स्वयं को उनका शुभचिंतक, प्रशंसक और कृपा पात्र सिद्ध करना चाहता है। इस प्रयत्न में ट्रेन भी लेट हो रही हैं। प्रत्येक चाटुकार साहब के स्थानान्तरण से स्वयं को अतिशय दुःखी और व्याकुल सिद्ध करने की होड़ में प्रथम आना चाहता है। खुशामदी चमचों की भीड़ में 'अंगद के पाँव' की कहीं चर्चा तक नहीं है। इस व्यंग्यात्मक निबन्ध का अन्तिम वाक्य जो पाठकों को आश्चर्य मिश्रित आनन्द से भर देता है, वह है–''और गाड़ी अंगद का पाँव हो रही थी।''

1968 में प्रकाशित उपन्यास 'रागदरबारी' से आपकी यश पताका उन्मुक्त आकाश में फहराने लगी। 'रागदरबारी' हिन्दी का पहला ऐसा उपन्यास था जो आदि से अन्त तक व्यंग्य से पूर्ण था। इस उपन्यास ने पहली बार 'साहित्यिकता' और 'लोकप्रियता' के भेद को मिटाकर यह सिद्ध कर दिया कि साहित्यिक उपन्यास भी लोकप्रियता के शिखर को छू सकते हैं। इस उपन्यास ने हजारों–लाखों साहित्य प्रेमियों के मन–मस्तिष्क पर अपनी विशिष्ट पहचान बनायी। हिन्दी ही नहीं अपितु अन्य भारतीय भाषाओं में भी 'रागदरबारी' का मुक्त हष्दय से स्वागत हुआ। श्री लाल शुक्ल ने पहली बार नेहरू युगीन लोकतंत्र की विकृतियों एवं स्वतंत्र भारत में मूल्यों के विघटन को अपनी लेखनी का विषय बनाया।

राग दरबारी का कथानक, चरित्र–चित्रण एवं देशकाल वर्णन से युक्त है। यह घटना प्रधान नहीं है। कथानक संक्षिप्त एवं सुगठित है। रंगनाथ नामक युवक इतिहास विषय में एम0ए0 है और पी0एच0डी0 करना चाहता है। वह स्वास्थ्य सुधार हेतु अपने मामा तथा प्रतिष्ठित वैद्य जी के गाँव शिवपालगंज पहुँचता है। उपन्यास की कथा यहीं से आरम्भ होती है। रंगनाथ के मामा कहने को तो वैद्य हैं परन्तु वैद्यक कर्म से अधिक अन्य कार्यों में समय देते हैं। वे स्थानीय इण्टर कॉलेज के मैनेजर हैं, सहकारी संस्था और ग्राम समाज के प्रमुख स्तम्भ हैं। कॉलेज, सहकारी समिति और ग्राम सभा का त्रिकोणीय रूप कथावस्तु का आधार है इन्हीं तीनों के आधार पर उपन्यास में संघर्ष तत्त्व का विकास किया गया है जो अत्यन्त यथार्थ एवं संजीव है। कालेज वाला प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसमें शिक्षण संस्थाओं में बढ़ते राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण शिक्षा की दयनीय दशा का वास्तविक रूप अंकित किया गया है। राजनीतिक दाँव–पेंचों के वैद्य जी सफल खिलाड़ी हैं। उनके धुर विरोधी–खन्ना, मालवीय, रूप्पन, रंगनाथ आदि पराजित हो जाते हैं। तथाकथित न्याय के आसन पर अन्याय प्रतिष्ठित हो जाता है। उपन्यासकार ने शहर और गाँवों में चलने वाली राजनीतिक उठा–पटक का सजीव चित्रण किया है। वैद्य जी के भांजे रंगनाथ की दृष्टि से शिवपाल गंज की तस्वीर प्रस्तुत है, ''उसने देखा कि जिसकी प्रशंसा से सभी मशहूर अखबार पहले पृष्ठ से ही मोटे–मोटे अक्षरों में चिल्लाना शुरू करते हैं, जिसके सहारे बड़े–बड़े निगम आयोग और प्रशासन उठते हैं, गिरते हैं, घिसटते हैं, वहीं दाँव–पेंच और पैंतरेबाजी की अखिल भारतीय प्रतिभा यहाँ कच्चे माल के रूप में इफरात से फैली पड़ी है। सोचते ही सांस्कृतिक एकता में उसकी आस्था और भी मजबूत हो गयी है।'' वैद्य जी का चरित्र देश की राजनीति का चरित्र है। वैद्य जी सफल होने के लिए तरह–तरह की युक्तियाँ लगाते हैं।

'रागदरबारी' देशकाल प्रधान उपन्यास है। इसमें परिस्थितियों का अंकन और उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। इसके तीक्ष्ण व्यंग्य और सुगठित स्वरूप उच्च स्तर का है। निःसंदेह 'रागदरबारी' को हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासों की पंक्ति में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। 'रागदरबारी' में समसामयिक वातावरण का सजीव चित्रण किया गया है। उपन्यास का घटना स्थल शिवपालगंज है। यहाँ शिक्षा, सहकारिता, ग्राम सभा,

प्रशासन, राजनीति आदि प्रत्येक क्षेत्र में घटित होने वाली घटनाएँ वस्तुतः सम्पूर्ण देश में घटित होने वाली घटनाओं का प्रतिनिधित्त्व करती हैं। शिवपालगंज के और उपन्यास के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र हैं वैद्य जी। वे वस्तुतः इस उपन्यास के नायक हैं, क्योंकि कथावस्तु में निहित त्रिकोणीय संघर्ष में तीनों कोणों पर वैद्य जी ही सफल होते हैं। 'रागदरबारी' के शीर्षक पर विचार करते हुए डॉ0 रामप्रसाद मिश्र ने जो कुछ लिखा है, वह शीर्षक से अधिक वैद्य जी के चरित्र पर प्रकाश डालता है। उनके अनुसार, ''अतः शीर्षक का अर्थ हुआ–उपन्यास कला (राग) द्वारा हमारे विभिन्न लोकतान्त्रिक समाज एवं सन्तालोक (दरबारी) का चित्रण। उपन्यास के लगभग अन्त में सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावी पात्र वैद्य जी के दरबार में जो शक्ति–प्रभाव से ऊभ–चूभ राग गूंजता है, उसका भी उल्लेख किया जा सकता है वैद्य जी वस्तुतः उपन्यास का उद्देश्य सार्थक करते हैं–दरबार ही प्रधान है अथवा जिसकी लाठी उसकी भैंस सनातन राग है।'' कालेज, सहकारी समिति तथा ग्राम सभा कथा की तीनों धाराओं के प्रत्येक मोड़ पर वैद्य जी और उनके सहयोगी के सामने विरोधी परास्त होते हैं। तीनों मोर्चों पर जंग चलती है, राजनीति रंग लाती है। कूटनीतिक दाँव–पेंच तथा त्याग–पत्र कूटकला के बल पर अन्ततोगत्वा वैद्य जी ही सफल होते हैं। वैद्य जी सहकारी समिति के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं परन्तु मूलतः वह वैद्य ही हैं। उम्र होने के बावजूद वैद्य जी को कोई बूढ़ा नहीं कह सकता था। लेखक ने व्यंग्य करते हुए लिखा है, ''राजधानियों में रहकर देश–सेवा करने वाले सैकड़ों महापुरूषों की तरह वे भी उम्र के बावजूद बूढ़े नहीं हुए थे।'' वैद्य जी एक कुटिल राजनीतिज्ञ के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनकी कथनी और करनी में जमीन–आसमान का अन्तर है। उनकी कुटिलता को लेखक ने इस प्रकार व्यक्त किया है, ''हर बड़े राजनीतिज्ञ की तरह उन्होंने राजनीतिक पार्टी में कोई पद नहीं लिया था, क्योंकि वे नये खून को प्रोत्साहित करना चाहते थे। कोऑपरेटिव से कालेज के मामलों में लोगों ने उन्हें विवश कर दिया था और उन्होंने विवश होकर स्वीकार लिया था।''

'रागदरबारी' 330 पृष्ठ का विशाल उपन्यास है जो व्यंग्यात्मक है। सन् 1969 ई0 में 'रागदरबारी' को 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार मिला।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

पूर्वांचल के गाँधी : बाबा राघवदास का मूल्यांकन

डॉ0 आदित्य प्रकाश सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान
रा0 स्नात0 महाविद्यालय, बेरीनाग, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)

परमहंस अनन्त महाप्रभु के परम शिष्य बाबा राघवदास जी का जन्म पूना (महाराष्ट्र) के पाच्छापुरकर वंश में हुआ था। उनका बचपन का नाम राघवेन्द्र था। राघवेन्द्र ही बाद में राघवदास जी के नाम से प्रसिद्ध हुए। बाबाराघवदास जी की कायिक संरचना एक वट वृक्ष के समान विशाल एवं दीर्घाकार थी। उनकी प्रवलम्बित भुजाएँ, दमकता–चमकता ललाट, गोरा रंग, मुख पर विखरी हुई आभा आकर्षक एवं मन मोहक व्यक्तित्व चतुर्दिक जन समूह को आकर्षित कर लेने वाला था।

बाबा जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व महान था। बचपन में ही अनाथ हो जाने के कारण कठिनाइयों का सामना करने में वे अभ्यस्थ थे। योग्य गुरू की खोज में विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए अन्त में वे देवरिया जनपद में स्थित बरहज आश्रम पहुँचे और वहाँ योगीराज अनन्त महाप्रभु जैसे गुरू से दीक्षा ली। गुरू के ब्रह्मलीन हो जाने के पश्चात बाबा जी उनके उत्तराधिकारी बने। गुरू की भाँति वे भी गुफा में तप एवं साधना में लीन हो गये लेकिन ब्रिटिश शासन के शोषण, दमन एवं अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करने की जो दबी भावनाएँ बाबा जी के मस्तिष्क में थीं वे तीव्र होने लगी।

बाबा राघवदास जी ने सर्वप्रथम 1916 के अधिवेशन में भाग लिया तत्पश्चात 1920 में महात्मा गॉधी के आह्वान पर उन्होंने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया तब से जीवनपर्यन्त भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष के पुरोधा एवं गाँधीवादी विचारक ने शोषित, पीड़ित, दलित, अभावग्रस्त एवं विपन्न ग्रामीण जनता के दुख निवारण हेतु सदा सक्रिय रहकर कार्य किया। वर्तमान भारतीय राजनीति में जहाँ पद–लोलुपता, संकुचित, स्वार्थ, भ्रष्टाचार आदि विविध बुराइयाँ व्याप्त हैं वहीं देश सेवा, निःस्वार्थ त्याग एवं समाज के लिऐ समर्पित बाबा जी के जीवन एवं कार्यों से आज प्रेरणा मिलती है। अतः भारतीय स्वातन्त्रय संघर्ष में तिलक, गोखले, महात्मा गाँधी, लाला लाजपत राय, पंण्डित मदन मोहन मालवीय, सुभाष चन्द्र बोस आदि नेताओं की भाँति बाबा जी का नाम भी आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। बाबा जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि में रघुपति सहाय फिराक ने लिखा था कि दुनियां में हजारों लाखों ऐसे लोग हैं जो चुपचाप समाज की विविध भाँति सेवा करते रहे। स्वर्गीय बाबा जी भी उन महान पुरूषों में एक थे। विनोवा भावे के कथनानुसार बाबा जी के त्याग बलिदान की कहानियाँ सारे उत्तर प्रदेश में सर्वविदित हैं। बाबा जी ने धर्म और राजनीति को मिश्रित कर पराधीनता के विरूद्ध संघर्ष और जन सेवा सम्बन्धी कार्य को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। पूरी एकग्रता एवं शान्ति भाव से कार्य करते हुए वे अपने जीवन–मरण में गीता के इस वचन को चरितार्थ कर दिया कि मनुष्य स्वयं ही अग्नि और आहुति बने।

बाबा राघवदास एक उच्चकोटि के सन्त सच्चे गॉधीवादी एवं देश तथा समाज के लिए मर मिटने वाले सच्चे सैनिक थे राजर्षि पुरूषोतम दास टंडन के शब्दों में उनका व्यक्तित्व असाधारण था। उनके समान त्याग एवं निःस्वार्थ सेवा भाव मैंने अपने प्रदेश के किसी सार्वजनिक सेवक में नहीं पाया। स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने तथा समाज सेवा के लगभग सभी क्षेत्रों में निःस्वार्थ भावना से काम करने वाले ऐसे समाज सेवियों की संख्या बहुत कम है।

बाबा राघवदास के व्यक्तित्व एवं चरित्र निर्माण के पीछे उनके प्रारम्भिक जीवन का महत्वपूर्ण योगदान था। पूना (महाराष्ट्र) में जन्मे राघवेन्द्र का बचपन में ही प्लेग की विभीषिका में अपने समस्त परिजनों को खोने के बाद संसार से विरक्त हो उठना स्वाभाविक थां समर्थ गुरू तुकाराम, विवेकानन्द आदि के जीवन एवं विचारों ने बालक राघवेन्द्र को समाज कल्याण हेतु समर्पित जीवन की ओर प्रेरित किया। अपने समय के असंख्य नव युवकों की भाँति बाबा राघवदास भी रानाडे, तिलक, गोखले, लाला लाजपत राय, महात्मा गाँधी आदि देश भक्तों से प्रभावित हुए थे।

फलतः विरक्त जीवन, राष्ट्रप्रेम, जनसेवा आदि भावों के साथ बाबा राघवदास मात्र 16 वर्ष की आयु में अपनी जन्मभूमि त्यागकर योग्य गुरू की खोज में निकल पडे थे। पुण्य सलिला सरयू के पावन तट के समीप स्थित वरहज आश्रम (अब देवरिया जनपद) के प्रसिद्ध योगी परमहंस अनन्त महाप्रभु का शिष्यत्व ग्रहण कर वे राघवेन्द्र से बाबा राघवदास हुए थे। यह क्षेत्र सिद्धसन्त, योगिराज देवरहा बाबा की तपोभूमि और बाबा राघवदास की कर्मभूमि के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यहीं पर बाबा राघवदास जी ने महान क्रान्तिकारी, अमर शहीद पं0 रामप्रसाद बिस्मिल की समाधि स्थली बनवायी। 1916 में अनन्त महाप्रभु के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी के रूप में बाबा राघवदास ने अपने गुरू की गुफा में नाम मात्र के आहार पर लगभग 4 वर्षों तक एकान्त साधना की। परन्तु इस साधना के क्रम में भी उनकी दृष्टि देश के घटना क्रम पर बराबर बनी रही वे अपने सामाजिक दायित्व के प्रति सजग थे।

अतः ब्रिटिश शासन के शोषण, दमन एवं अत्याचार से पीड़ित भारतीय जनता की दयनीय स्थिति को देखकर वे द्रवित हो उठे। अपने चारों ओर फैली हुई गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा आदि से क्षुब्ध और अशान्त बाबा जी के संवेदनशील मन को जलियांवाला बाग हत्याकांड ने और भी विचलित कर दिया। अतः असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए गाँधी जी का आह्वान अस्वीकार कर पाना बाबा जी के लिए असम्भव था। एक अगस्त 1920 को तिलक के निधन से हुई राष्ट्र की अपूरणीय क्षति से वे मर्माहत हो उठे। अतः देश और समाज के प्रति अपने दायित्व के निर्वाह हेतु उन्होंने अंधेरी गुफा, गहन जंगल अथवा किसी पर्वत की दुर्गम चोटी पर तपस्या करने के स्थान पर युग धर्म तथा मानव धर्म के पालन का कल्याणकारी निर्णय लिया।

बाबा राघवदास एक निर्भीक, स्पष्टवादी तथा प्रतिबद्ध स्वतन्त्रता सेनानी थे। असहयोग आन्दोलन के दौरान अपनी प्रथम जेल यात्रा 1921 से 1944 तक सरकार द्वारा कई बार गिरफ्तारी तथा लगातार प्रताड़ित एवं दण्डित किये जाने के बावजूद बाबा राघवदास पूर्ण उत्साह और साहस के साथ विदेशी शासन के विरूद्ध निरन्तर संघर्षशील रहे। जुझारू व्यक्तित्व के कारण ही बाबा जी को 1931 में वर्मा निमन्त्रित किया गया था। वहाँ से भारत लौटने पर 'मेरी ब्रह्म देश' की यात्रा नामक अपने लेख में उन्होंने वर्मा के भारतीय प्रवासियों के विरुद्ध अंग्रेजों के षडयन्त्र तथा अत्याचार का रहस्योद्घाटन कर अपूर्व साहस का परिचय दिया था। उनका यह उत्तेजक लेख छापने के अभियोग में दैनिक समाचार पत्र ''आज'' के तत्कालीन सम्पादक बाबूराव विष्णु पराड़कर को सरकार ने दण्डित किया था।

'भारत छोड़ो आन्दोलन' (1942) के दौरान भीषण दमन की स्थिति में भी उनके नेतृत्व में पूर्वी उत्तर प्रदेश की जनता की सक्रियता ब्रिटिश शासन की शक्ति के लिऐ चुनौती सिद्ध हुई। बाबा राघवदास अपने प्राणों की परवाह न कर देश के विभिन्न भागों में वेश बदले घूमते रहे। वे आन्दोलन को दिशा देने के साथ ही सरकार के दमन की शिकार जनता की सेवा का प्रशंसनीय कार्य भी करते रहे। उस समय लाख प्रयत्नों के बावजूद पुलिस उन्हें गिरफ्तार न कर सकी। 1944 में गॉधी जी के परामर्श पर बाबा राघवदास ने अपनी गिरफ्तारी दी।

प्रदेश में तालाब और कुँआ खोदो आन्दोलन तथा प्रत्येक गाँव में गाँधी चबूतरा और पंचायत भवन के निर्माण जैसी श्रमदान पर आधारित विभिन्न योजनायें उनके रचनात्मक मस्तिष्क की उपज थीं। 1950 में बाबा जी

की अध्यक्षता में गठित उत्तर प्रदेश गाँधी स्मारक निधि ने उनके कुशल निर्देशन में जनकल्याण के विभिन्न क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण कार्य किये। बाबाजी गॉधी दर्शन एवं विचार के प्रसार के लिए सदा सक्रिय रहे। उन्हीं की प्रेरणा से बैजनाथ जी ने अमेरिका में गॉधी दर्शन के प्रसार की व्यवस्था की। इसके लिए स्वयं बाबा जी ने वहॉ गॉधी साहित्य भेजा था।

बढ़ती हुई दलगत राजनीति सत्ता का सुख व्यक्तिगत स्वार्थ आदि के कारण सार्वजनिक कल्याण तथा महात्मा गाँधी के आदर्शों से निरन्तर दूर होती जा रही कांग्रेस पार्टी और उसकी सरकार से बाबा जी जैसे जनता के निःस्पृह सेवक का मतभेद एवं विवाद होना स्वाभाविक था। अतः उन्होंने कांग्रेस में तेजी के साथ पनप रही स्वेच्छाचारिता और पदलोलुपता का कड़ा विरोध किया।

मराठी होते हुए भी राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए बाबा जी की सत्त प्रयत्नशीलता उनके लिए खुले मस्तिष्क और राष्ट्रीय व्यक्तित्व का परिचायक है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मंत्री के रूप में उन्होंने भारत के लगभग सभी प्रान्तों का भ्रमण कर हिन्दी प्रचार की दिशा में ऐतिहासिक कार्य किया है। उनके द्वारा बरहज में स्थापित राष्ट्रभाषा महाविद्यालय ने अहिन्दी भाषी प्रान्तों के सैकड़ों लोगों तथा एशियाई देशों के बहुत से बौद्ध भिक्षुओं को भ्रमण कर हिन्दी सिखाकर हिन्दी की बहुमूल्य सेवा की है। बाबा जी देश की स्वतंत्रता, एकता तथा प्रगति के लिए भाषागत एकता को अनिवार्य मानते थे। लेकिन राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की मान्यता के पीछे उनका उद्देश्य भारत की अन्य भाषाओं की उपेक्षा कर हिन्दी का आधिपत्य स्थापित करना कदापि नहीं था। बल्कि उनका दृढ़ विश्वास था कि प्रान्तीय भाषाओं का विकास हिन्दी के उत्थान में सहायक होगा। अंग्रेजी के प्रति उनका प्रचंड विरोध एक विदेशी भाषा की गुलामी से भारतीय मस्तिष्क को स्वतंत्र करने की उदार भावना से अभिप्रेरित था।

कुष्ट रोगी सेवा को बाबा जी पवित्र कार्य मानते थे। गोरखपुर में उनके द्वारा स्थापित कुष्ट सेवा आश्रम उत्तर प्रदेश में गैर ईसाइयों द्वारा संचालित प्रथम संस्था होने का गौरव प्राप्त है। मैरवा (बिहार), देवरिया आदि नगरों में कुष्ट सेवा आश्रम की शाखाओं की स्थापना कर उन्होंने इस दिशा में एक कीर्तिमान स्थापित किया। कुष्ट रोगी सेवक सम्मेलनों एवं कुष्ट रोगी दिवस का आयोजन कर समाज तथा परिवार के लिए अदृश्य और घृणा का पात्र, कुष्ट रोगियों के प्रति समाज का गम्भीर दायित्व बोध कराने का उनका प्रयास स्तुत्य था। स्वयं प्राकृतिक चिकित्सा के समर्थक बाबा राघवदास ने जन सामान्य के स्वास्थ्य रक्षा कह दृष्टि से सहज सुलभ इस चिकित्सा पद्धति को संरक्षण और प्रोत्साहन दिया।

गुप्तचर विभाग के अभिलेखों के अनुसार गेहुँए रंग, गोरे चेहरे, पतली नाक, सामान्य कद और बड़ी– बड़ी ऑखों वाले बाबा जी का शारीरिक व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। लम्बी और घनी दाढ़ी के कारण साधु से दिखने के साथ ही वे अपने व्यक्तिगत जीवन में एक सच्चे संत की तरह अत्यन्त संयमी और अपरिग्रही थे। स्वदेशी की भावना से प्रभावित होकर मिल द्वारा निर्मित चीनी न खाने का व्रत उन्होंने बचपन में ही ले लिया था। जिसका निर्वाह वह जीवन पर्यन्त करते रहे। गरिष्ठ और महंगे भोजन से उन्हें परहेज था। ग्रामों में सर्वसुलभ अन्न, सब्जी, सस्ते फल आदि उनके उपभोग की वस्तुएँ थीं। कई वर्षों तक 6 पैसे में भोजन के संकल्प का उन्होंने पूरा निर्वाह किया और लगभग 3 वर्षों तक मात्र मूँगफली एवं गुड़ उनके भोज्य पदार्थ रहे। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय जेल में 'बी' क्लास मिलने पर भी उन्होंने कांग्रेस के साधारण स्वयं सेवकों के साथ 'सी' क्लास का ही भोजन ग्रहण करना पसंद किया।

दूसरों को कष्ट न देने की प्रवृत्ति के कारण कभी किसी गाँव में अपने लिए मूँगफली लाने के गृहस्वामी के लड़के द्वारा दो–तीन मील दूर जाने का कष्ट उठाने की बात जान लेने के पश्चात उन्होंने मूँगफली तक के त्याग का निर्णय लेने में देर नहीं की। इसी प्रकार 1956 में अपनी भूदान पद यात्रा के बीच दीवाली के दिन भी

गरीब हरिजन बच्चों को मिठाई के नाम पर गुड़ भी नसीब न होने की करूण स्थिति से द्रवित होकर उन्होंने भविष्य में किसी भी प्रकार की मीठी वस्तु न खाने का निश्चय कर लिया। इस प्रकार मीठे के नाम पर जो गुड़ या देशी चूरा वे यदाकदा ले लेते थे लेकिन उसे भी नमक, मसाले, घी, तेल की भाँति उन्होंने छोड़ दिया। प्राकृतिक चिकित्सा एवं मात्र सूखी रोटी पर रहकर अन्तिम दो–तीन वर्षों में अथक परिश्रम करते हुए भी लगभग पूर्ण स्वस्थ्य रहे। समय के पक्के बाबाजी प्रतिदिन सुबह लगभग 3 बजे उठकर भीषण सर्दी में शीतल जल से स्नान करते थे और फिर थोड़ी देर प्राणायाम– आसन कर अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो जाते थे। सर्वदा दूसरों की सेवा के लिए समर्पित बाबा जी को बीमारी की स्थिति में भी दूसरों से सेवा लेना पसंद नहीं था।

इस प्रकार बाबा राघवदास जी का पूरा जीवन दीन–दुखियों की सेवा के लिए, हरिजनों, महिलाओं आदि के उद्धार के लिए, जन कल्याण के लिए समर्पित था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अक्षय कुमार करण (सम्पादक) : बाबा राघव दास स्मृति ग्रन्थ (सेवापुरी वाराणसी 1963)
- असहयोग आन्दोलन की झाकियॉ सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली 1971
- उत्तर प्रदेश में भूदान यज्ञ का आरम्भ और प्रगति : 1951 से 1959 (उ0प्र0 भूदान यज्ञ समिति, लखनऊ)
- गोखले, पुरूषोत्तम पांडुरंग : बाबा राघवदास (कराड़ – महाराष्ट्र1961)
- तिवारी, सिंहासन : योगीराज श्री0 अनन्त महाप्रभु और परमहंसाश्रम, बरहज का संक्षिप्त विवरण (बरहज देवरिया 1952)
- भावे विनोवा : भूदान–गंगा(आठ खण्ड) राजघाट, वाराणसी 1962
- मजूमदार सत्येन्द्र नाथ : श्री विवेकानन्द चरित्र (घतौली नागपुर 1977)
- स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक : देवरिया, गोरखपुर, बस्ती और वाराणसी (सूचना विभाग, उ0प्र0 लखनऊ)
- स्वतंत्रता संग्राम–ज्ञान मण्डल,वाराणसी:1971
- सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय–(दिल्ली 1958–73)
- सुमन रामनाथ– उत्तर प्रदेश में गॉधी जी (सेवापुरी, वाराणसी 1970)
- सिंह अयोध्या– भारत का मुक्ति संग्राम (दिल्ली 1970)
- शास्त्री आचार्य– नरेन्द्र देव – आत्मकथा अर्थात् आपबीती जगबीती (ज्वालापुर, हरिद्वार 1957)
- श्रीमन्नारायण–ऋषि विनोवा(राजघाट वाराणसी 1972)

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत में लोकतंत्र और राजनीतिक दल : चिन्तन के नूतन आयाम

डॉ0 सुनीता त्रिपाठी
सहायक प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान
शा.कन्या स्नात्कोत्तर,उत्कृष्टता उत्कृष्टता मा. विद्यालय,सागर (म.प्र.)

किसी भी देश में सफल लोकतंत्र के लिये राजनीतिक दलों का होना आवश्यक है। भारतीय लोकतंत्र में भी राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान है। राजनीतिक दलों को ''लोकतंत्र का प्राण'' कहा जाता है। जनता के प्रतिनिधियों का निर्वाचन राजनीतिक दलों के माध्यम से ही संभव है। भारत में बहुदलीय पद्धति अपनायी गयी हैं। यहाँ मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दलों की संख्या 6 और राज्यस्तरीय दलों की संख्या 48 है। इसके अतिरिक्त अनेक अमान्य पंजीकृत दल हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल के अपने– अपने कार्यक्रम होते हैं। निर्वाचन के समय वे अपना घोषणा–पत्र भी जारी करते हैं। जिस दल को बहुमत मिलता है। उसके नेतृत्व में ही सरकार का गठन होता हैं। इसे सत्तारूढ़ दल कहा जाता है। सत्तारूढ़ दल के साथ–साथ विपक्षी दल की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है।[1]

राजनीतिक दल लोकतंत्र की आधारशिला है। बिना राजनीतिक दल के हम लोकतंत्र की कल्पना भी नहीं कर सकते। जिन देशों में राजनीतिक दलों को काम करने की स्वतंत्रता नहीं रहती, वहाँ के नागरिकों को स्वतंत्रता नहीं मिलती। लोकतंत्र ऐसी शासन–पद्धति है जिसका शासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा होता है। राजनीतिक दल प्रतिनिधियों के निर्वाचन में मुख्य रूप से भाग लेते हैं। लोकतंत्र को दलीय शासन भी कहा जाता है। राजनीतिक दल ही लोकतंत्रीय शासन को व्यावहारिक रूप प्रदान करते हैं। जनता के मस्तिक को राजनीतिक भोजन देना राजनीतिक दल का ही कार्य ही शासन को बहुमत के अनुकूल बनाने का भी महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

राजनीतिक दल लोकतंत्र में राजनीतिक शिक्षा के मुख्य साधन हैं। राजनीतिक दलों के नेता जनता में अपने दल के सिद्धांतों एवं कार्यक्रम का प्रचार–प्रसार कर जनता के राजनीतिक प्रशिक्षण में सहायता प्रदान करते हैं। ''लोकतंत्र के लिये राजनीतिक दल वही कार्य करते हैं जो शरीर के लिये फेफड़ा करता है।[2] लोकतंत्र के अन्तर्गत शासन का संचालन जनता के प्रतिनिधि करते हैं। प्रतिनिधियों के निर्वाचन में राजनीतिक दल सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। लोकतंत्र का आधार जनमत होता है। जनमत के निर्माण और अभिव्यक्ति में भी राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान है। वे सभा, संगठन, पत्र, मंच, भाषण आदि द्वारा जनमत का निर्माण और प्रकाशन करते हैं। निर्वाचन के समय राजनीतिक दल राज्य के नागरिकों को राजनीतिक साहित्य प्रदान करते हैं, उन्हें अपने राजनीतिक कर्तव्यों का बोध कराते हैं तथा शासन की आलोचना कर सरकार को निरंकुश बनने से रोकते हैं। स्पष्ट है कि लोकतंत्र की रक्षा का उत्तरदायित्व राजनीतिक दलों पर ही है। कहा भी जाता है कि ''दल नहीं तो लोकतंत्र नहीं''।[3] लोकतंत्र की सफलता के लिये सुव्यवस्थित राजनीतिक दलों का होना अनिवार्य है। भारत में इनका आज अभाव हो गया है। एक समय था जब कांग्रेस पार्टी मजबूत, सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित राजनीतिक दल थी। लेकिन उसका भी ध्रुवीकरण हुआ और वह टूटी तथा अनेक खण्डों में बिखरती चली गयी। जिन उम्मीदों से जनता पार्टी की स्थापना हुई थी। उनके अनुकूल कार्य करने में यह असफल ही रहा। चौधरी

चरण सिंह के नेतृत्व में लोकदल की स्थापना जनता दल से निकले सदस्यों द्वारा ही की गयी। जहाँ तक अन्य राजनीतिक दलों का प्रश्न है, उनकी स्थिति भी शोचनीय है। ऐसी स्थिति में भारत में हम सफल लोकतंत्र की उम्मीद नहीं कर सकते। शंका होती है कि क्या एक ईमानदार तानाशाह ही भारत में जनतंत्र की रक्षा कर सकता है।

भारत के लोगों के लोकतंत्र के अनुकूल नैतिक गुणों का विकास नहीं हो पाया है। यहाँ के राजनेताओं और राजनीतिक दलों में नैतिक आदर्शों का अभाव है। जनता के प्रतिनिधि शासन–भार सँभालते ही जनता का स्वार्थ भूल जाते हैं और अपने राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति में लग जाते हैं। जनमत के माध्यम से ही लोकतंत्र की रक्षा हो सकती है। भारत में स्वस्थ जनमत नहीं है। यहाँ के जनमत को हम ''भेड़ियाधसान''[4] की संज्ञा दे सकते हैं। यहाँ का जनमत प्रतिक्रिया में बौखलाता है और बिना सोचे–समझे बड़ी–से–बड़ी भूल भी कर सकता है।

राजनीतिक दलों के जनविरोधी चरित्र धीरे–धीरे सामने आते जा रहे हैं। बड़ी से बड़ी योजनाएँ भी संदिग्ध चरित्र के ठेकेदारों के हाथ में चली जाती है और राष्ट्रीय संपत्ति की बर्बादी होती है। किन्तु, यदि भारत का राष्ट्रीय चरित्र सचमुच सुधर जाये तो भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश बन सकता है। 1947 से अबतक इस दिशा में काफी प्रयास हुए हैं, जिन्हें हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं– 1. शिक्षा का प्रचार तीव्र गति से हो रहा है। 2. आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं का उन्मूलन किया जा रहा है। इसके लिये राज्य सरकारें कुछ आवश्यक कानून भी बना रही हैं। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन इस दिशा में एक प्रयास है। 3. भूमि की जोत की सीमा निर्धारित की जा रही है। शहरी संपत्ति की सीमा पर भी नियंत्रण लगाने के प्रयास हो रहे हैं। आर्थिक समानता के नाम पर संविधान में अनेक संशोधन किये जा रहे हैं। 4. बैकों तथा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण लोकतंत्र की सफलता में आवश्यक कदम है। 5.अल्प संख्यकों के हितों की रक्षा के लिये लोकतंत्र को काफी सक्रिय बनाने के लिये पूर्ण व्यवस्था की गयी है। 6. वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिये अंतरजातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। 7. समाचार पत्रों को स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाये रखने के लिये सरकार ने प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया है और विरोधी राजनीतिक दलों को भी चुनावों के दौरान आकाशवाणी के प्रयोग की सुविधा प्रदान कर दी गयी है।

भारत लोकतंत्र के प्रयोग में आगे बढ़ रहा है। महात्मा गाँधी तथा पंडित नेहरू ने भारत को 'प्रजातंत्र की भूमि'[5] कहा है। किन्तु लोकतंत्र का मूल्याकंन इनके गुण–अवगुण के आधार पर होता है। प्लेटो, अरस्तू आदि यूनानी दार्शनिकों ने लोकतंत्र को सरकार का विकृत रूप बताया है। कुछ लोगों ने इसे भीड़तंत्र कहा है, तो कुछ लोगों ने इसे 'बेवफूकों का शासन' बताया है।

दलविहीन लोकतंत्र सैद्धान्तिक दृष्टि से भले ही सुन्दर, आकर्षक एवं आदर्शमय हो, लेकिन व्यवहारिक दृष्टिकोण से इसमें बहुत सी त्रुटियाँ हैं जिनके चलते इसके सिद्धांतों को हम क्रियान्वित नहीं कर सकते। दलविहीन लोकतंत्र सर्वोदयी समाज की मृगतृष्णा है जो लालच में अपने–आप में समाप्त हो जाती है। चूँकि मार्च, 1977 ई. के बाद जयप्रकाश नारायण का भारतीय राजनीति में बोलबाला था, इसलिये सर्वोदयी समाज का यह दिवास्वप्न अन्य राजनीतिशास्त्री भी देखने लगे। दलविहीन लोकतंत्र तभी साकार हो सकता है, जब किसी देश का चारित्रिक और नैतिक विकास होगा और उस देश में कोई अभावग्रस्त नहीं रह पायेगा। तब भारत जैसे देश में दलविहीन लोकतंत्र के उज्जवल भविष्य की कल्पना साकार हो सकेगी। [6]

राजनीतिक दलों के लिये व्यवहार संहिता का होना आवश्यक है क्योंकि भारत एक बड़ा लोकतांत्रिक देश है। शांतिपूर्ण चुनाव लोकतंत्र का मूलाधार है। चुनावों के कारण उत्तेजक गहमागहमी के वातावरण में यह सुनिश्चित करने का उत्तरदायित्व सभी राजनीतिक दलों के नेताओं पर है कि चुनाव शांतिपूर्ण हो। किसी भी राजनीतिक दल को ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे संदेह, कटुता और अविश्वास का वातावरण बने। चुनावों

में हिंसा, जोर–जबरदस्ती के लिये कोई स्थान नहीं है। यह भी सत्य है कि चुनावों की अवधि में हिंसा की छिटफुट घटनाएँ होती हैं। मतदान केन्द्रों पर जबरन कब्जा किया जाता है जाली वोट डाले जाते हैं। मतदाताओं को डराया–थमकाया जाता है और मतदान करने से रोका जाता है। इसके लिये आवश्यक है कि चुनावों की अवधि में राजनीतिक दलों तथा उनके उम्मीदवारों और कार्यकर्ताओं को नियंत्रित और अनुशासित बनाये रखा जाये। स्वतंत्र, निष्पक्ष और शांतिपूर्ण चुनाव समय की माँग बन गयी है। इस कारण से ही राजनीतिक दलों के लिये व्यवहार संहिता की आवश्यकता पड़ती है। [7]

सामान्य निर्वाचन के समय निर्वाचन आयोग विभिन्न राजनीतिक दलों की सहमति से व्यवहार संहिता निर्मित करता है। व्यवहार संहिता का उद्देश्य सत्ता का दुरूप्रयोग रोकना एवं सभी दलों को चुनाव–प्रचार का समान अवसर प्रदान करना है। इस संहिता को कानूनी मान्यता प्राप्त नहीं है, तथापि यह अपेक्षा की जाती है कि सभी राजनीतिक दल इसका पालन करेंगें। दसवीं लोकसभा चुनाव के पूर्व भी विभिन्न राजनीतिक दलों की सहमति से व्यवहार संहिता का निर्माण किया गया जिसकी मुख्य बातें निम्नलिखित हैं – 1. कोई भी राजनीतिक दल या उम्मीदवार चुनाव अभियान की अवधि में ऐसा कुछ कर या कह नहीं सकता जिससे देश में विभिन्न समुदायों के बीच मतभेद बढ़ें या नफरत और तनाव पैदा हों। साथ ही, कोई उम्मीदार या राजनीतिक दल चुनाव प्रचार की अवधि में किसी धर्मस्थल का उपयोग नहीं कर सकता। 2. यदि एक राजनीतिक दल दूसरे राजनीतिक दल की आलोचना करता है तो यह आलोचना राजनीतिक दलों की नीतियों, कार्यक्रम की घोषणा और लोकसभा के गठन की अवधि के बीच मंत्री तथा अन्य अधिकारी न तो किसी प्रकार के वित्तीय अनुदानों की घोषणा कर सकते हैं, न ही ऐसी कोई उम्मीद दिला सकते हैं। इस अवधि में मंत्रीगण किसी योजना या परियोजना का शिलान्यास नहीं कर सकते। वे सड़कों और पेयजल की सुविधाओं का निर्माण करने के वायदे भी नहीं कर सकते। 4. इस बीच मंत्रियों को सरकारी और अर्द्धसरकारी प्रतिष्ठानों में तदर्थ नियुक्तियाँ नहीं करनी हैं। मंत्रीगण अपने सरकारी दौरे और चुनाव–प्रचार एक साथ नहीं कर सकते। चुनाव–प्रचार के सिलसिले में सरकारी तंत्र या अधिकारियों का उपयोग नहीं कर सकते हैं। 5. सरकारी परिवहन जिसमें सरकारी विभाग, वाहन, मशीनरी और अधिकारी भी सम्मिलित है। उनका सत्तारूढ़ दल को लाभ पहुँचाने में प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में प्रधानमंत्री को सुरक्षा की दृष्टि से सरकारी विभाग के उपयोग की अनुमति दी जाती है। 6. डाक–बँगलों पर किसी राजनीतिक दल का एकाधिकार नहीं हो सकता। 7. सरकारी खर्चे पर विज्ञापन और सरकारी संचार के साथनों से पक्षपातपूर्ण प्रचार भी नहीं किया जा सकता। 8. चुनावों की घोषणा होने के बाद चुनाव से सम्बद्ध अधिकारियों का स्थानान्तरण नहीं किया जा सकता।[8]

लोकतंत्र की सफलता की आवश्यक शर्तों में एक शर्त यह भी है कि एक संगठित विपक्षी दल अवश्य रहे। भारत का यह दुर्भाग्य रहा है कि ब्रिटेन और अमेरिका की तरह ऐसी कोई विरोधी दल नही है। 1977 ई. के चुनाव के अवसर पर पहली बार विपक्ष ने जनता पार्टी के रूप में पनपकर सत्ता प्राप्त की। कालांतर में इसने भी अपने को एक चुनावी गठबंधन सिद्ध कर दिया और बिखरकर पुनः कई दलों में विभक्त हो गया। 1988–89 में पुनः विपक्षी दल को एक होने का अवसर मिला और कई दलों के विलयन के बाद जनता दल का गठन हुआ। 1989 ई. में 141 जगहों पर सफलता मिली। इसने अन्य दलों के सहयोग से केन्द्र में सरकार का गठन किया। परन्तु बाद में निराशा हाथ लगी और जनता दल को बिखरते देर नहीं लगी। अन्य दलों के सहयोग की बात तो दूर रही जनता दल ही तीन खण्डों में विभाजित हो गया–राष्ट्रीय जनता दल, (यू) तथा जनता दल (सेकुलर) 1996 ई. के चुनाव के बाद लगातार लोकसभा के तीनों चुनावों में भारतीय जनता पार्टी एक सशक्त दल के रूप में उभरकर आई।[9]

लोकतंत्र में विपक्षी दल के कार्य भी सरकार से कम महत्वपूर्ण नहीं होते। चुनाव के बाद जब कोई

राजनीतिक दल सत्ता में आ जाता है तब अगले चुनाव तक वह जनता के नियंत्रण से मुक्त हो जाता है। दो चुनावों के बीच सत्तारूढ़ दल पर अंकुश रखने की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता की पूर्ति विपक्ष द्वारा ही संभव है। यदि लोकतंत्र में सत्तारूढ़ दल पर उचित नियंत्रण नहीं रखा जाये तो उसके तानाशाह बन जाने का भय बना रहता है। विपक्ष के सदस्य ही उसकी तानाशाही प्रवृत्ति पर अंकुश लगाये रख सकते हैं। सरकार की आलोचना कर सरकारी निर्णय के विरुद्ध आन्दोलन एवं प्रदर्शन कर, मंत्रियों से प्रश्न पूछकर, सदन में कार्य स्थगन प्रस्ताव लाकर तथा आवश्यकता पड़ने पर सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाकर विपक्ष सरकार को नियंत्रित करते रहते हैं। कानून निर्माण में भी विपक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। कानून बनाने से पूर्ण विधायिका में विधेयकों को कई स्तरों से गुजरना पड़ता है। विधेयकों की भी विपक्षी दलों द्वारा आलोचना की जाती है। उसके उदेश्यों को चुनौती दी जाती है और आवश्यकता पड़ने पर विपक्षी दलों द्वारा उसमें संशोधन के प्रस्ताव भी प्रस्तुत किये जाते हैं। बलट पारित होने के समय भी विपक्षी दल के सदस्य सरकार की जमकर आलोचना करते हैं और बजट की कटौती का प्रस्ताव पेश कर सकते हैं।

विपक्षी दलों की आलोचना तथा नियत्रण के अन्य साधनों के प्रयोग से सत्तारूढ़ दल सजग रहता है। उसे यह सोचने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि उसके द्वारा कोई ऐसे कदम नहीं उठाये जायं जिसका लाभ उठाकर विपक्ष जनता को अपने पक्ष में कर लें। ऐसा होने पर उसे चुनाव में असफलता हाथ लग सकती है।[10]

इस प्रकार किसी भी लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में राजनीतिक दल प्राणवायु की तरह कार्य करते है। भारतीय लोकतंत्र के पिछले 66 वर्षों के अनुभवों को सामने रखकर राजनीतिक दलों की भूमिका पर विचार किया जाना चाहिए। राजनीतिक दलों के अन्दर बढ़ते भ्रष्टाचार, जातिवाद, सांप्रदायिकता की प्रवृत्ति को समाप्त करते हुए राष्ट्रहित, व्यापक जनहित व व्यापक लोकतांत्रिक आधारों पर राजनीतिक दल का गठन समय की मांग है। दलों के अन्दर व बाहर लोकतंत्र की स्थापना के माध्यम से ही इसका असली रूप निखर सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 सुभाष कश्यप, लोकतंत्र का इतिहास हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1998, पृ. 1–2
2. वीरेन्द्र शुक्ल, हाई स्कूल नागरिक शास्त्र, भारती भवन, पटना 2007, पृ. 31
3. वही पृष्ठ संख्या 32
4. डॉ0 एस.सी. सिंहल, भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन साहित्य भवन, आगरा उ.प्र., पृ. 425
5. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, राजनीति शास्त्र, भारती भवन कदम कुआं, पटना 1995, पृ.सं. 136–145
6. वही, पृ0 198–200
7. ज्योति प्रसाद सूद : आधुनिक विचारों का इतिहास, प्रकाशक क्रान्ति नाथ गुप्ता के नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ
8. निखिल चक्रवर्ती, लोकतंत्र की भूमिका, लेखक डेविड वीथम, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, दिल्ली 1997, पृ. 3
9. जे.सी. जोहरी तुलनात्मक राजनीति स्टलिंग पब्लिशर्स प्रा.लि., नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 708
10. एम.वी. तारकुण्डे नवमानववाद लोकतंत्र का दर्शन वाग्देवी प्रकाशन, राजस्थान 2006, पृ. 194

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

अस्पृश्यता एवं भारतीय संविधान : एक विश्लेषण

डॉ0 लक्ष्मीना भारती
असिस्टेंट प्रोफेसर–राजनीतिशास्त्र
राजकीय महिला महाविद्यालय, फतेहपुर।

अस्पृश्यता एवं परंपरागत मनोभाव एवं व्यवहार प्रतिमान का द्योतक है जिसके अनुसार पंचम वर्ण के सदस्य अछूत या न छूने योग्य हैं और इसीलिए उनसे एक सामाजिक दूरी बनाये रखना न केवल उच्च जातियों का कार्य है अपितु अस्पृश्य जातियों का भी कर्तव्य है कि वे उच्च जाति के सदस्यों से दूर रहें और उन्हें न छुएँ। 'अस्पृश्यता' नाम से ही स्पष्ट है कि यह छुआ–छूत की भावना भेदभाव पर आधारित है। यह भेदभाव लोगों के व्यवहारों में प्रकट होता है। पंचम वर्ण के लोगों को निकृष्ट व अपवित्र माना जाता है। इनके साथ उठना–बैठना, खाना–पीना और अन्य सामाजिक संबंध रखना अपवित्र माना जाता था। इसी कारण इन्हें मंदिर जैसे स्थान पर भी जाने की अनुमति नहीं थी। इन्हें उच्च जाति के लोगों के निवास स्थान से दूर रहना पड़ता था और इन्हें उच्च जातियों के सरीखे जीवन यापन करने की आजादी नहीं थी। ऐसे समस्त मनोभाव तथा व्यवहार प्रतिमान को ही अस्पृश्यता कहा जाता है। अस्पृश्यता के अंतर्गत केवल अछूत जातियों के प्रति उच्च जातियों के मनोभाव एवं व्यवहार प्रतिमान ही सम्मिलित नहीं हैं, अपितु उच्च जातियों के प्रति अछूत जातियों के मनोभाव व व्यवहार के प्रतिमान भी सम्मिलित हैं।

अस्पृश्यता का अर्थ उन नियोग्यताओं से है जो कि हरिजन जातियों पर सवर्ण जातियों ने आरोपित की है। किन्तु भारतीय संविधान में कहीं पर भी अस्पृश्यता की परिभाषा नहीं दी गयी है। देवरजिया बनाम पदमना भइया के बाद में मैसूर उच्च न्यायालय ने अस्पृश्यता शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया है। न्यायालय ने कहा है, 'अस्पृश्यता' शब्द केवल उनको अस्पृश्य के रूप में निर्देशित कर सकता है जो ऐतिहासिक दृष्टि से उस रूप में देखे गये हैं। इस शब्द का एक शाब्दिक अर्थ उन व्यक्तियों को भी सम्मिलित करेगा जो अल्पकालिक अथवा किसी अन्य कारणों से अछूत समझे जाते हैं जैसे कि वे व्यक्ति जो कि संक्रामक या संसर्गज रोग से पीड़ित हों अथवा सामाजिक रूढ़ियों के कारण जैसे कि मृत्यु अथवा जन्म के के साथ संलग्न हैं, या फिर जाति अथवा अन्य झगड़ों के कारण सामाजिक बहिष्कार के कारण अछूत समझे जाते हैं न्यायालय ने आगे कहा कि– 'अस्पृश्यता' का अर्थ उन सामाजिक कुरीतियों को समझना चाहिए जो भारतवर्ष में जाति–प्रथा के संदर्भ में परम्परा से विकसित हुई हैं।

भारतीय संविधान में 'अस्पृश्यता' शब्द को उद्धरण चिह्न (इन्वर्टेड कामा) के अंतर्गत रखा गया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि अनुच्छेद की विषय–वस्तु अपने शाब्दिक और व्याकरणीय अर्थ में अस्पृश्य नहीं है बल्कि वह अभ्यास है जो इस देश में ऐतिहासिक रूप से विकसित हुआ है। संविधान में अस्पृश्यता को जानबूझकर परिभाषित नहीं किया गया, क्योंकि संविधान के प्रारूपकारों का आशय इसे आंतरिक रूप से समाप्त करने का था। किसी भी देश का संविधान उस देश की सभ्यता एवं संस्कृति का परिचायक है जो लोगों की आकांक्षाओं को भी प्रतिबिम्बित करता है। भारतीय संविधान का निर्माण करते समय संविधान निर्माताओं के समक्ष दो प्रश्न मुख्य थे– एक तो समता का आदर्श और दूसरा सामाजिक विषमताओं का व्यापक परिवेश। संविधान निर्माण के समय भारतीय नेताओं को इस बात का अहसास था कि हमारा सामाजिक ढाँचा विषमता पर आधारित है जिसकी

जड़ें बहुत गहरी हैं। समाज के इस परम्परागत मनोभावों तथा व्यवहारों का परिणाम अस्पृश्यता के रूप में परिणित हुआ। संविधान सभा के अधिकांश सदस्य इस सामाजिक बुराई और उससे उत्पन्न हो रहे आक्रोश से अनभिज्ञ नहीं थे। संविधान सभा ने 22 जुलाई 1947 को पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रस्तावित अस्पृश्यता निवारण सम्बंधी प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए, इस ऐतिहासिक प्रस्ताव के द्वारा यह निश्चित किया था कि ''संविधान का निर्माण करते समय अस्पृश्य जातियों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, प्रतिष्ठा और अवसर को विधि के समक्ष समानता और जहाँ कहीं जाति विभेद होगा उससे अस्पृश्य जातियों को यथेष्ट सुरक्षा की गारण्टी दी जाएगी''।

24 जनवरी 1947 को संविधान सभा द्वारा मौलिक अधिकार एवं अल्पसंख्यकों के हितों पर परामर्श देने के लिए एक सलाहकार समिति का गठन किया और सरदार बल्लभ भाई पटेल को उसका सभापति बनाया गया। सलाहकार समिति के गठन के अवसर पर गोविन्द बल्लभ पंत ने अस्पृश्य जातियों के सुरक्षा और सामाजिक उत्थान के सम्बंध में तर्कसंगत आधार प्रस्तुत किया। उनका विचार था कि–हमें पद दलित जातियों, अनुसूचित जातियों पर पिछड़ी जातियों की विशेष सुरक्षा करनी होगी। हमें अपनी भूलों का प्रायश्चित करना होगा। हमें उन्हें समाज में समान स्तर पर लाने के लिए सभी प्रकार के सर्वोत्तम प्रयास करना है, यह एक वास्तविक आवश्यकता है और यह जितना उनके लिए आवश्यक है उतना ही हमारे लिए भी आवश्यक है कि हमारे और उनके बीच की दूरी कम हो जाय। इस श्रृंखला (भारतीय समाज) को मजबूती, समाज के सबसे निचले तबके से जुड़कर ही प्रदान किया जा सकता है और इसलिए समाज की प्रत्येक कड़ी को नवजीवन प्रदान करना होगा और जब तक हम ऐसा नहीं करते एक स्वस्थ राजनीतिक समाज की प्राप्ति असम्भव है।

संविधान सभा में हुए विचार मंथन एवं उसके निष्कर्ष को अभिव्यक्त करते हुए डॉ0 अम्बेडकर का मत था कि – ''जीवन के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं है जब तक सामाजिक लोकतंत्र स्थापित न हो, इसका तात्पर्य जीवन के उन सिद्धान्तों से है जिनकी पहचान स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के आधार पर होती है। इन सिद्धान्तों के आधार पर ही एक राष्ट्र संगठित होता हे, एक दूसरे से अलगाव जनतांत्रिक उद्देश्यों को पराजित कर देगा। हमें इस तथ्य से परिचित होना चाहिए कि भारतीय समाज में दो चीजें अनुपस्थित हैं, उनमें से एक समानता है। हमारा समाज इन सिद्धान्तों पर आधारित है, जो असमानता को बढ़ावा दे रहा है। आर्थिक योजनाओं के द्वारा हमने जिस समाज को प्राप्त किया है, उनमें कुछ ऐसे लोग हैं जिनके पास अथाह धन है, और कुछ गरीबी में रहते हैं। 26 जनवरी 1950 से हम विरोधाभास से परिपूर्ण जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं, जिनमें राजनीतिक रूप से हमारे पास समानता होगी लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में हम असमान होंगे। हम इस विरोधाभास पूर्ण जीवन को कितने दिन जी सकेंगे, हम सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में समानता को कब तक रोक सकेंगे, यदि हमने उन्हें समानता देने में देरी की तो हम राजनीतिक लोकतंत्र को विपत्ति में डाल देंगे, हमें इस विरोधाभास को जितनी जल्दी हो सके दूर करना होगा, नहीं तो असमानता से पीड़ित व्यक्ति इस लोकतंत्र को धराशायी कर देंगे, जिसका निर्माण इस संविधान सभा द्वारा बड़ी मेहनत से किया गया है।

किसी भी युग के निमित्त विधि मानवीय इच्छाओं की अभिव्यक्ति है। संवैधानिक विधि भी लोग वर्ग की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है, जो उन्हें उनके निमित्त राज्य व्यवस्था की रचना व उसका स्वरूप प्रस्तुत करती है। दूसरे शब्दों में संवैधानिक विधि किसी राष्ट्र के निमित्त एक मूल विधि है। यह परिवर्तन का एक दस्तावेज और सामाजिक उपकरण है तथा अन्य विधियों की आधारशिला है। इसलिए इसे सर्वोच्च विधि के नाम से जाना जाता है।

भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियाँ कौन हैं? अस्पृश्यता उन्मूलन, अनुसूचित जातियों और जन–जातियों और अन्य कमजोर वर्गों को सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक एवं राजनैतिक हितों को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक उपबंध रखे गये हैं। संविधान में इन वर्गों का संरक्षण और सुरक्षा की बात तो कही ही गयी है, साथ ही राज्य के ऊपर यह कर्तव्य आरोपित किया गया है, कि वह सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।

इसके साथ ही शासकीय सेवाओं में राज्य को सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था करने का अधिकार प्राप्त है, इन वर्गों और जातियों को शासकीय सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने के लिए जो रियायतें प्रदान की गयी हैं उनमें से मुख्य हैं –

1. आयु सीमा में छूट,
2. योग्यता स्तर से छूट,
3. कार्य कुशलता का निम्न स्तर पूरा करने पर उनका चयन,
4. नीचे की श्रेणियों में उनकी नियुक्ति और पदोन्नति का विशेष प्रबन्ध।

यहाँ पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भारतीय संविधान में इन वर्गों के लिए विशेष उपबंधों की व्यवस्था की गयी है? डी0डी0 बसु का मानना है कि यदि हमारे संविधान निर्माता समाज के उन अनुभागों के लिए विशेष उपबंध नहीं करते जो सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हैं तो यह उनकी भूल होती। यदि प्रारम्भ में ही दलित जातियों को सहायता न दी जाय तो लोकतांत्रिक राष्ट्र की प्रगति सम्भव नहीं हो सकती। लोकतांत्रिक समता का सिद्धान्त तभी काम कर सकता है जब पूरा राष्ट्र यथा सम्भव एक ही स्तर पर आ जाय। अनुसूचित जातियों को दिये गये सांविधानिक संरक्षण के प्रभावशाली क्रियान्वयन के लिए संविधान द्वारा अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग, कल्याण विभाग और संसदीय समितियों की स्थापना की गयी है। सांविधानिक संरक्षण के अभाव में इनका उत्थान असम्भव था। भारतीय संविधान उदारवाद, समाजवाद और लोकतंत्र के आदर्शों पर आधारित है और इन आदर्शों के क्रियान्वयन में अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग एवं राज्यों के कल्याण विभागों ने प्रभावशाली कार्य किया है।

इसके साथ–साथ समाज का योगदान अपरिहार्य है क्योंकि अधिकारों की सुरक्षा केवल कानून मात्र से सम्भव नहीं है अपितु इस हेतु समाज की सामाजिक एवं नैतिक भावना भी अति आवश्यक है क्योंकि सामाजिक भावना यदि कानून द्वारा प्रदान किये जाने वाले अधिकारों को मान्यता देने के लिए तैयार है तो अधिकार सुरक्षित रह सकते हैं किन्तु यदि समाज मूल अधिकारों का विरोधी है तो कोई भी कानून, संसद या न्यायपालिका उन्हें प्रदान करने का यथार्थ आश्वासन नहीं दे सकती।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ओम प्रकाश–प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, 1991
2. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव–मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, 1996
3. वी0एल0 गोवर–आधुनिक भारत का इतिहास, 1996
4. राम आहूजा–भारतीय सामाजिक व्यवस्था, 1955
5. दुर्गा दास वसु–भारतीय संविधान एक परिचय, 1989
6. शैलेन्द्र कुमार अवस्थी–अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन–जाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989, 1995
7. अनुसूचित जाति और जन–जाति आयुक्त की रिपोर्ट (विभिन्न वर्षों की)
8. प्रत्यूष रंजन बालव–अस्पृश्यता एवं विधिक प्रावधान, 199
9. योजना, इण्डिया टुडे

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

बनारसी ठुमरी की परम्परा : एक संक्षिप्त अवलोकन

डॉ0 ज्योति सिन्हा
प्रवक्ता–संगीत
भारतीय महिला पी0जी0 कालेज, जौनपुर, उ.प्र.

संगीत का प्रयोजन सांसारिक चिन्ताओं में दबे हुए या थके हुए मानव को उन चिन्ताओं से मुक्त कराकर अलौकिक सुख की प्राप्ति कराना है। जिसमें यह गुण हो, उसे ही भलि–भाँति, गाया हुआ या संगीत (सम्यक् गीतम्) कहना चाहिए, अन्यथा वह कोलाहल मात्र है, भले ही वह कोई भी शैली या प्रकार हो। स्वर भाषा, ताल व मार्ग का आश्रय लेकर गीत मानव की भावना को व्यक्त करता है, वादन गीत का सहायक होता है और नृत्य उस भावना को मूर्त कर देता है। इसलिए गीत, वाद्य और नृत्य मिलकर 'संगीत' कहलाते हैं।[1] भारतीय संगीत का विकास एक लम्बे इतिहास क्रम को प्रस्तुत करता है। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल एवं आधुनिक काल तक भारतीय संगीत न जाने कितनी गायन शैलियों, विविध प्रवृत्तियों एवं संस्कृतियों से अनुप्रेरित होता रहा है। भारत का शास्त्रीय संगीत धर्म तथा राज्य संरक्षण के दो चक्रों पर ही घूमता रहा है। दोनो की रूढ़ियों ने जब संगीत को भी क्रमशः रूढ़िगत बन्धनों में जकड़ना प्रारम्भ किया तो प्रतिक्रिया स्वरूप ठुमरी गायन का जन्म हुआ।[2] बहुत प्राचीन समय से ही उत्तर भारत में कई विभिन्न गायन शैलियाँ प्रचलित रही हैं। जैसे– ध्रुवपद, धमार, ख्याल आदि। इन्हीं क्रम में 'ठुमरी' भी एक प्रकार की गायन शैली है। उपशास्त्रीय संगीत के वर्ग में प्रथम स्थान ठुमरी का है। मूलतः ठुमकने–नाच के साथ जुड़ी यह शैली आज बहुत लोकप्रिय है। लखनऊ के दरबार से इसका प्रचार– प्रसार माना जाता है किन्तु इसका मूल स्रोत प्राचीन राग में मिलता है। (ठुमरी नाम की एक प्राचीन रागिनी है) शब्दों का मूल्य महत्व यहाँ बढ़ने के साथ ही शब्दों को श्रृंगारिक ढंग से सजाया जाना इसकी विशेषता है। सामान्य रूप से भैरवी, खमाज पीलू, काफी, गारा, तिलंग आदि रागों में ठुमरियां गाई जाती हैं। शुद्धता को कम देखने के कारण 'मिश्र खमाज', 'मिश्र काफी', 'मिश्र पीलू' आदि रागों के नाम चलन में रहते हैं।

पं0 विष्णु नारायण भातखण्ड़े जी ने ठुमरी के संदर्भ में लिखा है कि– 'ठुमरी एक क्षुद्र गीत माना जाता है तथा इसका प्रधान रस श्रृंगार होता है। शब्द रचना संक्षिप्त होती है। .....उत्तर भारत की ओर संगीत व्यवसायी स्त्रियाँ ही प्रायः ठुमरियाँ गाती हैं। ठुमरी का गायन क्षुद्र भले ही माना जाये, किन्तु यह अत्यन्त लोकप्रिय है, इसमें कोई संदेह नही।'[3] इस संदर्भ में बनारस के पं0 जालपा प्रसाद मिश्र का कहना है कि ठुमरी गाते समय स्वर में माधुर्य, लोच और नृत्य का अनिवार्य अंग माना गया है। नृत्य और अभिनययुक्त इस संगीत को नृत्य संगीत अथवा अभिनय संगीत की संज्ञा दी जा सकती है। ठुमरी के जिन भावों को एक नर्तक जैसे हाव–भाव से अदा करता है, उन्हीं भावों को हम वैसे ही गले से अदा करते हैं जो कि ज्यादा मुश्किल काम होता है।[4] ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ठुमरी की परम्परा पर ध्यान दें तो पाते हैं कि भारतीय इतिहास में गीत के साथ नृत्य की परम्परा रही है। वेश्याओं (इन्हें 'मंगलामुखी' की भी संज्ञा प्राप्त है जो इनके द्वारा मांगलिक अवसरों पर उपस्थिति का द्योतक है) तवायफों, गौनिहारिनों द्वारा आरम्भ में नृत्य के साथ ठुमरियाँ गाई जाती रही हैं।[5]

श्री सुदामा प्रसाद दूबे के अनुसार– भावाभिनय ठुमरी की सूक्ष्म और मार्मिक शक्ति है। ठुमरी में निहित विभिन्न भावों का सूक्ष्म प्रतिबिम्ब गायन के शब्दोच्चारण और स्वरोच्चारण के साथ–साथ उसके मुखमंडल पर होना ही उसकी भावुकता का द्योतक है।''[6] अत्यन्त साधारण जन के निकटवर्ती होते हुए भी विशिष्ट जन समूह

इसके आकर्षण एवं मोहक छवि से वंचित नही रह सका।

अवश्य ही शनैः शनैः संस्कारित एवं परिष्कृत होकर तत्कालिन ठुमरी उच्चकुलीन सम्प्रदायों में पहुँची और चूँकि शास्त्र की पूर्ण नियमबद्धता अथवा कठोरता का अभाव रहा, अतः इसे पूर्ण शास्त्रीय तो नही अपितु उपशास्त्रीय संज्ञा प्राप्त हो सकी परन्तु ठुमरी का सम्बन्ध लोक व शास्त्र दोनों से समान रूप से बना रहा।[7]

ग्रंथों के अध्ययन काल में ठुमरी की उत्पत्ति एवं इतिहास का तो भास होता है परन्तु ठुमरी गायकों अथवा उनके घरानों का उल्लेख नही है। राजदरबारों में भी इसके गायन का वर्णन नही होने से स्पष्ट होता है कि ठुमरी निम्न स्तरीय अथवा छोटे समुदायों में ही विकसित थी, जिसके लक्षण स्वरूप ठुमरी तवायफों/वेश्याओं/गौनिहारिनों तक सीमित रही, जिसे घरानेदार संगीतज्ञ हेय दृष्टि से देखते रहे और उसे दीर्घकाल तक क्षुद्र प्रकृति के संगीत की संज्ञा प्राप्त होती रही। अपने एक लेख में ठुमरी के संदर्भ में बताते हुए आचार्य बृहस्पति ने कहा है कि 'सन् 1945–46 ई. में हमने लखनऊ रेडियो से प्रसारित एक वार्ता में कहा था कि 'ठुम' ठुमकने का द्योतक है और 'री' अन्तरंग सखी से अपने अन्तर की बात कहने का। ठुमरी का विषय नायिका के अन्तर की असंख्य भाव लहरियों का चित्रण है।'[8]

ठुमरी के संदर्भ में श्री जी0एच0 रानाडे लिखते है– "Thumari is another interesting form of musical composition, A majority of such songs employ scales which are usually met within the folk songs and employ as a rule, notes from the very fine consonances which principally figure in folk music."[9] अठ्ठारहवीं सदी में ठुमरी को कोई पुख्ता प्रतिष्ठा नही प्राप्त हो पाई थी। पुनरपि इस सदी के उत्तरार्द्ध में यह स्थापित होने लगी थी तभी तो सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ गुलाम राजा सितार पर तीन ताल मध्यलय ठुमरियां प्रस्तुत करने लगे थे, जिससे नवाबों को प्रसन्नता हो।'' अवध के दरबार में इस सदी के अन्त और उन्नीसवीं सदी का आरम्भ ठुमरी के लिए स्वर्णिम प्रभात बन गया और ठुमरी के प्रश्रयदाता की संज्ञा वाजिद अली शाह को प्राप्त है जो स्वयं संगीत एवं नाट्य के प्रेमी एवं ज्ञाता थे।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में मुगल साम्राज्य के पतन के बाद नये–नये राजा व सुबेदार स्वतन्त्र हो गये तथा दिल्ली के राज्य के शक्ति क्षीण हो गयी। ऐसे में गायक, वादक, दूसरे दरबारों में आश्रय व शरण ढूँढ़ने लगे। ऐसे में संगीतज्ञों का रूझान अन्य शैलियों की ओर गया जो उस समय की आवश्यकता थी। प्राचीन संगीत के महारथी जहाँ जीविकोपार्जन की समस्या से निश्चित होकर दिल्ली व अन्य दरबारों की कृपा पर रियाज व साधना में ही निमग्न रहते थे, उनके समक्ष भी जीविकोपार्जन की समस्या खड़ी हो गयी। बनारस, लखनऊ, रामपुर, ग्वालियर, वेतिया आदि स्थानों पर इन्हें जाना पड़ा। उसी समय संगीत के व्यापक क्षेत्र में ठुमरी ऐसी नवीन गायन शैली का प्रवेश हो चुका था। कदर पिया, सदर पिया और सनद पिया ऐसे ठुमरी गायक लखनऊ में नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में नियुक्त हो गये थे। लखनऊ की ठुमरी के साथ लखनऊ के कथक नाच भी संगीत के मैदान में आ गया था। वाजिद अली शाह के दरबार में ठाकुर प्रसाद भी, जो कथक नृत्य के जन्मदाता और प्रवर्तक माने जाते हैं, नियुक्त थे और वह नवाब साहब के नाच में पूज्य गुरू थे। इन्हीं के प्रतिभाशाली पुत्र बिन्दादीन जी थे। ठुमरी और कथक नाच का चोली– दामन का साथ था और यह हमारे आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत की दो नयी, शैलियाँ थीं जिन्होंने आगे चलकर बड़ी उन्नति की।[10]

'वाजिद अली शाह का कार्य नृत्य–नाट्य तक ही सीमित नही रहा, उन्होंने ठुमरी में भावभिव्यंजना के लिए भाषा के छोटे–छोटे वाक्यांशों को लेकर विविध स्वर–संयोजन से भावाभिव्यक्ति को विविधमुखी, फिर भी निर्दिष्ट करने की चेष्टा की। इस प्रकार कहन ठुमरी का जन्म हुआ। इस समय वाजिद अली शाह ने अपने को 'अख्तर पिया' नाम से परिचित कराया। (मिर्जा कादर ने बहुत पहले ही अपना नाम कदर पिया रखा था) सन् 1841–42 में यह 'कहन ठुमरी' बनारस और अन्यान्य पूर्वी अंचलों में काफी प्रचालित हुई थी।[11] कहन ठुमरी' आज भी पुराने

एवं बुजुर्ग गायकों द्वारा सुनने को मिलती है परन्तु उन धरोहरों के संरक्षण की आवश्यकता है। ठुमरी के विकास एवं प्रसार में तीन प्रमुख स्तम्भ पुरुष माने जा सकते हैं – नवाब वाजिद अली शाह, उस्ताद सादिक अली खाँ एवं बिन्दादीन महाराज। इसके अतिरिक्त मौजुद्दीन खाँ, भैया गनपत राव आदि के योगदान को भुलाया नही जा सकता। सादिक अली खां से ही ग्वालियर के मशहूर हारमोनियम वादक भईया गनपत राव ने ठुमरी सीखी तथा 1918–20 तक इनका नाम पूरे भारत में फैल गया। ठुमरी के बेहतरीन गायक मौजुद्दीन खाँ इन्हीं के शिष्य थे। मौजुद्दीन खाँ जैसा ठुमरी गाने वाला कोई नहीं था। दर्जनों गाने वालियां इनकी शिष्या हो गयी थीं जिनमें कलकत्ते की गौहर जान व नूरजहाँ का नाम भी था। मौजुद्दीन खाँ की गाई ठुमरी– 'सांवरिया ने जाई द्वारा बाजूबन्द खुल–खुल जाये, अभी भी गायी जाती है। लखनऊ के ठुमरी गायकों ने बोल पर ही सबसे अधिक जोर दिया 'कलायुक्त, बोल बनाव यही इस शैली की विशेषता रही। ठुमरी का निराला व विशेष आकर्षण बोल बनाव में है जिसके लिए भावुक उच्चारण तथा शब्दों की सही पुकार आवश्यक है सहृदय व भावुक कलाकार ही ठुमरी को गा सकता है।

जिस तरह सदारंग की बदौलत ख्याल गायिकी का जन्म हुआ, उसी प्रकार भईया गनपत राव की बदौलत 'ठुमरी' गाना हर दिल अजीज हुआ। मौजुद्दीन खां साहब इन्हीं के शिष्य थे। बनारस की बड़ी मोती बाई ठुमरी में मौजुद्दीन खां की ही शिष्या रही थीं तथा बड़ी मोती बाई को भैया गनपत राव की परम्परा का प्रतीक कहा जाना चाहिए। आज ठुमरी गायन में जिन्हें प्रसिद्धि प्राप्त है, वे हैं– शोभा गुर्टू, निर्मला अरूण, लक्ष्मी शंकर, गिरिजा देवी, सविता देवी, रीता गांगुली, पूर्णिमा चौधरी, नैना देवी, शुभा मुद्गल, माला श्री तथा पुरुष गायकों में छन्नू लाल मिश्र, धर्मनाथ मिश्र, भोलानाथ मिश्र, महादेव प्रसाद, अजय पोहनकर, पं0 चन्द्रशेखर व्यास आदि।

आधुनिक ठुमरी का विकास अवध के दरबार में हुआ। इसके लिए दरबार का विलासमय वातावरण तो पोषक हुआ ही साथ ही रीतिकालीन काव्य का भी प्रभाव रहा। नृत्य के ठुमकने का भाव इसमें होने के कारण इसका नामकरण ठुमरी हुआ। गीत गाने के साथ विभिन्न अंगों के द्वारा किये जाने वाले अभिनय से उन भावों को प्रगट करना ठुमरी के लिए आवश्यक था। इसी कारण नर्तकियों एवं वेश्याओं में इसका प्रचार अधिक हुआ। समय के साथ–साथ कला में भी लोक रूचि के अनुसार परिवर्तन होता है एवं कला में वृद्धि होती है। ध्रुवपद से धमार ख्याल, ठुमरी, दादरा, टप्पा इत्यादि शैलियाँ इस परिवर्तन का ही परिणाम रही। शब्दानुकूल अर्थ रूप से ही स्पष्ट है कि ठुमरी में नृत्य और अभिनय का सम्बन्ध स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। ठुमरी गायन के साथ नृत्य की परम्परा आज भी है। तवायफें खड़ी होकर अभिनय के साथ ही ठुमरियाँ प्रस्तुत करती थीं। इन तथ्यों की पुष्टि अनेक ग्रंथों से हो जाती है।[12]

ठुमरी में गीत महत्व रखता है। अधिकतर श्रृंगार रस भावों को लेकर ठुमरियाँ गाई जाती हैं। ठुमरी में कला पक्ष प्रबल है। ठुमरी की भाषा, उसके विषय, उसकी प्रकृति के अनुकूल उस प्रदेश की लोक भावों में से हैं, जहाँ ठुमरी उपजी है। श्रृंगारिक शब्दावली और गाने के ढंग के कारण मुख्यतया ठुमरी स्त्रियों में प्रचलित हुई। स्वाभाविक रूप से ऐसी रचनायें विलासी राजा पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के मुख से सुनना चाहते थे तभी कालान्तर में यह शैली विशेष प्रकार की स्त्रियों में ही प्रचलित होकर रह गई जो गणिका, वेश्या, पातुर, नर्तकी आदि कहलाती थी।[13] श्रृंगार प्रधान व लोक संगीत के अत्यन्त निकट होने के कारण ठुमरी के लिए लोक धुनों के निकटवर्ती व श्रृंगारिक अभिव्यक्ति में सहायक राग ही उपयुक्त होते हैं यथा–पीलू, खमाज, भैरवी, देश, तिलक कामोद, तिलंग, गारा, सिंध, बिहारी इत्यादि। भाव प्रदर्शन के लिए ठुमरी अत्यन्त उपयुक्त माध्यम है तथा भाव, प्रदर्शन के दृष्टिकोण से यह नृत्य के निकट पहुँच जाती है।

इस शैली में एक ओर तो लोकगीतों के हृदय पक्ष का प्राबल्य बना रहा तो दूसरी ओर गायकों के चमत्कार पक्ष का समन्वय हुआ। भारतीय संगीत के मीठे व सरल राग यथा– भैरवी, खमाज, पीलू, तिलंग, धानी, झिंझोटी,

पहाड़ी आदि राग ठुमरी के लिए उपयुक्त है। इन रागों की प्रकृति सरल, रोचक, मधुर एवं चंचल है। ठुमरी गीतों की शब्द योजना अधिकतर श्रृंगारपरक है। इसके विषय विविध हैं। कहीं नर–नारी के लौकिक प्रेम, भक्ति तो कहीं सूफी व रहस्यमार्गीय सन्तों के अलौकिक ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है। वस्तुतः ठुमरी दो प्रकार से गाई जाती है– 1. बोल बनाव या बोल आलाप की ठुमरी, 2. बोल बांट या बंदिश की ठुमरी। बोल बनाव की ठुमरियां विलम्बित लय तथा बोल बांट की ठुमरी मध्य लय में गाई जाती है। बोल बनाव की ठुमरी भाव प्रधान है तो बोल बांट की ठुमरी लय प्रधान। बोल बनाव की ठुमरियां भी दो अंगों में विभक्त है 1. पूरब अंग 2. पंजाब अंग।

पूरब अंग की ठुमरियां भारत के पूर्वी अर्थात् उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र और बिहार में प्रसिद्ध है। स्वप्रकृत्यानुरूप लोक संगीत अर्थात कजरी, चैती, पूर्वी आदि का पूरब अंग की ठुमरियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। पूरब अंग की दो शैलियां– लखनऊ और बनारस नाम से विख्यात हैं। लखनऊ शैली की ठुमरी के बोल ब्रज भाषा एवं अवध की स्थानीय बोली का मिश्रित रूप है, जिसे कदर पिया ने 'भाखा' की संज्ञा दी है। इसमें कहीं–कहीं उर्दू का भी पूट देखने को मिलता है। लखनऊ टप्पा का भी क्षेत्र रहा है। अतः ठुमरियों पर भी टप्पा का स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होता है। बोलों को नजाकत और भावुकता से कहना ही लखनऊ की ठुमरी की जान है।[14]

उत्तर प्रदेश में लखनऊ ठुमरी का महत्व पूर्ण केन्द्र रहा। पूरब अंग की ठुमरी में गायन शिल्प की सूक्ष्मता, कुशलता, पदों के बोलों का अभिजात्य प्रदर्शन, उर्दू व ब्रज मिश्रित भाषा की चुलबुलाहट, शास्त्रीय रागों से मोह और ख्याल गायकी से ठुमरी अंग की विशिष्ट्ता प्रदर्शित करना, लखनऊ के ठुमरी गायकों का अपना सौष्ठव था। बंदिश की ठुमरी या बोल बाट की ठुमरी के लिए लखनऊ के बिन्दादीन महाराज, कालकादीन जी महाराज और फर्रूखाबाद के ललन पिया सिद्धहस्त थे। ठुमरी गायक व रचयिता अपने नाम के उपनाम में 'पिया' शब्द जोड़ते थे। जैसे–सुधर पिया, सनदपिया, ललन पिया, चांद पिया, चतुर पिया, मौज पिया, अहमद पिया, दरस पिया, अख्तर पिया आदि। ठुमरी का दूसरा अंग पंजाबी अंग के नाम से प्रसिद्ध है। इस अंग की ठुमरी का मूल पंजाब का लोक संगीत महिया पहाड़ी आदि धुनें हैं। पदों के बीच में 'ताने' खटकों का प्रयोग पंजाबी अंग की अपनी विशेषता है। पूरब की ठुमरी यानि लखनऊ और बनारस की ठुमरी। पूरब की ठुमरी लखनऊ में पैदा हुई। लखनऊ के नवाब सादिक अली खां ही इसके आविष्कारक थे और इन्होंने ही इन नयी शैली का सबसे पहले प्रचार किया। कथक नाच व लखनऊ की ठुमरी का साथ–साथ उत्थान हुआ और बहुत समय तक इन दोनों का साथ भी रहा। लखनऊ के विन्दादीन जिनको इस पिछले युग में कत्थक नृत्य का सर्वश्रेष्ठ अन्वेषक व नर्तक माना जाता है। बहुत सी लय, बोल की ठुमरियों की रचना कर गये हैं जिनमें बिंदा कहते शब्द आये हैं। लखनऊ की ठुमरी ठहरी हुई लय में होती है और प्रायः पंजाबी ठेके, धीमें अथवा चांचर ताल में गाई जाती है। उसके बोल भी सीधे–सादे होते हैं और कानों को बहुत अच्छे लगते हैं जैसे– 'सांची कहो मोसे बतियाँ गवाई रतिया, आंगन में मत सो अथवा बाबुल मोरा नईहर छूटो जाये' आदि मशहूर हैं। पूर्वी अंग की ठुमरी को अत्यधिक लोकप्रिय बनाने में भईया गनपत राव, मौजुद्दीन खां, प्यारे साहिब, जोराबाई, जानकीबाई बड़ी मोती बाई, रसूलन बाई, विद्याधरी बाई, सिद्धेश्वरी देवी और बेगम अख्तर का विशेष योगदान है।[15] बनारस की ठुमरी ने लोकतत्वों को ही विशुद्ध रूप से पहली बार अपनाया। चैती, कजरी, होली, सावनी आदि लोक प्रचलित धुने ठुमरी गायन का महत्वपूर्ण अंग बन गई।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. निबन्ध संगीत, लक्ष्मी नारायण गर्ग, लेख आचार्य वृहस्पति, ठुमरी में सनातन सांगीतिक तत्व, पृ. सं. 12।
2. ख्याल गायन शैली विकसित आयाम, डा0 सत्यवती शर्मा, पंचशील प्रकाशन जयपुर पृ.सं. 71

3. हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग 4 (1979), पं0 विश्णु नारायण भातखण्ड़े, प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ.सं. 50
4. Singh, Thakur Jaidev, Evolution of thumari, कलाभारती ठुमरी, ठुमरी सम्मेलन पत्रिका, 1965, पृ. सं. 36
5. नागर, अमृत लाल, ये कोठेवालिया, पृ. सं. 56
6. दूबे, सुदामा प्रसाद, क्षितिज, संगीत मासिक (ठुमरी अंक) जनवरी–फरवरी 1947, पृ. सं. 13
7. सिंह, लावण्य कीर्ति, संगीत संजीवनी, पृ. सं. 48
8. निबन्ध संगीत, श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग, लेख– आचार्य वृहस्पति, ठुमरी में सनातन सांगीतिक तत्व पृ. सं. 16
9. ख्याल गायन शैली, विकसित आयाम, डा0 सत्यवती शर्मा, पृ. सं. 72
10. हमारा आधुनिक संगीत– सुशील चौबे, पृ. सं. 91–92
11. राय, डा0 विमल–ठुमरी–संगीत (मासिक) अक्टूबर 1987, पृ. सं. 17
12. भातखण्डे, संगीत शास्त्र, भाग–1, पृ. सं. 62
13. भटनागर, हेम–हिन्दी साहित्य के श्रृंगार युग में संगीत, काव्य, पृ. सं. 161
14. चौबे, डा0 सुनील कुमार– हमारा आधुनिक संगीत, पृ. सं. 112
15. http//en.wikipedia.org/wiki/thumari.
16. Pohankar, sushila- Folkelemants in Thumari- Thumari: Tradition and Trends- Seminar papers, p. 76
17. बिरजू महाराज की ध्वनि–मुद्रक सं. Splendours of the Kathak Maestro Birju Maharaj Emi-7 Supreme- Stus 02B 6187 Stereo-

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भक्ति–साधना और संगीत कला के उभरते आयाम

डॉ0 सुनीता द्विवेदी
वरिष्ठ प्रवक्ता
जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर

'आप्तकामस्य का स्पृहाः', आप्तकाम यह शब्द ब्रह्म के परिचय में कहा जाता है। ब्रह्म सृष्टि का कारण है अतः काम भी सृष्टि का मूल बना। यह काम कल्याण का निकेतन है, परिपूर्ण है और आनन्ददायक है ऐसे विशुद्ध काम में उसी के अंश रूप मानव की कुछ निम्न प्रवृतियाँ विकार ला देती हैं, क्योंकि सुख की खोज में उसकी इन्द्रियाँ चारों ओर इतस्ततः भटकती रहती हैं, परन्तु अन्तस्थल में बैठा हुआ काम सुख–दुख से ऊपर की अवस्था अर्थात– आनन्द चाहता है। यह काम पूर्ण से च्युत होकर अंशों में विराजमान है। इसलिये समस्त भौतिक सुख इसे संतुष्ट नहीं कर पाते। जो पूर्णतः यह चाहता है, उसका एकमात्र स्थल सदानन्द ईश्वर है। अतः ईश्वर के साथ रमण करना, ईश्वर के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम के गान में मगन रहना ही आनन्द है और यही भक्ति–मार्ग है। ब्रह्म के तीन स्वरूप सत्, चित्, आनन्द में से भक्ति–मार्ग और कला–साधना तीसरे स्वरूप आनन्द को लेकर चलती है।[1]

भक्ति भाव–साधना का नाम है, भाव–साधना में भावों को भावित करते रहने से एक ओर तो रस की अनुभूति होती है और दूसरी ओर भाव का महाभाव की ओर विकास होता चलता है। ऐसी विधि से परब्रह्म परमेश्वर हृदय में आविर्भूत हो रस कहलाते हैं, इस प्रकार भक्ति को भाव साधना कहेंगे जिसका उदय प्रभु अनुग्रह से होता है।

पौराणिकों ने आनन्द धन ईश्वर को जनग्राह्य बनाने के लिये उसे सगुण रूप देकर मानसी भावनाओं को साकार रूप प्रदान किया और समाज के हृदयाकर्षण के लिये भगवान के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम का विस्तृत काल्पनिक रूप खड़ा किया। मध्ययुग में हुए सगुणोपासकों ने ईश्वर के नाम आदि के गान–कीर्तन को अपनी भक्ति के प्रचार का आधार बनाया।

भक्ति का परम लक्ष्य रसास्वादन है और समस्त ललित कलायें भी रसानुभूति का साधन मानी गयी हैं। ललित कलाओं में से दो गतिशील कलायें हैं जो स्वयं भी बड़ी सहजता से एक–दूसरे की सीमा में प्रवेश कर उनकी सौन्दर्य वृद्धि का हेतु बनती हैं तथा शीघ्र ही युगल रूप में भक्ति साधना की भी सहचरी बन जाती हैं। कारण यह है कि इन दोनों कलाओं का सम्बद्ध वाक् से है, काव्य और संगीत दोनों कलायें एक–दूसरे के प्रभाव को बढ़ाते हुए बड़ी सरलता से भक्ति–साधना की सहगामी बनती हैं क्योंकि दोनों ही कलायें भावाभिव्यक्ति की सक्षम शक्तियाँ हैं। काव्य में विचारों की प्रधानता तथा वर्ण आदि साधन रूप में प्राप्त होने के कारण किसी भी स्थिति, किसी भी घटना का वर्णन भाषा के माध्यम से काफी हद तक संभव है, संगीत की ध्वनि विशेषता भी मन के अधिक से अधिक भावों को व्यक्त करने में समर्थ है और भक्ति का सम्बन्ध भी भावों और भाव–सम्प्रेषण की अपेक्षा से है।

कल्पना के स्तर से पत्थर या मिट्टी में भगवान को रूपायित करना और फिर 'तुम ही पालनहार' 'तुम रक्षक–दीन दयाल' अथवा रूप देखकर 'इन दृगन की छवि पर बाँरू री' कहकर गा उठना, यह एक भक्त की

ही उत्कृष्ट भावना हो सकती है, भक्त भगवान की लीलाओं का गान किये बिना नहीं रह सकता। इस वर्णन के लिये सुलभ साधन बनते हैं– भक्त के भावों का सहगामी बन काव्य अपने शब्द सामर्थ्य से पद के रूप में व्यक्त होता है। यही कारण है कि हमारे यहाँ हर युग में भक्तों द्वारा अत्यधिक मात्रा में भक्ति काव्यों की रचना हुई। इस प्रकार भक्ति साधना में पद के रूप में काव्य का प्रवेश होता है। तत्पश्चात् वही पद स्वयं ही सांगीतिक तत्वों से आश्लिष्ट हो भक्ति के एक महत्वपूर्ण अंग भजन के रूप में प्रकट होता है। इसका मतलब यह नहीं कि भक्त अनुभूतियों के क्षणों को याद करके पहले पद रचना करता है और बाद में उसे स्वर–लय से सजाता है, बल्कि होता यह है कि उद्‌गार बाहर निकल आते हैं, उस समय प्रकट हुई विशेष दशा की ये अनुभूतियां 'गीत' कहलाती हैं।

''चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्‌दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोखि सुदुस्करम्।।[2]

मन बहुत चंचल, बलवान और प्रमाधि है, इसका निग्रह बहुत ही दुष्कर है ऐसे चंचल मन को निरन्तर अभ्यास के द्वारा साधना चाहिए–

''अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च ग्रहयेत।''[3]

भारतीय दर्शन में चंचल मन को एकाग्र करना योग कहलाता है। भक्ति साधना का पथ इससे भिन्न है यानी इस पथ में मन का निग्रह कर उसे पुनः दूसरी ओर नियोजित भी किया जाता है। अतः भक्ति मार्ग में मन के निग्रह के लिये ऐसा साधन चाहिए जो एक ओर तो लौकिक स्तर पर भोग के प्रति जुड़ने वाले मन को उधर से हटा लें और भगवान के आनन्ददायक रूप, गुण की ओर प्रार्थी को दत्त कर दे, साथ ही वहां पहुँचकर वह स्वयं भी भक्ति में अनुस्युत हो उसके आनन्द को द्विगुणित करती रहे जिससे भक्त के मन में मुक्ति की इच्छा जन्म ही न ले वह केवल भक्ति की कामना करता रहे, जैसा कि भक्त कवि तुलसीदास कहते हैं 'मुक्ति निरादर भगति लुभाने।'

कलाओं में संगीत ही ऐसी कला है जो भक्ति मार्ग में अपेक्षित त्रिकोण को पूरा कर सकती है। संगीत का शाब्दिक अर्थ है ''सम्यक् रूपेण गाया गया।'' अर्थातः स्वर–ताल युक्त ऐसी पद रचना जिसे तत् नियमबद्ध हो गाया जाये। संगीत रत्नाकर में संगीत की परिभाषा ''गीतं वाद्यं तथा तथ्यं नृत्यं संगीतमुच्यते।''[4] कही गयी है।

ये तीनों विधायें मनुष्य की स्थूल से लेकर सूक्ष्मतम आवश्यकताओं में सहायक होती हैं, क्योंकि सामाजिक स्तर पर सुख–दुख, उत्साह, करुणा, आदि सभी प्रसंगों पर संगीत विशेष रूप से ग्राह्य है। यह ऐसी कला है जो इन्द्रिय द्वारों पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर मन की चंचल वृत्तियों के निग्रह के लिये सर्वाधिक सक्षम है। इसके श्रवण मात्र से मन की सभी चंचल वृत्तियां और शक्ति श्रवणेन्द्रिय में केन्द्रित हो जाती हैं। इस प्रकार मन का निग्रह संगीत का प्रथम कार्य हुआ। संगीत के अन्तर्गत वाद्य और नृत्य भी आते हैं किन्तु वाद्य गीत का अनुगामी और नृत्य वाद्य का अनुरागी होता है एवं गीत के ही भावों को अंग संचालन व लय विचित्रता के द्वारा व्यक्त करता है। अतः तीनों विधाओं में गीत की प्रमुखता के कारण यहां संगीत शब्द से तात्पर्य गीत ही है।

नाद का प्रभाव क्षेत्र भाषा की अपेक्षा विस्तृत माना गया है। डॉ0 सम्पूर्णानन्द कहते हैं– ''अच्छे गाने–बजाने वाले को कुछ भी भाषा में कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसकी स्वर लहरियाँ प्राणों को खींचकर उर्ध्वमुख कर देती हैं और चित्त मन्त्रमुग्ध हो जाता है।''[5] संगीत के संदर्भ में नाद का अर्थ रंजक ध्वनियों से लिया जाता है। दार्शनिक परम्परा में नाद की व्यापकता इन शब्दों में व्यक्त की गयी है–

''नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात्पदाद्वचः।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्।।''[6]

संगीत रत्नाकर के इस नाद से वर्ण, वर्ण से पद की व्याख्या के अनुसार संगीत और काव्य दोनों नादमय हुए। एक विशुद्ध नाद अर्थात ध्वन्यात्मक और दूसरा वर्णात्मक नाद है। इन दोनों का प्रभाव थोड़ा भिन्न होते हुए भी इनके निकटतम् स्वाभाविक सम्बन्धों को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि भक्ति में पदों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इन भक्ति पदों को गाने से संगीत की आकर्षक शक्ति साधक के चित्त को भक्ति कृत्यों में नियोजित किये रहती है। भक्ति के क्षेत्र में संगीत का यह दूसरा कार्य है।

भक्ति में मन का नियोजन कर देने के बाद संगीत का कार्य समाप्त नही हो जाता, अपितु वहां पहुँचकर वह स्वयं भी भक्ति के साथ एक रूप हो जाता है। भक्ति के समस्त भाव स्वरादि अलंकरणों से सुसज्जित हो भजन का रूप लेते हैं। भजन का यह भावात्मक रूप स्वयं फल रूप भी है। भक्त भावना के स्तर पर भगवान के साथ सम्बद्ध होकर अनूठे फल का अनुभव करता है। इस प्रकार संगीत के द्वारा भक्ति के अपेक्षित ये तीनों (निग्रह, नियोजन, आनन्दलाभ) कार्य एक साथ पूरे होते हैं। कोई भी साधना हो, उसका अंतिम लक्ष्य आनन्दफल की प्राप्ति होता है। भक्त साधकों द्वारा कहा जाता है कि निरन्तर भजन करने से अविद्या दोष मिट जाने पर प्रेम का आविर्भाव होता है। नारद भक्ति सूत्र में भजन को भक्ति भाव की अभिव्यक्ति कहा गया है– 'अत्यव्रतभजनात्' सूत्र की व्याख्या इस प्रकार की गयी है– ''निरन्तर भजन द्वारा मन को उच्च तत्वों की ओर लगाना चाहिए। हृदय की भक्ति जब व्यापक होकर अपना संगीत हमारे माध्यम से बाह्य जगत में पहुंचाती है तब वह भजन का सच्चा रूप हो जाती है। भक्ति भाव है और भजन अभिव्यक्ति।''[7] इस प्रकार पुराणों में भक्ति के साथ संगीत भजन के रूप में स्थायी होकर जुड़ा है। पद्म पुराण में भगवान स्वयं कहते हैं–

''नाऽहं वसामि बैकुण्ठे योगिनों हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः।।''

इस श्लोक में एक शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है जो पूरे श्लोक का अर्थबिन्दु है, वह शब्द है 'मद्भक्ता' यानी मेरा भक्त जहाँ गा रहा हो ऐसे स्थान पर मैं रहता हूँ। वह भक्त जिसे धर्म, अर्थ, कामरूचि, निर्वाण कुछ भी नहीं चाहिए, ऐसे भक्त के गान स्थान में भगवान का निवास होगा।

श्रीमद्भगवत् में भगवत् सम्बन्धी गीतों को विलज्न होकर गाने के लिये कहा गया है–

''शश्ण्वन सुभद्राणि रथाङपाणेरजन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन विलज्जोविचरेद् असंगः।।''[8]

हरि प्रेम में नाम कीर्तन के समय लज्जा का भाव प्रेम तृष्णा को बढ़ाने के स्थान पर कम कर देता है जबकि भक्त साधक तुलसी ने दोहावली में कहा है कि ''प्रेम की प्यास बढ़ते रहने में ही भक्त की आन है।''–

''चातक तुलसी के मते स्वातिह पियहु न पान।
प्रेम तृषा बाढ़त भली घटे घटेगी आन।''[9]

भक्ति मार्ग के सफल साधन के रूप में संगीत की महत्ता बताते हुए यहां तक कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों ही पुरुषार्थो की सिद्धि के लिये संगीत ही एक साधन है–

''तथ्य गीतस्य माहात्म्यं कः प्रशंसयितुं ईशते।
धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमैक साधनम्।।''[10]

संगीत अपने गुण विशेष के कारण भक्ति की समस्त अपेक्षाओं को पूरा करता हुआ भक्ति साधक का अन्तरंग हो जाता है। यही कारण है कि भक्ति के साथ किसी सीमा तक अनायास ही जुड़ जाने वाले संगीत को समय–समय पर भक्त साधकों द्वारा रसवर्धन हेतु प्रयासपूर्वक भी अपनाया जाता रहा है। वो चाहे अयोध्या का रामभक्ति संगीत हो। मथुरा, वृन्दावन का कृष्ण भक्ति संगीत हो अथवा कृष्ण भक्ति में सराबोर हवेली संगीत हो, सभी ने अपने–अपने क्षेत्र में लक्ष्य को पाया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 मुन्शीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृ0 65
2. श्रीमद्भगवद्गीता– 6/34
3. श्रीमद्भगवद्गीता– 6/35
4. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, पदार्थसंग्रहप्रकरण–21
5. डॉ सम्पूर्णानन्द, चिद्विलास, पृ0 199
6. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर– 1/2/2
7. चिन्मयानन्दकृत हिन्दी अनुवाद, नारदभक्ति सूत्र–पृ0 60
8. श्रीमद्भागवत् – 11/2/39
9. गो. तुलसीदास, दोहावली, 279
10. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर– 4/1/30

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

बघेली लोकगीतों का मूल्यांकन

डॉ0 अमित शुक्ल
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

बघेली लोकगीतों में एक जो सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि यहाँ के गीतों में प्रकृति प्राण की तरह है। उनके बिना यहाँ का लोक साहित्य अधूरा सा लगता है। यहाँ के लोकगीतों में देवी पूजा, फाग, रक्षाबन्धन, टेढ़िया और तीजा के सभी प्रकार के गीतों में प्रकृति के चित्र अत्यंत रमणीय हैं। देवी पूजा के गीतों में आम, नीम, चन्दन के पेड़, चमेली, बेला और केवड़ा के फूलों का वर्णन किया गया है। फाग के गीतों में बौरों से लदी घनी अमराइयों में कोयल और कीर के परिहास, बादल को औहार, चाँद को बेंदी और पृथ्वी का म्याना बनाकर विरहिणी को ले जाने का सन्देश मिलता है। सावन के गीतों में हरे–भरे पेंड़, उन पर पड़े हुये हिंडोलने, छल–छल करती नदी और नीम के पेंड़ों का वर्णन मिलता है। इस प्रकार बघेलखण्ड के लोकगीतों में प्रकृति चित्रण का वर्णन प्रचुर मात्रा में किया गया है। बघेलखण्ड में सामान्य लोकगीतों के अतिरिक्त आदिवासियों के लोकगीतों को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है, चाहे वो संस्कार गीत हों या त्यौंहारों के गीत, काम करते समय के गीत, मंत्र टोना–टोटका या जादू सिद्ध करने वाले तथा विश्राम गीत आदि आदिवासी लोकगीतों की लोकप्रियता आज भी है। आदिवासियों के गीतों को 13 भागों में विभक्त किया जाता है, उनमें से कुछ प्रमुख लोकप्रिय गीत जो अभी भी पसन्द किए जाते हैं। उनमें से हैं–

प्रेम संबंधी करमा गीत– प्रेम में अगर संयोग व वियोग न हो तो प्रेम कैसा। देखा जाये तो आदिवासियों के प्रेम संबंधी करमा गीत में प्रेम और वियोग दोनों हैं–

नजर मा झूलइ रे पातर मुंह के छोकरी।
दार बना ले भात बना ले, अउर बनाले गोस
खोरिन–खोरिन हेरि भुलाने नाहीं मिलह दोस,
नजर मा झूलइ रे पातर मुंह के छोकरी।।

पर वह किसी न किसी बहाने अपनी प्रेमिका के पास पहुँच जाता है–

तोरे टोला माखूं मागइं गयउं, लागि गा करउदा
असल के दोसी होस तौ, निकारि दे करौंदा कांटा हो।

एक नारी के कटाक्ष का वर्णन करमा गीत में किया गया है जो इस प्रकार है–

कहना कै चाउर, कहना केर पिसान
कहना कै बांकी डउकी, मारइ निसान।
गौरेला के दार चाउर गोरेला केर पिसान।
पेंड़रा के बांकी डउकी, मारइ निसान।

उपर्युक्त गीत के अतिरिक्त आदिवासियों का एक लोकप्रिय गीत शैला है। इसमें श्रृंगार का आधिक्य है जिसे झूम–झम कर लोग गाते हैं, झूमर शैला का यह एक गीत इस प्रकार है–

पइरी पहरी, दुई दुहरली झमकत आबइ अकेल
मोरे राजा झूमर आई।
चुरबा पहिरइ दुइ दुहरहली, झमकत आबइ अकेल
मोरे राजा झूमर आई।
बहुंटा पहिरह दुइ दुहरइली, झमकत आबइ अकेल,
मोरे राजा झूमर आई।
ढरकुलिया पहिरइ, दुइ दुहरइली, झमकत आबइ अकेल,
मोरे राजा झूमर आई।

इसके बाद प्रेम की अभिव्यक्ति की जाती है–

घर मा बोलइ घर चिरइया, बन मा बोलइ नेवरा,
खिरकिन तेरे मित्रा बोलइ, सनेहा रे,
नैन जुगानी बालम जिन्दगानी हइ थोड़ा
नैन जुगानी।
एक चाली माठा, त सोला डोला पानी।
तोर डउका हइ परदेशी, काहे खोवै जवानी
नैन जुगानी बालम जिन्दगानी हइ थोड़ा।

इस प्रकार बघेलखण्ड में गाये जाने वाले लोकगीतों में आदिवासियों के लोकगीतों की अपनी एक अलग पहचान है, उन लोकगीतों की लोकप्रियता आज भी है और भविष्य में भी रहेगी।

इस प्रकार देखा जाए तो बघेलखण्ड का लोकसाहित्य लोकगीतों व लोकोक्तियों का खजाना है लेकिन इन पर आधुनिकता व भूमण्डलीकरण का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

निष्कर्ष यह है कि बघेलखण्ड के लोक साहित्य में समूची लोक चेतना जीवित है। यहाँ के लोकगीतों का लोकव्यापी महत्व है। लोक साहित्य उतना ही पुराना है जितना कि मनुष्य, इसलिये उसमें जनजीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है। लोक साहित्य किसी भी अंचल का हो किसी भी प्रदेश या क्षेत्र विशेष का हो उसकी अंतर्धारा सर्वत्र समान रूप से ही प्रवाहित होती है। अभिव्यक्ति भिन्नता के बावजूद अनुभूति की गहनता रूपी जगह समान रूप से पाई जाती है। लोक जीवन एवं संस्कृति की सम्पूर्ण धरोहर का संरक्षण लोक साहित्य से ही संभव है। इस दृष्टि से भारतीय लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध है। लोकगीतों के माध्यम से अनेक भूले–बिसरे ऐतिहासिक पक्षों की जानकारी प्राप्त होती है। देखा जाये तो बघेली लोकगीत पूर्व में जितने उत्साह से गाये जाते थे आज के भूमण्डलीकरण के इस दौर के कोलाहल पूर्ण औद्योगिक प्रगति के युग में वह उत्साह नहीं दिखता। आज का मानव प्रकृति के सम्पर्क में रहकर भी उसके शाश्वत सौन्दर्य के अवलोकन और अनुभूति से वंचित है। मानव की संवेदनशील भावनायें आज अशक्त होती दिखाई देने लगी हैं। पाश्चात्य सभ्यता और तथाकथित आधुनिकता के मोह में हमारी सोच अभिव्यक्ति और भाषा का सहज स्वरूप प्रदूषित हो गया है। कहावतें, मुहावरें और यहाँ तक कि विरासत से जुड़ी सटीक शब्दावली भी लुप्त हो रही हैं। लोक साहित्य उपेक्षित हो रहा है। हम अपनी सभ्यता, संस्कृति और धरती के मूल संस्कारों से वंचित हो रहे हैं। अतः अपनी जड़ों और संस्कृति को जोड़े रखने के लिये लोक साहित्य और उसकी विधाओं के संरक्षण करने की आवश्यकता

है। जहाँ तक बघेलखण्ड के लोक साहित्य और लोकगीतों का प्रश्न है आज भी वह लोकप्रियता बनी हुई है जो पूर्व में थी, पर आधुनिकता का रंग उसमें भी आ गया है। यहाँ के लोक साहित्य के संरक्षण का वक्त अब आ गया है क्योंकि समय का चक्र आधुनिकता के रंग में रंगकर यहाँ के लोक साहित्य को विलुप्त न कर दे, फिर भी यहाँ के विद्वानों व कवियों के बघेली साहित्य में दिये गये सराहनीय योगदान का युगों–युगों तक स्मरण किया जायेगा। आवश्यकता है आज के युवा कवियों, साहित्यकारों को विरासत सम्भालने की। यदि इस पर विचार न किया गया तो बघेलखण्ड का लोक साहित्य और लोकगीतों का अभाव यहाँ की संस्कृति को खो देगा। इसलिए बघेली लोक साहित्य के अक्षय भण्डार के संरक्षण का दायित्व वर्तमान समय के साहित्यकारों को सम्भालना होगा, फिर भी बघेली लोक साहित्य का भविष्य उज्जवल दिखाई दे रहा है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति विशेषांक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सन् 1995 पृ.–25, 127, 141, 152।
- सार संक्षेपिका एवं कार्यवाही विवरण, कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाई– पृ.– 20,22, 35।
- डॉ. अमित शुक्ल का लेख, विन्ध्य वैभव पत्रिका, अंक तृतीय 2009 प्रकाशक : श्रीराम विन्ध्य विकास समिति रीवा, पृ.–14, 15, 45, 46।
- बघेलखण्ड की लोक कलायें दशा व दिशा, डॉ. अमित शुक्ल का लेख छायानट, लखनऊ उत्तरप्रदेश से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका अंक–132 2012, पृ.–6।
- लोक साहित्य की संवेदना भूमि, डॉ. अमित शुक्ल का प्रकाशित लेख, शोध संक्षेपिका, सेमिनार 23–24 अक्टूबर 2010, शासकीय महाराजा कॉलेज, छतरपुर, पृ.–9, 10।
- बघेलखण्ड के लोकगीत, लखन प्रताप सिंह उरगेश, पृ.– 108, 125
- डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, बघेली भाषा और साहित्य, साहित्य भवन इलाहाबाद, पृ.–8, 10, 82, 88, 100, 108, 110, 113, 143, 145, 146, 147, 191, 193, 194, 337, 342, 344, 347।
- चौमासा, अंक 79 संपादक– डॉ. कपिल तिवारी, पृ.–36, 107।
- विन्ध्य के लोकगीत बिरहा– लाल लखन प्रताप सिंह, उरगेश, पृ.–40।
- बघेली लोक रागिनी, भाग–01, भाग–02– डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, पृ.– 36, 40, 48, 61।
- भारतीय लोक साहित्य– श्याम परमार, पृ.–36, 40, 48
- आदिवासियों के लोकगीत– श्री चन्द्र जैन, पृ.– 36, 40, 51
- विन्ध्य प्रदेश के लोकगीत– श्री चन्द्र जैन, पृ.– 38, 40, 48।
- स्वयं का सर्वेक्षण व निष्कर्ष।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

प्रारम्भिक हिन्दी पत्रकारिता और युगीन चेतना

डॉ0 हेमलता सुमन
असि0 प्रोफेसर
नारायण महाविद्यालय, शिकोहाबाद

हिन्दी पत्रकारिता आज विकास के जिस उच्च शिखर पर है, वहाँ से जब हम उसकी प्रारम्भिक स्थिति को देखते हैं तब हमारा ह्रदय असीम सन्तोष और गौरव से अभिभूत हो जाता है। वर्तमान हिन्दी पत्रकारिता हमें विशाल वटवृक्ष की सघन शीतल छाया प्रदान करने वाली प्रतीत होती है जिसकी जड़ों में न जाने कितने पल्लवों को खाद बनकर गलना पड़ा। कितने ही हाथों की श्रम–साधना सीकरों को हरीतिमों के लिए स्वयं को मिटना पड़ा। हिन्दी पत्रकारिता ऐसे ही न जाने कितने ज्ञात–अज्ञात साधकों की कठिन तपस्या का परिणाम है।

जन अभिव्यक्ति के रूप में पत्र–पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी लोकतांत्रिक समाज की व्यवस्था संचालन में पत्र–पत्रिकाओं की शक्तिशाली भूमिका होती है। इसके अभाव में हम गहन अन्धकार में डूबे रहे हैं क्योंकि ज्ञान–विज्ञान, इतिहास दर्शन, राजनीति एवं समाज विज्ञान आदि विषयों को प्रतिबिम्बित करने तथा उन्हें एक मंच प्रदान कर जन सामान्य से सम्बद्ध करने का एक महत्वपूर्ण एवं प्रमुख साधन पत्रपत्रिकाएं ही हैं। इसलिए पत्र–पत्रिकाओं को राज्य के चतुर्थ अवयव की संज्ञा दी गयी है।[1] पत्रकारिता जनसम्पर्क के सशक्त माध्यम के रूप में न केवल प्रभावी भूमिका का निर्वाह करती है वरन् जन–तान्त्रिक शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए उचित वातावरण का निर्माण भी करती है। जो समाज में शीर्षस्थ है और जनजीवन के विभिन्न पक्ष जिनसे नियन्त्रित व संचालित होते हैं उनके समस्त क्रियाकलापों पर भी पत्र–पत्रिकाओं की दृष्टि रहती है इस प्रकार आधुनिक युग में पत्रपत्रिकाएँ विचाार–संघर्षों की सहायक अस्त्र होती हैं।[2]

सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में पत्र–पत्रिकाएँ जनता की पथ प्रदर्शक, शुभ चिन्तक एवं निस्वार्थ साथी की भूमिका निभाती है। उनकी वास्तविक प्रकृति एवं गतिविधियां सामाजिक एवं राजनैतिक भ्रष्टाचार, अन्याय शोषण एवं असमानता के विरूद्ध होती हैं, जो समाचारों, लेखों एवं टिप्पणियों के द्वारा इस विषय में ध्यान आकर्षित करती रहती है। पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले समाचार समाज के सामाजिक संगठन की रूप रेखा प्रस्तुत करते हैं।[3]

पत्रकारिता का फलक इतना व्यापक है कि इसे किसी निश्चित परिभाषा की सीमा में बांधना सम्भव नही है। विभिन्न विद्वानों ने इसकी अपने ढ़ंग से परिभाषाएं दी है।

डॉ. अर्जुन तिवारी ने "एनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेनिका" के आधार पर इसकी व्याख्या इस प्रकार की है।

"पत्रकारिता के लिए अंग्रेजी में जर्नलिज्म" का व्यवहार होता है जो कि उस "जर्नल" शब्द से है जिसका शाब्दिक अर्थ है दैनिक। दिन–प्रतिदिन के क्रिया–कलापों, सरकारी बैठकों का विवरण "जर्नल" में रहता था। 17वीं एवं 18वीं शताब्दी में पीरियोडिकल के स्थान पर लैटिन शब्द "डियूरनल" और "जर्नल" के प्रयोग हुए, 20 वीं शताब्दी में गम्भीर समालोचना और विद्वतापूर्ण प्रकाशन को इसके अन्तर्गत माना गया है। "जर्नल" से बना

"जर्नलिज्म" अपेक्षाकृत व्यापक शब्द है। समाचार पत्रों एवं विविधकालिक पत्रिकाओं के सम्पादन एवं लेखन और तत्सम्बन्धी कार्यों को पत्रकारिता के अन्तर्गत रखा गया। इस प्रकार समाचार पत्रों का संकलन, प्रसारण, विज्ञापन की कला एवं पत्र का व्यावसायिक संगठन पत्रकारिता है। समसामयिक गतिविधियों के संचार के सम्बद्ध सभी साधन, चाहे वे रेडियो हों या टेलीविजन इसी के अन्तर्गत आते हैं"।

हिन्दी शब्द सागर के अनुसार पत्रकार काम या व्यवसाय पत्रकारिता है। श्री खाडिलकर की मान्यता है कि "ज्ञान और विचार शब्दों तथा चित्रों के रूप में दूसरे तक पहुंचाना ही पत्रकला है"।

श्री प्रेमनाथ चतुर्वेदी के शब्दों में "पत्रकारिता विशिष्ट देश काल एवं परिस्थितिगत तथ्यों का अमूर्त, परोक्ष के सन्दर्भ और आलोक में उपस्थित करती है।

पत्रकारिता शब्दकोश में – "जनसूचना, जन–संचार, जन रंजन अथवा जन–साधारण तक समाचार–विचार–सम्प्रेषण हेतु संचालिका माध्यमों (समाचार–पत्र/पत्रिका/आकाशवाणी/दूरदर्शन/ कम्प्यूटर/ इण्टरनेट आदि) के सम्पादन मुद्रण, प्रकाशन, संयोजन, प्रसारण आदि की विद्या या कला को पत्रकारिता माना है।

लेसी स्टेफेस के अनुसार – "जिन बातों की जानकारी आपको नही है उनके बारे में अवगत कराना पत्रकारिता है" हार्बर्ट ब्रूकर ने लिखा है कि – "पत्रकारिता वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने मस्तिष्क में उस दुनिया के बारे में समस्त सूचनाएं संकलित करते हैं। जिसे हम स्वतः कभी नहीं जान सकते।"

जेक्स मैकडानाल्ड के अनुसार – "पत्रकारिता रणभूमि से भी अधिक श्रेष्ठ है, यह व्यवसाय नही व्यवसाय से श्रेष्ठ वस्तु है यह एक जीवन है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है पत्रकारिता समाचारों के संकलन, चयन, विश्लेषण तथा सम्प्रेषण की प्रक्रिया है। पत्रकारिता के तीन उद्देश्य प्रमुख रूप से निकल कर आते हैं–सूचना देना, शिक्षित करना तथा मनोरंजन करना। भारत में आधुनिकता का प्रवेश नवजागरण के साथ हुआ और हमारे अन्दर एक ऐसी चेतना उत्पन्न हुई जिससे पश्चिमी जगत को अधिकाधिक जाने–समझने के लिये हम उत्सुक हो उठे। इसके लिये अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक था। सुधारवादी आन्दोलन के आदि संचालक और भारतीय नवजागरण के उन्नायक राजाराममोहन राय ने इस आवश्यकता को समझा और अंग्रेजी शिक्षा–प्रचार का पक्ष–समर्थन किया। इस प्रकार आधुनिकता के मूल वैशिष्ट्य की समग्रता को पूरी तरह आत्मसात् करने की भूमिका का निर्माण शुरू हुआ। अंग्रेजी शिक्षा ने देश के सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिवेश में परिवर्तन की उपेक्षा उत्पन्न की। उक्त परिवर्तन की अपेक्षा रखने वाले भारतीयों के दो वर्ग थे। उनकी दो स्वतन्त्र दृष्टियाँ थीं। एक वह जिसने आधुनिकता को फैशन के रूप में अपनाया और अंग्रेजियत के रंग में रंगकर भारतीयता को अन्यथा की दृष्टि से देखने लगा। दूसरा वर्ग अपने देश को यूरोपीय जगत के ज्ञान पक्ष से उसकी शिक्षा, राजनीति, अर्थनीति और विज्ञान से आलोकित करने का आकांक्षी था। भारतीय नव जागरण के पुरस्कर्ता इसी वर्ग के थे। वे अंग्रेजियत के पीछे पागल नही थे बल्कि अपनी परम्परा को आधुनिक सन्दर्भ में प्रतिष्ठित करने के लिये उसे एक नयी अर्थवत्ता देना चाहते थे इसके लिये आवश्यक था पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति से अपने को एक हद तक सम्पृक्त करना। इस वर्ग के ज्येष्ठ प्रतिनिधि राजा राममोहन राय थे उनके साथ एक ऐसी स्वस्थ परम्परा आविर्भूत हुई जिसने आधुनिक भारत ही नहीं सम्पूर्ण मानवजाति को उपकृत किया।[4]

भारतवासी ब्रिटिश सरकार की अनुदारता से पीड़ित थे। राजा राममोहन राय ने जिस सुधारवादी आन्दोलन का सूत्रपात किया वह नये–नये सुधारकों और विचारकों का वैचारिक अवलम्ब पाकर विकासमान था। इस प्रकार एक ओर सामाजिक कलुश–प्रक्षालन का महत्वपूर्ण उपक्रम चल रहा था और दूसरी ओर हमारी राजनैतिक चेतना

प्रखर हो रही थी।

राजा राममोहन राय और उनके सहयोगी द्वारिकानाथ टैगोर ने अनुभव किया कि सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक सुधार आन्दोलन की अपेक्षित सक्रियता बनाये रखने के लिये स्वतन्त्र पक्षों की प्राथमिक आवश्यकता है। इसी दृष्टि से उन्होंने अंग्रेजी, बंगला, फारसी और हिन्दी में कई पत्र प्रकाशित किये। भारतीय हिन्दी पत्रकारिता की नींव सन् 1690 में कलकत्ता में पड़ी। प्रारम्भ से ही सुख सुविधा के लिये इसे निरन्तर सजाया–संवारा और आधुनिक साधन–सम्पन्न किया गया। 19वी0 शती में नौकरी धन्धे के उद्देश्य से पश्चिमोत्तर प्रदेश से अनेक हिन्दी भाषा–भाषी यहां आ गये थे। 4 अप्रैल 1823 को ब्रिटिश सरकार ने समाचार पत्र तथा मुद्रण सम्बन्धी नये कानून क्रियान्वित किये थे जो वेलेजली की पुरानी व्यवस्था से भी कठोर थे। इसके अनुसार समाचार पत्र प्रकाशित करने के पूर्व संचालक को भारत सरकार से पत्र प्रकाशन का लाइसेन्स लेना पड़ता था। "कलकत्ते" में "कोलू टोला" नामक मुहल्ले के 37 नम्बर आमड़ातल्ला गली से श्री युगल किशोर शुक्ल ने सन् 1826 ई0 में "उदन्तमार्तण्ड" नामक एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकालने का आयोजन किया और इसके लिये भारत सरकार से लाइसेंस प्राप्त करने की दरख्वास्त दी। 16 जनवरी सन् 1826 को सरकार ने मंजूरी दी।

16 जनवरी 1899 ई0 को बालमुकुन्द गुप्त ने "भारतमित्र" का सम्पादन भार संभाला, संचालन दायित्व भी इन्ही पर था। गुप्त जी चूंकि युग चेतना के प्रति सचेत थे और उनकी जातीय निष्ठा बलबती थी। इसलिये स्वाभाविक था कि उग्र राष्ट्रीयता ही पत्र की नीति बने। गुप्त जी ने "भारत मित्र" के सन्दर्भ में लिखा था–"कि भारत मित्र राजनीतिक पत्र है और इसकी यही पॉलिसी है हिन्दी का प्रचार और राजनीतिक चर्चा इसके प्रधान उद्देश्य हैं और उसी में शरीक होना वह अपना कर्तव्य समझता है।"

लार्ड कर्जन के दिल्ली दरबार में अंग्रेजी पत्र–सम्पादकों के साथ भारत मित्र सम्पादक गुप्त जी भी सम्मिलित हुए थे। 11 अप्रैल 1903 के भारत मित्र में "शिव शम्भू के चिटठे" और "खत की पहेली" (बनाम लार्ड कर्जन (?)) प्रकाशित हुई। गुप्त जी ने मानो लार्ड कर्जन को ललकारते हुए बड़ी साफ भाषा में उनके कुकृत्यों का उद्घाटन किया–

"आप माई लार्ड जब से भारत वर्ष में पधारे हैं बुलबुलों का ही स्वप्न देखा है या सचमुच कोई करने योग्य काम भी किया है खाली अपना ख्याल ही पूरा किया है या यहां की प्रजा के लिए भी कुछ कर्तव्य पालन किया। एक बार यह बातें बड़ी धीरता से मन में विचारियें। आपकी भारत में स्थिति के पांच वर्ष पूरे हो गये हैं अब यदि आप कुछ दिन बने रहेंगे तो सूद में मूलधन समाप्त हो चुका। आप बारम्बार अपने दो अति तुमत्तराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मेमोरियल हाल और दूसरा दिल्ली–दरबार। पर जरा विचारिये तो यह दोनों काम "शो" हुए या ड्यूटी विक्टोरिया हाल चन्द पेट भरे अमीरों के एक दो बार देख आने की चीज होगा। उससे कुछ दरिद्रों का दुख घट जावेगा या भारतीय प्रज्ञा की कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे"।

लार्ड कर्जन जब दूसरी बार गवर्नर जनरल बनकर भारत आये तो उनके स्वागत में "भारत मित्र" ने 26 नवम्बर 1904 को "श्रीमान का स्वागत" शीर्षक सम्पादकीय लेख प्रकाशित किया। कर्जन के पुनः आगमन पर भारतीयों की प्रतिक्रिया को यों प्रस्तुत किया–"इस समय भारतवासी यह सोच रहे हैं कि आप क्यों आते हैं। यदि भारतवासियों का वश चलता तो आपको न आने देते और आप का वश चलता तो कई सप्ताह पहले आ विराजते। हिन्दुस्तान को श्रीमान स्वयं ही समझते हैं। विलायत वाले समझते तो क्या समझते विलायत में उतना बड़ा हाथी

कहां जिस पर वह चंवर छत्र लगाकर चढ़े थे, फिर कैसे समझा सकते कि वह किस उच्च श्रेणी के शासक हैं।"

कर्जन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के अपने भाषण में पूर्व लोगों को मिथ्यावादी तथा सत्य के अनादर करने वाला कहा था। यह भारत की नैतिकता पर प्रहार था जिसका भारतमित्र ने उत्तर दिया था–"जो सत्य प्रियता इस देश को सृष्टि के आदि से मिली है, जिस देश का ईश्वर सत्यसंज्ञानमनन्तम् ब्रह्म है वहां के लोगों को साथ में बुला के ज्ञानी और विद्वान का चोला पहन कर उनके मुंह पर झूठा और मक्कार कहने लगे। विचारिये तो यह कैसे अधःपतन की बात है।

"माई लार्ड! जब आपने अपने शासक होने के विचार को भूलकर इस देश की प्रजा के हृदय में चोट पहुंचायी है तो दो बातें पूँछ लेने में शायद कुछ गुस्ताखी न होगी। .....यह देश भी विलायत की भांति स्वाधीन होता और यहाँ के लोग ही यहां के राजा होते तब आपकी बहादुरी होती। स्मरण रखिये, उन दिनों को कि जब अंग्रेजों के देश पर विदेशियों का अधिकार था। उस समय आप के स्वदेशियों की नैतिक दशा क्या थी। यह वह देश है कि हजार साल पराये पांव के नीचे रहकर भी सत्यता से च्युत नही हुआ है..... यदि आपका यूरोप या इंगलैण्ड दस साल भी पराधीन हो जाये तो आप को मालूम पड़े कि श्रीमान के स्वदेशीय कैसे शकवादी और नीति परायण है।.....पराधीनता की सबसे जी में बड़ी भारी चोट होती है।..... भी लार्ड आप देश की प्रजा को नहीं चाहते, देश की प्रजा आपको नहीं चाहती।"

21 अक्टूबर 1905 को भारत मित्र में बंग विच्छेद शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ। "आप के शासनकाल में बंग विच्छेद इस देश के लिये अन्तिम विषाद और आपके लिए अन्तिम हर्ष है।.....यह बंग विच्छेद, बंग विच्छेद नही। बंग निवासी इससे विछिन्न नही हुए, वरंच और युक्त हो गये। बंगभूमि ऋषि मुनियों के समय की आर्य भूमि बनी हुयी थी किसी अपूर्व शक्ति ने उसको एक राखी से बांध दिया था। बहुत काल के पश्चात भारत सन्तान को होश हुआ कि भारत की मिटटी वन्दना योग्य है। इसी से वह एक स्तर से "वन्देमातरम्" कहकर चिल्ला उठे। बंगाल के टुकड़े नही हुए वरंच भारत के अन्यान्य टुकड़े भी बंग देश से आकर चिमटे जाते हैं। सम्पादक ने घोषणा की थी कि "भारतवासियों के जी को यह बात जम गई कि अंग्रेजों से भक्तिभाव करना वृथा है, प्रार्थना वृथा है और उनके आगे रोना गाना वृथा है। दुर्बल की वह नही सुनते।"

अपने दौर्बल्य–निरसन के लिये भारतवासियों ने शक्ति की उपासना शुरू की। उग्र जातीय चेतना से आतंकित होकर पूर्वी बंगाल के लैफ्टीनेण्ट गवर्नर सर वैमफील्ड फुलर ने विशिष्ट नागरिकों को धमकी दी थी कि सम्भव है कि खून खराबी करनी पड़े।

"हितवार्ता" सन् 1903 में प्रकाशित हुई जिसके सम्पादक पं काली प्रसाद जी थे। 1903 में ही पं0 गोविन्द नारायण मिश्र के सम्पादकत्व में सारस्वत वर्चस्व नामक मासिक पत्र प्रकाशित हुआ था। सन् 1904 में शिवचन्द्र जी भारतीय ने कलकत्ते के रामप्रेस की ओर से मासिक "वैश्योदकारक" प्रकाशित किया जिसके संचालन राम लाल नेमाणी थे। ये पत्र वैश्व जाति को कुसंस्कारों और जड़ता से मुक्ति दिलाने की कामना से निकाला गया था। अपनी रूढ़ि प्रिय जाति को सम्बोधित करते हुए श्री गुप्त जी ने अपील की कि "आप को जो कोई भी भाई शिक्षा की कड़वी औषधि दे उसे आप अपना सच्चा भाई समझें अपनी भूल सुधारकर उन्नति के कार्य पर चलें।"

1920 में प0 बालकृष्ण भट्ट और पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वदेशप्रेम और राष्ट्रीयता को पत्र "हिन्दी प्रदीप" के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाया। यह पत्र पराधीन भारत के लिए असीम वेदना से पूर्ण था। उसने लोगों के सोये हुए प्राणों में जान फूंक दी। श्री बाल मुकुन्द गुप्त, श्री मातादीन शुक्ल, श्री रूपनारायण पाण्डे,

आचार्य शिवपूजन सहाय, बाल कृष्ण नवीन, मुंशी प्रेमचन्द्र, श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी इत्यादि ने हिन्दी पत्रकारिता को नये आयाम दिये। इनके द्वारा सम्पादित पत्र पत्रिकाओं में भारतमित्र, हितवादी, माधुरी, चांद, कल्याण मतवाला, मालव–मयूर, सरस्वती, हंस, प्रताप आदि अत्यधिक महत्वपूर्ण पत्र रहे जिन्होंने भारतीय जनों में नवीन युगीन चेतना का संचार किया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- त्रिपाठी कमलापति : पत्र और पत्रकार, पृ0 6
- ब्रेडली, जान पी द्वारा संकलित, द इण्टरनेशनल डिक्शनरी ऑफ थॉटस, पृ0 517
- लिपमेन वाल्टर : पब्लिक ओपीनियन, पृ0 365
- हिन्दी पत्रकारिता के कीर्तिमान, पृ0 106
- श्री विजेन्द्र नाथ बैनर्जी के लेख– हिन्दी के समाचार पत्र से उद्धृत
- हिन्दी पत्रकारिता के कीर्तिमान, पृ0 108
- हिन्दी पत्रकारिता के कीर्तिमान, पृ0 110
- हिन्दी पत्रकारिता के कीर्तिमान, पृ0 108
- हिन्दी प्रदीप (प्रथम) अगस्त, सितम्बर 1901

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

हिन्दी उपन्यासों में व्यंग्य की परम्परा का मूल्यांकन

डॉ. मीना सिंह
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी
जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर (उ.प्र.)

हिन्दी उपन्यास का आरम्भ बंगला व अंग्रेजी के उपन्यासों के अनुवाद से तथा उनसे प्रेरणा प्राप्त कर मौलिक लेखन से होता है। प्रारम्भ में ऐतिहासिक, तिलस्मी–ऐयारी व जासूसी उपन्यासों की रचना हुई। किन्तु शनैः शनैः उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को रेखांकित किया गया। इन विसंगतियों पर उपन्यासों के माध्यम से व्यंग्य किया गया। बालकृष्ण भट्ट और लज्जाराम मेहता आदि के उपन्यासों में समाज की विकृतियों पर व्यंग्य दिखाई देता हैं। प्रेमचन्द का आगमन हिन्दी उपन्यासों के लिए एक मील का पत्थर है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में व्याप्त अव्यवस्थाओं पर खूब व्यंग्य किया है। जैसे गोदान में वे किसानों का शोषण करने वाले जमींदारों पर इस तरह व्यंग्य करते हैं–''कौन कहता है हम तुम आदमी हैं। हममें आदमियत कहां। आदमी वह है जिसके पास धन है, अख्तियार है, इल्म है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर एक–दूसरे को देख नहीं सकते। एका का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे, प्रेम तो संसार से उठ गया।''[1] इसी तरह से प्रेमचन्द विधवा–विवाह, बाल–विवाह, हरिजनों का प्रश्न, पूंजीपतियों का प्रभाव और पराधीनता आदि अनेक सामाजिक सरोकरों पर व्यंग्य करते हैं।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यासों में व्यंग्य अनेक जगह नजर आता है। ''चंद हसीनों के खुतूत', 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', 'शराबी' आदि उपन्यासों में समाज की बुराइयों को, उसकी नंगी सचाई को, बिना किसी लाग–लपेट के बड़े ही साहस के साथ, किन्तु सपाटबयानी के रूप में प्रस्तुत किया।''[2]

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने अपने व्यंग्य प्रहार कविता के साथ–साथ उपन्यासों में भी किये हैं। 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकिरहा' उपन्यासों में समाज के परित्यक्त, नगण्य और दुर्लक्षित व्यक्तियों के चरित्र की पहचान कर उनकी विसंगतियों पर व्यंग्य किया गया है। समाज में दबे कुचले चरित्रों को अपने उपन्यास का पात्र बनाकर कथित सभ्य समाज के आडंबरों एवं दिखावों पर व्यंग्य का तमाचा मारा है। डॉ. हरिशंकर दुबे कहते हैं–''निराला के व्यंग्य में आक्रोश के साथ गहरी मानवीय संवेदना का स्वर है।''[3]

जी. पी. श्रीवास्तव के हास्य व्यंग्य उपन्यास भी चर्चित रहे। 'भड़ाम सिंह शर्मा' तथा 'लतखोरी लाल' आदि उपन्यास व्यंग्य की दृष्टि से विशिष्ट हैं। इनके अलावा डॉ. रांगेय राघव का 'हुजूर' उपन्यास अंग्रेजी सत्ता की विलासिता व चाटुकारिता पर व्यंग्य करता है। गांधी जी के सपनों का भारत कैसे ध्वस्त किया जाता है, बेईमानी, चोरी और भ्रष्टाचार कैसे पनपते हैं? अपने उपन्यास 'चांदी का जूता' में विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त इसे व्यंग्य के माध्यम से बहुत ही स्पष्ट तरीके से बयां करते हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व तो उपन्यासों में व्यंग्य मंद गति से दिखाई देता है। परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात जब मोहभंग की स्थिति आती है तो राजनीतिक स्थितियाँ व्यंग्य के लिए खूब उर्वरा होती हैं और व्यंग्य

उपन्यासों का सिलसिला उसके बाद खूब वृहद् होता है। हरिशंकर परसाई जैसे व्यंग्य रचनाकार का उपन्यास 'रानी नागफनी की कहानी' समाज, शिक्षा, राजनीति और प्रशासन में व्याप्त अन्तर्विरोधों की गहराई से पड़ताल कर उन्हें अनावृत करता है। आंचलिक उपन्यासों के अग्रज रचनाकार बाबा नागार्जुन ने ''हीरक–जयंती में राजनीतिक भ्रष्टता, सामाजिक अधःपतन, साहित्य व पत्रकारिता की चाटुकारिता आदि का सटीक वर्णन कर व्यंग्य के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है।''[4]

इनके अलावा हिमांशु श्रीवास्तव का 'कथा सूर्य की नई यात्रा', श्रीप्रवासी का 'बत्तियां गुल हैं', पदमा अग्रवाल का 'मैं मिनिस्टर का बेटा हूँ' और डॉ. सत्य प्रकाश सेंगर का 'मिनिस्टर की डायरी' आदि व्यंग्य उपन्यासों की रचना हुई।

सन् 1968 में श्रीलाल शुक्ल का रागदरबारी उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास व्यंग्य की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कृति है। रागदरबारी उपन्यास अपने आप में एक मील का पत्थर है व्यंग्य उपन्यासों तथा व्यंग्य की कड़ी में। भ्रष्ट राजनीति के जीवाणु गांव–कस्बों तक में घर कर गये हैं। समाज के सभी पक्षों पर श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य की बहुत गहरी चोट करते हैं। न्याय प्रणाली एवं अदालतों के फैसलों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं–''पुनर्जन्म के सिद्धान्त की ईजाद दीवानी की अदालतों में हुई है, ताकि वादी और प्रतिवादी इस अफसोस को लेकर न मरे कि उनका मुकदमा अधूरा ही पड़ा रहा। इसके सहारे वे सोचते हुए चैन से मर सकते हैं कि मुकदमें का फैसला सुनने के लिए अभी अगला जन्म तो पड़ा ही है।''[5] जो व्यंग्य उपन्यास धारा रानी नागफनी की कहानी से निकली वह रागदरबारी ने प्रौढ़ बना दी। डॉ. शेरजंग गर्ग कहते हैं–''शिवपाल गंज नामक गांव तो मात्र एक बहाना है, जिसके माध्यम से उपन्यासकार द्वारा स्वतंत्रता के बाद पनपी गैर–जिम्मेदारी, कर्तव्यों के प्रति उपेक्षा और सत्ता हथियाने के लिए किये जाने वाले समस्त चालू और टालू क्रियाकलापों की कलई खोलकर रख देने की एक सफल कोशिश मिलती है।''[6] समीक्षक ये मानते हैं की रागदरबारी उपन्यास के बाद व्यंग्य के क्षेत्र में ऐसा सशक्त तथा बेजोड़ उपन्यास नहीं देखने को मिलता है। किन्तु इस उपन्यास के पश्चात व समाज तथा राजनीति में बढ़ती अव्यवस्थाओं ने व्यंग्य, व व्यंग्य उपन्यास लिखने के लिए रचनाकारों को खूब प्रेरित किया। अशोक शुक्ल के उपन्यास 'प्रोफेसर पुराण' तथा 'हड़ताल हरिकथा' में उच्च शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों को बहुत ही तीखी व गहरी अभिव्यंजना के साथ प्रस्तुत किया गया है। प्रोफेसर पुराण में वे नौकरी की व्याख्या इस प्रकार करते हैं–''सज्जनों, कंचन और कामिनी के मोह से मुक्त हो पाना सरल है, किन्तु नौकरी–प्राप्ति की मनमोहक कल्पना से मुक्त हो पाना असंभव है। बड़े–बड़े त्यागी–धर्मात्मा, संत–महंत नौकरी की आशामात्र से अपना व्रत त्याग सिफारिश खोजने लगते हैं। जिस प्रकार गुरू के बिना डिवीजन नहीं मिलता, पत्नी के बिना पुत्र नहीं मिलता....उसी प्रकार सिफारिश के बिना नौकरी नहीं मिलती।''[7] इसके बाद तो हिन्दी व्यंग्य उपन्यासों की एक लम्बी कतार दिखाई देती है। इनमें प्रमुख हैं – डॉ. श्याम सुन्दर घोष का 'एक उलूक कथा', बदी उज्जमा का 'एक चूहे की मौत', हंसराज रहबर का 'किस्सा तोता पढ़ाने का', डॉ. नरेन्द्र कोहली के 'पाँच एब्सर्ड', 'आश्रितों का विद्रोह', आबिद सुरती का 'काली किताब', शंकर पुणतांबेकर का 'एक मंत्री स्वर्ग लोक में', प्रदीप पंत का 'महामहिम', के. पी. सक्सेना का 'गुल सनोबर कथा', डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी का 'मंत्री जी के निजी सचिव की डायरी', मनोहर श्याम जोशी का 'नेताजी कहिन', सुदर्शन मजीठिया का 'कागजी सुल्तान', मुद्राराक्षस का 'प्रपंचतंत्र', यशवंत व्यास का 'कॉमरेड गोडसे', ज्ञान चतुर्वेदी के 'बारहमासी' व 'मरीचिका' आदि हैं। हिन्दी व्यंग्य उपन्यासों में राजनीति की भ्रष्टता एवं समाज

में व्याप्त धर्म, शिक्षा, अर्थ की अनैतिकता तथा असंगतता पर प्रहार किया गया है। ये उपन्यास उपन्यासों के शास्त्रीय व परम्परागत ढांचे से पृथक हैं और इनका उद्देश्य समाज में व्याप्त विद्रूपताओं को उद्घाटित करना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रेमचन्द. 'गोदान', पल्लव प्रकाशन, मालीवाड़ा, दिल्ली–110006, प्रथम संस्करण–1999, पृ.–22
- डॉ0 नगेन्द्र व डॉ0 हरदयाल, सं., 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', प्रकाशन मयूर, ए–95, सेक्टर–5, नौएडा–201301, सैंतीसवां पुनर्मुद्रण संस्करण–2010, डॉ. गोपाल राय, 'छायावाद युग : गद्य साहित्य', पृ.–562
- डॉ0 हरिशंकर दुबे, 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य', विकास प्रकाशन, 311–सी. विश्व बैंक बर्रा, कानपुर–208027, प्रथम संस्करण–1997, पृ.–50, 92
- श्रीलाल शुक्ल, 'रागदरबारी', राजकमल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, 1–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली–110002, बारहवां संस्करण–2007, तीसरी आवृति–2011, पृ.–33
- डॉ0 शेरजंग गर्ग, 'व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न', आलेख प्रकाशन, वी–8, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032, तीसरा संस्करण–2004, पृ.–133
- अशोक शुक्ल, 'प्रोफेसर पुराण', विवेक प्रकाशन, 592–बी. नेहरू गली शाहदरा, दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण–1976, पृ.–15

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में चिन्तन के विविध आयाम

डॉ0 कमलेश सिंह
6ए, कटरा रोड, इलाहाबाद–211002

जिस प्रकार छायावाद के उत्तर युग में कविता क्षेत्र में कुछ नवीन प्रवृत्तियाँ पनपीं उसी प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युग में आख्यान साहित्य में भी मनौवैज्ञानिक यथार्थवाद, घोर नग्न यथार्थवाद, अवचेतनवाद, प्रतीकवाद की प्रवृत्तियों का समावेश हुआ।''[1] प्रेमचन्द के बाद का उपन्यास साहित्य प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यास साहित्य से निश्चित तौर पर उत्तम है एवं वाह्य शिल्प विधान में प्रेमचन्द के साहित्य से टक्कर लेते हुए आगे तक गया है। प्रेमचन्द के उपरान्त हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से चलता दिखाई पड़ता है जिन्हें स्थूल रूप से तीन दशकों में बाँटा जा सकता है। 1950 ई0 तक के उपन्यास, 1950 से 1960 तक के उपन्यास तथा साठोत्तरी उपन्यास। पहला दशक मुख्यतः फ्रायड तथा मार्क्स के विचारों से प्रभावित है तो दूसरा दशक 'प्रयोगात्मक विशेषताओं' तथा तीसरा 'आधुनिकतावादी विचार धारा से।

यहाँ पर एक सवाल उठता है कि आखिर क्या कारण था कि प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों से हट करके उपन्यासकार फ्रायड तथा मार्क्स के विचारों से प्रभावित उपन्यास लिखने लगे? आलोचक इस सवाल के जवाब में राष्ट्रीय आन्दोलन के आरोह अवरोह की बात करते हैं। तो कुछ आलोचक आर्थिक कारणों की खोज करते हैं। लेकिन जहाँ तक मेरा विचार है कि प्रेमचन्द चाहते हुए भी सामाजिक आलोचना के भय से समाज–सुधार की दिशा में क्रान्तिकारी पग नही उठा पाए। उदाहरणार्थ प्रेमचन्द ने अन्तर्जातीय विवाह की समस्याओं को उठाया तो है परन्तु सोफिया–विनय, सकीना–अमरकान्त, मनोरमा–चक्रधर आदि प्रेमी–युगल के प्रणय सम्बन्धों को परिणय में बदलने से पूर्व ही (सामाजिक आलोचना के भय से) वे प्रेमी प्रेमिका की मृत्यु या किसी बहाने से उन्हें एक दूसरे से अलग कर देते हैं। हाँ गोदान में अवश्य मातादीन सिलिया का मिलते दिखाते हैं। इधर मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों को देखिए इन उपन्यासों में सामाजिक आलोचना का भय नही है। अज्ञेय के उपन्यास में शेखर तथा शशि के सम्बन्धों में कोई सामाजिक भय आड़े नहीं आता। मेरा कहने का मतलब यही है कि सामाजिक आलोचना के भय से निकलने की तड़पन ही उपन्यासकारों को व्यक्तिवादी तथा मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों की तरफ ले गई जहां कोई सामाजिक भय नहीं है। तभी तो जैनेन्द्र के उपन्यास को देखकर प्रेमचन्द ने कहा था कि आगे के उपन्यास मनोवैज्ञानिक होंगे। प्रेमचन्दोत्तर कालीन लेखकों की रचनाओं को एक निश्चित प्रवृत्ति के अन्तर्गत रखना यद्यपि कठिन व्यापार है परन्तु प्रवृत्यात्मक वर्गों में विभाजित करके इसके विकास की परम्परा को समझ सकते हैं –

I- मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास
II- सामाजिक उपन्यास
III- साम्यवादी उपन्यास
IV- ऐतिहासिक उपन्यास
V- आंचलिक उपन्यास
VI- प्रयोगशील परम्परा के उपन्यास
VII- आधुनिकता बोध के उपन्यास

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में वाह्य संघर्ष ने व्यक्ति के अन्तः संघर्ष का स्थान ले लिया। उपन्यासकार अपनी अनुभूति के बल पर व्यक्ति मानस में होने वाले संघर्ष को अंकित करने लगा। इस दिशा में फ्रायड, युंग, एडलर, एलिस हेवलाक के सिद्धांत तथा मान्यताएँ इनकी पथ प्रदर्शक बनीं। उपन्यासकार मनोविज्ञान की नाना प्रणालियों के माध्यम से मानव मन की गहराई नापने लगा। इस धारा के प्रमुख उपन्यास कार हैं–

जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, डॉ0 देवराज आदि।

फ्रायड से प्रभावित होकर जिस कथा साहित्य की रचना की गयी, उसकी पृष्ठभूमि जैनेन्द्र पहले ही प्रस्तुत कर चुके थे। जहां प्रेमचन्द ने समाज के साथ व्यक्ति के एकीकृत होने के प्रश्न को ज्यादा महत्व दिया, वहां जैनेन्द्र ने व्यक्ति की गुम होती हुई पहचान को उभारकर सामने रखा। ''उनके उपन्यासों में अनमोल विवाह या दहेज प्रथा जैसी समस्याएँ नहीं हैं– बल्कि विवाह स्वयं एक समस्या है''[2] क्योंकि सारी अनिश्चिताएँ उसके बाद ही प्रारम्भ होती हैं जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों का विषय भारत के गाँवो को न बनाकर नगरों को बनाया है तथा उनमें नागरिक जीवन की मनौवैज्ञानिक समस्याओं को चित्रण किया है। कुछ आलोचकों का कहना है कि जैनेन्द्र ने हिन्दी जगत में शरत के अभाव की पूर्ति की है। इनके 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' तथा 'कल्याणी' में नारी–पुरुष के प्रेम की समस्या का मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र की त्रुटि यह है कि वे अपने पात्रों को पहेली बना कर छोड़ देते हैं तथा पाठक उस मनौवैज्ञानिक पहेली को सुलझाने के असफल प्रयत्न में उलझा रह जाता है। दार्शनिकता के कारण कही–कहीं पर जैनेन्द्र की शैली अत्यन्त दुरूह तथा थका देने वाली बन पड़ी है। वस्तुत जैनेन्द्र प्रेमचन्द के उपरान्त हिन्दी उपन्यास को विशेष–व्यक्तित्व प्रदान करने वाले तथा मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की परम्परा के पुरस्कर्त्ता कलाकार है।

सामाजिक समस्याओं पर लिखने वाले उपन्यासकारों में उग्र, चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, अमृतलाल नागर का नाम प्रमुख है। साहित्य में जोश की दुहाई देने वाले तथा सुधार की भावना में लिखने की प्रतिज्ञा करने वाले उग्र ने घासलेटी साहित्य को सृजा है। भगवतीचरण वर्मा उनकी कृतियाँ हैं– 'चित्रलेखा', 'पतन', 'तीन वर्ष', 'आखिरी दाँव', 'भूले–बिसरे चित्र', 'सबहि नचाक्त राम गोसांई' आदि। 'चित्रलेखा' उनका प्रतिष्ठ उपन्यास है जिसमें पाप–पुण्य की समस्या नाटकीय शैली में है।

राहुल सांकृत्यायन के 'सिंह – सेनापति', 'वोल्गा से गंगा तक', 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'प्रार्टी कामरेड', आदि उपन्यास साम्यवादी कोटि में आते हैं। यशपाल के उपन्यासों में युग–जीवन के संघर्ष का वर्णन है। वे वर्तमान समाज की जर्जर मान्याताओं के खोखलेपन को यर्थाथवादी दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। इस यर्थाथवाद के साथ–साथ वे रोमानी पुट भी देते है जो कि प्रायः अस्वाभाविक सा लगता है। यशपाल की इस प्रवृत्ति को कुछ आलोचकों ने राजनीतिक रोमांस की संज्ञा दी है। नगार्जुन के प्रमुख उपन्यास है–'वरुण के बेटे' तथा 'दुख–मोचन' आचंलिक उपन्यास 'वलचनामा' में मध्य वर्गीय किस्म की कहानी है। 'बाबा वटेसर नाथ' में जमीदारों के शोषणात्मक हथकंडी का उल्लेख है। 'दुख मोचन' में साधन हीन गाँवों में जागृत नई चेतना को दिखाया गया है। रांगेय राघव के 'घरौदा', 'सीधा–साधा रास्ता', 'विशाद मठ' तथा 'कब तक पुकारूँ', आंचलिक उपन्यास है, जिनमें वर्ग–वेशम्य तथा आर्थिक शोषण मुख्य विषय है। भैरव प्रसाद गुप्त के 'मसाल', 'गंगा मैया' तथा 'सती मैया का चौरा' नामक उपन्यासों में मार्क्सवादी सिद्धान्तों के आधार पर वर्ग–संघर्ष का चित्रण है। अमृत राय के उपन्यासों 'बीज', 'नागफनी का देश' तथा 'हाथी में दांत' में साम्यवादी चेतना है। राजेन्द्र यादव के 'प्रेत बोलते हैं', (सारा आकाश), 'उखड़े हुए लोग', 'कुलटा' तथा 'शह और मात', 'मुखर चिन्तन' उपन्यास मिलते हैं।

इस अवधि में हिन्दी उपन्यास के विकास में इतिहास सम्बन्धी नये दृष्टि कोण का समावेश हुआ। इस नये दृष्टिकोण को ग्रहण करने वालों ने वृन्दावन लाल वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव तथा चतुर सेन शास्त्री प्रमुख हैं। वृन्दावन वर्मा की ख्याति के आधार उनके 'विराट की पदिमिनी', 'झांसी की रानी', 'कचनार', 'मृगयननी', 'अहिल्याबाई', 'भुवन–विक्रम' आदि ऐतिहासिक उपन्यास है। इनमें 'झांसी की रानी' एवं 'मृगनयनी' मुख्य हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट

की आत्म कथा' तथा 'चारू चन्द्र लेख' ऐतिहासिक उपन्यास है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में लेखक ने मध्यकालीन जड़ता पर प्रहार करते हुए उसे आधुनिक सम्पृक्त किया है।

आंचलिक उपन्यास–फणीश्वर नाथ 'रेणु के मैला आँचल' के प्रकाशन के पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' प्रकाशित हो चुका था। इसमें आंचलिक का रंग होने पर भी इसे आंचलिक नहीं कहा गया क्योंकि गांव की थीम पर मार्क्सवादी थीम थोपी गई है या उपन्यास का भयानक स्वयं विकसित न होकर पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार चला है। रेणु तथा प्रेमचन्द दोनों के उपन्यासों में ग्राम–जीवन है तो प्रेमचन्द के उपन्यास आंचलिक क्यों नहीं? आंचलिक इसलिए नहीं है कि ग्रामांचल की प्रधानता नहीं है जो रेणु में है। रेणु के 'मैलां–आँचंल' तथा 'परती–परिकथा' में ग्रामांचलों के जितने विशद् तथा सवाक् चित्र देखने को मिलते हैं, उतने अन्य तथाकथित आंचलिक उपन्यासों में नहीं।

कविता के समान उपन्यास के क्षेत्र में भी कुछ नवीन प्रयोग किए गये। धर्मवीर भारती के 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की अलग–अलग कहानियों को एक सूत्रात्मकता का रूप देने का प्रयास किया गया है। सर्वेश्वर, नरेश मेहता, शिवप्रसाद सिंह, गिरधर गोपाल तथा दर्द आदि ने शिल्प–विधान की दृष्टि से इस क्षेत्र में नवीन प्रयोग किए हैं। रूद्र जी ने 'बहती गंगा' में 17 कहानियों के द्वारा काशी के 200 सालों के इतिहास की झांकी दिखलाई है। गिरधर गोपाल में 'चाँदनी के खण्डर' में केवल 24 घण्टों की घटनाओं को उपन्यास का विषय बनाया है। ''ग्यारह सपनों का देश'' कई लेखकों द्वारा लिखा गया है। सर्वेश्वर के 'सोया हुआ जल' में एक सराय में ठहरे यात्रियों की रात भर की जिदंगी का वर्णन है। निश्चय ही ये नवीन प्रयोग है।

औद्योगिकरण, बौद्धिकता के अतिरेक, यन्त्रीकरण तथा अस्तित्ववादी पाश्चात्य विचारधारा के फलस्वरूप आधुनिकता की जो स्थिति उत्पन्न हुई है उसका प्रतिबिम्ब साहित्य की अन्य विचारों के समान उपन्यास पर भी पड़ा। शास्त्रहीन समाज, अनिश्चय की स्थिति में लटके हुए इंसान तथा आत्म–निर्वासन की अभिव्यक्ति देने की पहल (मोहन राकेश) ने अपने उपन्यास 'अंधेरे बन्द कमरे', (1961) में की। निर्मला वर्मा का 'वे दिन' आधुनिक संवेदना से सम्पन्न उपन्यास है। पश्चिम के अर्थहीन परिवेश में जिस छोटे सुख की तलाश इस उपन्यास में की गई है, वह आज के संदर्भ में गैर–मौजूंद नहीं लगती। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई में' समलैंगिक यौन सुख में लिप्त स्त्रियों की कहानी है। यह अपने कथ्य तथा शैली की दृष्टि से अपनी कोटि का अलग उपन्यास है। श्री कान्त वर्मा कृत 'दूसरी बार' महेन्द्र भल्ला कृत 'एक पति के नोट्स' कमलेश्वर कृत 'डाक–बगंला', आदि उपन्यास भी आधुनिकता के झोंके में लिखे गये हैं–ठीक उसी प्रकार जैसे मार्क्सवादी झोंके में लिखी गई रचनाएं। ''आज के जीवन सत्य की आंशिक झलक देते हुए भी इन्हें चुकी सम्भावनाओं के उपन्यास कहा जायेगा। आधुनिकता के कुछ चुनिन्दा नुस्खों, अस्तित्ववादी दर्शन के कुछ मुहावरों, कामू, काफ्का की भंगिमाओं के आधार पर लिखे गए इन उपन्यासों को देखने पर निराशा ही हाथ लगेगी। इनमें मोहन राकेश का 'अंधेरे बन्द कमरे' ही ठीक–ठिकाने का उपन्यास माना जायेगा। अपनी विषयवस्तु तथा तटस्थता में 'मछली मरी हुई' भी विशिष्ट है।' नरेश मेहता के 'यह पथ बन्ध था' में मूल्यों के प्रति निष्ठावान व्यक्तियों के टूटने तथा टूटे मूल्यों के आधार पर नए मूल्यों की कल्पना का वर्णन है लेकिन रोमांस से न मुक्त हो पाना त्रुटि है। श्री लाल शुक्ल के रिपोतोर्ज शैली में लिखे 'राग–दरबारी' उपन्यास में स्वतंत्र देश की नारी के रूप में जीवन्त नवीन व्यवस्थाओं का गहरा माखौल उड़ाया गया है। उसे ऐंठी हुई आधुनिकता कहा जा सकता है लेकिन पुनरावृत्ति इस रचना की दुबर्लता है। आधुनिक बोध की इस परम्परा में 'लाल टिन की छत' (निर्मल वर्मा) तथा 'आपका बंटी' (मन्नू भंडारी) भी प्रसिद्ध है। 'आपका बंटी' में पति–पत्नी के दो बन्द व्यक्तित्वों के दुष्परिणाम (तलाक) के

भागी (संतान) बंटी को दिखाया गया है। यज्ञदत्त शर्मा ने भारतीय जनता की विकासोन्मुखी निर्माण–चेतना तथा उसके संघर्ष–परायण–जीवन को केन्द्र बनाकर कई उपन्यास लिखे हैं जिनमें प्रमुख है– 'इंसान', 'निर्माण–पथ', 'बदलती राहें' राजस्थानी जीवन तथा चेतना को आधार बनाकर या यादवेन्द्र शर्मा ने 'पथहीन', 'दिया जला', 'गुनाहों की देवी', उपन्यास लिखे हैं। शैलिश मटियानी का 'बोरी बली से बेरी बन्दर' नामक उपन्यास में बम्बई की चकाचौंध की आड़ में पलने वाले कुत्सित जीवन का चित्रण है। केलकर का उपन्यास 'त्रिपुर सुन्दरी' उपन्यास क्षेत्र में एक नई दिशा का उद्घाटन करता है। इसमें अध्यात्म तथा मनोविज्ञान का सुंदर ताना–बाना बुना गया है। इन उपन्यासों के अतिरिक्त भी उपन्यासकारों की एक लम्बी कतार है जिसमें भीष्म–साहनी (तमस), रामकुमार भ्रमर, कृष्ण बलदेव, गिरिराज किशोर (जुगलबन्दी), कृष्णासोवती (डार से बिछुड़ी), उषा प्रियवंदा (पचपन खंभे लाल दिवारें), लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदम्बा प्रसाद (मुर्दाघर), आदि नाम उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विभिन्न प्रयोगों की लम्बी श्रृखंला के उपरान्त ''आज हिन्दी उपन्यास साहित्य का केवल पाट ही चौड़ा नहीं हुआ प्रत्युत उसकी सृष्टि भी तलस्पर्शी हो गई है। आज वह मानव को उसके पूर्ण आयामों में प्रस्तुत कर रहा है और जीवन की समस्याओं के मूल को चित्रित कर रहा है।'' उसमें विभिन्न प्रसंगों, घटनाओं और पात्रों की दृष्टि इतनी यथार्थ तथा नैसर्गिक है कि पाठकों को उन्हें विश्वसनीय तथा सत्य न मानने का कोई कारण ही नहीं। इस प्रकार अत्यल्प समय में विकसित उपन्यास साहित्य उत्कृष्ट स्थान ग्रहण कर चुका है, यह सुखद परिणति है। परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सस्ते मनोरजंन तथा प्रचार भावना से लिखा तथा कथित लोकप्रिय लेखकों–गुलशन नन्दा, दत्त भारती तथा गुरूदत्त आदि की रचनाओं को उपन्यास की परिधि में लेना उपन्यास की मूल–वाक्यों को न समझना है। वस्तुतः इन लेखकों के उपन्यासों की बिक्री अधिक होने पर भी उनके साहित्य गुणों का अभाव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' – डा0 शिव कुमार मिश्र
- 'हिन्दी उपन्यास की यात्रा' – डा0 देशराज भाटी
- 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' – डा0 नगेन्द्र
- 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' – डा0 गणपति चन्द्र गुप्त

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

प्रेमचन्द की कहानियों के स्त्रीपात्र : एक अनुशीलन

डॉ. महेश सिंह यादव
प्रवक्ता : हिन्दी
आर.जी.एन.पी. कालेज, राजा का ताजपुर, बिजनौर

प्रेमचन्द उपन्यास सम्राट ही नहीं, कहानी सम्राट भी हैं। उनका व्यक्तित्व एक अद्‌भुत क्षमता से परिपूर्ण है। समाज की उचित चिन्ता उन्होंने भरपूर रूप से की है। प्रेमचन्द ने समाज के अंग–अंग की व्याख्या की है। वह आदर्श और यथार्थ के सन्धि द्वार पर खड़े हैं। ''कथा सम्राट प्रेमचन्द विश्व के उन विशिष्ट कथाकारों की श्रेणी में गिने जाते हैं, जिन्होंने समाज के सभी वर्गों–अमीर–गरीब, स्त्री–पुरूष, बच्चे–बूढ़े, जमींदार –किसान, साहूकार, कर्जदार आदि के जीवन और उनकी समस्याओं को यथार्थवादी धरातल पर बड़ी ही सीधी–सादी शैली और सरल भाषा में प्रस्तुत करते हुए एक दिशा देने का प्रयास किया है। यही कारण है कि प्रेमचन्द की कहानियाँ हिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में आज भी पढ़ी, समझी और सराही जाती हैं। इतना ही नहीं, विदेशी भाषाओं में भी उनकी चुनी हुई कहानियों के अनुवाद हो चुके हैं।''[1]

प्रेमचन्द की कहानियों को पढ़ने के बाद जीवन के सम्पूर्ण अनुभव दिखायी देते हैं। सम्पूर्ण जीवन की झॉकी उनकी कहानियों में मौजूद हैं, कफन, अलग्योझा, बेटों वाली विधवा, स्त्री और पुरूष, माता का हृदय, स्वर्ग की देवी आदि कहानियों में प्रेमचन्द की स्त्री–छवि देखी जा सकती है। प्रेमचन्द के स्त्रीपात्र परम्परागत हैं। उनमें कुछ भी आधुनिकता दिखायी नहीं देती है। सभी स्त्री पात्र भाग्य पर भरोसा रखते हैं, तथा सभी भाग्य के भरोसे चलते हैं। सभी पात्र जो बहुत दिन से परम्परा चली आ रही है, उसी का अनुसरण करते हैं। पारिवारिक कलह तथा स्त्रियों का लांछित स्त्री चरित्र अवश्य इनकी कहानियों में देखने को मिलता है। प्रेमचन्द के स्त्री पात्र अपने अहंकार में दूसरी स्त्रियों को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं, उनके स्त्रीपात्र, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, परस्पर मैत्री सम्बन्ध एवं क्षमा आदि गुणों से ओत–प्रोत हैं।

'अलग्योझा' कहानी में पन्ना एवं मुलिया की ईर्ष्या का साकार रूप उपस्थित है। रग्घू पन्ना का सौतेला बेटा है। पन्ना रग्घू के साथ सौतेला व्यवहार करती है, उसे काफी कष्ट देती है। रग्घू भी तना–तना सा रहता था। पन्ना सारा कार्य रग्घू से ही करवाती थी, ''पन्ना रूपवती स्त्री थी और रूप तथा गर्व में चोली–दामन का नाता है। वह अपने हाथों से कोई काम न करती, गोबर रग्घू निकालता, जानवरों को सानी देता, रग्घू ही जूठे बरतन माँजता।''[2]

कुछ दिनों बाद पन्ना विधवा हो जाती है। सारा काम रग्घू देखता है, रग्घू का भी विवाह हो जाता है, उसकी पत्नी मुलिया आ जाती है। मुलिया भी पन्ना से कम नहीं थी, वह भी पन्ना तथा पन्ना के बेटों को देखना नहीं चाहती थी, उसके छाती पर भी सांप लेटता था, ''मेरा शौहर छाती फाड़कर काम करे और पन्ना रानी बनी बैठी रहे, उसके लड़के रईसजादे बने घूमें, मुलिया से यह वर्दास्त न होगा, वह किसी की गुलामीं नहीं करेगी, अपने लड़के तो अपने होते ही नहीं, भाई किसके होते हैं? जब तक पर नहीं निकलते हैं, रग्घू को घेरे हुए हैं, ज्योंही जरा सयाने हुए, पर साड़ कर निकल जायेंगे, बात भी न पूछेंगे।''[3] मुलिया ने घर में कोहराम मचाना शुरू किया, वह अलग रहना चाहती थी। रग्घू लाख कोशिश करता था, पर मुलिया नहीं मानती, वह कहती थी, ''मैं काम करने से नहीं डरती, न बैठे–बैठे खाना चाहती हूँ, मगर मुझसे

किसी की धौंस नहीं सही जाती ..... मैं अपनी आँखों से यह नहीं देख सकती कि सारा घर तो चैन करे, जराजरा से बच्चें तो दूध पियें और जिसके बलबूते पर गृहस्थी बनी हुई है, वह मट्ठे को तरसे, कोई उसका पूछने वाला न हो, जरा अपना मुँह तो देखो कैसी सूरत निकल आयी है, औरों के तो चार बरस में अपने पट्ठे तैयार हो जायेगे, तुम तो दस बरस में खाट पर पड़ जाओगे .....''[4] यह सब कलंक मुलिया झूठे लगाती थी, वास्तविकता यह थी कि वह घर की मालकिन बनना चाहती थी, अपनी जिद से उसने परिवार अलग करा दिया और कुछ दिनों बाद रग्घू ने भी दम तोड़ दिया। दोनों परिवार अलग होकर विपन्न हो गये और इसका कारण मात्र स्त्री थी। स्त्रियों को स्वच्छन्द रहने में बड़ा मजा आता है, वे स्वच्छन्द रहना चाहती हैं, उनकी स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति ही परिवार को उजाड़ देती है और सारे नैतिक मूल्य हवा हो जाते हैं।

घर पर स्त्रियों की बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है, उन्हें घर की लक्ष्मी माना जाता है, पर स्त्रियाँ अपनी लोलुपता और स्वार्थ के कारण घर को डूबो देती हैं, और स्त्री परिवार में अपने पति और बच्चों के अतिरिक्त और किसी को नहीं देखना चाहती हैं। रिश्तों में अपने पीहर तथा अपने बहनों के अतिरिक्त और कोई रिश्ता नहीं समझती हैं। इस देश की कर्णधार स्त्रियाँ ही हैं, क्योंकि पुरूष स्त्रियों के ही इशारे पर नाचते हैं, इसलिए स्त्रियों को इस देश की चिन्ता करनी चाहिए और अपने विचार बदलने चाहिए, स्त्रियॉ चाहें तो घर बसा दें, स्त्रियाँ चाहे तो घर उजाड़ दें। पुराण, इतिहास तथा धार्मिक ग्रन्थ भी इसके साक्षी हैं। कैकेयी ने अपना परिवार उजाड़ दिया। अपने पुत्र भरत से भी उसे डॉट खानी पड़ी। सम्पूर्ण समाज से उपेक्षित होना पड़ा तथा स्वयं विधवा भी होना पड़ा। इसलिए स्त्रियों को सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का मार्ग अपनाना चाहिए, न कि स्वार्थ और शोषण का। 'बेटों वाली विधवा' में फूलमती के विधवा होते ही उसका सारा अधिकार छिन जाता है। यहाँ तक कि उसकी बेटी कुमुद का विवाह भी एक गरीब परिवार में हुआ। फूलमती को जो घर की मालकिन थी, घर की लौंड़ी बनकर रहना पड़ा और वह निराश होकर घर का सारा कामकाज करती थी, ''अब तक स्वामिनी बनकर रही, अब लौंड़ी बनकर रहना पड़ेगा, ईश्वर की यही इच्छा है। अपने बेटों की बातें और लातें गैरों की बातों और लातों से फिर भी गनीमत है। .....सारा घर सो रहा था और यह आंगन में झाड़ू लगा रही थी। रातभर ओस में भीगी हुई पक्की जमीन उसके नंगे पैरों में काँटों की तरह चुभ रही थी। पण्डितजी उसे इतनी सबेरे कभी न उठने देते थे, शीत उसके लिए बहुत हानिकारक था, पर अब बह दिन नहीं रहे प्रकृति को भी समय के साथ बदल देने का यत्न कर रही थी।''[5]

फूलमती घड़े में पानी लाने गयी और गंगा में डूब गयी, ''गंगा बढ़ी हुई थी, जैसे समुद्र हो, क्षितिज सामने के कुल से मिला हुआ था, किनारों के वृक्षों की केवल फुनगियाँ पानी के ऊपर रह गयी थीं। घाट उतर कर पानी में डूब गये थे। फूलमती कलसा लिए नीचे उतरी, पानी भरा और ऊपर जा रही थी कि पॉव फिसला, पानी में गिर पड़ी, पलभर हाथ–पाँव चलाये, फिर लहरें उसे नीचे खींच ले गईं। फूलमती की बड़ी बहू ने भी उसकी परवाह नहीं की और जब उसने तिजोरी बिना फूलमती से पूछे खोलने की कोशिश की तो फूलमती ने उसे मना किया, उसने फूलमती की आज्ञा की अवहेलना किया फूलमती खून का घूंट पीकर रह गयी, तिजोरी क्यों खोलती हो बहू, मैंने तो खोलने को नहीं कहा? बड़ी बहू ने निःसंकोच भाव से उत्तर दिया, ''बाजार से सामान आया है, तो दाम न दिया जायेगा?''[6]

कौन चीज किस भाव से, और कौन कितनी आई यह मुझे कुछ नहीं मालूम, जब तक हिसाब–किताब न हो जाये, रूपये कैसे दिये जायें?

हिसाब–किताब सब हो गया।''[7]

बहुओं को अपने सास की कोई चिन्ता नहीं है, जबकि ये बहुएं आज जवानी के मद में पागल हैं, कल

खुद सास बनेंगी, तब इन्हें पता चलेगा।

'माता का हृदय' कहानी में माधवी के बेटे आत्मानन्द को जेल में बन्द करवा दिया, उसका हृदय काफी दुःखी रहता था, वह अपना बदला लेने के लिए, जिसने उसके बेटे को जेल कराया उसके घर जाती है उसके लड़के को खिलाने की उसे नौकरी मिल जाती है। माधवी उसके बेटे को मारने गयी थी, पर उसका विचार बदल जाता है और वह उसके बेटे के मरने पर अत्यन्त दुःखी है, ''बालक अभी तक चादर ओढ़े सो रहा था, माधवी ने दूध गरम हो जाने पर उसे झूले पर से उठाया, तो चिन्ता में पड़ गयी, बालक की देह ठण्डी हो गयी थी और मुँह पर पीलापन आ गया था, जिसे देखकर कलेजा छिल जाता है।''[8]

आज की बहुएँ माँ भी बनतीं हैं। माँ का भी उन्हें दायित्व निभाना चाहिए पर कुछ ऐसी मातायें हैं, जो बच्चे को स्तन–पान नहीं कराना चाहती हैं। ऐसी मातायें मॉ कहलाने के योग्य नहीं हैं। जो बच्चों को दूध नहीं पिला सकतीं वह कैसी माँ हैं? स्त्री माँ के रूप में भी आती है, प्रेमचन्द ने माँ के रूप में स्त्री का वर्णन करते हुए लिखा है, ''माता का हृदय दया का आगार है, उसे जलाओं तो उसमें दया की ही सुगन्ध निकलती है, पीसो तो दया का ही रस निकलता है, वह देवी है। विपत्ति की क्रूर लीलाएँ भी उस स्वच्छ निर्मल स्रोत को मलिन नहीं कर सकतीं।''[9]

प्रेमचन्द के स्त्री पात्र पत्नी के रूप में भी आये हैं। उनकी स्त्री और पुरूष कहानी में स्त्री कुरूप थी। पति–पत्नी को छूता तक नहीं था, संयोगवश पति पर फालिस पड़ जाता है और पत्नी उसकी बहुत ही सेवा करती है, ''फालिस के भयंकर रोग में रोगी की सेवा करना आसान काम नहीं। उस पर आशा महीनों से बीमार थी, लेकिन इस रोग के सामने वह अपना रोग भूल गयी। पन्द्रह दिनों तक विपिन की हालत नाजुक रही। आशा दिन के दिन और रात की रात उसके पास बैठी रहती। उनके लिए पथ्य बनाना, उन्हें गोद में सम्भाल कर दवा पिलाना, उनके जरा–जरा से इशारे को समझना। उसी जैसी धैर्यशीलता स्त्री का काम था। उसका सिर दर्द से फटा करता, ज्वर से देह तपा करती, पर इसकी उसे जरा भी परवाह न थी।''[10]

'बूढ़ी काकी' में बहू अपने सास को उत्सव के दिन भोजन तक नहीं देती और जब उसका पोता भोजन दे देता है तो उसे छीन लेती है, सारे लोग खाकर सो जाते हैं और बुढ़िया जाकर जूठा पत्तल चाटती है।

प्रेमचन्द की कहानियाँ वास्तव में दिल को झकझोर देने वाली हैं। ''उनके चित्र बड़े ही सजीव होते हैं, मानों घटना आँखों के सामने हो रही हो और प्रेमचन्द उसे नोट करते जाते हों''[11] उनके स्त्री पात्र मानों घर के महसूस हो रहे हों। ''सुभागी कहानी की विधवा पिता के घर जाकर रहती है, लेकिन वहाँ उसके भाई–भौजाईयों से नहीं पटती, पिता के साथ वह खेतों के काम में हाथ बँटाती है और उसका कर्ज भी चुका देती है, उसे कमाते देखकर कुछ लोग विवाह की इच्छा प्रकट करते हैं और अन्त में वह विवाह भी कर लेती है।''[12]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के स्त्री पात्र बेटी–बहू, माता, पत्नी, सास आदि कई रूपों में आये हैं। और प्रत्येक स्त्री पात्र अपने घर का स्त्री पात्र लगता है, अपने गाँव का स्त्री पात्र लगता है तथा प्रेमचन्द का माता पात्र अपनी माँ लगता है। ''वह बच्चों, बूढ़ों, विधवाओं, पढ़ी–लिखी स्त्रियों और अनपढ़ किसान स्त्रियों का समान सफलता से चित्रण कर सके हैं।''[13]

प्रेमचन्द के स्त्री पात्रों में तरह–तरह के गुण विद्यमान हैं। कुछ स्त्रियाँ घर को बसा देती हैं और कुछ उजाड़ देती हैं। स्त्रियों को घर बसाने की कोशिश करनी चाहिए, स्त्रियाँ घर की नींव हैं। उन्हें सदैव घर की उन्नति का ध्यान रखना चाहिए, उन्हें पुरुष से कन्धा से कन्धा मिलाकर चलना चाहिए न कि कुश्ती लड़नी चाहिए। स्त्रियाँ समन्वय–सागर हैं, अतः उन्हें समन्वय की नीति अपनानी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रेमचन्द्र की श्रेष्ठ कहानियाँ : विश्ववुक्स : कवर पृष्ठ
2. वही : पृष्ठ–17
3. वही : पृष्ठ–20
4. वही : पृष्ठ–27
5. वही : पृष्ठ–45
6. वही : पृष्ठ–48
7. वही : पृष्ठ–34
8. मान सरोवर : प्रेमचन्द : भाग तीन : पृष्ठ–92
9. वही : पृष्ठ–94
10. वही : पृष्ठ–35
11. डॉ0 रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द और उनका युग : पृष्ठ –112
12. वही : पृष्ठ–117
13. वही : पृष्ठ–118

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

समकालीन उपन्यासों में नारी मुक्ति : दशा एवं दिशा

डॉ0 आशा वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
डी0बी0एस0 कालेज, कानपुर।

आज जीवन साथ–साथ बिताना ही एक समस्या हो गया है। यह जीवन जो एक दूसरे के लिए ही बना है, ये एक दूसरे ही अपने स्वयं के लिए एक समस्या बन गये हैं। आत्मीयता साधिकार अधिकार चाहने लगी है, अपनों से मुक्ति चाहती है, क्योंकि अब अपनों को सहना दूभर हो गया है, असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य हो गया है। उर्दू शायर कहता है – ''मुझे कोई गम नहीं था, तेरी आशिकी से पहले–कि हजार गम लगे हैं, तेरी आशिकी के पीछे। यह ''जिन्दगी कुछ भी नहीं, तेरी मेरी कहानी है'' और जब तेरी–मेरी का आत्मीयता का वयम् (हम) तेरा–मेरा में बदल जाता है, तो जीवन में सरसता, मधुरता समान–सी हो जाती है।

ऐसा आभास हो रहा है कि आज के युग में महिला ने अपने उपेक्षित भाव से नाता तोड़ लिया, उसका पुरुष स्वार्थ से मोहभंग हो गया है। वह जीवन में सहभागिता चाहती है, जीवन सत्य के मधु के पान में पुरुष उसको भी साथ रखे, वह यह चाहती है। आज की स्वतंत्र नारी कहती है कि वह जीवन की कर्मस्थली में वह पुरुष की सहकर्मी भार्या है, वह भी जीवन का भार पुरुष के साथ समान रूप से उठाती है, तो फिर उसके साथ दुराव कैसा? उसके जीवन में अभाव कैसा? उसका जीवन पुरुष स्वार्थ व अन्याय के कारण दुःखी क्यों? उसके जीवन में हताशा व निराशा के बादल क्यों?

परिवर्तन की अकुलाहट तथा परम्परागत मूल्यों का अवमूल्यन आज के संक्रमणकालीन समाज की विशेषताएँ हैं। सिद्धान्त रूप में नारी को काफी स्वतंत्रता मिली है, लेकिन सामाजिक संस्थाओं का स्वरूप आज भी वही पारम्परिक है सिद्धान्त तथा व्यवहारगत अन्तर उसके भीतर छटपटाहट पैदा करता है। वह अपनी स्थिति पर विचार करके इस अन्तर को समाप्त कर देना चाहती है। मुक्ति का नारा उसको आकर्षक लगता है, लेकिन मुक्ति का अर्थ भलीभाँति न जानने के कारण वह थोड़ा भटक गई है। सर्वप्रथम नारी को इस प्रश्न पर विचार करना होगा कि मुक्ति का अर्थ क्या है? मुक्ति किससे चाहिए? पारिवारिक दायित्वों से? पुरुष के संरक्षण–स्वामित्व–सहयोग से? सामाजिक सम्बन्धों या नैतिक मूल्यों से? वस्तुतः मुक्ति शब्द का प्रयोग ही गलत है। नारी हो या पुरुष, मुक्ति कोई नहीं चाहता। जीवन साँसों का बंधन है और इस बन्धन के साथ अनेकानेक बंधन जुड़ते चलते हैं – पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, कानूनी। यही बंधन व्यक्ति को पहचान देते हैं। अतः नारी के सम्बन्ध में मुक्ति की बात इस अर्थ में बेमानी है। हाँ, मुक्ति का अर्थ यदि व्यक्तित्वहीनता और जड़ता से मुक्ति है तो वह अर्थ निश्चय ही वरेण्य है।

चुनौतियाँ नारी के सामने हैं, और उनसे निपटना भी नारी को ही है। जिस प्रकार नारी को लेकर समाज के चिन्तन में क्रमशः परिवर्तन आ रहा है, उससे आशा बंधती है कि वह सफलतापूर्वक इन चुनौतियों का सामना कर पायेगी इसके लिए अनिवार्य है जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण, अपनी अन्तःशक्तियों का परिचय, समाज के विरुद्ध अकेले पड़कर भी आगे बढ़ने की क्षमता। 'झाँसी की रानी', लक्ष्मीबाई (वृन्दावन लाल वर्मा) उपन्यास का विवेचन करते हुए डॉ0 शशिभूषण सिंहल ने आज के उपन्यास में निराश एवं टूटन की प्रधानता का कारण पात्रों में उपर्युक्त गुणों का अभाव माना है वे लिखते हैं – ''आज के पात्र सभी बातों में विश्वास खो बैठे हैं। उन्हें वर्तमान, दारुण परिस्थितियों के कारण निरर्थक जान पड़ता है। उससे उन्हें कोई आशा नहीं वे केवल

अनास्था अविश्वास, निराशा और वर्तमान की तात्कालिकता से घिर कर भीतर ही भीतर टूट गये हैं। इसलिए परिस्थितियों से लड़ने में अक्षम है, उनकी चेतना घुटने तोड़कर बैठ गई है। वे अन्तर्मुखी होकर अधिकाधिक अनुचिन्तनरत है। चिन्तन स्थिति में परिवर्तन की अकुलाहट को व्यक्त करता है, परिवर्तन लाता नहीं। अतः समाज, लेखक तथा स्वयं महिला को संस्कार ग्रस्तता एवं दुविधाओं से उबारना होगा।

अपने पराए (शशिभूषण सिंहल), पत्थरों का शहर (सुरेश सिन्हा), आपका बंटी (मन्नू भंडारी), निस्संगता (ब्रज नारायण सिंह), चितकोबरा तथा उसके हिस्से की धूप (मृदुला गर्ग), सुरंग के बाहर (कमलेश बक्शी), प्रेम कहानी (मणिका मोहनी), दिलों दानिश (कृष्णा सोवती), अल्माकबूतरी, विजन (मैत्रेयी पुष्पा) आदि कुछ ऐसे उपन्यास हैं जिनमें नारी की समस्याओं को तर्कसंगत ढंग से चित्रित किया गया है, जिससे उन्हें अपने जीवन में एक नई दिशा मिल सके। 'अपने पराए' उपन्यास नारी–पुरुष की परस्पर पूरकता का पक्षधर है, पुरुष पर नारी की निर्भरता का नहीं। वंदिता तथा नीलिमा दो पात्र नहीं, एक मात्र हैं, दोनों मिलकर एक सम्पूर्ण नारी का चित्र अंकित करती है। पुरुष एवं परिवार की पाशुविकता का शिकार होकर आज की नारी कहीं–कहीं पुरुष की विरोधी हो गई है। यह स्थिति उसके शेष की परिचायक अवश्य है, स्वस्थ नहीं। वंदिता ऐसी महिला है जिसने दहेज के लोभी सास एवं पति के हाथों अग्निदाह की दुर्घटना को झेला है। इस दुर्घटना के बाद वह विवाह की सार्थकता के प्रति शंकित हो जाती है, लेकिन पुरुष के प्रति उसके मन में कोई विरोध नहीं। नीलिमा से वह यही कहती है। स्पष्ट है उसकी दृष्टि स्वस्थ एवं संतुलित है। आग्रहपूर्वक स्थिति पर विचार करने की अपेक्षा वह जीवन के व्यापक सन्दर्भों से इसे विश्लेषित करती है। दृष्टि की तटस्थता एवं वैज्ञानिकता आज के उपन्यासकार से अपेक्षित है। 'पत्थरों की शहर' की तृप्ता वैवाहिक तनाव भोगकर विवाह के सही स्वरूप को समझ सकी है। 'निस्संगता' की अरूपा का परकीय प्रेम रूढ़ यौन नैतिकता को चुनौती देकर नारी की आधुनिक दृष्टि को रेखांकित करता है। 'चितकोबरा' उपन्यास के माध्यम से विवाह सम्बन्धी विसंगति का संकेत बड़ी गहराई से किया है। एक नयी मानसिकता के तहत रूपायित कर उन आयामों को छूता है जो आज के सन्दर्भ में महत्व रखते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा विवाहेत्तर प्रेम सम्बन्धों के माध्यम से नारी जीवन की सार्थकता की दिशा पहचान पाई है। 'सुरंग के बाहर' में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों से जुड़ी नयी साहसपूर्ण दृष्टि का परिचय मिलता है। 'प्रेम कहानी' उपन्यास जिसमें महानगरों की आधुनिकता, वर्जनामुक्त खुलापन व्यक्त करते हुए प्रगतिशील चेतना और नारी सम्बन्धी वैचारिक बोध को वाणी दी है। 'आपका बंटी' की शकुन का पुनर्विवाह नारी का अपने भविष्य के प्रति सचेत हो जाने का ऐलान है। 'दिलो दानिश' में छुन्ना रूढ़ियों एवं जर्जर मान्यता का विरोध करती है। छुन्ना विधवा है। एक स्त्री विधवा हो सकती है क्या उसकी मनोवृत्ति और प्रकृति विधवा हो सकती है? इस प्रश्न को लेखिका ने बड़ी संजीदगी से उपन्यास में उठाया है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में अल्मा श्रीराम शास्त्री को मुखाग्नि देकर सदियों से चली आई रूढ़ि का खण्डन करती हुई दिखाई देती है। शास्त्रों ने पुत्र को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना है पर इस उपन्यास में अल्मा अपने पति श्रीराम शास्त्री की उत्तराधिकारी हो जाती है। पवित्र वैदिक क्रिया को अल्मा ने नकारा था। धर्म एक ओर चिता की अग्नि देने से स्त्री को नकारता है और कानून कहता है कि जो मुखाग्नि देगा वह ही सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हो जाता है। इस उपन्यास में अलग अल्मा ने मुखाग्नि देकर सब अधिकार अपनी ओर सुरक्षित रख लिए। 'विजन' उपन्यास में भी आभा दी विवाह जैसे बंधन को जो परम्परागत बन्धन है। ठुकराकर अपना व्यक्तित्व निखारती है।

आज की महिला स्पष्ट जतला रही है कि अब वह मात्र दायित्वों को लेकर अपनी जिन्दगी दांव पर नहीं लगा सकती। पुरुष की भाँति वह भी अपने लिए जी कर देखना चाहती है। लेकिन आज की नारी को परम्परा व आधुनिकता के नकार–स्वीकार को विवेक की कसौटी पर परखना होगा। उसे जानना होगा कि आधुनिकता उच्छृंखलता का पर्याय नहीं जिसकी परिधि में दायित्वों के नकार और आत्म–केन्द्रित जीवन को लिया जाए। न

ही परम्परा का अर्थ वे जीवन मूल्य हैं जिनमें 'आदर्शत्व' की समस्त सम्भावनाओं को समेट कर नारी के अस्तित्व की सार्थकता घर, पति व बच्चों में विलीन कर दी जाए। दोनों भ्रामक धारणाए हैं प्रतीक रूप में परम्परा को 'बुरा' तथा आधुनिकता को 'भला' मानकर उसे कोई निर्णय नहीं लेना है। मर्यादित स्वतन्त्रता तथा अमर्यादित उच्छृंखलता के मध्य पाए जाने वाले अन्तर को समझना है।

नारी की स्थिति भले ही स्थानिक प्रभाव व काल प्रवाह में बदलती रही हो, उसकी छवि भले ही समय–समय पर दबती उभरती रही हो, परन्तु हर युग के निर्माण में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उसकी अस्मिता को लेकर साहित्य में हमेशा ही समय–सापेक्ष अनेकानेक प्रश्न उठाये जाते रहे हैं। उनका समाधान हुआ है या नहीं। यह सब कुछ निरुत्तरित ही है जब वह 'मानवी' रूप में उभर कर सामने न आये। सब नाते रिश्तों के बावजूद भी वह स्वतन्त्र ईकाई भी है और स्वतन्त्र अस्तित्व वाली भी है। साहित्य दिशा–बोधक एवं दिशा स्तम्भ है। आज हमारा युग बोध बदल गया है, जीवन पद्धतियाँ बदल गई हैं। इसी अनुसार स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में नये समीकरण की तलाश है। नये मूल्यों का निर्माण करने से ही नये युग की नारी की नयी प्रतिभा उभरेगी। 'मानवी' के रूप में वह आयेगी हमारे सामने गौरवमयी पहचान देती हुई।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महिला और मानवाधिकार–एम0 ए0 अंसारी, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2003
2. औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार–डॉ0 प्रमिला के0 पी0 जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2004
3. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला–डॉ0 रोहिणी अग्रवाल, दिवमान प्रकाशन, दिल्ली, 1997
4. 'इस पौरुषपूर्ण समय में'–कात्यायनी –वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1999
5. भारतीय नारी अस्मिता की पहचान–उमाशुक्ल–लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994
6. साहित्यायन –डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, अभिलेख प्रकाशन, बरेली, 2011

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

से.रा. यात्री की कहानियों के मध्यवर्गीय चरित्र : एक विश्लेषण

अरविन्द कुमार उपाध्याय
वर्धा

से. रा. यात्री आजाद भारत के हिंदी कथा साहित्य के उन विरल कथाकारों की श्रेणी में आते हैं जिन्होंने शहरी मध्यवर्गीय जीवन के त्रासद यथार्थ को अपनी कहानियों में न केवल जगह दी बल्कि उसके संत्रास और पीड़ा की तह में जाने की कोशिश भी की है। से. रा. यात्री ने जिस समय कहानी लिखना प्रारंभ किया था उस समय समाज में मोहभंग की स्थिति थी। नेहरू सरकार जनता के भरोसे पर खरी न उतर सकी। स्वतंत्रता के बाद जनता की जो उम्मीदें सरकार से थीं वह कभी भी पूरा होते दिखाई नहीं दे रहा था। शहरों में ही नहीं बल्कि गाँवों में भी लोगों के मन में सरकार के प्रति जो मोह था वह धीरे– धीरे दरकने लगा। ऐसी स्थिति में साहित्यकारों का मोहभंग होना स्वाभाविक था।

बीसवीं सदी के साठ के दशक में 'नई कहानी' के साथ–साथ 'अकहानी' का दौर शुरू हो गया था। इस दौर के अधिकांश कथाकार स्त्री–पुरुष संबंधों, यौन जनित इच्छाओं से ग्रसित ऐसे लोगों की कहानियाँ लिखना शुरू किया जो मानसिक विच्छेद का परिणाम था। प्रगतिशील धारा का वेग कम होने से साहित्य में वैसा माहौल नहीं रह गया था जो प्रेमचंद जैसे लोगों के समय था। सामाजिक परिवेश और उनकी जुड़ी हुई चीजों पर कहानियाँ कम लिखी जा रही थीं। एक प्रकार से हिंदी साहित्य में भटकाव का दौर था। इसी दौर में अर्थात साठ के दशक में से. रा. यात्री एक ऐसे युवा कथाकार के रूप में हमारे सामने उपस्थित हुए जिसने शहरी मध्यवर्ग के पात्रों को केंद्र में रखकर उन्हीं की भाषा में उनके घुटन, संत्रास, कुंठा और पीड़ा को कहानियों में अभिव्यक्त करने लगे। उनकी कहानियाँ किसी खाश आंदोलन से न जुड़ कर एक ऐसे समाज के परिवेश को आधार बनाया जो प्रायः परंपरा और आधुनिकता के दंश से पीड़ित है, साथ ही शहरी बेरोजगार युवक जो सामाजिक व्यवस्था से खफा है, प्रमुखता से उठाया है। इस तरह की कहानियों को पाठकों ने न केवल सराहा ही बल्कि उसे हाथों–हाथ लिया। जल्द ही युवा कथाकार लोकप्रिय कहानिकारों की श्रेणी में गिने जाने लगे।

से. रा. यात्री की अधिकांश कहानियाँ शहरी जीवन और वातावरण से संबंधित हैं। यात्री शहरी मध्यवर्गीय व्यक्ति के मानसिक अंतर्द्वंद्व को अधिक आत्मीयता और सूक्ष्मता से पहचानते हैं। खासकर ऐसे व्यक्ति जिनमें घुटन सामाजिक अरागात्मकता कुंठा आदि को अपने कथा के केंद्र में रखा। इनकी कहानियों में भटकाव की स्थिति नहीं है। वे मौजूदा यथार्थ के प्रति पाठक को सोचने के लिए विवश कर देती हैं। कहानियों का यथार्थ व्यक्ति (पाठक) के जीवन के आस–पास का यथार्थ लगता है। उन्होंने समाज की नजाकत को देखते हुए समाज का सच अपनी कहानियों में लिखना शुरू किया। कहानियों के पात्र जाने–सुने से लगते हैं। यात्री जी ने वस्तुतः यथार्थ को आत्मसात करके और उसे अपनी कहानियों में बिना किसी कृत्रिमता के चित्रित किया है। उसके पीछे कारण यह है कि वे अपने जीवन में उतार–चढ़ाव, संत्रास और सामाजिक सड़ांध को बहुत नजदीक से देखा है, देखा ही नहीं बल्कि सहा और भोगा भी है, वही इनकी कहानियों का विषय बना। कहानियों के पात्रों में परंपरा एवं आधुनिकता का द्वंद्व है। वह सामाजिक परिवेश के लिए

हेय मान लिए गए परंपरा को छोड़ नहीं पाता और आधुनिकता के घेरे से अपने आपको बचा नहीं पाता। जिसके कारण वह (पात्र) जीवन से संघर्ष करता रहता है।

यात्री जी की कहानियों में सामाजिक अंतर्दृष्टि बहुत गहराई तक फैला हुआ है। "उनके लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गंभीर सामाजिक अंतर्दृष्टि से संपन्न होते हुए भी वे इतनी सहज एवं सरल हैं, जिसे बिरले ही साध सकते हैं। राजनीति के ओवरटोंस उनकी कहानियों में नहीं है, जिसके खतरे उन लेखकों की रचनाओं में हमेशा बने रहते हैं, जिनकी चेतना का विकास किसी खाश विचारधारा से निर्मित होता है। जीवन के जिस धागे से उन्होंने अपनी वे कहानियाँ लिखीं ..... वह धागा अटूट से मौजूद रहा। उनकी कहानियाँ चमत्कारित शिल्प और नकली भाषा के खिलाफ जीवन की सच्चाईयों की विजय की कहानियाँ हैं। वे शिल्प से चमत्कृत नहीं करतीं, जीवन के स्पंदनों से स्पंदित करती हैं। जहाँ तक मैं समझता हूँ कि किसी लेखक का पवित्र दायित्व यही है कि वो अपनी रचनाओं के द्वारा अपने अनुभव अगली पीढ़ी को सौंपे उसकी पीठ पर अपने विचार का कोड़ा न बरसाएँ।" (सुभाष पंत (सं.), शब्दयोग, पृ. 11) से. रा. यात्री जी की कहानियाँ इस अवधारणा पर खरा उतरती हैं।

भारतीय समाज में फैले मध्यवर्ग जो पूरी आबादी की पच्चीस प्रतिशत के रूप में है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इनका दखल है। अध्यापक, क्लर्क, जमींदार हर स्तर पर इस वर्ग के लोग मिल जाएगें। इनमें उच्चवर्ग में सम्मिलित होने की चाह है, वही दुनिया के हर छोटी–बड़ी चीज पर अपनी पकड़ बनाना चाहते हैं और यही चाह उसे यंत्रवत बना रही है। दिन भर ऑफिस आदि जगहों पर काम के बोझ से दबे होने के कारण वह समाज, परिवार से धीरे–धीरे विरक्त होने लगता है और न केवल विरक्त ही होता है बल्कि उसके अंदर कुंठा जैसी चीजों का विकास भी होने लगता है। परंपरा और आधुनिकता में जकड़ा यह वर्ग अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति हमेशा न केवल चिंतित रहता है बल्कि इसकी प्राप्ति के लिए जोड़–तोड़ की राजनीति भी करता है। भूमंडलीकरण ने मध्यवर्ग के व्यक्तियों को व्यक्तिनिष्ठ के रूप में परिवर्तित कर सामाजिक दायित्व से उसे विरक्त करता जा रहा है। वहीं माता–पिता उसके लिए बोझ के समान लगने लगे हैं। पति–पत्नी एक ही बिस्तर पर रहने के बावजूद संबंधों में पहले जैसी मधुरता नहीं रह गई । कारण स्पष्ट है कि इनके अंदर किसी तीसरे व्यक्ति का जीवन में प्रवेश। मध्यवर्ग की भी अपनी कुछ समस्याएँ हैं। बेरोजगारी उसकी आज प्रमुख समस्या है। उसके सामने विकल्पहीनता की स्थिति है। राष्ट्र–राज्य के प्रति उसके मन में आक्रोश तो है, लेकिन कुछ न कर पाने की स्थिति में है। कभी–कभार वह सड़कों पर उतर जाता है, लेकिन थोड़े समय के लिए। इस स्थिति में यह वर्ग असामाजिक गतिविधियों में संलिप्त होने लगता है। हत्याएँ, लूट, बलात्कार जैसी असामाजिक चीजों की ओर उसका झुकाव स्वाभाविक है। जीवन–मूल्य से भटका यह वर्ग अनेक मानसिक विकार और अपने ही दुनिया में मस्त रहने को मजबूर है। से. रा. यात्री ने कहानियों में इन चीजों को गहराई से न केवल उठाया ही बल्कि उसकी मूल समस्याओं से पाठकों को रू–ब–रू भी कराया।

यात्री जी कई महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखीं हैं जिनमें ऋण मुक्त, खंडित संवाद आदि हैं जो न केवल अपने समय के यथार्थ को अभिव्यक्त करती हैं वरन समाज में हो रहे बदलाव को व्यापक गहराई से दिखाने का भी प्रयास करती हैं।

इनकी कहानियों में नारी को अधिक स्वतंत्रता प्रदान करने की कोशिश गई है। कहानियों में नारी पात्र किसी अपराध–बोध से ग्रसित कम दिखाई देती हैं। वह पवित्रताएँ धर्म पालन या समाज द्वारा दिए

गए बंदिश को सहने के लिए विवश नहीं हैं। वह पुरुषों के समान कंधा से कंधा मिलाकर चलना चाहती है। हालाँकि अपने अधिकारों के प्रति वह (नारी) परिवार या समाज से विद्रोह नहीं करती। आर्थिक मामलों में वह आत्मनिर्भर नहीं है। फिर भी नारी के महत्वपूर्ण पक्षों का उद्‌घाटन इनकी कहानियाँ करती हैं। कहानियों में जहाँ नारी अपने परंपरागत रूप में दिखाई देती है, वहीं उसमें सबसे बड़ी बात यह है कि स्थिति के अनुसार स्वतंत्र व साहसिक निर्णय लेती है। इसी तरह की कहानी है. 'ऋण मुक्त'।

'ऋण मुक्त' एक ऐसी लड़की की कहानी है जहाँ उसके लिए सिर पर माँ–बाप का साया नहीं है, बाप है नहीं, माँ पागल खाने में है। इस स्थिति में सहारे के रूप में उसके चाचा–चाची हैं। सहारा क्या एक प्रकार से उनके घर में वह नौकरानी की भाँति रहती है। तमाम तरह के लानत–बलानत सहने के बावजूद भी उनके साथ वह रहती है। उनकी मार और असहनीय अत्याचार को सहते हुए भी वह प्राइवेट बी.ए. कर रही है। 'मैं' अर्थात 'वह' एक ऐसा पात्र है जो पूरी कहानी में एक दर्शक की भाँति है। वह सारी स्थितियों, परिस्थितियों को देखता और सुनता रहता है लेकिन अंत में संतोष के अलावा उसके पास कुछ भी नहीं है।

श्रीमती वर्मा (बीना की चाची) बीना के साथ नौकरानी सरीखे पेश आती हैं। घर का खाना बनाने के लिए आम.सामाग्री भी बीना को नाप कर मिलता था। "चीनी, दाल, आटा, घी, तेल, बीना को नाप–जोख कर दिए जा रहे हैं और साथ ही कठोर स्वर में उसको कुछ हिदायतें भी दी जा रही हैं।" ((से. रा. यात्री) अभयदान, पृ. 136) कहानी में बीना अपने ऊपर हो रहे जुल्म का बिना कोई प्रतिक्रिया दिए अपना काम करती रहती है। अखबार के हॉकर के साथ बीना चुपचाप अपने चाचा का घर छोड़ देती है, उसके चाचा–चाची पुलिस में रिपोर्ट करवाने के बदले चुप रहना ज्यादा मुनासिफ समझते हैं। कारण साफ था कि बीना शादी के योग्य हो चुकी थी। "बीना जब तक घर की नौकरानी थी उन्हें कोई हानि नहीं थी पर अब जवान लड़की के विवाह की जिम्मेदारी सिर पर पड़ी थी। कुछ भी हो आखिर वह उनकी भतीजी तो थी ही। वह इस उत्तरदायित्व से सिर्फ उसी दशा में मुक्त हो सकते थे, जब बीना उस घर में कभी नहीं लौटती।" (वही, पृ. 143) कहानी पूरी सामाजिक व्यवस्था के गिरते मानसिकता का चित्र हमारे सामने खींचती है। बीना मौन होकर भी साहसिक निर्णय लेने की क्षमता रखती है, कहानी का मूल ध्येय यही है।

इनकी दूसरी महत्वपूर्ण कहानी है. 'खंडित संवाद'। यह कहानी शहरी मध्यवर्ग के एक ऐसे परिवार की कहानी है जो परिवार में होते हुए भी परिवार में नहीं है। सब अपने काम में इतने मशगूल हैं कि नैसर्गिक प्रेम एक दूसरे में कहीं भी दिखाई नहीं देता। पिता शांत गुमशुम घर में पड़े रहते हैं. "उन्हें घरेलू जिंदगी से कोई लगाव नहीं था। ज्यादातर गुमशुद दिख पड़ते थे। चलते समय भी लगता था, जैसे सो रहे हों। मुझसे या मेरी माँ से बहुत कम बोलते थे। उनके पास मोटे–मोटे ग्रंथ थे। घर में रहते हुए प्रायः उनमें डूबे रहते थे। यह मुझे आगे जाकर मालूम हुआ कि वह इतिहास के उच्च ज्ञान से संबंध रखने वाले एक संस्थान के प्रबंधक थे।" (से. रा. यात्री, खंडित संवाद, पृ. 28) इसके विपरीत माँ (लड़के की माँ) समाज सेविका थीं। घर पर अन्य महिला कार्यकर्ता के साथ मिलकर देश–दुनिया के तमाम मुद्दे पर बातचीत करती थीं। महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचार, अनैतिक आदि चीजों पर सभा–सम्मेलनों में जम कर भाग लेती थीं। लेकिन इन सबके बरक्स उनके पास घर के लिए समय नहीं था। "वह मुझे अच्छी.भली आदतें सिखाना चाहती थी और सारे काम सलीके से सरअंजाम देने की मौखिक हिदायतें भी देती रहती थीं, लेकिन उसके पास मेरे लिए किंचित भी अवकाश नहीं था। वह अपनी उच्च शिक्षा और प्रखर मेधा के कारण एक अच्छी पथ–प्रदर्शिका थीं, मगर चूँकि उसकी व्यस्तता किसी को अच्छी आदतें या शऊर सिखाने का अवसर नहीं

देती थीं, इसलिए मैं उसका इकलौता बेटा सलीके में कम से कम आस्था रख सकने वाला बन गया।" (वही, पृ. 34)

यह कहानी मध्यवर्गीय घुटन और अपनी ही धुरी पर चलने वाले एक ऐसे परिवार की कथा है जहाँ किसी को एक दूसरे का हाल जानने का समय नहीं है। स्त्री–पुरुष के इस आत्मकेंद्रित भाव से लड़के के ऊपर पड़ रहे प्रभाव को उसकी मनःस्थिति से स्पष्ट देखा जा सकता है।

घर पर फैशन परस्त महिलाओं के साथ माँ को क्रांति करते देख बच्चे के मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। माता–पिता को यह आभाष ही नहीं होता है कि घर में एक बच्चा है और उसकी अपनी कुछ जरूरतें हैं। माँ का प्रेम और पिता का स्नेह कैसा होता है, वह कभी जाना ही नहीं। "मेरे घर में हमेशा औरतों की भीड़ रहती थी। पैसे वाले लोगों की वे औरतें जिन्हें अपने गहने और कपड़े–प्रसाधन से दमकते हुए चेहरों की नुमाइश करने में अपने जीवन की चरम सार्थकता दिखाई पड़ती थी। घर में हुजूम लगाए रहती थीं। औरतों को जोड़कर क्रांति करने का नशा मेरी माँ में जितना ही बड़ता जा रहा था, मैं घर में उतना ही दूर होता जाता था और यही हाल पिता का था। हमारे घर में जिस दिन औरतों की लंबी बैठक चलती, पिता रात को बहुत देर से लौटते। वह शांत प्रकृति के आत्मकेंद्रित व्यक्ति थे। उन्हें अपने घर में जुड़ने वाली यह हंगामा खेज भीड़ कतई रास नहीं आती थी।" (वही, पृ. 35) कुछ दिनों का दादी का साथ लड़के के लिए आलंबन का सहारा था, लेकिन अचानक उनकी मृत्यु से यह फिर उसी स्थिति में पहुँच गया।

कुछ अंतरालों के बाद इसे (लड़के को) एक कुत्ते के पिल्ला का सहारा मिला जिसे वह पालतू बना लिया। घर में माँ जब अन्य महिलाओं के साथ व्यस्त रहती थीं वह पिल्ला के साथ घर से बाहर निकल कर खेलता था लेकिन दादी की तरह अचानक पिल्ला की भी मृत्यु हो गई। हुआ यह कि एक दिन घर में माँ अन्य महिलाओं के साथ मीटिंग कर रही थीं और लड़का पिल्ला को साथ लेकर मैदान में जाने लगा। सड़क पार करते वक्त एक ट्रक के नीचे पिल्ला का अचानक आ जाने से तत्काल उसकी मृत्यु हो जाती है। बच्चा रोता–बिलखता पिल्ला के लोथड़ को लेकर घर वापस आ जाता है। "मेरी चीख–पुकार से माँ के व्याख्यान में खलल पड़ी और उनके चेहरे पर क्रोधजन्य तनाव उभर आया। बजाय मेरी तरफ आने के उसने अपनी जगह पर स्थिर खड़े रहकर कहा, 'बिनू इसे सड़क पर डालकर आओ! छि... गंदे! मरे हुए गंदे कुत्ते को घर में उठाए चले आ रहे हो।" (वही, पृ. 36) माँ ने यह भी जानने की कोशिश नहीं की कि आखिर जिस पिल्ला के साथ यह खेल रहा था, उसके साथ यह कैसे हुआ। खैर उसी महिलाओं के बीच से एक महिला उठी (जिसे सब बुआ कहती थीं) और उसे बाहर ले जाकर लॉन के नीम के पेड़ के आड़ में दफनाने लगीं। बाद में वही माँ आकार बच्चे से अच्छे नस्ल का कुत्ता लाने की बात करती है. "बेटा, रॉकी के मरने का मुझे बहुत अफसोस है। मैं तुम्हारे लिए जल्दी ही एक अच्छी नस्ल का कुत्ता मँगा दूँगी। ... ..लेकिन अफसोस! मेरी माँ ने अपनी संवेदना व्यक्त करने में बहुत देरी कर दी। मेरे बाल मन पर उसकी वह आँखें, जिनमें जबरदस्त हिकारत भरी हुई थी, कुछ इतनी गहराई से नक्श हो चुकी थी कि मैं उसकी संवेदना को सच्चे मन से स्वीकार ही नहीं कर पाया। उस दिन के बाद से मैं अपनी माँ के प्रति अत्यधिक कटु और गैर जिम्मेदार हो गया। दरअसल, रॉकी की मौत महज एक कुत्ते की मौत नहीं थी। वह मेरा ऐसा मूक बंधु था, जो शायद उन दिनों मेरे लिए सर्वाधिक संपूर्ण था। कुछ समय के लिए तो उसने मेरे प्रति माँ–बाप की असंपृक्त को लगभग खत्म कर दिया था। उसे लेकर मैं हर समय व्यस्त रहता था।" (वही, पृ 36)

यात्री की इस कहानी में आदर्श माँ और पिता की परिभाषा बदल गई है। प्रस्तुत कहानी का बालक

माँ–बाप से उपेक्षित जीने के लिए अभिशप्त है। सहारा के रूप में दादी और पिल्ला का साथ मिला लेकिन वह भी कुछ ही दिनों के लिए। पिल्ला की मृत्यु से बालक अंदर से टूट जाता है। माँ का उपेक्षित व्यवहार बालक के सीधे मन पर पड़ता है जिससे माँ के प्रति उसके मन में घृणा हो जाती है। "और उस दिन के बाद मैंने किसी के बारे में सोचना छोड़ दिया। माँ–बाप से लगभग कट–सा ही गया। मैंने सहज ही ज्ञान से ही समझ लिया कि किसी के लिए अपने अभिभावकों के इच्छानुसार उसी तरह असंभव है, जिस तरह संतान में चुनाव करने की सुविधा नहीं है, जहाँ तक मेरा खयाल है, मेरे माता–पिता को चुनने की सुविधा होती तो अपने बेटे के रूप में वह मेरी कामना कभी नहीं करते और मैं भी..... और इस दुनिया से बहुत ज्यादा हड़प लेने की आशा किसी को भी नहीं करनी चाहिए।" (वही, पृ. 37)

इस कहानी के माध्यम से यात्री जी ने यह भी दिखाने की कोशिश की है कि एक ही छत के नीचे रहने वाले पति–पत्नी, बेटा और दादी (कुछ दिनों के लिए) किसी में सहज संबंध नहीं है। दादी खाने के बाद बच्चे को पैसा देते हुए कहती है. 'मैं किसी की बोझ नहीं बनना चाहती' पारिवारिक बिखराव का स्पष्ट रूप दिखाई पड़ता है। प्रायः मध्यवर्गीय घरों में यह देखा जाता है कि लोग परिवार के अन्य लोगों (जैसे– दादा–दादी, चाचा–चाची, इनके लड़के) से उपेक्षित सा व्यवहार करते हैं। सब अपने–अपने मन के मालिक हैं, लेकिन यात्री जी की इस कहानी में अबोध लड़का अपने ही माँ–बाप से उपेक्षित है, जो बहुत कम कहानियों में दिखाई देता है।

यात्री जी की अन्य कहानियों में भी मध्यवर्गीय पारिवारिक बिखराव, टूटन आदि मनःस्थितियों को स्पष्ट देखा जा सकता है। भूमंडलीकरण के दौर में मनुष्य के बीच अगर किसी चीज की सबसे ज्यादा क्षति हुई है तो वह है. मानवीय मूल्य और संवेदना। यात्री जी इन्हीं मानवीय मूल्य और संवेदना के ह्रास को अपनी कहानियों में प्रमुखता से उठाने की कोशिश की है।

इनकी कहानियों की विशेषता है कि पड़ते समय वाक्य इतने सरल लगते हैं कि कहीं भी शब्दों को लेकर भ्रम की स्थिति नहीं बनती। कहानी जिस तबके की हो उसे उसी भाषा में ढालने की भरपूर कोशिश की है। कहानियों के वाक्य प्रायः छोटे–छोटे, आत्मकथात्मक शैली में होते हैं। संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी तथा आस–पास की बोलियों एवं मुहावरे के शब्द बहुतायत में मिल जाएंगे। कहानियों के पात्र जाने–पहचाने से लगते हैं। यह कहानीपन की एक विशेषता है। इन्हीं वजहों से यात्री जी अन्य कहानीकारों में अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए हैं।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

जनता की संवेदना और मुक्तिबोध की कविता

कु0 देवकी नागोत्रा
जनभागीदारी शिक्षक
शास. स्नात. महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

गजानन माधव मुक्तिबोध क्रांतिकारी व्यक्तित्व, महान चिन्तक के रूप में उनकी रचनाएँ सामान्य जन की वेदना, पीड़ा, घुटन और आधुनिक साहित्य की विसंगतियों पर गहरा व्यंग्य करती हैं। उनकी रचनाओं में सामाजिक व्यवस्था के प्रति कवि का तीव्र आक्रोश व्यक्त हुआ है।

मुक्तिबोध की तार सप्तक में प्रकाशित महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं –'चाँद का मुंह टेढ़ा है', 'भूरि–भूरि खाक धूल', 'एक साहित्यिक की डायरी' और 'नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र', 'काठ का सपना', सतह से उठता आदमी तथा विपात्र आदि।

''गजानन की काव्य संवेदना ड्राइंग रूम संस्कृति की संवेदना नहीं है, उत्पीड़ित और शोषित का छोटे से छोटा दुख उनके हृदय में कसक पैदा करता है और वह उसकी वेदना को मुखर करने के लिए बाध्य हो जाते हैं।''[1]

कवि ने स्वयं को जीवन जगत की बिडम्बनाओं से खिन्न त्रस्त हुए लिखा है–

''सत्य केवल एक है। जो कि दुखों का क्रम है।
मैं कनफटा हूँ हेठा हूँ
शैब्रलेट डॉज के नीचे मैं लेटा हूँ
तेलिया–लिबास में पुरजे सुधारता हूँ
तुम्हारी आज्ञाएँ ढोता हूँ।'' –(मैं तुम लोगों से दूर हूँ)

उनकी कविता में यंत्रणा, त्रास, भूख, पीड़ा, मृत्यु, गरीबी, सामाजिक उलझनों का आशावाद और साथ ही साथ एक विचित्र अवसाद और नैराश्य की कविताएँ हैं। इस प्रकार विरोध की अनेक दिशाएँ अनुकूल और प्रतिकूल स्वरूप की कविताएँ अभिव्यक्त हुई हैं–

''काल का चरण रूका है।
अपने पथ पर लाख–लाख पीड़ाएँ लेकर
पृथ्वी घूम रही है नूतन रश्मि जाल में।''
जीवन में यथार्थ ज्वलनशील मूल्यों को।
खोज लेने की छटपटाहट
लहराओ लहराओ नागात्मक कविताओं।। –(चाँद का मुँह टेढ़ा है)

मुक्तिबोध ने 'भूल–गलती' कविता में किसी सामंत सत्ता के आतंकपूर्ण व्यक्तित्व को रेखांकित कर कवि ने जनता को सजग करने तथा आशावादी स्वर दिया है जो जन–सामान्य को शोषण से मुक्ति दिलाएगा–

''इतने में, हमीं में से
अजीब कराह–सा कोई निकल भागा,
भरे दरबार–आम में भी जागा।

संकल्प–धर्म चेतना का रक्त प्लावित स्वर।
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर
प्रकट होकर विकट हो जायेगा।'' –(भूल–गलती)

मुक्तिबोध की कविता में संपीड़ित मानवता का आक्रोश ज्वालामुखी के रूप में फूटेगा ही उसे लावा कहकर निन्दा करते हुए टला या रोका नही जा सकता–

''उसको रोक सके यों कोई, किसका दावा?
ज्वालामुखियों से वे फूटें, तो उनको कहते हो लावा।
–(कल जो हमने चर्चा की थी)

राजनीतिक, सामाजिक तथा मानव मूल्यों की विसंगतियों का मुक्तिबोध ने बड़ा ही व्यंग्य–विद्रूपमय अंकन किया है–

''सब चुप साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक,
चिन्तक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं
उनके ख्याल से यह सब गप हैं
मात्र किंवदन्ती!
रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल–बद्ध ये सब लोग
नपुंसक भोग–शिरा जालों में उलझे।'' –(अंधेरे में)

मुक्तिबोध स्वयं को जीवन–जगत की बिडम्बनाओं से खिन्न त्रस्त बताते हुए कहते हैं–

मैं तुम लोगों से इतनी दूर हूँ–
तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है
कि जो तुम्हारे लिए विषय हैं, मेरे लिए अन्न हैं। –(मैं तुम लोगों से दूर हूँ)

''मुक्तिबोध को आत्मसंघर्ष का कवि कहा जाता है। समग्र रूप में वे आत्मसंघर्ष के कवि नहीं हैं, सामाजिक संघर्ष के कवि हैं, और उनका आत्मसंघर्ष मूलतः उसी की छाया है,.....लेकिन प्रत्येक कविता में आत्मसंघर्ष का अलग–अलग पहलू प्रकट हुआ है। 'अंधेरे में' कविता में आत्मसंघर्ष मध्यवर्गीय संस्कारों और श्रमिक वर्ग से तादात्मय की आकांक्षा को लेकर है, लेकिन 'ब्रह्मराक्षस' में अपने व्यक्तित्व को अतिरेकवादी पूर्णता देने के लिए ..... जिसमें आत्मचेतना और विश्वचेतना, भीतर और बाहर, के बीच का संघर्ष भी शामिल है।''[2]

ब्रह्मराक्षस फैंटेंसी कविता के द्वारा मुक्तिबोध समाजवादी आदर्शों के अनुरूप व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहते हैं –

''मैं ब्रह्मराक्षस का सजल उर शिष्य/
होना चाहता/ जिससे कि उसका
अधूरा कार्य/ उसकी वेदना का स्रोत
संगत, पूर्ण निष्कर्षों तलक/ पहुँच सकूँ।'' –(ब्रह्मराक्षस)

मुक्तिबोध का अनुभव–जगत बहुत व्यापक है वे अपने परिवेश के जीवन से बहुत गहन भाव से जुड़े हुए हैं उनकी सबसे बड़ी शक्ति है– लोक परिवेश से गहरी सम्पृक्ति तथा जन–जीवन में विश्वास :–

''मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है/ हर एक छाती में

आत्मा अधीरा है/ प्रत्येक सुस्मित में
विमल सदनीरा है/मुझे भ्रम होता है
कि प्रत्येक वाणी में महाकाव्य पीड़ा है/
पल भर में सबसे गुजरना चाहता हूँ/
इस तरह खुद ही को दिये फिरता हूँ/
अजीब है जिंदगी।'' –(चाँद का मुंह टेढ़ा है)

''मुक्तिबोध अपने विश्वासों और संवेदनाओं से जनवादी हैं। उनकी अनुभूति केवल व्यक्तिगत संवेदन के स्तर की नहीं है, वह अपने परिवेश से गहरे जुड़ी है और अनेक आवर्तों से लिपटी है तथा कवि की आलोचक दृष्टि रचनात्मक संदर्भ में लक्षित होने वाली इनकी सार्थकता और निरर्थकता की जांच करती चलती है।''[3]

''मुक्तिबोध यह भी मानते थे कि ''जीवन से कला चलती है। जीवन आधार है कला उसका सर्जन शीलता है। जिससे वह साहित्य सर्जन करता है जीवन कला का संवाहक है। निज आत्म संवेदन को ही यह कला प्रकट करती है ..... इन अनुभव संवेदनों को संजोकर रखना उनसे संबंधित जीवन प्रसंग और मानव ह्रदय समेटकर रखना। हमारे द्वारा निर्मित साहित्य हमारे व्यक्तित्व का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है – इसका सत्य निरूपण।''[4]

''मुक्तिबोध हमेशा एक विशाल विस्तृत कैनवास लेता है : जो समतल नही होता : जो सामाजिक जीवन के 'धर्मक्षेत्र' और व्यक्ति चेतना की रंगभूमि को निरन्तर जोड़ते हुए समय के कई काल क्षणों को प्रायः एक साथ आयामित करता है। लगता है।..... इतिहास के संघर्ष–एक षड़यन्त्र का सा जाल फैलता–सिमटता है। और इस जाल में हम और आप, अनजाने तौर से, और अनिवार्यतः फॅस गये हैं–मगर कहीं कोई रास्ता नहीं है–और फिर भी पक्का विश्वास है कि रास्ता है, रास्ता है.....।''[5]

इस प्रकार मुक्तिबोध की कविताएँ जनसंवेदना की पीड़ा को अभिव्यक्त करती हैं। ''हरि नारायण व्यास के शब्दों में''–उनकी प्रतिभा समाजोन्मुखी, ध्येयवादनी, प्रतिवादात्मिक, और भावमयी है। वे जीवन के प्रति बड़े भावुक हैं। उनकी कविताएँ मनुष्य के जीवित रहने की लालसा की धड़कने हैं।''[6]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी काव्य संकलन–डॉ0 रामविलास गुप्त–पृ.सं. 177,169 कमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली।
2. निराला और मुक्तिबोध–नन्दकिशोर नवल–पृ.सं. 120, राधकृष्ण प्रकाशन जगतपुरी, दिल्ली।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ0 नगेन्द्र पृ.सं. 326,336 मयूर पेपर बैक्स नवीन शाहदरा, दिल्ली।
4. एक साहित्यिक की डायरी–डॉ0 अनीता, पृ.सं. 39, जवाहर अस्तित्वबोध का दर्शन : मुक्तिबोध – पुस्तकालय मथुरा, उ.प्र.।
5. चाँद का मुंह टेढा है–गजानन माधव मुक्तिबोध–पृ.सं. 21, भारतीय ज्ञानपीठ लोदी रोड, नई दिल्ली।
6. हिन्दी काव्य संकलन–डॉ0 रामविलास गुप्त–पृ.सं. 177,169 कमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

समकालीन कविता के आइने में स्त्री छवि

डॉ0 सुषमा पुरवार
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
डी0एस0एन0 कालेज, उन्नाव

पराधीन भारत में भारतीय कवि अपनी ओजस्वी कविताओं से बुझे हुये भारतीय जनमानस में चेतना का संचार कर रहे थे। 1857 की क्रांन्ति हिन्दी कविता के विकास के गवाक्ष खोलती है हिन्दी कविता के सफर में तमाम वादों और आन्दोलनों का अविस्मरणीय सहयोग रहा है। मानवीय संघर्षों की अनिवार्यता पर बल देते हुये आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–''चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो, पर कविता का प्रसार होता रहेगा। बात यह है कि मनुष्य अपने ही व्यापारों का ऐसा सघन और जटिल, मण्डल बाँधता चला आ रहा है जिसके भीतर बन्धा–बन्धा वह शेष सृष्टि के साथ अपने हृदय का सम्बन्ध भूला सा रहता है। इस परिस्थिति में मनुष्य को अपनी मनुष्यता खोने का डर बराबर बना रहता है। इसी से प्रकृति में मनुष्यता को समय–समय पर जगाते रहने के लिये कविता मनुष्य जाति के साथ चली आ रही है और चलेगी, जानवरों को इसकी जरूरत नहीं।''[1] तात्पर्य यहां जानवरों से आशय मानव समुदाय के उस वर्ग से है जिसमें संवेदनशून्यता अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गयी है। 'मुक्ति बोध' अपनी चिन्ता को पाठक वर्ग तक पहुंचाते हैं। इस सन्दर्भ में उनका मानना है कि– ''कविता में कहने की आदत नहीं है मगर कह दूँ, वर्तमान समाज चल नहीं सकता। कविता समाज को पतनोन्मुखी होने से बचाती है, किन्तु समाज अपने पतन पर अड़िग हो जाये तो बात बिगड़ जाती है। समाज के अधोगति में भी साथ देती है कविता।''[2]

कविता की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुये पाश्चात्य विचारक शेली कहते हैं कि– ''कविता की जरूरत उन कालों में सबसे अधिक होती है जब स्वार्थपूर्ण और हिसाब सिद्धान्त के अति के कारण बाह्य जीवन के पदार्थों के संचयन मानव स्वभाव के अनुसार उन पदार्थो को आत्मसात् करने की शक्ति की तुलना में ज्यादा बढ़ जाता है।''[3]

प्रसिद्ध विद्वान पास्तरनाक ने कहा है–''कवि हम क्यों हैं ये मेरी चिन्ता का विषय नहीं है बल्कि चिन्ता इस बात की है कि कवि सच्चा और महान अपने युग के जीवन को श्रेष्ठ तरीके से अद्वितीय ढंग से अभिव्यक्ति करे। कला केवल जीवन का वर्णन भर नहीं है वरन् जीवन की अद्वितीयता का प्रकाशन है।''[4]

वैसे कई दृष्टियों से 'समकालीन कविता' सबसे जोखिम भरे दौर की कविता है। उस पर तीन प्रकार के संकट मंडरा रहे हैं– एक तो उस पर परम्परा वादियों द्वारा बुनियादी ढ़ाचे से मुक्ति के कारण आधुनिकता का आरोप लगाया जाता है। दूसरे आधुनिकतावादियों द्वारा कविता क्यों? का प्रश्न उठाया जाता है और तीसरे उसे दोनों के बीच अपनी अस्मिता की तलाश करनी पड़ती है ऐसे में समकालीन कविता की पहचान करना जोखिम भरा कार्य है।

'साहित्य समाज का दर्पण है' जब समकालीन हिन्दी कविता के सन्दर्भ में इस उक्ति की परीक्षा करते हैं तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि तमाम परम्पराओं से युक्त समकालीन कविता प्रौढ़ोक्ति की कसौटी पर सर्वाधिक खरी उतरती है, क्योंकि समकालीन कवियों ने युग को जिया है, भोगा है, अनुभव किया और उसके बाद उस अनुभवों को आकार दिया, शायद यही कारण है कि समकालीन कविता ज्यादा लिखी जा रही है। समकालीन

कविता के लिये सुधीश पचौरी ने लिखा है कि– ''इस वक्त की कविता लौट चलने की कविता है, करुणा का घर है कवि। इन सब कवियों में एक ही आत्मा समाई हुई है, जो अपनी जड़ों की ओर लौटने के लिए अभिशप्त है। [5]

समकालीन कविता में स्त्री का आना महज़ रूढ़ि का निर्वाह नहीं है। समकालीन कविता की स्त्री पक्षीयता आज समय की आवश्यकता है एक प्रकार से वह समय की धड़कनों में समाई हुई है। सच देखा जाय तो यह स्त्री के सामाजिक–सांस्कृतिक दाखिले का दौर है। राष्ट्रीय आन्दोलन और स्वतन्त्रता प्राप्ति में जो स्त्री भागीदारी उसका पैमाना पुरुषों की तुलना में कम रह जाने पर भी भारतीय स्त्री के मानसिक स्तर को उठाने उन्हें सचेत एवं जागरूक बनाने की दिशा में राष्ट्रीय आन्दोलनों का योगदान काफी सहायक था। यहीं से कवि और कविता की बुनियाद में परिवर्तन हुआ। यहाँ तक कवयित्रियों की संख्या बढ़ती नज़र आयी। जो भी हो यह सब स्त्री पक्षीयता के अलग–अलग रूप ही थे।

मुक्तिबोध की एक कविता इस आशय पर आधारित है ''पुरुष हूँ'' की पंक्तियाँ आधुनिक परिवार के उस मध्यमवर्गीय गृहस्थ के दायित्व बोध एवं अन्तसंघर्ष की परिचायक है –

''पुरुष हूँ, आँसू मैं गिरा नही सकता हूँ।
इसीलिए सूने में, सूने में तकता हूँ।
और मुझमें गर्मी बनकर।
तुम समाई हुई हो।
केवल स्थित भेद है।
और कुछ नही।''[6]

आरम्भिक पंक्तियों में पुरुष होने का अहं व्यक्त है, तो अन्त आते–आते उसमें एक ही स्थिति के युग्म पति–पत्नी होने का ऐलान हैं इसमें स्त्री की दोहरी स्थिति का यथार्थपूर्ण अंकन हुआ है।

आगे की कड़ी धूमिल में मिलती है, उन्होंने मर्द होने का दावा व विपरीत लिंगी–'मादा' कहकर 'स्त्री' का उपहास किया है। यहाँ कवि स्त्री की स्थिति को यथार्थ के आईने में देखता है, जिससे स्त्री पूँजी है, उपकरण है –

''मुझे पता है।
स्त्री देह के अंधेरे में।
बिस्तर की।
अराजकता है।
स्त्री पूँजी है।
बीड़ी से लेकर।
बिस्तर तक।
विज्ञापन में फैली हुई।''[7]

इन पंक्तियों में स्त्री देह को पूँजी बनाने वाली मेधा की निंदा की है। पर स्त्री की दोहरी स्थिति पर कवि चिंतित है।

''पत्नी के लिए'' कविता में देह तो आत्मा तक जाने के लिए सुरंग है रास्ता है।'' बताने वाले कवि ने दूसरे संदर्भ में मादा को भीरू चित्रित किया है–

'नहीं',
अपना कोई हमदर्द।
यहाँ नहीं है।
मैंने हरेक को आवाज दी है।
हरेक का दरवाजा खटखटाया है।
मगर बेकार।
मैंने जिसकी पूँछ उठायी है।
उसको मादा पाया है।' [8]

कविता में परलक्षित 'मादा' का निम्न स्तर एवं बदतर समाजिक दर्जा आगे के समय में धीरे–धीरे कम होता गया। मगर जाने–माने महान कवियों की पंक्तियों के उपबोध भी दोहरी नीति अधिक चर्चा व ध्यान की मांग करती है।

प्राचीनकाल से नारी मानव जीवन के लिए एक वरदान मानी गई है। आज के पूँजीवाद के उपभोक्तावादी निर्मम समय में भी नारी के हृदय की 'करूणा' अपने समय की सबसे बड़ी उपलब्धि है। आज अमानवीय होते जा रहे समय में भी 'स्त्री' में मानवीय मूल्य विद्यमान है। नारी के इस शाश्वत गुणों को देखकर ही मनु ने कहा था–

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' नारी के इस ममतामयी स्वरूप को देखकर जयशंकर प्रसाद ने भी लिखा –

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत जग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।।'' [9]

किन्तु विडम्बना यह है कि सभी के लिए मानवीय संवेदना रखने वाली स्त्री की स्थिति करूणा जनक है। इसलिए रघुवीर सहाय की कविता हमेशा से दुःख में जन्मी, दुःख में जीती औरत के संताप को संप्रेषित करती है।

''इस बूढ़ी औरत की जिंदगी,
दुःख की कहानी है, और
इस नौजवान के पास इतना
वक्त नहीं, वह शायद मौत
के करीब आ चुकी है।'' [10]

पुरुषों के ऐसे तेवर ने कई महिला कवयित्रियों को जन्म दिया। कवयित्रियों के समकालीन कविता परिदृश्य पर नज़र डालें तो उनकी उपस्थिति आश्वस्त कर देने वाली है। उनमें संतोश माया मोहन, शीला सिद्धान्तकार, कात्यायनी, गगन गिल, अनामिका, निर्मला गर्ग, जया जादवानी स्नेहमयी, सन्ध्या गुप्ता, आदि की कविता मानवीय संवेदना के नये आयामों को स्पर्श करती है। समकालीन कवयित्रियों ने अपने लेखन द्वारा पुरुष लेखकों को चुनौती दी। उनके लेखन से यह बात समाने आयी की स्त्री द्वारा लिखी बात जितनी प्रामाणिक व विश्वसनीय होती है उतनी पुरुषों द्वारा नहीं।

उत्तर आधुनिक युग में जो विमर्शों का युग है, उसमें भी समीक्षक स्त्री विमर्श की पुरुष 'दशा' तो बता देते

हैं लेकिन 'दिशा' नहीं दिया पाते।

अतः इस युग में इतनी विसंगतियों के बाद भी हिन्दी कविता हमारा सहयोग कर रही है तो इसे हम अपना सौभाग्य ही समझे।

आज स्त्री लेखन पुरुषवादी हिन्दी आलोचना की परवाह किये बिना अपनी राह पर मजबूती से बढ़ रहा है, आज स्त्री में शरीर बल भले ही न्यून हो पर मनोबल व आत्मबल की उसमें कमी नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 67
2. वर्तमान साहित्य कवितांक – सम्पादक – मोहन राकेश जोशी (1992), पृ0 135
3. नयी कविता – अंक 4, पृ0 88–89
4. पहल अंक 37 – सम्पादक–ज्ञानरंजन, पृ0 85
5. सरिका (समांतर–1) – कमलेश्वर, पृ0 12
6. मुक्तिबोध की कविता का अंश
7. समकालीन बोध और धूमिल का काव्य – हुकुमचन्द्र रामपाल
8. समकालीन बोध और धूमिल का काव्य – जयशंकर प्रसाद
9. कामायनी – जयशंकर प्रसाद
10. हमारे कवि – रघुवीर सहाय की कविता का अंश

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस में दलितोत्थान के विविध विमर्श

डॉ0 (श्रीमती) रानी अग्रवाल
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जुहारी देवी गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर

दलित शब्द का अर्थ है– ''रौंदा, कुचला, दबाया हुआ, पदाक्रान्त। हिन्दुओं में वे शूद्र जिन्हें अन्य जातियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं।''[1] वर्ण–व्यवस्था के कुप्रभाव के स्पर्शास्पर्श, छुआछूत, ऊँची–नीची जाति आदि की सामाजिक रुढ़ियों ने इस वर्ग को और भी अधिक उपेक्षणीय बना दिया है।

जहाँ तक हिन्दी वांगमय में दलितोत्थान का प्रसंग है सर्वप्रथम मेरे मस्तिष्क में श्री रामचरितमानस का ही ध्यान आता है। यह वास्तव में सार्वभौम तथा सर्वकल्याणकारी पवित्र ग्रन्थ है, जिसका आश्रय लेने से लोक, परलोक और परमार्थ सभी सुधरते हैं। यह हिन्दू–समाज का ऐसा दिव्य ग्रन्थ है जिसके अध्ययन से तथा प्रतिपाद्य सिद्धान्तों के मनन से अन्तर में अचिन्त्य अलौकिक ज्योति प्रस्फुटित हो उठती है। एक ओर व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन समुन्नत होता है तो दूसरी ओर समाज का सम्पूर्ण वातावरण श्रेष्ठ गुणों से सुवासित होता है। आज के तमसाच्छन्न समाज में ऐसे दिव्य ग्रन्थ के अधिकाधिक पाठ और स्वाध्याय की परम आवश्यकता है जिससे इसके आदर्शों का अधिकाधिक प्रचार हो तथा उनकी जन–मानस में प्रतिष्ठा हो।

सूत कुल में उत्पन्न सुमंत्र जी, निषाद जाति के निषादराज गुह तथा केवट (नाविक) और भीलवंशोत्पन्ना परम भक्तिमती शबरी – इन सभी पात्रों को श्री रामचरितमानस में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम द्वारा उचित मान–सम्मान तथा प्रतिष्ठा मिली तथा अन्ततोगत्वा उन्होंने परमगति को प्राप्त किया।

सूतकुलोत्पन्न सुमंत्र जी अवधनरेश दशरथ के बालमित्र, सरवा और उनके निजी सारथि थे। उत्तर – कोसल राज्य के महामंत्री तथा समस्त राज्य–सेवकों के अध्यक्ष भी थे। महाराज दशरथ प्रत्येक राज्य कार्य इनके परामर्श एवं सम्मति से ही करते थे। श्रीराम के प्रति इनका अगाध स्नेह था और वे भी इन्हें पितृ–तुल्य मानते थे–

'तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरे।' (मानस, 2/95/)

जब महाराज दशरथ के आदेशानुसार सुमंत्र जी लक्ष्मण और सीता सहित श्रीराम को रथ में बैठाकर श्रृंगवेरपुर पहुंचे और श्रीराम व लक्ष्मण जी ने वट के दूध से अपने घुंघराले बालों को चिपकार जटा बना लिया तब सुमंत्र जी छटपटा उठे और –

'अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए।'

(मानस, 2/93/2)

सुमंत्र जी रघुनंदन के बिना अकेले अयोध्या नहीं लौटना चाहते थे। बारम्बार विनयपूर्वक याचना करने के उपरान्त भी जब श्रीराम के सम्मुख कोई वश न चलते देख वे राजा दशरथ का संदेश सुनाकर शिशु की भांति रोने लगे। श्रीराम के प्रति अतिशय प्रीति के कारण महामति सुमंत्र जी की बुद्धि काम नहीं कर रही थी। वे जलहीन मीन की भांति छटपटा रहे थे–

'नयन सूझ नहिं सुनई न काना । कहि न सकइ कछु अति अकुलाना।'

(मानस, 2/98/2)

श्री रघुनाथ जी ने अत्यन्त आदरपूवर्क सुमंत्र जी को समझाया और नौकारूढ़ होकर गंगापार चले गये। श्रीराम के अपने से दूर जाने पर वे विह्वल होकर फूट–फूट कर रोये। रात्रि के अंधकार में उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया क्योंकि नगरवासियों का सामना करने का उनमें साहस न था। महाराज दशरथ के प्राण त्यागने पर सुमंत्र जी ने धैर्य धारण कर राज्य–व्यवस्था संभाली। जब भरत जी श्रीराम की पादुका लेकर लौटे और उन्हें राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया तब भी चौदह वर्षों तक वे श्रीराम का स्मरण करते हुए राज्य की व्यवस्था सुचारू रूप से करते रहे। अन्ततः प्रभु श्रीराम अयोध्या लौटे।

श्रीराम जी ने सुमंत्र को अपने पिता की भांति सम्मान प्रदान किया। ऐसा आदर्श श्रीरामचरितमानस के अतिरिक्त कहाँ मिलना संभव है जहाँ कुल का विचार न करके सुमंत्र जी महामंत्री के उच्चतम पद पर आजीवन आसीन रहे।

निषादों के राजा गुह दशरथनन्दन श्रीराम के प्रिय सखा थे। ये पुण्यतोया जाह्नवी के तट पर श्रृंगवेरपुर में निवास करते थे। आखेट के समय ये प्रायः श्रीराम के साथ रहते तथा उनकी समस्त सुविधा की व्यवस्था करते थे। श्रीराम के प्रति इनकी प्रीति अलौकिक थी –

'नहि रामात् प्रियतमो ममास्ते भुवि कृचन ।
ब्रवीम्येव च ते सत्यं सत्येनैव च ते शपे ।।' (वा0 रा0 2/51/4)

श्री सीता जी और लक्ष्मण सहित श्रीराम के उनके राज्य में पधारने के समाचार ने उन्हें आह्लादित कर दिया। वे भक्तिपूर्वक फल, मधु, पुष्पादि लेकर वृद्ध मंत्रियों एवं बन्धु–बान्धवों सहित भेंट की सामग्री लेकर उपस्थित हुए और भावावेश में दण्ड की भांति पृथ्वी पर गिर पड़े। श्रीराम जी ने तुरन्त उन्हें उठाकर गले से लगाया और कुशलक्षेम पूछी। गुह ने हाथ जोड़कर कहा –

'धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन।। (अ0रा0 2/5/64)

और अत्यन्त विनय के साथ कहा–

देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा ।।
कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिअ जनु –सबु लोगु सिहाऊ ।।

(मानस 2/87/3–3)

जब गुह को श्रीराम के पिता द्वारा वनवास की बात ज्ञात हुई तो वे अत्यन्त दुखी हुए। रात्रि में वृक्ष के नीचे कुश की साथरी पर अत्यन्त कोमलांगी देवी सीता तथा सुकोमल प्रभु श्रीराम को शयन करते देख अधीर होकर रो पड़े। गंगापार दो–चार दिन वे प्रभु के साथ रहने के उपरान्त उनकी आज्ञा से श्रृंगवेरपुर लौटे। परन्तु अपने अनुचरों से श्रीराम का समाचार प्राप्त करते रहते थे। जब भरत जी श्रीराम जी को लौटाने चित्रकूट जाते समय श्रृंगवेरपुर पहुंचे तो रामभक्त गुह ने अत्यन्त आदरपूर्वक ससैन्य उनको गंगापार उतार दिया और स्वयं भी उनके साथ चित्रकूट पहुंचे। चित्रकूट से लौटने पर उनका मन अहर्निश श्रीराम के चरणों में ही लगा रहता था।

''भक्तमाल में गुह जी की भक्ति के सम्बन्ध में यह लिखा है कि जिस प्रकार चित्रकूट से लौटने पर श्री भरत जी ने 'महि खनि कुस साथरी सँवारी' थी, उसी प्रकार निषादराज भी चौदह वर्ष तक नेत्र मूंदकर रहे। रोते–रोते उनकी आँखों से रुधिर तक गिरने लगा था परन्तु उनकी प्रतिज्ञा थी, कि श्रीरामरूप को देखकर ही नेत्र खुलेंगे, वरना बंद ही रह जायेंगे।''[2]

अन्ततः वह दिन भी आया जब प्रभु देवताओं का कार्य सिद्ध कर और वनवास की अवधि पूर्ण करके गंगातट

पर पहुंचे। यह समाचार ज्ञात होते ही गुह जी प्रेमाकुल होकर प्रभु के दर्शनार्थ दौड़ पड़े। कृपानिधान भगवान श्रीराम ने निषादराज को–

'प्रीति परम विलोकि रघुराई। हरषि उठाई लियो उर लाई।।''

(मानस, 6/120/6)

निषादराज के तन, मन और प्राण–सभी आनन्दमग्न हो गये। करुणामूर्ति प्रभु श्रीराम अयोध्या पधारे और राज्य सिंहासनासीन हुए। निषादराज उक्त महोत्सव में आदि से अन्त तक उपस्थित रहकर अपने योग्य सेवा का कार्य करते और प्रभु की मनोहर मूर्ति के दर्शन कर अकथनीय सुख का अनुभव करते रहे। सबको विदा करते समय कमलनयन श्रीराम ने निषाद को बड़े ही प्रेम से अपने पास बुलाकर उन्हें बहुमूल्य भूषण–वसन प्रदान किये और अतिशय स्नेहासिक्त वाणी में कहा–

''जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम वचन धर्म अनुसरेहू।।
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।।''[3]

(मानस, 7/19/1–1)

करुणामय जगदाधार प्रभु श्रीराम ने इस प्रकार जाति का विचार न करके निषादराज को मित्रवत् तथा कनिष्ठ भ्राता के समकक्ष आजीवन स्नेह प्रदान किया।

निषाद जाति के श्रीरामचरणानुरागी केवट के प्रति प्रभु श्रीराम की प्रीति रामचरितमानस में विशिष्ट स्थान रखती है। प्रभु–पद कमलों में केवट की श्रद्धा–भक्ति और प्रीति की सीमा नहीं है। जब भगवान श्रीराम सीता जी और लक्ष्मण सहित केवट से गंगा नदी पार कराने के लिए कहते हैं तो–

'माँगी नाव न केवटु आना।' (मानस 2/99/1)

साधारण सा अनपढ़ रामभक्त केवट प्रभु से हठ करता है कि पहले अपने पद पद्मों का प्रक्षालन करने दीजिये तभी पार उतारेगा। ''कितना हठी भक्त है। न जाने कितने जन्मों के कितने महान पुण्य इस साधारण जीव केवट ने किये होंगे, जिसके सामने सृष्टि के रचयिता सर्वशक्तिमान प्रभु साधारण नाव के लिए याचना कर रहे हैं।''[4]

अन्ततः केवट के तर्क के समक्ष श्रीराम को विकल्पहीन होकर कहना पड़ा–

''कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोई करु जेहि तव नाव न जाई।।
वेगि आनु जल पाय पखारू। होत विलम्बु उतारहि पारू।।''

(मानस, 2/100/1)

प्रभु के शीघ्रता करने पर कहता है –'महाराज जी ! अब जल्दी न मचाइये। यह साधारण कृत्य नहीं है। पूरे परिवार के साथ ही कर पाऊँगा और अभी तो आपसे पहले ही पार जाने के लिए जो लाइन में खड़े हैं, उन्हें पार उतारना होगा। ..... देखिए हमारे पितृगण कितनी आशा से प्रतीक्षा कर रहे हैं, ऐसा अवसर फिर क्या कभी आयेगा। पहले उन्हें पार उतारूँगा। महाराज जी ! बस आप शान्त रहें। केवट ने खूब रगड़–रगड़कर प्रभु–पादों का प्रक्षालन कर चरणामृत को अपने परिवार में बांटा, सबको पिलाया और स्वयं भी पान किया। इस प्रकार केवट ने न केवल अपना और अपने परिवार का कल्याण किया प्रत्युत न जाने कितनी पीढ़ियों के अपने पितरों का उद्धार भी कर दिया।'[5] प्रभु द्वारा उतराई में मणिमुद्रिका देने पर केवट व्याकुल होकर उनके चरण पकड़ कर मजदूरी लेना अस्वीकार कर देता है और भावाविभोर होकर कहता है–

'नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा।।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी।।'

(मानस, 2/101/3)

प्रभु ने भी उसे प्रसन्नतापूवर्क विदा किया, परन्तु खाली हाथ नहीं, उसे वह दुर्लभ वस्तु दे दी जिसे बड़े–बड़े ऋषि–मुनि अनेक जन्मों तक कठोर–तपस्या और योग–साधना करके भी नहीं प्राप्त कर पाते–

'विदा कीन्ह करुनायतन भगति विमल बरु देई'।

धन्य हैं केवट ! धन्य है उसकी भक्ति। और धन्य हैं जीवोद्धारक भगवान श्रीराम!

परम भक्तिमती शबरी का जन्म तो भीलवंश में हुआ था, किन्तु उसके संस्कार अत्यन्त शुभ थे। मूक असहाय पशु–पक्षियों की हिंसा देखकर उसका मन अशान्त हो जाता और उसके प्राण छटपटाने लगते। अतः कोमलमना दयालु शबरी ने घर का परित्याग कर दिया। उसने मतंग ऋषि के इन वचनों को आत्मसात् कर लिया –''भगवान् की प्राप्ति के लिए भगवान् के बन जाओ। अपना तन, मन, प्राण, बुद्धि, अहंकार आदि सब कुछ प्रभु पर अर्पित कर दो। भगवान् का ध्यान, भगवान् के नाम का जप और भगवान् की कथा का श्रवण–मनन उन्हें प्राप्त करने का सरल और सुगम साधन हैं। तुम शुद्ध हृदय से उनकी ओर एक पग चलोगे तो वे महिमामयी दयानिध ाान प्रभु सहस्र–सहस्र पग तुम्हारी ओर बढ़ आयेंगे।''[6] उसकी बुद्धि में यह बात अच्छी तरह समा गयी थी कि भक्त भगवान को प्राणों से अधिक प्रिय होते हैं। मतंग मुनि ने अपने आश्रम में उसकी कुटिया की व्यवस्था कर दी। बस क्या था? वह दूर से ऋषियों के चरणों में प्रणाम करती, मतंग ऋषि का उपदेश सुनती और रात–दिन श्रीराम के ध्यान और भजन में तन्मय रहती। मुनि के दिये प्रसाद को एक समय श्रृद्धापूर्वक ग्रहण करके जीवनयापन करती। मुनि ने अन्तिम समय उसको वचन दिया था कि भुवनमोहन करुणासिन्धु श्रीराम यहाँ स्वयं उसको दर्शन देने पधारेंगे। वह दिवस शीघ्र आया जब मुनि की वाणी सत्य हई। प्रेममूर्ति भगवान श्रीराम भक्तिमती शबरी की कुटिया के द्वार पर स्वयं आकर खड़े हो गये। वह प्रभु के चरणारविन्द को पकड़कर उनके मुखारविन्द को अपलक नेत्रों से निहारने लगी। वाणी अवरुद्ध हो गयी, उसने सानुज प्रभु को आसन अर्पित किया, चरण प्रक्षालन कर चरणोदक अपने शरीर पर छिड़का। श्रृद्धा एवं प्रीतिपूर्वक एकत्रित किये प्रेम से सराबोर मीठे फलों को अर्पित किया। ''शबरी के मीठे बेरों को खाते समय भगवान श्रीराम अनुभव कर रहे थे, जैसे उनकी जन्म देने वाली प्रेममयी जननी कौशल्या जी उन्हें भोजन करा रही हों।''[7] तत्पश्चात् शबरी ने श्रीराम से निवेदन किया –

''केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अधारी ।''

(मानस, 3/34/1–1)

शबरी के अन्तर्हृदय की विशुद्ध प्रीति और दीनता देखकर श्रीराम ने उससे कहा–

''पुरुषत्व–स्त्रीत्व का भेद, अथवा जाति, नाम और आश्रम – ये कोई भी मेरे भजन के कारण नहीं हैं। उसका कारण तो एकमात्र मेरी भक्ति ही है। जो मेरी भक्ति से विमुख हैं, वे यज्ञ, दान, तप अथवा वेदाध्ययन आदि किसी भी कर्म से मुझे कभी नहीं देख सकते।'' (मानस, 3/34/2–3)

भगवान् श्रीराम ने शबरी की भक्ति के वशीभूत होकर उससे नवधा भक्ति का वर्णन किया–

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
हठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोते संत अधिक करि लेखा।।

आठवँ जथालाभ संतोशा। सपनेहु नहि देखई परदोशा।।
नवम सरल सब सन छलहीना ।। मम भरोस हियँ हरश न दीना।।

(मानस 3/34/4; 35; 3/35/1–2)

श्रीराम ने शबरी को पुनः बताया कि स्त्री–पुरुष ही नहीं, चराचर प्राणियों में से किसी में यदि उपर्युक्त नौ प्रकार की भक्ति में से एक भी भक्ति हो तो वह प्रभु को अत्यन्त प्रिय है। (जैसे–सखा सुग्रीव, प्रेमी जटायु, परम भक्त काक भुशुण्डि) उसकी भक्ति तो सब प्रकार से दृढ़ है जो गति बड़े–बड़े योगियों के लिए दुर्लभ है इसीलिए आज वह उसे सुलभ हो गयी–

'जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भई सोई''।।

(मानस, 3/35/4)

अतः ''यस्मान्मद्भक्तियुक्ता त्वं ततोऽहं त्वामुपस्थितः।
इतो सद्दर्शनान्मुक्तिस्तव नास्त्यत्र संशयः ।।

(अध्यात्म रामायण 3/10/31–32)

भीलवंशोत्पन्ना शबरी की साधना सफल हुई, प्रभु–पद्पद्मों की दृढ़ भक्ति उसे प्राप्त हो गयी और उसका जीवन संवर गया। उसने दुर्लभ परम अनुपम पद को प्राप्त किया।

ऐसे अधमतारण, पतित पावन, श्रीराम के दिव्यतम स्वरूप को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं–

भुवनभावन राम नमोऽस्तु ते
निजजनावन राम नमोऽस्तु ते
अधमधावनतारणतृष्णया
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते ।

(साहियाचार्य पं0 श्रीरामनारायण दत्त जी शास्त्री 'राम')

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत् हिन्दीकोष, ज्ञानमण्डल, लिमिटेड, वाराणसी
2. मानस रहस्य, श्री जयरामदास 'दीन' रामायणी, पृ0 368
3. कल्याण, श्रीरामांक, 1946 'रामभक्त निषादराज'– पं0 शिवनाथ दुबे, पृ0–414
4. कल्याण, श्रीरामभक्ति अंक 1968, 'राम–भक्त केवट'–श्री शिवकुमार पाठक– पृ0–350
5. कल्याण, श्रीरामभक्ति अंक 1968, 'राम–भक्त केवट'–श्री शिवकुमार पाठक– पृ0–350–351
6. कल्याण, श्रीरामांक–1946, 'रामभक्त शबरी' श्रीमती सावित्री त्रिपाठी, पृ0 431
7. कल्याण, श्रीरामांक–1946, 'रामभक्त शबरी' श्रीमती सावित्री त्रिपाठी, पृ0 433
8. रामायण–वाल्मीकि
9. श्रीरामचरितमानस–गोस्वामी तुलसीदास

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

क्रोचे और उनका अभिव्यंजना सिद्धांत

डॉ. बिपिन कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बी. एच. यू. वाराणसी– 221005

क्रोचे का जन्म इटली के प्रसिद्ध नगर नेपुल्स में 1866 में हुआ था। दर्शन, कला और साहित्य में उनकी विशेष अभिरूचि थी। वे इटली की संसद (सेनेट) में सदस्य और मंत्री थे। अनुभव के धरातल पर देखा जाय तो वे जीवन के विविध पहलुओं लोक–दर्शन–साहित्य और राजनीति को आत्मसात किये हुए दिखाई पड़ते हैं। उनके कार्य और अनुभव का धरातल व्यापक होने के कारण उनका चिन्तन विशिष्ट रूप से हमारे सामने उपस्थित होता है। दर्शन में विशेष अभिरूचि होने के कारण उनका 'साहित्य–सिद्धान्त' अधिक तर्कसंगत एवं दार्शनिक आलोचना पद्धति प्रस्तुत करता है। उनकी मृत्यु 1952 ई0 में हुई।

क्रोच की प्रसिद्धि का आधार कला और काव्य चिन्तन के क्षेत्र में दिया गया 'अभिव्यंजना सिद्धान्त' है। इसका प्रतिपादन उन्होंने अपने ग्रंथ एस्थेटिका (Esthetica) में किया। 1900 ई0 में नेपुल्स में सौंदर्य शास्त्र पर क्रोचे ने तीन भाषण दिये। उन्हीं का विस्तृत रूप यह ग्रंथ है। देवेन्द्र नाथ शर्मा इसे ईस्थेटिक (Esthetic) नाम से उद्धृत करते हैं। ईस्थेटिक के दो भाग हैं : प्रथम भाग में सौन्दर्यशास्त्र का सिद्धान्त विवेचन है और द्वितीय भाग में सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास है। सत्यदेव मिश्र एस्थेटिक्स (aesthetics) नाम से इसे अभिहित करते हैं। वे एस्थेटिक्स को स्वतंत्र कृति के रूप में स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार क्रोचे की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति 'फिलॉसफी ऑफ द स्पिरिट' (philosophy of the spirit) है, जिसके चार खण्ड हैं–

I- एस्थैटिक्स (aesthetics)
II- लॉजिक (logic)
III- फिलॉसफी ऑफ काण्डक्ट (philosophy of conduct)
IV- थ्योरी एण्ड हिस्ट्री आफ हिस्टोरियोग्राफी (theory and history of historiography)

इस तरह 'एस्थेटिक्स,' 'फिलॉसाफी ऑफ द स्पिरिट' का एक भाग है न कि स्वतंत्र ग्रंथ।

कला और काव्य की परिणाम के लिए क्रोचे का सिद्धान्त 'अभिव्यंजनावाद' इसी 'ऐस्थेटिक्स' में प्रतिपादित किया गया। क्रोचे के इस सिद्धान्त की व्यापक प्रतिक्रिया हुई। जिसका जवाब उन्होंने अपने लिखित भाषणों में दिया; जो एसेन्स ऑफ एस्थेटिक के रूप में 'डगलस ऐंसिली' के द्वारा अनुवादित कर प्रकाशित किये गये हैं। ये भाषण टेक्सास के राइस इंस्टीट्यूट ऑफ होस्टन (Rice institute of Houston of Taxas) के उद्घाटन–व्याख्यान के लिए सन् 1912 में लिखे गये। एसेन्स ऑफ ऐस्थेटिक के चार भाग हैं–

- कला क्या है?
- कला के सम्बन्ध में पूर्वाग्रह
- मानवात्मा और मानव–समाज में कला का स्थान
- आलोचना और कला का इतिहास

साहित्य जगत में अभिव्यंजनावाद के तत्वों की सर्वप्रथम उपस्थिति 19वीं सदी के अंतिम दशक में 'फ्रेंक वेदेकिन्द' (Frank wedekind) के नाटक 'फ्रेहलिंगस इरवाचेन'(Fruhlings Erwachen-1891) से मानी जाती है। बाद में इसकी आभिव्यक्ति 'अगस्त स्टरिंदबर्ग'(August strindberg) के नाटक में भी हुई है।

क्रोचे मूलतः दार्शनिक हैं। दर्शन की मूलतः दो धारायें हैं–

I- आत्मवादी (प्रत्ययवादी)

II- भौतिकवादी (जड़वादी)

प्रत्ययवाद के अनुसार यह विश्व और सकल पदार्थ विश्व की विराट चेतना में प्रत्यय के रूप में स्थित है। बाह्य जगत् जो कि प्रत्यक्ष दृश्य है उस अमूर्त प्रत्यय का मूर्त अनुकरण मात्र है।

भौतिकवादी नजरिया लोकोत्तर अमूर्त दृष्टि के विपरीत मूर्त है। अनुभववाद रूप को वस्तु का अभिन्न अंग स्वीकार करता है। रूप वस्तु के कारणों में से एक है।

क्रोचे आत्मवादी दार्शनिक हैं। वे 'हीगेल' से प्रभावित रहे हैं। हीगेल ने आत्मा की तीन प्रवृत्तियाँ मानी है–

I- ज्ञानात्मक

II- व्यावहारिक

III- आध्यात्मिक

क्रोचे आत्मा की मूलतः दो प्रवृत्तियां और उनके दो–दो भेद स्वीकार करते हैं–

I- ज्ञानात्मक प्रवृत्ति

(क)अन्तः प्रज्ञा (सहजानुभूति)

(ख) विचारात्मक क्रिया/तर्कात्मक

II-व्यावहारिक प्रवृत्ति–

(क) आर्थिक या निजी योग क्षेत्र से सम्बद्ध

(ख) नैतिक

क्रोच कला और साहित्य का सम्बन्ध इन चारों में से अन्तःप्रज्ञा में जोड़ते हैं। अन्तः प्रज्ञात्मक ज्ञान ही कला–विवेचन के लिए उपयोगी है, तर्कात्मक ज्ञान क्यों नही? इसका स्पष्ट विवेचन क्रोचे करते हैं– ''ज्ञान के दो रूप हैं : अंतः प्रज्ञात्मक या तर्कात्मक; कल्पना के द्वारा प्राप्त ज्ञान या बुद्धि के द्वारा प्राप्त ज्ञान; व्यक्ति का ज्ञान अथवा सामान्य का ज्ञान; पृथक्–पृथक् वस्तुओं का ज्ञान या उनमें विद्यमान संबंधों का ज्ञान; बिंबों का उत्पादक ज्ञान या संप्रत्ययों का उत्पादक ज्ञान।''

(Knowledge has two forms: It is either intuitional Knowledge or logical knowledge; knowledge obtained through the imagination or knowledge obtained through the intellect; knowledge of the Individual or knowledge of the universal; of individual things or of the relations between them; it is, in fact, Productive either of images or of concepts.)

ज्ञान के दोनों प्रकारों का स्पष्ट अन्तर निम्न है–

अंतःप्रज्ञात्मक ज्ञान	तर्कात्मक (बौद्धक ज्ञान)
• कल्पना के द्वारा प्राप्त ज्ञान	• बुद्धि के द्वारा प्राप्त ज्ञान
• व्यक्ति का ज्ञान (Individual)	• सामान्य का ज्ञान (Universal)
• पृथक्–पृथक् वस्तुओं का ज्ञान	• वस्तुओं के संबंधों का ज्ञान
• बिम्बों (tinges) का उत्पादक ज्ञान	• संप्रत्ययों (concepts) का उत्पादक ज्ञान

क्रोचे की कला विषयक धारणा की आधारशिला अंतःप्रज्ञा (Intuition) और अभिव्यंजना (expression) का नित्य संबन्ध।

इंट्यूशन (Intution) के लिए हिन्दी में स्वयं प्रकाश ज्ञान, सहज ज्ञान, सहजानुभूति, अन्तर्ज्ञान, अंतर्बोध और अंतःप्रज्ञा जैसे अनेक शब्द प्रचलित हैं। 'अंतःप्रज्ञा' शब्द 'वैज्ञानिक एवं तकनीकि शब्दावली आयोग' द्वारा मान्य शब्द है।

जब तक अंतः प्रज्ञा 'अभिव्यंजना' नहीं बनती तब तक उसका ज्ञान ही नहीं होता। इसलिए दोनों को अलग–अलग करके समझना जरूरी हो जाता है।

अतंःप्रज्ञा (Intuition)

किसी वस्तु की सत्ता का ज्ञान 'प्रमाण' से होता है। प्रमाण मुख्यतः तीन हैं–

- प्रत्यक्ष प्रमाण
- अनुमान प्रमाण
- शब्द प्रमाण

प्रत्यक्ष प्रमाण – कान से शब्द, त्वचा में स्पर्श, आँख में रूप, जीभ में रस, और नाक से गंध का ज्ञान होता है। यही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अनुमान प्रमाण – पूर्व प्रत्यक्ष के आधार पर अप्रत्यक्ष का ज्ञान अनुमान प्रमाण है। उदाहरण के लिए सर्दी के मौसम में घने कुहरे के बीच से दो समानान्तर आती हुई रोशनी से हम सोंचते हैं कि वह कोई कार, जीप या ट्रक आदि होनी चाहिए। यह ज्ञान अनुमान के द्वारा प्राप्त होता है।

शब्द प्रमाण – विश्वासनीय व्यक्ति (आप्त) के कथन से जो–जो ज्ञान प्राप्त होता है वह शब्द प्रमाण है। उदाहरण के लिए 'देश में आये दिन हो रही तमाम घटनाओं से हमारा प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं होता। रेडियो आदि पर समाचार सुनकर हम उसको स्वीकार कर लेते हैं।'

इस तरह प्रत्यक्ष ऐंद्रिय ज्ञान हैं। अनुमान–प्रत्यक्ष के आधार पर अप्रत्यक्ष का ज्ञान है। शब्द– आप्तवचन से प्राप्त ज्ञान है।

आत्मा–परमात्मा जैसे निगूढ़ और सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान न तो प्रत्यक्ष से संभव है, न अनुमान से और न शब्द से। इसके लिए एक मात्र साधन अंतःप्रज्ञा है, जिसके आलोक में अदृश्य भी दिखाई देने लगता है; अव्यक्त भी व्यक्त बन जाता है; अरूप भी रूप ग्रहण कर लेता है। यह एक प्रकार की आत्मिक अनुभूति है जो सहाज स्फुरित हो उठती है। यही अनुभूति 'सोऽहम्' (मैं वह हूँ), अहम् ब्रह्मष्मि (मैं ही ब्रह्म हूँ), तत् त्वम् असि (तुम वह हो), सर्वं खलु इदं ब्रह्म (यह सब कुछ ब्रह्म ही है) घटि–घटि गोरश फिरै निरूता (प्रत्येक शरीर में ईश्वर का वास है) मोको कहां ढूढै बंन्दे मैं तो तरे पास में, आदि वाणियों में प्रकट हुई हैं। योगी का ईश्वर, कवि की कविता और कलाकार की कला अंतःप्रज्ञा की ही अभिव्यक्ति है। अतः दार्शनिक, योगी, कवि, कलाकार अपनी आत्मिक अनुभूति के आधार पर अंतःप्रज्ञा की सत्ता का उद्घोष करते हैं जबकि विज्ञान केवल प्रत्यक्ष और अनुमान समर्थित ज्ञान को स्वीकार करता है।

अभिव्यंजना :– अभिव्यंजना आत्मा की अपनी सौंदर्य बोध सम्बन्धी प्रक्रिया है। यह सौन्दर्य–प्रधान आत्मानन्दमूलक व्यापार है। यह सहजानुभूति की क्रिया है। इसकी पूर्णता आत्मा में ही होती है। इसे बाह्य प्रकृति प्रभावित नहीं करती। क्रोचे ने 'अभिव्यंजना' के चार स्तरों का उल्लेख किया है–

"The Complete Process of aesthetic Production can be symbolized in four steps-

- Impression.
- Expression or spiritual aesthetic synthesis,
- hedonistic accompaniment or the pleasure of the beautiful and
- Translation Of the aesthetic Fact into physical phenomenon."

अर्थात्

- अन्तःसंस्कार अथवा आत्म–संवेदन
- अभिव्यंजना
- आनुषंगिक आनन्द
- अभिव्यक्ति

अन्तःसंस्कार :– मानवात्मा अनन्त अन्तःसंस्कारों का भण्डार है। अन्तःसंस्कार मानवात्मा में केन्द्रीभूत होते रहते हैं। किसी वस्तु अथवा बिम्ब के प्रत्यक्षीकरण से मन पर उसकी जो छाप पड़ती है, वह अन्तःसंस्कार है।

अभिव्यंजना – क्रोचे ने अभिव्यंजना, सौन्दर्य तथा स्वयंप्रकाश ज्ञान को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया है। यह बिना किसी बौद्धिक क्रिया अथवा विचारण से उठी हुई एक मूर्त भावना है। यह मूर्त भावना आत्मा की अपनी सहज क्रिया है अथवा स्वयंप्रकाश ज्ञान है और यही कला है। अतः कला और अभिव्यंजना एक ही हैं। यही मूर्त भावना सुन्दर है। इसके अतिरिक्त संसार में कुछ भी सुन्दर नहीं, प्रकृति भी नहीं। सुन्दर अगर है तो अभिव्यंजना अथवा स्वयंप्रकाश ज्ञान। सौन्दर्य मात्र अभिव्यंजना का होता है।

"We may define beauty as successful expression or better as expression and nothing more because expression, when it is not successful, is not expression."

क्रोचे अभिव्यंजना को विशुद्ध कला का रूप मानते हैं। अन्तःसंस्कारों के उद्‌बुद्ध होने से मन अथवा आत्मा में काल्पनिक मूर्ति प्रतिबिम्बित होती है। यह प्रतिबिम्बित मूर्ति ही अभिव्यजना है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया चूंकि आत्मिक है इसलिए इसका सम्बन्ध न तो बाह्य प्रकृति और न ही अंतः प्रकृति से है। कलाकार इस क्रिया की ओर विशुद्धतः आत्मसुख के कारण प्रवृत्त होता है। इसको एक उदाहरण से समझा जा सकता है– 'हमने बादल का एक टुकड़ा देखा तो हम उसमें एक अल्हड़ नारी के सादृश्य की परिकल्पना करने लगे या यूँ कहें हमारे मन में बिना किसी बौद्धिक क्रिया के सहज रूप से अल्हड़ नारी की आकृति उभर आयी।' क्रोचे इसी 'अल्हड़ नारी' सम्बन्धी परिकल्पना को सहजानुभूति (सहज ज्ञान) कहते हैं। अल्हड़ नारी सम्बन्धी सहज ज्ञान हमारे अन्तःसंस्कारों के कारण हैं। क्योंकि अल्हड़ नारी सम्बन्धी संस्कार हमारे मन में पहले से ही विद्यमान थे।

क्रोचे के अनुसार अभिव्यंजना एक अखंड इकाई है। उसका विश्लेषण उसके सौंदर्य को नष्ट कर देगा। किसी चित्र में रंग, रेखाओं, आकृतियों, पृष्ठभूमि आदि को अलग–अलग करके देखना उस चित्र के समग्र प्रभाव को खण्डित कर देता है। चित्र का सौन्दर्य सभी तत्वों के सम्मिलित, समंजस, समग्र प्रभाव में निहित होता है। कलाकार के मानस में भी प्रभाव बिंब विखंडित रूप में नहीं उभरते, इसलिए कल्पना उस प्रभाव को जो रूपाकार देती है उसमें भी बिंब संश्लिष्ट होते हैं और प्रभाव समग्र तथा एकीकृत होता है। इसलिए अभिव्यंजना या कला भी एक समग्र इकाई होती है।'

क्रोचे कला का कोई प्रयोजन या उद्‌देश्य नहीं मानते। 'कला' कला के लिए ही होती है। वह किसी महत् उद्‌देश्य का साधन नहीं है। वह स्वयं साध्य है। उसे लेकर नैतिक–अनैतिक का प्रश्न भी नहीं उठना चाहिए।

क्रोचे के अनुसार – भौतिक तथ्यों में वास्तविकता नहीं होती और कला चरमसत्य या वास्तविकता है जिसकी साधना के लिए लोग पूरा जीवन लगा देते हैं और जिससे उन्हें दिव्य आनन्द प्राप्त होता है। यह वस्तु भौतिक तथ्य नहीं हो सकती जो कि अवास्तविक हैं।

(That physical facts do not Process reality and that art to which many people devote their whole lives and which fills all with a divine joy. is supremely real, those it cannot be a physical fact, which is something unreal.)

क्रोचे के अनुसार – कला के वस्तु और रूप में स्पष्ट अन्तर करना चाहिए परन्तु उन्हें अलग–अलग कलात्मक विशेषण नहीं देना चाहिएः क्योंकि उनका संबन्ध ही कलात्मक है– अर्थात् उनका ऐक्य निर्जीव निराकार ऐक्य नहीं; वरन् जीवन्त ठोस ऐक्य, जो समन्वय रूप है, वही कला है। कला, वास्तव में सौन्दर्यात्मक समन्विति है। कहा जा सकता है कि बिम्ब के बिना अनुभूति अन्धी है और अनुभूति के बिना बिम्ब रिक्त या खोखला है। कलात्मक भावना के लिए अनुभूति और बिम्ब, दोनों की समन्विति के बाहर सत्ता नहीं। उनकी सत्ता जो बाहर होगी वह कलात्मक नहीं, वरन् ज्ञान के क्षेत्र में राग, द्वैष, घृणा, इच्छा आदि के रूप में अनुभूति तथा

जड़ नीरस रूप में बिम्ब रह जायेंगे।''

(Content and form must clearly be distinguished in art, but must not be separately qualified as artistic, precisely because their relation is only artistic-that is, their unity concrete and living which is that of synthesis and art is true aesthetic, synthesis a priori of feeling and image is intuition. It may be repeated that feeling without image is blind and image without feeling is void. Feeling and image do not exist for the artistic spirit outside the synthesis.)

उपर्युक्त विश्लेषण से अभिव्यंजना की निम्न विशेषताएँ निकलकर सामने आती हैं–

I- अभिव्यंजना एक आत्मिक क्रिया है।

II- अभिव्यंजना स्वयं प्रकाश ज्ञान है।

III- सौन्दर्य, मात्र अभिव्यंजना का होता है।

IV- अभिव्यंजना विशुद्ध कला का रूप है।

V- अभिव्यंजना एक और अखण्ड इकाई है।

VI- अभिव्यंजना का कोई प्रयोजन और उद्देश्य नहीं होता।

VII- अभिव्यंजना चरम सत्य है।

VIII- अभिव्यंजना वस्तु और रूप का ऐक्य है।

आनुषंगिक आनन्द :– अभिव्यंजना की सौन्दर्यात्मक उपस्थिति से आत्मानन्द का अनुभव होता है अर्थात् मानव हृदय अभिव्यंजना के क्षणों में आनन्द से भर जाता है, यही आनुषंगिक आनन्द है। यह अभिव्यंजना की अनिवार्य परिणति है। क्रोचे के अनुसार–'जब तब अभिव्यंजना पूर्ण न होगी; कलाकार को आनन्द उपलब्ध नहीं हो सकता तथा जो आत्म संवेदन, आत्मस्पन्दन अथवा अन्तःसंस्कारों का उद्बोधन आत्मानुगत अभिव्यक्ति के स्तर को प्राप्त नहीं होता, वह अभिव्यंजना नहीं, अभिव्यंजना का पूर्व स्तर है।

अभिव्यक्ति :– अभिव्यंजना की सौन्दर्यात्मक उपस्थिति से आत्मानन्दित मानव स्थूल माध्यमों (रंग, रेखा, शब्द, स्वर आदि) से जन सामान्य को बोध कराता है। यही अभिव्यक्ति है। आत्मिक क्रिया होने के कारण अभिव्यंजना को वास्तविक स्थूल रूप नहीं दिया जा सकता। अभिव्यक्ति पूर्ण क्रिया का अपूर्ण रूप है। डॉ0 नगेन्द्र ने क्रोचे के इस विचार को निम्न प्रकार से उद्धत किया है– ''क्रोचे के अनुसार कलात्मक सृजन व्यापार सहजानुभूति की क्रिया है जो मन में ही पूर्णता प्राप्त कर लेती है। कलाकार उस क्रिया की ओर विशुद्धतः आत्मसुख के कारण प्रवृत्त होता है। कलाकार उसे शब्द, प्रस्तर, रंग अथवा स्वर–साम्य में परिवर्तित करके मूर्तरूप प्रदान कर सकता है। परन्तु जिस बहिरंग रूपाकार का निर्माण वह करता है, वह उसकी सृजनात्मक अनुभूति का अनिवार्य अंग नहीं है। वह बहिंरग रूपकार' ..... स्मृति (अभिव्यंजना, की अनुभूति अथवा स्मृति) 'स्मृति का सहायक तत्व' अर्थात् एक मूर्त उद्दीपन है, जिसके द्वारा कलाकार अपनी सहजानुभूति का पुर्निर्माण करता है। उसमें आवश्यकता होती है, 'सतर्क संकल्प–शक्ति' की जो विशिष्ट कल्पनाओं, सहजानुभूतियों अथवा चित्रों (अभिव्यंजना के मूर्त रूपों को) खो जाने नहीं देती।

इस तरह अभिव्यंजना अपने पहले स्तर पर पूर्वाभास, दूसरे स्तर पर पूर्णाभास, तीसरे स्तर पर आनन्दाभास और चौथे स्तर पर अभिव्यक्ति का प्रयास है। अभिव्यंजना आत्मा की स्वयंप्रकाश्य एक मूर्त भावना है, जो क्षणिक है, अनुभूति के समय ही पूर्ण और यथार्थ स्थिति में होती है दूसरा स्तर ही अभिव्यंजना का वास्तविक स्तर है। इसकी अभिव्यक्ति हमेशा अपूर्ण ही होती है।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

लोक गीतों में संस्कार का महत्व

डा0 मनीषा यादव
संतोश कुमार महाविद्यालय, हरदोई

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह जन्म लेता है समाज में मरता भी समाज में ही है। इस समाज में आने से पूर्व ही उसके साथ अनेक संस्कार होने लगते हैं और मृत्यु के पश्चात् भी उसे अनेक संस्कारों से होकर गुजरना पड़ता है। इन सभी संस्कारों के अवसरों पर लोकजीवन की मधुर एवं मार्मिक अभिव्यक्ति लोकगीतों में हुई है।

'संस्कार' शब्द का प्राचीनतम् प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है, जिसका अर्थ धर्म की शुद्धता, पवित्रता से लिया गया है। मीमांसा दर्शन का भाष्य करते हुए शबर मुनि लिखते हैं– ''संस्कारो नाम सः भवति यस्मिन जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिद्र्थस्य''।[1] (अर्थात् संस्कार वह प्रक्रिया है जिसके होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी काम के योग्य हो जाता है।) संस्कार शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ होता है– सम+कृ+ घञ् = संस्करण सम्यम्करणं वा संस्कारः अर्थात् परिष्कार करना अथवां भली प्रकार निर्माण करना।[2] संस्कार प्रकाश में संस्कार शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि–''समुप सगोत् कृञि निष्पन्नोऽयं संस्कार शब्दः स्वयमेव स्वलक्षणमप्यभिद्यत्ते। तद्यथा– आत्मशरीरान्यतरनिष्ठोहीनांगपूरको दोषापमार्जन करोऽतिशयाधायकृच विहितक्रिया जन्योऽतिषयविशेष एवं संस्कारइत्युच्यते।'' अर्थात् शरीर या आत्मा में कमी या त्रुटि को पूर्ण करते हुए दोषों का परिमार्जन करते हुए अतिशय गुणों का आधान करने वाले शास्त्र विहित विधि (कर्म–काण्ड) से समुद्रभूत अतिशय विशेष को ही 'संस्कार' कहा जाता है। प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट कृत तंत्र वर्तिक में कहा गया है–''योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कार इत्युच्यन्ते।'' (अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ एवं रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं।) हिन्दी तथा संस्कृत के अनेक शब्दकोशों में 'संस्कार' शब्द के जो अन्य अर्थ मिलते हैं। वे इस प्रकार हैं–

''संस्कृत करना, मांजगर चमकाना, अभिमंत्रित या पुनीत किया गया, सांसारिक जीवन में दीक्षित, अन्तःशुद्धि, पवित्रीकरण, शुद्धि–संस्कार, विचार भाव प्रत्यय, मानवकर्म इत्यादि।''[3]

मनुस्मृति में मनु ने बारह संस्कारों[4] का उल्लेख किया है, जबकि महर्षि व्यास ने सोलह संस्कारों का वर्णन किया है–

''गर्भाधानं पुंसवनं सीमान्तो जातकर्म च।
नामक्रिया निष्क्रमोऽन्नन्प्राशनं वयनक्रिया।।
कर्मवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः।
केशान्तः स्नानमुदवाहो विवाहग्नि परिग्रहः।।
त्रेताग्निसंग्रहश्चैव संस्कारा शोडसस्मृताः।[5]

अर्थात् गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोनयन, जातकर्म, नामांकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्ममेध, उपनयन, वेदारम्भ सामवर्त्तन, विवाह तथा अग्न्याधान। अग्न्याधान के अन्तर्गत् तीन अग्नियाँ– गार्हयत्य, आहंवनीय तथा दक्षिणाग्नि स्थापित की जाती हैं, जिनका प्रयोग क्रमशः वानप्रथ, अत्न्येष्टि और मरणोत्तर संस्कारों में किया जाता है। वर्तमान समय में सामान्यतः सोलह संस्कार प्रचलित हैं।

पुत्र–जन्म के पहले गर्भाधान एवं पुंसवन संस्कारों से लेकर मृत्यु–पर्यन्त तक भोजपुरी लोकगीत संस्कारों

में एक–एक क़ड़ी के रूप में विद्यमान है। कोई भी ऐसा संस्कार नहीं है, जिनमें इन गीतों की उपस्थिति न हो। यहाँ तक कि अभी मनुष्य का संसार में पदार्पण नहीं हुआ और यहाँ भोजपुरी समाज के संस्कार गीतों के द्वारा उसका अद्‌भुत चित्र दिखायी देने लगता है।

सोहर : घर में सन्तानोत्पत्ति के अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'सोहर' कहलाते हैं। इन्हें कहीं–कहीं मंगलगीत भी कहा जाता है–

''गावहु ए सखि! गावहु गाई के सुनावहु हो।
सब सखि मिलि जुलि गावहु, आजु मंगल गीत हो।[6]

'सोहर' शब्द की उत्पत्ति 'शोभन' शब्द से मानी जाती है, इसके सम्बन्ध में डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय जी का मानना है कि –''संभवतः यही शोभन शब्द शोभिलो–सोहिलो– सोहद – सोहर के रूप में परिवर्तित हुआ है। भोजपुरी में 'सोहर' शब्द का अर्थ 'अच्छा लगना' है, जो संस्कृत के 'शोभन' से मिलता–जुलता है।[7]

पुत्र जन्म के समय मंगलगीत (सोहर) गाने की परम्परा अति प्राचीन है। आदिकवि, तमसा–तट के तपस्वी महर्षि बाल्मीकी ने राम–जन्म के समय गन्धर्वों व अप्सराओं ने नाचने–गाने का वर्णन किया है–

''जगुः कलं व गन्धर्वाः ननृतुश्चाप्सरो गणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टि च सात्पतत्।।''[8]

महाकवि कालिदास ने आज के शुभजन्मोत्सव पर राजा दिलीप के महल में सोहर गाये जाने का उल्लेख करते हैं।

मुण्डन के गीत :

बालक के बड़े हो जाने पर उसके गर्भ के बाल उतरवा दिये जाते हैं। इस अवसर को 'मुण्डन संस्कार' या चूड़ाकर्म संस्कार' कहा जाता है तथा इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'मुण्डन के गीत' कहलाते हैं। यह संस्कार जन्म के पहले, तीसरे, पॉचवे या सातवें वर्श में सम्पादित होता है।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में इस संस्कार के सम्पादित होने का उल्लेख करते हुए कहते हैं–

''अथास्य गोदानविधेरनन्तरं।
विवाहयीक्षां निखर्तपद् गुरू।।''[9]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने महर्षि वशिष्ट द्वारा राम के चूड़ाकर्म संस्कार करने का सुन्दर चित्रण किया है।[10]

भोजपुरी क्षेत्रों में यह संस्कार घर से दूर किसी देवी स्थल मंदिर या तीर्थ स्थल पर पूर्ण किया जाता है। इस अवसर पर बच्चे का मामा उसके व उसकी माँ के लिए वस्त्र, आभूषण आदि लेकर आता है। बच्चे की बुआ (पिता की बहन) बच्चे के बाल को ऑटे की लोई में लपेटकर रखती जाती है और अन्य उपस्थित स्त्रियॉ उनपर न्यौछावर करती हुए मुण्डन के गीत गाती हैं।

जनेऊ संस्कार के गीत :

जनेऊ संस्कार को 'उपनयन' संस्कार भी कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है– वह संस्कार जिसके द्वारा छात्र गुरू के समीप लाया जाता है।

''उपनीयते गुरूसमीपं प्राप्यते अनेनेति उपनयनम्।''

इस यज्ञोपवरत्, संस्कार भी कहा जाता है। मनु का मानना है कि मनुष्य जन्म से शूद्र होता है और इन संस्कारों के पश्चात् वह 'द्विज' हो पाता है।[11] आज भी उच्च वर्गो में यह संस्कार बड़े उत्साह से साथ मनाया जाता है। इस संस्कार के पश्चात् बालक को कुछ नियमों का पालन जीवनपर्यन्त अनिवार्य रूप से करना होता है, जिसके कारण इसे 'व्रतबन्धसंस्कार' भी कहा जाता है।

प्राचीन काल में जो जनेऊ पहना जाता था, वह हाथ से कटे हुए सूत का बना होता था। ब्राह्मण बालक का यह संस्कार आठवें वर्ष, क्षत्रिय बालक का ग्यारहवें वर्ष तथा वैश्य का बारहवें वर्ष में होता है।

''अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुननयेत् गर्भाष्टमे वा।
एकादशे क्षत्रियम्, द्वादसे वैश्यम्।।'' [12]

विवाह गीत :

यह हिन्दू समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार होता है। गृहस्थाश्रम में मनुष्य इसी संस्कार से प्रवेष करता है। शास्त्रो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर देव ऋण, गुरूऋण एवं पितृऋण का भार होता है और पितृऋण चुकाने के लिए मनुष्य को संतानोत्पत्ति करनी पड़ती है। विवाह संस्कार के द्वारा स्त्री–पुरुष को यौन–सम्बन्ध स्थापित कर संतानोत्पत्ति करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है।

विवाह की मंगल–बेला प्रकृति को प्रसन्न रखने के तमाम उपाय, न्यौता देवता, पितर को ही नहीं सॉप–गोजर, बिच्छू, आँधी–पानी, लड़ाई–झगड़ा सबको न्यौता दिया जाता है। भौंह मरोड़ने वाली, होठ बिचकाने वाली प्रवृत्ति को न्यौता, जो भूल गये हों उन्हें न्यौता, कुमारी कन्या को न्यौता–

''हे पाँच पान नौ नरियल।
सरगे जे बाटे आजा परपाजा,
दादा औ चाचा तुमरौ नेवता,
भुँइया भवानी पाटन के देवी,
बिजलेस्वरी माता काली माई,
डिह बाबा तुमरौ नेवता।।
घर के देवी सायर भवानी तुमरौ नेवता।।
सांप–गोजर बीच्छी–गुच्छी तुमरौ नेवता।
आँधी–पानी लडाई–झगड़ा
डीमीं–धींगी तुमरौ नेवता,
ओठ बिचकावनि भौंह सिकोरनि, तुमरौ नेवता,
इसरा–बिसरा कन्या–कुमारी तुमरौ नेवता।।''[13]

कन्यादान :

एक हाथ, एक दूसरे हाथ को तीसरे हाथ में सौंप रहा है। अमंगल–मंगल की कल्पना मात्र से हृदय कॉपता है, हाथ कॉपते हैं, हाथ की थाली कॉपती है, थाल के अक्षत कॉपते हैं, बेटी को बाप का दिलासा, बेटी के बाप को बेटे के बाप का दिलासा, समधी–सम्बन्ध का उत्कर्ष, रिश्तो–नातों के नेह–छोह की छलक–

''थर–थर कॉपेला, थारे के अच्छत ऽ
अवरु गेडुंअवा जुड़ पानि, ऽ
थर–थर कॉपेली, बेटी हो कवन बेटी ऽ
मोरे बाबा रचलें बिआह हो, ऽ
थर–थर जनि कॉपऽ, थारे के अच्छत ऽ
अवरु गेडुंअवा जुड़ पानि, ऽ
थर–थर जनि कॉप ऽ, बेटी हो कवन बेटी ऽ

करब हम धरम बिआह, ऽ
मिनती से बोलेलें समधी ऽ कवन समधी ऽ
सुनीं समधि ऽ अरज हमार ऽ
हमरो बिटिअवा रउरे घरवा के चेरिअवा ऽ
हम रउरा घर के रखवार ऽ
मिनती से बोलेलें समधी ऽ कवन समधी ऽ
सुनीं समधि ऽ अरज हमार ऽ
रइरा बिटिऊवा हमरे घरवा के लक्षमी
रइरा हईऽ समधी ऽ हमार ऽ''[14]

मृत्यु गीत :

भारतीय धर्मशास्त्रियों ने षोड्ष संस्कारों का विधान बतलाया है, जिनमें अन्तिम संस्कार, 'अन्त्येष्टि संस्कार' है, जो मृत्यु के उपरान्त सम्पादित किया जाता है। इसका उद्देश्य मृतात्मा को स्वर्ग लोक में सुख और शान्ति प्रदान करना है। बौद्धायन के अनुसार जन्म के बाद के संस्कारों द्वारा वह स्वर्ग की विजय करता है –

जात संस्कारेणेम् लोकमभिजयति,
मृत संस्कारेणामुं लोकम्।[15]

यद्यपि भारतीय सभ्यता, संस्कृति और संस्कारों को उद्घाटित करने वाली ये लोकगीत अब या तो विस्मृत के गर्भ में डुबी हुई हैं, या फिर गलत समझ ली गई हैं.... फिर भी इनका महत्व मोहन जोदड़ों के भग्न स्तूपों के अवशेष एवं ईट–पत्थरों से कहीं अधिक है। पुरातत्व का यह अंश हमारे लोकगीतों के भाष्य का काम करती हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. जै0 सू0 3.1.3
2. डॉ0 शेर सिंह विष्ट : उत्तरांचल भाषा एवं साहित्य का संदर्भ, पृ0–13 .
3. कुमारिल भट्टः तंत्रवर्तिका पृ0–28
4. मनु : मनुस्मृति (2/66)
5. वेद व्यासः व्यास स्मृति (1.13.14)
6. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय : लोक साहित्य की भूमिका, पृ0–85
7. महाकवि बाल्मीकीः बालकाण्ड 18/16
8. महाकवि कालिदास : रघुवंश 3/19
9. चूड़ाकर्म कीन्ह गुरू आई। – तुसदीसादः रामचरितमानस/ बालकाण्ड
10. डॉ0 हीरालाल तिवारीः गंगाघाटी के गीत, पृ0–83
11. शतपथ ब्राह्मण
12. बसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत, ग्रीश्मे राजन्यम्।
13. भोजपुरी संस्कार गीतः सं0 हंस कुमार तिवारी – पृ0– 187
14. शोधकर्ता द्वारा लोक परम्परा से ग्रहीत
15. बौद्धायन– 3, 1.4

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कामायनी में नारी विषयक मूल्य–बोध और आधुनिकता

डॉ0 विद्या रानी
प्रवक्ता–हिन्दी विभाग
देरानातुंग शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर–अरुणाचल प्रदेश

'कामायनी' महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' का ऐसा महाकाव्य है, जिसने हिन्दी के पाठकों, अध्येताओं तथा आलोचकों का ध्यान बरबस ही अपनी ओर आकर्षित किया है। प्रसाद जी हिन्दी के ऐसे छायावादी कवि हैं, जिन्होंने मानवता को प्रतिष्ठापित करने के दृष्टिकोण से ऊर्जस्वित वाग्यधारा में अपनी महान् काव्य–प्रतिभा से सबको चमत्कृत किया है। जीवन की निराशाजन्य परिस्थितियों में भी उनकी भाषा दशा का निरुपण उनके क्लासिकी अन्दाज को बयाँ करता है। 'कामायनी' का कथानक जलप्लावन के पश्चात् मनु के चिन्तन–मनन से उद्‌गीरित होता है।'कामायनी' में पन्द्रह (15) सर्ग हैं; जिनके नाम चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य तथा आनन्द हैं। विचारपूर्वक देखा जाए तो 'कामायनी' के सभी सर्ग मनोवैज्ञानिक धरातल पर हैं, जिनसे मानव–मन की द्वन्द्वात्मक स्थिति का सहज बोध हो जाता है। 'कामायनी' के परिदृश्य में नारी विषयक मूल्य–बोध और आधुनिकता का संगायन है। 'कामायनी में नारी–मनोविज्ञान का जितना सुन्दर वर्णन है। उसे देखकर भारतीय नारी का आर्ष रूप सामने आता है। भारतीय नारी शुचिता, जीवन मूल्यों से संयुक्त उदात्तीकृत चेतना की सजग प्रहरी रही है, फलतः 'कामायनी' में नारी–आदर्श की अनुगूँज ध्वनित होती है। यह आदर्श केवल कल्पित मनोभावों का नहीं है; अपितु उसमें जनजीवन का औदात्य भी प्रमुदित है। आज की शिक्षित नारियाँ स्वच्छता की भावना से परिचालित होना चाहती हैं; जबकि महाकवि प्रसाद 'लज्जा' सर्ग में मानवीकरण अलंकार के द्वारा नारी के लज्जाशील औदात्य का प्रतिपादन करते हैं–

''मैं देव सृष्टि की रति रानी निज पंचवाण से वंचित हो;
बन आर्वना मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति सी संचित हो।
अवशिष्ट रह गई अनुभव में अपनी अतीत असफलता सी;
लीला विलास की खेद भरी अवसादभरी श्रम दलित सी।
मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ मैं शालीनता सिखाती हूँ;
मतवाली सुन्दरता पग में नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।''

प्रसादजी की मान्यता है कि नारी को विश्वास घातिनी नहीं होना चाहिए, न ही उसे कर्कशा होना चाहिए, क्योंकि नारी प्रकृति की अमूल्य निधि है। नारी–विमर्श के नाम पर नारी की सामाजिक भूमिका की बातें भले ही हों, लेकिन सच तो यह है कि नारी, जीवन मूल्यों के भटकाव में भी है। कामायनीकार इस दिशा में सही निर्देशन करता है–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में;
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।''

इस संदर्भ में गजाननमाधव मुक्तिबोध का विज्ञानपरक संदर्भ कामायनी के संदर्भ में ध्यातव्य है–

''जीवन–विस्तार की इच्छा रखने में मनु की कोई गलती नहीं है। गलती है उस पद्धति में जिसके

द्वारा जीवन–विस्तार कार्यान्वित हो जाने की स्थिति की कल्पना की गयी है। श्रद्धा को त्यागकर जिस स्थान पर मनु बैठे हुए थे, वहाँ इड़ा न आती तो? मनु ने तो कभी सोचा भी नहीं था कि उन्हें इड़ा मिलेगी। उनके भाग्य से जिस प्रकार श्रद्धा मिल गयी, उसी तरह इड़ा भी। किन्तु यह निश्चित थोड़े ही था। अतएव मनु द्वारा श्रद्धा–परित्याग जिस प्रकार एक घोर अहंवादी कार्य है, उसी प्रकार श्रद्धा द्वारा छोटे–से जीवन–क्षेत्र को अपने जीवन का संपूर्ण कार्य क्षेत्र समझ लेना भी मूर्खता है।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धा को विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति की संज्ञा से अभिहित किया है। उनके अनुसार 'श्रद्धा विश्वास–समन्वित रागात्मक वृत्ति है और इड़ा व्यवसात्मक बुद्धि कवि ने श्रद्धा को मृदुता, प्रेम और करुणा का प्रवर्तन करने वाले सच्चे आनन्द तक पहुँचाने वाली चित्रित किया है।''

प्रसाद जी ने कामायनी में नारी को दया, माया, ममता, त्याग, बलिदान, सेवा, समर्पण, अगाध– विश्वास आदि से युक्त वर्णित किया है। उन्होंने नारी को श्रद्धा मयी कहा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कामायनी में श्रद्धा को अत्यन्त उदार, निर्विकार, मातृमूर्ति, सर्वमंगला, परदुःख–कातर, कल्याणमयी तथा क्षमानिलय, आदि की संज्ञा से अभिहित करके सामान्य, आलौकिक, सौन्दर्यमयी, समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली देवी के रूप में चित्रित किया है–

''तुम देवि अहा कितनी उदार, वह मातृमूर्ति है निर्विकार,
हे सर्वमंगली तुम सहती, सबका दुख अपने पर सहती।''

श्रद्धा के व्यक्तित्व के विषय में गजानन– माधव मुक्तिबोध ने नवीन दृष्टिकोण से विचार करते हुए लिखा है–''श्रद्धा के चरित्र द्वारा हमको यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि नई पूँजीवादी सभ्यता के लोगों के सामने जो आकांक्षाएँ उत्पन्न कर रखी थीं। वह सभ्यता शीघ्र ही अपने आत्म–विरोधों द्वारा हास्य–ग्रस्त होकर असंयोजनीय भीतरी और बाहरी विषमताओं में फँस गई तथा जनता के ऊपर ही हाथ साथ किया। श्रद्धावाद,उसके इन आत्मविरोधों के लिए क्षमाप्रार्थी होकर, उन्हीं की ओर से काम करने लगा जो शोषक और शासक के रूप में आज जनता के सामने उपस्थित है, इस पर अत्याचार कर रहे हैं।''

श्रद्धा के माध्यम से प्रसाद जी ने कामायनी में बताया है कि विश्वमानव को 'प्रेम–कला' अर्थात् मानवीय हृदय की कोमल एवं सात्विक भावनाओं की आवश्यकता है जो अपने चिर–परितप्त या व्यथित हृदय को फिर से आनन्दित बनाये। प्रसाद जी ने यह संदेश इस प्रकार दिया है–

''वह लीला जिसकी विकास चली वह मूल शक्ति थी प्रेमकला, उसका संदेश सुनाने को संसृति में आई वह अमला।'' 'कामायनी' में एक ओर दर्शन की अनेक गुत्थियाँ प्रतीक रूप में समाहित हैं, तो दूसरी ओर आधुनिकता–बोध की क्लासिकी चेतना भी अलंकारों के अप्रस्तुत–विधान, प्रतीक–विधान, गुणीभूत व्यंग्य अर्थ–ध्वनि इत्यादि पर अवलम्ब है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में लज्जा सर्ग के अन्तर्गत लज्जा मनोभावों को एक सुन्दर नारी के रूप में चित्रित किया है। इस चित्रण में उन्होंने मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है –

''संध्या की लाली में हंसती उसका ही आश्रय लेती–सी,
छाया प्रतिमा गुनगुना उठी श्रद्धा का उत्तर देती सी।''

प्रसाद जी का काव्य मानवीय भावनाओं से ओत–प्रोत है। उनका मानवतावादी दृष्टिकोण कामायनी में बड़े ही प्रांजल और स्पष्ट रूप में व्यक्त हुआ है। 'कामायनी' में मानवता पर बल देकर उसके उत्थान की ओर संकेत किया। 'कामायनी' में श्रद्धा सर्ग श्रद्धा द्वारा मनु को सचेत तथा सावधान करने की जो चेष्टा की गई है, वह प्रसादजी द्वारा समूचे विश्व के मानवों को दिया हुआ संदेश है–

''दुःख के डर से तुम अज्ञात, जटिलताओं का कर अनुमान।
काम से झिझक रहे हो आज, भविष्यत् से बनकर अनजान।''

इस सन्दर्भ में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि–''मेरी दृष्टि में तो यह संदेश गीता के 'कर्मव्यतावाद' अथवा 'कर्मयोग' के संदेश सक किसी भाँति कम नहीं है। छायावादी कवि प्रसाद का यह अमर उद्घोष करते हैं।''

श्रद्धा मनु की चिन्ताग्रस्त अवस्था को देखकर व्याकुल हो उठती है। यह मनु के ह्रदय तक निराशात्मक व्यर्थता की भावना को समाप्त करके निर्माण करने के लिये उदूत करती है–

''बनो संसृति के मूल रहस्य, तुम्हीं से फैलेगी यह बेल।
विश्व भर सौरभ से भर जाय, सुमन के खेलो सुन्दर खेल।।''

इस प्रकार प्रसाद जी ने विश्वव्यापी मानवता को अपनाया है। उन्होंने समस्त मानवों की कल्याण कामना करते हुए और विश्व–बन्धुत्व की भावना से ओत–प्रोत होकर मानवता के प्रेम को 'कामायनी' में अभिव्यक्त किया है। यहाँ हमारा अभीष्ट मानवता परक दृष्टिबोध पर केन्द्रित हो रहा है। इसके अतिरिक्त प्रसाद जी के नवजागरण में शक्ति–सामर्थ्य की बलवती प्रचेष्टा का संचार हुआ है। प्रकृति की शक्तियों पर नियंत्रण करने की उनकी कामना, मानवता के विकास बोध का निरुपण करती है–

''जलधि के फूटें कितने उत्स द्वीप, कच्छप डूबे–उतरायँ;
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति, अभ्युदय का कर रही उपाय।
विश्व की दुर्बलता बल बनेगा, पराजय का बढ़ता व्यापार,
हँसाता रहे उसे सविलास, शक्ति का क्रीड़ामय संचार।
शक्ति के विद्युत्करण जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करें समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।।''

छायावादी काव्य में नवीन संस्कृति, सांस्कृतिक चेतना का उभार एवं मध्यकालीन रूढ़िवादी परम्पराओं की प्रक्रिया का योग रहा है। मध्ययुग में हुआ। प्रसाद जी ने सर्वत्र ही नारी का पक्ष लिया है। प्रसाद जी नारी के त्याग रूप के पुजारी हैं। वे नारी के मंगलमय रूप के उपासक हैं और उसे जीवन में इतना महत्वपूर्ण मानते हैं कि न केवल भौतिक सुख, अपितु आध्यात्मिक आनन्द का मार्ग भी वह दिखाती है।'कामायनी' में रहस्य सर्ग में रहस्य की व्याख्या श्रद्धा ही करती है।

प्रसाद जी गहन एवं सूक्ष्म सौन्दर्य–चेतना का आभास 'कामायनी' के अनेक पदों में मिलता है। यही कारण है कि उन्होंने अतीन्द्रिय और सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण किया है। कामायनी में प्रसाद जी में श्रद्धा के सौन्दर्य–वर्णन में अपने नवीन सौन्दर्य बोध का तथा रस बोध का परिचय दिया है। वे श्रद्धा सर्ग में लिखते हैं –

''नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघवन बीच कमल गुलाबी रंग।।''

इसके अतिरिक्त 'कामायनी' में मनोविज्ञान का सुन्दर परिपाक हुआ है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में दर्शन का समावेश किया है। उन्होंने 'कामायनी' में जीवन तथा जगत की गतिविधियों को यथार्थ रूप में दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर चित्रण किया है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में मानव–जीवन की अनेक जटिलताओं एवं विषमताओं को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। साथ ही उन्होंने इन जटिलताओं के निवारण का उपाय भी बताया है। उन्होंने जीवन के विरोधों का उल्लेख करते हुए सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टि से काम लिया है। 'कामायनी' में सन्निहित जीवन–दर्शन आनन्दवाद है। कामायनी में समरसता अथवा आनन्द का आभास सर्वप्रथम श्रद्धा के इन शब्दों में मिल जाता है, जहाँ वह मनु को चिंता से मुक्त करना चाहती है–

''दुःख की पिछली रजनी बीच, विकसता सुख का नवल प्रभात।
एक परदा यह झीना नील, छिपाए हैं जिसमें सुख का गात।।''

समरसता के कारण ही समस्त विश्व अखण्ड आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है। चेतनता एक विलसती आनंद अखण्ड घना था।''

'कामायनी' प्रसाद जी की अन्तिम और सर्वोकृष्ट रचना है। इसका सृजन हिन्दी साहित्य में एक सुखद घटना है। यह एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमें मानव के विकास की पूरी कथा है। 'कामायनी' में प्रसादजी का संदेश ऊँचा है, उनकी भावना उदात्त है। इसमें कवि कहना चाहता है कि जीवन में दुःख का मूल कारण बुद्धि का एकांगी विकास है। जीवन में जब श्रद्धा का समावेश होता है तब वह आनंदमय हो जाता है। आधुनिक युग में बुद्धि अथवा इड़ा का विकास तो इतना हो गया है कि उसके आधार पर नए चांद आकाश में घूमने लगे हैं। परन्तु मानव फिर भी दुःखी है। प्रसाद जी का स्पष्ट मत है कि विज्ञान मानव जीवन को सुखी बनाने में सफल नहीं हो सकता है। श्रद्धामय जीवन ही आनंदमय बनता है। प्रसाद जी ने कामायनी में मानवीय संस्कृति के आधुनिक संकट को अच्छी तरह से पहचानने का प्रयास किया है। यही कारण है कि अतिभौतिकता, अतियान्त्रिकता एवं अतिबौद्धिकता से होने वाले विनाश की ओर उन्होंने संकेत किया है।

श्रीमती महादेवी वर्मा कामायनी के संबंध में लिखती हैं कि–''हिन्दी साहित्य में ऐसा काव्य दूसरा नहीं है। कामायनी का तत्वतः समझने के लिए यह आवश्यक है कि छायावाद युग की सबसे सुन्दर सृष्टि होने पर भी कामायनी का लक्ष्य न अरुप की छाया है न निराकार का रहस्य।'' प्रसाद जी ने कामायनी की रचना केवल भारतीय प्राचीन लक्षणों के आधार पर ही नहीं की है, अपितु उन्होंने युग परिवर्तनशील विचारधाराओं को स्वीकार करते हुए आधुनिक मान्यताओं के आधार पर की है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कामायनी में खड़ीबोली के महाकाव्य को आधार बनाकर नारी विषयक मूल्य–बोधों का उदात्तीकृत संश्लेषण है तथा आधुनिकता बोध की समस्याओं का भी बड़े वैज्ञानिक ढंग से निरुपण किया गया है। सभी सर्गों के नाम मनोवेगों पर आधारित हैं। अतः मानवीय संवेगों को परिशमन करना भी कामायनीकार का लक्ष्यशील उद्योग है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लज्जा सर्ग, कामायनी पृ. 41, प्रकाशक–भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़
2. वही, पृष्ठ 43
3. कामायनी, एक पुनर्विचार; गजानन माधव मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 95–96
4. कामायनी, कृष्णदेव शर्मा, पृ. 35, अनीता प्रकाशक, दिल्ली
5. वही, पृष्ठ 52
6. वही, पृष्ठ 35
7. वही, पृष्ठ 47
8. वही, पृष्ठ 54
9. वही, पृष्ठ 50
10. कामायनी, 'श्रद्धासर्ग' पृ. 22, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़
11. कामायनी, कृष्णदेव शर्मा, अनीता प्रकाशन दिल्ली, पृ. 51
12. वही, पृष्ठ 56
13. वही, पृष्ठ 57
14. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ एवं विकास, डॉ0 रामचन्द्र वर्मा शास्त्री, अनीता प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–68

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

हिंदी का कालजयी दलित साहित्य

डॉ0 सुरेश कानडे
एस.एम.आर.के.बी.के.ए.के. महिला महाविद्यालय, नाशिक. महाराष्ट्र

मानव सभ्यता के हजारों वर्ष के लम्बे ऐतिहसिक सफर में हमने सांस्कृतिक आदर्शों के विविध उतार–चढ़ाव देखे हैं, लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उत्तरोत्तर विकसित होने की अंधी दौड़ में सम्भावनाओं को तलाशने–तराशने के प्रयास में हम अपने मूल से कटते जा रहे हैं और अनेक स्रोतों से जुड़ते जा रहे हैं. उन तमाम चिंतन स्रोतों में एक ऐसा बिंदु भी है, जो हमें सोचने के लिए मजबूर करता है। वह बिंदु है– साहित्य सर्जना, जो हमारी मूल स्थापना का अहसास कराता है। यही अहसास की मूल अवधारणा से दलित साहित्य जुड़ा है। स्त्री और निम्न वर्ग (आज की शब्दावली में दलित) सदैव लेखन के केन्द्र बिंदु में रहे हैं। यह भी सत्य है कि विश्व की जो महान कृतियाँ हैं, उनके कथानक में भी स्त्री और समाज का निम्न वर्ग (दलित) को केन्द्र में रखा गया है। इक्कीसवीं सदी के प्रारंभिक दौर में आज हमारे सामने अनेक प्रश्न अनुत्तरित हैं, जिनमें स्त्री और समाज के निम्न वर्ग (दलित) की समस्याओं का प्रश्न महत्वपूर्ण है. इन्हीं समस्याओं की अभिव्यक्ति के कारण दलित साहित्य ने अपना महत्वपूर्ण स्थान निर्माण किया है. यह भी सत्य है की, युगों से प्रताड़ित शोषित, संस्कृति से वंचित व्याकुल होकर जब लेखक स्वयं को साहित्य के साथ जोड़ता है, तो कालजयी साहित्य निर्माण करता है। दलित साहित्य का विचार विशेष रूप से 1960 के बाद हुआ। "अस्मितादर्श" नामक पत्रिका ने मराठी साहित्य में दलित साहित्य व सांस्कृतिक क्रान्ति आरंभ की इस बात को नकारा नहीं जा सकता परन्तु इससे पूर्व भी दलित साहित्य लिखा गया था। जिसे नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। यह दलित साहित्य इस प्रकार है –

१) चोखामेला कवि कुटुंब, संत कबीर, संत रैदास का सहित्य।

२) महात्मा ज्योतीबा फुले, सावित्रीबाई फुले, पंडित कोंडीराम का साहित्य।

३) मूकनायक, बहिष्कृत भारत, जनता में प्रकाशित निबंध साहित्य, कथा साहित्य, कविता व वैचारिक साहित्य।

४) दलित शहरी साहित्य।

५) दलित लोक साहित्य।

वर्तमान दलित साहित्य उपरोक्त पंचधाराओं से प्रभावित है। इन्हीं पंचधाराओं ने दलित साहित्य को शक्ति प्रदान की है तथा दलित साहित्य को कालजयी बनाने का प्रयत्न किया है। प्रत्येक धारा को विस्तार से भाष्य करना मेरा उद्देश्य नहीं है बल्कि उसके कालजयी वैचारिकता पर प्रकाश डालना इस निबंध का उद्देश्य है। दलित साहित्य के सम्बन्ध में आज भारतीय साहित्य जगत में विविध मत मतान्तरों पर चर्चा हो रही है, क्योंकि दलित साहित्य ने सदियों से दबी मानवीय भावनाओं व आक्रोश को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न को कुछ विद्वान आक्रोशपूर्ण कही बात मानते हैं, तो कुछ विद्वान इसे आंतरिक पीड़ा की अभिव्यक्ति मानते हैं, तो कुछ विद्वान इसे भारतीय वर्ण व्यवस्था की देन मानते हैं। इन बातों की साहित्य में काफी चर्चा की जा चुकी है। फिर भी दलित साहित्य में अभिव्यक्त समस्या मानवता की दृष्टि से सोचने के लिए मजबूर करती है. यद्यपि अमेरिका जैसा प्रगतिशील राष्ट्र भी गोरे और काले का भेद मानता है। अश्वेतों की ओर से समय–समय पर समानता की मांग की जाती है और अमेरिका के श्वेत कट्टरपंथी सदैव इस मांग को ठुकरा देते हैं तथा आज तक सही न्याय नहीं दे पाए हैं। इसलिए भारत जैसे राष्ट्र में समानता और न्याय मिल पाना बड़ा कठिन है। फिर भी दलित

चिंतकों ने इस प्रश्न के लिए संघर्ष किया है। इस संघर्ष में साहित्य सर्जन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कुछ अपवादों को छोड़कर साहित्य सदा से न्याय का पक्ष्यधर रहा है। इसी न्याय की चाह ने हिंदी में कालजयी दलित साहित्य की निर्मिति हुई है। हिंदी साहित्य में कालजयी साहित्य की रचना के इतिहास की लम्बी परम्परा है। इसी कालजयी साहित्य ने हिंदी साहित्य की मुख्यधारा को भी प्रभावित किया है। आदिकाल में वीरगाथा साहित्य के समानांतर नाथों और सिद्धों का साहित्य, भक्तिकाल में राम और कृष्ण के पारम्परिक काव्य के समानांतर कबीर और रैदास जैसे संतों की रचनाएँ और आधुनिक काल में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिरोध में रचित राष्ट्रीय साहित्य के समानांतर हीरा डोम, अछूतानन्द, प्रेमचंद, निराला, राहुल सांकृत्यायन आदि के साहित्य और परवर्ती काल में प्रगतिशील आंदोलन के प्रभाव में बाबा नागार्जुन, जगदीश चन्द्र, मन्नू भंडारी, अमृतलाल नागर आदि की रचनाओं ने पारम्परिक मुख्यधारा को अनेक दिशाओं में मोड़ने का प्रयत्न किया है। भारतीय सामाजिक जीवन की मुख्यधारा के अंदर हाशिए की जिंदगी व्यतीत कर रहे निम्न वर्ग के लोगों ने पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था में गुलामी सही है। इसी गुलामी व यातना को शब्दों के माध्यम से समाज के सामने मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया, वह निश्चय ही त्रासदपूर्ण और दिल को झकझोरने वाला है। चाहे वह संत रैदास की वाणी हो या हीरा डोम की शिकायत। संत रैदास की भक्ति भावना अन्य समाज की निगाह में चाहे कितनी भी ऊँची अथवा महान क्यों न हो, अंततः उन्हें भी सत्य को स्वीकारना पड़ा है –

''रैदास जन्म के कारनै, होत न कोई नीच।
नर को नीच करि डारि दै, ओछे करम कौ नीच।।''

जाहिर है हिंदू समाज की वर्ण व्यवस्था और जातिप्रथा को श्रम विभाजन के सहारे हम कितना भी तर्क संगत क्यों न बनाएं। रैदास की उपर्युक्त पंक्तियां और उनमें अभिव्यक्त उनकी मन की पीड़ा यह स्पष्ट कर देती है। रैदास की यह आत्म स्वीकृति दलित जाति और जीवन से जुड़ी जिस दूसरी पीड़ा की ओर संकेत करती है। उसे वही लोग समझ सकते हैं, जो उससे गुजर चुके हैं। दलित जीवन के वास्तविक अनुभव और उसकी अभिव्यक्ति के प्रसंग में प्रसिद्ध समीक्षक 'मैनजर पाण्डेय" के एक साक्षात्कार में उद्धृत ज्योतिबा फुले का यह कथन याद आता है – ''गुलामी की यातना जो सहता है, वही जानता है, वही पूरा सच कह सकता है, सचमुच राख ही जानती है जलने का अनुभव, कोई और नहीं अर्थात यह भी कह सकते हैं कि जहाँ आग लगती है धुँवा वहीं से उठता है। "इससे यह पता चलता है कि वास्तविक पीड़ा को वही व्यक्त कर सकता है, जो स्वयं दलित है. इसलिए दलित साहित्य पर जब भी चर्चा होती है, यह सवाल बार–बार हमारे सामने आता है, कि दलित साहित्य क्या है? केवल दलित द्वारा लिखित अथवा गैर दलित द्वारा लिखित साहित्य. यह विवाद का विषय है। परन्तु यह भी सच है कि प्रेमचन्द, निराला, राहुल सांकृत्यायन, बाबा नागार्जुन, शैलेश मटियानी, गिरिराज किशोर आदि सहित्यकारों द्वारा लिखा गया दलित साहित्य भी कालजयी साहित्य है –

दलित साहित्य और चिंतन से जुड़े अधिकांश विचारकों का मानना है कि, वास्तविक दलित साहित्य वही है जो दलितों द्वारा लिखा गया है। दलित लेखकों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ. धरमवीर, मोहनदास नैमिषराय, तुलसीराम, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बेचैन आदि का साहित्य दलित समाज कि पीड़ा, वेदना, समस्याओं को उद्घाटित करता है। इसलिए यह जरुरी नहीं कि दलित साहित्य किसने लिखा है, बल्कि यह जरूरी है कि किस लेखक ने प्रभावकारी ढंग से दलित सहित्य का सृजन किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि, दलित वर्ग पीड़ा पर हिंदी में प्रेमचंद, नागार्जुन और अमृतराय जैसे लेखकों ने गहरी संवेदना से साहित्य की रचना की है, और दलित वर्ग की व्यथा को मुखरित किया है. किन्तु यह भी सच है कि दलित साहित्य की सही पहचान दलित वर्ग में जन्मे लेखकों ने ही दी है. उन्होंने अपनी पीड़ा को अपनी हथेली पर रखे हुए अंगार की तरह महसूस किया। इस प्रकार के लेखन ने दलित वर्ग द्वारा भोगे हुए अपमान, उपेक्षा और व्यथा को अभिव्यक्ति दी है। तथा उस

समाज व्यवस्था की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। जिसमें एक सम्पूर्ण वर्ग की स्थितियों के बारे में सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। यही विचारधारा दलित साहित्य को कालजयी बनाता है।

हिंदी साहित्य में दलित जीवन से जुड़ी रचनाओं की शुरुआत यद्यपि कबीर, रैदास, हीरा डोम, निराला, प्रेमचन्द आदि रचनाकारों से होती है। 1960 के आस–पास मराठी दलित आंदोलनों के साथ ही धीरे–धीरे हिंदी सहित्य में भी दलित साहित्य की रचनाओं का प्रारम्भ माना जाता है। इसी बीच 1976 में नागपुर में पहली बार दलित साहित्य सम्मेलन का आयोजन हुआ था। इस सम्मेलन में दलित साहित्य के विकास की काफी चर्चा की गयी। जिसका परिणाम यह हुआ कि, दलित साहित्य में लेखकों की बाढ़ सी आ गयी। हिंदी साहित्य में जिन लेखकों ने अपनी पहचान बनायी है, उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ.धर्मवीर, मोहनदास नैमिषराय, तुलसीराम, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराजसिंह बेचैन, कंवल भारती, सोहनपाल सुमनाक्षर, मंसाराम, तेज सिंह आदि रचनाकारों ने लगभग सभी विधाओं में दलित साहित्य लिख रहे हैं. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कृतियों में "सदियों का संताप", "बस बहुत हो चुका" (काव्य संग्रह), जूठन (आत्मकथा), सलाम (कहानी संग्रह) आदि चर्चित कालजयी साहित्य है।

इसी प्रकार मोहनदास नैमिषराय की आत्मकथा "अपने–अपने पिंजरे" आत्मकथा व कहानी संग्रह आदि के माध्यम से दलित रचनाकारों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है. "अपने–अपने पिंजरे" आत्मकथा हिंदी की पहली आत्मकथात्मक कृति मानी जाती है. जिसमें उन्होंने भारतीय समाज की व्यवस्था में वर्ण तथा जाति के कारण हाशिए की जिंदगी व्यतीत कर रहे दलित समाज कि महत्वाकांक्षा, समस्या एवं संघर्ष को मार्मिकता के साथ चित्रित किया है. इसी प्रकार श्यौराज सिंह बेचैन कृत "नई फसल" (1987)", ''मूल खोजो विवाद मिटेगा" (1995), "लदोई" (मैली), "मनु की नाती" (कविता संग्रह), कौसल्या वैसन्त्री कृत "दोहरा अभिशाप", ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत "जूठन, सदियों का संताप", "बस बहुत हो चुका", मलखान सिंह कृत – सुनो ब्राह्मण, एन.आर. कृत – हम आजाद हैं, मूलचंद कृत – कहीं कुछ दरक रहा है, डॉ. धर्मवीर कृत – हिरामन, पहला खत, सोहनपाल सुमनाक्षर कृत – सिंधु घाटी बोल उठी, मंसाराम कृत – दलित पचासा, रमणिका गुप्ता कृत – आदमी से आदमी तक, सीता, अब मूरख नहीं बनेगें, मोहनदास नैमिषराय कृत – आवाजें, डॉ. एन. सिंह कृत – यातना की परछाइयाँ, काले हाशिये, संत कवि रैदास, शरण कुमार लिंबाले कृत – अक्करमाशी, लक्ष्मण गायकवाड़ कृत – उठाई गीरी, प्र. ई. सोनकाम्बले कृत – यादों की पंछी, ज्योतिबा फुले – कृत गुलाम गिरी, डी. नागराज कृत – झुकते कदम आदि साहित्य ने आधुनिक युग के दलित साहित्य द्वारा सामाजिक परिवर्तन, समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय दलित अस्मिता, स्वावलम्बन के साथ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष की प्रेरणा दी है। इसके अलावा सदियों से उपेक्षित पीड़ित तिरस्कृत, शोषित दलितों को आधुनिक युग अपनी अभिव्यक्ति करने का पूर्ण अधिकार दिलाया है। संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर इसी अभिव्यक्ति का एक रूप हैं। आधुनिक काल में लिखा जा रहा दलित साहित्य वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था का खंडन कर मानवतावाद का समर्थन करता है, साथ ही समाजिक ढांचे में परिवर्तन लाने की मांग करता है। दलित साहित्य वर्षों से बने अंधविश्वासों को तोड़कर आम आदमी के सुख–दुःख से जुड़ने की प्रेरणा देता है। जैसी स्थिति दलितों की है वैसी ही स्थिति महिलाओं की भी है। दलित साहित्य स्त्री–पुरुष समानता की वकालत भी करता है। इसीलिए दलित साहित्य केवल विशिष्ट लोगों का साहित्य न होकर जन–जन का साहित्य है। क्योंकि दलित साहित्य सत्य, यथार्थवाद और सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ सम्बद्ध है. निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि.....

1) दलित साहित्य ने आधुनिक काल में अपना एक निश्चित स्थान व पहचान बनाई है।
2) दलित साहित्य परम्परावादी लेखन के खिलाफ चुनौती बनकर खड़ा है।
3) दलित साहित्य मानवता का समर्थक है।

4) दलित साहित्य नई सदी के साहित्य का मार्गदर्शक साहित्य है।

5) दलित साहित्य में श्रम, संघर्ष और सपनों की जीवंत आशाएँ मौजूद हैं।

6) दलित साहित्य ने भारतीय साहित्य कि जड़ता को प्रभावित किया है।

7) दलित साहित्य वंचित समाज को संघर्ष करने के लिए प्रेरित करने में सफल रहा है और प्रेरित करता रहेगा।

अतः आधुनिक दलित साहित्य अपनी अलग पहचान बनाने में सफल रहा है, इसलिए हिंदी का दलित साहित्य कालजयी साहित्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- दलित विमर्श : गिरिराज किशोर
- दलित चेतना सोच : रमणिका गुप्ता
- दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार : रमणिका गुप्ता
- दलितों का इतिहास : डॉ. मुकेश भूषण
- दलित विमर्श के विविध आयाम : डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

हिन्दी व्यंग्य परम्परा और हास्य–व्यंग्यकार रवीन्द्रनाथ त्यागी

सन्तोष विश्नोई
जे.आर. एफ.–शोधछात्रा
हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

आज वर्तमान में सब कुछ परिवर्तन के द्रुत चक्र में है और मनुष्य का जीवन एक अजीब भाग–दौड़ से गुजर रहा है। ऐसी स्थिति में हमारे वर्तमान जीवन को छूने वाला, उसकी समस्याओं पर दृष्टपात करने वाले साहित्य में व्यंग्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन गया है। व्यंग्य रचनाओं के महत्त्व को स्वीकार करते हुए डॉ. श्यामसुन्दर घोष ने लिखा है–''यदि हम साहित्य को स्वस्थतर, सुन्दरतम और भव्यतर जीवन निर्माण का साधन मानते हैं तो साहित्य में व्यंग्य रचनाओं का महत्त्व स्वतःसिद्ध है।''[1] आज की स्थितियों में इतना भारी बदलाव आया है कि जिसके कारण शुद्ध साहित्य की अपेक्षा व्यंग्य साहित्य अधिक कारगर सिद्ध हो रहा है। व्यंग्यकार व्यंग्य द्वारा समाज की विसंगतियों के प्रति सहृदयों में उत्पन्न झुंझलाहट और असन्तोष को वाणी प्रदान करता है। व्यंग्य का प्रत्यक्ष संबंध विकृति से है। वह विकृति मनुष्य और समाज को बदलने के लिए और स्वस्थ्य समाज में सही परिवर्तन लाने वाला क्रांतिदूत बनकर आता है। 'व्यंग्य' इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि वह समाज में जीवन मूल्यों को स्थापित करता है। समाज में व्याप्त समस्त अंधकार का विच्छेदन करता है, समाज को स्वस्थ बनाए रखता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में हमारे जीवन और जगत् में काफी परिवर्तन के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य में अनेक मोड़ आए। जीवन और जगत् के हर मोड़ में जीवन–मूल्यों का ह्रास दिखाई देने लगा था। हमारे सारे आदर्श ढहते गए। इस सन्दर्भ में डॉ. मुरधीधर शहा ने लिखा है–''क्या राजनीति, क्या समाज, क्या धर्म, क्या साहित्य सब में 'मुखौटाबाजी' घुस गया। पाखंड, अनाचार, अविचार ही सब ओर सद्धर्म बन गया। ठगा गया वह सामान्य आम आदमी जिसने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सब कुछ दे दिया था, स्वयं नंगे होकर जिसने आगत को वस्त्रांकित, सुघड़ एवं सुन्दर होने के लिए अपने वस्त्र, अपना खून, अपने सपने अर्पित कर दिये थे। ठगा गया वह साहित्यकार जो कलम का सिपाही था, साहित्य को जीवन के आगे चलने वाली मशाल मानता था, जिसके लिए मनुष्य ही साहित्य का एकमात्र लक्ष्य था, जिसकी लौह–लेखनी परतंत्रता की बेड़ियाँ काटने के लिए और नये समाज के निर्माण के लिए आग उगलती थीं।''[2]

आधुनिक काल से व्यंग्य का एक विधा के रूप में विकास माना जाता है। डॉ0 सुदर्शन मजीठिया के अनुसार–''हिन्दी में व्यंग्य को सर्वप्रथम प्रतिष्ठा भारतेन्दु युग में ही प्राप्त हुई। भारतेन्दु युगीन लेखकों की लेखनी से ही हिन्दी व्यंग्य में निखार आया, उसका परिष्कार और परिमार्जन हुआ।''[3] भारतेन्दु युग की कविता, निबन्ध, नाटक सभी विधाओं में व्यंग्य के स्वर देख सकते हैं। इस युग के साहित्यकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालमुकुंद गुप्त आदि ने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक आदि विभिन्न विसंगतियों को लक्ष्य करके तीक्ष्ण व्यंग्य प्रहार किए हैं। भारतेन्दु युग के बाद हिन्दी व्यंग्य की धारा में महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का उद्भव होता है जिन्होंने व्यंग्य को प्रतिष्ठा दिलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'निराला' ने 'व्यंग्य की आत्मा को पहचाना और अपनी रचनाओं द्वारा सशक्त व्यंग्य को उद्घाटित किया।

'हिन्दी कविता' के क्षेत्र में 'निराला' के बाद व्यंग्य की परम्परा को नागार्जुन ने सम्पन्न किया। उन्होंने व्यंग्य द्वारा शोषक और शोषित, विशिष्ट और सामान्य के अन्तर को समझाया। इस काल में राजनीति, आजादी, जनतंत्र और संविधान कविता के मुख्य कथ्य बने। मोहभंग के सन् 60 के युग में रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा और धूमिल ऐसे कवि हैं जिन्होंने देश, राजनीति और समाज की असंगति पर तीव्र आक्रोश व्यक्त किया। इन तीनों कवियों के विषय में डॉ. सुदर्शन मजीठिया लिखते हैं–''साठोत्तरी हिन्दी कविता में ये तीन कवि ही ऐसे मिलते हैं जिनकी कविता का मूल स्वर व्यंग्य और विडम्बना है। धूमिल की आक्रामकता, रघुवीर सहाय की शब्दों की खिलवाड़ और श्रीकांत वर्मा की बौखलाहट के पीछे शोषित मनुष्य के प्रति गहरी आत्मीयता है।''[4] अपनी 'बीस साल बाद' कविता में आजादी के खोखलेपन पर व्यंग्य करते हुए धूमिल लिखते हैं–

''क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है।
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है?'' (संसद से सड़क तक)

इन कवियों के अतिरिक्त दुष्यंत कुमार, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, गिरिजाकुमार माथुर, ध र्मवीर भारती, भारतभूषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, केदारनाथ सिंह, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, सौमित्र मोहन, लीलाधर जगूड़ी, चन्द्रकान्त देवताले, ऋतुराज आदि ने जीवन तथा समाज की विसंगतियों को हास्य–व्यंग्य द्वारा उजागर करने का प्रयास किया है।

हिन्दी कविताओं की तरह हिन्दी नाटकों में भी हास्य–व्यंग्य का उत्कर्ष रूप मिलता है। हिन्दी नाटकों में भारतेन्दु युग में लिखे गए नाटक–जो तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक उद्देश्य से प्रेरित थे, से लेकर आधुनिक काल के नाटककारों लक्ष्मीनारायण लाल, भुवनेश्वर प्रसाद, उपेंद्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, विपिन्न कुमार, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, सुरेन्द्र वर्मा आदि की रचनाओं में व्यंग्य का गहरा पुट उभरकर आया है। स्वतंत्रता के बाद कुछ नाटककारों ने राजनीतिक, सामाजिक विद्रूपताओं और विसंगतियों पर व्यंग्य करने के लिए ही नाटकों का लेखन किया था। इनमें शरद जोशी का 'अंधों का हाथी', डॉ. नरेन्द्र कोहली का 'शम्बुक की हत्या', विनोद रस्तोगी का 'जनतंत्र जिंदाबाद', सुशीलकुमार सिंह का 'सिंहासंन खाली है', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी', हमीदुल्ला का 'दरिन्दे', अमृत नाहटा का 'किस्सा कुर्सी का' कुसुमकुमार का 'ओम क्रांति, ओम क्रांति', मणि मधुकर का 'दुलारीबाई', मुद्राराक्षस का 'आला अफसर' आदि उल्लेखनीय हैं। वर्तमान काल से हिन्दी नाटकों में व्यंग्य का स्वर और भी तीव्र होता जा रहा है। इन व्यंग्य नाटककारों में के.पी. सक्सेना, मृणाल पाण्डे, सुदर्शन मजीठिया, रमेश उपाध्याय, आशा वर्मा, हरि मेहता के नाटकों को देख सकते हैं।

हिन्दी कहानी में व्यंग्य की शुरूआत प्रेमचन्द की कहानियों से ही देखते हैं। यशपाल, अज्ञेय, भीष्म साहनी मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, उषा प्रियंवदा, कृष्ण बलवेद वैद की कहानियों में व्यंग्य को विकसित होते देखा जा सकता है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शक्ल, रविन्द्र कालिया, ज्ञानरंजन, रवीन्द्रनाथ त्यागी आदि की कहानियों में जीवन तथा समाज की विभिन्न स्थितियों पर कटू व्यंग्य उभरता है। सुदर्शन मजीठिया ने अपनी पुस्तक 'समकालीन हिन्दी व्यंग्य एवं परिदृश्य' में हरिशंकर परसाई को 'हिन्दी व्यंग्य कहानियों का भीष्म पितामह' कहा है।[5] स्वतंत्रता के बाद व्यंग्य कहानियों के समानान्तर हिन्दी साहित्य में व्यंग्य उपन्यास भी लिखे गये। श्रीलाल शुक्ल का 'रागदरबारी' नागार्जुन का 'हीरक जयंती', डॉ. सरोजनी प्रीतम का 'बिके हुए लोग', रांगेय राघव का 'हुजूर', विध्यांचलप्रसाद का 'चाँदी का जूता', बदी उज्जमा का 'एक चूहे की मौत', डॉ. नरेन्द्र कोहली का 'आश्रितों का विद्रोह', डॉ. सुदर्शन मजीठिया का 'कागजी सुल्तान', अशोक शुक्ल का 'प्रोफेसर पुराण' आदि जिनमें हास्य–व्यंग्य की पैनी धार है

जिसके माध्यम से उन्होंने सामाजिक कुरीतियों और विषमताओं पर प्रकाश पड़ता है।

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विधा का वास्तविक विकास निबन्धों में मिलता है। निबन्ध विधा की शुरूआत भारतेन्दु काल से मानी जाती है, जिन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों के दोगलेपन पर कटु प्रहार करने के लिए इसे अपनाया था। व्यंग्य निबन्धों को वास्तविक पहचान और प्रतिष्ठा स्वातंत्र्योत्तर काल में मिलती है। हरिशंकर परसाई ने जिसके एक शक्तिशाली हस्ताक्षर के रूप में उभरकर व्यंग्य को प्रतिष्ठित किया। यही कारण है कि आधुनिक साहित्य में हिन्दी व्यंग्य को स्वतन्त्र पहचान दिलाने का श्रेय परसाईंजी को जाता है। हरिशंकर परसाई के बाद के व्यंग्यकारों में उपेन्द्रनाथ अश्क, श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, लतीफ घोघी आदि हैं जिन्होंने सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों तथा विकृतियों पर सीधी चोट की है। धर्मवीर भारती, केशवचन्द वर्मा, रवीन्द्रनाथ त्यागी, संसारचन्द्र की रचनाओं में व्यंग्य के साथ हास्य की भी मीठी चुटकियों का प्रयोग किया है। स्वतंत्रता के बाद हास्य और व्यंग्य लेखकों की एक सशक्त पीढ़ी साहित्य क्षितिज को अभिभूत कर चुकी है। हास्य–व्यंग्य के क्षेत्र में समकालीन लेखकों में एक उल्लेखनीय नाम रवीन्द्रनाथ त्यागी का लिया जाता है। उनके निबन्धों में हास्य और व्यंग्य इन दोनों तत्त्वों का आकर्षक रूप प्रकट हुआ है। उन पर पूर्ववर्ती और समकालीन लेखकों का कोई स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। रवीन्द्रनाथ त्यागी के विषय में श्रीलाल शुक्लजी लिखते हैं–''उन्होंने लगभग स्वतन्त्र रूप से अपना लेखन–तंत्र विकसित किया है। उनकी कलात्मक अभिरूचियाँ परिष्कृत और साहित्य का गहन अध्ययन है। यह उनके लेखन में उसे संपन्न बनाते हुए बोझिल होने से बचाते हुए सहज रूप में प्रतिबिम्बत होता है। त्यागीजी में राजनीतिक तल्खी नहीं है, वहाँ सहज परिहासबोध है स्थितियों के विश्लेषण की कौतुकपूर्ण सूझबूझ है।''[6]

रवीन्द्रनाथ त्यागी के व्यंग्य लेखन का फलक काफी विस्तार और वैविध्य लिए हुए है जिसमें दैनिक जीवन की रूढ़ियों से लेकर समाज की व्यापक विसंगतियों, राजनीतिक अवसरवादिता और भ्रष्टाचार, नेताओं द्वारा जनता पर किया जाने वाला आर्थिक शोषण, लालफीताशाही, प्रशासनिक खोखलापन तथा योजनाओं की हास्यास्पदताओं पर तीखे व्यंग्य किए गए हैं। देश के युवाओं की दिशाहीनता, साहित्यिक विद्रूपताओं पर भी उनकी खास नजर है। आज प्रजातंत्र अनेक विसंगतियों से परिपूर्ण है। प्रजातंत्र की स्थिति के कारण जनता आज भी उतनी ही दयनीय एवं पराश्रयी है जितनी कि वह आजादी से पूर्व थी। आज प्रजातंत्र सिर्फ कहने–सुनने भर के लिए रह गया है। अतः प्रजातंत्र पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए रवीन्द्रनाथ त्यागी लिखते हैं–''होने को तो आज प्रजातंत्र है पर वास्तविकता यह है कि वह प्रजा से अब भी अधिक शक्तिशाली है। प्रजा की हम इज्जत करते हैं और इसी कारण प्रजा शब्द का प्रयोग तंत्र से पहिले किया गया है। पर सच्चाई में स्थिति वही है जो सीताराम शब्द में 'सीता' की और राधाकृष्ण में 'राधा' की।''[7] आज के प्रजातंत्र में समाजवाद केवल चर्चा का विषय मात्र बनकर रह गया है। 'खाओ और बाँटकर खाओ' यह प्रणाली सभी क्षेत्रों में अमल हो रही है। सरकार की सारी योजनाओं नेता लोग बीच में ही खा जाते हैं, उन्हें जनता तक पहुँचने भी नहीं दिया जाता। इस बात पर रवीन्द्रनाथ त्यागीजी ने व्यंग्य करते हुए लिखा है–''समाजवाद की एक परिभाषा यह है कि जो भी खाओ वह बाँटकर खाओ, चाहे वह रोटी हो या रिश्वत।''[8]

रवीन्द्रनाथ त्यागी ने राजनीतिक क्षेत्र के साथ प्रशासनिक तंत्र की विसंगतियों को अपनी व्यंग्य रचनाओं में विशेष मुखरता दी है। इसका कारण यह था कि वे स्वयं एक सरकारी प्रशासक के नाते नौकरशाही से जुड़े हुए थे, उसे अपेक्षाकृत अन्य से अधिक गहराई से जानते थे और उसी अनुभव को उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा प्रस्तुत भी किया। अफसर पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं–'' 'नेता' यदि 'जन–गण–मन अधिनायक' का पार्ट अदा करता है तो अफसर जो है वह 'भारत–भाग्य–विधाता' होने की महान् जिम्मेदारी संभालता है।''[9] त्यागी जी की दृष्टि अफसरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार के विविध रूपों पर अत्यंत पैनेपन के साथ मुखर हुई है। वर्तमान

व्यवस्था में जब सब तरफ स्वार्थ–सिद्धि में जुटे लोग ही विद्यमान हैं तो संपूर्ण अफसरशाही का स्वार्थी और भ्रष्ट बन जाना स्वाभाविक है। इस भ्रष्टाचार में क्या क्लर्क, क्या अफसर सभी रंगे हुए दिखाई देते हैं। इस स्थिति पर करारा व्यंग्य करते हुए रवीन्द्रनाथ त्यागी लिखते हैं–''चपरासी जो है वह बख्शीश मांगता है, बाबू जो है वह दस्तूर मांगता है, अफसर जो है वह रिश्वत लेता है और अंत में चलकर मंत्री जी जो हैं वे पार्टी के लिए चंदा माँगते हैं।''[10]

अन्य क्षेत्रों की भाँति साहित्यिक क्षेत्र भी अपने आपको विसंगतियों से बचा न सका। अन्य क्षेत्रों की भ्रष्ट परिस्थितियों से साहित्यिक जगत् दूषित बना है। डॉ. शशि मिश्र के शब्दों में–''किसी भी देश का साहित्य वहाँ की राजनीति, समाज एवं सांस्कृतिक आचरण का दस्तावेज होता है।'' अतः रवीन्द्रनाथ त्यागी ने इन्हीं विसंगतियों को अपने हास्य–व्यंग्य का लक्ष्य बना दिया है। त्यागीजी ने साहित्यिक व्यंग्यों में उन साहित्यकार पर व्यंग्य बाण छोड़े हैं जो स्वयं को अमर करवाने के लिए विविध हथकण्डे अपनाते हैं और यश, धन के पीछे बेतहाशा भागते हैं। इस स्थिति के सन्दर्भ में त्यागी जी का कथन द्रष्टव्य है–''वह जमाना गया जब बिना कोर्स में किताब लगने की आशा किये बाबा तुलसीदास और संत सूर या कबीर हजारों–हजारों पृष्ठों की पुस्तकें लिखा करते थे, अब तो लोग सिर्फ प्रादेशिक पुरस्कार पाने के लिए साहित्य लिखते हैं।''[11] वर्तमान सन्दर्भों में साहित्यकार को क्षुद्र भावनाओं ने ग्रस लिया है। वह व्यक्तिगत स्वार्थ में इस कदर खो गया है सामाजिक हित की भावना बहुत पीछे रह गयी। इसका एक कारण यह है कि साहित्कार उम्र भर लिखता रहता है फिर भी उसकी आर्थिक दशा में कोई परिवर्तन नहीं होता। कारण वे सुरेखाजी को दिए गए साक्षात्कार में देते हैं कि– ''लोग किताबें खरीदते नहीं, बिना गुटबंदी के।''[12]

आज की शिक्षा और शोध के गिरते स्तर पर भी रवीन्द्रनाथ त्यागीजी ने चिन्ता व्यक्त की है। आज शिक्षा और पी0 एच0 डी0 की डिग्री दोनों प्राप्त करना एक व्यवसाय बन गया है। पवित्र शिक्षा–क्षेत्र को भ्रष्टाचार का कलंक लगा है, साथ ही वह राजनीति का शिकार भी बना हुआ है। त्यागीजी के शब्दों में–''कॉलेज की यूनियन क्या है– राजनीति का एक अखाड़ा है।[13] .....छात्र लोग हैं वे अवसरवादी शिक्षकों के इशारों पर नाचते हैं, शिक्षक हैं वे प्रधानाध्यापक के इशारे पर नाचते हैं और प्रधानाध्यापक जो हैं वे कॉलेज की कार्यकारिणी के इशारे पर कभी कथक नृत्य प्रस्तुत करते हैं और कभी भरतनाट्यम। कार्यकारिणी के सदस्य जो हैं वे इतने होनहार हैं कि बिना किसी बाहरी सहायता के खुद ही नाचते रहते हैं और कभी–कभी तो ये नाच काफी फूहड़ भी हो जाता है।''[14] धर्म के क्षेत्र में आई दूषित मानसिकता का चित्रण भी हम रवीन्द्रनाथ त्यागी के व्यंग्य साहित्य में स्थान–स्थान पर देख सकते हैं। धर्म का कार्य मानवता को जोड़ना है, पर आज वह तोड़ने के लिए प्रयुक्त होने लगा है। इस स्थिति पर व्यांग्यात्मक टिप्पणी करते हुए त्यागी जी लिखते हैं–''पहिले हमारा मात्र एक देश था मगर धर्म और भगवान के नाम पर इसके तीन भाग हो गए। जो काम भूगोल नहीं कर सका। वह इतिहास ने कर दिखाया।''[15] आज बदलती स्थितियाँ और मानसिकता के कारण धर्म की व्याख्या और उसका स्वरूप, राजनीतिक–प्रशासनिक परिदृश्य सब कुछ तो बदला है।

''कोई भी साहित्यकार अपने वर्तमान की उपेक्षा नहीं कर सकता और व्यंग्यकार तो कभी भी वर्तमान से टूट नहीं सकता।''[16] तभी तो रवीन्द्रनाथ त्यागी के निबन्ध सामयिकता के साथ भारतीय समाज की विकृतियों और राजनीति के घिनौने रूप से एकाकार हो जाते हैं। यह सच है कि रवीन्द्रनाथ त्यागी का हास्य, उपहास अथवा परिहास गहन–गम्भीर समस्याओं को पठनीय बनाने का माध्यम भर है। लक्ष्य तो उनका व्यंग्य करना ही है। इसके लिए रवीन्द्रनाथ त्यागी ने 'स्व' को माध्यम बनाया। कभी कभी अपने आप पर किया गया कटाक्ष दूसरों के लिए असरदार और उपयोगी होता है। आजादी के बाद जिस तीव्र गति से विरूपताएँ प्रकट हुई थीं, उसके कारण व्यंग्यकारों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपने आप को इस विकृति का यथार्थ अंग बनाकर प्रस्तुत

करें। हरिशंकर परसाई तथा शरद जोशी की व्यंग्य परम्परा को आगे बढ़ाने वाले रवीन्द्रनाथ त्यागी के व्यंग्य–लेखन में 'आत्म–व्यंग्य' के पीछे यही आधार प्रबल रहा था। उनका मानना था कि ''व्यंग्यकार किसी का आदमी नहीं होता, सिर्फ आदमी होता है।''[17]

वर्तमान परिस्थितियों में शुद्ध साहित्य की अपेक्षा व्यंग्य साहित्य अधिक उपादेय है। इस सन्दर्भ में डॉ. श्यामसुन्दर घोष ने लिखा है–'' आज परिस्थितियों ने साहित्यकार को ऐसे मुहिम पर ला खड़ा किया है कि वह केवल शुद्ध साहित्य लिखकर न जीवित रह सकता है और न उसकी प्रासंगिकता बनी रह सकती है। जिस समाज में पैसे, पद और लाठी का जोर हो उस समाज में इनसे हीन और वंचित लोग आखिर कैसे खड़े होंगे? उनके पास कुछ तो होना चाहिए जिसको लेकर वे खड़े हो सके या जिसका वे बतौर हथियार इस्तेमाल कर सके। क्या शुद्ध साहित्य इस दशा में उनके काम आ सकता है? मेरा तो ख्याल है कि इसका जबाव 'नहीं' में देना होगा। तब आखिर हम किस चीज को बतौर हथियार इस्तेमाल करेंगे? निश्चय ही यह व्यंग्य है या हो सकता है यह मैं कहूँगा।''[18] आज का साहित्यकार केवल हास्ययुक्त या व्यंग्ययुक्त साहित्य–सृजन की अपेक्षा हास्य–व्यंग्य साहित्य में रत है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी लेखकों में शरद जोशी, राधाकृष्ण, शंकर पुणतांबेकर, लतीफ घोघी और रवीन्द्रनाथ त्यागी आदि 'हास्य–व्यंग्यकार' के रूप में ही पहचाने जाते हैं। तीक्ष्ण से तीक्ष्ण व्यंग्य को हास्य के आवरण में व्यक्त करने वाले रवीन्द्रनाथ त्यागी ने हास्य और व्यंग्य के बारे में लिखा है–''हास्य और व्यंग्य अलग–अलग चीजें हैं और दोनों में शुद्ध रूप से पृथकता रखते हुए भी कलाकार प्रथम श्रेणी की रचनाएँ दे सकता है।.... मेरे लिए ज्यादातर हास्य मात्र माध्यम है व्यंग्य लक्ष्य। आपको आपकी परिस्थतियों के प्रति तिलमिला डालने के लिए अगर हास्य का सहारा ले लिया जाए तो प्रभाव ज्यादा रहेगा।''[19]

रवीन्द्रनाथ त्यागी की रचनाओं में 'हास्य–व्यंग्य' का ताना बाना कुछ ऐसा है कि दोनों को अलग–अलग करके देखना कठिन हो जाता है। 'हास्य–व्यंग्य विधा' के सन्दर्भ में वे लिखते है–''संस्कृत साहित्य में हास्य के अभाव के कारण हिन्दी साहित्य में भी हास्य नहीं आया और इस विधा का विकास नहीं हो पाया। आजादी के बाद जैसे–जैसे झूठ, दम्भ तथा भ्रष्टाचार देश में फैलता चला गया, उसका पर्दाफाश करने के लिए हास्य–व्यंग्य आवश्यक होता गया। समाज की कुरीतियों का भण्डाफोड़ करने का कार्य प्रमुखतः व्यंग्य द्वारा ही हो सकता है। यदि इसमें हास्य भी समाविष्ट हो जाये तो रंग और भी तेज हो जाएगा।''[20] रवीन्द्रनाथ त्यागीजी का हास्य सरल और शिष्ट है। समाज और मनुष्य जीवन में व्याप्त विसंगतियों को वह अधिक नग्नता के साथ उजागर करता है। उत्कृष्ट व्यंग्य के सृजन के लिए वे हास्य को अनिवार्य न मानते हुए भी हास्य के पक्षधर बने हैं। वे श्रेष्ठ रचना उसी को मानते हैं जिसमें हास्य और व्यंग्य दोनों का समावेश हो। उन्होंने हास्य–व्यंग्य को विधा नहीं अपितु एक 'रस' माना है और उसका प्रयोग वे रसात्मक रूप में ही करना चाहते हैं।

निष्कर्षतः रवीन्द्रनाथ त्यागीजी का हास्य–व्यंग्य को हिन्दी साहित्य में स्वतंत्र प्रतिष्ठा दिलाने की दिशा में बहुत बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश की विसंगतियों पर व्यंग्य प्रहार कर स्वतंत्र भारत के समाज और मनुष्य जीवन के यथार्थ प्रतिबिम्ब को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इसीलिए उनका हास्य–व्यंग्य मिश्रित निबन्ध साहित्य भारतीय समाज तथा मनुष्य जीवन का एक सच्चा दर्पण बना हुआ है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 श्यामसुन्दर घोष व्यंग्य–विवेचन, पराग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1994, पृ0 17
2. डॉ0 मुरधीधर शाहा, हिन्दी निबन्धों का शैलीगत अध्ययन, प्रकाशन, –पुस्तक संस्थान, कानपुर, संस्करण 1973, पृ0 442
3. डॉ. सुदर्शन मजीठिया एवं डॉ0 बालेन्दुशेखर तिवारी, स्वांत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य सृजन की यात्रा, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1996, पृ0 18

4. डॉ0 सुदर्शन मजीठिया, समकालीन हिन्दी व्यंग्य एवं परिदृश्य, शांति प्रकाशन,, रोहतक, हरियाणा, संस्करण 1989, पृ0 143
5. डॉ0 सुदर्शन मजीठिया, समकालीन हिन्दी व्यंग्य एवं परिदृश्य,शांति प्रकाशन, रोहतक, हरियाणा, संस्करण 1989, पृ0 151
6. श्रीलाल शुक्ल, हिन्दी हास्य–व्यंग्य संकलन (भूमिका से), नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली, संस्करण 1997, पृ0 16
7. रवीन्द्रनाथ त्यागी, शोकसभा–अपना देश : चिंतन के कुछ क्षण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 50
8. रवीन्द्रनाथ त्यागी, शोकसभा –अ–डाकुओं का आत्म–समर्पण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 28
9. रवीन्द्रनाथ त्यागी, 'यक्ष–प्रश्न (रवीन्द्रनाथ त्यागी की सौ रचनाओं का संगह), लेख–भारत देखिए, पृ0 09
10. रवीन्द्रनाथ त्यागी, पराजित पीढ़ी के नाम–पराजित पीढ़ी के नाम, पराग प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1988, पृ0 3
11. रवीन्द्रनाथ त्यागी, भित्ति चित्र–मेरा साहित्य प्रेम, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1966, पृ0 35
12. डॉ0 आशा रावत, कवि और हास्य–व्यंग्यकार रवीन्द्रनाथ त्यागी, डॉ0 सुरेखा बाळासाहेब शाहापुरे को दिए गए इंटरव्यू से उद्धृत, रचना प्रकाशन, जयपुर, पृ0 216
13. रवीन्द्रनाथ त्यागी, इतिहास का गाँव–एक मुदर्रिस की रामकहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1993, पृ0 167
14. रवीन्द्रनाथ त्यागी, इस देश के लोग–अखबार पढ़ने के बाद, पराग प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1982, पृ0 103–104
15. रवीन्द्रनाथ त्यागी, शोकसभा–एक दीक्षांत भाषण. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 71–72
16. रवीन्द्रनाथ त्यागी, देश–विदेश की कथा–तीन दिलचस्प खबरें ; एक अपील के साथ, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 1994, पृ0. 96
17. रवीन्द्रनाथ त्यागी, गणतन्त्र दिवस की शोभायात्रा, हरिशंकर परसाई : एक ऑफिस–नोट, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 1991, पृ0. 52
18. डॉ0 श्यामसुन्दर घोष, व्यंग्य–विवेचन, पराग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1994, पृ0 76
19. डॉ. कमलकिशोर गोयनका, रवीन्द्रनाथ त्यागी–प्रतिनिधि रचनाएँ, पराग प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1987, पृ0 315–316
20. डॉ0 कमलकिशोर गोयनका, रवीन्द्रनाथ त्यागी–प्रतिनिधि रचनाएँ, पराग प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1987, पृ0 318

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

हिन्दी गद्य साहित्य में व्यंग्य

अजेन्द्र सिंह (शोधार्थी)
पीएच.डी. (हिन्दी साहित्य)
कृष्णा गेस्ट हाउस के सामने, राजनगर–अहरोली शेख बाईपास रोड,
पुखरायां, कानपुर देहात–209111

1. व्यंग्य की व्युत्पत्ति–(गद्य साहित्य) – साहित्य समाज का दर्पण होता हैं जैसी उक्ति वर्ग चरितार्थ करते हुए मनुष्य समाज में व्याप्त गुण के अवलोंकनार्थ साहित्य की शरण में गया। साहित्य ने जहाँ एक तरफ मनुष्यों का मनोरंजन किया, तो दूसरी तरफ सामाजिक बुराइयों का ज्ञान भी कराया आधुनिक मशीनी गुण की तमाम जटिलताओं को जो साहित्यकार व्यक्त करने में अपने को असमर्थ था तो उसने व्यंग्य शैली का विकास किया।

आशय यह है कि व्यंग्य का विकास आधुनिक युग की आवश्यकता का परिणाम हैं।

व्यंग्य शब्द प्राचीन भारतीय साहित्य में अंग्रेजी भाषा के ''सेटायर'' के पर्याय का समानार्थक शब्द के रूप में पहले प्रचलित नहीं था। एक विशेष बात यह भी हैं कि हमारे व्यंग्य रचना आधुनिक युग की देन हैं, कि यद्यपि इससे मिलती जुलती रचनाओं का हमारे यहाँ अभाव नहीं रहा हैं। रामखेलावन पाण्डेय के अनुसार–''ऐसे तो व्यंग्यात्मक आवेश वेदों मे मिल सकते हैं, किन्तु नाट्य शास्त्र में व्यंग्यात्मक के स्पष्ट संकेत है। सिद्ध– साहित्य में पूजा करने वाले पंडितों, गंगा स्नानादि को पुण्य कर्म मानने वाले पौराणिक धर्मावलम्बियों पर व्यंग्य किये गये हैं।''[1] हिन्दी साहित्य में व्यंग्य शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा की देन है। संस्कृत में इसकी व्युत्पत्ति अञ्जज धातु में 'वि' उपसर्ग और 'त्यत्' प्रत्यय लगाने से हुई है। यानि व्यंग्य का विच्छेदन हुआ वि+अञ्जज+व्यत्।

अञ्जत धातु के अर्थों में सम्मिलित हैं व्यक्त करना, प्रस्तुत करन, सफाई करना आदि। इसी अञ्जज धातु से व्यंजना व्यंजित, व्यंजन आदि बने। व्यंग्य मूलतया विशेषण हैं जिसका अर्थ हैं शब्द का व्यंजनावृत्ति द्वारा प्रकट होने वाला गूढ एवं छिपा हुआ अर्थ। इसका अर्थ कटूविक्त, ताना तथा बोली भी मान गया हैं। आधुनिक साहित्य में वाग्वैदग्ध्व वक्रोत्ति आदि के माध्यम से विसंगति पर जो रचनाएँ प्रहार कर रही हैं उनकी निकटता व्यंग्य शब्द के अधिक निकट हैं। व्यंग्य की परिभाषा–व्यंग्य की शास्त्रीय व्याख्या वृत्ति के द्वारा प्रकट होने वाला अर्थ अथवा किसी भी शब्द का परतदार अर्थ या उसकी वृत्तानुगामी झंकारमय व्यंजना 'व्यंग्य' होती हैं।

राम कुमार वर्मा के अनुसार– ''आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकतकर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।''[2]

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार–''व्यंग्य वह हैं जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हंस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।''[3]

बालेन्दु शेखर तिवारी के अनुसार–''व्यंग्य यानी ऐसी विद्या, जो सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली हैं। व्यंग्य यानी ऐसी विद्या जो सर्वाधिक मारक और परिवर्तनकामी हैं। व्यंग्य यानी एक ऐसी विद्या जो गद्य की सत्ता और शक्ति का मौजूदा अन्यतम गद्य रचना हैं।''[4]

आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार– ''व्यंग्य वह पद्यगम अथवा गद्या रचना हैं, जिसमें प्रचलित देशों अथवा मूर्खताओं का कभी–कभी कुछ अतिरंजना का साथ मजाक उड़ाया जाता है।

इसका अभीष्ट किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह का उपहास करना होता हैं अर्थ जो एक व्यक्तिगत आक्षेप–लेख के समान होता हैं।''[5]

मेरिडिथ के अनुसार– ''यदि आप हास्य स्पष्ट का इतना अधिक मजाक उड़ाते हैं कि उसमें दयालुता ही समाप्त हो जाए, तो आप व्यंग्य की सीमाओं में प्रवेश कर जाता है।''[6]

''व्यंग्य समाज और व्यक्ति की दुर्बलता, विसंगति, मिथ्याचार असामंजस्य, अन्याय, अविचार इत्यादि को पकड़ता हैं उस पर प्रहार करता हैं और इन सभी पर हंसता हैं, किन्तु इस हंसी में आनन्द तो प्रायः बहुत कम होता हैं, कभी नहीं भी होता हैं, क्योंकि उसमें अधिकतर पीड़ा एवं कसक ही प्रमुख रूप से उजागर होती है।''

2. गद्य साहित्य में व्यंग्य का विकास– आंरभिक हिन्दी में व्यंग्य की धार आज जैसी तेज न थी। कभी वह हास्य के सहारे खड़ा होता था, तो कभी ठिठोली करते हुए दिग्भ्रमित हो जाता था व्यंग्य की वक्रता, उसकी तुशी समय के साथ–साथ मझंती सी गयी। आधुनिक हिन्दी गद्य में व्यंग्य विवाद का विषय रहा हैं। पंडित इसे हास्य से जोड़ता देखते रहे हैं किन्तु हास्य के पीछे कोई समाजिक उद्देश्य, व्यवस्था परिवर्तन का प्रयासा अथवा विकृति कि उद्घाटन की कोशिश नहीं होती हैं। व्यंग्य का आधार न केवल उपरोक्त बिन्दु हैं। बल्कि समाज परिवर्तन के लिए व्यंग्य का इस्तेमाल एक कारगर हथियार की तरह किया जाता हैं। वामपंथी रचनाकार ने काव्य और गद्य दोनों में व्यंग्य का उपयोग करते हुए अपनी प्रतिबद्धता और रूझान का अधिक सफलतापूर्वक निर्वाह किया हैं।

चार्ल्स लैम्ब ने कहा था कि ''कब्र के पत्थरों पर व्यंग्य अंकित होता।'' और बात भी सही है। व्यंग्य समकालीन जीवन की परिस्थितियों से जन्म लेता हैं। कभी करुणा जन्म लेती हैं। इसी आक्रोश और करुणा से व्यंग्य जन्म लेता हैं। व्यंग्य आदर्श और यथार्थ की टकराहट से फूटी हुयी चिंगारी हैं हमारे राजनैतिक व सामाजिक जीवन में इतनी और ऐसी विसंगतियों हैं कि जनजीवन उनसे विक्षुब्ध और त्रस्त हैं। इसी जनजीवन की चेतना व्यंग्य के रूप में रचनाकारों के माध्यम से अभिव्यक्ति पा रही हैं।

साहित्य में समाज की जो छवियॉ आदिकाल से हम निहारते आये हैं, उनमें विद्रुप और विसंगतियों की दर्पण भी कम घुमाया जाता था। और तकनीकी विकास की आज जैसी आपाधापी न थी। परिणामतः व्यंग्य का वैसा विस्तार भी न था। यदि हम आज के विश्व की ओर दृष्टि डाले तो जहाँ हमें वैज्ञानिक विकास के नये–नये आयाम देखने को मिलते हैं वही हिराशिमा और नागासाकी के कब्रिस्तानों की कोढ़ी उपस्थिति भी दुनिया के दामन पर दाग की तरह नजर आती है। यथार्थवादी रचना दृष्टि के विकास ने जहाँ हमें आइने के समाने ला खड़ा कर दिया हैं वहीं हमारी वैज्ञानिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक महत्वाकांक्षाओं ने हमारी नैतिकता, हमारी संस्कृति और हम सम्पूर्ण व्यवस्था पर हीं प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया है।

मध्यकाल मे जीवन की सारी कदर्थताओं के उत्स में था, आज वह राजनीति में है, साहित्य में हैं, प्रशासन में है, शासन में हैं। कहने का अर्थ यह हैं कि मानव जीवन के हर क्षेत्र में कदर्थताओं का उत्स हैं। इसीलिए उस समय कबीर को धर्म के आडम्बर के विरुद्ध लुकाटी चलानी पड़ी थी। और आज व्यंग्यकार को समाज के हर क्षेत्र के दूरंगेथने के विरुद्ध कटिबद्ध होना पड़ता हैं। जिसके कारण आज व्यंग्य विद्या गद्य साहित्य में अत्यधिक रुप से सशक्त होकर विकसित हुयी हैं और अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है।

व्यंग्य के विकास तथा इसकी प्रौढ़ता के बारे शरद जोशी जी ने कहा है।

''व्यंग्य– के हास्य का दायरा इतना विशाल और सम्भावनाएँ इतनी अनन्त हैं कि इसे अगर हर नाज और अन्दाज का पूरा अवसर मिले तो यह हर भरोसे पर अपना प्रतिबद्धता सिद्ध कर सकता हैं।''

3. हिन्दी गद्य में व्यंग्य का स्वरूप – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'' लिखते हुए आधुनिक काल में गद्य की शुरुआत और उसके बहुआयामी स्वरुप पर टिप्पणी करते हुए लिखा था ''आधुनिक काल में गद्य का आविर्भाव सबसे प्रधान साहित्यिक घटना हैं। इसलिए उसके प्रचार का वर्णन विस्तृत रुप से करना पड़ा हैं। इस थोड़े से काल के बीच हमारे साहित्य के भीतर जितनी अनेक रुपता का विकास हुआ हैं उतनी अनेक रुप का विधान कभी नहीं हुआ था।''[7] इस गद्य साहित्य के आविर्भाव के साथ इस व्यंग्य का असर भी साफ

पहचान सकते हैं। हिन्दी के आरम्भिक समाचार पत्र उदंतमार्तण्ड संवत (1883) में व्यंग्य की उपस्थिति दर्ज है।

आचार्य हजारी प्रसाद आधुनिक गद्य युग की शुरूआत उन्नीसवीं सदी मानते हैं। ''हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल सन ईसवी की उन्नीसवीं शताब्दी से माना जाता हैं। साहित्य में आधुनिकता की आरम्भिक सीमा का निश्चय करना कठिन होता है। विच के क्षेत्र में बहुत सी बाते पहले से ही संचित होती रहती हैं, और उनका साहित्य रूप से प्रकाशन देर से होता हैं। भारत वर्ष में अंग्रेजों के साथ सम्पर्क तो बहुत पहले से स्थापित हो चुका था, किन्तु साहित्य पर इस सम्पर्क का प्रभाव बहुत बाद में पड़ा।''[8]

आधुनिक हिन्दी साहित्य का जहाँ तक प्रश्न हैं तो उस पर काफी हद तक पश्चिम के प्रभाव असर डालते हैं। भारत में मुसलमान आये तो अनेक भाषाएँ बोलते थे। इनमें तुर्की बोलने वाले प्रमुख थे। दिल्ली पर ईरानियों ने कभी हुकूमत नहीं की पर उनके सांस्कृतिक प्रभाव के कारण फारसी राजभाषा बनाई गयी। वह विदेशी भाषा भारत में जातीय उत्पीड़न का एक साधन थी जब मुगल साम्राज्य बिखरने लगा, तब फारसी का महत्व भी क्षीण हुआ। अंग्रेजों ने व्यवस्थित ढंग से इस सामन्ती आधार शिला पर दो भाषाओं, दो संस्कृतियों के अलग–अलग भवन निर्मित किए किन्तु लोक संस्कृति इस अलगाव को अस्वीकार करती थी क्योकि दिल्ली, लखनऊ और हैदराबाद जैसे केन्द्रों का फारसी प्रेमी अभिजात्य वर्ग बोलचाल की हिन्दी में अधिकाधिक अरबी फारसी के शब्द भरने लगा।

जिसकी वजह से लम्बे समय तक शिष्ट समाज और साहित्य की भाषा का सेहरा उर्दू के सिर रहा।

''यूरोप से कुछ प्रभाव ग्रहण किए गये–स्वछन्दता वाद प्रगति वाद और नवलेखन के अर्न्तगत आने वाले कुछ अति आधुनिक विचारक टी0 एस0 इलियट, सार्गख कामू आदि हैं।''[9]

भारत जैसे विशाल उपमहाद्विप में यह संभव न था कि वे प्रभाव पूर्णतः अस्वीकृत कर दिए जाए अतः ये सभी प्रभाव आवश्यकता अनुसार ही ग्रहण किए गये। रामरतन भटनागर ने रिराला और रवजागरण में कहा हैं कि ''स्वतंत्रता के पश्चिमी अर्थ और सन्दर्भ को पूरी तरह ग्रहण कर पाना एक भारतीय के लिए कठिन हैं उसकें मन की बनावट ही भिन्न है।''

मार्क्सवाद वस्तुगत यथार्थ में परिवर्तन की माँग करता हैं। जब कि निरंतरता में विश्वास करने वाला भारतीय दर्शन परिवर्तन को केवल यथार्थ रुप परिवर्तन के अर्थ स्वीकार करता हैं।''[10]

उन्नीसवी शताब्दी के आरंभ में मुंशी इंशा अल्ला खाँ ''रानी केतकी की कहानी'' के जरिये हिन्दवी का शंखनाद करते हैं। मुंशी सदा सुखलाल, लल्लू लाल, सदल मिश्र भी उनके साथ ही हिन्दी गद्य को नमा स्वरूप प्रदान करने के लिए रचना में सक्रिय होते है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र की परम्परा में आये निबन्धकारों को हम भारतेन्दु और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के युगों की कडियाँ कह सकते हैं। इसमें बाल मुकुन्द राधाकृष्ण गोस्वामी प्रमुख हैं। बाल मुकुन्द गुप्त का ''शिव शुभ चिट्ठा'' समसामयिक और साहित्य सन्दर्भों पर ने केवल सर्तक टिप्पणी हैं बल्कि उसका हर निबन्ध प्रकृति से व्यंग्य का स्वरुप लेकर ही चलता हैं जहाँ तक बीसवी शताब्दी की कविता का प्रश्न हैं वहाँ कुछ कवि उसे लगभग अकान्त किये रहे हैं यथा

''यदि काव्य प्रभावों पर विचार करें तो बीसवी शताब्दी की कविता पर काव्य धाराओं की बनिस्वत कुछ कवि अधिक छाये रहे हैं। और इन्हे नयी काव्य शैली को स्थापित करने का श्रेय हैं। इनमें से कुछ नाम हैं अंग्रेजी कवि एजरा पाउंड टी0 एस0 इलियट और ओडेन, फ्रेंच कवि क्लेरी एलुआर आरागी, अपोलिनिया इटालियन कवि मशीने रूसी कवि मायकोवस्की, पास्तनाक और ब्लाक स्पेनिश कवि लेखक और जर्मन कवि रिल्के और स्टीफन जार्ज।''[11]

इस समय मध्यवर्गीय सामाजिक परिवेश में रचना के जो संस्कार दिखाई देते हैं उनमें यहाँ वहाँ सामन्ती संस्कारों के अवशेष भी दिखाई देते हैं किन्तु वे एक मृत होती हुई व्यवस्था को ही दर्शाते हैं। रचना और उसके उद्देश्य की दृष्टि से सामजिक परिवर्तन की योजना के नाते यह एक बड़ी उपलब्धि कही जायेगी। ब्रिटिश शासन

के विरुद्ध एक विकट जनआन्दोलन के प्रभाव भी इस प्रकार भी इस समय की रचना में साफ दिखाई देता हैं। उपन्यासों में समाजिक चेतना के लक्षण और स्वर इस समय साफ–साफ पहचान में आते हैं।

''इन उपन्यासों से आदर्श नैतिकता, धार्मिकता, सुधार उपदेश आदि लोक कल्याण कारक बहुत कुछ हैं परन्तु उपन्यास कला का अभाव हैं।''[12] यह सामाजिक चेतना और विशिष्ट लोकमंगलकारी छवि प्रदान करती हैं।

''हिन्दी उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषत उनकी नैतिकता और शिक्षा हैं लेखकगण जनता को अद्योनति के गर्त से निकाल कर उचित मार्ग पर लाना चाहते थे।''[13]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिस प्रकार गद्य की भाषा का स्वरूप स्थिर करके गद्य साहित्य को देशकाल के अनुसार नये–नये विषयों की ओर लगाया, उसी प्रकार कविता की धारा को भी नये क्षेत्रों की ओर मोड़ा। इस नये रंग में सबसे ऊँचा स्वर देश भक्ति की वाणी का था। उसी लगे हुए विषय लोक हित, समाजसुधार, मातृभाषा का उद्धार आदि थे। यह जमाना उन रचना कमियों का हैं जो एक सबल सामाजिक चेतना से अनुप्राणित होकर समाज परिवर्तन हेतु रचना को अस्त्र बनाते हैं।

4. हिन्दी गद्य साहित्य में व्यंग्य की प्रवृत्तियाँ – आधुनिक हिन्दी गद्य में यो तो व्यंग्य की अनेक प्रवुत्तियाँ देखने को मिलती हैं किन्तु वे मूलतः सह प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट या सक्रिय होती हैं। साहित्य निरन्तरता की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी गद्य में व्यंग्य की तीन प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं जो क्रमशः आक्रोश से उत्पन्न होकर करूणा से होता हुआ परिवर्तन तक ले जाता हैं अतः आक्रोश इसकी प्रवृत्ति हैं, करूणा दूसरी प्रवृत्ति हैं तथा परिवर्तन इसका मुख्य उद्देश्य या लक्ष्य होता है।

5. वर्तमान समय में व्यंग्य की उपादयोता – आज भारतीय समाज की जो हालात हैं, उसे सीमित क्षमता के बावजूद आधुनिक हिन्दी गद्य में व्यंग्य लेखन में विचार का केन्द्र–बिन्दु बनाकर साहित्य यथाशक्ति अपना प्रयास करता हैं इसका मुख्य उद्देश्य यह हैं कि इसके प्रयास से संभावित समाज परिवर्तन में साहित्य का भी कुछ योगदान हो।

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में व्यंग्य की उपस्थिति समय और समाज सापेक्ष हैं वह एक सबल निर्माण के लिए सक्रीय 'स्प्रिट' के रूप में काम करता हैं। हिन्दी साहित्य में व्यंग्य लेखन के क्रुर प्रहार के पीछे सहज मानवीय संवेदना का करुणा सेतु हैं।

व्यंग्य लेखन मनुष्य की जाति को तीव्र गति से वर्गहीन, जातिहीन, वर्णहीन मानव समाज के निर्माण की दिशा में ले जाने वाला प्रयास हैं।

आधुनिक कथा साहित्य व्यंग्य समाज में बढ़ती हुई विंसगतियाँ तथा इनके लिये विस्तृत और मारक क्षेत्राधिकार बना रही हैं। इसे आधुनिक व्यंग्य कथा साहित्य में बखूबी समझा जा सकता हैं।

वर्तमान समय में व्यंग्य ही आवश्यकता इस लिए भी हैं क्योकि एक अच्छा व्यंग्य लेखन में कौतूहल बनाए रखने की क्षमता होती हैं। शब्द प्रधान व्यंग्य मे बौद्धिकता अधिक होती हैं। एक अच्छे व्यंग्य की आवश्यकता इस अर्थ में भी होती हैं क्योकि वह समाज में तत्कालिक परिस्थितिय और सन्दर्भों के अधिक निकटवर्ती होता हैं। व्यंग्य सदा सोद्देश्य होता हैं सुधारात्मक दृष्टिकोण इस एक आवश्यक अंग हैं जो समाज में व्याप्त

व्यंग्य सदा सोद्देश्य होता हैं सुधारात्मक दृष्टिकोण इस एक आवश्यक अंग हैं जो समाज में व्याप्त विभिन्न गतिविधियों के दर्पण का कार्य करता हैं।

व्यंग्य मानव जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य करता क्योंकि वह मिथ्याचर, भ्रष्टाचार, विसंगति आदि पर चोट करके व्यंग्यास्पद के रास्ते में रुकावट पैदा करता हैं। उसके निहित स्वार्थों को चुनौती देता हैं तथा उसे संसार की दृष्टि में घृणीत अथवा हास्यास्पद भी बना देता हैं दूसरी ओर इन असंगतियों के शिकार जनमानस की आकांक्षा, नैतिकबल संतोष भी प्राप्त होता हैं उसे अनुभव होता हैं कि कोई हैं, जो उसकी पीड़ाओं

एवं कष्टों को भोगता है।

व्यंग्य की एक विशेषता यह भी हैं कि व्यंग्य लेखन में यह शक्ति होती है, जिसे शब्द शक्ति कहते हैं। जिसके माध्यम से कम शब्दों में अधिक से अधिक चोट करने की शक्ति होती हैं। व्यंग्य मूलतः समाज के हित में होता हैं इसीलिए उसकी दृष्टि समय रूप में मानवीय कल्याण की कामना से ओत–प्रोत होती हैं। जहाँ व्यंग्यकार को व्यंग्य के बैर–द्वेष का सामना करना पड़ता हैं, वहाँ व्यंग्य के इन सताये गये अथवा प्रभावित व्यक्ति द्वारा इसने प्रशंसा और सौहार्द की प्राप्ति भी होती हैं। सचमुच ही व्यंग्यकार के साथ समाज का बहुत बड़ा वर्ग होता है। क्योकि लोगों को उत्साहित ने करके निराशा, पराजित एवं हतोत्साहित बनाता हैं तो कुछ लोगों को प्रेरित तथा आहुलादित भी कराता हैं।

अमर व्यंग्य – चित्रकार 'फिट्जपैट्रि' ने अपने व्यंग्य चित्रों का उद्देश्य यह बताया था कि– ''आराम की जिन्दगी गुजारने वालों को सताना और सताए हुओं को आराम देना।''[14]

उपरोक्त विवेचन के आधार से स्पष्ट हैं कि वर्तमान में व्यंग्य आवश्यकता समाज तथा साहित्य व व्यक्तिगत मनुष्य के जीवन के लिए अति आवश्यक हैं। वस्तुतः इन्ही परिस्थिति के कारण ही हिन्दी साहित्य में व्यंग्य उत्पत्ति व विकास हुआ, इसी परिस्थितियों में वह पला बढ़ा और अपनी प्रौंढावस्था की ओर निस्तर अग्रसर हैं।

सहायक ग्रन्थ सूची :

1. व्यंग्य का समाज दर्शन– डॉ. सुरेश आचार्य सार्थक प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 1995
2. शदी का व्यंग्य विमर्श– मलय शिल्पायन प्रकाशन शाहादरा दिल्ली संस्करण–2002

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. राम खेलावन पाण्डेय–हिन्दी साहित्य कोश भाग –1
2. राम कुमार वर्मा– रिमझिम– पृ. 11
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी– कबीर– पृ. 164
4. बालेन्दु शेखर तिवारी– हिन्दी व्यंग्य का वर्तमान स्वरूप– पृ. 122
5. आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी टव्प्म पृ. 190
6. मेरिडिथ आइडियाज ऑफ कॉमेडी पृ. 79
7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– हिन्दी साहित्य का इतिहास,
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी– हिन्दी साहित्य का उद्भव और पृ. 13
9. ओम प्रकाश दीपक– कल्पना– नवम्बर दिसम्बर 6 पृ. 33
10. राम रतन भटनागर–निराला और नवजागरण, पृ. 123
11. कुँवर नारायण–कल्पना –मार्च 60 पृ. 47
12. उदयभानु सिंह– महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृ. 19
13. डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय– आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ. 293
14. श्रवण कुमार गोस्वामी– भारत बनाम इण्डिया– पृ. 162

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

समकालीन कविता एवं ज्ञानेन्द्रपति

डॉ. के आशा
काविडा विला, मल्लपुझास्सेरी, आरमुला, पत्तनंतिट्टा, केरल– 689533

कविता मनुष्य के सौन्दर्य–बोध की सर्वोत्तम सफल अभिव्यक्ति है। कविता निश्चय ही हमारे अन्तःकरण की अमिट सौन्दर्य–सृष्टि है। कविता का जैविक संबंध मानव के जीवन से होता है। उसके जीवन से ऊर्जा पाकर ही कोई भी महान कवि कविताओं का सृजन करता है। हिन्दी के समकालीन कवियों में ऐसे अनेक कवि हैं जिन्होंने सामयिक ज़िन्दगी को अत्यन्त बारीकी से पकड़कर कविताओं का सृजन किया है। समकालीन शब्द अंग्रेजी के 'कांटेम्परेरी' के पर्याय के रूप में हिन्दी में प्रचलित है। 'समकालीनता' वास्तव में अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ उलझना है, जो वर्तमान का सत्य होता है। हिन्दी की समकालीन कविता युगीन यथार्थ की वास्तविकता को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। समकालीन कविता जीवन की विसंगतियों एवं विडंबनाओं को तथा मानवीय ज़िंदगी को अपंग और अपाहिज बनाने वाले दबावों, अंतर्विरोधों और विद्रुपताओं को पहचानने तथा मानवीय संबंधों को विकृत कर देने वाली शक्तियों की असलियत को उभारने का प्रयास करती है। इसलिये समकालीन कविता सामयिक ज़िंदगी की असह्य और दमघोट परिवेश में जानवर से भी बदतर जीवन बिताने वाले और अमानवीय स्थितियसों को झेलने से लगातार टूटते हुए मानव पर केंद्रित कविता है। समकालीन कविता वर्तमान जीवन की विसंगतियों एवं विकृतियों पर तीखा प्रहार करते हुए वास्तविकताओं की कई पर्ते खोलकर दिखाती है। इसलिए डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय समकालीन कविता को 'वर्तमान से अंकित कविता' मानते हैं। समकालीनता से आधुनिकता का प्रक्रियात्मक रिश्ता है। आधुनिकता से समकालीनता संस्कार ग्रहण करती है। इसलिए समकालीनता को आँकने के लिए 'आधुनिकता' शब्द महत्वपूर्ण है। समकालीनता आधुनिकता की पीठ पर स्थित एक कालखण्ड है जो आधुनिकता के साथ होकर भी आधुनिकता से अलग, अपनी पहचान रखता है। इस आधार पर यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि समकालीनता का संबंध आधुनिकता से होते हुए भी समसामयिक संदर्भ तक सीमित रह जाने वाली रचना आधुनिक नहीं मानी जा सकती। समकालीनता जहाँ एक ही कालखण्ड की समस्याओं से परिचित कराती है, वहीं आधुनिकता में काल की व्यापक स्थिति रहती है और परम्परा के साथ निरन्तर काल प्रवाह और गतिशीलता बनी रहती है।

समकालीन कविता का मूल्यगत स्वरूप देखने से लगते हैं तो हमें पूर्ववर्ती कविता से वह अत्यंत सूक्ष्म एवं बारीक दिखाई पड़ता है। उसमें कवि के शब्द बहुत नुकीले तथा विस्फोटक हो गए हैं। समकालीन परिवेश में व्याप्त असंगति, शोषण, अन्याय, उत्पीड़न और दमन को देखकर उसमें तीव्र असहमति और अस्वीकार का भाव है। अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं से उलझलना ही समकालीनता है। डॉ. राहुल के अनुसार आज के आज के आम आदमी की ज़िंदगी में आई विसंगतिओं–असंगतिओं का पर्दाफाश कर, उसके भीतर से अनुभवों द्वारा यथार्थ की खोज 'समकालिनता' है। इसलिए समकालीन कविता विविध आयामों में एक बेहतर ज़िंदगी की खोज़ की कविता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समकालिन कविता अपने समय की प्रवृत्तियों को पहचानकर और व्यक्ति एवं समाज की विषम स्थितियों से अवगत होकर गहरी संवेदनशीलता के साथ युगबोध को अभिव्यक्त करती है। समकालीन कविता का असली आधार यथार्थ है। जीवन की विसंगंतियों को इसने विशेष महत्व दिया है। सपाटबयानी में जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करना समकालीनता का महत्वपूर्ण कार्य है। समकालीन कविता का आधार 'कमिटमंट' (प्रतिबद्धता) है। समकालीन कवियों ने परिवेश के यथार्थ को नंगा करने के लिए नंगी भाषा

का प्रयोग किया। इस दौर के कवियों ने अपने पूर्व के काव्यान्दोलनों को नकार कर अपनी एक अलग भाषा की तलाश की है और इन कवियों ने जनता की सामान्य भाषा और सपाटबयानी का सहारा लिया और अपने भावों को खुले शब्दों में व्यक्त करने का साहस किया।

सामान्यतः सन् 1960 के बाद की कविता के साथ 'समकालीन' शब्द जोड़ देते हैं। समकालीन कवियों के युग की सच्चाइयों को आँखो देखा हाल का वर्णन करते हुए समसामयिक परिवेश को उसकी पूरी भयवहता के साथ ही चित्रित किया है। समकालीन कविता पर सर्वाधिक प्रभाव मुक्तिबोध और धूमिल का है। काव्यगत मौलिकता के कारण समकालीन कवियों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाम विशिष्ट महत्व का है। रधुवीर सहाय, राजकमल चौधरी, वेणुगोपाल, प्रयाग शुक्ल, विजयदेव नारायण साही, लीलाधर जगूडी आदि कवियों ने वैयक्तिक भावभूमि पर सामाजिक परिवेश की सशक्त अभिव्यक्ति करने की कोशिश की है। समकालीन कवियों में बलदेव वंशी, गोरख पाण्डेय, विष्णु खरे, कमलेश, अरूण कमल, जगदीश चतुर्वेदी, अशोक बाजपेयी, जितेन्द्र कुमार, चन्द्रकान्त देवताले, कुमार अंबुज, ज्ञानेन्द्रपति आदि ऐसे कवि हैं, जिन्हें युग की विडंबनाओं और विकृतियों का गहरा एहसास है।

ज्ञानेन्द्रपति समकालीन हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक है। वे समकालीन हिन्दी कविता के एक ऐसे महत्वपूर्ण कवि हैं, जिन्होंने समकालीन हिन्दी कविता को नयी दिशा एवं नूतन दृष्टि प्रदान कर दी है। उनकी कविताओं में एक 'जनपदीय' आभा है, स्वाधीनता का गौरव है, आंचलिकता का उजास है तथा जीवन और जगत को मंथने–भेदने वाले समकालीन मुद्दों की अनिवार्य अनुगूँज है। उनके लिए कविता कवि की कथनी नहीं, करनी है। ज्ञानेन्द्रपति एक ऐसे कवि हैं, जो कवि–कर्म को ही अपने जीवन का आखिरी लक्ष्य और पाथेय मानते हैं। उनकी कविता विशेष अर्थ में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विमर्श की कविता है। डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव ने ज्ञानेन्द्रपति के बारे में लिखा है–''युवा कवियों में ज्ञानेन्द्रपति इसलिए भी उल्लेखनीय योग्य समझे जाएँगे कि उन्होनें कविता को एक बार प्रकृति के केन्द्र में ले जाने की कोशिश की है''। उनके बारे में यह बहुश्रुत है कि उन्होंने काशी में भक्तिकालीन कवियों जैसा जीवन–प्रयास भी किया। उन्होंने वस्तुनिष्ठता के साथ अपने समय के अनुभवों को कविता में चितित्र करने की कोशिश की किया। उन्होंने वस्तुनिष्ठता के साथ अपने समय के अनुभवों को कविता में चित्रित करने की कोशिश की है। ज्ञानेन्द्रपति इस मायने में दुर्लभ कवि हैं कि वे कविता के लिए अपनी आजीविका और अपने शहर भी छोड़ सकते हैं। उन्होंने अपने काव्य–संग्र–'गगांतट' एवं 'संशयात्मा' के प्रकाशन द्वारा समकालीन हिन्दी कविता को उसका मुकाम दिया है। 'गंगातट' की कविताओं से एक ओर कवि की गहरी जिजीविषा का पता चलता है तो दूसरी ओर उनकी काव्य–जिजीविषा का भी। इसलिए 'गंगातट' की कविताएँ समकालीन काव्य भूगोल का दूसरात तट लगती है। वे अतीत के मोक्षनगर काशी के बजाय उस आधुनिक बनारस के नरक के कवि हैं। उनकी कविताएँ अक्सर कई सवाल उठाती हैं और उन सवालों का जवाब भी खोजती हैं। उन्होंने कविता को निजी राजनीतिक प्रवाह में बहने न देकर उसे अपनी कवि–प्रतिभा से अपने समय की मानवीय कारवाई में बदलने का आह्वान दिया है। इसलिए उनकी कविताएँ मानव के अर्न्तमन को कुरेदती हैं और कुरेदने के साथ–साथ कभी–कभी गहरा घाव भी देती हैं। 'संशयात्मा' की कविताओं में हमारे समय की साँवली सच्चाइयाँ दर्ज है। यहाँ झारखण्ड के पहाड़ों का अरण्यदेन सुना जा सकता है और महानगर के कोलाहल मे अनसुनी रह जाने वाले वह टेर भी जो अधरात लौटकर नींद के मुँदे कपाट खड़काती है। इस सदी की कालांकित और कालजयी सिद्ध होने वाली कविता लिख रहे ज्ञानेन्द्रपति वस्तुतः निराला और मुक्तिबोध की सजग कवि–चेतना के प्रतिनिधि कवि के रूप में उभरे हैं। वस्तुतः उनके काव्य संसार में हमारी जिज्ञासाएँ, हमारे सवाल, हमारे देश, हमारी यात्राएँ, हमारी चीखें और हमारा विलाप छिपा है। उनकी

कविताओं की एक खासियत यह है कि उनमें पूरी दुनिया से इन्सानी सरोकार मौजूद है। इस अर्थ में यह कहना आयुक्ति नहीं होगी कि कबीर से शुरू होकर निराला, मुक्तिबोध, धूमिल और अरुण कमल तक पहुँची एक गरिमामय काव्य परंपरा का आगे बढ़ाने का महान श्रेय ज्ञानेन्द्रपति का है। 'आँख हाथ बनाते हुए', 'शब्द लिखने के लिए यह कागज़ बना है' आदि उनके काव्य संग्रह हैं। 'एकाचक्रनगरी' उनका काव्य नाटक है।

वस्तुतः ज्ञानेन्द्रपति ने जिस अनुपात में समकालीन हिन्दी कविता को समृद्ध और प्रभावित किया है वह समकालीन सच की गवाही देता है। संक्षेप में कह सकते है कि ज्ञानेन्द्रपति की कविताएँ अद्यतन सामाजिक परिवेश की ज्वलन्त समस्याओं की ओर प्रकाश डालती है। नए कवियों और पाठकों को परिस्थितिक सौन्दर्य चिन्तन के नए अवबोध देने में उनकी कविताएँ नितान्त सहायक होगी और समकालीन हिन्दी कविता को नयी दिशा एवं नूतन दृष्टि प्रदान की है।

उपजीव्य ग्रन्थ

1. आँख हाथ बनते हुए
2. शब्द लिखने के लिए ही यह कागज़ बना है
3. गंगातट
4. संशयात्मा

उपस्कर ग्रन्थ

समकालीन कविता का यथार्थ – परमानन्द श्रीवास्तव

कविता का दूसरा पाठ और प्रसंग – भगवत रावत

आधुनिक हिन्दी कविता में विचार – बलदेव वंशी

आलोचना की पहली किताब – विष्णुखेर

समकालिन कविता के बारे में – नरेन्द्र मोहन

उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श – सुधीश पचौरी

समकालीन हिन्दी कविता में व्यक्त सामाजिक – राजनैतिक व्यंग्य – डॉ. वी. सत्यवती

समकालीन कविता – विविध संदर्भ – डॉ. राहुल

समकालीन कविता के विविध आयाम – अंजनी कुमार दूबे भावुक

साठोत्तरी कविता में लोक सौन्दर्य – श्रीप्रकाश शुक्ल

कविता के नए प्रतिमान – नामवर सिंह

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वैश्वीकरण का परिदृश्य व हिन्दी

(संदर्भ : भारतीय प्रजातंत्र)

डॉ0 (श्रीमती) शशि त्रिपाठी
प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान
शास. ठा. रणमत सिंह स्वशासी महाविद्यालय एवं उत्कृष्टता केन्द्र रीवा (म0प्र0)

एन्थोनी गिडेन्स अपनी पुस्तक ''दि कॉसीक्वेंसेज ऑफ माडरनिटी''में वैश्वीकरण की व्याख्या करते हुए कहते है कि–विभिन्न लोगों और दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के बीच में बढ़ती हुई अन्योन्याश्रितता या पारस्परिकता ही वैश्वीकरण हैं, यह पारस्परिकता सामाजिक और आर्थिक संबंधों में होती है, इसमें समय और स्थान सिमट जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ विकास क्रार्यक्रम के अन्तर्गत प्रकाशित मानव संसाधन रिपोर्ट (2000) में कहा गया है कि–''आधुनिक युग वैश्वीकरण का युग है–वैश्वीय बाजार, वैश्वीय तकनीकी तंत्र, वैश्वीय विचार और वैश्वीय सुदृढ़ता, ये सभी स्थितियाँ संसार भर के लोगों को समृद्धि देंगे।'' लोगों के बीच की पारस्परिकता और अन्तर्निभरता में यह आशा की जाती है कि लोग साझा मूल्यों में विश्वास स्थापित करेंगे और दुनिया के लोगों का विकास होगा।''

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य के आधार पर कहा जा सकता है कि आर्थिक, राजनीतिक वैश्वीकरण की अपेक्षा सांस्कृतिक वैश्वीकरण अधिक हुआ है। और वैश्वीकरण के इस परिदृश्य में हिन्दी भाषा जोड़ने वाले सूत्र के रूप में बड़ा काम कर रही है। हिन्दी अपनी सहजता एवं सरलता के कारण समूचे विश्व मे तेजी से बढ़ रही है। विश्व में सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषाओं की यदि हम बात करें तो इसमें कोई शक नहीं है कि हिन्दी प्रथम स्थान पर है। दूसरे स्थान पर चीनी भाषा है। विश्व के लगभग 154 देशों में हिन्दी बोली जा रही है, समझी जा रही है और पढ़ी जा रही है। हिन्दी आधुनिक इंडो आर्य भाषा है जो मुख्य रूप से भारत, पाकिस्तान, ट्रिनीडाड, मारीशस, फिजी, सूरिनाम, संयुक्त अरब अमीरात, गुयाना, दक्षिण–अफ्रीका, बंगलादेश, नेपाल, भूटान, अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैंड आदि देशों में भी बोली और लिखी जाती है। भारत के अतिरिक्त नेपाल मे 80 लाख, दक्षिण अफ्रीका में 8 लाख 90 हजार, यमन मे 2 लाख 33 हजार, युगांडा में 1 लाख 47 हजार, जर्मनी मे 30 हजार तथा न्यूजीलैंड में लगभग 20 हजार लोग हिन्दी बोलते हैं। विश्व के अनेक देश हिन्दी को विश्वभाषा के रूप में सीखते हैं, पढ़ते हैं तथा लिखते हैं। इन देशों की शिक्षण संस्थाओं में प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक हिन्दी के पठन–पाठन की व्यवस्था है। विश्वविद्यालयों में हिन्दी में शोध कार्य करने, डॉक्टर की उपाधि प्राप्त करने की भी व्यवस्था है। इन देशों में हिन्दी का या तो जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रयोग होता है अथवा इसके अध्ययन–अध्यापन की सम्यक व्यवस्था है।

अमेरिका में दो करोड़ से अधिक भारतीय मूल के लोग रह रहे हैं। वहाँ के हार्वर्ड, पेन, मिशिगन, येल आदि विश्वविद्यालयों में हिन्दी का शिक्षण हो रहा है। अमेरिका के लगभग 75 विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। हिन्दी का अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या पन्द्रह सौ से अधिक है। अमेरिका में हिन्दी के लिए कई संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। जिनमें अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति, हिन्दी न्यास आदि प्रमुख हैं। 1985 में अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति ने 'विश्वा' नामक हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन हिन्दी टाइपराइटर के अभाव में हस्तलेखन से प्रारम्भ

किया था और वर्तमान समय में वहाँ कई हिन्दी पत्रिकाएँ जिनमें विश्वा, सौरभ, हिन्दी जगत, क्षितिज, विश्व विवेक, बाल भारती, हिन्दी चेतना आदि का नाम प्रमुख हैं, प्रकाशित हो रही हैं।

जापान में हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं का अनुवाद न केवल जापानी में किया जा रहा है, अपितु हिन्दी भाषा पढ़ने, हिन्दी में शोध करने जैसे कार्य बखूबी बढ़ रहे हैं। जापान में लगभग साढ़े आठ सौ कॉलेजों में हिन्दी पढ़ाई जाती है, हजारों की संख्या में छात्र हिन्दी पढ़ रहे हैं।

इंग्लैण्ड के कैम्ब्रिज, ऑक्सफोर्ड, लंदन, यार्क आदि विश्वविद्यालयों में हिन्दी की पढ़ाई काफी समय से होती आ रही है। इसके अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी के लिए कई संस्थाएँ सक्रिय हैं, जिनमें भारतीय भाषा संगम, गीतांजलि, बहुभाषिक साहित्यिक समुदाय, यू.के. हिन्दी समिति, हिन्दी भाषा समिति, प्रमुख हैं।

कनाडा में भी हिन्दी के विकास के लिए कई संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। तथा कई हिन्दी पत्रिकाएँ नगरों और महानगरों में उपलब्ध हैं। साप्ताहिक पत्रों में जहाँ हिन्दी टाईम्स, हिन्दी एब्राड आदि प्रमुख हैं, वहीं हिन्दी पत्रिकाओं में विश्वभारती, नमस्ते कनाडा, हिन्दी चेतना, वसुधा आदि प्रमुख हैं।

मॉरीशस में हिन्दी को सर्वाधिक गरिमा प्राप्त है। मॉरीशस विश्व का एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ की संसद ने हिन्दी के वैश्विक प्रचार के लिए और उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकृत भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना की है। 12 लाख की आबादी वाले इस द्वीप में पाँच लाख हिन्दी भाषी हैं। मॉरीशस में प्राथमिक पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक हिन्दी पढ़ाई जाती है। रेडियो और टेलीविजन पर दिन–रात हिन्दी में कार्यक्रम चलते रहते हैं। देश की सभी 254 प्राथमिक पाठशालाओं में हिन्दी पढ़ाई जाती है। 585 अध्यापक हिन्दी की सेवा में लगे हैं। 48,842 छात्र हिन्दी सीख रहे हैं। माध्यमिक स्तर पर देश के सभी 64 माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी की शिक्षा जारी है।

इटली में वेनिस, टूरिन, रोम, ओरिएंटल और मिलान विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। नीदरलैण्ड्स में लगभग सवा दो लाख भारतवंशी हैं। कोरिया के दो विश्वविद्यालयों में हिन्दी के विभाग हैं। इसके साथ ही सूरीनाम में छह आकाशवाणी और चार दूरदर्शन केन्द्र हैं, जहाँ संगीत, धार्मिक प्रचार, चर्चा, साक्षात्कार, सूचनाएँ, विज्ञापन और समाचार हिन्दी में दिए जाते हैं। पौलैंड में हिन्दी भाषा और साहित्य वारसा, क्राकूब और पोजनान के विश्वविद्यालय में पढ़ाई जाती है।

रूस में प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक लगभग दो दर्जन शिक्षण संस्थाओं में डेढ़ हजार से अधिक रूसी छात्र हिन्दी का अध्ययन कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त बल्गारिया, फिजी, फिनलैंड, नेपाल, क्यूबा, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, हालैण्ड, ऑस्ट्रिया, स्विट्जरलैण्ड, डेनमार्क, नॉर्वे, स्वीडन, यूक्रेन, क्रोएशिया, दक्षिण कोरिया, मंगोलिया, उजबेकिस्तान, तजाकिस्तान, तुर्की, थाइलैंड, ऑस्ट्रेलिया, अफगानिस्तान, अर्जेन्टिना, यूगाण्डा, ओमान, कजाकिस्तान, कतर, कुवैत, केन्या, आइवरी कोस्ट, ग्वाटेमाला, जमाइका, जांबिया, तांजानिया, नाइजीरिया, न्यूजीलैण्ड, पुर्तगाल, पेरू, पेरागुए सहित लगभग 154 देशों के विष्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है।

हिन्दी विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की भाषा है। यह भी सच है कि हिन्दी बोलनेवाले विश्व की सबसे बड़ी भाषाओं में गिन जाते हैं। यहाँ तक कि प्रवासी भारतीयों की सांस्कृतिक भाषा भी हिन्दी है। कहा जा सकता है कि हिन्दी ने अपना वर्चस्व अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका, एशिया, ऑस्ट्रेलिया महाद्वीपों के देशों में फैला रखा है।

बहुसंख्यक हिन्दी भाषी देश में आज देश की आजादी के 6 दशकों से अधिक का वक्त गुजर जाने के बावजूद हिन्दी की दिशा एवं दुर्दशा हमें व्यथित करती है।

केन्द्र और राज्य के कर्मचारी 30 सालों तक अंग्रेजी में काम करने के उपरान्त हिन्दी की उपेक्षा करने लगते

हैं। सत्ता में बैठी पार्टियाँ हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के प्रति उदासीन हैं। सरकारी दफ्तरों में हिन्दी को लेकर रस्म अदायगी की जाती है। सितम्बर में हिन्दी दिवस, हिन्दी सप्ताह, हिन्दी पखवाड़ा, हिन्दी मास आदि मनाकर संसदीय समिति को रिपोर्ट भेज दी जाती है।

स्वतंत्र भारत में भाषा का प्रश्न राजनीतिक प्रश्न बन गया है। भाषा के आधार पर राजनीतिक दलों एवं राजनीतिज्ञों ने जनता को उत्तेजित करने का प्रयास किया है। कभी–कभी तो ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हुईं कि भाषा का सवाल हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए ही चुनौती बन गया है। आज तक देश में एक सर्वमान्य शिक्षा नीति का निर्माण नहीं हो पाया है। अनेक प्रदेशों के पाठ्यक्रम में हिन्दी की अनिवार्यता समाप्त कर दी गयी है, अन्तर्प्रान्तीय आदान–प्रदान में अंग्रेजी का ही बोलबाला है, अखिल भारतीय सेवाओं में अंग्रेजी का वर्चस्व छाया हुआ है। आज हिन्दी भाषी दूसरे नंबर का नागरिक माना जाता है। दफ्तरों में, रेलवे में, बैंकों में व्यापार तथा व्यवसाय में अंग्रेजी भाषी सभ्य और शिष्ट माना जाता है। साहित्यिक लेखन में अंग्रेजी का पुट दिया जाता है। पिछले कुछ वर्षों से हिन्दी भाषी प्रदेशों में कान्वेंट स्कूल, पब्लिक स्कूल और अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की संख्या तेजी से बढ़ी है। कई अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में हिन्दी बोलने पर जुर्माना लगाया जाता है, प्रताड़ित किया जाता है। संस्थानों, दुकानों और सामानों के नाम अंग्रेजी में रखे जाते हैं। लगता है हम हिन्दुस्तान में न होकर ब्रिटेन या अमेरिका में है। बच्चों का अंग्रेजी में नाम रखने का फैशन चल पड़ा है कुत्ते, बिल्ली आदि पालतू जानवरों के नाम भी अंग्रेजी में रखे जाते हैं, जब देश में हिन्दी यह दशा है उस हिन्दी की जो देश के स्वतंत्रता की भाषा है, आजादी की लड़ाई के समय जिसने पूरे देश को जोड़ा था। जिसे राजभाषा का दर्जा दिया गया था और देश की सम्पर्क भाषा बनने की कल्पना की गई थी तो विदेशों में अंतर्राष्ट्रीय मंच हम उसे कैसे प्रतिस्थापित कर सकते हैं? एक तर्क यह भी दिया जाता है कि मेडिकल, इंजीयरिंग मैनेजमेंट की पढ़ाई केवल और केवल अंग्रेजी में ही हो सकती है।

जबकि वास्तविकता यह है कि जर्मनी, जापान, फ्रांस, चीन, रूस आदि देश अपनी मातृभाषा में मेडिकल, इंजीनियरिंग मैनेजमेंट एवं अन्य तकनीकी विषयों की शिक्षा देते हैं फिर भारत में हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा नहीं दी जा सकती है। क्यों ? भाषा और व्याकरण की दृष्टि से हिन्दी अशक्त नहीं है, हिन्दी की लिपि वैज्ञानिक है और हिन्दी पूरे भारत को विभिन्न मतभेदों के बावजूद एकसूत्र में बाँधने की क्षमता रखने वाली है। हिन्दी भाषा का सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग आवश्यक है। यह बात हिन्दी भाषियों ने ही नहीं, बंगाली भाषा के–केशव चन्द्र सेन, बंकिम चन्द्र चटर्जी, श्यामा चरण मित्र, रवीन्द्र नाथ टैगोर, अरविन्द घोष, सुभाष चन्द्र बोस, मराठी भाषी– बाल गंगाधर तिलक, केशव राव पेटे, विनायक दामोदर सावरकर। गुजराती भाषी– महर्षि दयानंद सरस्वती महात्मा गांधी जैसे लोगों और जान वाग्स जैसे भाषाविद् ने स्वीकार किया है। मॉरीशस में द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में भी स्वीकार किया गया था कि–''हिन्दी की विशेषता सहभाषाओं की शुभाकांक्षी और उनसे पोषण ग्रहण करने वाली भाषा के रूप में है। इसके द्वार खुले हुए हैं। हर बिंदु पर इसका उद्देश्य प्रेम और सौहार्द्र है। जहाँ आज कुछ भाषाएँ जन समुदाय के वर्गों के बीच खाई पैदा किए हुए हैं और नए राष्ट्रों के अंदर सच्चे प्रजातंत्र को नीचे तक जमाने में कठिनाई उत्पन्न कर रही है, वहाँ हिन्दी लोगों को जोड़ने का प्रयत्न कर रही है, ऊपर उठने को प्रेरित कर रही है बहुभाषी मित्र राष्ट्रों ने इस मर्म को समझा है। वे हिन्दी की ओर अग्रसर हो रहे हैं और इसका समर्थन कर रहे हैं। यह मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि राज्यों के अलावा और अन्य राज्यों में भी काफी सीमा तक बोली जाती है और राजभाषा तथा सम्पर्क भाषा बनने की क्षमता रखती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है इसके भिन्न–भिन्न भागों में भिन्न–भिन्न भाषाएँ प्रचलित हैं। ऐतिहासिक तथ्यों और आंकड़ों से यह स्पष्ट हो चुका है कि इस देश की राजभाषा और सम्पर्क भाषा हिन्दी ही हो सकती है। इस सत्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि अंग्रेजी देश के प्रशासन

की भाषा होने के अलावा राज्यों के बीच संपर्क तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की भाषा है तथा ज्ञान–विज्ञान की वाहिनी है। अंग्रेजी के पठन–पाठन को हिन्दी का पूर्ण विकास होने तक नहीं छोड़ा जा सकता है। ऐसी दशा में यह उचित है, कि व्यर्थ के भाषायी विवाद न उठाए जाएँ और त्रिभाषा–फार्मूला को स्वीकार कर लिया जाए। भाषा के प्रश्न पर उदारवादी दृष्टिकोण अपनाकर ही इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। आज समस्या इस वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के परिदृश्य में प्रमुख विश्व की भाषाओं के साथ हिन्दी भाषा को प्रतिष्ठित करना और विज्ञान के माध्यम के रूप में उसे स्तरीय बनाना है।

यह शुभ संकेत है कि जहाँ कंप्यूटर के लिए देवनागरी लिपि को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ और सुविधाजनक लिपि माना जा रहा है, वहीं पश्चिमी जगत में भारतीय संस्कृति, भारतीय भाषा–संस्कृत और हिन्दी के प्रति रुझान बढ़ रहा है। अभी हाल ही में लोक सेवा आयोग के अंग्रेजी के पर्चे की अनिवार्यता के प्रश्न पर, अंग्रेजी के वर्चस्व के विरुद्ध पहली बार उत्तर और दक्षिण दोनों एक साथ खड़े हुए हैं और इसमें संदेह नहीं कि संकीर्ण मनोवृत्ति को छोड़कर उदारवादी दृष्टिकोण और राष्ट्रहित के प्रश्न को प्राथमिक मानकर ही इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। और हिन्दी को सही अर्थों में राजभाषा का दर्जा प्राप्त हो सकता है। यह ध्रुव सत्य है कि कोई भी राष्ट्र विदेशी भाषा के माध्यम से महाशक्ति नहीं बन सकता है, और न ही सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकता है। आज विश्व में तमाम वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि अपनी मातृभाषा में शिक्षा ही देश को बेहतर भविष्य दे सकती है।

अतः सबसे पहली आवश्यकता भाषाओं के संबंध में अपने संकीर्ण अहम को छोड़ने की है। सियासी राजनीति से बचने की है तथा सहिष्णु और उदार दृष्टिकोण अपना कर सभी भाषाओं के प्रति आदर एवं सम्मान की भावना बरकरार रखते हुए हिन्दी को उसका सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए प्रयास करने की है और एकजुट होकर देश में किया गया यह प्रयास ही वैश्वीकरण के इस युग में हिन्दी को उसका वांछित स्थान और सम्मान दिला सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वसु, दुर्गा दास (1993), भारत का संविधान एक परिचय, अनुवाद, शर्मा ब्रजकिशोर, प्रेंटिस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. डॉ0 त्रिवेदी आर.एन. एवं डॉ0 राय एम.पी. (2007), भारतीय सरकार एवं राजनीति, कालेज बुक डिपो त्रिपोलिया बाजार, जयपुर, राजस्थान।
3. डॉ0 जैन, फड़िया वी.एल. (1997), भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. दोषी, एस.एल. (2005), आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, राव पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. यादव, डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, डॉ0 राममनोहर लोहिया, वैचारिक विमर्श, आराधना ब्रदर्स, कानपुर 2013
6. योजना, नई दिल्ली दिसम्बर–2001 एवं सितम्बर 2008
7. कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली जनवरी–2011 एवं दिसम्बर 2012
8. दैनिक भास्कर, रीवा 20 मार्च 2013 एवं 15 मई 2013

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

विश्व मंच पर हिन्दी : दशा एवं दिशा

डॉ0 कमलेश सिंह नेगी
सहायक प्राध्यापक–हिन्दी
शासकीय स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय सारंगपुर, जिला राजगढ़ (म.प्र.)
एवं एसोसिएट, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास शिमला

अभी तक यह प्रचार किया जाता रहा कि विश्व में मंदारिन (चीनी) भाषा बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक है। हम देख सकते हैं कि यह संख्या कैसे है। चीन में सत्तर अन्य उपभाषाएँ व बोलियाँ हैं जिनमें से दस–पन्द्रह तो बड़ी संख्या में बोली जाती हैं। चीनी भाषा जो चीन की आधिकारिक भाषा है इसको लेकर उत्तरी चीन व दक्षिणी चीन में अनेक मतभेद उभरकर सामने आते हैं इसके बावजूद भी चीनी भाषा की लिपि होने पर भी विश्व के भाषाविदों ने समस्त चीनी बोलियों, उपबोलियों व चीनी भाषा परिवार को जोड़कर इसकी संख्या एक अरब बतायी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह संख्या सभी प्रकार की चीनी भाषा परिवार की भाषाओं को जोड़कर निकाली गई है। अगर हम हिन्दी आर्य भाषा परिवार की समस्त भाषाओं को मिला दें तथा अन्य भाषाओं में प्रयुक्त हिन्दी शब्दों की समानता को देखकर संख्या निकालें तो यह संख्या दो अरब (दो हजार मिलियन) होगी। इस विभेद को एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। 'मलय' भाषा दक्षिणी थाईलैंड, फिलीपींस, सिंगापुर, पूर्वी सुमात्रा, बोर्नियो, नीदरलैंड, बुर्नेइ, आदि देशों में बोली जाती है। इसमें थोड़ा सा परिवर्तन करके ही इसे इंडोनेशिया कहा जाता है जो इंडोनेशिया की भी राजभाषा है यह भाषा हिन्दी से बहुत साम्य रखती है लेकिन भाषा वैज्ञानिकों इसे हिन्दी परिवार से बहुत दूर 'मलाया पोलिनेशियन' परिवार में गिना जाता है। आर्य भाषा परिवार में नहीं जबकि हिन्दी से नजदीक होने के कारण इसे हिन्दी में शामिल होना चाहिए था।[1]

नियम शास्त्र कहता है कि भाषा–भाषियों की संख्या की गणना में एक ही मानदंड होना चाहिए। चीनी भाषा (मंदारिन) की गणना करते हुए चीनी लिपि में लिखी हुई सभी भाषाओं को शामिल किया गया है जबकि ये बोलियाँ बोलने बाले दूसरी बोली को समझ ही नहीं पाते हैं फिर भी इन्हें मंदारिन में शामिल किया गया है जबकि हिन्दी की बिलकुल एक समान बोलियाँ जैसे– ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि को भी हिन्दी बोलने वालों की संख्या से हटा दिया गया है।

भारत के प्रतिवेशी राष्ट्रों यथा नेपाल, चीन, सिंगापुर, वर्मा, श्रीलंका, थाईलैंड, मलेशिया, तिब्बत, भूटान, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, मालद्वीप, बंगलादेश आदि देश हैं। जिनमें से अनेक वृहत्तर भारत के अंग थे। यहाँ हिन्दी भाषी परिवार पीढ़ी–दर–पीढ़ी निवास कर रहे हैं। नेपाल की भाषाएँ हिन्दी की विभाषाएँ ही हैं। वर्मा और भूटान की स्थिति भी कुछ ऐसे ही है। दुबई की अधिकांश जनता न केवल हिन्दी समझती है अपितु बोलती है। इन देशों में लगभग एक सौ पचास वर्षों से हिन्दी विद्यमान है। भाषा और संस्कृति की दृष्टि से ये देश लघु भारत ही हैं। इन देशों में पर्याप्त मात्रा में रचनात्मक साहित्य का सृजन हो रहा है। यहाँ के क्षेत्रीय भाषा रचनाकारों ने हिन्दी साहित्य का संवर्द्धन किया है इस दृष्टि से इन देशों मे हिन्दी की राजभाषायी स्वरूप के विकसित होने की संभावनाएँ निहित हैं। विदेशों में भारतीय मूल के डॉक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक सफल हैं। भारतीय कुशल श्रमिकों की भी इन देशों में भारी मांग है। खाड़ी देशों में तो ऐसे कुशल श्रमिकों की पूर्ति भारतीयों द्वारा ही की जाती है। निश्चय ही यह हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग का एक शुभ लक्षण है। यहाँ कुछ आँकड़ों के द्वारा हिन्दी भाषियों की

संख्या को रेखांकित किया जा सकता है।

- भारत नब्बे करोड़
- पाकिस्तान 14 करोड़
- बंगला देश 7 करोड़
- नेपाल 2 करोड़
- मलेशिया 40 लाख
- म्यामार 38 लाख
- अमेरिका 25 लाख
- दक्षिण अफ्रिका 23 लाख

इस प्रकार विश्व के एक सौ सैंतीस देशों में 1123 मिलियन अर्थात् एक अरब एक करोड़ तेईस लाख लोग हिन्दी भाषी हैं। हिन्दी भाषा और इसमें निहित भारत की सांस्कृतिक धरोहर इतनी सुदृढ़ और समृद्व है कि बिना प्रयत्न के भी इसका विकास बहुत तेजी से हुआ है। ध्यान, योग, आसन और आयुर्वेद विषयों के साथ–साथ इनसे सम्बन्धित हिन्दी शब्दों का भी विश्व की दूसरी भाषाओं में विलय हो रहा है। भारतीय संगीत चाहे वह शास्त्रीय हो या आधुनिक हस्तकला, भोजन और वस्त्रों की विदेशी मांग जैसी आज है वैसी पहले कभी भी नहीं थी। आज विश्व के लगभग प्रत्येक देश में योग, ध्यान और आयुर्वेद के केन्द्र खुल गए हैं जो दुनिया भर के लोगों को भारतीय संस्कृति की ओर आकर्षित करते हैं। एक ऐसी संस्कृति जिसे पाने के लिए हिन्दी के रास्ते के द्वारा ही पहुंचा जा सकता है।[2]

आज टी.वी. के चैनलों से प्रसारित कार्यक्रमों की लोकप्रियता इतनी बढ़ी है कि इसका अनुमान लगाना कठिन है। जिन सैटेलाइट चैनलों ने भारत में अपने कार्यक्रमों का आरम्भ केवल अंग्रेजी में किया था उन्हें अपनी भाषा नीति में परिवर्तन करना पड़ा। अब स्टार प्लस, जी.टी.वी., जी.न्यूज, स्टार न्यूज, डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिक आदि टी.वी. चैनल अपने कार्यक्रम हिन्दी में दे रहे हैं। दक्षिण पूर्व एशिया व खाड़ी देशों के दर्शक इन्हें देखते हैं। यह हिन्दी की लोकप्रियता का ही प्रतिफल है। सपने सुहाने लड़कपन के, अमिता का अमित, जोधा अकबर, हर–हर महादेव, तारक मेहता का उल्टा चस्मा, बड़े अच्छे लगते हैं, बुद्ध, लापता गंज, और कौन बनेगा महाकरोड़पति की लोकप्रियता ने तो मीडिया के क्षेत्र में हिन्दी को लोकप्रियता की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। इतना ही नहीं कमाई के सारे कीर्तिमान भंग कर दिए है। आने वाले समय में हिन्दी के सुखद भविष्य के सपने सजा दिए हैं। आज विश्व के अनेकों टी.वी. चैनल तथा फिल्म निर्माता अंग्रेजी कार्यक्रमों को हिन्दी में डब करके प्रस्तुत कर रहे हैं। 'जुरासिक पार्क' जैसी अत्यन्त प्रसिद्ध फिल्म को भी अधिक मुनाफे के लिए हिन्दी में डब करना जरुरी हो गया। इस फिल्म के हिन्दी संस्करण ने भारत में इतने पैसे कमाए जितने अंग्रेजी संस्करण ने पूरे विश्व में नहीं कमाए।[3]

हिन्दी विश्व की एक ऐसी भाषा है जो कभी भी सत्ता की मोहताज नहीं रही है। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में कहें तो वह 'सिंहासनों से तिरस्कृत रही है। हिन्दी का हिन्दुस्तान में संस्कृत, पाली, अरबी, फारसी या अंग्रेजी की तरह राज्य का संरक्षण नहीं मिला। तमगा बनने की लालसा हिन्दी में कभी नहीं रही। अलबत्ता वह देश की बाँसुरी, तलवार और ढाल जरूर बनी है। जब भी देश को एकता के सूत्र में पिरोने की आवश्यकता महसूस हुई, तब हिन्दी ने बखूबी साथ दिया। महात्मा गाँधी के अखण्ड भारत की आवाज को उसने जन–जन तक पहुँचाया। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद महात्मा गाँधी जी ने अपना प्रथम भाषण देते हुए कहा कि मैं भारत की भाषा हिन्दी में बोल रहा हूँ। हिन्दी में ही सुभाष चन्द्र बोस की ललकार चारों दिशाओं में गूंजी।[4]

सच्चाई यह है कि भाषिक दासता से बड़ी कोई दासता नहीं होती क्योंकि वह भीतर से हमें इस तरह जकड़ती है कि उसके कोई चिन्ह ऊपर दिखाई नहीं देते। आज हमारी मानसिक दासता चरम सीमा पर पहुंच चुकी है। हम यह भी भूल चुके हैं कि अपनी भाषा में अपने ही खिलाफ खड़े हो गए हैं। फिजी तथा मॉरिशस

में हिन्दी को द्वितीय राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। मॉरिशस में विश्व हिन्दी केन्द्र की स्थापना की गई है। 78 प्रतिशत भारतीय हिन्दी समझ सकते हैं।

यदि समस्त हिन्दी क्षेत्र में शिक्षा–संस्थाओं, न्यायालयों, राजकीय कार्यों में हर स्तर पर हिन्दी का व्यवहार होने लगे, लोकसभा, विधानसभा, विधान परिषदों के सदस्य प्रतिज्ञा करें कि वे अपना सार्वजनिक कार्य हिन्दी में ही करेंगे, तो क्या इसमें किसी को सन्देह हो सकता है कि समूचे राष्ट्र का वातावरण बदल जायेगा और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनने में जरा भी देर नहीं लगेगी।[5]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. गूगल विकीपीडिया।
2. हिन्दी दशा और दिशा–प्रभाकर श्रोत्रिय, हिमाचल पुस्तक भण्डार, सरस्वती भण्डार, गाँधी नगर, दिल्ली, पृष्ठ–24
3. गूगल विकीपीडिया।
4. हिन्दी दशा और दिशा–प्रभाकर श्रोत्रिय, हिमाचल पुस्तक भण्डार सरस्वती भण्डार गाँधी नगर दिल्ली, पृष्ठ–भूमिका से पूर्व पेज।
5. हिन्दी आन्दोलन, संपादक–लक्ष्मीकान्त वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण 1964, पृष्ठ–58

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कंप्यूटर और हिन्दी : विमर्श के विविध पक्ष

उमेशचन्द्र
शोधार्थी, हिन्दी – विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

भाषाई कंप्यूटिंग कंप्यूटर विज्ञान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है । आज के कंप्यूटर युग में किसी भी भाषा का विकास कंप्यूटरीकरण के बिना नहीं हो सकता । किसी भी भाषा के ज्ञान–विज्ञान को सुरक्षित रखने एवं उनमें नये व्याकरण नियमों के समावेश के लिए पूरी दुनियां की भाषाओं को एक धरातल पर तक पहुँचाने के लिए उसका कंप्यूटरीकरण अत्यंत आवश्यक है। भाषाई कंप्यूटिंग की दुनियां में हिन्दी अपने विकास पथ पर अग्रसर है। 80 के दशक में कंप्यूटिंग प्रस्फुटित होने के पश्चात् आज हिन्दी ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। आज कंप्यूटर और दूसरे ऐसे उपकरणों पर हिन्दी में काम करना उतना ही सुगम है जितना की किसी और भाषा में। आज हम जिस तरह से हर क्षेत्र में शिखर का अन्वेषण करते जा रहे हैं, इसमें कंप्यूटर का बहुत बड़ा योगदान है। मनुष्य की दुनियां में कंप्यूटर ने एक नई क्रांति ला दी है। कंप्यूटर ने मनुष्य के छोटे–बड़े सभी कार्य सरल कर दिये हैं। कंप्यूटर शब्द की उत्पति कम्प्यूट शब्द से हुई जिसका अर्थ है गणक। स्वतः प्रमाणित है कि यह मूलतः गणना सम्बन्धी कार्य के लिए बनाया गया था । गणना सम्बन्धी कार्य के लिए अंक ही पर्याप्त थे और जो थोड़ी–बहुत भाषिक या शाब्दिक आवश्यकता थी, वह अंग्रेजी से पूरी हो जाती थी। इसलिए कंप्यूटर का विकास अंग्रेजी भाषा के परिप्रेक्ष्य में ही हुआ।''[1]

कंप्यूटर से पहले की संचार क्रान्ति, चाहे वह टेलीफोन हो या टेलीविजन हो, संप्रेषण के द्विपक्षीय माध्यम न थे। इसका अविष्कार कोई करे, उसे जो चाहे बनाये, पर आप जिस भाषा में चाहिए, जिस उच्चारण के साथ चाहिए, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन का प्रयोग कर सकते थे । पर, इस कंप्यूटर की संचार क्रान्ति में लिपि महत्वपूर्ण हो गई। इसे जिसने बनाया, उसकी भाषा को अन्य भाषाओं पर वरीयता मिल गई थी। कंप्यूटर का विकास सर्वप्रथम ऐसे देशों में हुआ जिनकी भाषा मुख्यतः अंग्रेजी थी। यही कारण है कि रोमनेतर लिपियों में कंप्यूटर पर कार्य कुछ देरी से आरम्भ हुआ। ऐसा कोई तकनीकि कारण नहीं है कि अंग्रेजी कंप्यूटर के लिए आदर्श भाषा समझ ली जाये। कंप्यूटर की दो संकेतों की अपनी एक स्वतंत्र गणितीय भाषा है और उसी में वह हमारी भाषाओं को ग्रहण करके अपने समस्त कार्य करता है। कंप्यूटर टैक्नोलॉजी के अंतर्गत प्राकृतिक भाषा संसाधन के क्षेत्र में विश्वभर में अनेक विशेषज्ञ प्रणालियों का विकास किया गया है जिनके माध्यम से कंप्यूटर साधित भाषा शिक्षण, मशीनी अनुवाद और वाक् संसाधन से संबंधित विभिन्न अनुप्रयोग विकसित किये गये हैं।''[2]

हिन्दी में कंप्यूटरीकरण को बढ़ावा देने के लिए सरकारी स्तर पर ही नहीं बल्कि गैर सरकारी स्तर पर भी अनेक संस्थाओं द्वारा हिन्दी सॉफ्टवेयर के निर्माण में सक्रिय रुप से कार्य प्रगति पर है । सरकारी और गैर सरकारी प्रयत्नों के कारण हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ जन सामान्य तक पहुँचा है। हिन्दी में अनेक पोर्टल भी प्रारंभ हो गये हैं। पोर्टल के माध्यम से देश–विदेश की खबरें, वर्गीकृत विज्ञापन, कारोबार संबंन्धी सूचनायें, शेयर बाजार, शिक्षा, मौसम, खेलकूद, पर्यटन, साहित्य, संस्कृति धर्म, दर्शन आदि के बारे जानकारी प्राप्त की जा सकती है, इसने समस्त भाषिक सीमाओं को तोड़ दिया। कालांतर में कंप्यूटर के प्रयोग की संभावनायें बढ़ीं। ज्ञान–विज्ञान के प्रचार–प्रसार में इसकी भूमिका बहुत बढ़ गयी। बल्कि यदि ऐसा

समझें कि भाषा और लिपि के बाद जिसने ज्ञान–विज्ञान को सबसे अधिक विस्तार प्रदान किया, वह कंप्यूटर है, तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं। स्वाभाविक रुप से कंप्यूटर के ज्ञान–विज्ञान का माध्यम बन जाने पर सबसे पहले लाभ अंग्रेजी भाषा को हुआ और फिर उन भाषाओं को हुआ, जो रोमन या समरुप लिपियों में लिखी जाती हैं।'[3]

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पिछले कुछ दशकों से शीघ्र गति से विकास हुआ है। यह मनुष्य को सोचने–विचारने और संप्रेषण करने के लिए तकनीकी सहायता उपलब्ध कराती है। सूचना प्रौद्योगिकी के अंतर्गत कंप्यूटर के साथ–साथ माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक्स और संचार प्रौद्योगिकियाँ भी शामिल हैं और इसके विकास का नवीनतम रुप है। इंटरनेट, मोबाइल, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, उपग्रह, प्रसारण, कंप्यूटर के रुप में दिखाई देता है। इन सबके द्वारा आज सूचना प्रौद्योगिकी ने पूरे विश्व को अपने आगोश में ले लिया है। कंप्यूटर की दुनिया में हिन्दी का प्रवेश सबसे पहले डॉस के जमाने में अक्षर, शब्द, रत्न आदि जैसे वर्ड प्रोसैसरों के रुप में हुआ। बाद में विण्डोज का पदार्पण होने पर 8–विट ऑस्की फॉण्टों जैसे कृतिदेव, चाणक्य आदि के द्वारा बर्ड प्रोसैसिंग, डीटीपी तथा ग्राफिक्स अनुप्रयोगों में हिन्दी में मुद्रण संभव हुआ। अब तक हिन्दी केवल मुद्रण के काम तक ही सीमित थी। यूनीकोड के आगमन से यह स्थिति बदली। माइक्रोसॉफ्ट के विण्डोज आपरेटिंग सिस्टम में विण्डोज 2000 तथा एपल के मकओ (संस्करण 10) से यूनीकोड हिन्दी का समर्थन आया। इससे अंग्रेजी आदि यूरोपीय भाषाओं का विकास हुआ।'[4]

हिन्दी जैसी भाषाओँ का कंप्यूटर से सरोकार तब बना जब कंप्यूटर की दूसरी पीढ़ी बाजार में दस्तक दे चुकी थी। जापानी, चीनी जैसी भाषाओं की चित्र लिपियों ने भी कंप्यूटर से अपना तादात्म्य बड़ी तेजी से स्थापित कर लिया, वहीं हिन्दी का कंप्यूटर से अब तक वह तादाम्य स्थापित नहीं हो सकता है, जिसमें वह सक्षम है। यहाँ यह कहने और स्वीकार करने में कोई झिझक नहीं होनी चाहिए की राष्ट्रभाषा और राजभाषा स्वीकृत होने के बाबजूद जिस तरह राजकीय मानसिकता हिन्दी के प्रति देखी जाती है, उसकी मिसाल कम ही मिलती है। यदि व्यक्तिगत प्रयास समाप्त हो जायें, हिन्दी के अनुरागी उसके उत्थान के लिए प्रयत्नशील न रहें तो हिन्दी को और भी पिछड़ेपन का सामना करना पड़े। हिन्दी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, कामकाज की, व्यापार की और वोट माँगने की भाषा है, पर अपनाई जाने वाली भाषा नहीं है।

राजभाषा विभाग सी–डैक पुणे, के माध्यम से कंप्यूटर पर हिन्दी प्रयोग को सरल व कुशल बनाने के लिए विभिन्न सॉप्टवेयरों द्वारा हिन्दी भाषा को तकनीकि से जोड़ने का सफल प्रयास 'प्रगत संगणन विकास केन्द्र' (सी–डैक) पुणे ने किया है। 'एप्लाइड आर्टिफिशियल इंटैलीजैंस ग्रुप, प्रगत संगणन विकास केन्द्र पुणे द्वारा निर्मित सॉफ्टवेयर में विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से इंटरनेट पर हिन्दी सीखने के लिए लीलावती सॉफ्टवेयर विकसित किया है। लीलावती सॉफ्टवेयर के माध्यम से हिन्दी प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ पाठ्यक्रम असमी, बंग्ला, अंग्रेजी, कन्नड़, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, उड़िया, तमिल, तेलुगू, पंजाबी, गुजराती, नेपाली और कश्मीरी के द्वारा इंटरनेट पर सीखे जा सकते हैं। हिन्दी प्रबोध प्रवीण एवं प्राज्ञ पाठ्यक्रम के प्रशिक्षण के मूल्यांकन हेतु ऑनलाइन परीक्षा प्रणाली का भी विकास किया जा रहा है। इंटरनेट के माध्यम से परीक्षा दी जा सकेगी। द्विभाषी–द्विआयामी अंग्रेजी–हिन्दी उच्चारण सहित ई–महा शब्दकोश का विकास किया गया है । महा शब्दकोष में हर शब्द का उच्चारण दिया गया जो कि किसी और शब्दकोष में नहीं मिलता। हिन्दी शब्द देकर भी उसका अंग्रेजी में अर्थ खोज सकते हैं। प्रत्येक अंग्रेजी और हिन्दी शब्द के प्रयोग भी दिये गये हैं।'[5]

हिन्दी से कंप्यूटर का विकास सबसे पहले डी.टी.पी. के काम के लिए हुआ । प्रकाशन जगत ने, विशेषकर अखबारों एवं बड़े प्रकाशक घरानों ने डी.टी.पी. के सॉफ्टवेयरों का प्रयोग शुरु किया। जब तक हिन्दी जैसी भाषायें डी.टी.पी. के काम कंप्यूटर पर निकालना सीखतीं, तब तक सारी दुनिया में इंटरनेट की क्रांति आ चुकी थी और

रोमन लिपि से संबंध एवं समरुप भाषाओं में अरबों पृष्ठ हर कंप्यूटर के नेटवर्क पर दस्तक दे चुके थे। ई–मेल ने सदियों की डाक प्रणाली और टेलीफोन का वर्चस्व तोड़ दिया था। उसमें भी अंग्रेजी और रोमन लिपि ने सबसे बाजी मार ली थी। इसका प्रयोग इतना सर और इसका प्रभाव इतना व्यापक था कि दुनिया की लगभग हर भाषा रोमन लिपि में लिपिबद्ध होने लगी ।

''आज के दौर में इंटरनेट पर सभी तरह की महत्वपूर्ण जानकारियाँ व सूचनायें उपलब्ध हैं जैसे परीक्षाओं के परिणाम, समाचार–पत्र, ई–मेल, विभिन्न प्रकार की पत्र–पत्रिकायें, साहित्य, व अति महत्वपूर्ण जानकारी युक्त डिजिटल पुस्तकालय आदि परन्तु ये प्रायः सभी अंग्रेजी भाषा में हैं। अतः कई हिन्दी भाषी लोग इंटरनेट का इस्तेमाल करने में भाषाई कठिनाई महसूस करते हैं और कंप्यूटर के उपलब्ध होते हुए भी वे कंप्यूटर व इंटरनेट का उपयोग करने से वंचित रह जाते हैं ।''[6]

औद्योगिक क्रांति में मशीनों के सहारे उत्पादकता बढ़ी है और गुणबत्ता में एकरुपता आई है। 1947 में ट्रांजिस्टर 1971 में माइक्रो प्रोसेसर के विकास से कंप्यूटर का आकार छोटा और गणना शक्ति विशाल हो गयी है। छोटे और अधिक शक्तिशाली कंप्यूटर के द्वारा व्यापार, शिक्षा कार्यालय आदि अनेक क्षेत्रों में तेजी से विकास हुआ है। कंप्यूटर में हिन्दी प्रयोग की बढ़ती संभावनाओं को ध्यान में रखकर इलैक्ट्रॉनिकी विभाग ने 'भारतीय भाषाओं के लिए टैक्नोलॉजी विकास नामक परियोजना के अंतर्गत कई प्रोजेक्ट शुरु कर दिये हैं। संघ की राजभाषा नीति के अनुसार हिन्दी भाषा को बढ़ावा देने के लिए सभी सरकारी, अर्द्ध सरकारी, सरकारी उद्यमों में हिन्दी भाषा का प्रयोग अनिवार्य किया गया है। इंटरनेट प्रणाली के महाशक्तिशाली तंत्र में भाषा का अपना एक विशिष्ट स्थान होता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी, मंडारिन, फ्रांसीसी, जापानी, अरबी, स्पेनिश आदि भाषायें कंप्यूटर क्षेत्र में काफी आगे बढ़ गई हैं, साथ ही इनका प्रयोग भी। दुर्भाग्य से भारत में कंप्यूटर पर भारतीय भाषाओं का प्रचार, प्रसार बहुत धीमी गति से हुआ है। आज हम दूरदर्शन पर जापानी या चीनी शेयर बाजार का दृश्य देखते हैं तब यह मालूम होता है कि वहाँ के सभी बोर्ड, सूचनायें जापानी या चीनी भाषा में प्रदर्शित होते हैं।''[7] सूचना प्रौद्योगिकी के बदलते परिवेश में हिन्दी भाषा ने अपना स्थान धीरे–धीरे प्राप्त कर लिया है। आज हमारी मानसिकता में बदलाव लाने की जरुरत है। आधुनिकीकरण के दौर में भाषा भी अपना स्थान ग्रहण कर लेती है। हिंदी की उपादेयता पर कोई भी प्रश्न चिह्न लगा नहीं सकता। लेकिन संकुचित स्वार्थ के कारण भारतीय भाषाओं को नकारना हमारी मानसिक गुलामी है।

कंप्यूटर के बारे में कुछ छोटी–छोटी बातें –

(1) माउस व्हील एक तीसरा बटन – माउस व्हील एक तीसरे बटन की तरह काम करता है। किसी भी लिंक पर माउस व्हील को क्लिक करने से वह जाल पृष्ठ सीधे एक नये टैब में खुल जाता है। किसी भी खुले हुए टैब पर माउस व्हील क्लिक करने पर वह टैब बन्द हो जाता है ।

(2) बड़ा टेक्स्ट एक साथ सेलेक्ट करने के लिए – किसी भी टेक्स्ट एडीटर में बड़ा टेक्स्ट एक साथ सेलेक्ट करने के लिए टेक्स्ट के प्रारम्भ में एक क्लिक करें फिर शिफ्ट दबाकर अंक में एक बार क्लिक करें।

(3) कुंजी की सहायता से जाल पृष्ठ को रिफ्रेश या रिलोड करना – F5 कुंजी से हम किसी भी जाल पृष्ठ को रीफ्रैश या रिलोड कर सकते हैं।

(4) इंटरनेट पर चैट तथा बातचीत करने के लिए – गूगल टॉक, याहू मैसेजर, स्काईप इत्यादि अलग– अलग प्रयोग करने की जगह की अगर पिडगिन व गूगल ट्रांसलिट्रेशन नामक मुक्त सॉफ्टवेयर इस्तेमाल किया जाये तो यह लगभग सभी चैट सॉफ्टवेयर का काम अकेले ही कर सकता है ।[8]

भारत के लगभग 12 प्रतिशत घरों में कम से कम एक निजी कंप्यूटर है। एशिया इंटरनेट आडियंस मेजरमेंट सर्विस की एक रिपोर्ट ''ग्लोबल इंटरनेट ट्रेड'' में बताया गया है कि ''कंप्यूटर प्रयोग करने के मामले में भारत दूसरे एशियाई देशों के मुकाबले बहुत पीछे है। दुनियां भर में 80 बिलियन डॉलर का व्यापार करने वाली कंप्यूटर कंपनी आई.वी.एम. के प्रमुख जे. माईकल लॉरी के अनुसार ''वैश्विक स्तर पर भारत तेजी से आईटी के क्षेत्र का महत्वपूर्ण शोध एवं विकास केन्द्र बनता जा रहा है। सिर्फ इतना ही नहीं आज भारत के हर प्रदेश में कंप्यूटरीकरण की होड़ लगी है। मध्यप्रदेश देश का ऐसा पहला राज्य बन गया है जिसने परिवहन विभाग की समूची कार्य प्रणाली को पूरी तरह कंप्यूटरीकृत कर दिया है जिससे यहाँ आरटीओ एजेण्ट की भूमिका अब शून्य हो गई है।''[9]

विद्यार्थियों को तो इससे बहुत सारी सुविधायें एक ही साथ मिल गई हैं। बुजुर्गों के लिए यहाँ मनोरंजन की और जानकारी लाती है। विद्यार्थियों को यह नवीनतम सूचनायें और जानकारी देता है। बहुत सारी लायब्रेरियों के इंटरनेट पर आ जाने से रिसर्च स्कॉलर इसका भरपूर फायदा उठा रहे हैं। जिलों में जमीन, जुताई, बुबाई के तमाम दस्तावेज नेट पर उपलब्ध हैं। यहाँ तक की किसान फसलों की बीमारी और कीटनाशकों से बचाव के उपाय, दवा आदि की जानकारी, घर बैठे प्राप्त कर सकते हैं। भारत में जो सूचना क्रांति का जोर आया है, उससे भारत की तेज प्रगति का जबर्दस्त वातावरण बना है। हाल ही में एक विचारक ने कहा था कि ''कल तक वे पिछड़े कहे जाते थे, जो औद्योगिक क्रांति की दौड़ में कदम मिलाकर नहीं चल पाते थे लेकिन आने वाले कल में वे पिछड़े कहलायेंगे जो सूचना क्रांति मे पिछड़ जायेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आजकल मासिक पत्रिका, हीरक जयंती विशेषांक, लेखक – अखिलेश झा, मई 2005, पृ. सं. 69
2. अनुवाद के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का योगदान, अभिव्यक्ति बेब पत्रिका, डॉ. काजल बाजपेयी, प्रकाशन 2009
3. आजकल, मासिक पत्रिका, हीरक जयंती विशेषांक, लेखक अखिलेश झा, अंक मई 2005, पृ. सं. 69
4. डिजिटल दुनियां में हिन्दी का विकास, श्री बेंजवाल शर्मा, अभिव्यक्ति बेब पत्रिका, 17 सितम्बर 2012 को प्रकाशित
5. अनुवाद के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का योगदान, लेखिका – डॉ. काजल बाजपेयी, अभिव्यक्ति बेब पत्रिका, वर्ष 2009
6. वही. अभिव्यक्ति बेब पत्रिका, पेपर प्रकाशन वर्ष 2009
7. भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर और विश्वजाल का विकास, विजय प्रभाकर कांवले, अभिव्यक्ति बेब पत्रिका
8. कंप्यूटर की कक्षा, लेखिका – रश्मि आशीष, अभिव्यक्ति बेब पत्रिका
9. नगर–नगर कंप्यूटर –संकलित, अभिव्यक्ति बेब पत्रिका

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वेदों में जल के संवर्धन एवं संरक्षण के उपाय

डॉ0 दिव्या मिश्रा
पोस्ट डाक्टोरल फेलो (यूजीसी), विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067

जल को जीवन का पर्याय माना गया है। मनुष्य, पशु, पक्षी एवं पेड़, पौधे सभी का जीवन जल के बिना असंभव है। ऋग्वैदिक काल से ही जल की महत्ता शुद्धता एवं इसके संरक्षण को प्रश्रय दिया जाने लगा था। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर जल की महत्ता का दिग्दर्शन होता है। इसमें जल को समस्त औषधियों का आगार माना गया है–

'अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशंभुवमापृच विश्वभेषजीः।।'[1]

जल की दृष्टि से पर्वतों का बड़ा महत्व होता है क्योंकि ये जल के स्थायी स्रोत होते हैं सभी बड़ी नदियों का उद्गम पर्वतों से ही होता है इसीलिए इनके ध्रुवता की कामना करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि ये पर्वत ध्रुव रहें, उनकी तोड़–फोड़ न की जाय जिससे ये हमारे लिए लाभकारी बने रहें –

'शन्नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु।'[2]

इसी प्रकार से नदियों की शुभता की भी कामना की गयी है और कहा गया है कि ये बड़ी–बड़ी नदियां और इनका जल हमारे लिए हितकारक रहे–

'शंनः सिन्धवः शमु सन्त्वापः' ।[3]

ऋग्वेद में समुद्र तथा उसके जल के भी सुखकर होने की कामना की गयी है–

'शन्नो अहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः'[4]

अर्थात् समुद्र के गहरे तलीय जल भी हमारे लिए सुख के प्रदाता हों।

ऋग्वेद में आर्यावर्त को सप्त सिन्धु अर्थात् सात नदियों का प्रदेश कहा गया है–

'य ऋक्षादंहसो मुचद् यो वार्यात् सप्तसिन्धुषु।'[5]

सात नदियों में पंजाब की पाँच नदियां और सिंध के अतिरिक्त सातवीं नदी कुभा, वंक्षु या सरस्वती बतायी गयी है। एक ही मूलधारा की सात नदियों के रूप में कल्पना सात लोकों की कल्पना से जुड़ी हुई है। भूलोक में सात नदियां एक प्रकार से अध्यात्म यात्रा का मानचित्र प्रस्तुत करती हैं।[6]

नदियों के जन्म का आख्यान इन्द्र के प्रधान पराक्रम से जुड़ा है वृत्र ने पर्वतगुहा में जल को छुपा दिया था, वज्र के आघात से इन्द्र ने वृत्र और उसकी धारा को नष्ट कर सात नदियों को प्रवाहित किया–

'अवासृजत्सर्तवे सप्तसिन्धून'[7]

सभी नदियों में सरस्वती को पावन और ज्ञानमयी बताया गया है जो पर्वतों से समुद्र तक जाती है–

'एका चेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्' ।[8]

उसे नदियों में दिव्य बताया है–

'असुर्या नदीनाम्।'[9]

वही त्रिलोक में सप्तधा विभक्त होकर पँचजनों की रक्षा करती है–

'त्रिषधस्था सप्तधातु : पञ्च जाता वर्धयन्ती।'[10]

ऋग्वैदिक ऋषि अल्प सरोवरों तथा महाह्रदों से भी परिचित थे। वे महाह्रदों में स्नानादि क्रियाओं को सम्पन्न करते थे। ये महाह्रद प्राकृतिक भी हो सकते थे तथा इन महाह्रदों का निर्माण भी कराया जाता रहा होगा –

आदघ्नास उपकक्षास उत्वे ह्रदा इव स्नात्वा उत्वे ददृश्रे।[11]

यजुर्वेद में जल को 33 बार 'शृट्रदा' अर्थात् राष्ट्र प्रदान करने वाला कहा है।[12] अथर्ववेद में कहा गया है कि जिस भूमि पर सर्वव्यापक जल समानरूप से निरन्तर प्रवाहित होता रहता है वह राष्ट्रभूमि अनेक धाराओं वाला जल हमें सदैव इसी प्रकार प्रदान करती रहे जिससे हमारे राष्ट्र में जल संसाधन की कभी भी कमी न हो –

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।[13]

गोपथ ब्राह्मण में 'जल' के पर्याय 'अप्' के निर्वचन के माध्यम से यह कहा गया है कि वास्तव में कृषि, पशु, अन्न–धन प्रभृति जीवनोपयोगी समस्त वस्तुएँ तभी प्राप्त की जा सकती हैं जब प्रचुर मात्रा में जल उपलब्ध हो –

'आभिर्वा अहमिदं सर्वमाप्स्यामि यदिदं किञ्च इति, तस्मादापोंज्भवन्
तदपामप्त्वम्। आप्नोति वै सर्वान् कामान् यान् कामयते।'[14]

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में सत्तरह प्रकार के जलों को राष्ट्र प्रदान करने वाला बताया है।[15]

वैदिक ऋषि जल के बहुयामी उपयोग, पर्यावरण में जल की महत्ता तथा इसके संरक्षण को भी प्रश्रय देते थे। शतपथ ब्राह्मण में 'सूद' नामक जलागार का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें जल सुरक्षित रखा जाता था।[16] इसी प्रकार कुओं के अलावा कृत्रिम जल प्रणालियों का उल्लेख भी मिलता है।[17]

जल ही कृषि का प्राण है उस समय वर्षा समय पर और पर्याप्त होती थी, जिससे गढढे, पोखर और नदी नाले भर जाते थे। वर्षा जल से भरे हुए पोखर को 'वेशन्तः' कहा जाता था।[18] इसी प्रकार वर्षा के गन्दे जल को वार कहते थे।[19] जल के लिए कूपों के निर्माण का भी वर्णन प्राप्त होता था जिनमें जल सुरक्षित रहता था[20] तथा सिंचाई के लिए 'भस्त्रा' नामक यन्त्र द्वारा कूपों से जल निकाला जाता था।[21] इसी प्रकार सरोवर और झीलों से भी सिंचाई के संकेत मिलते हैं जिन्हें क्रमशः 'सरस' और 'ह्रद' कहा गया है।[22] भारत के प्रतीची एवं दक्षिण दिशाओं से प्रवाहित सरिताओं से भी सिंचाई–सुविधा प्राप्त करने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। इसीलिए उस समय नदियों के तटवर्ती और द्वीपीय भागों में भी कृषि–कर्म करने के प्रमाण मिलते हैं।[23]

ऋग्वेद में सिंचाई के लिए दो प्रकार के जलों का उल्लेख प्राप्त होता है –

(1) 'खनित्रमा' जो भूमि खोदकर प्राप्त होता था।

(2) 'स्वयंजा' जो नदी, नाले और वर्षा आदि से उपलब्ध होता था।[24]

ऋग्वेद में ऐसे भी संकेत हैं जिनके अनुसार कुओं से पानी रस्सी, डोल और रहट के द्वारा निकाला जाता था।[25] एक चमड़े की पटटी जिसे वरत्रा बोला जाता था उसमें कोश लगे रहते थे जब चक्र घूमता था तब रस्सी के खिंचने से पानी द्रोण में गिरता था।[26] कुओं का जल सिंचाई हेतु नालियों के द्वारा (जिसे उस समय सुषिरा बोला जाता था) खेतों तक पहुंचाया जाता था।[27] सिंचाई के लिए नहर (कुल्या) के जल का उल्लेख भी ऋग्वेद

में प्राप्त होता है।[28] इसी प्रकार अथर्ववेद में भी वर्णन है कि वैदिक कृषक वर्षा एवं कुएं के जल के अतिरिक्त सिंचाई के लिए नहरों का प्रयोग करते थे।[29] इस प्रकार संहिता काल में वैज्ञानिक ढंग से जल के रख–रखाव के द्वारा सिंचाई के साधनों का सूत्रपात हो चुका था।

संहिता काल में इच्छानुसार वृष्टि कराने का ज्ञान ऋषियों को था तभी यजुर्वेद में आवश्यकतानुसार पर्जन्य से बरसने की कामना की गई है जिससे कृषि अच्छी हो – 'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु।'[30] यज्ञ के द्वारा विज्ञानी आर्य इच्छानुसार मेघों से वृष्टि करा सकते थे। अथर्ववेद में कहा गया है कि जब भी वर्षा की आवश्यकता हो तो विधिपूर्वक बहुत से यज्ञ किये जाने चाहिए।[31] वायुमण्डल में यज्ञ–धूम से तत्काल मेघ बनाने की क्रिया उत्पन्न हो जाती है और इच्छानुसार वृष्टि कराई जा सकती है।[32] इसीलिए यज्ञ को वर्षा का हेतु और संवर्धक कहा गया है।[33]

यज्ञ के द्वारा हुई वर्षा के जल को अत्यंत उत्तम माना गया है तथा कृषि के लिए भी यह जल अत्यंत लाभकारी होता है इसीलिए इसे यजुर्वेद में दिव्य जल की संज्ञा दी गयी है[34]–'दिव्या वृष्टिःसचताम्'।

यजुर्वेद में कहा गया है कि इस पृथ्वी को यज्ञ के जल से आप्लावित कर देना चाहिए –

'अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह।'[35]

ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि यज्ञ की आहुतियों के द्वारा उत्पन्न हुई वर्षा के जल से जीवों के जीवन की रक्षा होती है तथा सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है।[36]

जल किसी भी प्रकार से प्रदूषित न हो इसका भी बड़ा ध्यान रखा जाता था। क्योंकि स्नान, जल, तर्पण, आचमन इत्यादि शुद्ध कियायें जल के द्वारा ही सम्पन्न की जाती हैं। मनुस्मृति के अनुसार जल में किसी प्रकार का मल फेंकना निषिद्ध था ऐसा करने पर उसे दण्डनीय अपराध माना जाता था –

'नाप्सु मूत्रं पुरीशंवा श्ठीवनं वा समुत्सृजेत्।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा।।'[37]

जैसे ऋग्वेद में कहा गया है कि बड़े सरोवर ही स्नान करने योग्य होते हैं। उसी प्रकार मनुस्मृति में भी यह कहा गया है कि स्नान करने वाले जल को स्वच्छ होना चाहिए किसी ऐसे तड़ाग में स्नान नहीं करना चाहिए जो पानी कम होने के कारण धूप की तेजी से गर्म हो गया हो और उसमें फेन उठ गया हो। मनु के अनुसार जिस तड़ाग में नहाने वालों की संख्या ज्यादा हो वहां स्नान न करके किसी एकान्त सरोवर में स्नान करना चाहिए क्योंकि भीड़ के साथ स्नान करने में एक दूसरे के शरीर का मल या रोग लगने की संभावना रहती है –

'अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित्।
शौचेप्सुः सदास्नायादेकान्ते प्रागुद्ङ्मुखः।'[38]

मनुस्मृति में अशुद्ध जल को शुद्ध करने के लिए कहा गया है कि अशुद्ध जल को कतक के फल से शुद्ध करना चाहिए इससे मिट्टी और दूषित कण नीचे बैठ जाते हैं इसके बाद जल को मोटे वस्त्र से छान लेना चाहिए –

'फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति।।'[39]

इन संदर्भों से यह प्रमाणित होता है कि स्मृतिकाल में जल के प्रदूषण–निवारण के उपायों को भी खोजने

का प्रयास किया गया था।

इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के सभी तत्वों की सुरक्षा में जहाँ अपनी रुचि दिखाई, वहीं जल की पवित्रता एवं उसके संरक्षण को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया। इनकी दृष्टि में जल इस सृष्टि का मूल तत्त्व है जल से ही संसार की सृष्टि होती है और जल में ही उसका प्रलय हो जाता है। जल के बिना किसी भी प्राणी, प्रकृति अथवा अन्य किसी वस्तु का जीवन संभव नहीं है इसीलिए वैदिक ऋषियों ने देवों से प्रभूत वर्षा करने की बार–बार कामना की है उन्होंने जल को शुद्ध रखने का भी आग्रह किया है क्योंकि जल ऐसा तत्व है जो प्राणिमात्र अथवा किसी भी पदार्थ को पवित्र करने वाला है। संसार के समस्त पदार्थों में जल को पवित्रतम माना गया है –

आपः पवित्रम परमं पृथिव्याम्[40]

इसीलिए इसके संरक्षण एवं संवर्धन पर अधिक बल दिया गया है। इसकी आज के युग में भी उतनी ही प्रासंगिकता है जितनी उस समय थी। ऋषियों की ये उपलब्धियां आज भी हमारी निधि है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ऋग्वेद, 1.23.20
2. ऋग्वेद, 7.32.8
3. वही
4. ऋग्वेद, 7.35.13
5. ऋग्वेद, 8.24.27
6. दृष्टव्य गोविन्दचन्द्र पाण्डे, वैदिक संस्कृति
7. ऋग्वेद, 2.12.12
8. ऋग्वेद, 7.95.2
9. ऋग्वेद, 7.96.1
10. ऋग्वेद, 6.61.12
11. ऋग्वेद, 10.71.7
12. मा. यजुर्वेद, 10.2–4
13. अथर्ववेद, 12.1.9
14. गोपथ ब्राह्मण, 1.1.2
15. शतपथ ब्राह्मण, 5.3.4.5–25
16. शतपथ ब्राह्मण, 8.7.3.21
17. ऋग्वेद, 10.101.5–7
18. शतपथ ब्राह्मण, 5.3.4.14
19. वही, 6.1.1.9
20. वही, 3.5.4.1, 4.4.5.3
21. वही, 1.1.2.6
22. वही, 13.5.4.9, 11.5.1.4

23. वही, 9.3.1.24, 3.6.2.14
24. ऋग्वेद, 7.49.2, 10.101.5–6, 4.17.16
25. ऋग्वेद, 1.10.7
26. ऋग्वेद, 10.101.5.7
27. ऋग्वेद, 8.69.12
28. वही, 3.45.3
29. अथर्ववेद, 3.13
30. मा. यजुर्वेद, 22.22
31. अथर्ववेद, 4.15.16
32. यजुर्वेद, 18.9, 25.28
33. यजुर्वेद, 1.16.34.14
34. वही, 13.30, 16.12, 13.27–29
35. यजुर्वेद, 12.103
36. वही, 28.39 –दयानन्द भाष्य
37. मनुस्मृति, 4.56
38. वही, 2.61
39. वही, 6.67
40. भर्तृहरि, ब्रह्म काण्ड

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ध्वनि प्रदूषण एवं मानवीय जीवन

डॉ0 मन्जू कुलश्रेष्ठ
एसोसिएट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग
डी0जी0 कालेज, कानपुर

आज आधुनिकता की दौड़ में शामिल हो जाने के कारण यांत्रिक विकास तेजी से हुआ है। इससे कारखानों की संख्या में वृद्धि से मशीनों का शोर एवं यातायात का कोलाहल निरन्तर बढ़ रहा है। आजकल महानगरों में वाहनों, कारखानों की मशीनों आदि का शोर इतना बढ़ गया है कि एक स्वस्थ्य व्यक्ति भी शोर के कारण शारीरिक अथवा मानसिक रूप से स्वस्थ्य नहीं रह सकता।

प्राचीन काल में जब यांत्रिक विकास नहीं हुआ था और मोटरें, रेलें, कारखाने इत्यादि नहीं थे, जंगली जानवरों की आवाजें, बादलों की गर्जन इत्यादि आधुनिक ध्वनि प्रसारक यंत्रों की तुलना में बहुत कम थीं। अतः प्राचीन समय में ध्वनि प्रदूषण जैसी समस्या मानव के सामने नहीं थी।

वायु एवं ध्वनि प्रदूषण समस्त प्राणी जगत को विविध रूपों में प्रभावित करता है। इस प्रदूषण से जहाँ एक ओर मनुष्य के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है वहीं यह मनुष्य की कार्यक्षमता को भी घटाता है। वायु को प्रदूषित करने वाले अधिकांश कारक शोर भी करते हैं। शोर एक अलग किस्म का प्रदूषण है। आधुनिक तकनीकी ने शोर की मात्रा को खूब बढ़ाया है। विगत कुछ वर्षों में सरकार और सामान्य जन में जल और वायु प्रदूषण के विषय में चेतना तो आयी है परन्तु ध्वनि प्रदूषण के सम्बन्ध में अभी भी गहरी चुप्पी छायी है। सामान्य जन शोर से परेशान तो होता है पर उसे यह नहीं मालूम कि इससे नुकसान भी हो सकता है। हर प्रकार की ध्वनि से प्रदूषण नहीं हो पर हर प्रकार के शोर से प्रदूषण अवश्य होता है। शोर अवांछनीय कर्कश ध्वनि को कहते हैं, आजकल यह शहरी जिन्दगी का एक हिस्सा हो गया है।

ध्वनि प्रदूषण :

जैविक एवं आध्यात्मिक जीवन में ध्वनि का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। जब ध्वनि कान की सह्य सीमा को पार कर जाती है तथा उसका प्रभाव मानव के स्वास्थ्य, कुशलता व मानस पर पड़ने लगता है और नींद उड़ने लगती है तो उसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं।

"Noise pollution referred to the state of intolerance and discomfort to human beings caused by noise from different sources."

ध्वनि प्रदूषण का मुख्य प्रदूषक आवाज है।

Rotham Hurry us viuh iqLrd Study of Pollution in Industrial Societies esa fy[kk gS& "Noise emanating from any source becomes a pollutant when it is intolerable.

ध्वनि प्रदूषण : स्रोत

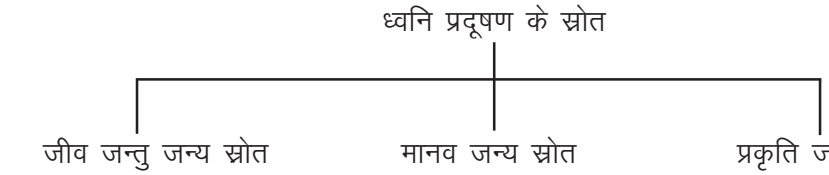

ध्वनि प्रदूषण के स्रोत के आधार पर निम्नांकित तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) जीव जन्तु उत्पादित ध्वनि प्रदूषण।

(2) प्रकृति उत्पादित प्रदूषण

(3) मानव उत्पादित ध्वनि प्रदूषण।

ध्वनि मापन

ध्वनि की माप डेसीबिल (DB) व ध्वनि दाब (DBCA) में किया जाता है। dB ध्वनि की तीव्रता को एवं dBCA ध्वनि के दाब का मापन करता है।

30 dB ध्वनि फुसफुसाहट, OdB श्रवण की देहली, 60dB सामान्य बातचीत के समय ध्वनि 90dB स्वचालित वाहनों की ध्वनि, 150dB जेट विमानों की ध्वनि एवं 180–195dB राकेट इंजनों से उत्पन्न ध्वनि को सूचित करता है। 60dB ध्वनि सामान्यतः या हानिकारक नहीं होती है। लेकिन 90–95dB ध्वनि से नाड़ी तंत्र दुष्प्रभावित होता है तथा 150–16dB ध्वनि प्राणघातक होती है।

विश्व के प्रमुख नगरों में ध्वनि प्रदूषण का स्तर

नगर	ध्वनि का स्तर (डेसिबल)
ऐम्सटर्डम	90–170
फ्रैंकफर्ट	120–160
लंदन	100–160
न्यूयार्क	100–120
वाषिंगटन	90–100
पेरिस	70–160
बार्न	70–115

इण्डियन स्टैण्डर्ड इंस्टीट्यूट के अनुसार 70–80dBCA तक की ध्वनि सुरक्षित, 85dB(A) पर श्रवण ह्रास, 90 dB(A) पर भयंकर क्षति, 95 dB(A) पर 50 प्रतिशत लोगों में बधिरता तथा 10590 dB(A) पर सभी दृष्टियों में हानि होती है।

शोध प्रारूप :

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णनात्मक एवं अन्वेषणात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया है तथा शोध पत्र में अध्ययन क्षेत्र के रूप में कानपुर नगर का विश्लेषण किया गया है।

ध्वनि प्रदूषण का मानवीय जीवन पर प्रभाव–विश्लेषण

स्वास्थ्य के लिए शोर अभिशाप है। पर्यावरण के अन्य प्रदूषणों की भांति यह धीरे–धीरे प्रभावित करता है। वैज्ञानिकों द्वारा किये गये प्रेक्षणों से यह स्पष्ट होता है कि 85 डेसीबल से अधिक की ध्वनि यदि लगातार सुनी जाये तो उससे सिर और कान में दर्द होने लगता है। कुछ व्यक्तियों में स्थायी या अस्थायी रूप से बहरापन आ सकता है। 7 अप्रैल 1986 के टाइम्स आफ इण्डिया में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार ब्रिटेन में सम्पादित शोध के अनुसार एक म्यूजिक तथा डिस्कोथेक के आदी एक लाख से अधिक किशोर बहरेपन से ग्रस्त थे। इसी समाचार पत्र के 24 अगस्त 1986 के अन्य लेख के अनुसार 160 डेसीबल से अधिक ध्वनि वाला शोर कान की टिम्बैनिक झिल्ली को फाड़ सकता है। इसी प्रकार डा0 ग्राल के अनुसार 180 डेसीबल की ध्वनि से मृत्यु तक हो सकती है।

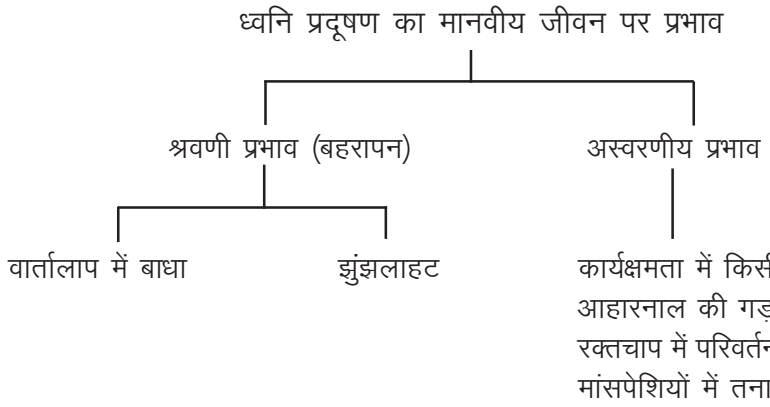

कोई व्यक्ति 120 डेसीबल से अधिक ध्वनि क्षेत्र में कुछ दिन रहे तो उसके स्नायु तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। इससे अनिद्रा, रक्तचाप, स्मृति का कमजोर होना और बहरेपन की शिकायतें उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसे व्यक्ति को दिल का दौरा भी पड़ सकता है। 130 से 150 डेसीबल की ध्वनि से कुछ ही मिनटों में कानों में झनझनाहट व दर्द उत्पन्न हो जाता है जिससे कान का पर्दा फट भी सकता है और चिकित्सा जगत में अभी इसका कोई इलाज नहीं है। कुछ व्यक्तियों को पेट के रोग भी हो सकते हैं। ध्वनि ध्वनि तीव्रता 120 डेसीबल से अधिक हो तो गर्भवती महिला, उसके गर्भस्थ शिशु छोटे बच्चों व बीमार व्यक्तियों के स्वास्थ्य को अधिक हानि पहुँचती है। प्रोफेसर नोवेल जोंस (कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय अमेरिका) ने 2 लाख से अधिक नवजात शिशुओं पर परीक्षण के बाद यह निष्कर्ष निकाला है। शांत स्थानों पर रहने वाली गर्भवती महिलाओं की तुलना में शोर–भरे क्षेत्रों में रहने वाली गर्भवती महिलाओं द्वारा जन्मे बच्चों में जन्मजात विकृतियाँ अधिक होती हैं।

शोर का बुरा असर बच्चों की पढ़ाई पर भी पड़ता है। इससे उनकी स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है और पढ़ाई में कम ध्यान लगता है। 40 प्रतिशत बच्चे बहरेपन के शिकार हो सकते हैं। इसी प्रकार कुलियों व सब्जी बेचने वालों में 40 प्रतिशत लोगों के कानों में घंटियाँ बजने जैसी बीमारी हो जाती है।

लगभग 180 डेसीबल शोर से कभी–कभी मनुष्य की मृत्यु हो सकती है। आधार पर 200 डेसीबल ध्वनि उत्पन्न करने वाले मारक अस्त्र विकसित किए गए हैं।

वर्ष 2009 में कानपुर शहर के आंकड़े एकत्रित किए गए है।

शोर करे बेचैन

क्षेत्र	मानक डेसीबल		मानीटरिंग	स्थिति (डेसीबल)	
	दिन	रात	क्षेत्र	दिन	रात
आवासीय	55	45	आवास विकास	81.5	75.6
व्यावसायिक	65	55	कल्याणपुर	95.0	85.9
औद्योगिक	75	70	फजलगंज	87.6	79.9
साइलेंस	50	40	हृदय रोग संस्थान	79.9	71.3

वायु प्रदूषण का कहर

मानीटरिंग क्षेत्र		मानक प्रति घन मीटर		स्थिति प्रति घन मीटर	
		औद्योगिक	रिहायशी	औद्योगिक	रिहायशी
किदवई नगर	एस पी एम	500	200	616.12	564.13
औद्योगिक क्षेत्र	आर एसपी एम	150	100	283.63	266.86

भूरेलाल कमेटी की सिफारिशों के बावजूद शहर में वायु और ध्वनि प्रदूषण का स्तर कम नहीं हो पाया है। प्रतिबंधित डीजल, टैम्पो और प्रेशर हार्न शहर की आबोहवा में जहर घोल रहे हैं। प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को ऐसे वाहनों के खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिए। वर्ष 2003 में गठित भूले जाल कमेटी ने प्रदूषण नियंत्रण के लिए डीजल से चलने वाले टैम्पों को सड़कों से हटवाने के निर्देश दिये थे। इस आदेश के बाद ही डीजल टैम्पों को सी0एन0जी0 में तब्दील किया गया। हालांकि आज भी काफी तादात में डीजल टैम्पों काला धुआं उगलते सड़कों पर दनदनाते हुए घूम रहे हैं। इतना ही नहीं परिवहन अधिकारियों की अनदेखी के चलते सवारियां ढोने वाले वैननुमा डीजल वाहन भी चलने लगे। परिवहन कार्यालय से फिट घोषित जर्जर वाहन भी चल रहे हैं। खुली सड़कों से उड़ने वाली धूल प्रदूषण को और बढ़ा रही है। वायु में इस तरह कार्बन और सल्फर घुल रहा है जिससे सांसों के जरिये लोगों में बीमारी फैल रही है।

सबसे बड़ी समस्या वाहनों में लगे प्रेशर हार्न बन रहे हैं। प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने जाँच की तो प्रदूषण काफी बढ़ा पाया तो अफसरों को भूरे लाल कमेटी की समीक्षा की चिन्ता हुई है। शहर में वर्तमान में आर0टी0ओ0 के आंकड़ों में 3804 सी0एन0जी0 टैम्पों तथा 2945 सी0एन0जी0 आटो चल रहे हैं।

ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण एवं सुझाव

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दिन में 55 डेसीबल और रात्रि में 45 डेसीबल शोर सुरक्षित सीमा में माना जाता है। भारत में 1974 ई0 में ध्वनि प्रदूषण रोकथाम नियम बनाया गया जिससे शोर को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। जापान में ध्वनि प्रदूषित आबादी के क्षेत्र में प्रमुख राष्ट्रीय सड़क और घनी आबादी वाले मकानों के बीच एक ऊँची दीवार बनाई गयी है जो वाहनों द्वारा उत्पन्न शोर को सोख लेती है। पश्चिमी देशों में शोर को रोकने के लिए कानून बने हैं। इंग्लैण्ड में कारों की अधिकतम शोर सीमा 85 डेसीबल तथा भारी वाहनों की 90 डेसीबल है। लंदन हवाई अड्डे पर रात्रि में 105 डेसीबल से अधिक शोर मना है।

ध्वनि प्रदूषण को कुछ सीमा तक निम्नलिखित उपायों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है–

1. शोर उत्पन्न करने वाले सभी संयंत्रों में ध्वनि–तीव्रता को कम करने वाले संयंत्र आवश्यक रूप से लगाए जाएँ।
2. शोर करने वाली मशीनों पर कार्य करने वाले कर्मचारियों को अनिवार्य रूप से ईयर प्लग आदि उपकरण लगाये जायें।
3. शोरग्रस्त क्षेत्रों में विस्तृत पैमाने पर वृक्षारोपण कर शोर की तीव्रता को कम किया जा सकता है।
4. जनसाधारण को ध्वनि–प्रदूषण से उत्पन्न खतरों से अवगत कराया जाय, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर पर शोर कम करने का हर संभव प्रयास करे।
5. ध्वनि शोषक सड़कों तथा ध्वनि विरोधी भवनों के निर्माण से शोर के दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है।
6. मशीनों में तेल नियमित रूप से डाला जाये। डीजल से चलने वाले वाहनों में ध्वनि अवरोधी यंत्र (साइलेंसर) लगाने चाहिए। तेज ध्वनि वाले लाउडस्पीकरों के प्रयोग पर नियंत्रण होना चाहिए।
7. शोर पीड़ित व्यक्तियों के लिए इंग्लैण्ड और अमेरिका की भांति भारतीय कानून में भी संशोधन करके मुआवजा देने की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. नाराणी, पी0एन0 : पर्यावरण प्राकृतिक संसाधन एवं प्रदूषण, बुक एन्क्लेव–जयपुर, प्रथम संस्करण–2007
2. कुमार, अमित : पर्यावरण अध्ययन, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण, 2006
3. कुमार, विनय : पर्यावरणीय समस्याएँ और समाधान, लोक संस्कृति प्रकाशन, दिल्ली–02, प्रथम संस्करण–007
4. श्रीवास्तव, हरिनारायण : वायुमंडलीय प्रदूषण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, पहला संस्करण–19922
5. शर्मा, दामोदर, सुखलाल घनश्याम : वायु प्रदूषण–विश्व के प्रमुख नगरों में ध्वनि प्रदूषण का स्तर, पृ0सं0 41।
6. शर्मा, दामोदर : वायु प्रदूषण–7.4.1986, टाइम्स ऑफ इण्डिया, पृ0सं0 85, 24 अगस्त 1986, टाइम्स आफ इण्डिया, पृ0सं0 85

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

मानसून से जल भण्डारण–एक अचूक उपाय

डॉ0 मंजू अवस्थी
एसोसिएट प्रोफेसर
डी0बी0एस0 कालेज, कानपुर

भारत में मानसून के लिए साल भर बाट जोहते हैं, तमाम मनौतियां करते हैं वह हर साल देश में देर सबेर दस्तक दे ही देता है। जो भारत की कृषि पर अमृत का कार्य करता है। परिस्थितियाँ अनुकूल रहती हैं तो चार महीने झमाझम बारिश होती है यदि इसी बारिश के पानी को धरती की कोख में भेज दे तो साल भर जल की समस्या को दूर कर सकते हैं।

मानसून के रूप में चार महीने कुदरती जल के भण्डार का एक मौका है। इसकी एक–एक बूँद बचाकर साल भर जल के कष्ट से छुटकारा पा सकते हैं, अपनी पीढ़ियों का भविष्य सुनिश्चित कर सकते हैं। ऐसे में दिनोदिन पानी की बढ़ती समस्या से निपटने के लिए वर्षा जल भण्डारण की अनिवार्यता है।

जब देश में पानी प्रबंधन संस्थान, परियोजनायें व मंत्रालय नहीं थे उस समय भी भारत में प्राचीनतम जल भण्डारण की व्यवस्थायें प्रचलित थीं। जिनको आज नकार दिया गया है। अतः धरती की कोख खाली हो रही है, जो भविष्य में एक भयावह संकट का संकेत है।

हकीकत यह है कि हमें हमारी जरूरत का कुल पानी न समुद्र पिला सकता है न ग्लेशियर न झीलें, न नदियाँ, न हवा, न मिट्टी की नमी और न अन्य प्राकृतिक जलस्रोत। पृथ्वी में मौजूद कुल पानी में इनसे प्राप्त मीठे जल की हिस्सेदारी मात्र 0.325 प्रतिशत ही है। आज भी पीने योग्य सबसे ज्यादा (1.68 प्रतिशत) धरती के नीचे भूजल के रूप में ही मौजूद है। आज भी यदि हमें कोई बेपानी मरने से रोक सकता है तो वह है सिर्फ और सिर्फ बारिश की बूदें। पानी की कमी से आत्महत्या का कोई पुराना इतिहास दुनिया के किसी देश में शायद ही हो। महाराणा प्रताप के पास खाने को दाना भले ही नहीं था लेकिन बे पानी से नहीं मरे। आज महाराष्ट्र के गोदाम अनाज से भरे हैं लेकिन बांध खाली हैं। इस विरोधाभास को कोई कैसे नजरंदाज कर सकता है।

इतिहास को पलटें, तो पाते हैं कि जिनके पास एक नकद धेला नहीं था, हमारे ऐसे पुरखों ने भी बारिश के बाद देवउथनी एकादशी पर जागकर इस देश में लाखों–लाख तालाब बनाये। बारिश से पहले आखा तीज पर पुराने पोखरों की पाल ठीक की। तालों की तलहटी से गाद निकाल बाहर करने की प्रक्रिया को कभी रुकने नहीं दिया। अपनी आय का दस फीसदी कुआं, बावड़ी, जोहड़ जैसे धमांदे में लगाने के कारण सेठ, साहूकार कभी महाजन यानि 'महान' 'जन' कहलाये।

हमारी धरती के पेट में इतनी जगह है कि इसमें 214 अरब घन मीटर जल आ जाए। फिर अपनी जरूरत मुताबिक इसमें से हम 160 अबर घन मीटर वापस निकाल भी सकते हैं। सरकार खुद मानती है कि मानसून के दौरान बर्बाद हो जाने वाले 36 अरब घन मीटर पानी को तो आसानी से धरती में जमा किया जा सकता है। उध ार, सरकारी कहानी के मुताबिक पिछले 20 साल के दौरान कागजों पर जो काम हुए हैं, उन्हें सही मान लिया जाय और यह भी मान लिया जाये कि वे आज भी अपनी सौ फीसदी क्षमता से चल रहे हैं तो भी इनसे कुल जमा 10–15 करोड़ घन मीटर पानी ही बचेगा।

वर्षो पहले ही केन्द्रीय भू जल बोर्ड ने देश के सभी राज्यों के लिए भूजल संचय के लिए मास्टर प्लान तैयार कर लिया था। इसके मुताबिक जल संचय के लिए देश भर में 39 लाख निर्माण कार्य किये जाने हैं।

अगर इसी पानी को धरती की कोख तक पहुँचा दिया जाये तो सारी समस्यायें साल भर तक खत्म हो जायें फिर मानसूनी सीजन में यही क्रम दोहराने से भूजल स्तर इतना बढ़ सकता है और जल संकट का खात्मा हो सकता है। मगर कुछ लोग, संस्थायें, उद्योग ओर कालोनियां ऐसी हैं जो बारिश के पानी को धरती के पेट में पहुँचाने का काम बिना किसी शोर–शराबे के कर रही हैं ऐसा करके वे न केवल अपना वरन आसपास के इलाके की जल समस्या को दूर कर रही हैं। ऐसे कामों पर डालते हैं एक नजर –

निजी स्तर पर– दिल्ली में ग्रेटर कैलाश–1 निवासी दिव्या सहगल ने अपने घर में वर्षा जल भण्डारण सिस्टम लगा रखा है। क्षमता– कैचमेंट एरिया 165 वर्गमीटर, औसत बारिश 577.8 मिमी। बारिश से उपलब्ध कुल जल 86 घनमीटर या 86 हजार लीटर।

प्रणाली– छत पर गिरने वाले वर्षा जल से भूजल का पुनर्भरण किया जाता है इसके लिए एक मीटर गुणे एक मी0 गुणे दो मीटर का गड्ढा बनाया गया है। इस गड्डे में 200 मिमी ब्यास के एक ट्यूबेल को 37.5 मीटर अंदर गहराई तक जाया गया है। बालूबजरी और पत्थर के छोटे छोटे टुकड़ों द्वारा छत से आने वाले इस पानी को ट्यूबेवल में जाने से पहले छाना गया।

लागत– साल में 2006 में तैयार इस ढांचे का खर्च 12000 रूपये आया।

असर–हाल के साल में जितनी भी बारिश हुई उनमें से सभी के जल का इस्तेमाल पुनर्भरण में किया गया।

औद्योगिक स्तर पर

मदर डेयरी (दिल्ली)– क्षमता कैचमेंट एरिया 1,57,700 वर्गमीटर, औसत बारिश 577.8 मिमी, बारिश से उपलब्ध कुल जल 2,32,500 क्यूबिल मीटर या 23,25,00,000 लीटर।

रेनवाटर हार्वेस्टिंग तंत्र–छत और सतह पर गिरने वाले वर्षा जल को पुनर्भरण कुओं और गड्ढों की मदद से संग्रहित किया जाता है। 10.52 हेक्टेयर कैचमेंट एरिया के भूजल के लिए सात पुनर्भरण वाले गड्ढों और 36 मीटर गहरे एवं 150 मिमी व्यास वाले गर्तों की जरूरत होती है। छत पर गिरने वाले जल के पुनर्भरण के लिए तीन कुएं हैं। ये 25 मी गहरे बोरवेल से संबद्ध है। बालू, बजरी और पत्थर के छोटे–छोटे टुकड़ों की परत वाले इस बोरवेल में छत से आने वाले पानी को पहले छाना गया।

प्रभाव– जल स्तर और भूजल स्तर की गुणवत्ता में सुधार।

संस्थागत स्तर पर

जामिया हमदर्द यूनिवर्सिटी (दिल्ली)– क्षमता कैचमेंट एरिया 3,15,280 वर्गमीटर, औसत बारिश 611.8 मिमी, बारिश से उपलब्ध जल 6,74,44,000 लीटर।

प्रणाली–12 रीचार्ज चैम्बर और ट्यूबवेल हैं। सतह के जल को पृथक टैंक द्वारा छानकर 30 मीटर गहरे पुनर्भरण कुएं में भेजा जाता है।

प्रभाव– 2003 में जल स्तर आठ मीटर बढ़ा।

कालोनी स्तर पर

डिफेंस कालोनी (दिल्ली)– क्षमता कैचमेंट एरिया 26087 वर्गमीटर, औसत बारिश 611.8 मिमी, बारिश से उपलबध जल–95,63,000 लीटर, 15 पुनर्भरण कुओं और छानने वाले चैम्बरों की मदद से संग्रहण किया जाता है। बालू, बजरी, की परत से छानकर मृदा तक पहुँचाया जाता है।

प्रभाव– भूमिगत जल के स्तर में सुधार हुआ है।

वर्षा जल को एकत्रित करने के लिए अतिरिक्त स्थान की जरूरत भी नहीं है। सूखे बोरवेल, जमीन के भीतर बनाये गये टैंक या गड्ढे इस काम में उपयोगी हो सकते हैं। खुले स्थान मसलन छत या जमीन को भी

वर्षा जल संग्रहण स्थल के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। वर्षा जल के संग्रह से भूमिगत जल भी रीचार्ज होता है। भूमिगत जल के स्तर में वृद्धि से आपके पड़ोस को भी लाभ मिलता है। इसलिए अपेक्षित परिणाम के लिए संपूर्ण पड़ोस को वर्षा जल का संग्रह करना चाहिए।

इसके अलावा देश के कई शहरों में वर्षा जल का संग्रह करने वाले नागरिकों को प्रोत्साहित करने की योजनायें चलायी जा रही हैं। मसलन दिल्ली में बिल्डिंग प्लान को तब तक संस्तुति नहीं दी जा रही है जब तक इस तरह का प्रावधान नहीं किया जा रहा है। डीडीए/एमसीडी प्रतिनिधि साइट का निरीक्षण करते हैं और तब तक पूर्णता प्रमाणपत्र जारी नहीं करते जब तक आश्वस्त नहीं हो जाते कि आर.डब्ल्यू.एच. नियमों के मुताबिक ही निर्मित हुआ है। रेन वाटर हार्वेस्टिंग संरचनाओं के निर्माण के लिए कुल लागत का 50 प्रतिशत या एक लाख (इनमें से जो भी कम हो) रूपये की वित्तीय सहायता दी जा रही है। सूरत की म्यूनिसिपल कारपोरेशन ने चार हजार वर्ग मी या उससे अधिक की बिल्डिंग के निर्माण में रेन वाटर हार्वेस्टिंग संरचना का निर्माण आवश्यक कर दिया है। इस तरह के नेक कार्य के लिए नागरिकों को भी दो हजार रूपये या अधिकतम 50 प्रतिशत सब्सिडी प्रोत्साहन के रूप में दिया जा रहा है।

एक बूँद का महत्व

- ऐसे क्षेत्रों में जहाँ भूमिगत जल सप्लाई अपर्याप्त है और सतह के स्रोत अपर्याप्त हैं तो ऐसे में वर्षा जल का संग्रह सबसे उचित तरीका है।
- यह जल के प्राथमिक स्रोत का उपयोग करने में मददगार होता है और उसको सीवर या नालों में जाने से रोकता है। इससे ट्रीटमेंट प्लांट का बोझ भी कम होता है।
- यह शहरों में बाढ़ के खतरे को रोकता है।
- जलवाही सतह में जल के रीचार्ज होने से भूमिगत जल की गुणवत्ता में सुधार होता है।

जल संचय की पुरानी रीति

भारत में वर्षा का जल संग्रह और भविष्य की जरूरतों के लिए उसके संरक्षण पर सदियों से अमल किया जा रहा है। हमारी परम्परागत रेन वाटर हार्वेस्टिंग तकनीक उस जमाने में न केवल ज्ञान और कौशल का परिचायक थी बल्कि जल प्रबंधन प्रणाली के जरिये जल संरक्षण हमारी मुख्य चिंताओं में शामिल था। परम्परागत रूप से देश में वाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम के तहत बावड़ी, स्टेप वेल, झिरी, लेक, टैंक आदि का इस्तेमाल किया जाता रहा है। ये सब ऐसे जल संग्रह निकाय हैं जिनके द्वारा घरेलू और सिंचाई जरूरतों को पूरा किया जाता था। ऐसे जल स्रोतों के रखरखाव खुद लोगों द्वारा किया जाता था जिससे पानी के सर्वाधिक उपयोग द्वारा जरूरतों को पूरा किया जाता था।

रेनवाटर हार्वेस्टिंग–सतह के रिसाव से भू जल का स्तर प्राकृतिक रूप से रिचार्ज होता रहता है। आधुनिक दौर में अंधाधुंध विकास और तेजी से होते शहरीकरण से धरती का ज्यादातर हिस्सा पक्का हो गया है इसके चलते बारिश का जल स्वतः रिसकर धरती की कोख तक नहीं पहुँच पाता। भू जल का दोहन और बढ़ गया है लिहाजा रिचार्ज न होने की स्थिति में भूजल स्तर में लगातार गिरावट आ रही है। रेनवाटर हार्वेस्टिंग के तहत हम कृत्रिम तरीके से इस बारिश के पानी को धरती के अंदर पहुँचाते हैं जिससे हमारा भू जल भण्डार ऊपर उठता है। गांवों और शहरों में बारिश के पानी को बहकर बेकार होने से रोककर उसे घरेलू जरूरतों और सिंचाई आदि में इस्तेमाल करना रेन वाटर हार्वेस्टिंग कहलाता है।

जरूरी प्रक्रिया–

- गिरते भू जल स्तर को रोकने और उसे बढ़ाने में सहायक।

- धरती के जलवाही स्तर (एक्वीफर्स) के जल की गुणवत्ता में वृद्धिकारक।
- मृदा अपरदन (भूमि कटाव) रोकने में कारगर।
- मानसूनी बारिश के पानी का संरक्षण।
- जल संरक्षण की संस्कृति को लोगों के मन मस्तिष्क में बैठाने में सहायक।

मुख्यतया इसके दो तरीके हैं–

सरफेस रन आफ हार्वेस्टिंग– शहरी क्षेत्रों में सतह के माध्यम से पानी बहकर बेकार हो जाता है। इस बहते जल को एकत्र करके कई माध्यम से धरती के जलवाही स्तर को रिचार्ज किया जाता है।

रूफ टॉप रेनवाटर हार्वेस्टिंग–इस प्रणाली के तहत बारिश का पानी जहाँ गिरता है वहीं उसे एकत्र कर लिया जाता है। रूफ टॉप हार्वेस्टिंग में घर की छत ही कैचमेंट क्षेत्र का काम करती हैं। बारिश के पानी को घर की छत पर ही एकत्र किया जाता है या फिर इसे कृत्रिम रिचार्ज प्रणाली में भेजा जाता है। यह तरीका कम खर्चीला और अधिक प्रभावकारी है।

ऐसे करें रूफ टॉप हार्वेस्टिंग–वह सतह जहाँ बारिश का पानी सीधे गिरता है उसे रेनवाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम का कैचमेंट कहते हैं यह किसी मकान की छत, आंगन या कच्चा या पक्का खुली सतह भी हो सकती है।

ट्रांसपोर्टेशन–छत के पानी को पाइपों के माध्यम से नीचे स्टोरेज/हार्वेस्टिंग सिस्टम तक पहुँचाया जाता है।

फर्स्ट फ्लश– यह पहली बारिश के पानी को बाहर निकालने वाला उपकरण होता है। पहली बारिश में वायुमण्डल और छत के प्रदूषण तत्व मौजूद हो सकते हैं इसलिए इस पानी को बाहर निकालना होता है।

फिल्टर– रूफ टॉफ हार्वेस्टिंग सिस्टम में यह शंका उठती है कि कहीं बारिश का पानी भूजल को प्रदूषित न कर दे। लिहाजा इससे बचने के लिए फिल्टर का इस्तेमाल किया जाता है। पहली बार होने वाली बारिश के पानी को बाहर निकालने के बाद के होने वाली सभी बारिश के पानी को छानने के लिए फिल्टर का प्रयोग किया जाता है।

ऐसे करें हार्वेस्टिंग– छत के पानी को पाइपों के सहारे स्टोरेज टैंक में ले जाया जाता है। सभी पाइप के प्रवेश द्वार पर पतले तार की जाली लगी होती है। इसके बाद इसमें फ्लश डिवाइस और फिल्टर जुड़े होते है।। टैंकों में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे पानी अधिक होने पर उसे रिचार्ज सिस्टम तक पहुँचाया जा सके। टैंक के पानी का इस्तेमाल कपड़े धोने या पौधों को पानी देने के लिए किया जा सकता है।

वर्तमान में बारिश के द्वारा जल भण्डारण जल संकट का एक आसान उपाय है जिसके द्वारा शुष्क मौसम में धरती के जल स्तर को सामान्य रखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दैनिक जागरण, समाचार पत्र, दिनांक 16 जून 2013
2. लेख–अरुण तिवारी (जल कार्यकर्ता) दैनिक जागरण, समाचार पत्र, दिनांक 16 जून 2013
3. लेख–मुकेश केजरीवाल (विशेष संवाददाता) दैनिक जागरण, समाचार पत्र, दिनांक 16 जून 2013

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

डॉ0 राम मनोहर लोहिया का संगठित विरोधों का समाजवादी प्रतिमान

(मार्क्स और गांधीजी के संदर्भ में)

डॉ0 सरोज बिल्लोरे
प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान
माता जीजाबाई शा.स्ना. कन्या महाविद्यालय
मोती तबेला, इंदौर (म.प्र.)

डॉ0 सरला चतुर्वेदी
प्राध्यापक –समाजशास्त्र
शा.रामानंद संस्कृत महाविद्यालय,
लालघाटी, भोपाल (म.प्र.)

तिनके की ओट लेकर जो तूफान को रोकना चाहता है, वह तूफान के अस्तित्व से अपरिचित होता है। तूफान उनसे अठखेली करके अपने प्रभाव को दिखाता हुआ आगे बढ़ जाता है। तिनकों का सहारा निर्जीव शक्ति के रूप में क्रन्दन कर उठता है। तूफान के बाद उसके प्रभाव का स्वरूप कहीं अच्छा और कहीं बुरा हो सकता है। समाजवाद का तूफान पूंजीवाद के अशक्त और असमर्थ तिनकों पर जब गिरता है, तब कुछ उन्मुक्त हो उठते हैं और कुछ उन्मादी। तूफान की प्रेरणाओं की पूजा सदा होती है। समाजवाद के तूफान की प्रेरणाओं में डॉ. राम मनोहर लोहिया का नाम शीर्ष पर आता है। वे समाजवाद को वैज्ञानिक चेतना और बुद्धिवादी चिन्तन देने में सदैव संलग्न रहे। उनका मन भारत की गरीबी से विक्षुब्ध था लेकिन उन्होंने कभी भी अपने को केवल भारत की भूख तक ही सीमित नहीं रखा, विश्व की भूख उनके विशाद का कारण बनी। उनके सपनों में एक ऐसा विश्व था जिसमें गोरे, काले, स्त्री, पुरुष, गरीब, अमीर, और ऊँच–नीच के स्वर अवरूद्ध थे। वे जिज्ञासु समाजवादियों के लिए, उत्सुक समाज सेवक के लिए, एक अद्वितीय अवलम्ब थे। उनका विचार सूत्र मार्क्सवादी और गांधीवादी मान्यताओं को पूर्णता अन्तर्विरोध के स्वर को प्रदान करने में इस रूप में गुंथ गया है कि वे स्वयं मुखरित करते हैं, ''लोहिया गांधी के सत्याग्रह और अहिंसा के अखण्ड समर्थक थे, गाँधीवाद को वे अधूरा दर्शन मानते थे; वे समाजवादी थे लेकिन मार्क्स को एकांगी मानते थे; वे आधुनिकतम आधुनिक थे लेकिन आधुनिक सभ्यता को बदलने का प्रयत्न करते रहते थे। वे विद्रोही और क्रान्तिकारी थे, लेकिन शांति, अहिंसा के अनूठे उपासक थे।''

डॉ. राममनोहर लोहिया एक मौलिक समाजवादी चिन्तक हैं। सच्चे अर्थों में वे भारत में समाजवाद के जनक हैं। उन्होंने समाजवाद के संदर्भ में मार्क्स और लेनिन से प्रेरणा ली तथा गांधीजी और भारतीय परिस्थितियों से सीखा मार्क्स के विपरीत, गांधीजी का उनपर अधिक प्रभाव पड़ा क्योंकि समाजवाद की स्थापना में गांधीजी की तरह लोहिया जी हृदय परिवर्तन को मुख्य साधन मानते थे। लोहिया जी का मत था कि समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिये समान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों की आवश्यकता होती है किन्तु इसके लिये उन्होंने पूंजीवाद और समाजवाद के सहअस्तित्व की बात की। भारत में समाजवाद एक लंबी परंपरा है, समाजवाद के खिलाफ संघर्ष से उभरती हुई देश के ऐतिहासिक राजनीति–विरासत का एक महत्वपूर्ण भाग का प्रतिनिधित्व करता है। समाजवादी आंदोलन रूसी क्रांति के साथ भारत में विकसित करना शुरू कर दिया। उन्होंने कर्म तथा चिंतन द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास की समस्या को सदैव ध्यान में रखा। लोहिया जी का विष्वास था कि, सत्यम, शिवम, सुन्दरम के प्राचीन आदर्श और आधुनिक विश्व के समाजवाद, स्वातंत्र्य और अहिंसा के तीन सूत्रीय आदर्श जीवन का सुन्दर सत्य होगा और उस सत्य को जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिये मर्यादा–अमर्यादा का, सीमा–असीमा का ध्यान रखना होगा। उन्होंने समाजवाद के सन्दर्भ में कार्ल–मार्क्स तथा महात्मा गाँधी और

भारतीय परिस्थियों से सीखा। कार्ल मार्क्स जहाँ खूनी क्रांति के द्वारा उद्देश्य प्राप्त करना चाहते थे वहीं दूसरी ओर महात्मा गांधी अहिंसा एवं शांति के द्वारा समस्याओं का समाधान करते थे। अतः डॉ. राममनोहर लोहिया के जीवन एवं विचारों पर मार्क्स के विपरीत, गांधी जी प्रभावित हुये, क्योंकि समाजवाद की स्थापना में गांजी जी की तरह लोहिया जी ह्रदय परिवर्तन को मुख्य साधन मानते हैं। लोहिया जी का जाति तोड़ो, दाम बाँधो, खर्च पर सीमा बाँधो उनके नारे तथा लोक–भवन, लोक–भोजन सम्बन्धी उनके विचार न केवल उनकी मौलिकता के द्योतक हैं अपितु सही अर्थो में हमारे देश वर्तमान समस्याओं के समाधान में आज भी रामबाण सिद्ध हो सकते हैं।

उनका विश्वास था कि इतिहास में जातियों तथा वर्गों का संघर्ष देखने को मिलता है। वर्ग और जातियों के बीच की यह आंतरिक हलचल ही इतिहास को गतिशीलता प्रदान करती है। जातियाँ गतिहीनता, निष्क्रियता तथा रूढ़िगत अधिकारों की पुरातनवादी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। जातियाँ शिथिल होकर वर्गों का स्वरूप धारण कर लेती हैं और संगठित वर्ग जातियों में परिणित हो जाते हैं। इस जाति एवं वर्गों के बीच आंतरिक गति का इतिहास है। लोहिया के समाजवाद में मुख्य मुद्दा अर्थ एवं आर्थिक शक्तियों के वितरण तथा जातिवाद और उसके विभेदकारी कुप्रथाओं को समाप्त करना था। जहां पर मार्क्स ने सामाजिक और आर्थिक साम्य के लिये क्रांति द्वारा परिवर्तन की बात की वहीं पर लोहिया भी क्रांतिकारी हैं, किन्तु शांतिपूर्ण ढंग से समाज के परिवर्तन की बात की, वहीं पर लोहिया भी क्रांतिकारी हैं, किन्तु शांतिपूर्ण ढंग से समाज में परिवर्तन लाने के पक्षधर हैं। इसके लिए वह सप्त क्रांति की बात करते हैं। उनके सप्तक्रांति के मुद्दों में (1) अन्याय के खिलाफ लड़ाई (4) खर्च की सीमा (5) गरीबी के खिलाफ क्रांति (6) जातिप्रथा का अंत विशेष अवसर देखकर (7) हर संभव बराबरी की प्राप्ति के लिये निरन्तर संघर्षशील रहना।

समाजवादी विचारों के साथ उसका आर्थिक चिन्तन सशक्त है। लोहिया लघु मशीनों के द्वारा औद्योगीकरण की बात करते हैं। मार्क्स के विपरीत उनका विचार था कि लघु मशीनों के द्वारा ही औद्योगीकरण के माध्यम से मार्ग प्रशस्त होगा। उन्होंने भारत की आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति के लिये कार्यात्मक स्तर पर लघु उद्योगों के माध्यम से औद्योगीकरण करने एवं यूरोप में अपनाई जाने वाली नवीनतम प्रविधियों को ग्रहण करने की वकालत की, वहीं पर वैचारिक स्तर पर जातिवाद, अस्पृश्यता एवं विभिन्न सामाजिक कुप्रथाओं की समाप्ति के लिये आन्दोलन का आह्वान किया। उनके अनुसार कृषि पद्धति में विज्ञान के समावेश की आवश्यकता है, आप समाजवादी विचारों में क्रांतिकारी हैं, किन्तु वे मार्क्स की तुलना में गांधी के अधिकतम निकट हैं।

मार्क्स ने औद्योगीकरण को पूँजीवाद का संवाद माना किन्तु आपका लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना करना है किन्तु इसके लिये पूँजीवाद का सहअस्तित्व अनिवार्य है दोनों पर परस्पर अन्योन्याश्रित है। एक–दूसरे के अभाव में कोई टिक नहीं सकता। लोहिया जी मानते थे कि पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों एक दूसरे के विरोधी होकर भी दोनों एकांगी और हेय हैं, इन दोनों से समाजवाद ही छुटकारा दे सकता है। उनकी दृष्टि में प्रजातंत्र और समाजवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, एक दूसरे के बिना दोनों को अधूरा पाया, क्योंकि इतिहास की गति ने दोनों को छोड़ दिया है।

लोहिया ने अपनी समाजवाद की कल्पना में लघु इकाई तकनीकी को समाजवादी अर्थव्यवस्था का आधार मानते हुए उन्होंने समाजवादी आंदोलन को जाति के विनाश की ओर मोड़ा। उनका मानना था कि भारतीय समाज की जड़े जातियों के विभाजन पर टिकी हैं और जब तक जातियों का विनाश नहीं होगा, वर्ग संघर्ष नहीं होगा और न ही समाज की वर्तमान व्यवस्था में बदलाव होगा। उन्होंने अंतरजातिय और अंतरधर्मी शादियों को प्रोत्साहित कर जातियों को मिटाने का सांस्कृतिक अभियान चलाया था। उन्होंने विलासिता पर रोक लगाने व फिजूलखर्च वाले कार्यक्रमों पर रोक लगाने के लिये समाजवादी आंदोलन को आधार बनाया। उनका मानना था कि नया उपभोक्तवाद, विलासितावाद है, उपभोक्ता तकनीक समूचे देश को उन्नत तकनीकों वाले देशों का

बाजार बना रही है, जिसके चलते प्रतिवर्ष लाखों करोड़ का मुनाफा उपभोक्ता सामग्री और तकनीकी के मुनाफे के रूप में विदेशी तकनीकी मालिकों के पास जा रहा है। एक तरफ तकनीकी का विकास और दूसरी तरफ तकनीकी मानवीय जरूरतों का रिश्ता समझकर देशी तकनीकी का विकास केवल समाजवाद ही कर सकती है।

मार्क्स का सामाजिक सिद्धांत अनिवार्य रूप से परिवर्तन एवं विकास का सिद्धांत है। मार्क्स के विचार सम्पूर्ण इतिहास को देखते हैं और भविष्य की ओर भी देखते हैं और वह भविष्य और अतीत दोनों का विश्लेषण करता है। राजवंशों के बदलाव के साथ कृषिभूमि के स्वामित्व में खेती करने के तौर–तरीकों में कोई बदलाव नहीं आया। अब भी राजवंशों के बदलने पर राजा भूमि के स्वामी थे। उसने वह भी देखा कि वे किसान जो जमीन को जोतते थे, उनसे राजा भूमिकर लेता था। पूँजीवाद में उत्पादन के साधनों का मालिक पूंजीपति और श्रम का मालिक श्रमिक। मार्क्स वर्ग संघर्ष के द्वारा पूँजीवाद की मृत्यु का पैगाम भी लाये। मार्क्स की तरह डॉ. लोहिया ने भी समाज की विकृत मनोवृत्तियों को पहचाना और विलासिता एवं फिजूलखर्ची पर बहस शुरु की। उन्होंने बाजार की लूट को समाप्त करने और सीमित करने के लिये दाम बाँधें नीति की कल्पना की थी, जिसके अनुसार कोई भी वस्तु बाजार लागत मूल्य से डेढ़ गुना अधिक मूल्य से नहीं बेचना चाहिये। इन्होंने सारी दुनिया में विषमताओं को समाप्त करने का अभियान समाजवादी आंदोलन के द्वारा शुरु किया।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि डॉ0 राम मनोहर लोहिया जी का 'संगठित विरोधों का समाजवादी प्रमिमान सटीक प्रतीत होता है। उनका यह विचार और तर्क दुनिया में आज वर्तमान समय में प्रजान्तत्र का समर्थन करता है। वह प्रत्येक नागरिक के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता का समर्थन करते हैं। व्यक्तिगत जीवन का विकास इन्हीं स्वतंत्र इतिहास में कोई और भी देश ऐसा रहा है जो इतना है, जितना हिन्दुस्तान। वस्तुतः उन्होंने देश समाज के बीच रहकर इस कमजोरी को अनुभव किया था, उनकी ये सात क्रांतियाँ और संशोधित समाजवाद उसी का सही उत्तर था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शरद ओंकार लोहिया के विचार, पृ. 10
2. सम्पादिता ओंकार शरद लोहिया के विचार, पृ. 268
3. नरेन्द्र देव, नेशनलिज्म एण्ड सोशिलिज्म (हिन्दी), पृ. 382
4. लोहिया, राम मनोहर –इतिहास चक्र, पृ. 17
5. लोहिया राममनोहर –भारत चीन और उत्तरी सीमायें, पृ. 149
6. डॉ0 शर्मा गोविंद प्रसाद, भारतीय राजनीतिक चितन 2009, पृ. 169
7. एम.व्ही.एस. कोटेजवार, पृ. 92–93
8. डॉ0 लोहिया मार्क्स एण्ड सोशिलिज्यम नव हिन्दू पब्लिकेशन, हैदराबाद
9. लोहिया राष्ट्रवादी, लोहिया अंक 23 मार्च 1970, पृ. 10–25
10. ठाकुर कृष्णनन्दन–राममनोहर लोहिया आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचार, एम0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लिमिटेड रामनगर, नई दिल्ली
11. दोषी एम0एल0–उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत, पृ. 177
12. लोहिया राममनोहर, व्हील आफ हिस्ट्री
13. लोहिया राममनोहर–आस्पेंकर आफ सोशलिस्ट पॉलिसी, पृ. 10

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

समाजवादियों का समाजवाद : एक मूल्यांकन

डॉ0 रुचि दीक्षित
असि0–प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
अकबरपुर पी0 जी0 कालेज, अकबरपुर, कानपुर देहात

समाजवाद का ध्येय वर्ग विहीन समाज की स्थापना है। समाजवाद प्रचलित समाज का इस प्रकार संगठन करता है, कि वर्तमान परस्पर विरोधी स्वार्थीवाले शोषक और शोषित, पीड़ित और पीड़क वर्गो का अन्त हो जाये। वह सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का ऐसा समूह बन जाये जिसमें एक सदस्य की उन्नति का अर्थ स्वाभावतः दूसरे सदस्य की उन्नति हो, और वह मिलकर सामूहिक रूप से परस्पर उन्नति करते हुये जीवन व्यतीत कर सकें।

''धरती के अन्दर धरती के बाहर धरती के ऊपर और वायु मण्डल से भी संसाधनों के दोहन के कारण आने वाली मानवता के लिये भारी संकट उपस्थित कर दिया है। इस दोहन में समाजवादी देश अपने देश के अन्दर एवं बाहर दो सभ्यताओं शोषक एवं शोषित को बनाये रखते हुये विश्व में संसाधनों की लूट मचाये हैं, वहीं समाजवादी देष भी इसमें पीछे नहीं है''[1]। मानव इतिहास के आरम्भ से अब तक समाज के शोषक और शोषित वर्गों का संघर्ष चलता है। मनुष्य सामाजिक प्रगति के नियमों का दास बनकर कार्य करता रहा है। वह समाज के विकास की दिशा बोध पूर्वक निर्धारित करने में असमर्थ रहा है। समाजवाद से शोषण मुक्त और स्वतन्त्र समाज की रचना करना चाहता है। जिसमें मनुष्य इस असमर्थता के दायरे से ऊपर उठ सके और सामाजिक विकास का नियन्त्रण कर सके।''सन् 1954 में केन्द्रीय संसद ने एक प्रस्ताव के द्वारा भारत में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना योजनाओं का लक्ष्य घोषित किया और एक लोक कल्याण कारी राज्य के निर्माण का संकल्प किया। पं0 नेहरु के नेतृत्व में समाजवाद की दिशा में जो प्रयत्न किये गये उनमें'' अबाड़ी कांग्रेस का प्रस्ताव'' प्रमुख स्थान रखता है सन् 1956 के नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने शान्ति पूर्ण और न्यायोचित साधनों द्वारा'' एक समाजवादी सहकारी राज्य के निर्माण'' का प्रस्ताव पास किया 1962 के भावनगर अधिवेशन और 1964 के भुवनेश्वर अधिवेशन में लोक तान्त्रिक समाजवाद की स्थान के संकल्प को दोराया गया''[2]।

कार्लमाक्स के शब्दों में ''समाजवाद मनुष्य को विवषता के क्षेत्र से हटाकर उसे स्वाधीनता के राज्य में ले जाना चाहता है।'' समाजवाद संसार को आजाद कराना चाहता है। व्यक्तित्व के विकास में रूकावट डालने वाले सामाजिक बंधनों से उसे छुटकारा दिलाना चाहता है। शोषण मुक्त समाज की रचना करके, मौजूदा समाज की प्रचलित दासता, विषमता और असहिष्णुता को सदा के लिये दूर करके समाजवाद, स्वतन्त्रता समता और भ्रातृभाव की वास्तविक स्थापना करना चाहता है। स्वंतत्रता समता और भ्रातृभाव के आदर्श तो पुराने ही हैं। प्राचीन काल में सामाजिक स्वतन्त्रता के जो आंदोलन समय–समय पर होते रहे हैं उनकी पताका पर ये ही आदर्श वाक्य अंकित रहे हैं। यूरोप की कायापलट करने वाली महान राज्य क्रान्ति–फ्रॅांसिसी राज्य क्रान्ति का भी मूल मन्त्र यही था। लेकिन हम आज देखते हैं कि फ्रॅांसिसी राज्य क्रान्ति के आदर्शों की सिद्धि होने के बाद भी विषमता दूर नहीं हुई है। सच तो यह है कि ये व्याधियाँ समाज में पहले की अपेक्षा आज और भी बढ़ गयी हैं।

''समाजवाद का आवश्यक लक्षण यह है कि उद्योग एवं सेवाएँ साथ ही उत्पादन के साधन, व्यक्तिगत स्वाभित्व में न होते तथा औद्योगिक एवं सामाजिक प्रशासन व्यक्तिगत लाभ के सन्दर्भ में किया जाये।'' सिडनी

तथा बेब जार्ज बर्नार्ड शॉ–''समाजवाद का अर्थ व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रथा को पूर्णतः समाप्त करना तथा सार्वजनिक अर्थ को भेदभाव रहित तरीके से सम्पूर्ण जनसंख्या में समान रूप से वितरित करना है।''[3] शासन इस्पात और बिजली तैयार करने के भारी उद्योग लगाकर स्वयं एक उद्यमी की भूमिका निभाता है। बैंकों का राष्ट्रीकरण हो गया है। रेल और डाक विभाग पर शासन का पूर्ण नियन्त्रण है। इन उपायों से समाजवादी रास्ता अपनाए जाने का पता चलता है। समाज की आदिम व्यवस्थायें मानव समुदाय आर्थिक वर्गों में बंटा हुआ न था। मानव समुदायों के ऐतिहासिक विक्रय का सिंहावलोकन करते हुये हम देखते हैं कि आदिम समाज आर्थिक दृष्टि से पारस्परिक सहयोग के आधार पर संगठित था। यह वह समय था जब लोग खानाबदोश थे। उस समय लोग जो कुछ अकट्ठा करके लाते थे वह किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न होकर समुदाय की संपत्ति होती थी। जिसे लोग आवश्यतानुसार आपस में बाँट लेते थे। धीरे–2 श्रेणियाँ बँटी, और फिर आर्थिक सहयोग पर आधारभूत आदिम व्यवस्था की सामाजिक समानता का लोप होने लगा।

डॉ0 राम मनोहर लोहिया का समाजवाद :– लोहिया जी समानता को समाजवाद का मुख्य आधार मानते थे। जिस प्रकार कि कुटुम्ब में आध्यात्मिक तथा भौतिक समानता होती है उसी प्रकार की समानता समाज में स्थापित होनी चाहिये। डॉ0 लोहिया का ''नवीन समाजवाद एक देशीय समाजवाद न था। वह एक विश्वव्यापी समाजवाद था। इनके अनुसार–समाजवादी सिद्धान्त के बारे में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सभी व्यक्ति न केवल राष्ट्र की सीमाओं के अन्तर्गत अपितु संसार में एक समान हैं तथा बराबरी का दर्जा रखते हैं। इसमें प्रत्येक प्रमुख क्षेत्र परम्परागत संस्थाओं के रूपों में तथा उनकी मान्यताओं में परिवर्तन हो सकेगा। डॉ0 लोहिया के नवीन समाजवाद का उद्देश्य केवल राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर ही रहन–सहन के ढ़ंग को सुधारना नहीं है अपितु संसार के लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठाना है। डॉ0 लोहिया विकेन्द्रीकृत समाजवाद के प्रवक्ता थे। वे राज्य को गाँधी जी द्वारा सुझाये गये आधारों पर संगठित करना चाहते हैं। उनका कहना था कि राज्य का ध्येय आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्री करण करना चाहिये। इस संदर्भ में उन्होंने अपने समाजवादी राज्य को चार स्तरीय राज्य कहकर सम्बोधित किया उनके मतानुसार इस प्रकार के राज्य में केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के विरोधी सिद्धातों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। इस राज्य के चार स्तम्भ होगें–ग्राम प्रशासन, जिला प्रशासन, राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार। इन्हें प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के आधार पर व्यवस्थित किया जायेगा लोहिया की यह विचार धारा चौखम्भा राज्य की परिकल्पना थी। वे चार स्तम्भीय राज्य में विश्व सरकार के रूप में पांचवा स्तम्भ भी जोड़ना चाहते थे। जिसे वे विश्व शान्ति के लिये आवश्यक मानते थे। उनका मानना था कि उन्हें जाति वर्ग के भेदभाव तथा क्षेत्रीय असमानताओं से ऊपर उठकर समानता का विश्व व्यापी दृष्टिकोण अपनाना चाहिये।

समाजवाद की ओर :– समाज का आदर्श सर्वसाधारण में इतना जनप्रिय गया है कि उसके बड़े से बड़े विरोधी की भी यह हिम्मत नहीं पड़ती कि वह खुलेआम समाज का विरोध कर सकें। इसके विपरीत बड़े–2 प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी समाजवाद के नाम पर किया जाने लगा है। हिटलर भी जर्मन जनता पर अपना प्रभाव जमाए रखने के लिये अपने प्रतिगामी सिद्धान्तों का प्रचारों ''राष्ट्रीय समाजवाद'' के नाम पर ही करता था। जब कोई भी विचार सर्व साधारण के मन पर काबू कर लेता है–और वह तभी काबू कर लेता है। जब कि सार्वजनिक हित की दृष्टि से वह वांछनीय होता है। तो उसके विरोधियों को उससे खुले आम लड़ने की हिम्मत नहीं होती और खुली लड़ाई के बदले में छिपी लड़ाई का रास्ता अपनाते हैं। आज हिन्दुस्तान में हम यही हालत देख सकते हैं यहाँ भी भारतीय समाजवाद, वर्णाश्रम समाजवाद, मुस्लिम समाजवाद और वैदिक समाजवाद आदि तरह–2 के समाजवादों का हवाला देकर यह कहा जाने लगा है कि मार्क्स और लेनिन द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद विदेशी है और अपने देश में उसकी आवश्यकता नहीं ''रोशर के अनुसार–समाजवाद उस

विचारधारा का समर्थक है जो व्यक्तिगत प्रगति की अपेक्षा सामाजिक प्रगति पर अधिक जोर देती है।''[4]

इसमें संदेह नहीं है कि समाजवाद जिस नई सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करता है उसमें आजकल की भाँति भीषण आर्थिक विषमतायें न पायी जायेंगी। लेकिन इसका यह अर्थ निकलना भ्रम पूर्ण होगा कि समाजवादी आर्थिक एक रूपता कायम कराना चाहते हैं। समाजवाद का आदर्श हर व्यक्ति की योग्यतानुसार काम लेकर उसके आवश्यकतानुसार उपयोग की वस्तुओं का प्रबन्ध करना है। अगर कुछ लोग यह समझते हैं कि समाजवाद हर प्रकार की आजादी या समानता करने जा रहा है तो यह उसकी भूल होगी समाजवाद पूर्ण समानता लाने का दावा नहीं करता। समाजवादी समाज में सभी समाज के सदस्यों में शारीरिक और मानसिक अंतर रहेंगे ही। समाजवाद यह अवश्य करेगा कि वह शोषक वर्ग का अंत करके, असमानता का आर्थिक आधार नष्ट कर देगा और सबको समानता का अवसर प्रदान करेगा यह तो निश्चित ही है कि समाज के विभिन्न व्यक्तियों की आवश्यकता भी विभिन्न होगी। ऐसी हालत में सबकी आमदनी बराबर कैसे की जा सकती है। समाजवाद सभी पेशों को हटाकर सब को एक पेशे का बना देना चाहता है। यह स्पष्ट असंभव कल्पना है। यह मुमकिन है कि समाजवादी व्यवस्था में आजकल प्रचलित कुछ धन्धों की जरूरत न पड़े। उदाहरण – समाजवादी समाज में हमें फौज की जरूरत न पड़े। लेकिन कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिये श्रम विभाजन मौजूद रहेगा और फलस्वरूप अनेक पेशे भी मौजूद रहेंगें। सब पेशों को हटाकर एक पेशा कायम करने की दलील वास्तव में समाजवाद के उन विरोधियों द्वारा दी जाती है जो इसके जरिये बड़ी आसानी से सब साबित करना चाहते हैं कि वर्ग रहित समाज की रचना एक असंभव कल्पना है। समाजवादियों पर घृणा फैलाने का इल्जाम बे बुनियाद है जो समाजवादी वर्ग विहीन समाज की रचना करना चाहते हैं। वे तो सिर्फ यही समझाते हैं कि यदि उनके साथ कोई अर्थ व्यवस्था से सम्बन्धित कोई अन्याय होता है तो इसमें दोष उस व्यवस्था का नहीं बल्कि उस दोषी पूंजीवादी प्रणाली का है जिसने उत्पादन के साधनों की मुट्ठी भर पूंजी पतियों के हाथ में दे दिया है। समाजवाद को जोश में कुछ लोग व्यक्ति को समाज के आधीन कर देना चाहते हैं यह उचित नहीं है। समाज का सुधार, कल्याण तथा स्वयं समाजवाद का सिद्धान्त व्यक्ति की देन है अतः समाज का विकास व्यक्ति के विकास पर आधारित है। देशकाल के अनुसार उचित साधनों का प्रयोग करके समाजवाद की दिशा में प्रयास करके सामाजिक पुनः निर्माण की नींव सुदृढ़ होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बाजपेयी, डॉ0 ए0 डी0 एन0, गाँधी का आर्थिक चिन्तन, कॉलेज बुक डिपो, त्रिपोलिया जयपुर ,2009, पृष्ठ सं0–89
2. शर्मा, डॉ0 डी0डी0, समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2012, पृष्ठ सं0–123
3. डॉ0 जी0 आर0 मदन, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली–7, नवीनतम् संस्करण 2011, पृष्ठ सं0 –196
4. जैन, पी0सी0, औद्यौगिक समाजशास्त्र, विशाल प्रकाशन मन्दिर मेरठ, 1998, पृष्ठ संख्या–287

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गाँधी की प्रासंगिकता

डॉ0 रश्मि सोमवंशी
व्याख्याता–राजनीति विज्ञान
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को अपने चिन्तन व दर्शन में समाहित करने वाले गाँधी अन्धकार के युग में एक प्रकाश स्तम्भ के समान हैं। उनका जीवन बहुरंगीय तथा प्रतिभा बहुमुखी थी। वे उतना ही कहते थे जितना वे कर पाते थे। अतः दर्शन उनके लिए वागविलास या बौद्धिक व्यायाम नहीं बल्कि स्वयं जीवन का पर्याय था। गाँधीजी 20वीं सदी के महान नायक थे। वे सम्पूर्ण समाज के सुख एवं विकास की बात करते थे। सर्वोदय, ट्रस्टीशिप, दरिद्रनारायण की पूजा, सत्य, अंहिसा तथा राजनीति का आध्यात्मिकरण कर एक ऐसा आदर्श अपनाना चाहते थे। जिससे नैतिक, आर्थिक दोनों प्रकार की दरिद्रता को दूर किया जा सके। गॉधीजी का मानना था कि अनैतिक नियमों का त्याग करके मनुष्य जीवन के समस्त पक्षों में तालमेल कायम किया जा सकता है। आज बदले हुए समय के साथ इन विचारों को अत्यन्त प्रासांगिक माना जा सकता है।

आज सम्पूर्ण विश्व तृतीय विश्व युद्ध की आसन्न, आशंका से भयभीत है ऐसी स्थिति में शान्ति के अप्रीतमदूत एवं शान्ति व प्रेम के पैगम्बर महात्मा गाँधी के प्रासंगिता बढ़ गई है। मानवता को यदि नष्ट होने से बचाना है तो वह महात्मा जी के सत्य व अहिंसा के सन्मार्ग से ही सम्भव है। त्याग व प्रेम, साम्प्रदायिक सद्भाव, एकता एवं भाईचारा से ही विश्व शान्ति एवं मानवता को अक्षुण्य रखा जा सकता है।

वर्तमान में भ्रष्टाचार और साम्प्रदायिकता ने जिस तरह से सम्पूर्ण देश को अपने शिकंजे में कस रखा है, इन परिस्थितियों में गॉधी जी की प्रासंगिकता अति आवश्यक है। आज गांधी जी का सादा जीवन सेवा भाव और प्रत्येक गरीब के लिए कुछ कर गुजरने की भावना ही देश को सही दिशा दिखा सकती है सम्पूर्ण देश में जिस तरह से नेताओं, नौकरशाहों और माफियाओं का त्रिगुट बन गया है, उसे केवल गॉधीवादी नीतियों से ही तोड़ा जा सकता है गांधी जी की प्रासंगिकता न तो आज कम हुई है और न आने वाले समय में कम होगी। हम भौतिकता और आधुनिकता के जितने समीप जाएंगे गाँधी जी की प्रासंगिकता उतनी ही बढ़ती जाएगी।

अब्राहम लिंकन के समान महान् पुरुषों से की है, किन्तु वर्तमान में ऐसा लगने लगा है कि हम गाँधीजी और उनके विचारों को धीरे–धीरे विस्मृत करते जा रहे हैं। विचारणीय प्रश्न यह हे कि आज के परिप्रेक्ष्य में गॉधीजी के विचारों की प्रासंगिकता है या नहीं[1] गाँधी जी के प्रमुख विचार इस प्रकार हैं–

सर्वोदय : सर्वोदयी आदर्श में समाज या राज्य के सभी व्यक्तियों का उदय (विकास) मुख्य लक्ष्य होता है। प्राचीन भारत में भी– ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामय। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु या कश्चिद दूख भागभवेती।'' का आदर्श था। पाश्चात्य विचारक रस्किन और टॉलस्टाय में भी कुछ मात्रा में पाया जाता था, लेकिन जितनी प्रखरता के साथ व्यवस्थित रूप में गाँधीजी में मिलता है उतना अन्य किसी विचारक में नहीं। गाँधीजी ने इस विचारधारा का मात्र सैद्धान्तिक प्रतिपादन ही नहीं किया अपितु व्यावहारिक जीवन भी जिया[2]।

ईश्वर : गाँधी के अनुसार दुनिया में सर्वत्र व्याप्त एक ऐसी रहस्यमय शक्ति है जिसकी कोई व्याख्या नही हो सकती। हालांकि मैं इसे देख नही सकता, पर इसे महसूस अवश्य कर सकता हूँ। यह अदृश्य शक्ति अपने होने का अहसास तो कराती है मगर इसे किसी प्रमाण के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि मैं अपनी

इन्द्रियों से जो कुछ देख सुन समझ रहा हूँ, यह शक्ति उससे बिल्कुल भिन्न है। ईश्वर कोई व्यक्ति नही है। वह जीवन का सार है। वह विशुद्ध चेतना है। भगवान को खोजने के लिए किसी तीर्थस्थान को यात्रा करने, दिया–धूप जलाने, देवी–देवता की प्रतिमा पर लेप करने या इस पर तिलक लगाने की कोई आवश्यकता नही है। ईश्वर तो हमारे हृदय में बसता है। अगर हम अपने भौतिक शरीर की चेतना को पूरी तरह भूला दें तो हम उसे प्रत्यक्ष रुप से देख सकेंगे[3]।

सादा जीवन उच्च विचार : गॉधीजी के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के जीवन का लक्ष्य सादा जीवन तथा उच्च विचार से ओतप्रोत होना चाहिए। हमारी आवश्यकताएँ जितनी कम होंगी, हमें उतना ही कम असन्तोष व कष्ट का अनुभव होगा। गाँधीजी भौतिक कल्याण के साथ आध्यात्मिक कल्याण के पक्षपाती थे कि मनुष्य को सच्चा सुख प्राप्त करने के लिए शरीर तथा बुद्धि दोनों पर नियन्त्रण रखना चाहिए। भारत जैसे निर्धन देश में लोगों को अपनी आवश्यकताएँ सीमित रखकर ही सच्चे सुख की प्राप्ति हो सकती है[4]।

सत्य : सत्य गाँधीजी के दर्शन का केन्द्रीय तत्व है। उनके अनुसार सत्य ही वह तत्व है जिससे अन्य सभी तत्व निर्मित हुए हैं। इस प्रकार सत्य स्वयं अपनी शक्ति के कारण अस्तित्व में है। वह किसी अन्य तत्व व शक्ति के समर्थन पर निर्भर नहीं है, अपितु स्वयं समस्त अस्तित्वानन तत्वों का मूल आधार है। केवल सत्य ही शाश्वत है और अन्य समस्त तत्व भंगुर हैं। गाँधी ने स्पष्ट किया कि सत्यपरायण व्यक्ति स्वार्थ, लोभ भय और अहंकार से मुक्त होगा। गाँधी के अनुसार सत्य मार्ग पर व्यक्ति, पवित्रता, दृढ़ता और साहस द्वारा चल सकता है। गाँधीजी ने स्पष्ट किया कि सत्य भाषण के प्रति निष्ठा वाणी की कठोरता का समर्थन नहीं करती। यद्यपि एक सत्यपरायण व्यक्ति को सदैव सत्य बात ही कहनी चाहिये तथापि सत्य बोलने के पीछे किसी को दुःख पहुँचाने या पीड़ित करने का भाव नही होना चाहिये। गाँधीजी के मत में कटु सत्य को विनम्रतापूर्वक और निश्छल भाव से ही कहा जाना चाहिये[5]।

साधन की पवित्रता : गाँधीजी साध्य और साधन में भेद नही करते थे। उनका मत या कि उच्च व पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधन भी उच्च और पवित्र ही होने चाहिए। वे मैकियावली के विपरीत साधन की पवित्रता पर अत्यधिक बल देते थे। गाँधीजी का कहना या कि साधन बीज के समान और उद्देश्य वृक्ष के समान हैं जो अभेद्य सम्बन्ध वृक्ष और बीज में है वही साध्य और साधन में है। जिस प्रकार अच्छे बीज के बिना पौधा या वृक्ष अच्छा नहीं हो सकता, उसी प्रकार अच्छे साधनों के अभाव में उत्तम ध्येय तक नहीं पहुँचा जा सकता। वे इसी कारण साधनों की पवित्रता पर जोर देते थे। इसलिए उन्होंने स्वराज्य की प्राप्ति के लिए हिंसात्मक उपायों का विरोध किया। उनका मत था कि अहिंसा का प्रयोग केवल स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए ही आवश्यक नही प्रत्युत समाज की उन्नति, आर्थिक समता की स्थापना आदि अन्य उच्च ध्येयों की प्राप्ति के लिए भी इसका अवलम्बन किया जाना चाहिए। उच्च उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधनों को भी उच्च व पवित्र रखना गाँधीजी की विचारध ाारा का एक महत्वपूर्ण अंग है[6]।

गाँधीजी का रामराज्य : गाँधीजी अपने ढ़ंग की सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था द्वारा रामराज्य की स्थापना करना चाहते थे। रामराज्य से उनका उद्देश्य किसी राजा विशेष के राज्य से नहीं या वरन् उससे उनका मन्तव्य एक ऐसी व्यवस्था से था, जो सर्वोदय के सिद्धांत पर आधारित हो तथा जिसमें किसी भी प्रकार की हिंसा के लिए कोई स्थान न हो। गाँधीजी रामराज्य के सम्बन्ध में स्वयं लिखते हैं, "धार्मिक दृष्टि से इसे पृथ्वी पर ईश्वर का राज्य कहा जा सकता है। राजनीतिक दृष्टि से यह एक ऐसा लोकतान्त्रिक शासन होगा जिसमें सम्पति के होने या न होने का और रंग, जाति, धर्म तथा लिंग के भेदों पर आश्रित सब विषमताओं का अन्त हो जाएगा। इसमें भूमि और राज्य संस्था जनता की होगी। न्याय अविलम्ब, पूर्ण और सस्ता होगा। धर्म के मामले में सब लोगों को पूर्ण स्वतंत्रता होगी। भाषण और प्रेस द्वारा अपने विचारों को प्रकट करने में भी सब लोग स्वतंत्र होंगे। यह

सब कुछ इसलिए हो सकेगा क्योकि इसका आधार नैतिक अनुशासन पर आश्रित वह कानून होगा। जिसका अनुसरण लोग स्वेच्छा से करेंगे। ऐसा राज्य अवश्य ही समृद्ध, सुखी एवं स्वावलम्बी ग्रामों व ग्राम संस्थाओं से मिलकर निर्मित हुआ होगा। यह व्यवस्था गाँधीजी के अध्यात्मवादी दृष्टिकोण का ही मूर्त रुप है।[7]

सत्याग्रह : समय–समय पर गाँधीजी ने राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने हेतु विभिन्न राजनैतिक अस्त्रों का प्रयोग किया। तथापि सभी साधनों को सामूहिक रुप में 'सत्याग्रह' की संज्ञा प्रदान की जा सकती है, क्योंकि सभी में सत्याग्रह की भावना विद्यमान है। गाँधीजी ने विभिन्न समस्याओं से निपटने के लिए जिन साधनों का उपयोग किया। वे यद्यपि सामान्य रुप में अलग–अलग दिखाई देते हैं, परन्तु सब के मूल में एक ही सिद्धांत अथवा भावना है और वह है "सत्य के लिए आग्रह"। गाँधीजी का सत्याग्रह का विचार आत्मशक्ति का द्योतक है। आत्मशक्ति अहिंसा को जन्म देती है और अहिंसा द्वारा सत्याग्रह का पोषण होता है।[8]

सामाजिक विचार : गाँधीजी ने अस्पृश्यता को सामाजिक कलंक की संज्ञा दी। अस्पृश्यता निवारण को गाँधीजी सर्वाधिक सार्थक समाज सुधार मानते थे। भारतीय समाज में निम्न जातियों के साथ उच्च जातियों के भेदभाव की आलोचना की। गाँधी ने शूद्रों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया जिसका शब्दिक अर्थ था 'ईश्वर का व्यक्ति'। गाँधी ने समाज मे महिलाओं की समानता पर बल दिया। गाँधी का मानना था कि महिलाओं को परिवार में उच्च स्वयं बनाना चाहिए। गाँधी ने महिला विरोधी कुप्रथाओं–सती प्रथा, बाल विवाह व पर्दा प्रथा आदि की कटु आलोचना की।[9]

आर्थिक विचार : गाँधीजी के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका चलाने के लिए कुछ शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिए। गॉधीजी बौद्धिक परिश्रम को परिश्रम नहीं समझते थे। अतः बौद्धिक परिश्रम हमें खाने का अधिकार देने के लिए पर्याप्त नहीं। उनके मतानुसार बौद्धिक श्रम बुद्धि के सन्तोष का साधन है और शारीरिक श्रम शरीर की तुष्टि अर्थात खाने पीने का। अतः शारीरिक परिश्रम का इतना महत्व होने के कारण अधिकांश उत्पादन उसी के द्वारा होना चाहिए। श्रम की बचत करने वाले साधनों, मशीन आदि का उपयोग सीमित मात्रा में होना चाहिए। गाँधीजी सदैव ग्रामोद्योग और खादी पर बल देते थे। भारत जैसे गरीब देश के लिए गृह उद्योग का बहुत महत्व है। इन्हीं के द्वारा गरीब जनता का शोषण तथा उसकी दरिद्रता को समाप्त किया जा सकता है।

गाँधीजी मानना था कि जब तक समाज से आर्थिक विषमता समाप्त नहीं हो जाती तब तक समाज में तथा संसार में स्थायी शान्ति स्थापित नही हो सकती। वे देश में धनी तथा गरीबों के बीच विद्यमान असमानता की गहरी खाई को पाटने के इच्छुक थे। इसे पाटने के लिए गाँधीजी ने ट्रस्टीशिप का विचार प्रस्तुत किया। इस विचार के अनुसार धनी लोगो को अपने अतिरिक्त धन तथा आर्थिक सत्ता का स्वेच्छापूर्वक त्याग करने, उसे समाज की भलाई के लिए उपयोग करना चाहिये। पूँजीपतियों को इस सम्पत्ति के लिए अपने आपको समाज का ट्रस्टी समझना चाहिए तथा इनके हाथ मे जो राष्ट्र के उत्पादन के साधन हैं। उनका राष्ट्र हित में उचित उपयोग करे। न्यास स्थापित करने के लिए धनिक वर्ग को अहिंसात्मक तरीके से ही प्रेरित करना चाहिए जिससे उसकी योग्यता एवं अनुभव का लाभ प्राप्त हो सके[10]।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जहाँ तक गॉधी दर्शन की प्रांसगिकता का प्रश्न है निष्कर्ष रुप से यही कहा जा सकता है कि वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों में गाँधी दर्शन को अपनाकर चलना जहाँ मुश्किल है, वहीं इसे पूर्ण रुप से नकारना भी हमारे हित में नहीं है। नए विचारों के बारे में गॉधीजी ने कहा था– "मैं नए विचारों को कदापि नहीं रोकना चाहता। पर मैं उनका गुलाम भी नहीं बनना चाहता।" यदि हम यह कहें कि गॉधीजी पुराने युग के थे। उनके सिद्धान्त, उनके आदर्श, उनका दर्शन पराधीन भारत के लिए ही मान्य थे तो क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं होगा कि हम विचार करें कि आज कौनसे सिद्धान्त हमारे देश के लिए मान्य होंगे।

शान्ति, सुरक्षा, समता, स्वावलम्बन, सादगी, स्वाभिमान तथा अहिंसा की आवश्यकता जितनी आज है, उतनी तब नहीं थी. बढ़ते हुए कट्टरवाद, अलगाववाद, आतंकवाद एवं असहिष्णुता के इस वर्तमान युग में गाँधी चिन्तन आज पूर्व की अपेक्षा अधिक प्रासंगिक है, प्रासंगिकता का अर्थ यह नहीं है कि गाँधी के विचारों को अपनाया जा रहा है या नहीं, अपितु प्रासंगिकता का अर्थ है कि वर्तमान समस्याओं का समाधान गाँधी चिन्तन से हो सकता है या नहीं।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ती हुई बेरोजगारी, जाति एवं नस्ल की वैमनस्यता, आर्थिक विषमताओं से उभरती आर्थिक नूतन प्रवृत्तियों एवं अस्थिरता में गॉधी की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक विचारधारा आज अत्यधिक प्रासंगिक है, क्योंकि यह इन समस्याओं को सुलझाने में सक्षम है। हमें गॉधी दर्शन के समयानुकूल दर्शन का सदुपयोग करने का संकल्प लेना चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही गॉधी दर्शन का उपयोग किया जाना चाहिए। आज हमें अंधानुकरण के संकीर्ण मार्ग से थोड़ा हटकर इस दिशा में गहन विचार करने की आवश्यकता है ताकि हम गॉधीजी के सपनों को साकार कर सकें।[11]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शैलेन्द्र कुमार, नई सहस्राब्दि और गॉधीजी की प्रासंगिकता, प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2000, पृष्ठ 2113
2. यशपाल जैन, सर्वोदय, सस्ता साहित्य मण्डल – प्रकाशन, 1996, पृ0–35
3. चन्द्र कुमार और मोहिन्दर पुरी मानव जीवन के कुछ बुनियादी पहलुओं पर गाँधीजी के विचार, रोजगार समाचार, 27 सितम्बर 1997, नई दिल्ली, पृ0–4
4. रामभाऊ म्हसकर, सेवाग्राम आश्रम, सर्व सेवा संघ–प्रकाशन राजघाट, वाराणसी, नवम्बर 1994
5. डॉ0 मधुकर श्याम चतुर्वेदी, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक–कालेज बुक हाउस, जयपुर 1993, पृ0 308.
6. योगेन्द्र कुमार, गॉधीजी और उनका समग्र राजनीतिक चिन्तन, प्रतियोगिता दर्पण, मार्च 2001, पृ0 1448
7. ग्राम स्वराज्य, हरिप्रसाद व्यास, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1950, पृ0 15–17
8. गॉधीजी, दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का इतिहास, नवजीवन प्रकाशन मंन्दिर, अहमदाबाद
9. अखयराज मीणा, सामाजिक संगठन की गॉधीय संकल्पना, राजयष्टि जनवरी–जून 2008, पृ0 147–148
10. प्रदीय कुमार पाण्डेय, गाँधी का आर्थिक एवं सामाजिक चिन्तन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1996, पृ0– 86–87
11. प्रो0 जी0 आर0 वर्मा, गांधी चिन्तन की प्रासंगिकता, प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर 1995, पृ0 – 252

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

प्रजातन्त्र का चतुर्थ स्तम्भ पत्रकारिता : चिन्तन के अभिनव परिप्रेक्ष्य

डॉ0 ममता गंगवार
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
आ0न0दे0न0नि0म0 महाविद्यालय, हर्ष नगर, कानपुर।

पत्रकारिता जनसेवा का सशक्त माध्यम है। आज के वैज्ञानिक युग में इसकी महत्ता और भी बढ़ गयी है। यह हमारे जीवन की विविधताओं नित्य घटित होने वाली नूतन घटनाओं को अति शीघ्रता के साथ दुनिया को कोने–कोने में पहुँचाती है। आज परिस्थिति यह है कि हमारा मनोमस्तिष्क किसी ऐसे समाज की कल्पना भी नहीं कर सकता है जिसमें पत्रकारिता का अस्तित्व न हो। मानव को जीवित रहने के लिए जिस प्रकार भोजन, हवा, पानी अत्यन्त आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार मानसिक तृप्ति के लिए पत्र पत्रिकाएँ आवश्यक हैं।[1]

महात्मा गाँधी के शब्दों में– समाचार पत्र का एक उद्देश्य जनता की इच्छाओं विचारों को समझना और उन्हें व्यक्त करना है, दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाओं को जाग्रत करना और तीसरा उद्देश्य सावर्जनिक दोषों को निर्भयता पूर्वक प्रकट करना है।''

इन्द्रा विद्यावाचस्पति ने पत्रकारिता पांचवा वेद है जिसके द्वारा हम ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी बातों को जानकर अपने बन्द मस्तिष्क को खोलते हैं।''

पत्र कारिता जन भावनाओं की अभिव्यक्ति, सद्भावों की उद्भूति और नैतिकता की पीठिका है। संस्कृति, सभ्यता और स्वतन्त्रता की वाणी होने के साथ ही यह जीवन में अभूतपूर्व क्रान्ति की अग्रदूतिका है। आज भी सभी नैपोलियन के कथन से सहमत टीकाकार, सलाहकार, बादशाहों के प्रतिनिधि और राष्ट्र के शिक्षक होते हैं। चार विरोधी पत्र हजार संगीनों से अधिक खतरनाक होते हैं।[2]

अकबर इलाहाबादी के अनुसार'' खीचों न कमानों को न तलवार निकालो, जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो। लोकतान्त्रिक प्रशासन का एक अविभाज्य अंग पत्रकारिता है। लार्ड्स (सामंत) टेम्पोरल (पादरी) तथा कामन्स (जनता) में लोकतंत्र के महत्वपूर्ण अवयव हैं। बर्के ने प्रेस को चतुर्थ राज्य की संज्ञा दी। प्रेस तो निरन्तर गतिमान संसद है। संसद और प्रेस ही लोकप्रिय सरकारों के मुख्य अंग हैं। जेम्स मैकडोनल्ड ने पत्रकारिता को रणभूमि से भी बड़ी चीज समझी है यह कोई पेशा नहीं बल्कि पेशे से भी कोई ऊँची चीज है, यह एक जीवन है जिसे मैंने अपने को स्वेच्छापूर्वक समर्पित किया है।

मानव जिज्ञासु स्वभाव का होता है वह अपने आस–पास घटनें वाली घटनाओं को जानने के लिए सदा उत्सुक रहता है। वर्तमान समय में उसकी जानने की यह इच्छा मात्र अपने समाज, राज्य या देश तक सीमित न होकर विश्व की सम्पूर्ण गतिविधियों तक बढ़ गयी है। पत्रकारिता के द्वारा उसकी इन इच्छाओं की पूर्ति सुगमतापूर्वक हो जाती है। उदाहरण के लिए सुबह आँख खुलते ही प्रत्येक व्यक्ति सबसे पहले यह जानना चाहता है कि उसके आस–पास देश समाज व दुनिया भर में कौन–कौन सी घटनाएँ घटी हैं और उसकी इस जिज्ञासा को संचार माध्यम शान्त करते हैं। पत्रकारिता हमें हमारे समाज, देश की समस्याओं व विचारों से ही रूबरू नहीं

करातीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व की घटनाओं को हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

पत्रकारिता अंग्रेजी के जर्नलिज्म (Journalism) का अनुवाद है जर्नलिज्म शब्द जर्नल से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ दैनिक होता है। प्रारम्भ में सरकारी कार्यों को दैनन्दिन विवरणों एवं बैठकों की कार्यवाहियों को जर्नल के अन्तर्गत रखा जाता है। समयोपरान्त में विवरण सार्वजनिक होते गये और बीसवीं सदी तक आते–आते विद्वतापूर्वक लेखों एवं गम्भीर राजनीतिक आलोचनाओं को इसके अन्तर्गत समाहित कर लिया गया। इस प्रकार समाचारों, पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादन–लेखन को पत्रकारिता या जर्नलिज्म के नाम से अभिहित किया जाने लगा।[3] इस विषय में चैम्बर और न्यू वैवस्टर्स डिक्शनरी में लिखा है कि–समाचारों के प्रकाशन, लेखन, सम्पादन का व्यवसाय ही पत्रकारिता है।[4]

वर्तमान समय में पत्रकारिता का फलक इतना व्यापक हो गया है कि इसे किसी भी परिभाषा की सीमा में बाँधना उचित नहीं है। क्योंकि मानव जीवन से सम्बन्धित सम्पूर्ण घटनाएँ, स्थितियाँ इसके अन्तर्गत समाहित हो गयीं।[5] श्रेष्ठ पत्रकार डॉ0 कृष्ण विहारी मिश्र कहते हैं कि पत्रकारिता वह विधा है जिसमें पत्रकारों के कार्यों, कर्तव्यों और उद्देश्यों का विवेचन किया जाता है। जो अपने युग एवं अपने सम्बन्ध में लिखा जाये वही पत्रकारिता है।

जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है उसी प्रकार पत्र पत्रिकाएँ भी सीधे–सीधे समाज से जुड़ती हैं। मानव जीवन की सम्पूर्ण झांकी को पत्रकारिता अपने हृदय में समेटे रहती है। पं0 कमलापति त्रिपाठी के अनुसार – ''साधक के लिए साधना का त्यागी के उत्सर्ग का, तपस्वी के लिए कपट सहन तथा अनाशक्ति का, योद्धा के लिए संघर्ष और रण का, कवि के लिए अनुभूति की अभिव्यक्ति का, कलाकार के लिए संस्कृति के गूढ़ और रहस्यमय चित्रों के चित्रण करने का, आलोचक के लिए जीवन की स्थूल और सूक्ष्म धारा के विवेचन का, साहित्य के लिए लौकिक और अलौकिक यथार्थ और भावुक जगत को प्रकाश में लाने का पथ, एक साथ ही उपस्थित करने के सिवाय पत्रकारिता के आज कौन समर्थ है? ज्ञान और विज्ञान, दर्शन और साहित्य, कला और कारीगरी, राजनीति और अर्थनीति, समाजशास्त्र और इतिहास, संघर्ष और क्रान्ति उत्थान और पतन, निर्माण और विनाश, प्रगति और दुर्गति के छोटे प्रभावों को प्रतिबिम्बित करने में पत्रकारिता करने में पत्रकारिता के समान दूसरा कौन सफल हो सकता है।''

इस संदर्भ में डॉ0 अर्जुन तिवारी का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पत्रों के अतिरिक्त आकाशवाणी एवं दूरदर्शन भी अब पत्रकारिता के क्षेत्र में आ चुके हैं। अतः इनकी व्यापक परिभाषा होनी चाहिए। प्रकाशन, चित्रों द्वारा प्रस्तुतीकरण तथा प्रसारण हेतु सामयिक और सरस तथ्यों के संग्रह और सम्पादक को पत्रकारिता कहा जा सकता है।[6]

पत्रकारिता जहां अच्छे कार्यों की प्रशंसा करती है वही अन्याय, दमन, प्रतिशोध आदि की खुलकर निन्दा भी करती है। आवश्यकता पड़ने पर इन बुराईयों का सामना भी करती है। इसकी महिमा अपार है क्योंकि कभी यह जगत गुरू का रूप धारण कर समाज को शिक्षित करती है तो कभी न्यायाधीश बनकर न्याय की कुर्सी पर आसीन होकर निर्दोष व्यक्ति को न्याय दिलाती है। कभी सफेद पोश नेताओं के चेहरे से नकाब हटाकर उनका असली चेहरा समाज के सामने लाती है। पत्रकारिता सही अर्थों में समाज में उच्च मूल्यों और आदर्शों की स्थापना करती है।[7]

प्रत्येक काल में पत्रकारिता विश्वबन्धुत्व, जनसेवा और शान्ति स्थापना इन्हीं तीनों आदर्शों एवं मूल्यों को लेकर अग्रसर होती रही है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व के कल्याण का मूल मंत्र छिपा हुआ है। यह क्षण–क्षण घटने

वाली विश्व भर की घटनाओं की सूचना जन–जन तक पहुँचाती है। इसके द्वारा ही आम जनता को सरकार की नीतियों, क्रिया कलापों, गतिविधियों की जानकारी मिलती है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में पत्रकारिता का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि यह लोकतन्त्र में जहां जनता के हितों की संरक्षिका है, वहीं आम जनता की प्रतिक्रिया को सरकार तक पहुँचाती है। आम जनता मीडिया की कही गयी बातों को शीघ्र ही मान लेती है क्योंकि पत्रकार जन साधारण का गुरू होता है क्योंकि पत्रकारिता पेशे में सदा ही ईमानदारी को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। जिस बात को पत्रकार देखता, सुनता और अनुभव करता है उसे मुद्रित श्रव्य या दृश्य माध्यमों के द्वारा आम जनता के बीच पहुँचाना है और आम जनता मीडिया के द्वारा कही गयी बातों को शीघ्र ही मान लेती है।[8] इस पेशे से प्रभावित होकर कार्लाईल ने कहा है–''महान है पत्रकारिता, लोक मानस को प्रभावित करने वाला होने के कारण पत्रकार क्या विश्व का शासक नहीं है।''

इन्द्रा वाचस्पति के शब्दों में–पत्रकारिता पांचवा वेद है जिसके द्वारा हम ज्ञान–विज्ञान सम्बन्धी तथ्यों को जानकार अपने बन्द मस्तिष्क को खोलते हैं।''

पत्रकारिता ही समाज के उत्थान–पतन, सत्य–असत्य, सृजन एवं विनाश की स्थितियों को यथावत हम तक पहुँचाती है। यह हमें अतीत में की गयी गलतियों की पुनरावृत्ति करने से रोककर वर्तमान को संवारती है तथा सुन्दर भविष्य के स्वरूप का निर्माण करने में मदद करती है। यह समाज में फैली बुराइयाँ जैसे ऊँच–नीच, जाति–पाँति, भेद–भाव आदि अन्ध विश्वासों के खिलाफ संघर्ष छोड़कर समाज को इन बुराइयों से मुक्त कराती है। समाज में अच्छा बुरा जो भी घटित होता है। उसे अपने हृदय पर अंकित कर, उसका विश्लेषण करते हुए पत्रकारिता नामक पुस्तक में डॉ0 रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि ''पत्रकार भविष्य दृष्टा होता है वह समस्त राष्ट्र की जनता की चित्तवृत्तियों, अनुभूतियों और आत्मा का साक्षात्कार करता है। पत्रकार किसी को ब्रह्म ज्ञानी नहीं बना सकता परन्तु मनुष्य की भाँति जीते रहने की प्रेरणा देता है। जहां उसे अन्याय, उत्पीड़न, प्रवंचना, भ्रष्टाचार, कदाचार दिखाई देता है। वह उसका ताल ठोंककर विरोध करता है। आत्मविश्वास और दृढ़ता से प्राणी–प्राणी में शान्ति एवं सद्भावना की स्थापना करता है। सच्चा पत्रकार निर्माण क्रान्ति की लपटों से समाज की बुराइयों को भस्म करने का आयोजन करता है। पत्रकार ऐसे समाज का विधिवत विकास करता है। जिससे आत्म साक्षात्कार के इच्छुक लोगों को अपनी पहचान करने की दृष्टि मिलती है''।[9]

वर्तमान समय में पत्रकारिता मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से प्रभावित होकर हर पहलू को प्रभावित करती है। परस्पर निर्भयता और समन्वय के कारण यह समाज का दर्पण बन गयी है। इसकी लोक प्रियता एवं प्रभाव को देखते हुए ही इसे लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ मान लिया गया है। डॉ0 संजीव भानावत पत्रकारिता के विविध रूपों की चर्चा करते हुए लिखते हैं'– समाचार पत्र जनता की संसद है जिसका अधिवेशन सदा चलता रहता है। इस समाचार सत्र रूपी संसद का कभी सत्रावसान नहीं होता है। जिस प्रकार संसद में विभिन्न प्रकार की समस्याओं पर चर्चा की जाती है, विचार विमर्श किया जाता है, सरकार का ध्यान आकृष्ट किया जाता है उसी प्रकार समाचार पत्रों का स्वरूप भी व्यापक तथा बहु आयामी होता है। यह पत्रकारिता विविध जन समस्याओं से जुड़ी होती है। समस्याओं को प्रशासन के सम्मुख प्रस्तुत कर उस पर रचनात्मक बहस को भी प्रोत्साहित करती है।[10]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज संचार क्रान्ति के युग में पत्रकारिता का महत्व दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पत्रकारिता विविध विधाएँ : डा0 राजकुमारी रानी : पृ0 : 15, जय भारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 2002
2. आधुनिक पत्रकारिता : डा0 अर्जुन तिवारी, पृ0 1, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी, संस्करण 1994
3. श्री रा0र0 खांडिलकार : आधुनिक पत्रकार कला, पृ0 21
4. वही पृ0 : 21
5. पत्रकारिता भी विविध विधाएँ : डॉ0 राजकुमारी रानी, पृ0 16 जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
6. जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता : डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 114 विश्वविद्यालय प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2002
7. पत्रकारिता विविध विधाएँ : डॉ0 राजकुमारी रानी, पृ0–20 जय भारती प्रकाशन इलाहाबाद।
8. पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य : जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी : पृ0 108, साहित्य संगम, नया 100, लूकर गंज इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1987
9. हिन्दी पत्रकारिता : डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 : 291
10. पत्रकारिता के विविध परिदृश्य : डॉ0 संजीव भानावत, पृ0 51

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत में खुदरा बैंकिंग के विविध परिदृश्य

डॉ0 आयुष श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर बी0 कॉम विभाग
रामा डिग्री कॉलेज, चिनहट, लखनऊ

बढ़ती प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिये बैंकों को ग्राहकों को सस्ती, शीघ्र एवं अनेक प्रकार की सेवायें देनी होंगी। इसके लिये बैंकों को अपनी सेवा लागत कम करनी होगी और नये उत्पाद एवं सेवायें प्रस्तुत करनी होंगी।

वर्तमान समय में हो रहे व्यापक व समयानुकूल परिवर्तनों के मददेनजर, वित्तीय परिदृश्य में पिछले कुछ वर्षों में भारी परिवर्तन आया है। एक ओर पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ अपने को ज्यादा प्रतिस्पर्धात्मक बना रही हैं तो दूसरी ओर बाजारोन्मुखता की ओर प्रवृत्त व औद्योगिक विकास प्राप्त कर रहे विकासशील देश वित्तीय सुधारों के नए–नए प्रयोग कर रहे हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखते हैं तो पाते हैं कि बैंकिंग कारोबार संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। आज बैंकों के बीच स्पर्धा बहुत कड़ी हो गई है। निजी क्षेत्र के बैंकों के आ जाने से सरकारी क्षेत्र के बैंकों के सामने कई प्रकार की चुनौतियाँ उभर रही हैं।

बैंकिंग कारोबार की आधारशिला ग्राहक है। ग्राहक के बिना या थोड़े से ग्राहक प्राप्त कर बैंकिंग कारोबार नहीं किया जा सकता है। बैंकर एवं ग्राहक का सम्बन्ध लम्बे समय के लिए होता है अतः उसे बनाये रखने की आवश्यकता होती है। आज के ग्राहक की मांग अधिकाधिक बढ़ती जा रही है। वह सारी सेवाएं एक स्थान पर चाहता है और व्यवसाय करते समय वह अपने समय एवं धन की बचत चाहता है।

दूसरी ओर, बैंकों में मूल्य आधारित स्पर्धा, अधिग्रहण व विलयन सम्बद्ध स्पर्धा, विपणन स्पर्धा, उत्पाद आधारित स्पर्धा, लागत स्पर्धा, तकनीकी आधारित स्पर्धा, सेवा गुणवत्ता आधारित स्पर्धा, बाजार वर्गीकरण स्पर्धा आदि बैंकों के पारम्परिक कार्य जमा प्राप्त करना एवं ऋण देने में तेजी से परिवर्तन लाते हुए उत्पाद आधारित खुदरा बैंकिंग की ओर आकर्षित कर रही है ताकि बैंक अपने महत्वपूर्ण लक्ष्य लाभप्रदता एवं ग्राहक सन्तुष्ट को बनाये रख सकें। अतः वर्तमान युग में बैंकों की लाभप्रदता बढ़ाने, ग्राहक को अधिक से अधिक प्रकार की सेवा देने, एन0पी0ए0 को कम करने में खुदरा बैंकिंग एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है।

खुदरा बैंकिंग के अन्तर्गत बैंकों द्वारा व्यक्तिगत ग्राहकों की सभी आवश्यकताओं को समन्वित रूप से सन्तुष्ट करने का प्रयास किया जाता है। खुदरा बैंकिंग का आशय अलग–अलग व्यक्तियों एवं संयुक्त व्यक्तियों को बैंकिंग सेवाएं देने से है जबकि थोक बैंकिंग के अन्तर्गत बैंकों द्वारा उद्योगों एवं संस्थागत ग्राहकों को सेवाएं प्रदान की जाती हैं।

खुदरा बैंकिंग के अन्तर्गत सभी प्रकार के ग्राहक सम्मिलित होते हैं। बैंक प्रायः उच्च निवल सम्पत्ति वाले ग्राहकों पर अधिक ध्यान देते हैं। खुदरा बैंकिंग में व्यक्तिगत उपयोग के लिए व्यक्तियों के अंतर्गत सभी प्रकार की जमाएं, वित्तीय सेवाएं आस्ति संबद्ध योजनाएं एवं सेवायें दी जाती हैं।

वर्तमान समय में संस्थागत ग्राहकों एवं कम्पनियों की बैंकों पर निर्भरता बहुत संकुचित हो गयी है। इनको बैंकों द्वारा ऋण देना भी खतरे से खाली नहीं होता है क्योंकि इनको ऋण देने में एन0पी0ए0 बढ़ने की

सम्भावना बढ़ती जाती है। संस्थागत ग्राहक एवं कम्पनियाँ सीधे बाजार में अंश एवं ऋणपत्र निर्गमन द्वारा संसाधन को प्राप्त करने में ज्यादा ध्यान दे रही हैं। बैंकों की इस क्षेत्र में भूमिका कम होने से अब सभी बैंक अपने लाभ, संसाधन एवं व्यापार को बढ़ाने के लिए खुदरा बैंकिंग पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। इस क्षेत्र में व्यापार एवं लाभ बढ़ाने की पर्याप्त सम्भावना को ध्यान में रखते हुए बैंक खुदरा बैंकिंग के लिए नई–नई योजनाओं एवं सेवाओं की खोज में लगे हैं, जो ग्राहकों को प्रदान की जा सकती हैं। खुदरा बैंकिंग का विकास तेजी से होने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि यदि बैंक का एक बड़ा ऋण अप्राप्त होता है तो बैंक को बहुत बड़ा नुकसान होता है। यदि यही बड़ी रकम अनेक लोगों को ऋण देने में प्रयोग की जाए तो वे सभी एक साथ ऋण की अदायगी बंद नहीं करेंगे।

खुदरा बैंकिंग के अन्तर्गत अनेक प्रकार की योजनाएं एवं सेवाएं प्रदान करने के साथ–साथ, ग्राहकों को मूल्य संवर्द्धित सेवाएं भी प्रदान की जाती हैं। खुदरा बैंकिंग में दी जाने वाली महत्वपूर्ण सेवाएं निम्नलिखित हैं :

i. आवास ऋण ii. वाहन ऋण iii. शिक्षा ऋण iv. व्यक्तिगत ऋण v. स्वर्ण ऋण vi. कार्यक्रम ऋण vii. उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद हेतु ऋण viii. विदेश ऋण ix. क्रेडिट ऋण x. मोबाइल बैंकिंग xi. बीमा पॉलिसियों की बिक्री xii. अंशों एवं ऋण पत्रों का विक्रय xiii. इलेक्ट्रॉनिक बैंकिंग xiv. इंटरनेट xvii. कर्मचारी कल्याण योजना xix. चिरस्थायी पेंशन योजनाएं xx. वृद्धों के लिए सुपर जमा योजना xxi. सामाजिक सेवा बैंकिंग xxii. निर्यात ऋण xxiii. मर्चेन्ट बैंकिंग।

उपर्युक्त सेवाओं एवं योजनाओं के अतिरिक्त, बैंक निम्नलिखित सेवाएं भी प्रदान करने का प्रयास कर रहे हैं :

(i) विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों जैसे शेयर, डिबेंचर, बॉण्ड आदि के भौतिक रूप को समाप्त कर डीमेट खाता खोलना।

(ii) बिजली, पानी, टेलीफोन आदि बिलों का भुगतान।

(iii) बीमा प्रीमियम का भुगतान।

(iv) बच्चों की फीस का भुगतान।

कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः

आवास ऋण :– वर्तमान समय में, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक, विदेशी एवं निजी बैंक आवास ऋण देने में अपना महत्वपूर्ण ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं, क्योंकि सरकार आवास ऋण के उधारकर्ताओं को 20,000 रूपये तक के मूलधन के भुगतान पर आयकर में छूट देती है। साथ ही, 1,50,000 रूपए तक के ब्याज के भुगतान को करयोग्य आय से घटाने की भी सुविधा प्रदान की है। बैंकों में आवास ऋण देने की होड़ लगी हुई है क्योंकि इसके अन्तर्गत दीर्घकाल तक किस्तों के भुगतान से बैंकों को दीर्घकाल तक लाभ प्राप्त होता रहता है। साथ ही, इसमें अधिकतम सुरक्षा तथा निश्चित आय भी है। इसके अन्तर्गत, छोटे तथा बड़े, शहरी तथा ग्रामीण, शिक्षित तथा अशिक्षित तथा सभी प्रकार के ग्राहकों को ऋण की आवश्यकता बराबर बनी रहती है। इसमें छोटी, बड़ी, सभी धनराशि का ऋण 5, 10, 15, 20 वर्षों की अवधि में भुगतान की सुविधा पर न्यूनतम ब्याज दर पर प्रदान किया जाता है।

शिक्षा ऋण योजना : इस योजना के अन्तर्गत वे छात्र लाभ प्राप्त कर सकते हैं जो भारत के नागरिक हों तथा

जिन्हें पात्र पाठ्यक्रमों में प्रवेश मिल गया हो। पात्र पाठ्यक्रमों में निम्नलिखित शामिल है।

इस योजना के तहत बैंकों ने पिछले कुछ वर्षो में अच्छा कारोबार किया है। इस योजना का उद्देश्य गरीब, मेधावी, छात्रों को पूर्णकालिक स्नातक/स्नाकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रमों को पूरा करने के लिए ऋण प्रदान करना है।

बीमा पॉलिसियों की बिक्री : भारतीय बाजार में वर्तमान में बीमा का प्रचलन बहुत कम है। केवल 5 प्रतिशत जनसंख्या ही बीमा का उपयोग कर रही है। जीवन बीमा क्षेत्र में 'जीवन बीमा निगम' कार्य कर रहा हैं परन्तु बीमा योग्य 25 करोड़ लोगों में से 21 प्रतिशत ही बीमा करवा रहे है।

व्यक्तिगत ऋण : बैंक अब ग्राहकों को बिना किसी विशिष्ट उद्देश्य के ऋण मंजूर करते हैं। इनकी एक निश्चित सीमा होती है जिसे ग्राहक अपनी आवश्यकता एवं सुविधानुसार किसी भी समय एवं किसी कार्य के लिए ले सकते हैं।

स्वर्ण ऋण : बैंक स्वर्ण ऋण के अन्तर्गत स्वर्ण की जमानत पर ऋण प्रदान करने लगे हैं।

उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद पर ऋण : विदेशी संस्कृति के प्रभाव से भारत में उपभोक्तावादी संस्कृति का तेजी से विकास हो रहा है। मध्यम एवं गरीब वर्ग भी इस संस्कृति से बच नहीं पा रहा है। इसलिये उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में तेजी से वृद्धि हो रही है। इसलिये इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए, बैंकों ने ग्राहकों को उपभोक्ता वस्तुओं जैसे– टी0वी0, वॉशिंग मशीन, फ्रिज, ए0सी0, कम्प्यूटर इत्यादि खरीदने के लिए ऋण देना प्रारम्भ कर दिया है।

सामाजिक कार्यक्रम ऋण : बैंक विभिन्न सामाजिक निजी कार्यक्रमों जैसे–विवाह, जन्मदिन, त्यौहार, अग्रिम आदि भी प्रदान करते हैं।

इंटरनेट बैंकिंग : इंटरनेट बैंकिंग, संस्थानों व व्यवसायों आदि किसी भी व्यवस्था के लिए उत्पादों, सेवाओं, सूचनाओं, परामर्श देने, वितरण माध्यम अपनाने, ग्राहकों से व्यवस्थित ढ़ंग से सम्पर्क स्थापित रखने की अद्भुत क्षमता रखता है। यह साल में 365 दिन, चौबीसों घंटे, कम लागत पर, किसी भी समय, किसी भी दिन, किसी भी स्थान पर सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता रखता है। इंटरनेट बैंकिंग स्वयं एक लक्ष्य नहीं है, परन्तु यह बैंकों के लिए ऑन लाइन लेनदेन सेवाएं प्रदान करने तथा उनकी पूर्ति का एक साधन मात्र है अर्थात् बैंक जो उत्पाद या सेवा अपने सम्मानित ग्राहकों को देते हैं, उसे अपनी वेबसाइट के जरिये दें, इंटरनेट बैंकिंग का इस्तेमाल इलेक्ट्रॉनिक तरीके से धन का स्थानान्तरण, इलेक्ट्रॉनिक डेटा इंटरचेंज, वायरलेस संचार का इस्तेमाल, इंटरेक्टिव मल्टीमीडिया सैटेलाइट तथा स्मार्ट कार्ड्स का प्रयोग है। इलेक्ट्रॉनिक बैंकिंग परम्परागत बैंकिंग में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है।

मोबाइल बैंकिंग : बिना तार के इंटरनेट से जुड़ने की सुविधा का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है। भारत में बैंकों ने भी अपने ग्राहकों को इस सुविधा का लाभ देना प्रारम्भ कर दिया है। इन सेवाओं में मोबाइल फोन पर ही ऑनलाइन शेयरों की दरें बताना, बैंक के ए0टी0एम0 के स्थान की जानकारी देना भी शामिल है। अब बैंक के ग्राहक वैप सेल फोन पर अपने खाते की अद्यतन जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, चेक बुक भेजने का अनुरोध कर सकते हैं, क्रेडिट कार्डधारक अपने खातों की शेष राशि और लेनदेनों के बारे में जान सकते हैं। बैंक ने कतिपय बिलों के भुगतान और मात्रा तथा टिकट के बारे में भी जानकारी देने की सुविधा देने का भी प्रयास किया है। इस तरह उपग्रह से संबद्ध नेटवर्क और बेतार नेटवर्क के उपयोग से अब अनेक प्रकार की एकीकृत सेवा में प्रदान कर खुदरा बैंकिंग में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकते हैं।

डेबिट कार्ड/क्रेडिट कार्ड : वर्तमान में चलन मुद्रा के स्थान पर प्लास्टिक मुद्रा चलन में आ गई है। इसका प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। क्रेडिट कार्ड के अन्तर्गत एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत की गयी उधार खरीद का भुगतान एक निश्चित अवधि में करना चाहता है जबकि डेबिट कार्ड के अंतर्गत ग्राहक का खाता सीधे ही नामे हो जाता है।

खुदरा बैंकिंग में प्रदान की जाने वाली सेवाओं में मूल्य संवर्द्धित सेवाएं भी प्रदान करने की बैंकों द्वारा कोशिश की जा रही है जिससे इस बैंकिंग प्रतिस्पर्धा में बैंक अपने ग्राहकों को अपने पास रोक सकें।

वर्तमान समय में एवं अगले दशक में बैंकिंग उद्योग में पूरे विश्व में क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा। भारत इन परिवर्तनों से बच नहीं सकता है। खुदरा बैंकिंग सेवाओं को प्रदान कर बैंक वित्तीय बाजार के रूप में सामने आये हैं। बैंकों के इस सुपर रूप से गैर–बैंकिंग वित्तीय कंपनियों का कारोबार पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। बैंकों द्वारा प्रदान किये जाने वाले ऋणों में खुदरा बैंकिंग का ऋण बहुत तेजी से बढ़ रहा है।

खुदरा बैंकिंग वर्तमान बैंकिंग में महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं, परन्तु इसमें शामिल होने के लिए भी बैंकों को बहुत सावधानी बरतनी आवश्यक है। बैंकों को मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता पड़ सकती है। बैंकों की सम्पत्ति पक्ष की नेटवर्किंग अभी मजबूत नहीं है। इसमें बहुत अधिक सुरक्षा की आवश्यकता है। खुदरा ऋण की प्रवृत्ति अन्य बैंक ऋण की तुलना में अधिक जोखिमपूर्ण है। प्रारम्भ में उचित प्रतिफल नहीं प्राप्त होता है। प्रारम्भ में निवेश अधिक करना पड़ता है। धीरे–धीरे ग्राहकों की संख्या में वृद्धि होती है।

खुदरा बैंकिंग की सफलता के लिए आवश्यक है– साल के 365 दिन, दिन के चौबीसों घंटे, प्रत्येक समय, प्रत्येक स्थान, प्रत्येक व्यक्ति तक बैंक सेवाएं दें। इसके लिए बैंकों के पास इंटरनेट, मोबाइल, बैंकिंग, ए0टी0एम0 सुविधा हो। बैंकों को खुदरा बैंकिंग का विपणन ग्राहक तक पहुँच कर उसके घर, ऑफिस, प्रतिष्ठानों में सेवा प्रदान करनी होगी। यह काफी जोखिमपूर्ण एवं महंगा कार्य है, क्योंकि अभी बैंकों के पास ग्राहक जाते हैं। अब बैंक को ग्राहक के पास जाना पड़ेगा।

यह ध्यान रखना होगा कि खुदरा बैंकिंग विभिन्न प्रकार की सेवाएं एवं ऋण सुविधा प्रदान करने का विस्तृत क्षेत्र है। इसलिये हर बैंक को हर सेवाओं में उतरकर खुदरा बैंकिंग करने के बजाय खुदरा बैंकिंग की कुछ सेवाओं में कुछ विशिष्टता प्राप्त करनी चाहिए अर्थात् बाजार में विशिष्ट खुदरा बैंकिंग खण्ड की पहचान कर उसमें अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। उदाहरण स्वरूप कुछ बैंकों को भवन ऋण में विशिष्टता प्राप्त करनी चाहिए तो कुछ बैंकों को बीमा क्षेत्र में विशिष्टता तो कुछ को वाहन ऋण में अपनी पहचान बनानी चाहिए। इससे प्रतियोगिता कम होगी, कार्यों की लागत भी कम होगी और बैंकों की लाभप्रदता भी बढ़ेगी।

भारत में खुदरा बैंकिंग का भविष्य

खुदरा बैंकिंग चाहे वह ग्रामीण क्षेत्र में हो या शहरी क्षेत्र में, देश की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। इससे सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं के अंतर्गत ऋण प्रदान करके समाज के उत्थान में सहायता मिली है। नये रोजगारों का सृजन हुआ है और गरीबी दूर करने में यह सहायक हुई है। शहरी क्षेत्रों में सामान्य व्यक्ति को इससे आसानी से ऋण प्राप्त हो सका और उसकी दैनिक जरूरतें भी आसानी से पूरी हो सकीं। खुदरा बैंकिंग अगले दशक में और अधिक विकसित होगी और बैंक इसे अपनी कोर बैंकिंग के साथ शामिल करने लगेंगे। भविष्य में खुदरा बैंकिंग पूर्णतः सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित बन जायेगी।

उपसंहार

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के समय बैंकिंग में ऋण देने के लिए बाध्य किया जाता था लेकिन समय के साथ परिवर्तन और अर्थव्यवस्था के विकास से आज बैंक खुदरा बैंकिंग को स्वेच्छा से अपनाने लगे हैं। बैंक खुदरा बैंकिंग को एक लाभप्रद और कम एन0पी0ए0 या निम्न अनर्जक आस्तियों वाला बैंकिंग व्यवसाय मानने लगे हैं। खुदरा बैंकिंग में कारोबार बढ़ाने पर उसमें धोखाधड़ी की संभावनाएं भी बहुत बढ़ जायेंगी। अतः, बैंकों को खुदरा बैंकिंग के क्षेत्र में कारोबार बढ़ाने से होने वाले जोखिम का पूर्वानुमान लगाना होगा और उसके लिए उचित जोखिम प्रबंधन एवं लेखा परीक्षा की व्यवस्था भी करानी होगी। सूचना प्रौद्योगिकी का बड़ी मात्रा में उपयोग करने तथा ग्राहकों की आवश्यकतानुसार उत्पाद तैयार करने से खुदरा बैंकिंग लाभप्रद बन सकेगी और उससे सामाजिक विकास को भी गति मिलेगी। इसके सफल विपणन पर ही बैंक का लाभ निर्भर रहेगा। खुदरा बैंकिंग में कारोबार विस्तार के लिए बैंकों को अपने कर्मचारियों को विशेष प्रशिक्षण देना होगा। साथ ही, शाखा स्तर पर अपनी ग्राहक सेवा पर विशेष ध्यान देना होगा। आज सभी बैंकों के खुदरा बैंकिंग उत्पाद लगभग समान हैं। अंतर है तो केवल ग्राहक सेवा में तथा सेवाओं और उत्पादों के विपणन में। जो बैंक उच्च तकनीकी व कुशल ग्राहक सेवा के साथ अपने उत्पादों को ग्राहकों के समक्ष प्रस्तुत करने में सफल होंगे वही खुदरा बैंकिंग में सफल कारोबार कर सकेंगें।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय बैंकिंग : रूपान्तरण का प्रबंधन –सुरेश कुमार, पृ सं 72
2. भारतीय बैंकिंग : रूपान्तरण का प्रबंधन – श्रीमती रंजना कुमार, पृ सं 84
3. बैंकिंग कारोबार में मानवीय संबंध–डॉ0 संजीव प्रंचाडिया, पृ सं 63
4. खुदरा बैंकिंग : आवश्यकता, महत्व व विपणन नीतियाँ–अजय कुमार गुप्ता, पृ सं 53
5. खुदरा बैंकिंग : नई संभावनाओं का क्षितिज–संजय नाफड़े, पृ सं. 57
6. बैंक शाखा में खुदरा बैंकिंग कार्य योजना–चान्दमल तोशनीवाल, पृ सं 81
7. खुदरा बैंकिंग–डॉ0 नीरज गोयल, पृ सं. 46

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

उत्तराचंल की सामाजिक,सांस्कृतिक एवं राजनैतिक विवेचना

कुँ0 संदीप कुमार सिंह
शोध छात्र – समाजशास्त्र
711/2 ए0बी0नगर, उन्नाव, उ0प्र0

हिमालय भारत की संस्कृति,सभ्यता का प्रतीक है उसके हिमाच्छादित, चमचमाते हिमशिखर, उससे उपजी नदियाँ और दूर–दूर तक सर्वत्र फैले सुन्दर वन और वनों मे उपस्थित पूजा–साधना के देवालय। देवालयों में मधुर स्वर बिखेरती घाटियां एक अद्वितीय सुन्दरतायुक्त शान्ति के वातावरण का सृजन करती हैं। हरियाली फैलाने वाले इस राज्य में संस्कारों और संस्कृति को ऊर्जावान एवं श्रृद्धा से परिपूर्ण करने वाले त्योहारों का माहौल बारहों मास उपस्थित रहता है। वैसे तो उत्तरांचल में सभी धर्म और जातियाँ समान रूप से पुष्पित–पल्लवित हो रही है। किन्तु आज की भागमभाग की जीवनशैली ने उत्तराचंल को भी प्रभावित किया है। महाकवि कालीदास की कालजयी रचना मेधदूत के लिये प्रेरणा का श्रोत बने हिमालय की गोद में बसे इस राज्य में प्रसिद्ध कवि रविन्द्रनाथ ने अपनी प्रसिद्ध कृति गीतांजलि के कुछ अंशों की रचना नैनीताल स्थित रामगढ़ नामक स्थान पर की। आज यह स्थल टैगोर प्वाइन्ट के नाम से जाना जाता है। प्रसिद्ध कवियत्री महादेवी वर्मा का यह रूचिकर स्थल रहा। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को भी कौसानी, अल्मोड़ा की सुन्दरता प्रभावित करती थी। उन्होंने यहाँ के शान्ति सुरम्य वातावरण में अनाशक्ति योग नामक पुस्तक रची तथा सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा यहीं पर सृजित की गयी रचना, जिसे सर्वोच्च साहित्य सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। चिदम्बरा यही सृजित हुयी। अब बात करें वैदिक युगीन शैव और वैष्णवों के महापुराण और शैवों के शिवपुराण में शिव और विष्णु में अभेद बताया गया है। स्वयं भगवान विष्णु ने दक्ष यज्ञ के विध्वंस के बाद ब्रह्मा, विष्णु, महेश, में अभेद दृष्टि रखने की बात कही है।

संस्कृति – पहाड़ की स्त्रियों के गीत–संगीत वेदकाल के हैं और उनका स्वर बद्ध भाव आज भी उसी काल के जैसा है। यहाँ का लोकसाहित्य लिपिबद्धम मौखिक ज्यादा है। यहाँ के ग्रामीण जनमानस में इतिहास के कथानकों, लोकगीतों और लोककथाओं के माध्यम से मधुर स्वरों, लयों घटनाओं में सुख–दुख, हर्षोल्लास, व्यथा वेदना भरे उद्गारों को मानकर सम्बद्ध समुदाय विशेष या संस्कृति का प्रतिनिधित्व प्रदान किया है। यह गीत–संगीत मानव जीवन के सर्वभौम–सत्यों तथ्यों पर आधारित होते हैं। जिन्हें चिर प्राचीन होते हुये भी चिर–नवीन कहा जा सकता है। प्रकृति के असीम आशीष स्नेह से सृजित यह राज्य भारत की सांस्कृतिक धरोहर है। तथ्यगत हैं कि राज्य के नागपुर नामक स्थान में उपस्थित मंदिरों में उपस्थित पुरातन समय में स्थापित बौद्ध प्रतिमाओं से ज्ञात होता है कि आदिगुरू शंकराचार्य के आने से पहले यहां के लोग बौद्ध धर्म के उपासक थे। नागपुर क्षेत्र गढ़वाल जनपद का एक परगना है। इस क्षेत्र विशेष में स्थित मंदिरों में अधिकांश बुद्ध प्रतिमाओं को शंकर मानकर पूजित किया जाता है। इन मंदिरों की बुद्ध प्रतिमायें यह दर्शाती हैं कि यह क्षेत्र बौद्धमय भी था। (सन्दर्भ– आर्यों का मूल स्थान, मध्य हिमालय भजन सिंह, 1986)

यहाँ के लोगों को अपने 'खस' लिखने या बताने में किसी प्रकार का संकोच नही है। परन्तु धीरे–धीरे कनकपाल के साथ हिन्दूजातियों ने यहाँ के लोगों से विशेषकर जो कि आर्थिक और समाजिक दृष्टि से संम्पन्न थे। विवाह संम्बंन्ध स्थापित करना शुरू कर दिये जिससे ये लोग उनकी जाति संरचना में प्रवेश कर गये। तारादत्त गरोला ने सन् 1922 में एक लेख लिखा जिसके अनुसार–''यहाँ की जाति व्यवस्था में ब्राह्मण जाति पद

सोपान में सर्वोच्च नही था, बल्कि ब्राह्मणों और राजपूतों में एक वर्ग जिसे राजनीतिक व्यवस्था में उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा व सम्मान प्राप्त था। जाति संरचना में शिखर पर था। "जाति व्यवस्था पद सोपान में यहाँ के आदिम समूहों जिसमें कोल–भील और किरात के वंशज आते थे उन्हें शूद्रों की श्रेणी में रखा गया था। गढ़वाल एवं कुमाऊँ में यह त्रिस्तरीय सामाजिक व्यवस्था आज भी विद्यमान है। इसमें वैश्य समुदाय उपस्थित नहीं है जबकि प्रारम्भ में 'खस' जातिरहित लोग थे। परन्तु जाति व्यवस्था ने स्थानीय भाषा एवं संस्कृति में 'ठुलजात' अर्थात सवर्ण और छोटी जाति अर्थात 'शूद्र' जैसी संरचना को पिरोहित कर दिया।

जाति : इस व्यवस्था समाजिक विरोध समय समय पर सामाजिक आंदोलनों के रूप में होता रहा है। जैसे–कुली, बेगार आांदोलन, नायक ,समाज सुधार आंदोलन, और अछूतोद्धार आंदोलन तथा डोला पलकी आंदोलन भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक आंदोलन था। परन्तु महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यहाँ उच्च जाति के लोग आस–पास निवास करने वाली निम्न जातियों के व्यक्तियों के साथ रिश्तेदारी–नातेदारी की संरचना में प्रयुक्त संबोधनों का ही प्रयोग करते थे। जैसे–उच्चजातियों के बच्चे इन निम्न जातियों के व्यक्तियों को काका, मामा, मौसी, काकी कहकर पुकारते थे। पर्वतीय समाज में स्त्रियों को आर्थिक सम्पदा इकोनामिक एसेएट का स्थान प्राप्त है। लड़की का पिता अपनी इस संम्पति को वर–पक्ष को सौपकर बदले में वधूमूल्य प्राप्त करता था। इसी प्रकार कि अनेक प्रथाएँ 20वीं शताब्दी के पूर्वाहन तक ही प्रचलन में बनी रह पायीं जैसे– खसों में पायी जाने वाली 'टेकवा' प्रथा। एल0 डी0 जोशी 1933 ने अपनी पुस्तक 'खस' फैमिली लॉ में लिखा है कि "महिलाएँ अपने पति की मृत्यु के पश्चात देवर से विवाह कर लेती थीं और यदि देवर न हो तो वह गाँव के किसी भी व्यक्ति को 'टेकवा' सहारा बना लेती थीं।"

राजनैतिक अस्त्तिव में उत्तरांचल सन् 1990 ई0 में जनता दल की सरकार केन्द्र में सत्तारूढ़ थी जिसके मुखिया एच0डी0 देवगौड़ा ने पृथक उत्तरांचल राज्य के निर्माण करने की घोषणा 15 अगस्त 1996 ई0 में लालकिले से की। परिणामस्वरूप 1998ई0 में राष्ट्रपति के माध्यम से राज्य संबंधी विधेयक उत्तर प्रदेश विधानसभा को भेजा गया। तत्पश्चात पृथक राज्य निर्माण हेतु कई बार बंद, हड़ताल का आयोजन किया गया। 27 जु0 2000 ई0 को उत्तर प्रदेश पुनर्गठन विधेयक 2000 ई0 लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। जिसे 01 अगस्त को पारित कर दिया गया। इस प्रकार उत्तरांचल की जनता के भागीरथी प्रयासों से 09 नव0 2000ई0 को पर्वतवासियों के सपनों का राज्य उत्तरांचल अस्त्तिव में आया। उत्तरांचल राज्य तो निर्मित हुआ। परन्तु वर्तमान में जिस प्रकार का राजनीतिक भाई–भतीजावाद, भ्रष्टाचार, माफियावाद यहाँ उभरा है उसे देखते हुये आम–जन त्रस्त ही है। सत्ता में ऐसे व्यक्तियों का बहुमत है जो पूर्व में माफिया या भ्रष्ट रहे हैं। उनसे राज्य के हित की कल्पना भी स्वप्न ही होगा। जबकि विद्वानों एवं राष्ट्रभक्तों की बहुत बड़ी संख्या यहाँ उपस्थित है। 01 अप्रैल 2001 से विशेष राज्य का दर्जा हासिल करके यह प्रदेश देश का 11वां विशेष राज्य बना है। गाडगिल फामूर्ले पर आधारित सभी राज्य केन्द्र की विशेष सहायता प्राप्त करते हैं। तथा श्रेणी में भी लाभ हासिल करते हैं। इस राज्य को अवसरवादी राजनेताओं से पृथक करना आवश्यक हो गया है वरना यह शिशु राज्य माफियाओं, भ्रष्ट नौकरशाहों, भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की आरामगाह बन जायेगा। जिस उद्देश्य की प्राप्त के लिये राज्य का निर्माण हुआ। वह उद्देश्य नेपथ्य में डाल दिया गया। आज इस राज्य की सबसे आवश्यकता रोजगार सृजन की है। यही वह मूल है जिसके लिऐ उत्तराखण्डी जनता सड़कों पर आंदोलनरत हो गयी थी। लेकिन राज्य के नीति निर्धारकों ने इसे भुला दिया। उन्होंने इस राज्य में उद्योग–धंधों को स्थापित करने की योजना तो बना डाली तथा उद्योगपतियों को राज्य में उद्योग लगाने हेतु अनेक प्रलोभन भी दिये, भारी अनुदान, करों में राहत भी प्रदान की परन्तु यहां के बेरोजगारों की उपेक्षा की गयी। रोजगार माँगने पर उन पर दमनात्मक कार्यवाहियाँ होती हैं। युवा सड़कों पर धरना देने को मजबूर है। सरकारें उद्योग धन्धों की स्थापना पर झूठी वाह–वाही लूट रही है। पर राज्य की जनता का हित

होता नजर नही आता। परन्तु अवसरवादी नेताओं का हित जग जाहिर होता जा रहा है। जो लोग कभी ग्राम प्रधान एवं ब्लाक प्रमुख तक ही अपने धन बल से पहुँचे या पहुँचने के स्वप्न देखते थे। आज राज्य के नीति–निर्माता बने हैं। ऐसे में प्रत्येक उत्तरांचल निवासी का कर्तव्य है कि वह जाति, धर्म एवं क्षेत्रीयता से परे रहे। सुदृढ़–समृद्ध उत्तरांचल कि अपनी कल्पना को सकार करने का प्रत्येक स्तर पर प्रयास करे यही उत्तरांचल निर्माण आंदोलन के शहीदों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। राज्य के राजधानी के नाम पर राजनीति करने में भी अवसरवादी राजनेता पीछे नहीं हैं। धन–बल एवं भुजबल से बने राजनेता, भू–माफिया,वन–माफिया, शराब–माफिया, रेताबजारी माफिया थे, सब नौकरशाहों पर भारी पड़ते नजर आते है। और यदि यह सब ऐसे ही प्रभावी एंव सक्रिय रहे तो निश्चित ही है यह राज्य कुछ दशकों में असम जैसे राज्य की राह–चल पड़ेगा। तथा यह कोई आश्चर्य की बात न होगी। पृथक राज्य के रूप में अपना पृथक राजनैतिक महत्व देश की राजनीति में स्थापित करने का स्वप्न स्वाभाविक रूप गढ़ेगा यह एक यक्ष प्रश्न है। राज्य के बिजली उत्पाद के लिए कई महत्वाकांक्षी योजनाओं के क्रियान्वयन के बाद भी उत्तरांचल बिजली को तरस रहा है। आज राज्य सरकार अरबों रू0 की बिजली खरीद रही है। नई परियोजनाएँ न जुड़ने कि वजह से राज्य में बिजली का उत्पाद स्तर कम हो गया है। जबकि मांग बढ़ती ही जा रही है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. द हिमालय डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स : एटकिन्सन 1882–86
2. गढ़वाल का इतिहास : हरिकृष्ण रतूड़ी, 1928
3. हिमालयन फोकलोर : तारादत्त गैरोला/ओकले1935
4. हिमालय की यात्रा : काका साहब कालेलकर,1948
5. हिमालय परिचय–गढ़वाल : राहुल सांकृत्यायन,1953
6. कुमाऊँ : राहुल साकृत्यायन,1959, पृ0 38
7. आर्यों का मूल स्थान मध्य हिमालय : भजन सिंह, 1986
8. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग 21 : डा0 शिवप्रसाद डबराल
9. खस फेमिली लॉ : एल0 डी0 जोशी,1933
10. सोशल स्टेटीफिकेशन इन रूरल कुमाऊँ : रामीदत्त सनकाल 1976
11. उत्तराचल उदय (अमर उजाला विशेषांक) देहरादून उत्तराखंड की जनजातियाँ, पृ0 120–21 : प्रो0 भगवान बिष्ठ
12. डा0 डी0 एन0 भटकोटी सियासत के दस साल, पृ0 54–55
13. डा0 प्रीतम सिंह नेगी गढ़वाल और कुमाऊँ की भौगोलिक स्थिति, पृ0 51–52
14. उत्तराखंड इयर बुक 2011, विनसर पब्लिकेशन कम्पनी देहरादून।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदम : एक संक्षिप्त दृष्टि

पी0पी0 यादव
पुस्तकालयाध्यक्ष
राजकीय महाविद्यालय, अकबरपुर, कानपुर देहात, उत्तर प्रदेश

सूचना प्रौद्योगिकी का आशय यह है कि सूचना तैयार करने, एकत्रित करने, प्रक्रिया करने, संग्रहण करने और प्रदान करने से है। सूचना संचार प्रौद्योगिकी एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया विश्व का सबसे बड़ा उद्योग बनता जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के आधार स्तम्भ टेलीवीजन, कम्प्यूटर और इंटरनेट हैं।

संसाधनों का आवंटन इस प्रकार से होना चाहिए कि सही धनराशि, सही समय पर, सही तरीके से, सही लोगों को, सही क्षेत्रों में आसानी से पहुँच सके। यह सब सूचना प्रौद्योगिकी से ही सम्भव है। देश की 75 प्रतिशत जनसंख्या गाँव में निवास करती है। इसलिये सही मायने गाँवों का विकास ही देश का विकास होगा।

सूचना प्रौद्योगिकी के अभूतपूर्व विकास ने सम्पूर्ण विश्व को वैश्विक गाँव (Global Village) के रूप में बदल दिया है। इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों का उपयोग करके शासन को सरल, पारदर्शी, संवेदनशील, उत्तरदायी, जवाबदेही और नैतिकतापूर्ण बनाया जा सकता है।

सम्पूर्ण भारत के विकास के लिये कम्प्यूटर जनित सूचना प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है। जो सरकार के विकास कार्यक्रमों, योजनाओं, परियोजनाओं का लाभ शत प्रतिशत रूप में समाज के सबसे नीचे बैठे व्यक्ति को आसानी से मिल सके।

सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से भूमि सम्बन्धी दस्तावेज, प्रमाण पत्र (जैसे खतौनी, मूल निवास, आय, जाति) शीघ्र न्यूनतम लागत में उपलब्ध हो रहे हैं। जहाँ सूचनायें इलेक्ट्रॉनिक विधि से उपलब्ध करायी जाती हैं। वहाँ बिचौलियों का महत्व कम हो जाता है। किसान एक ही स्थान पर बैठ कर देशभर की मण्डियों के भाव जान सकता है और अपनी फसलों का सही एवं उचित मूल्य प्राप्त कर सकता है। ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों की जानकारी इन्टरनेट के माध्यम से आसानी से प्राप्त की जा सकती है। राजीव गाँधी ने कहा था कि ''केन्द्र सरकार द्वारा जारी किये गये 1 रूपये में केवल 15 पैसे ही गाँवों तक पहुँच पाते है। शेष धनराशि बीच में ही गायब हो जाती है।'' सूचना प्रौद्योगिकी से बिचौलियों का महत्व कम हुआ है।

आज टेलीवीजन, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से बड़े–बड़े घोटाले सामने आ रहे हैं। जिससे पारदर्शिता, स्पष्टता, जवाबदेयता में लगातार वृद्धि हो रही है। कम्प्यूटर में संग्रहित आंकड़े शीघ्रता से प्राप्त हो जाते हैं। विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं तथा ताजा स्थिति की जानकारी इन्टरनेट के माध्यम से आसानी से प्राप्त हो जाती है।

सम्पूर्ण भारत में ''सूचना का अधिकार अधिनियम 2005'' लागू हो गया है। इसके अन्तर्गत कोई भी सूचना प्राप्त की जा सकती है। प्रत्येक विभाग/संस्थान में इस हेतु जन सूचना अधिकारी एवं एक सहायक जन सूचना अधिकारी नियुक्त किये गये हैं। सूचना से सम्बन्धित प्रार्थना–पत्र तथा उनके जवाब इत्यादि की जिम्मेदारी इन्हीं अधिकारियों की रहती है। हम सूचना संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से इन अधिकारियों

से सूचनायें प्राप्त कर सकते हैं। ''सूचना का अधिकार अधिनियम 2005'' ग्रामीण विकास के लिये एक वरदान साबित हो रहा है।

कम्प्यूटर के टच स्क्रीन पर छूते ही अनेक प्रकार की जानकारी शीघ्रता से प्राप्त होती है। जैसे ए0टी0एम0 से रूपया निकालना, बसों एवं रेलवे की आरक्षण स्थिति जानना इत्यादि। दूर दराज गाँवों में रह रहे लोग विभिन्न परीक्षाओं के लिये आनलाइन आवेदन दे सकते हैं। परीक्षा दे सकते हैं, और परिणाम जान सकते हैं। इससे विभिन्न प्रकार की कागजी कार्यवाही से मुक्ति मिलती है। समय तथा धन की बचत होती है। इन्टरनेट के माध्यम से कृषि से सम्बन्धित नई–नई तनकीकों, देश विदेशों में हो रहे अनुसंधानों, खोजों की जानकारी करके उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। कई बीज एवं खाद्य बनाने वाली कम्पनियों ने इन्टरनेट के माध्यम से सूचना केन्द्र खोले हैं। इसके जरिये किसान एवं उत्पादक कम्पनियों के बीच एक रिश्ता बन गया है। अच्छी किस्म के बीज एवं खाद्य आसानी से उपलब्ध हो रहे हैं। यू0जी0सी0 ने देश के दूरस्थ क्षेत्रों में उपग्रह आधरित प्रसारण द्वारा कक्षाओं का संचालन आरम्भ किया है। इग्नू आज अपने शैक्षणिक चैनल ''ज्ञान दर्शन'' का सफलता पूर्वक प्रसारण कर रहा है। कोई भी व्यक्ति इन्टरनेट के माध्यम से कृषि सम्बन्धी जानकारी एवं मौसम सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर सकता है। जिससे मौसम के अनुसार फसल बो सकता है। ई–मेल के जरिये विभिन्न प्रकार के आर्डर दे सकते हैं और जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

भारत में साक्षरता का प्रतिशत आज भी कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता का प्रतिशत और भी कम है। आज सरकार द्वारा समाज को औद्योगिक युग से सूचना युग तक पहुँचाने हेतु विशेष कदम उठाये जा रहे हैं और चारों ओर सूचना संचार प्रौद्योगिकी का युग है और देश के विकास में इसका बड़ा योगदान है।

योजना आयोग का एक विभाग राष्ट्रीय सूचना केन्द्र (नेशनल इन्फारमेशन सेन्टर) देश के हर जिले को उपग्रह आधारित कम्प्यूटर नेटवर्क से जोड़ने का प्रयास कर रहा है। जो संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मन्त्रालय के अन्तर्गत कार्य कर रहा है। आज जिस गति से सूचना संचार प्रणाली का विकास दिन–प्रतिदिन हो रहा है। वह दिन दूर नही होगा जब गाँव–गाँव में लोग सूचना एवं संचार क्रान्ति का लाभ प्राप्त करने लगेंगे। इस दिशा में राष्ट्रीय सूचना केन्द्र का कार्य सन्तोषजनक स्थिति में है। इस केन्द्र ने भारत के हर जिले को केन्द्रीय सूचना नेटवर्क से जोड़ दिया है। इसी के फलस्वरूप पिछले चुनाव के परिणाम एक–दो दिन में आ गये थे।

देश के लगभग 75 प्रतिशत क्षेत्र में दूरदर्शन प्रसारण की पहुँच हो चुकी है। जो देश की लगभग 90 प्रतिशत आबादी तक पहुँच रहा है। वर्तमान समय में सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित काल सेन्टर का व्यवसाय दिन प्रतिदिन फल–फूल रहा है। अब तक भारत में लगभग 75 से अधिक काल सेन्टर स्थापित हो चुके है।

इन्टरनेट एण्ड मोबाइल एसोशिएशन ऑफ इण्डिया (आई0ए0एम0ए0आई0) और इंडियन मार्केट रिसर्च ब्यूरो (आई0एम0आर0बी0) के संयुक्त अध्ययन के अनुसार इस वर्ष ग्रामीण इलाकों में इन्टरनेट का सक्रिय रूप से इस्तेमाल करने वाले लोगों की संख्या 30 प्रतिशत बढ़कर लगभग 54 लाख हो जायेगी। वर्श 2008 तक यह संख्या लगभग 33 लाख थी। सक्रिय इन्टरनेट इस्तेमालकर्ता से आशय ऐसे लोगों से है, जो 30 दिन में कम से कम एक बार इन्टरनेट का इस्तेमाल करते हैं। अध्ययन के अनुसार 67 प्रतिशत ग्रामीण इन्टरनेट का इस्तेमाल म्यूजिक एव वीडियो के लिये, 48 प्रतिशत शिक्षा के लिये, 42 प्रतिशत सामान्य सूचना के लिये करते हैं। रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि इन्टरनेट का इस्तेमाल लगभग 13

प्रतिशत लोग खेती की नई तकनीकी की जानकारी के लिये, 8 प्रतिशत लोग उर्वरकों एवं कीट नाशकों की जानकारी के लिये करते हैं। इन्टरनेट किशोरों को अवसाद से निपटने में मदद कर सकता है।

वर्ष 2012 तक देशभर की 2.50 लाख पंचायतों को ब्रॉडबैण्ड से जोड़ने का लक्ष्य रहा था दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता एवं बंगलूर जैसे शहरों में अभी प्रति 100 व्यक्तियों पर लगभग 120 से 124 प्रतिशत फोन कनेक्शन हैं। ग्रामीण क्षेत्र में यह औसत लगभग 24 प्रतिशत है। साइबर क्राइम रोकने के लिये कदम उठाये जा रहे हैं। मोबाइल फोन को बहु उपयोगी बनाने के लिये देश के करीब 22 भाषाओं में संदेश देने के लिये साफ्टवेयर लगाये जा रहे हैं। वर्तमान में 8 से 9 प्रतिशत लोग ही इन्टरनेट का प्रयोग कर रहे हैं। जब 40 से 50 प्रतिशत लोग इन्टरनेट का प्रयोग करेंगे। तो देश की तस्वीर बदल जायेगी। यह हमें ही नहीं हम सभी देशवासियों को पूर्ण विश्वास है कि ''हम होंगे कामयाब एक दिन''।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. महाजन, संजीव : ग्रामीण समाजशास्त्र, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. चौधरी, सी0एम0 : ग्रामीण विकास : एक अध्ययन, सबलाइम पब्लिकेशन, जयपुर।
3. विभिन्न पत्रिकायें/समाचार पत्र।
4. 09 सितम्बर 2010 अमर उजाला कानपुर से प्रकाशित सूचनायें।
5. 12 सितम्बर 2010 दैनिक जागरण, कानपुर से प्रकाशित सूचनायें।
6. मदन जी0आर0 एवं अग्रवाल अमित : परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
7. अग्रवाल, अमितः भारत में ग्रामीण समाज, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

अतीत एवं वर्तमान आईने में महिला सशक्तिकरण के बदलते परिदृश्य

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
उ.प्र.वि.उ.डा.श.मि.विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय समाज में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक मानदण्डों के मध्य स्त्री की स्थिति निचले पायदान पर रही है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की यदि हम बात करें तो वैदिक कालीन नारी पुरूष की सहधर्मिणी थी। पुरूष के समस्त कार्यों में नारी का महत्वपूर्ण योगदान था। पत्नी के रूप में उसका उच्च स्थान था। उस काल में नारियाँ ब्रह्मवादिनी तक होती थीं। ''जहाँ नारियों का सत्कार होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ इनका अनादर होता है, वहाँ सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। जिस कुल में ये शोकग्रस्त रहती हैं, वह कुल नष्ट हो जाता है, पर जहाँ इन्हें कष्ट शोक नहीं होता वह कुल बढ़ता जाता है।'' रामायण और महाभारत काल में नारी शक्ति, सम्मान, श्रद्धा, प्रेम, त्याग, सौन्दर्य आदि विविध गुणों की प्रतीक थीं। तत्कालीन समय में बाह्मणवाद का प्रभाव भारतीय समाज व्यवस्था पर होने के कारण सत्ता, सम्पत्ति और समाज पर आधिपत्य बनाए रखने के लिए वेद, ग्रंथों, स्मृतियों तथा शास्त्रों की रचना की गई, जिसमें शूद्रों तथा महिलाओं को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्तर पर गुलाम बना दिया गया है। वेदग्रंथ, मनुस्मृति, रामायण और महाभारत के हवाले से हम कह सकते हैं कि स्त्री को कभी अग्नि परीक्षा देनी पड़ी, कभी उसे जुएं में हार दिया गया, भरे दरबार में अपमानित किया गया, पाँच पतियों को वह संतुष्ट करती रही, उसे नरक का द्वार कहा गया, वह बुद्धिहीन है, वह परावलम्बी है–पिता, पति और पुत्र ही उसका सहारा हैं आदि आदि। वस्तु से बढ़कर उसे कुछ नहीं माना गया। सारे अधिकारों से वंचित रखा गया, उसे तलाक का अधिकार नहीं है, वह स्वयं निर्णय नहीं ले सकती है, उसका धर्म पति धर्म एवं सति धर्म होना चाहिए अर्थात् सांस्कृतिक एवं सामाजिक संरचना इस प्रकार की बनाई गई कि स्त्री निरंतर हाशिए पर ढकेल दी जाने लगी। गुलाम बनने की प्रवृत्ति इतनी अधिक रही कि लाख परिवेश के बदलने के बावजूद इस मानसिकता से पूर्णतः छुटकारा वह नहीं कर पाती है। उसे गुलाम जीवन की आदत पड़ गई फलस्वरूप उसी में जन्मा, जीवन जिया और मरी भी गुलामी में ही।

वेद रचयिता बह्मा ने अथर्ववेद में इस बात को स्वीकार किया है कि इस ब्रह्माण्ड में नारी का महत्व अक्षुण्ण है। वह मानव समाज की आधार–शिला और सामाजिक विकास का मूल स्रोत है। प्रत्येक क्षेत्र की पूरक शक्ति नारी नर की एकात्मकता का बोध करवाती है क्योंकि अर्द्धनारीश्वर के स्वरूप की कल्पना एवं अनुभूति भी नर–नारी के ऐक्य को ही प्रकट करती है। नारी के बिना समाज और संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती और वही समाज एवं संस्कृति उच्चता के शिखरों को छूते हैं जिसमें नारी को गौरवपूर्ण स्थान मिला हो। समाज में नारी के महत्व के विषय में टॉमस मूर लिखते हैं, ''स्त्री रात का तारा और प्रभात का हीरा है। वह तो ओंस का कण है जिससे कांटों का मुख भी हीरों से भर जाता है।'' पर समाज तथा संस्कृति की उच्चता का बोध केवल साहित्य के माध्यम से हो सकता है और साहित्य द्वारा ही नारी सामाजिक उच्चता का मापदण्ड बनती है। परिवेश का सत्य ही साहित्य में प्रतिफलित होता है और परिवेश ही नारी की स्थिति पर प्रकाश डालता है जो साहित्य

के माध्यम से दृष्टिगोचर होता है।

स्वतंत्रता पूर्व अठारहवीं शताब्दी में धार्मिक आडम्बर, रूढ़िगत विचार, परम्परागत सामाजिक संस्कारों ने मिलकर अंधकार का ऐसा परिवेश भारतीय जीवन के चारों ओर निर्मित कर दिया था कि उसे तोड़ सकना सहज एवं संभव नहीं था तो इस बर्बर युग में नारी उद्धार के लिए प्रार्थना–समाज, ब्रह्म समाज, आर्य समाज तथा थियासॉफिकल सोसायटी का निर्माण हुआ और राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द तथा दयानन्द सरस्वती के प्रयासों से यह ताना–बाना विशृंखल हुआ। इन सबने निरन्तर नारी की वकालत की तथा अनेक अत्याचारों को समाप्त कर स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध किया तथा शिक्षा में शुद्ध भारतीय प्रणाली पर बल दिया। लंबे समय से भारत में विदेशी राज्य होने के कारण असहयोग आन्दोलन तथा भारत छोड़ो आन्दोलन चले पर यह आन्दोलन नारी सहयोग बिना सफल नहीं हो सकते थे। नारी को आगे लाने के लिए नेताओं के प्रयासों के साथ–साथ कवियों ने काव्य के माध्यम से नारी का आह्वान किया।

स्त्री को 'देवी' बनाकर उसके आस–पास एक जाल बना दिया जाता है, जिसमें वह जकड़कर रह जाती है और इस बंधन में बंधी वह मात्र दूसरों पर दृष्टिपात करती रहती है न तो अपने को देख पाती है और न अपनी स्थिति को, और न यह पुरूष प्रधान समाज इस 'देवी' की जयजयकार के अतिरिक्त कुछ नहीं करता। वह उसे देवी ही रखना चाहता है क्योंकि अगर वह देवी से 'औरत' बन गई तो पुरूष प्रधान समाज का अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा। लोपामुद्रा, गार्गी की परम्परा का निर्वाह करने वाली स्त्री आज मात्र एक वस्तु बनकर रह गई है। पुरूष स्वतंत्रता के नाम पर उसके आचरण में स्वच्छंदता भरकर उसे लूट रहा है। शास्त्रार्थ करने वाली विदुषियाँ ,राज सत्ता को चलाने वाली नेत्रियाँ आसमान की ऊँचाइयों को छूने वाली नारी की सोच को बदलकर रख दिया है। इस पूंजीवादी सभ्यता ने आज के आधुनिक दौर में स्त्री की सोच का रूख उसके बाहरी सौन्दर्य की ओर कर दिया है।

नारी जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि वह पुरूष के लिए मात्र भोग्या रही है। अच्छी पत्नी में क्या गुण होने चाहिए उसके बारे में बहुत लिखा गया और बहुत चर्चा हुई। लेकिन एक अच्छे पति के क्या गुण होने चाहिए उसके पन्ने कोरे ही हैं। शास्त्र भी यही मानकर चलता है कि पुरूष होना ही उसका सबसे बड़ा गुण है और स्त्री होना अपने आपमें एक पाप है। इसी कुंठा में जीने वाली स्त्री और उसे कुंठित करने वाला यह पुरूष समाज उसे एक साधन मात्र से ज्यादा कुछ नहीं समझता। 'पुरूष ने स्त्री के खून में यह भावना संस्कार की तरह कूट–कूटकर भर दी है कि वह सिर्फ शरीर है। वह शरीर के सिवा उसकी किसी पहचान से इनकार करता है और उसके लिए सुमुखी, पयोधरा, क्षीण–कीट, बिल्वस्तनी, सुभगा, भगवती है।' और उसकी स्वतंत्रता तो शायद उसके पुरूषत्व पर एक चोट है। अपनी ही स्वतंत्रता के लिए लड़ना हर नारी के बस की बात नहीं है।

'हिन्दू समाज उस बहुमंजिला इमारत की तरह है जिसमें प्रवेश के दरवाजे बंद हैं तथा जो व्यक्ति जिस मंजिल पर जन्म लेता है उसे उसी में मरना होता है।' बाबा साहब अम्बेडकर के इस कथन को दलित स्त्री के संदर्भ में देखा जा सकता है। दलित स्त्री का संघर्ष वर्णवादी व्यवस्था भी है, लिंग भेद और जाति भेद के कारण उस पर अत्याचार की मार पड़ी है। सम्भवतया इसीलिए बाबा साहब की मान्यता थी कि सामाजिक क्रांति में नारी को भी पुरूष वर्ग का सहयोगी बनना चाहिए। इस प्रकार ''दलित अस्मिता विमर्श ने अपना शुरूआती घोषणा पत्र पेश किया तो उसमें तमाम छोटे बड़े मुक्ति संग्राम अन्तर्मुक्त होते दिखे, यह उम्मीद भी बंधी कि ब्राह्मणवाद को जो पितृसत्तात्मक रूप है और उसमें स्त्री दमन की जो तमाम तरकीबें हैं उसका अन्त होगा और नई समाज व्यवस्था, शोषण रहित, समतामूलक और अधिक मानवीय होंगी।'' दलित मनुवादी सोच को नकारते हैं, मगर

स्त्री प्रश्न पर वे मौन हैं। अधिकांश कथाकारों ने माना है कि छुआछूत मानने वाला सवर्ण पुरूष जो दिन के उजाले में दलितों का छुआ पानी भी नहीं पीता, दलित स्त्री के शरीर को हथियाने में कोई गुरेज नहीं करता। हिन्दू वर्ण व्यवस्था के कारण दलित स्त्री पर अत्याचार हुए हैं, इनके कारण दलित स्त्री ने जो कुछ सहा है उसकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति बाकी है।

आधुनिक काल में विज्ञानसम्मत सोच और सामाजिक चेतना ने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया है जिसे ग्रहण कर स्त्री की भूमिका में ऐसा वैविध्य आया जिसने उसे एक सामान्य नागरिक की हैसियत प्रदान की। अपनी कर्तव्य प्रधान भूमिकाओं के अलावा उसे कई संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त हुए। बाजार और तकनीक ने महिलाओं के लिए प्रतिभा प्रदर्शन के अनेक द्वार खोल दिये हैं। महिलाएँ अब सिर्फ टीचर, टाइपिस्ट या रिसेप्शनिस्ट ही नहीं हैं वे अनेक छवियों में अपनी भूमिकाएँ निभा रही हैं टेलीविजन विभिन्न चैनलों के माध्यम से एक ऐसे जादुई बक्से में बदल गया है जो बटन दबाते ही अनन्त असम्भव दृश्यों को भी एक सेकेन्ड में सम्भव बना रहा है। इन दृश्यों में बोलती, गाती, खेलती, नाचती, रिझाती हुयी स्त्री कहीं एंकरिंग कर रही है तो कहीं टेनिस खेल रही हैं तो कहीं रिमिक्स को सुर देती थिरकती–आकर्षक और मोहक है तो कहीं लुभावनी और मादक है। स्त्री बाजार में अनन्त छवियों में उपलब्ध है। उसके चुम्बकीय व्यक्तित्व की धुरी पर पूरा का पूरा पुरुष–ग्लोबल–समाज परिक्रमा करता सा नजर आ रहा है। स्त्री की इस स्क्रीनी–छवि को पुरूष जब भी छूना चाहता है वह उसे अनछुई और जादुई लगती है क्योंकि वह उसे पकड़ नहीं पाता। वह स्त्री जो दृश्य में थी रिमोट के उस एक बटन के साथ ही गायक भी हो जाती है, जिससे वह प्रकट हुई थी। दरअसल उसकी इस छवि को सुनियोजित ढंग से कल्पना और तकनीक के सहारे उन कुशल हाथों ने गढ़ा है जो बाजार की जरूरतों से संचालित होते हैं। बाजार ने स्त्री की इस स्क्रीनी–छवि को ग्लोबल कर दिया है। फिर इन्टरनेट ने टीवी चैनलों की स्पर्धा को और भी बढ़ा दिया है। इधर बाजार इस कदर हावी है कि गरीब से गरीब व्यक्ति की सामान्य आवश्यकताओं में भी टी.वी. शामिल है जो उपभोग की पूरी संस्कृति को परोस रहा है।

प्रगति के इस दौर में कई उतार–चढ़ाव आए, लेकिन समाज ने इस मार्ग की गहरी खाइयों में स्त्री के अस्तित्व को दफन कर दिया है। कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, सानिया मिर्जा, पी. टी. ऊषा जैसी कई स्त्रियों की चर्चा करते समय गर्व से भले ही हम अपना सिर ऊँचा कर लेते हैं। अगर एक किरण अपने पति को जिंदा जला दे तो जगमोहन मुंदड़ा उस पर फिल्म बना देते हैं और हम सभी मिलकर स्त्री सशक्तिकरण का ढोल पीटने लगते हैं। लेकिन क्या वर्तमान में भी स्त्री की इज्जत उसकी सबसे बड़ी पूंजी है, स्त्री अबला है, जैसे शब्द जाल से निकल पाए हैं ? और इन्हीं संबंधों की जंजीरों में जकड़ी नारी इन्हें तोड़ती है तो वह कुलटा बन जाती है ?

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हंस – दिसम्बर 1996
2. प्रतियोगिता दर्पण – सितम्बर, 2008
3. प्रतियोगिता दर्पण – सितम्बर, 2008
4. द्विवेदी, राकेश (2003): "महिला सशक्तिकरण –चुनौतियाँ और रणनीतियाँ", पूर्वाशा प्रकाशन, भोपाल।
5. सिंह, पल्लवी (2008):"सामाजिक विकास और नारी सशक्तिकरण आन्वीक्षिकी", मनीषा प्रकाशन, वाराणसी ।
6. डॉ0 गुप्ता, बी0के0 (2005): महिला सशक्तिकरण का यथार्थ, प्रतियोगिता दर्पण (दिसम्बर) ।
7. सारस्वत, स्वप्निल (2005): महिला विकास, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली ।

8. श्रीमती सुधारानी श्रीवास्तव : भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति ।
9. डॉ0 हरिदास रामजी शेण्डे 'सुदर्शन': "नारी सशक्तिकरण" ।
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास–आदिकाल सं. डॉ0 नगेन्द्र,
11. हिन्दूनारीः कार्यशीलता के बदलते आयाम,
12. 21वीं सदी–नारी सदी, श्रीराम शर्मा आचार्य
13. स्त्री के लिये जगह, सं. राजकिशोर
14. बन्द गलियों के विरुद्ध, मृणाल पाण्डे
15. अग्रवाल जे.सी.–समाज में नारी का स्थान तथा शिक्षा–प्रकाशक विद्या विहार, नई दिल्ली
16. भारत में महिला सशक्तिकरण के उभरते अभिनव परिदृश्य–सम्पादक, डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, अल्फा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
17. योजना मार्च 2008
18. कुरुक्षेत्र पृष्ठ 54, अंक 5, मार्च 2008
19. नारी व समाज–चन्द्र मोहन अग्रवाल
20. योजना अक्टूबर, 2006
21. मिश्र डॉ0 भरत –1857 की क्रान्ति और उसके प्रमुख क्रान्तिकारी –राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2001.
22. धवन, एम0एल0 –भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतन्त्रता संघर्ष –अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2003.
23. ब्होरा, आशारानी–महिलाएँ और स्वराज्य –प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली–1999.
24. गोस्वामी, सुधा–भारतवर्ष की चर्चित महिलाएँ–उपकार प्रकाशन, आगरा ।
25. सिंह, सीताराम–भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष –अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली–2002
26. मासिक पत्रिका –आजकल –साहित्य और संस्कृति का मासिक, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के 150 साल, मई, 2007.
27. परीक्षा मंथन–सशक्तिकरण की ओर भारतीय महिला के बढ़ते कदम
28. बोहरा आशा रानी –नये इतिहास को रचती नारी, नई दिल्ली, 2001
29. डॉ0 मीनाक्षी व्यास–नारी चेतना और सामाजिक विधान, रोशनी, कानपुर

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

बुन्देलखण्ड के स्थान–नामों में पुरातत्व और ऐतिहासिक संदर्भ

डॉ. सबीहा ताबीर
एम.ए.,पी.एच.डी. (हिन्दी)
नाजिर की बगिया, सेंवढ़ा, जिला दतिया (म०प्र०) 475682

बुंदेलखण्ड की सीमाओं का निर्धारण–यमुना, नर्मदा, चंबल, और टौंस नदियों के आधार पर किया जाता है। बुंदेली बोली –रूपों के व्यवहार को मध्यप्रदेश के 22 और उत्तरप्रदेश के 5 जिले प्रमाणित करते हैं। इन 27 जिलों में बुंदेली बोली के विभिन्न रूपों का मिश्रित, आंशिक, और स्टैंडर्ड कोटि में व्यवहार होता है। बुंदेलखण्ड भूमिदशा की दृष्टि से विशिष्ट, सामाजिक रूप–गठन की दृष्टि से विविधतापूर्ण, इतिहास की दृष्टि से गरिमामय और सांस्कृतिक धरातल पर बहुवर्णी है। यह भू–भाग पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक दृष्टि से गौरवपूर्ण है। यहाँ मौर्य, शुंग, नाग, कुषाण, गुप्त, हूण, मांडलिक, आमीर, सातवाहन, कलचुरि, चंदेल, गौड़, तोमर, खंगार, खिलजी, तुगलक, बुंदेला, मराठा और मुगल सत्तायें विभिन्न कालखंड़ों में सत्तासीन होती रही। इस भू–भाग की पुरातात्विक महानता आदि मानव तक पहुँचती है। पूरे देश को प्रभावित करने वाली परम्पराओं की क्षमता वाली यह भूमि पृथ्वी की पुरातन भूमि है। अर्थवेद में जिस भू इकाई को रेखा के उत्तर वाले भू–भाग के रूप में रेखांकित किया गया है, वही भू–भाग ब्राह्मण और स्मृति ग्रंथों में भी अलग भू–भाग के रूप में याद किया जाता रहा और बुद्धकाल में दस भिक्षुओं के उपस्थित रहने वाली भूमि यही है। जड़ेरूआ की खुदाई में उपलब्ध पुरा अवशेष, भीम बैटका, रामछज्जा और लिखीछाज के शैलाश्रय इस भू–भाग की पुरातनता के प्रमाण हैं।

पुरातत्व और इतिहास को क्रम प्रदान करने में स्थान–नाम सहायक होते हैं। स्थान वाची नामों की शब्दावली जितनी जींवत है, उतनी ही उनकी रूप–विकास यात्रा शताब्दियों के प्रभावों को प्रमाणिक करती है। स्थान–नाम जन–जीवन की आशा और आकाँक्षा, आस्था और उत्थान–पतन के साथ किसी न किसी रूप में जुड़े रहते हैं। शासकों, पदों, पदवियों, और उपाधियों को स्थान–नामों के साथ जोड़ने की परम्परा प्राचीन है। बुंदेलखंड के स्थान–नामों में वेद की शब्दावली से लेकर वर्तमान युग की प्रवृत्तियों वाले शब्द मिलते हैं। दतिया जिले की टपरिया गरीबी की सूचक है तो टीकमगढ़ का सुधा सागर श्रेष्ठता का बोध कराता है। रायसेन जिले के सिंगलद्वीप स्थान–नामों में पौराणिक संदर्भ है।

अष्टाध्यायी में स्थान–वाची नामों से संबंधित विवेचन बहुत सूक्ष्मता से किया गया है। पाणिनि के अनुसार वस्तुयें, स्थान–वाची नाम का आधार हो जाती हैं। 'चंदेरी की साड़ी' तथा 'मेघपुरा के बैल' इस परम्परा को प्रमाणित करते हैं। बसाने वाले का नाम शहर या गाँव के साथ जुड़ जाने की पुरानी परिपाटी है। भिंड, टीकमगढ़, और मुरैना, जिले के ज्यादातर पुरा, मुहल्ला, टोला और ग्राम व्यक्तियों के नामों का आधार लेकर बसे हुये हैं। व्यक्ति विशेष के अलावा जाति, वर्ग या समूह का संबंध भी जुड़ जाता है। जटवारौ, भदावर, तँवरधार, कछयानी, इसी प्रकार के स्थान–नाम हैं। बुंदेलखंड के स्थान नामों में मग, जर, भर, चेदि, मौर्य, शुंग, हूंण, सातवाहन, नाग, कुषाण, कलचुरि, गौड़, चंदेल, कछवाह, परमार, तोमर, खंगार, बुंदेला, मराठा और अंग्रेज जुड़े हैं। स्थान–नामों के साथ सत्ता से संबंध रखने वाली जातियों का नाम जुड़ जाना स्वाभाविक है।

बुंदेलखंड में चम्बल, कुंआरी, सिंध, पहूज, बेतवा, घसान, पहूज आदि नदियाँ इतिहास की पुरातन परम्परा

को प्रमाणित करती है। चम्बल, कुंआरी और पहूज का कच्छ क्षेत्र कुन्ति जनपद था, कान्यकुब्ज जनपद से पद्मावती की तरफ जाने वाले महापथ 'पचनदे' के पास पाँच नदियों को पार करते थे। जालौन जिले में जगम्मनपुर के पास यमुना में पहूज, चम्बल, सिंध, और कुंआरी नदियाँ मिली हैं तथा पद्मावती को कान्यकुब्ज से मिलाने वाला महापथ यहाँ से गुजरता था। दन्तवक्र का संबंध दतिया से रहा है। गुजर्रा का शिलालेख अशोक की आस्था का आधार है। पूर्व पाषाण युग के हस्तकुंठार और बिदारक बुंदेलखण्ड के पुरा–स्वरूप के प्रमाण हैं। लोकदेवता हरदौल स्थान–नामों के साथ भिंड जिले के हरदौल चौराहा से लेकर छिंदवाड़ा के हरदौल दाना, बैतूल के हरदौल बुजुर्ग और मंडला के बुंदेलारखोह तक सांस्कृतिक एकता को शक्ति प्रदान करते हैं। हीरामन, कुँअरसाब, दानेबाबा, पठानबाबा, लोक आस्था को बल देने वाले सदियों से जुड़े हैं। भय, स्थापत्य, कला में प्रवीण थे। मैथाना स्थान–नामों के साथ पुराण काल के किसी भय से संबंधित हैं।

यक्ष कुबेर के रक्षक माने जाते हैं। इन्हें वनस्पतियों का स्वामी माना गया है। जाखौली, जाखलौन, और जखौरया आदि स्थान–नामों का संबंध यक्षों से है। यक्षों का संबंध सार्थवाहों से रहा है। कुरैठा और कुरगाँव के साथ कुरु, मगरौल, और मगरौरा के साथ मग, जड़ेरुआ और जरसेना के साथ जर, भरौली और भरखेड़ा के साथ भरों का संबंध किसी न किसी ऐतिहासिक क्रम को प्रमाणित करता है। मेवातीपुरा, मेवली, और मवई का संबंध मेव जाति से है। तुगलकों के समय भेवाती आतंकवादी और लुटेरे थे। उन्हें शिवाजी ने संगठित करके औरंगजेब के खिलाफ मैदान में उतारा था। बेहट का अर्थ गौंड़ों की बोली में गाँव हैं। ताल बेहट (ललितपुर) बेहद (ग्वालियर) और बेहदाघाट (गुना) स्थान–नाम, गौंड़ों के प्रभाव को प्रमाणित करते हैं। रजपूतधार, कछवायधार, सिकरबारधार, बुंदेलाकोट, ततारपुर, बाग मुगलिया, तुरकखेड़ा के साथ शासक जातियाँ जुड़ी हुई हैं। भोजपुर के साथ धार के पमार शासक भोज का संबंध ऐतिहासिक है। बेलाताल, पथरीगढ़, और सैय्यद टौरिया, के साथ आल्हा–ऊदल और चंदेलों के सदर्भ जुड़े हैं। इस तरह स्थान नाम इतिहास के क्रम को व्यवस्थित करते हैं।

शासकों के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए बुंदेलखंड के स्थान–नामों के पूर्वपद और परपद सहयोगी हैं। जहाँगीरपुर (ग्वालियर) छत्रसाल पार्क (पन्ना), बिरसिंगपुरा (दतिया) भोजपुरा (सीहोर), अकबरपुर (मुरैना), दुर्गावती वॉर्ड (जबलपुर), के पूर्व पद राजाओं के प्रति आदर–भाव को सुदृढ़ करते हैं। पद और उपाधियाँ भी इसी परंपरा को मजबूती प्रदान करती हैं। बाबर खेड़ा और बाबर बोह, अकबई, अकबरपुर खालसा, जहाँगीर कटरा, शाहजहाँनाबाद, महादजी पार्क, काशीनरेश की गली, मर्दनसिंह चौराहा, मल्हार राव की छतरी, डफरिन सरॉय शासक जातियों और राजाओं के परिवार से जुड़े स्थान नाम हैं। सरपंच ढ़ाना, हबलदार पुरा, हकीम खेड़ी, फौजदार बारौ गाजीपुर, मिर्जापुर, हाजीखेड़ी, और लोकेन्द्रपुर में कोई न कोई पद या उपाधि स्थान–नामों के आधार हैं और ये आधार इतिहास के संदर्भों को विश्लेषित करने में सहायक हैं। बम्हौरी काजी (हमीरपुर) कठवाँहाजी (भिंड), सिकरी राजा (जालौन), खेड़ी बादशाही (बैतुल) खिरिया कबीर (दतिया) और दाताबन्दी छोर–(होंशगाबाद) स्थान–नामों के परपद ऐतिहासिक क्रम को प्रमाणित करते हैं।

दो समान नामों को अलग–अलग स्पष्ट करने के लिए स्थान–नामों में विभेदक भी जुड़े हुए हैं। इन विभेदकों का संबंध इतिहास के सूत्रों से रहता है। विभेदकों में बादशाह, राजा, रानी, कुँअर, सरकार, रियासत और जागीर भी है। ये सूत्र इतिहास की धरोहर है। राबन टोला (विदिशा) नेतापुरा (सीहोर), जम्बूदीप, तोरकुम्भ और बनखंड़ीरेवा के साथ आस्था आगे बढ़ी है। जौंमर्दन (दतिया) पूरा जहान (भोपाल) सिंगलदीप (होशंगाबाद) स्थान–नामों में अर्थ का विस्तार पौराणिक है।

निष्कर्ष –

1. बुंदेलखंड विशिष्ट भूमि दशा, गौरवपूर्ण इतिहास और बहुवर्णी सांस्कृतिक स्वरूप के कारण प्राचीन काल

से महत्वपूर्ण रहा है। विभिन्न कालखंड़ों में इसे पृथक–पृथक नामों से उल्लिखित किया गया है।

2. बुंदेलखंड के स्थान–नाम, यहाँ के निवासियों की आशाओं, आस्थाओं और उत्थान–पतन के स्मृति चिन्हों को सुरक्षित किये हैं।
3. बुंदेलखंड के स्थान–नामों में पुरातत्व के प्रमाण और इतिहास के सूत्र सुरक्षित हैं।
4. सत्ताओं के परिवर्तन के साथ स्थान–नाम, सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। बुंदेलखंड में भी बदलती हुई सत्ताओं का प्रभाव स्थान–नामों में हुआ है।
5. मर, जर, भर, कठ, कुरु, मग, यक्ष, बुंदेलखंड, के पुरा–इतिहास की विश्रृंखल कड़ियाँ हैं जो स्थान–नामों के आधार पर व्यवस्थित की जा सकती हैं।
6. रामायण और महाभारत काल के संदर्भ स्थान नामों में चित्रकूट, तमसा, गोप, दण्डकारण्य, चेदि, कुंति और नरवर के साथ जुड़े हुए हैं।
7. शक, हूंण, नाग, मौर्य, गुप्त से लेकर चंदेल और बुंदेलों तक इतिहास की घटनायें जुड़ी हैं। इन घटनाओं का प्रमाण खजुराहों, बटेश्वर महोबा, कालिंजर, पवायाँ और सिरसा स्थान–नामों से सम्बद्ध हैं।
8. स्थान–नाम, घटनाओं को सूत्र रूप में सुरक्षित, रख लेते हैं। ऐसे सूत्र इतिहास को विश्लेषित करने में मदद करते हैं।
9. बुंदेलखंड के स्थान–नाम, भीमबैटका, लिखीछाज और रामछज्जा के रूप में पुरा–अवशेषों को समेटे हुए हैं और राजाओं के साथ इतिहास को लिए हैं। हरदौल और अन्य लोक देवता, लोक आस्था को संबल देते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास– गोरेलाल तिवारी, काशी नगरी प्रचारिणी सभा, 1933, पृष्ठ 01
2. बुंदेलीभाषी क्षेत्र के स्थान–अभिघानों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन – डॉ. कामिनी, आराधना–ब्रदर्स, कानपुर, 1985 पृष्ठ 36
3. मध्यभारत का इतिहास, श्री हरिहर निवास द्विवेदी, सूचना विभाग, मध्यभारत, ग्वालियर, 1956, पृष्ठ 2
4. स्थान नाम बोलते हैं– डॉ. कामिनी, आराधना ब्रदर्स, कानपुर, 1995, पृष्ठ 42,
5. मनीषा– 1980, ग्वालियर,पृष्ठ– 273,
6. भाषा– भूगोल– डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, हिन्दी समिति, लखनऊ, 1973, पृष्ठ 287,
7. बुंदेलीभाषी क्षेत्र के स्थान–अभिधानों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ– 249,
8. भाषा भूगोल– पृष्ठ 287,
9. पाणिनि कालीन भारतवर्ष– डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, चौखंभा, विद्या भवन, वाराणसी, 1969, पृष्ठ– 180.
10. आँचलिक स्थान– अभिधान अनुशीलन– डॉ. कामिनी, आराधना–ब्रदर्स, कानपुर, 1983, पृष्ठ 64
11. स्थान नाम बोलते हैं– पृष्ठ 44

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

बघेलखण्ड के प्रमुख दुर्ग (रीवा, क्योंटी एवं रेवहॅुटा के दुर्ग)

डॉ0 विभा श्रीवास्तव
प्राध्यापक–इतिहास विभाग
शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

दुर्ग निर्माण कला एक बहुआयामी और अपने नाम के अनुरूप दुर्गम दुरूह और जटिल कला है, जिसका प्रकल्पन ही दुःसाध्य पृष्ठभूमि में किया जाता था। इस कला का निवेशन विभिन्न राजवंशों में संप्रभुता हेतु संघर्ष, जय, पराजय, उत्थान, पतन के मध्य होता रहा है। इन दुर्गों ने असंख्य लड़ाइयाँ। एवं कत्लेआम देखे हैं। इसके साथ–साथ इनमें वैभवपूर्ण दिनों का उल्लास एवं मूक वेदना भी छिपा है। उत्थान, पतन, उल्लास, वेदना, वैभव, पराजय के प्रतीक इन एकान्त दुर्गम और निर्जन वनस्थली में अवस्थिति इतिहास के जीवन्त साक्षी हैं।

भारतीय इतिहास में देश की रक्षा के लिए दुर्गों का स्थान निश्चय ही महत्वपूर्ण रहा है। इसलिए राजशास्त्र प्रणेताओं ने विभिन्न प्रकार के दुर्गों के संबंध में गंभीरतापूर्वक विचार किया है। कौटिल्य ने चार प्रकार के दुर्ग बताये हैं। महाभारत और शुक्रनीतिसार में छः प्रकार के तथा मानसोल्लास में नौ प्रकार के दुर्ग बताये गये हैं।

रीवा दुर्ग

विन्ध्य पर्वत श्रृंखला के मध्य कैमूर पर्वत माला की उत्तरी सीमा में $24^0 33'$ उत्तरी अक्षांश और $81^0 35'$ पूर्वी देशान्तर में बिछिया, बीहर नदियों के संगम पर समुद्र तल 1045 फिट की ऊँचाई पर रीवा दुर्ग स्थित है। इस स्थान का नाम इस क्षेत्र की पवित्र नर्मदा नदी के नाम पर पड़ा, संस्कृत ग्रंथों में इस नदी को रेवा कहा गया है, अतः इस आधार पर इस राजधानी का नाम रेवा पड़ा जिसको मुख–सुख के आधार पर बघेली में रीवा कहा जाने लगा, लेकिन अंग्रेजी भाषा में अभी भी इसकी स्पेलिंग त्मूं ही है। इस दुर्ग के दक्षिण पूर्व भाग में बिछिया नदी तथा दक्षिण पश्चिम की ओर बीहर नदी है। दोनों नदियों के संगम पर दुर्ग निर्मित है। दुर्गीकृत क्षेत्र की ऊँचाई सम्पूर्ण रीवा नगर से अधिक है। इस सम्पूर्ण दुर्ग का फैलाव लगभग 3 कि0मी0 के क्षेत्र में है। जो तीन दिशाओं में नदियों से सुरक्षित है और उत्तरी भाग दलदल युक्त है, इस प्रकार सम्पूर्ण दुर्ग प्राकृतिक रूप से सुरक्षित और अभेद्य है। यहाँ पर प्रमुख रूप से चूना पत्थर, रेतीला पत्थर, काला मटमैला पत्थर, काला पत्थर एवं विविध प्रकार प्रस्तर पदार्थों का प्रयोग परिलक्षित होता है, जो इस क्षेत्र में सरलता से उपलब्ध थे। इस दुर्ग को न दुर्ग की श्रेणी में रखना उचित होगा।

इस दुर्ग की नींव शेरशाह के पुत्र जलाल खाँ (इस्लामशाह) ने रखी थी।[1] शेरशाह ने कालिंजर अभियान के पूर्व रीवा क्षेत्र में आस–पास राजनीतिक स्थिति पर नजर रखने के उद्देश्य से अपने पुत्र जलाल खाँ को नियुक्त किया था। जलाल खाँ रीवा में ही पड़ाव डाले हुये था, उसी समय उसने इस दुर्ग को तामीर करने की शुरूआत की थी।[2] लेकिन शेरशाह की मृत्यु का समाचार पाकर यहाँ से वापस चला गया, तब से यह दुर्ग उसी हाल में पड़ा रहा। इस दुर्ग को बघेल राजा विक्रमादित्य (1593–1624 ई.) ने पूर्ण कर उसे अपनी राजधानी बनाया। महाराजा विक्रमादित्य ने सन् 1617 ई0 अपनी राजधानी रीवा में स्थापित की तभी से बान्धव राज्य रीवा राज्य के नाम से ख्याति मिली। इस प्रकार इस दुर्ग के निर्माण कार्य में सभी बघेल राजाओं ने कुछ न कुछ सहयोग प्रदान कर उसे मूर्त रूप दिया, इस प्रकार यह दुर्ग 1624 ई. से आज तक की कहानी करता हुआ लगभग 400 वर्षों का सफर तय कर चुका है।

जल व्यवस्था– रीवा दुर्ग में पानी की उत्कृष्ट व्यवस्था देखने को मिलती है, यहाँ पर प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों प्रकार के स्रोत उपलब्ध थे, लेकिन प्राकृतिक स्रोत की उपलब्धता मानव निर्मित स्रोत की अपेक्षा अधिक मात्रा में उपलब्ध थे। जैसा कि स्पष्ट है कि इस दुर्ग के दक्षिणी भाग में बिछिया नदी तथा पश्चिमी भाग में बीहर नदी प्रवाहित होती है, ये दोनों नदियाँ दुर्ग से 60 फिट की दूरी पर पश्चिमी दिशा में दोनों नदियों का संगम है, यहाँ संयुक्त जल धारा की चौड़ाई लगभग 220 फिट होगी। इन नदियों द्वारा दुर्ग के आंतरिक भाग में पानी की पूर्ति हेतु दो मार्ग थे, प्रथम भाग दुर्ग के दक्षिणी पूर्वी दिशा से जो बिछिया नदी से मिलता है, इस मार्ग से जल तक पहुॅचने हेतु सोपान मार्ग का निर्माण किया गया था, जिनके अवशेष अभी देखे जा सकते हैं, लेकिन वर्तमान में यह मार्ग बन्द पड़ा है। दूसरा मार्ग दुर्ग के पश्चिमी भाग में था, जो बीहर और बिछिया के संगम पर मिलता है। यह मार्ग लम्बा घर और मोती महल के बीच से था, इस मार्ग पर भी सीढ़ियाँ निर्मित थीं। इस पश्चिमी घाट को राजघाट कहा जाता था। इन दो आंतरिक मार्गों के अलावा दुर्गीकृत क्षेत्र से बीहर नदी के लिए अन्य कई मार्ग भी थे, जिनसे शहर में जल की पूर्ति होती थी, इन मार्गों में सीढ़ियाँ निर्मित नहीं थीं। इन प्राकृतिक साधनों के अलावा राजप्रासाद के मध्य सहन में एक कुआँ निर्मित था, संभवतः दुर्ग के अन्दर इसी से जल की पूर्ति की जाती थी। इसके अतिरिक्त जल आपूर्ति का और कोई साधन नहीं था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दुर्ग में जल आपूर्ति और जल निकासी की उत्तम व्यवस्था थी।

क्योंटी का लघु दुर्ग

यह लघु दुर्ग विंध्य प्रदेश की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहर है। रीवा लालगॉव मार्ग पर, रीवा मुख्यालय से 33 कि0मी0 की दूरी पर $24^0 48'$ उत्तर और $81^0 35'$ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। इस दुर्ग का फैलाव महानदी के पूर्वी तट के विस्तृत भू–भाग पर है। इस दुर्ग का निर्माण रीवा रियासत के 17वें बघेल राजा शालिवाहन (1495–1500 ई.) के द्वितीय पुत्र नागमलदेव द्वारा 15वीं शताब्दी में करवाया गया था[3] लेकिन सर्वेक्षण में ऐसा प्रतीत होता है कि इसका निर्माण इनके पूर्व करवाया गया था।

इसका सम्पूर्ण दुर्गारोहण महानदी से संलग्न दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर है। दक्षिणी पश्चिमी दिशा में यह विशाल और गहरे महानदी जलकुण्ड (क्योंटी कुण्ड) जैसे प्राकृतिक परिखा से सुरक्षित है। इस प्रकार सम्पूर्ण दुर्ग उत्तर, दक्षिण, दक्षिण और पूर्व दिशाओं में सुदृढ़ प्राचीरों से आवृत्त है। क्योंटी कुण्ड की 335 फिट ऊॅची खड़ी चट्टानों की प्राकृतिक दीवाल, जो दुर्ग को सुरक्षा प्रदान करती है। इस दुर्ग के निर्माण हेतु क्योंटी के महावदी तट का चुनाव दुर्ग की सामरिक और सुरक्षात्मक स्थिति का प्रमुख कारण रहा है।

दुर्ग की संरचना के आधार पर सिंह द्वार के पूर्वी भाग से लगा हुआ गुम्बदाकार द्विमंजिला भवन धवलगृह था। इसी में चन्द्रशाला लगायी गयी थी और इसी भवन से अभ्यंतर कक्ष में प्रवेश होता था। इस भाग का निर्माण काल सबसे विशिष्ट है।

दीवारों और बुर्जों में कपिशीर्ष और तोप छिद्र दुर्ग निवेश के अनुरूप सुरक्षात्मक ढंग से निर्मित किए गये हैं। इसी से संलग्न दूसरा विशाल भवन सैनिकों के आवास हेतु निर्मित था। इसी सैनिक आवास के दाहिने किनारे पर अश्वशाला रही होगी। दुर्गीकरण में दक्षिण–पश्चिम के भवन बड़े चौड़े एवं उत्तर के भवन छोटे वास्तुशास्त्रों के अनुरूप निर्मित किए गए हैं, जिनकी छतें मेंहराबदार हैं। प्रकाश और वायु के लिए वितान के ऊपर छोटे–छोटे सुराख बने हुए हैं। सिंह द्वार के अतिरिक्त अन्य गौड़ द्वार भी प्रस्तर निर्मित हैं। दीवारों में बेडौल अनगढ़ और विभिन्न आकार के प्रस्तर खण्डों का प्रयोग किया गया है। इन दीवालों की चौड़ाई 1 फिट से लेकर 4 फिट तक मिलती है। दुर्गारोहण के मध्य में एक विशाल सहन है, उसी के किनारे बाईं तरफ एक खण्डहर दिखता है, जिसमें 5 लघु द्वार हैं, इसके निवेश को देखकर ऐसा लगता है कि यह अश्वशाला रही होगी। दुर्ग के अंदर से दक्षिण

से उत्तर की ओर जाने के लिए एक गुप्त मार्ग बीथी है, इस मार्ग बीथी के दोनों तरफ खण्डहर दिखायी पड़ते हैं। दुर्ग के मध्य का चौकोर भाग के उत्तर में एक खण्डहर भवन है, जिसमें 6 द्वार हैं, संभवतः यह राजकर्मचारियों के आवास रहे होंगे। प्राचीर से लगा हुआ दक्षिणी भाग पूर्णतः ध्वस्थ है, यहीं पर एक सहन है, इसी से लगी एक सुन्दर एक मंजिली इमारत, दिखती है, संभवतः यह अभ्यंतर कक्ष और शयनगृह था। छत तक पहुँचने हेतु सोपान निर्मित है। इस भवन के मध्य में विशिष्ट स्तम्भों से आच्छादित एक लघु सहन है। पश्चिमी दीवार महानदी तट से प्रारंभ हो, सुरक्षात्मक छिद्रों से प्राकृतिक परिखा से जुड़ जाती है। जिसकी लम्बाई लगभग 650 फिट है, जबकि उत्तरी भाग में दीवाल दो विशाल बुर्जों और तोपछिद्रों से युक्त जिसकी लम्बाई 310 फुट, सभी दीवारों पर संधारक छिद्र निर्मित हैं। दुर्ग निर्माण में विन्ध्यन शीलाएँ और लेटरेट मुरूम प्रमुख हैं, क्योंकि यहाँ की भूगर्भीय संरचना से सामग्री उपलब्ध थी।

दुर्ग के पश्चिम महानदी तट पर एक विष्णु मंदिर निर्मित है, लेकिन दुर्ग के पश्चिम महानदी तट पर एक विष्णु मंदिर निर्मित है, लेकिन दुर्ग के अंदर कोई धार्मिक स्थापत्य निर्मित नही है। इसमें विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति स्थापित है। इसके कुछ ही दूरी पर एक भैरव मंदिर भी है। इसके अलावा महानदी का जल, जिस स्थान पर नीचे गिरता है, वहाँ एक बड़ी चट्टान पर शिवलिंग स्थापित है। जिनका निरंतर अभिषेक होता रहता है।

जल व्यवस्था– यहाँ पर जल आपूर्ति का प्रमुख प्राकृतिक साधन है, जल से परिपूर्ण महानदी जल आपूर्ति का प्रमुख साधन थी। इसके अलावा महानदी द्वारा निर्मित क्योंटी कुण्ड भी जल आपूर्ति का प्रमुख साधन था। दुर्ग के पश्चिमी भाग से जलकुण्ड तक उतरने के लिए सोपान मार्ग निर्मित किये गये हैं। इसके लगभग 300 फुट आगे बढ़ने पर दुर्गारोहण के मध्य में काफी निचली सतह पर चट्टानों को काट–काट कर जल कुण्ड निर्मित किये गये हैं, जो संख्या में तीन है। ये जल के जबर्जस्त स्रोत हैं, जिनसे पानी हमेशा झरता रहता है। इन जल स्रोतों तक पहुँचने के लिए भी प्रस्तर सोपान निर्मित किए गए हैं। जिनकी संख्या मेरे द्वारा 40 तक गिनी गयी है। कुछ और सोपान निर्मित हैं, लेकिन जल स्तर होने के कारण गिनना कठिन है। इन जल स्रोतों के अलावा मंदिर के दक्षिण शिव कुण्ड और विष्णु कुण्ड नाम के दो जल स्रोत और हैं, इनसे भी जल आपूर्ति होती रही होगी। जल निकास के लिए भी एक विशेष व्यवस्था प्राचीरों और दीवारों के निचले सतह पर बनी थी। इस प्रकार क्योंटी की गढ़ी में उच्च कोटि की जल व्यवस्था स्पष्ट होती है।

रेवहुंटा दुर्ग– रीवा से 12 मील पूर्व, रीवा गुढ़ मार्ग पर 10वीं, 11वीं शताब्दी में यहाँ एक विशाल दुर्गीकृत नगर आबाद था। यह दुर्ग $24^0 31'$ उत्तरी और $81^0 22'$ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। यहाँ के दुर्ग का क्षेत्रफल लगभग 6 किलोमीटर के दायरे में फैला हुआ है। रेवहुंटा नगर की संरचना आयताकार प्रतीत होती है। अलेग्जेण्डर कनिंघम एवं उसके सहयोगी गैरिक के अनुसार यहाँ पर एक दुर्गीकृत नगर था, जिसका आकार वर्गाकार था।[4]

स्थानीय जनश्रुतियों के आधार पर इस दुर्ग का निर्माण राजा करन डहरिया ने करवाया था। प्राप्त शिलालेखों के आधार पर (जिसमें से एक आल्हाघाट रीवा से प्राप्त हुआ है।) कल्चुरि राजा को डहलिया की संज्ञा दी गयी है।[5] ऐसा अनुमान है कि डहरिया नाम डाहल या चेदि के प्रसिद्ध कल्चुरि राजा कर्ण देव से संबंधित है, समस्त रीवा क्षेत्र इनके पिता गंगेयदेव के अधिकार में था।[6] प्राचीन भारतीय साहित्यिक अभिलेखों में डाहल का उल्लेख डभाला, डाहाल आदि रूपों में प्राप्त होता है। कल्चुरि काल में डाहल में लगभग 9 लाख ग्राम थे, इस कारण ''नव लक्षा डाहल'' की संज्ञा व्यवहार में आती है।[7] विल्हण ने कर्ण को डाहलाधीश कहा है।

रेवहुटा (रेव+हटा) ऐसा अनुमान है, कि कल्चुरि अभिलेखों में रेवा पत्तला का ही विकृत रूप है। रेवा पत्तला में, आधुनिक रीवा नगर के आस–पास का ही भाग सम्मिलित था। इस प्रकार रेवहुंटा नगर, कल्चुरियों का राजाश्रय पाकर राजपीठ के रूप में विकसित हुआ, और आवश्यकता के अनुरूप अनेक भवनों का निर्माण हुआ।

परम्परा से ज्ञात होता है कि रेवहुंआ में कल्चुरि कर्ण ने अपना राजप्रसाद बनवाया। इसी प्रकार वहॉ प्रशासनिक अधिकारियों के आवास भी निर्मित हुए होगें। ऐसे स्थापत्यों के विशाल अवशेष रेवहुॅटा में आज भी बिखरे पड़े हैं। यहाँ पर विभिन्न मार्गों एवं बाजार के भी अवशेष मिलते हैं, जिन्हें वर्तमान में विभिन्न नामों से जाना जाता है। यहॉ पर राजमार्ग, मार्ग वीथी, तड़ाग, कूप व देवतायन आदि के अवशेष आज भी बिखरे मिलते हैं। यह दुर्ग सुरक्षा की दृष्टि से एक सुदृढ़ नगर, प्राचीर से आवृत्त था, जो भग्नावस्था में है। इसके अलावा परिखा और द्वार निवेश भी किया गया था।

जल व्यवस्था यहाँ तालाबों, बावलियों, जलकूपों एवं तड़ागों की संरचना भी की गयी थी, जिनके भग्नावशेष यत्र–तत्र उपलब्ध हैं। रेवहुॅटा और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में जितने भी समकालिक जलकूप मिले हैं, वे सभी वर्गाकार हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस अंचल में वर्गाकार कूप निर्माण की विशेष परम्परा रही है, और अनेक बावलियाँ निर्मित पायी गयीं, जिनके माध्यम से जल की पर्याप्त व्यवस्था थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्निहोत्री एम.पी.–रीवा राज्य का इतिहास, पृ. 48, एकता बान्धोगढ़ परिशिष्ट–1, म0 प्र0 साहित्य परिषद् भोपाल, 1972।
2. मरहूम निजामी साहब के साक्षात्कार से।
3. सिंह, जीतन–रीवा राज्य दर्पण, पृ. 359–90 ए.पी., यूनियन प्रेस प्रयाग, 1923।
4. कनिंघम आ. स. द. रि. जिल्द 19, पृ. 86–87, लन्दन।
5. वही, जिल्द 21, पृ. (चतुर्थ) प्रस्तावना एवं, पृ. 149–150.
6. वही, जिल्द 21, पृ. 149–150
7. एपिग्राफिया इण्डिया खण्ड 8, पृ. 287

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

बुन्देली लोकगाथा का प्रतीक 'आल्हा'

डॉ0 सविता मसीह
सहा. प्रध्यापक–हिन्दी विभाग
शास. स्नात. महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

बुन्देली लोक साहित्य का क्षेत्र व्यापक है। लोकसाहित्य और लोक संस्कृति में जीवन्त बुन्देली लोकगाथाओं की परम्परा' अत्यन्त प्राचीन और समृद्ध है। वाचिक और मौखिक परम्परा की सजीव अभिव्यक्ति हैं 'लोकगाथा'। बुन्देल खण्ड अंचल में ग्रामीण जीवन की संस्कृति में अनेक लोकगाथाएँ कही और सुनी जाती हैं। इन लोकगाथाओं में ऐतिहासिकता, साहित्यिकता, उत्सुकता, नाटकीयता देखने को मिलती है। बुन्देली लोकगाथाएँ लोक समाज, संस्कृति के वैभव, उत्कृष्ट मानवीय जीवन मूल्य, आदर्श सामाजिक, धार्मिक एकता का प्रतीक है। इन्हीं लोकगाथाओं में प्रचलित नीति, उपदेश, वीरता, त्याग संसार की असारता का ज्ञान तथा भारतीय संस्कारों की सशक्त अभिव्यक्ति है 'आल्हा'।

कालिंजर के राजा परमार के आश्रित कवि जगनिक ने महोबे के दो प्रतापी देश भक्त वीरों – आल्हा और ऊदल के शौर्य एवं वीरता का वर्णन एक वीर गीतात्मक काव्य के रूप में लिखा था। 'परमाल रासो' का एक खण्ड 'आल्हा खण्ड' के नाम से लोक गायकों एवं साहित्यकारों के पास संरक्षित है। "वीर गाथाओं की परम्परा को समृद्ध करने में 'आल्हा' का ऐतिहासिक महत्व है। हिन्दी के भाषा भाषी प्रांतों के गाँव–गाँव में 'आल्हा' के वीर गीतों की गूंज सुनाई पड़ती है। 'आल्हा खण्ड' का कोई साहित्यिक रूप न रहने पर ही जन–जन के कन्ठ से यह शौर्य गाथा वर्षा ऋतु में जीवंत हो जाती है।[1]

लोक नाद, संगीत, नाटक की परम्परा का विस्तार है लोकगाथा 'आल्हाखण्ड' । ''गाँव–गाँव में यह लोक काव्य 'आल्हा' के नाम से जाना जाता है। 'आल्हा' गायक को बुन्देलखण्ड की लोक भाषा में 'अल्हैत' कहा जाता है। लोककाव्य 'आल्हा' सरस है, गेय है एवं अभिगेय है, 'आल्हा' में संगीत, काव्य एवं नाट्य –तीनों ललित कलाओं का त्रिवेणी, संगम साकार होता है। इसलिए भावोद्रेक करने की अद्भुत सामर्थ्य से सम्पन्न 'आल्हा' कालजयी लोक काव्य है।''[2] 'आल्हा' काव्य में महोबे के प्रबल चंदेल सम्राट परम्राद्रिदेव के मांडलिक नरेश 'आल्हा' और 'ऊदल' और मलखान तथा युवराज ब्रह्मदेव, कन्नौज के राठौर सम्राट जयचंद और युवराज लक्ष्मण सिंह तथा पृथ्वीराज चौहान एवं उनके पुत्रों और सामंतों के साथ विभिन्न राजपूतों का लोमहर्षक युद्ध वर्णन मिलता है।

तत्कालीन राजनीति, समाजनीति तथा धर्म, अर्थव्यवस्था का पूर्ण परिचय 'आल्हाखण्ड' में मिलता है। लगभग 12वीं शताब्दी में रचा गया लोक संस्कृति के वाहक के रूप में लोकगाथा के रथ पर सवार पीढ़ी दर पीढ़ी जनसमुदाय के बीच अवतरित होता रहा। 'आल्हा' के संबंध में बुंदेलखण्ड के गाँव–गाँव में अल्हैत ढोल के गंभीर घोष के साथ ये दो बातें अवश्य कहते हैं–

1. ''भरी दुपहरी सरवन गइये, सोरठ गइये आधी रात, आरव्हा पवाड़ा बादिन गइये, जा दिन झड़ी लगे दिन रात।
2. बारह बरस लौ कूकर जियें और तेरह लौ जियें सियार। बरस अठारा छत्री जियें, आगे जीवन को धिक्कार।''[3]

''लोकगाथा कथात्मक, छन्दोबद्ध, गेय और लोककण्ठ पर अवस्थित काव्य है, जिसका रचयिता अज्ञात तथा यह सम्पूर्ण समाज की सम्पत्ति है। 'आल्हाखण्ड' आज मौखिक रूप से सुना जाता है। वह किसी अज्ञात रचनाकार द्वारा लिपिबद्ध कराया गया है। लेकिन इस परम्परा की अगली रचना के रूप में 'परमाल रासों 'का

नाम लिया जाता है। इसे आल्हाखण्ड भी कहते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे "बैलेड" तथा डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे वीर गाथा काव्य भी कहा है। इसे आल्हाखण्ड भी कहते हैं।''[4] यह पूरी तरह से मौखिक परम्परा पर आधारित 13वीं शताब्दी के प्रारंभ की कृति है। इसके रचयिता जगनिक हैं। रचनाकार ने इस काव्य में महोबे के देश प्रसिद्ध वीरों, आल्हा और 'ऊदल' के वीर चरित्र को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है। ''फर्रूखाबाद 1865 में वहॉ के तत्कालीन कलेक्टर सर चार्ल्स इलियट ने अनेक भाटों की सहायता से इसे लिखवाया था। डॉ. ग्रियर्सन ने बिहार में और विसेंट स्मिथ ने बुन्देलखण्ड में भी आल्हाखण्ड के कुछ भागों का संग्रह किया था।''[5] आल्हा एक कथा काव्य है जिसमें विभिन्न युद्धों के माध्यम से राष्ट्रभक्त स्वामीभक्त 'आल्हा' और 'ऊदल' की शौर्य गाथा को अनेक प्रकार से चित्रित किया गया है। आल्हा और 'ऊदल' दोनों भाई थे। जिनकी बराबरी का बुन्देलखण्ड में दूर–दूर तक कोई दूसरा वीर नहीं था। चंदेलों की ओर से जगनिक आल्हा–'ऊदल' को पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध लड़ने को राजी करते हैं।

"जगनिक" कृत आल्हाखण्ड की अभी तक कोई भी प्रति उपलब्ध नहीं हुई है। इस काव्य का प्रचार –प्रसार केवल उत्तर भारत में है। आल्हा इसी समय की वीरता व शौर्य का गुणगान करता है। तत्कालीन राजनीति, समाजनीति, धर्म, अर्थव्यवस्था का पूर्ण परिचय इस ग्रंथ में मिलता है। 12वीं शताब्दी का इतिहास भी कल्पना के साथ व्यक्त हुआ है। वीर गाथाओं की परम्परा को समृद्ध करने में आल्हा का ऐतिहासिक महत्व है। अतः विषय–वस्तु की दृष्टि से लोकगाथा आल्हा–खण्ड में निम्नलिखित तत्व है–

1. श्रृंगार वर्णन 2. युद्ध वर्णन
3. देश वर्णन 4.घटना वर्णन

1. श्रृंगार वर्णन – रानियों के सौन्दर्य हाव–भाव, चेष्टा का वर्णन करता हुआ आल्हाखण्ड का पद"–

रानी तिलका के महलन में, दोनों तुरंत गये अरगाय ।
हाल सुनायों सब तिलका कौ, तब रानी ने कही सुनाय।
बारह रानिन का इकलौता, है सोरह कौ सबै सिंगार।।'' [6.]

2. युद्ध वर्णन :– इस लोकगाथा में वीर भावना का जितना प्रौढ़ रूप मिलता है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। आज भी जब इसे गायक संगीत के साथ गाते हैं, तब दुर्बलों में भी तलवार चलाने की स्फूर्ति आ जाती है। विवाह और शत्रु प्रतिरोध, युद्ध वीरता के प्रदर्शन का आधार रहे हैं। ''युद्धों के अत्यन्त प्रभावशाली वर्णनों की इस काव्य में भरमार है। गेयता का गुण इस काव्य को विकासशील लोक गाथा काव्य की श्रेणी में ले जाता है।''[7]

''कौन सूरमा जो तुमरे दल, घोड़ा हमसों लेय छुड़ाय।
बार हमारी रोक न पैहो, तुम सुन लेब चौड़िया राय।।
दई चुनौती सर संधानी, चौड़ा बोलो वचन रिसाय।
तुरतै उतर परौ घोड़ा सें, नातर दैहों मार गिराय।।
कोड़ा चटकौ घोड़ा दंदकौ, उठि के ऊँची भरी उड़ान ।
पिछली टापें धरि गज माथें, अगली होंदा धरी जमाय।।
ढाल की ओजड़ जगनिक मारी, सोने कुलसा दियौ गिराय।
पहिले मारों पीलवान कों, चारों हने गुर्जबरदार ।
लैकें फलगी फिर चौंड़ा की, जगनिक बढ़ चले वा पीर।।''[8]

युद्ध वर्णन के अन्तर्गत विविध रसों के साथ यह लोकगाथा वीर, रौद्र, भयानक आदि रसों का सजीव चित्रण करती है–

1. वीर रस – आल्हा खण्ड वीर रस का काव्य गाथा ग्रंथ होने के कारण इसमें वीर रस की प्रधानता है।

''आन बड़ी उमड़ी घेरा लख ,जगनिक मन में कियो विचार।
प्रान बचाकें महुबे लौटे, तौ का जी है बरस हजार।।
स्वामी के कारण तन दै हैं साका करें तरें संसार ।
प्रान हथेरी पै धर जगनिक , बोले वीर वचन ललकार।।
कौन सूरमा जो तुमरे दल, घोड़ा हमसों लेय छुड़ाय।
बाट् हमारी रोक न पैहो, तुम सुन लेव चौड़िया राय।।
दई चुनौती सर संधानी, चौड़ा बोलों वचन रियाय।'
तुरतै उतर परौ घोड़ा सै, नातर दैहों मार गिराय।।'' [9]

2. रौद्र रस :– ''जागन बोले हरनागर सैं, अब तो बजे सिरोही ढाल।
जग रूठै रूठैं रामहु जों, चाहे रूठि जायँ परमाल।
उड़न बछेरा तै। न रूठियौ, नदी वेतवा के मैदान।
कौड़ा चटको, घोड़ा दॅदकों, उठि के भरी उड़ान।।''[10]

3. भयानक एवं वीभत्स रस–

''इंद्र डोल जॉय इंद्रासन सैं, औ शिव डोल– जॉय कैलास।
लाखन डोलन के नाहीं हैं, जो लौं तन में रैहैं सांस।।
माया सपथ माता तिलका की, पितु जयचन्द के रक्त न हॅऊ।
कटि कटि मांस गिरैं धरती पै, पैन धरो पिछारू पॉऊ।।''[11]

4. ओज वर्णन :– आल्हा लोकगाथा के गायक संगीत स्वरों के उतार चढ़ाव पर अधिक जोर देते हैं। आल्हा गाथा गाते समय भावों के ओज के साथ लोकगायक के स्वर में भी ओज आ जाता है। उसके हाथ और पैरों में गति उत्पन्न हो जाती है, आँखें ऊपर चढ़ जाती हैं, वह ढोलक को और अधिक तेजी से बजाने लगता है। इस प्रकार वह श्रोताओं में वीर रस का भाव जगाकर गाथा को प्रभावात्मक बनाता है–

''पांव पिछारू ना धरियों तुम, नहीं क्षत्रियन जाय नसाय।
सो सुनि नौहों भगे ककौजी, तो मैं पेट –नसाय।।
फारि मरि जाऊँ सम्मुख रण में जूझेंगे लैकें साथ सती हो जाऊँ।
इतना सुनि हँसि लाखन बोले, रानी बचपन करौ परमान।।'' [12.]

5. लय, गति, नाद वर्णन :– लोकगायक, 'आल्हा' गाथा को झूम–झूम कर भावपूर्ण मुद्रा में गाते हैं। गाथा गाने के लिए रमटैरा, ढोलक, सांरगी चिकाड़ा आदि लोकवाद्य प्रयोग में किए जाते हैं। लोकगाथा में टैकपदों की पुनरावृत्ति का अपना पृथक महत्व है। उसकी पुनरावृत्ति से श्रोताओं को 'आल्हा' गाथा सुनने में अधिक आनन्द प्राप्त होता हैं। आल्हा की भाषा ठेठ बुन्देली हैं जिसमें अभिधा, लक्षणा, व्यजंना तीनों शब्द शक्तियों के प्रयोग को ध्यान में रखा गया है –

''चढ़ी पालकी मल्हना रानी, जगनेरी में पहुँची जाए ।
गऔ हर कारा जगनायक पै, और जगनिक सौ कहीं सुनाय।।
मल्हना आई दरवाजे पै, जल्दी चलौ हमारे साथ।
जगनिक आये दौर द्वार पै, मल्हना छाती लियो लगाय।।

रो–रो मल्हाना बात सुनाई, हम पै चढ़ै पिथौरा राय।
नगर महोबा उन घिरवा लऔ, फाटक बंद दये करवाय।।''[13]

6. आल्हाखण्ड गेय एवं लयात्मक, मधुर एवं नादात्मक है –

''इतनी सुन तै लै लाखन कों, चलिगे बेदुल के असवार।
लाखन चढ़ि गये सतखण्डा पै, जहाँ पै हती पद्मनी नार।।
तिरछै नैननि निरखि छबीलों, कुसुमा बात कही मुसुकाय।
कौन हेत दिन में आये हो, सो तुम हमें देउ बतलाय।।
पृथ्वी राज दिल्ली के राजा, दिखा लयौ। महोबा ठॉव।
संग जेहैं हम उदल के अपने भरू पुराने दॉव।।''[14]

3. देश वर्णन – आल्हाखण्ड़ लोकगाथा में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के युद्ध क्षेत्रों का वर्णन के अन्तर्गत युद्ध की दुर्दशा आदि वहाँ के वातावरण को अत्यन्त सजीव और मार्मिक वर्णन प्रभावित करता है, जगनिक ने सटीक वर्णन किया है–

1. ''डंका बाजॉ गढ़ दिल्ली में, लश्कर तुरत होय तैयार ।
बजौ नगाड़ा, तब लश्कर में, क्षत्री सबै भये हुशयार।।
2. सिरसा गढ़ पै राय पिथौरा, करी चढ़ाई भयो घमासान।
साका करि के समरभूमि में, मारे गये वीर मलखन ।।
3. चढ़ौ पिथौरा दिल्ली बारो गॉसो नगर महोबे आए ।
बिदा मांगि के अब तिलका सौ, चलिये संग कनौजी राय।।'' [15].

4. घटना वर्णनः–'आल्हाखण्ड' रचित लोक कवि जगनिक कलिंजर के राजा परमार के आश्रित दरबारी कवि के साथ–साथ राजा के मित्र और कुशल योद्धा भी थे। आदिकाल मे बुन्देलखण्ड भू–भाग में छोटे–छोटे राजाओं के राज्य थे। उस समय के राजाओं की दो समस्याएँ विशेष रूप से थीं। बाहरी आक्रमणों से राज्य की रक्षा और, दूसरी अपने राज्य का सीमा विस्तार करना । दोनों ही कारणों का मूल उद्देश्य था। हमेशा राजा और प्रजा को युद्ध के लिए तैयार रहना। इस वातावरण का उस समय के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव पड़ा। जिसका घटना वर्णन लोकगाथा में सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, पृष्ठभूमि को रेखांकित करता है।

1. देश रक्षा की गौरव गाथा :– बुन्देलखण्ड के अतीत के गुणगान करने वाली गौरव गाथा के रूप में आल्हाखण्ड की गाथा मातृभूमि के लिए बलिदान देने के लिए प्रेरित करती थी। उस समय छोटे–छोटे राजा और सामन्त मुगलों की सत्ता से स्वतंत्र होना चाहते थे। देश भक्ति, देश की रक्षा की भावना कूट–कूट कर भरी थी वीरता पूर्ण कार्यों और वीरों को प्रशंसात्मक दृष्टि से देखा जाता था। आल्हाखण्ड में राजा और प्रजा दोनों को अपने देश की रक्षा हेतु प्रेरित किया–

''सुनी जग नायक आल्हा–ऊदल तीनों चले शीष को नाय।
ऊदल पहुॅचे लाखन के ढिंग औ, सब हाल कहौ समझाय।।
चढ़ौ पिथौरा दिल्ली बारों, गांसो नगर महोबे आय।
विदा मांग के अब तिलका सौ, चलिये संग कन्नौजी राय।।''[16]

2. स्वाभिमान तथा समर्पण की भावना – उस समय के बुन्देलखण्ड के समाज में अपने मान सम्मान एवं स्वाभिमान की रक्षा हेतु अपने प्राणों को न्यौछावर करने की भावना पाई जाती थी। यदि आत्म सम्मान चला गया तो बाकी का जीवन धिक्कर है। इस प्रकार स्वाभिमान की भावना प्रबल थी। जगनिक द्वारा रचित आल्हाखण्ड

में उस समय के समाज में आल्हा, ऊदल, मलखान और जगनिक जैसे वीरों के अपने आश्रयदाता के प्रति सर्मपण की भावना स्पष्ट दिखाई देती है–

''अपनी बड़ी उमड़ी घेरा लख, जगनिक मन में कियो विचार।
प्रान बचाके महोबे लौटे तौ का जीहैं बरस हजार ।।
स्वामी के कारज तन दैहैं साका करें तरै संसार ।
प्रान हथेरी पै धर जगनिक, बोले वीर वचन ललकार।।''[17]

3. आदर्श देश प्रेम, त्याग, वचन बद्धता :– इस लोकगाथा में आदर्श देश प्रेम, आदर्श त्याग आदर्श वचनबद्धता के जीवन और उनके चरित्र का सांगो पांग वर्णन मिलता है –

''मल्हाना' दे रानी ने पाला, बेटा फोहन दूध पियाय।
मैंने प्रन उनसों कीनो तो, देहौं उन हित पूत कटाय।।
क्षत्राणी माता को प्रन तुम, राखो दोउ पूत बलधाम।
साका करौ, सत्रु संहारो पत राखो, जग मै लो नाम।।
'धन्न जनम है वा क्षत्री को, पर हित सीस देय कटवाय।
जग में सुख के साथी सब ही, दुख में बिरले होत सहाय।
तुम बिन विपदा हम पै पर गई, बेटा हमकौ होउ सहाय।
आन राखियाँ चंदेल की, तुम बिन कौन सके निखार।
पत राखौ मल्हना माता की, और राखियों धरम हमार।
पत गयै फिर पानी ढर जैहै, बिन पानी जीवन धिक्कार।।''[18]

निष्कर्ष – आल्हा खण्ड ऐतिहासिक लोकगाथा के रूप में राष्ट्रभक्त स्वामी भक्त आल्हा और ऊदल की शौर्य गाथा को चित्रित करने के साथ–साथ आल्हा की देशभक्ति और कर्तव्यपरायण निष्ठा, प्रेम को भी अभिव्यक्त करता है। इस वीर रस प्रधान लोकगाथा में तत्युगीन क्षत्रियों को मानवता का धर्म पालन करने, अनीति का विरोध करने तथा भारतीय समाज, धर्म, संस्कृति का उद्धार करने का उपक्रम कथाकाव्य का सम्प्रेष्य है।जगनिक द्वारा रचित आल्हाखण्ड बुन्देली का प्रथम ऐतिहासिक लोकगाथा काव्य सांस्कृतिक धरोहर की अमूल्यनिधि का प्रतीक तथा सामान्य जनता को चाहे वह किसी भी क्षेत्र की क्यों न हो अपनी प्रभु रोचकता के कारण अपील करता है। बुन्देलखण्ड के चौपालों पर आल्हा के स्वर हुंकार भरते हैं। आल्हा के सजीव मर्मस्पर्शी प्रसंग आज भी प्रत्येक व्यक्ति के मानस पटल पर अंकित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बुन्देली भाषा और साहित्य –संपादक –डॉ0 शर्मा अशोक, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ.सं. 48
2. राष्ट्रीय स्तर पर लोक साहित्य का महत्व (स्मारिका राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी) – 19 एवं 20 जनवरी, मातागुजरी कॉलेज, जबलपुर
3. बुन्देली भाषा और साहित्य–संपादक –डॉ0 शर्मा अशोक, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ.सं. 24
4. लोक साहित्य और प्रयोग–डॉ0 शर्मा श्रीराम, विनोद पुस्तक सदन, आगरा, पृ.सं. 79
5. बुन्देली भाषा और साहित्य–डॉ0 त्रिपाठी आर.पी., विश्वविद्यालय प्रकाशन, ग्वालियर, पृ.सं. 42
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ0 नगेन्द्र, मयूर पेपर बेक्स, पृ.सं. 71
7. बुन्देली भाषा और साहित्य–संपादक–डॉ0 शर्मा अशोक– हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, पृ.सं. 8–18
8. बुन्देली भाषा और साहित्य–संपादक–डॉ. शर्मा अशोक, सं. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, पृ.सं. 8–18

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

जनसंचार और समाज : चिन्तन–चिन्ता के विविध सरोकारों का विश्लेषण

डॉ0 मंजू सराफ
सहायक प्राध्यापक–समाजशास्त्र
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

मानव विचारों का विभिन्न माध्यमों द्वारा सम्प्रेषण संचार कहलाता है। मानव ने आदिम अवस्था में अपनी भावनाओं, विचारों का सम्प्रेषण विभिन्न हाव–भाव व ध्वनि के द्वारा किया। सभ्यता के विकास के साथ उसके सम्प्रेषण के माध्यम बढ़ते गए। मौखिक एवं लिखित सम्प्रेषण, व्यक्तिगत एवं सामूहिक सम्प्रेषण विकसित होता गया। जनसंचार के माध्यमों का इतिहास अपेक्षाकृत नया है। जनसंचार का सबसे प्राचीन माध्यम प्रेस 1476 मे अविष्कृत हुआ वायरलेस के द्वारा पहला संवाद 1882 में हुआ था। फोनोग्राम 1877 में अविष्कृत हुआ एवं पहला सिनेमा 1895 में प्रदर्शित हुआ।

स्वतंत्रोत्तर भारत ने विकास के नये क्षितिज देखे। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश की मुख्य समस्याओं को दूर करने के प्रयास किये गये। जनसंख्या वृद्धि, साक्षरता में कमी, उत्पादन में कमी, औद्योगिक विकास की धीमी गति, सांस्कृतिक पहचान की कमी एवं सुदृढ आर्थिक नीति की अनुपस्थिति आदि कुछ मुख्य समस्याऐं थीं, इनका समाधान करना आवश्यक था। देश की जनता के साथ संवाद स्थापित कर उन्हें राष्ट्र हित की समस्याओं से अवगत कर जनमत तैयार करने की आवश्यकता को महसूस किया गया । इस आवश्यकता को पूरा करने के लिये देश में जनसंचार के साधनों का तीव्र गति से विकास किया गया।

जनसंचार के विभिन्न माध्यमों ने भारतीय संस्कृति में क्रांतिकारी बदलाव लाये हैं। विज्ञान और इलेक्ट्रॉनिक्स का आधुनिक ज्ञान इसे विश्व स्तरीय प्रसंग बोध प्रदान कर रहा हैं। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप उत्तर आधुनिक संस्कृति का निर्माण हो रहा है परंतु भारत जैसे परम्परामूलक समाज को जहॉ संस्कार, सामाजिक प्रतिमान, आध्यात्मिकता तथा संयुक्त परिवार की व्यवस्था रही है, वहॉ इस संस्कृति ने इन्द्रिय सुख, संग्रहवादिता तथा एकांगी जीवन दर्शन को बढ़ावा दिया है। हिंसा अश्लीलता से भरे नित्य नये टी. वी. चैनल, अपसंस्कृति प्रसार, विदेशी मीडिया की भागीदारी, बढ़ता आतंकवाद, सामाजिक विघटन के नये आयाम, जनसंचार के नये उत्पाद या प्रति उत्पाद हैं।

जनसंचार के इन माध्यमों का व्यक्ति, समूह एवं समाज पर तीव्र प्रतिक्रियात्मक प्रभाव पड़ा। भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों–आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, धार्मिक यहाँ तक की नैतिक मूल्यों में भी परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। जनसंचार के माध्यम मानवीय जीवन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। ये किसी भी समाज को परिवर्तित करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन के लिये जनसंचार का अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है।

वर्तमान समय में जब प्रौद्योगिकी समाज में तीव्र गति से परिवर्तन कर रहा है तब जनसंचार का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। जनसंचार हमारे जीवन का शक्तिशाली एवं प्रभावपूर्ण कारक हैं। प्रतिदिन समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, टेलीविजन, रेडियो, इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग के द्वारा हमारे समुदाय, प्रदेश, देश एवं विश्व की सभी सूचनाएँ हम तक पहुँचती हैं। मीडिया के द्वारा सम्प्रेषित ये सूचनाएँ एवं विचार, विभिन्न व्यक्तियों,

घटनाओं समस्याओं के प्रति हमारे दृष्टिकोण को बहुत ज्यादा प्रभावित करते हैं। जनसंचार सामाजिक प्रतिमानों, वैयक्तिक दृष्टिकोण एवं सार्वजनिक नैतिकता को सह–संबंधित करते हैं।

मीडिया उपभोक्ता, मीडिया उत्पाद का चयन सावधानी से करते हैं। वे उन्हीं संदेशों को स्वीकार करते हैं जिन्हें वे सरलता से समझ सकते हैं, और जो उनके विश्वासों के अनुकूल होते हैं। वे उन संदेशों को अस्वीकार कर देते हैं जो उनके प्रतिकूल या विरोधाभासी होते हैं । सामान्यतः जनसंचार पुरानी परम्पराओं और मूल्यों के पोषक होते हैं। जनसंचार की प्रक्रिया समाज की तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक शक्ति संरचना को चुनौती नही देती, वह यथास्थिति बनाए रखना चाहती है।

जंनसंचार के माध्यम किशोर एवं युवा वर्ग के लिए समाजीकरण के सशक्त माध्यम हो गये हैं। वाट्स एवं हाफमैन के अनुसार–जनसंचार की सामाजिक महत्ता को रोका नही जा सकता। विकास कार्यक्रमों के लक्ष्यों एवं गतिविधियों को समझने की क्षमता बढ़ाने में जनसंचार का प्रभावी योगदान रहता है। यह विकास कार्यक्रमों में समाज की सहभागिता बढ़ा सकता है और विकास के योजनाकार, नीति निर्माता तथा विधायिका के निर्णयों पर प्रभाव डालता है।

भारत में राष्ट्रीय विकास के विभिन्न कार्यों में तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास में जनसंचार सक्रिय भूमिका निभा कर सरकार को सहयोग दे रहा है। राष्ट्रीय विकास में मानव संसाधनों की गतिशीलता बढ़ाने में जनसंचार योगदान करता है। गतिशीलता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि समाज राष्ट्रीय विकास के बारे में विचार करे एवं सामाजिक प्रथा व्यवहार एवं ज्ञान में इस प्रकार वृद्धि करे कि वह विकासोन्मुखी हो। यह कार्य जनसंचार पूर्ण कुशलता के साथ कर रहा है। शोध बतलाते हैं कि विकास के मुद्दे पर समाज एवं मीडिया की अंतःक्रिया स्थिर एवं संचयी होती हैं यह व्यक्तियों को विकास के समान लक्ष्य निर्धारित करने में जनमत का निर्माण करती है। मीडिया नई शासकीय नीतियों, कार्यक्रमों एवं प्रौद्योगिकी को समाज तक पहुँचाती है और उन्हें इन सूचनाओं के प्रति जागरूक एवं सक्रिय बनाती है। मीडिया ने रेडियो, टी.वी. एवं फिल्मों के द्वारा कृषि प्रोद्योगिकी को ग्रामों तक पहुँचाया और किसानों को विश्वविद्यालयीन प्रयोगशालाओं एवं अन्य राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं से जोड़ा। इसका चमत्कारिक प्रभाव हुआ और हरित क्रांति का सपना साकार हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि जनसंचार परिवर्तन के कारक के रूप में समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र – डॉ0 जी0आर0 मदन
- भारतीय समाज – राम आहूजा
- भाषा कौशल एवं संचार साधन – डॉ0 के0 बी0 पण्डा
- प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ0 त्रिभुवननाथ शुक्ल
- The Revolution of communication - Gobar Vasmatics
- The Role and Influence of Mass Media

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

नोटा के अधिकार के प्रति जागरूकता–एक अध्ययन

डॉ. (श्रीमती) सुजाता सैमुएल
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
शासकीय महाविद्यालय, मस्तूरी,
जिला बिलासपुर, छ.ग.

डॉ.(सुश्री) सपना कॉर
शासकीय महाविद्यालय अरमरीकला,
जिला बालोद, छ.ग.

भारत जैसे अति विस्तृत एवं बहुसांस्कृतिक देश में शासकीय एवं राजनैतिक व्यवस्था का सुचारू संचालन एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है, जिसका सामाजिक पक्ष भी, राजनैतिक पक्ष जितना ही महत्वपूर्ण है।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने आजादी के बाद उचित ही भारत के लिए प्रतिनिधि शासन की लोकतांत्रिक प्रणाली का चयन किया, और भारत ने विश्व के सबसे बड़े और गतिशील लोकतंत्र के रूप में आजादी के छहः दशक भी पूर्ण कर लिए हैं।

आजादी के बाद प्रारंभ के दो–तीन चुनावों में तो निर्वाचकीय प्रक्रिया आशानुरूप ही चली, परंतु बाद के वर्षों में इसमें उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगत होने लगे। राष्ट्रीय स्तर के दलों से पृथक छोटे प्रांतीय दलों का उद्‌भव और प्रचार–प्रचार होने लगा जो क्षेत्रीय, भाषाई और जातिगत आधारों पर संगठित थे। इन छोटे दलों ने राजनीति पर ऐसा प्रभाव डाला की अब राष्ट्रीय स्तर के दल भी चुनावों में प्रत्याशी चयन के समय उसकी ''जीतने की क्षमता'' अर्थात् धनबल और जातिगत समीकरणों का ध्यान रखते हैं। यही कारण है कि आपराधिक पृष्ठभूमि के उम्मीदवार भी सरलतापूर्वक राष्ट्रीय दलों से उम्मीदवारी करते हैं और उनमें से कई संसद में भी पहुंचते हैं।

प्रत्याशी चयन के समय राजनीतिक दलों द्वारा एक आम मतदाता की आशाओं और अपेक्षाओं का ध्यान प्रायः नहीं रखा जाता, साथ ही भारत में चुनावों में एकल बहुमत प्रणाली अपनाई जाती है, जिसके अंतर्गत जिस उम्मीदवार को कुल वैध मतों में सर्वाधिक मत प्राप्त हों, उसे विजेता घोषित कर दिया जाता है। इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि भले ही अधिसंख्यक मतदाता चुनाव लड़ रहे किसी भी प्रत्याशी को पसंद न करते हों, लेकिन उनमें से एक न एक, जातिगत, धार्मिक, आर्थिक अथवा प्रलोभन के समीकरणों के आधार पर उनका प्रतिनिधि पद हासिल कर ही लेता है।

नोटा का अधिकार :– इस पृष्ठभूमि में अशासकीय संगठन पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पी.यू.सी.एल.) एवं अन्य बनाम भारत संघ तथा अन्य में सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिक क्रमांक WP(C) 161/2004 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसला देते हुए भारत के मतदाताओं को नकारात्मक मतदान का अधिकार दिया, इस निर्णय को देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि – ''किसी मतदाता के गोपनीयता के अधिकार की रक्षा करते हुए उसे किसी भी उम्मीदवार के पक्ष में मतदान न करने का अधिकार प्रदान करना लोकतंत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह विकल्प राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किये गये उम्मीदवारों को अनुमोदित नहीं करने का अधिकार मतदाताओं को प्रदान करता है। इससे व्यवस्था में धीरे–धीरे परिवर्तन आएगा तथा राजनीतिक दलों को लोगों की इच्छाओं को स्वीकार करते हुए ऐसे व्यक्तियों को उम्मीदवार बनाने के लिए बाध्य करेगा, जो अपनी सत्यनिष्ठा और ईमानदारी के लिए जाने जाते हैं।''

नोटा अधिकार के संबंध में वस्तुस्थिति यह है कि शब्द नोटा अंग्रेजी के वाक्य None of the above (उपर्युक्त में से कोई नहीं) का संक्षिप्ताकार है।

नोटा का अधिकार केवल भारत में ही नही, ग्रीस, यूनाइटेड स्टेट आफ नेवादा, यूक्रेन, स्पेन, कोलंबिया में

भी है। रशिया के चुनाव मतपत्रों में भी ऐसा विकल्प था जो 2006 में समाप्त कर दिया गया। बंगलादेश ने इस विकल्प को 2008 में स्वीकार किया। 2013 के चुनावों में पाकिस्तान ने इस विकल्प को अपनाया लेकिन बाद के चरणों में इलेक्शन कमीशन ऑफ पाकिस्तान ने इसे निरस्त कर दिया।

चूंकि नोटा का अर्थ ही है, उपर्युक्त में से कोई नहीं। अतः स्वाभाविक रूप से इसका बटन सभी प्रत्याशियों के नाम के नीचे सबसे अंत में होता है।

वास्तव में नोटा का प्रयोग प्रारंभिक तौर पर लोकतांत्रिक रूप से ही किया गया है। पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त श्री कुरेशी ने इंडियन एक्सप्रेस को दिये गये अपने एक इंटरव्यू में इसे उदाहरण सहित स्पष्ट करते हुए बताया कि यदि पड़ने वाले वैध मतों में से 99 नोटा के पक्ष में हैं और किसी एक प्रत्याशी को 1 वैध मत मिला है तो उस प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित कर दिया जाएगा।

अध्ययन का उद्देश्य :– प्रस्तुत शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

(1) महान उद्देश्यों के साथ लागू हुए इस चुनाव सुधार के प्रति ग्रामीण महिलाओं का क्या दृष्टिकोण है।
(2) ग्रामीण क्षेत्र की अल्पशिक्षित महिलाओं में इस अधिकार के प्रति जागरूकता का स्तर क्या है।
(3) यह अधिकार स्वयं में कितना प्रभावशाली है।

परिकल्पना :–

(i) नोटा के अधिकार के प्रति ग्रामीण महिलाओं में पर्याप्त जागरूकता है।
(ii) वे इसे प्रत्याशी चयन के विकल्प रूप में देखती हैं।

शोध प्रविधि :–

(i) शोध कार्य हेतु अध्ययन क्षेत्र के रूप में छत्तीसगढ़ के मस्तूरी ब्लाक (जिला–बिलासपुर) के तीन गांव तथा गुंडरदेही ब्लाक (जिला–बालोद) के दो गांव का चयन उद्देश्यपूर्ण निर्दशन के आधार पर किया गया है।
(ii) ग्रामीण क्षेत्र में रहकर कृषि मजदूरी करनेवाली महिलाओं को उत्तरदाता के रूप में चयनित किया गया है जिनकी आयु 18–25 वर्ष है तथा वे पांचवीं तक शिक्षित हैं। कुल उत्तरदाताओं की संख्या 50 है।
(iii) तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची तथा अवलोकन प्रविधि प्राथमिक स्रोत के रूप में प्रयोग किये गये हैं।
(iv) इंटरनेट तथा पत्र पत्रिकाओं से संकलित सामग्री का उपयोग तथ्य संकलन के द्वैतीयक स्रोत के रूप में किया गया है।

नोटा अधिकार जागरूकता साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त आंकड़े निम्न तालिका द्वारा प्रदर्शित है–

तालिका क्रमांक –1

नोटा जागरूकता

क्रमांक	नोटा का पूरा नाम ज्ञात होना	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हां	24	48
2	नहीं	26	52
	योग	50	100

तालिका क्रमांक –2

अन्य देशों में नोटा का अस्तित्व

क्रमांक	अन्य देशों में भी ऐसे अधिकार की जानकारी	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हां	7.5	15
2	पता नहीं	42.5	85
	योग	50	100

तालिका क्रमांक –3

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन में, नोटा बटन का स्थान

क्रमांक	इ.वी.एम. में नोटा बटन का स्थान, पता है	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हां	11.5	23
2	नहीं	32.5	65
3	कह नहीं सकते/याद नहीं	6	12
	योग	50	100

तालिका क्रमांक –4

नोटा को सर्वाधिक मत मिलने पर उत्पन्न होनेवाली स्थिति

क्रमांक	क्या नोटा को सर्वाधिक मत मिलने पर भी कोई प्रत्याशी जीतेगा	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हां	5	10
2	नहीं	16.5	33
3	फिर चुनाव होंगें/कह नहीं सकते	28.5	57
	योग	50	100

चारों तालिकाओं के ग्राफ

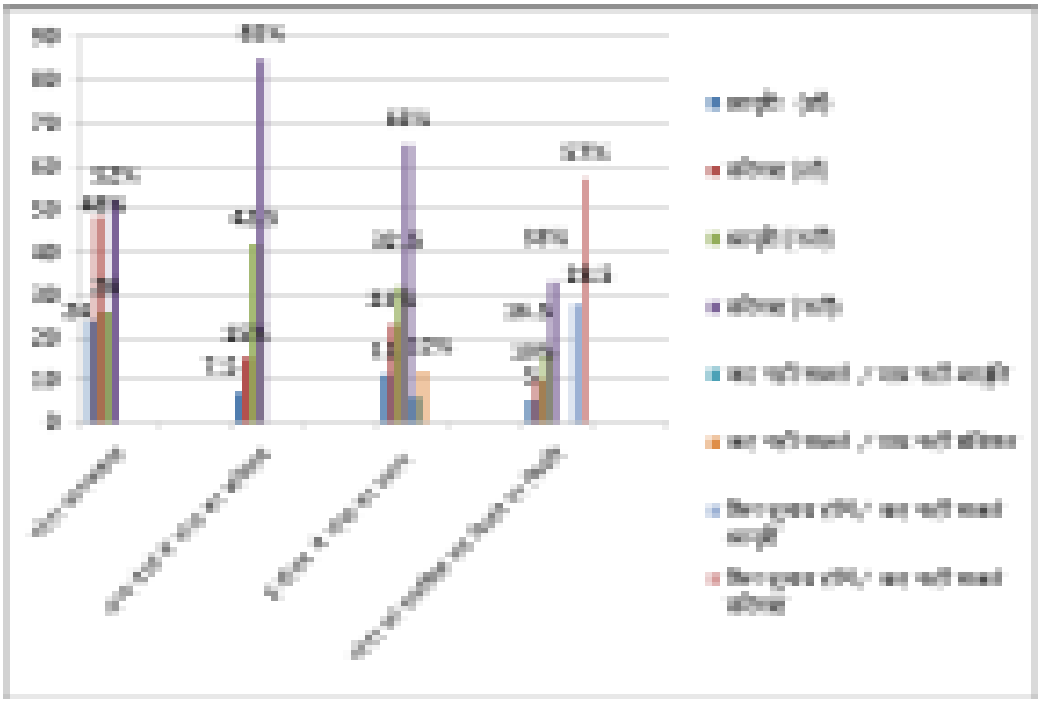

निष्कर्ष :– आंकड़ों के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार हैं –

1. अध्ययन हेतु चयनित 52 प्रतिशत उत्तरदाता संक्षेपाक्षर नोटा का पूरा नाम नहीं बता सकीं।
2. नोटा का अस्तित्व भारत के अलावा अन्य देशों में भी है अथवा नहीं, 85 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य से अनजान थीं।
3. नोटा के बटन का स्थान इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन में कहाँ है, इस तथ्य से 65 प्रतिशत उत्तरदाता मतदाता अनजान थीं।
4. नोटा को सर्वाधिक मत मिलने पर उत्पन्न होनेवाली स्थिति का अनुमान लगाने में 57 प्रतिशत उत्तरदाता असमर्थ थीं।

इन निष्कर्षों से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में नोटा अधिकार के विषय में अल्पशिक्षित ग्रामीण महिलाओं विशेषकर नए मतदाता के रूप में पंजीकृत उत्तरदाताओं में जागरूकता की कमी है।

सुझाव :– नोटा के अधिकार को और अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :–

(i) इस अधिकार का व्यापक प्रचार–प्रसार का कार्य यथासंभव स्थानीय भाषा और बोलियों में हो।

(ii) किसी निर्वाचन में नोटा को सर्वाधिक मत मिलने पर दोबारा चुनाव की व्यवस्था होनी चाहिये।

(iii) वापस बुलाने का अधिकार (Right to Recall) पर भी व्यापक विचार होना चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Russians Divided over Electoral Reforms – Angus Reid Global Monitor - angus reid.com
2. Bangladesh amends election law incorporating '40' vote option Times of India July 14, 2008.
3. Fund, John (September 10, 2012) none of the above should be on the Ballot-National Review.
4. Sorabjee, Solij, (1 March, 2009) Right of negative voting The Indian Express.
5. Indian Votes get right to reject election candidates BBC News - 27 September, 2013.
6. (23) SC landmark judgment: Voters get right to reject Deccan chronicle 27September, 2013.
7. India Today Online - New Delhi October 3, 2013.
8. Voter has right to negative voting: SC the Hindu 27 September, 2013.
9. Jain, Bharti (27 September, 2013) "Will implement voters right to reject candidates straight away-Election Commission" The Economic Times.
10. प्रतियोगिता दर्पण : ''नोटा कितना सार्थक, कितना व्यापक ?'' मार्च, 2014

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

खेलकूद के स्तरोन्नयन की समस्या और समाधान

डॉ. राकेश कुमार तिवारी
राजकीय महाविद्यालय, उन्नाव (उ.प्र.)

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलकूद के क्षेत्र में भारत कितना पिछड़ा हुआ है, इसका प्रमाण हमें इसी बात से मिल जाता है कि वर्ष–1992 के बार्सिलोना विश्व ओलंपिक खेलों में भारत एक कांस्य पदक भी नहीं जीत पाया। जहाँ तक मध्य प्रदेश का सवाल है,उसकी गणना तो भारत के खेलकूद में पिछड़े प्रदेशों में की जाती है। ऐसी स्थिति में हमारे लिये आवश्यक हो जाता है। कि हम मध्यप्रदेश में खेलकूद के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये गंभीरता से पहल करें।

मध्यप्रदेश के स्कूल शिक्षा विभाग में जिला शिक्षा अधिकारी, उपसंभागीय शिक्षा अधीक्षक, उपसंचालक शिक्षा, एवं संयुक्त संचालक, शिक्षा के रूप में कार्य करते हुये मैंने न केवल विकास खंड स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक की विभिन्न क्रीड़ा प्रतियोगिताओं के आयोजन एवं अवलोकन का अवसर पाया वरन् प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चतर माध्यमिक स्तर तक की शासकीय – अशासकीय शालाओं का खेलकूद की सुविधाओं तथा गतिविधियों की दृष्टि से निरीक्षण भी किया । अपने दो दशकों के उपरोक्त अनुभव के आधार पर मैंने मध्यप्रदेश में शालेय खेलकूद के पिछड़ेपन के जिन कारणों को जाना है, उनका विन्दुवार विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

खेलकूद से संबंधित विभिन्न समस्याओं को छः वर्गो में बांटा जा सकता हैः–

1. खेल शिक्षक की व्यवस्था से संबंधित समस्याएँ,
2. क्रीड़ागन एवं क्रीड़ा सामग्री से संबंधित समस्याएँ,
3. खिलाड़ियों के अभ्यास एवं प्रशिक्षण से संबंधित समस्याएँ,
4. क्रीड़ा प्रतियोगिताओं के आयोजन, खिलाडियों के चयन आवास भोजन से संबंधित समस्याएँ,
5. खिलाड़ियो के भविष्य से संबंधित समस्याएँ एवं
6. खेलकूद की वित्तीय – व्यवस्था से संबंधित समस्याएँ।

1. खेल शिक्षक की व्यवस्था सें संबंधित समस्याएँ :–

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलकूद के क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिये बच्चो को खेलकूद की गतिविधियों, प्रतियोगिताओं एवं प्रशिक्षणों का आयोजन एक महती आवश्यकता है। यह कार्य खेल शिक्षक के बिना संभव नहीं है। छोटे बच्चो के लिये खेल शिक्षक की सुविधाएं दो माध्यमों से मिल सकती है। प्रथम तो खेल क्लबों के माध्यम से और द्वितीय प्राथमिक शालाओं के माध्यम से। मध्यप्रदेश में खेल क्लबों की संख्या नगण्य है। जो खेल क्लब है भी, वे छोटे बच्चों की खेलकूद की गतिविधियों, प्रतियोगिताओं और प्रशिक्षणों की बहुत कम व्यवस्था करते हैं। प्रायमरी और मिडिल शालाओ में तो खेल शिक्षक का पद ही नहीं होता। खेलकूद को शिक्षा का अनिवार्य अंग नहीं बनाया गया है। खेलकूद की उत्कृष्टता के आधार पर न तो शिक्षक का मूल्यांकन होता है और न छात्र का। अतः प्रायमरी और मिडिल शालाओं में खेलकूद केवल उन संस्थाओं में होते हैं जहां प्रधानाध्यापक या किसी

अन्य शिक्षक को स्वयं खेलकूद में दिलचस्पी होती है तथा वह स्वप्रेरणा से अथवा स्वान्तः सुखाय शालाओं में इनके आयोजन की व्यवस्था करता है। ऐसे शिक्षकों को शासन और समाज की ओर से भी न तो कोई प्रोत्साहन मिलता है और न कोई महत्व । ऐसी स्थिति में उनका उत्साह भी फूस की आग की तरह शीघ्र ठण्डा हो जाता है। वस्तुतः खेल–शिक्षक का हमारे देश और प्रदेश में कोई सुनिश्चित और सुखद भविष्य भी नहीं है कि लोग खेल– शिक्षक बनने में गौरव और उत्साह का अनुभव करें।

वित्तीय कठिनाई के कारण प्रायमरी तथा मिडिल शालाओं के अतिरिक्त ऐसे हाईस्कूलों में भी, जहां छः वर्गो से कम छात्र – संख्या है, खेल शिक्षक का पद नहीं है ऐसी स्थिति में इन शालाओ में खेलकूद के उपयुक्त वातावरण निर्मित करने तथा खेलकूद की गतिविधियों एवं प्रतियोगिताओं के आयोजन करने की समस्या स्वाभाविक है। इस समस्या के समाधान हेतु तीन विकल्प हो सकते है (1) प्रत्येक प्रायमरी, मिडिल और हाईस्कूल में जहां खेल शिक्षक नहीं है, प्रति पचास छात्रों पर एक खेल शिक्षक की आवश्यकता को मान्य करते हुए अधिकतम तीन कार्यरत शिक्षकों को खेलकूद की गतिविधियाँ आयोजित करने के लिये 100=00 मासिक क्रीड़ा भत्ता देने की व्यवस्था की जावे तथा आवश्यकतानुसार उन्हें खेलकूद में प्रशिक्षित भी किया जावे। (2) एक उपयुक्त हायर सेकेण्डरी स्कूल के चारों और आठ किलोमीटर की परिधि में आने वाली सभी प्राथमिक मिडिल तथा उच्च माध्यमिक शालाओं को शामिल कर एक क्रीड़ा संकुल का निर्माण किया जावे तथा इसमें खेलकूद की गतिविधियां, प्रतियोगिताएं प्रशिक्षण आदि के लिये तीन खेल शिक्षकों की नियुक्ति ठेका पद्वति के आधार पर 500.00 निश्चित वेतन पर की जावे । यदि क्रीड़ा संकुल में शामिल शालाओ में खेलकूद में दक्ष शिक्षक उपलब्ध हो तो उन्हें भी 500.00 प्रति शिक्षक के हिसाब से क्रीड़ा भत्ता दिया जा सकता है। वर्ष भर की खेलकूद की गतिविधियों की समाप्ति पर इन शिक्षकों की उपलब्धि का मूल्यांकन किया जावे तथा उपयुक्त पाये जाने वाले शिक्षकों को पुनः अगले वर्ष के लिये 500.00 प्रतिमाह के निर्धारित वेतन या क्रीड़ा भत्ते पर नियोजित किया जाना चाहिये। मूल्यांकन मे उत्कृष्ट श्रेणी पाने वाले खेल शिक्षकों को श्रेष्ठतर वेतन या भत्ता देने अथवा पुरस्कार देने की व्यवस्था भी की जानी चाहिये। (3) प्रत्येक विकास खंड में एक क्रीड़ा संघ या खेलक्लब की स्थापना को प्रोत्साहन दिया जाये, जो पूर्णतः अशासकीय हो । प्रत्येक क्रीड़ा –संघ को वर्ष भर की गतिविधियों और उपलब्धियों के आधार पर अनुदान देने की व्यवस्था की जावे। अनुदान खेल– शिक्षक, क्रीड़ामन– व्यवस्था तथ क्रीड़ा –सामग्री और क्रीड़ा प्रतियोगिताओं के लिये दिया जाय। धनी कंपनियों को भी यह अनुदान देन हेतु प्रोत्साहित किया जाय।

(2) क्रीड़ांगन एवं क्रीड़ा – सामग्री से संबंधित समस्याएँ :–

मध्यप्रदेश के अधिकांश प्रायमरी, मिडिल एवं हाईस्कूलों के पास क्रीड़ागन और क्रीड़ा सामग्री का अभाव है। इसके मुख्य दो कारण है। प्रथम तो यह कि अधिकांश स्कूल धनी बस्तियों के बीच हैं, जहां विद्यालय भवन के लिये ही भूमि मुश्किल से मिलती है। ऐसी स्थिति में क्रीड़ांगन के लिये भूमि मिलना क्रीड़ांगन के लिये भूमि मिलना प्रायः असंभव हो जाता है। फिर नया स्कूल खोलने के लिये सामान्यतः शाला – भवन के लिये ही भूमि की पर्याप्तता देखी जाती है। बच्चो को खेलकूद के लिये मैदान की भी आवश्यक्ता होगी, यह बात बहुत कम ध्यान में रखी जाती है। यघपि शासन की ओर से प्रायमरी, मिडिल, एंव हाईस्कूल खोलने के लिये आवश्यक भूमि की सीमा निर्धारित है लेकिन सामान्यतः उसका ध्यान नहीं रखा जाता। अतः क्रीड़ांगन का अभाव हमारी अधिकांश शलाओं की समस्या है। क्रीड़ा – सामग्री की कमी भी प्रायः सभी शालाओं में महसूस की जाती है। इसका कारण है शालाओं में वित्तीय साधनों की कमी और क्रीड़ा सामग्री की ऊँची कीमतें । प्राथमिक शालाओं में तो खेल फीस

भी लिये जाने का प्रावधान नहीं है। मिडिल शालाओं में 74 पैसे प्रति छात्र प्रतिमाह तथा हाईस्कूलों में 1.00 रू. प्रति छात्र प्रतिमाह विविध शुल्क लिये जाने के शासकीय निर्देश हैं। इस प्रकार जमा की गई कुल फीस का 74 प्रतिशत खेलो पर खर्च किये जाने का प्रावधान है। फिर यह फीस भी वर्ष में केवल दस माह वसूल किये जाने के निर्देश हैं। इससे कम दर्ज संख्या वाली शालाओं में खेलकूद के लिये बहुत कम राशि उपलब्ध हो पाती है। अतः वहां खेलकूद की सामग्री की कमी होना स्वाभाविक है।

क्रीड़ांगन एवं क्रीड़ा–सामग्री के अभाव की समस्या का निदान क्रीडा –संकुल अथवा क्रीड़ा संघो का गठन करके सहज रूप में किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रो में एक उपयुक्त हायर सेकण्डरी स्कूल के चारों ओर आठ किलोमीटर की परिधि में आने वाली सभी शालाओं को शामिल करके एक क्रीड़ा संकुल का निर्माण किया जा सकता है, जिसकी केन्द्रक संस्था वह हायर सेकण्डरी स्कूल हो, जहाँ क्रीड़ांगन की सुविधा उपलब्ध हो । शहरी क्षेत्रों में केन्द्रक संस्था के सदस्यो संस्थाओं की दूरी घटाकर एक किलोमीटर तक की जा सकती है। वहां आवश्यक्ता नुसार कन्या शालाओ का क्रीड़ा संकुल अलग बनाया जा सकता है। प्रत्येक विकास खंड में एक क्रीड़ा संघ की स्थापना करके भी क्रीड़ासंकुल अलग बनाया जा सकता है। प्रत्येक विकास खंड़ में एक क्रीड़ा संघ की स्थापना करके भी क्रीड़ांगन तथा सामग्री की कमी की पूर्ति की जा सकती है। प्रत्येक क्रीड़ा संकुल अपनी सदस्य संस्थाओं के सहयोग से तथा शासन से प्राप्त अनुदान की सहायता से गिने –चुने क्रीड़ागनों और सीमित क्रीड़ा –सामग्री की व्यवस्था कर क्रीड़ा –प्रतियोगिताओं, गतिविधियों तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था कर सकता हैं। क्रीड़ा संकुल को जिन शालाओ के पास खेल के मैदान की व्यवस्था है। उन्हें ही उपयुक्त बनाकर पूरे क्रीड़ा–संकुल की शालाओं के छात्र–छात्राओं की खेलकूद की गतिविधियां, प्रतियोगिताएँ एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। विकास खंड स्तर पर इसी प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिये। धनी कंपनियों/पूंजीपतियों को भी इसमें आर्थिक सहयोग देने अथवा क्रीड़ा संघों को दिये जाने वाले अनुदान का निर्धारण प्रतिवर्ष उनके कार्यो और उपलब्धियों का मूल्यांकन करने के बाद किया जाना चाहिये। क्रीड़ा–संकुलों और क्रीड़ा संघो का एक मूल–मंत्र होना चाहिये – न्यूनतम साधनों का अधिकतम उपयोग।

(3) खिलाड़ियों के अभ्यास एवं प्रशिक्षण से संबंधित समस्याएँ :–

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि हमारे प्रदेश की अधिकांश शालाओं में क्रीड़ागन तथा क्रीड़ा सामग्री का अभाव है। अतः खिलाड़ियों को अभ्यास एवं प्रशिक्षण की सुविधा कैसे दी जाय यह एक विचारणीय प्रश्न है।इस प्रश्न का हल भी हमें क्रीड़ा –संकुलों एवं क्रीड़ा संघों का गठन करके ढूँढ़ना होगा। इसके लिए आवश्यक होगा कि प्रत्येक क्रीड़ा संकुल अथवा क्रीडा संघ यह ज्ञात करे कि कौन–कौन सी सदस्य शालाओं अथवा केन्द्र शाला में की जा सकती है। तद्नुसार खिलाड़ियों के अभ्यास एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये। एक ही शाला में सभी प्रकार के खेलखूद की प्रतियोगितायें, अभ्यास और प्रशिण की व्यवस्था की जानी चाहिये। एक ही शाला में सभी प्रकार के खेलकूद की प्रतियोगितायें, अभ्यास और प्रशिक्षणों के आयोजन की व्यवस्था कठिन ही नहीं, असुविधाजनक भी है। अतः एक शाला में उसकी क्षमता के अनुरूप कुछ सीमित खेलकूद की गतिविधियों, प्रतियोगिताओं और प्रशिक्षणों के आयोजन की व्यवस्था अधिक सुविधाजनक और प्रभावी हो सकती है। शालाओ के क्रीड़ा–संकुल अथवा क्रीड़ा संघ खेलकूद के अभ्यास और प्रशिक्षण के लिये किसी एक ही संस्था में गतिविधियाँ आयोजित करने की केन्द्रीयकरण की नीति के स्थान में विकेन्द्रीयकरण और विशेषता की नीति अपनाना चाहिये। उनके नियंत्रण और मार्गदर्शन की व्यवस्था को किसी हद तक केन्द्रीकृत किया जा सकता है।

(4) क्रीड़ा प्रतियोगिताओं के आयोजन, खिलाड़ियों के चयन, आवास, भोजन एवं प्रशिक्षण से संबंधित समस्याएँ :–

क्रीड़ा प्रतियोगिताओं के आयोजन, खिलाड़ियों के आवास एवं भोजन तथा उनके चयन और प्रशिक्षण की उतनी ही अधिक समस्याएँ हमारे सामने खड़ी होती है जितना अधिक हम अनेक खेल प्रतियोगिताओं को एक ही स्थान पर आयोजित करने का प्रयास करते हैं। इन समस्याओं के हल करने के दो विकल्प हैं। प्रथम तो यह कि क्रीड़ा की विभिन्न प्रतियोगिताओं को एक स्थान पर आयोजित करने की बजाय हम इन्हे अनेक स्थानो पर आयोजित करने की व्यवस्था करें। दूसरा विकल्प यह है कि हम प्रदेश के कई स्थानों पर खेल ग्राम का निर्माण कर खेल– कूद के आयोजन की व्यापक सुविधाएं वहां उपलब्ध करायें। उचित होगा यदि हम खेल–प्रतियोगिताओं के आयोजन, खिलाड़ियो के आवास एवं भोजन की व्यवस्था खेल–प्रबन्धकों को और खेल प्रतियोगिताओं को सम्पन्न कराने तथा खिलाड़ियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था खेल विशेषज्ञों को सौपे। खिलाड़ियों के चयन और प्रशिक्षण की वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक पद्धति का विकास किये जाने की विशेष आवश्यकता है ताकि खिलाड़ियों के चयन में पक्षपात तथा बाह्य हस्तक्षेप के आरोप न लगाये जा सकें और प्रशिक्षण को त्रुटिपूर्ण न कहा जा सके। वस्तुतः किसी खिलाड़ी के खेल–प्रदर्शन की उत्कृष्टता को ही उसके चयन का एक मात्र आधार माना जाना चाहिए तथा उसके प्रदर्शन की निरन्तर समीक्षा करते हुए खेल में उसकी वरीयता निर्धारित की जानी चाहिये। खिलाड़ियों के वर्ष भर निरन्तर अभ्यास तथा उत्कृष्ट प्रशिक्षण को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। खिलाड़ियों को कठोर अनुशासन का आदी भी बनाया जाना चाहिए। खिलाड़ियों को कठोर अनुशासन का आदी भी बनाया जाना चाहिए।

(5) खिलाड़ियों के भविष्य से संबंधित समस्याएँ :–

यूरोपीय देशों की तुलना में भारत में खिलाड़ियों का भविष्य अंधकारमय नहीं तो निराशाजनक अवश्य है। इस छियानबे करोड़ की आबादी वाले देश में यूरोपीय देशों की तुलना में बहुत कम लोग खेलकूद को अपने जीविकोपार्जन का साधन अथवा भावी जीवन का कैरियर बनाने की बात सोचते हैं। यहां अधिकांश लोग खेलकूद को मनोरंजन, स्वास्थ्य–वर्धन अथवा ख्याति अर्जन के उद्देश्य से अपनाते है। अधिक से अधिक वे इसे अतिरिक्त आय का जरिया मानकर अपनाते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि भारत में खेलकूद का व्यावसायिक स्तर पर आयोजन नगण्य है। एक क्रिकेट खेल को छोड़कर शेष खेलों का व्यावसायिक स्तर पर आयोजन लगभग न के बराबर है। सेना, पुलिस, रेलवे, शिक्षा विभाग आदि कुछ विशिष्ट खिलाड़ियों को नौकरी देने की पहल अवश्य करते हैं किन्तु यह नाकाफी है। हमारे देश में खेलकूद की प्रतियोगिताओं का आयोजन अधिकांशतः शासकीय अनुदान पर, शासकीय मशीनरी द्वारा अपनी सार्थकता जताने के लिये तथा परम्परा का निर्वाह करने के उद्देश्य से रस्मी तौर पर किया जाता है ताकि वेतन और अनुदान का सिलसिला आगामी वर्षो के लिये जारी रहे। यह सामाजिक गतिविधि का अंग बनकर जनान्दोलन का रूप नहीं ले पाया है। क्योंकि हमने बच्चों को खेलकूद की सुविधा और संस्कार देने की कोई प्रभावकारी पहल नहीं की है।फलतः हमारे देश में समाज के बीच खेल संस्कृति का विकास ही नहीं हो पाया हैं। जो एक –एक नागरिक के मन में खेलकूद के लिये दिलचस्पी जागृत कर सके। अधिकांश लोग खेलकूद के प्रति उदासीन है। इसीलिये समाज में भी खिलाड़ियों का कोई विशिष्ट प्रतिष्ठापूर्ण स्थान नहीं है। इस प्रकार भारत में परिस्थितियां खेलकूद के अनुकूल नहीं है।

उपरोक्त परिस्थिति को खेलकूद के अनुकूल बनाने के लिये दो बातें विशेष रूप से आवश्यक हैं। पहली तो यह कि खेलकूद की गतिविधियों, प्रतियोगिताओं और प्रशिक्षणों का अधिकाधिक अशासकीयकरण और

व्यावसायीकरण किया जावे। जिला मुख्यालय से लेकर विकास खंड स्तर तक खेल संघों का गठन कर खेलकूद को प्रोत्साहन दिया जाय। शासकीय स्तर पर क्रीड़ा संकुलों के माध्यम से खेलकूद को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जाय। यदि संभव हो तो शाला संकुलों के अंतर्गत ही क्रीड़ा –संकुलों की स्थापना की जावे। तथा उनके विधिवत संचालन हेतु पर्याप्त प्रशासनिक और वित्तीय व्यवस्था की जावे। सभी स्तर के खिलाड़ियों को क्रीड़ा संबंधी गतिविधियों, प्रतियोगिताओं एवं प्रशिक्षणों में भाग लेने के लिये रेलवे कन्सेशन देने की व्यवस्था की जाय। खेलकूद को एक विशेष के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल किया जाय या फिर संभाग, राज्य तथा राष्ट्रस्तर की प्रतियोगिता में भाग लेने वाले खिलाड़ियों को क्रमशः 10,15 एवं 20 बोनस अंक प्रदान किये जावें । इतना ही नहीं, राष्ट्रीय स्तर पर पदक जीतने वाले खिलाड़ियों को राज्य स्तर पर और राष्ट्र स्तर पर खेल–प्रशिक्षक बनाया जाय। उन्हें वेतन के अतिरिक्त आवास, वाहन और रेलवे कन्सेशन जैसी सुविधाएं भी प्रदान की जावें।

(6) खेलकूद की वित्तीय व्यवस्था से संबंधित समस्याएँ :–

खेल शिक्षकों के वेतन भत्ते, क्रीड़ागन का निर्माण और रख–रखाव, क्रीड़ा सामग्री की व्यवस्था, खिलाड़ियों के आवास, भोजन, प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा क्रीड़ा प्रतियोगिताओं का आयोजन आदि के लिये व्यापक वित्तीय व्यवस्था की आवश्यकता होती है। निरंतर बढ़ती हुई मंहगाई इस व्यापक वित्तीय व्यवस्था की समस्या को और बढ़ा देती है। इसके निदान के लिये शासकीय और अशासकीय दोनों प्रकार के स्त्रोतों से धन जुटाया जाना आवश्यक है। शासकीय स्तर पर खेलकूद के लिये बजट में अधिक धनराशि का प्रावधान अपेक्षित है। इसी क्रम में मध्य प्रदेश के मिडिल और हाईस्कूलों में वर्तमान खेल–फीस को आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता है। प्राथमिक शालाओं में भी खेल–फीस के लिये जाने का प्रावधान किया जा सकता है। गरीब छात्र –छात्राओं पर इस फीस का बोझ न पड़े, इसके लिए अनसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के छात्र –छात्रों की खेल–फीस की क्षतिपूर्ति आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा किये जाने की व्यवस्था की जा सकती है। अन्य गरीब छात्र –छात्राओं की खेल –फीस की क्षतिपूर्ति शाला के गरीब छात्र कोष से की जानी चाहिये। धनी मानी व्यक्तियों तथा व्यापारिक कम्पनियों द्वारा गरीब –छात्रो को गोद लेने की प्रथा प्रारम्भ की जानी चाहिये। ताकि गरीब छात्र–छात्राओं की पढ़ाई और खेलकूद का खर्च वे उठा सके। क्रीड़ा संकुलों और खेल संघो को शासकीय अनुदान और अशासकीय दान दिलाने की व्यवस्था की जा सकती है।

खेलकूद के स्तरोन्नयन हेतु अन्य सुझाव :–

भारत देश और मध्य प्रदेश में खेलकूद का स्तर सुधारने के लिये निम्नांकित सुझाव भी विचारणीय है–

(1) मध्यप्रदेश के लोक शिक्षण संचालनालय में शारीरिक शिक्षा के संचालक का पद निर्मित करते हुए उसके अधीन क्रीड़ा –संचालनालय का गठन हो जिसकी शाखाएं संभाग, जिला और विकास खंड़ स्तर पर भी गठित की जावें।

(2) शारीरिक शिक्षा के राष्ट्रीय स्तर के कालेज लक्ष्मीबाई कालेज ऑफ फिजिकल एजुकेशन, ग्वालियर मे 2 सीटें मध्यप्रदेश के लिये सुरक्षित हैं। इन पर प्रतिवर्ष योग्यता एवं वरीयता के आधार पर चयन कर व्यायाम निर्देशकों/क्रीड़ा –अधिकारियों को प्रशिक्षण हेतु भेजा जावे।

(3) उच्च स्तर के रेफरी और अंपायर प्राप्त करने के लिये एन. आई. एस. की भांति एस. आई. एस. स्तर के प्रशिक्षण की व्यवस्था मध्य प्रदेश के शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय में की जावे।

(4) व्यायाम –निर्देशको एवं क्रीड़ा अधिकारियों की खेल प्रतियोगिताएं प्रतिवर्ष आयोजित की जावें जिनमें खेलों

के नियमों में नवीनतम परिवर्तनों की जानकारी के साथ विगत वर्ष के राज्य स्तरीय एवं राष्ट्र स्तरीय कीर्तिमानों की जानकारी दी जावें।

(5) राष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताओं के कम से कम 15 दिन पूर्व राज्य स्तरीय प्रतियोगिताएं सम्पन्न करा ली जावें तथा कम से कम एक सप्ताह के सघन प्रशिक्षण के बाद ही खिलाड़ियों को राष्ट्रीय प्रतियोगिता हेतु भेजा जावे।

(6) टीम–खेलो के लिये जितने खिलाड़ी राष्ट्रीय प्रतियोगिता हेतु भेजे जाते हैं। प्रशिक्षण में उसने दुगने खिलाड़ियों को बुलाया जावे और दो टीमें बनाकर उन्हें एक–दूसरे के विरूद्ध खेलने का अभ्यास और प्रशिक्षण दिया जावें। यहीं पर सब खिलाड़ियों का खेल प्रदर्शन देखने के बाद राष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिये भेजे जाने वाले खिलाड़ियों का अंतिम चयन किया जावे।

(7) खेल नियमों में नवीन परिवर्तनों तथा राज्य, राष्ट्र एवं विश्व स्तर पर कीर्तिमानों का अभिलेख खेल संचालनालय में रखा जावे तथा प्रतिवर्ष अपने संभागीय तथा जिला कार्यालयों को उपलब्ध कराया जावे।

(8) उत्कुष्ट खिलाड़ियों को समारोहपूर्वक राज्यस्तर एवं राष्ट्रस्तर पर पुरस्कृत किया जावे।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

इक्कीसवीं सदी के भारत में विमर्ष के विविध परिदृष्य

डॉ0 आलोक कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर–इतिहास विभाग
उ0प्र0 विकलांग उद्धार डॉ0 शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226017

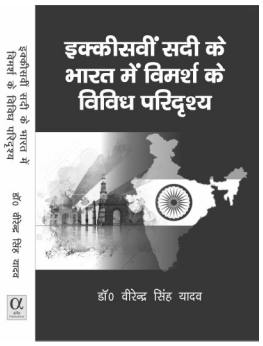

किसी लेखक की पुस्तक की प्रमुख विशेषता यह होती है कि वह पाठकों को सामाजिक समस्याओं के प्रति कैसे आकर्षित करता है। इस दृष्टि से डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव के लेखन पर गौर करें तो इसमें वे चौबीस करेक्ट सोने की तरह वे शुद्ध नजर आते हैं।

डॉ0 वीरेन्द्र की इक्कीसवीं सदी के भारत में विमर्श के विविध परिदृश्य नामक पुस्तक में वर्तमान से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को उठाया गया है–सम्पाकीय में इन्हीं कुछ बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हुए आपका मानना है कि आज राष्ट्रों की सीमाएं टूट रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शासन तन्त्र की बात चल रही है, फिर भी युद्ध की विभीषिका से प्रत्येक व्यक्ति अपने भविष्य के प्रति आशंकित है। कहीं व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय अवसरों से उत्साहित हैं तो कहीं विनाश से आतंकित। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में राजनीतिक परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। राजनीति में होने वाले (मूल्यों, आदर्शों, सिद्धान्तों एवं प्रतिमानों के) बदलाव को नई शताब्दी में तेजी से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में राजनीति के चहुँमुखी पतन होने से नैतिकता के सभी मूल्य ध्वस्त कर दिये हैं। अब जनता के सभी मसले चाहे वे धर्म से जुड़े हों या पेट से, वोट की राजनीति तय करती है। सत्ता द्वारा भ्रष्टाचार और दुःश्चरित्रता का खुला संरक्षण, अपराध तथा राजनीति के गठबन्धन ने आम जन में असहायता एवं असुरक्षा की भावना भर दी है। वोट की राजनीति ने गुटबन्दी एवं जातिवाद का भरपूर पोषण किया है। जनता का विश्वास सभी प्रकार की संवैधानिक रक्षात्मक इकाइयों से उठ गया है। जनता को राजनीतिक कुचक्रों ने इतना छला है कि वह राजनेताओं पर विश्वास करने को तैयार नहीं है।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव का व्यक्तिगत मानना है कि हमारे देश की राजनीति वर्तमान में सत्ता प्रतिष्ठानों पर कब्जा करने की राजनीति बन गई है और आजाद भारत में जिस राजनीतिक व्यवस्था की परिकल्पना हमारे स्वाधीनता सेनानियों ने की थी वह कहीं दिखाई नहीं देती। पुस्तक में आशा की किरण भी टमटमाती नजर आती है वह यह कि इधर मीडिया ने भ्रष्ट राजनीतिक संस्कृति को बेनकाब करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। इसमें व्याप्त राजनीतिक परिवेश लज्जित करने वाला है। लेकिन समकालीन राजनीतिक बोध और उससे प्रभावित विभिन्न वर्गों की मानसिकता के विश्लेषण का कार्य जितना होना चाहिए, वह उतनी शिद्दत के साथ अभी नहीं हो पा रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक की मान्यता या यूँ कहें कि व्यवहारिक दृष्टिकोण है कि परिवर्तन की आंधी से हम लड़ नहीं सकते। बाजारवाद और प्रोद्यौगिकी जैसे इसके अत्याधुनिक कारकों को थोड़ा झुककर अपने ऊपर से गुजर जाने देना ही समझदारी है और यही सृजन एवं समय का तकाजा होना चाहिए। क्योंकि श्रम बदलता है संस्कृति में। और संस्कृति भाषा में और भाषा एक मानवीय विप्लव में.... क्योंकि चीजों का अन्त चीजों की शुरुआत से जुड़ा है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह पुस्तक समाज विज्ञान में रूचि रखने वाले, वर्तमान मुद्दों पर अधिक जानकारी हासिल करने वाले जिज्ञासु पाठकों को वेहद पसंद आएगी।

पुस्तक : इक्कीसवीं सदी के भारत में विमर्श के विविध परिदृश्य
संपादक : डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव
ISBN : 978-93-82302-70-4
संस्करण : प्रथम–2013
मूल्य : 950.00
प्रकाशक : अल्फा पब्लिकेशन्स 4398/5, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

बदलते परिदृश्य में आज का भारत : चिन्तन के अभिनव परिप्रेक्ष्य

डॉ0 धनन्जय सिंह
487बी–1, प्रथम तल हरदेवपुरी, गौतमनगर, नई दिल्ली–110049

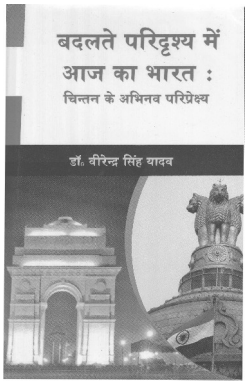

डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव के द्वारा लिखित प्रस्तुत पुस्तक में देश के समक्ष उत्पन्न विभिन्न समकालीन वैश्विक मुद्दों को उठाकर उसके समाधान की कोशिश करने का विनम्र प्रयास किया गया है। लेखक अपने इस प्रयास में कितने सफल हुए हैं, इस हेतु इस पुस्तक को पढ़कर ही जाना जा सकता है।

अनेक सामाजिक मुद्दों को उठाते हुए डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव ने अपनी इस पुस्तक में इनके समाधान करने की कोशिश की है। इसमें कोई दो राय नहीं कि आज आपस में मानव–मानव के बीच कश–मकश जारी है। और वह इसी रूप में जीने के लिए संघर्षरत है। कहीं धनबल, बाहुबल, सामंतवाद अथवा राजनीतिक सत्ता का मद उसे उसके अधिकारों से वंचित कर रहा है, तो कहीं सत्ता की अकर्मण्यता एवं अनिच्छा उसे इन अधिकारों से दूर रखे हुए है। आज जब पूरी दुनिया में साम्राज्यवाद के क्रान्तिकारी प्रतिरोध की धारा कमजोर है, ऐसे समय में आम आदमी के बीच विशेषकर मध्य वर्ग के बीच से ऐसे विद्रोह पैदा हो रहे हैं, जैसा कि अभी हमें पिछले दिनों खाड़ी के देशों, मिस्र के राष्ट्रपति हुस्नी मुबारक एवं लीबिया के राष्ट्रपति गद्दाफी के खिलाफ देखने को मिला है।

यदि समाज में हम परिवर्तन की बात करें तो आज आर्थिक परिवर्तन के साथ–साथ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दूसरे परिवर्तन भी परम आवश्यक हैं जिसमें यह भी परिवर्तन आवश्यक है कि लोगों के सोचने के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आये। पुस्तक का उद्देश्य यहाँ किसी वाद का समर्थन या विरोध का नहीं है बल्कि वर्तमान में उपजी विसंगतियों के समाधान का है। इस बात पर भले ही किसी को कोई आपत्ति हो लेकिन आज यह जरूरत हो गई है कि समाज और लोगों को बदलने के लिए वर्ग–संघर्ष निरन्तर जारी रहना चाहिए। आर्थिक विकास और किसी भी संगठन को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता है, चाहे वह आधुनिकीकरण या नगरीकरण का ही मार्ग क्यों न हो। इस दृष्टि से देखा जाए तो आज एक ऐसी नियोजित समाजवादी, अर्थव्यवस्था विकसित करनी होगी जिससे नौकरशाही पर नियंत्रण हो, और विकास को सामाजिक और राजनैतिक दबावों से मुक्त रखा जाय। आर्थिक नियोजन को जनता से जोड़ा जाय और उन्हें स्वयं ही जुड़ने के लिए प्रेरित किया जाय, इसके साथ ही सबसे महत्वपूर्ण यह है कि सामूहिक हित को सर्वोपरि रखा जाय।

पुस्तक की अन्तिम मान्यता है कि किसी भी नीति एवं सुधार के लिए आवश्यक हो जाता है कि हम योजनाओं को ईमानदारी से लागू करें और उसका मूल्यांकन एवं व्यक्तिगत हितों को सामूहिक हित में बदलकर और जनता पर विश्वास रखते हुए इसे आगे बढ़ाएं। समाजवाद के निर्माण में पूरी तरह तत्पर, जुटकर एवं वैज्ञानिक प्रयोग के साथ हमें ऊँचे लक्ष्य हासिल करने होंगे। तभी हम समाज एवं देश का विकास कर सकते हैं। बदलते परिदृश्य में आज का भारत में चिन्तन के अभिनव परिप्रेक्ष्य के इन्हीं सभी बिन्दुओं को समेटे हुए यह पुस्तक विचारधराओं के विविध आयामों को रेखांकित करती है। आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक शोधार्थियों एवं जिज्ञासु पाठकों को अवश्य पसंद आएगी।

पुस्तक : बदलते परिदृश्य में आज का भारत : चिन्तन के अभिनव परिप्रेक्ष्य
लेखक : डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
ISBN : 978-93-82302-87-2
संस्करण : प्रथम, 2013
मूल्य : 850.00
प्रकाशक : अल्फा पब्लिकेशन्स 4398/5, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वर्तमान सदी का भारत : नई चुनौतियाँ, नए सवाल

डॉ0 अजीत सिंह राही
पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यु., आस्ट्रेलिया

डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव ने अपनी इस पुस्तक में इक्कीसवीं सदी के कुछ ज्वलंत प्रश्नों को उठाकर उसके समाधान करने की कोशिश करने का प्रयास लेखक ने किया है।

इक्कीसवीं सदी की महानतम एवं व्यापक तकनीकी, आर्थिक तरक्की की चकाचौंध के बीच वर्तमान में कई अंधेरे आज भी आदिम युग के अवशेषों के रूप में यहाँ यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं। प्रतिदिन करोड़ों–अरबों का व्यापार करने वाले महानगर में आपको भूख भी आसपास ही कहीं दुबकी नजर आ जायेगी। इसके साथ ही पाँच सितारा स्कूलों के साये में ही निरक्षरता हाथ–पाँव मारती दिख जायेगी, यही नहीं मानव नस्ल के अधिक परिष्कृत, अधिक सुसंस्कृत होने के खुशफहमी भरे दावों के बीच मानव द्वारा मानव पर वीभत्सतम यातनाओं और अत्याचारों के रोंगटे खड़े कर देने वाले मामले हमारे समक्ष (राजधानी दिल्ली में 16 दिसम्बर 2013 को एक फिजियोथेपिस्ट के साथ अमानवीय एवं क्रूर कृत्य) हैं। विकास और परिष्कार की सैकड़ों साल की यात्रा के बाद भी आज हम प्रत्येक मानव को वे बुनियादी अधिकार दिलाने के लिए जूझ रहे हैं, जो सभ्यता की पहली चेतना के साथ ही सबको सहज उपलब्ध हो जाने चाहिए थे।

यह ठीक है कि पुरानी विचारधाराएँ दुनियां भर में मिट रही हैं, इसलिए विचाराधारा से विहीन राजनीतिक दल अब ताकत के छोटे–बड़े पुंज भर हैं जिनके बीच अलग–अलग तरह के वैचारिक आग्रह नहीं बल्कि राजनेताओं और शासक वर्ग के कथित घोटाले और चुनाव काल या संसदीय सत्र के दौरान बिलों पर मतदान के लिए साधे गए जोड़–तोड़ ही महत्व रखते हैं। जबकि त्यागी कहे जाने वाले बाबाओं के पास संपत्ति अरबों करोड़ कैसे पहुँच गयी है ? यह एक चिन्तन और चिन्ता का विषय क्यों नहीं हो सकता है।

आज का यथार्थ–बाजारवाद, गरीबी, क्षेत्रीय, विषमता, प्रदूषण, वनदोहन, वैश्वीकरण, मानवाधिकरों के प्रति संवेदनशील नहीं हैं। बाजारवाद ने समस्त नैतिक मूल्यों को तोड़ दिया है। आज नारी सौन्दर्य एवं काया का विज्ञापन के रूप में बेहिचक उपयोग किया जा रहा है। प्रदूषण ने सामाजिक स्वास्थ्य को बिनष्ट कर दिया है। लोगों के स्वस्थ रहने की शक्ति लगभग समाप्त हो चुकी है। वस्त्र, भोजन तथा वृत्ति सम्बन्धी समस्याएं प्रखर हैं। वैश्वीकरण से किसानों, मजदूरों की समस्याओं में बढ़ोत्तरी हुयी है। छोटे–छोटे उद्योग बन्द हो रहे हैं, बेरोजगारी बढ़ रही है। मानवाधिकार के प्रश्न जटिल हो रहे हैं। यदि इनका समुचित समय से समाधान नहीं होगा तो सामाजिक वैमनस्य से बचना दुरूह होगा। बड़े आश्चर्य एवं दुःख के साथ डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव का मानना है कि आज विश्व का कोई भी देश,समुदाय मानव अधिकारों के व्यापक कियान्वयन एवं उपयोग का आदर्श प्रस्तुत नही कर पाया है। जब तक मानव अधिकारों की व्यापक सर्वस्वीकृति नही बन पाती है, तब तक मानव अधिकार मात्र मन लुभावन ही रहेगा।

इस प्रकार भारतीयों में 'विरूद्धों के सामंजस्य' के फलस्वरूप एक ऐसी जन–चेतना उन आदर्शों को पुनः स्थापित करने में सहायक होने की आवश्यकता महसूस हो रही है, जिसके आधार तले भ्रष्टाचार रूपी दानव का अंत होगा तथा लोक–जनमानस इसके बंधन से मुक्त होगा। इन्हीं सभी बिन्दुओं को समेटे हुए यह पुस्तक वर्तमान सदी के भारत अनेक चुनौतियाँ एवं नए सवालों तथा विचारधाराओं के विविध आयामों को रेखांकित करती नजर आती है।

पुस्तक : वर्तमान सदी का भारत : नई चुनौतियाँ, नए सवाल
लेखक : डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव
ISBN : 978-93-81604-56-4
संस्करण : प्रथम.2013,मूल्य–1595.00
प्रकाशक : विस्टा इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस वी0–196,सी0–11, शिवसाधना मन्दिर के पास, यमुना विहार दिल्ली–110002

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

साहित्य में कथ्य और षिल्प के सामाजिक सरोकार

डॉ0 अंजु दुआ जैमिनी,
839, सेक्टर–21 सी. पार्ट–2, फरीदाबाद (हरियाणा)

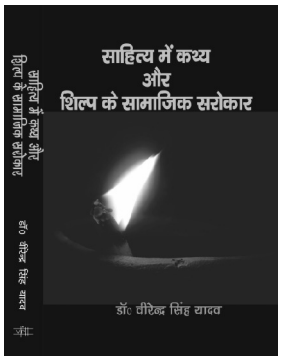

लेखक की मान्यता है कि जब कुछ भी इतिहास नहीं, कुछ भी अतीत नहीं, हर जगह स्थापित का विरोध है, उसका खण्डन है, अति संदेहवाद है। तो साहित्य की रचना पर भी इसका असर पड़े बिना कैसे रहेगा। लिहाजा लेखकों ने नये समझे जाने के प्रयास में मानव मन की अजीब–अजीब प्रवृत्ति की कहानियाँ और कविताएँ लिखना प्रारम्भ कर दिया। नया हर कुछ अच्छा, सब जायज कहते हुए लेखकों ने कुण्ठाओं का चित्रण करना प्रारम्भ किया। अब तो साहित्य का अधिकतर उद्देश्य अब संदेश देना नही यथार्थ व वीभत्स यथार्थ का चित्रण मात्र रह गया है। जो जितना काला है, उसे उतना सत्य समझने की होड़ में जीवन का स्याह पक्ष ही उभर कर आने लगा है। उत्तर आधुनिकता के पक्षधर कहते हैं कि हम छोटी–छोटी अस्मिता को संजो रहे हैं। आज अनैतिकता को स्वीकार कर लिया गया है। बच्चों के अन्दर भी मासूमियत खत्म होती जा रही है। बाहर का संवेदनहीन विपरीत व वीभत्स सा जीवन उचित ही है। डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव की प्रस्तुत पुस्तक में साहित्य के समकालीन विविध सरोकारों को रेखांकित कर इसके विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

आधुनिकीकरण परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जो किसी परम्परागत अथवा पिछड़े हुए समाज में प्रौद्योगिक विकास, धर्म निरपेक्षता, लौकिकता, स्वतन्त्रता एवं गतिशीलता जैसी विशेषताओं के प्रभाव में वृद्धि करने लगती है। वस्तुतः उत्तर आधुनिकता एक सिद्धान्त या विचारधारा न होकर अनगिनत शाखाओं वाले विशाल वृक्ष के समान हैं। उत्तर आधुनिकतावाद, सूचना संचार–युग, बहुराष्ट्रीय पूंजीवाद के वर्तमान युग की उस संस्कृति का नाम है, जिसका कोई केन्द्रवाद नहीं है। वैसे तो उत्तर आधुनिकता शब्द के अनेक अर्थ हैं, लेकिन ये अर्थ इतने व्यापक हैं कि उन्हें परिभाषाओं में नहीं बांधा जा सकता। विभिन्न विद्वानों के अनुसार उत्तर आधुनिकता सन् साठ के दशक के उन मुक्ति आन्दोलनों, स्वाधीनता संघर्ष, निरंकुश यौन प्रवृत्तियों से निकला है, जिसने सभी पुरानी नीतियों, सिद्धान्तों, विचारधाराओं का अन्त कर दिया है।

पुस्तक की मान्यता है कि रचनाकार के खट्टे–मीठे जीवन अनुभव साथ ही स्वस्थ एवं वैज्ञानिक दृष्टि की सफल रचना का आधार स्तम्भ होते हैं। दूसरी ओर आलोचना के लिए भी आलोचक के समक्ष सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवन–अनुभवों और मानव–मर्म के बोध वाली दृष्टि का होना लाजिमी हैं। यही निष्कर्ष रचना और आलोचना के अन्तः सम्बन्धों का यथार्थ है। वास्तविक आलोचना से रचना जीवनदान पाती है वहीं दूसरी ओर उत्कृष्ट रचना से आलोचना की बारीकियों को नया रूप मिलता है। वास्तविकता यह है कि आलोचना और रचना का अन्तः सम्बन्ध इतना संवेदनशील एवं सूक्ष्म है कि एक दूसरे के अभाव में दोनों का आस्तित्व अन्धकार में जाता प्रतीत होता है।

साहित्य में इन्हीं सभी बिन्दुओं को समेटे हुए यह पुस्तक डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव की विचारधराओं के विविध आयामों को रेखांकित करती है।

पुस्तक : साहित्य में कथ्य और शिल्प के सामाजिक सरोकार
लेखक : डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव
ISBN : 978-93-81604-48-9
संस्करण : प्रथम. 2013
मूल्य : 1095.00
प्रकाशक : विस्टा इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस वी0–196, सी0–11, शिवसाधना मन्दिर के पास,यमुना विहार दिल्ली–110053

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

नई सहस्राब्दी का भारत : वर्तमान परिदृष्य एवं भविश्य की चुनौतियाँ

डॉ0 गीता यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान विभाग
टी0डी0 कालेज, जौनपुर, उ.प्र.

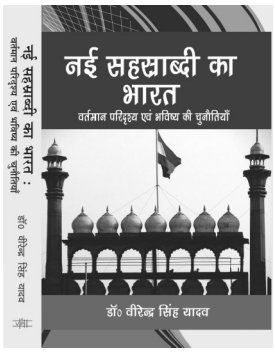

डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव की इस पुस्तक में नई सहस्राब्दी के भारत की वर्तमान चुनौतियाँ को रेखांकित किया गया है। परम्परा से अतिक्रमण समाज के साथ–साथ साहित्य में परिलक्षित होता है। यद्यपि परम्परा से अतिक्रमण साहित्य में पहले भी देखने को मिलते रहे, विभिन्न वादों ने पहले भी अपने–अपने ढंग से परम्परा को तोड़ने का प्रयास किया, पर जिस प्रकार समग्रता में मूलोच्छेद कर देने की नीयत से उत्तर–आधुनिकता प्रहार पर प्रहार करती जा रही है, समग्रता में किया जाने वाला प्रहार इससे पहले साहित्य में दृष्टिगत नहीं हुआ है।

जब हम मानवता के अन्त की बात कर रहे हों। तो ऐसे समय में मानव और भी निरीह और तन्हा हो जाता है, बावजूद अपनी सारी प्रगति के। साथ ही आर्थिक उदारीकरण के बाई प्रोडक्ट के रूप में उपभोक्तावाद उभर रहा है। प्रकाश मनु के शब्दों में कहें तो ''यकीनन उत्तर आधुनिकता हमारे देश की भयंकर गरीबी और शोषण से ध्यान हटाकर यथास्थितिवाद के पोषण का साम्राज्यवादी षड़यन्त्र है''। यहाँ एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि उत्तर आधुनिक विमर्श में जब साहित्य, इतिहास एवं महावृतान्तों के अन्त की बात कही जाती है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि साहित्य की पवित्रता, उदारता या गंभीरता उत्तर आधुनिक युग में घटित हुई है। साहित्य बुनियादी तौर पर सृजनात्मक होता है। यहाँ तक कि विध्वंसकारी या अराजकतावादी साहित्य में भी अपनी आंतरिक सृजनात्मकता रहती है। किन्तु कुछ विद्वानों का मानना है कि आम हिन्दी साहित्य में यह आन्तरिक सृजनात्मकता एक–आध लेखकों को छोड़कर कहीं भी देखने को नहीं मिलती। यह सत्य के कितने करीब है यह बात हमें आलोचकों पर ही छोड़ देनी चाहिए।

अब एक साहित्यकार के लिए यह आवश्यक हो गया है कि अपनी सृजन प्रक्रिया में वह पृथ्वी तथा मनुष्य, दोनों के संरक्षण की बात कर उनका खास ध्यान रखे। भले ही पूँजी से सत्ता अनेक गठजोड़ कर ले लेकिन उत्तर–आधुनिकता की हवा ने लोक जनमानस को भी धीरे–धीरे होशियार बना दिया है। जैसा कि कहा जाता है कि सब कुछ समाप्त हो गया लेकिन अभी सब कुछ खत्म नहीं हुआ है। इस आपाधापी के दौर में भी हम पांच सितारा से निकलकर चोखा–बाटी खा सकते हैं, अमीरी वाली दोस्ती छोड़कर हम किसी गरीब को गले लगा सकते है, बाँसुरी का आनन्द ले सकते हैं सुविधायुक्त लिफ्ट संस्कृति के स्थान पर सीढ़ियों का सहारा ले सकते हैं, शहर की भागम–भाग जिन्दगी को छोड़कर हम गाँव की गलियों में विचरण कर सकते हैं। बाजारवाद से निकलकर अपना खयाल खुद रख सकते हैं। हवाई जहाज एवं हेलीकॉप्टर से उतरकर पैदल चलकर सेहत बना सकने का शौक पाल सकते हैं। बस हमें इसके चुनाव करने में अपनी सुख संस्कृति को छोड़कर जनसंस्कृति की ओर मुड़ना होगा। वर्तमान की समस्याओं के इन्हीं सभी बिन्दुओ को समेटे हुए यह पुस्तक लेखक डॉ. वीरेन्द्र की विचारधाराओं के विविध आयामों को रेखांकित करती है।

पुस्तक : नई सहस्राब्दी का भारत : वर्तमान परिदृश्य एवं भविश्य की चुनौतियाँ
लेखक : डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
ISBN : 978-93-81604-52-6
संस्करण : प्रथम.2013
मूल्य : 1295.00
प्रकाशक : विस्टा इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस वी0–196,सी0–11, शिवसाधना मन्दिर के पास, यमुना विहार, दिल्ली–110053

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

साहित्य के बदलते परिप्रेक्ष्य : दषा एवम् दिषा

डॉ0 सरिता बुधू
अध्यक्ष भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन, मॉरीशस

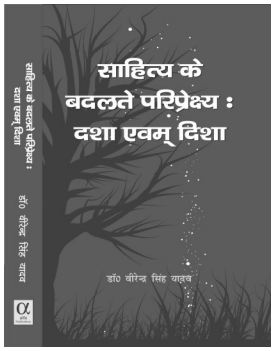

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की इस पुस्तक की मान्यता यह है कि वर्तमान समय में साहित्य का सृजन भले ही अधिक हो रहा है किन्तु गुणवत्ता की कमी है। आज मानव मूल्य, भारतीय संस्कृति, अस्मिता संकट के दौर से गुजर रही है। आज के युग में पाठक की रूचियाँ, परिवर्तित हो रही हैं। संचार क्रांति और भूमण्डलीकरण, बाजारवाद के फलस्वरूप सूचनाएं, जानकारियाँ, रोचक ढ़ंग से परोसी जा रही हैं। जबकि सत्यं, शिवं, सुन्दरं का स्रोत माने जाने वाले साहित्य में अश्लीलता, क्षणिकता, दिशाहीनता का बोलबाला दृष्टिगोचर होने लगा है। आज साहित्यकार रचना धर्म से भटक गया है उसका मुख्य उद्देश्य अर्थ और सत्ता से जुड़ाव हो गया है। आज के अधिकतर साहित्यकार साहित्य सृजन नहीं बल्कि उत्पादन कर रहे हैं। साहित्य में स्वांतः सुखाय का भाव निहित होता है। जब तक स्वांतः के साथ परांतः नहीं होगा तब तक साहित्य की सार्थकता को संदेह की दृष्टि से देखा जाता रहेगा। वर्तमान साहित्य से लोकतत्व, देश व भाषा, लोकोक्तियाँ, मुहावरें, कहावतें, जैसे तत्व गायब हो गये हैं। यही कारण है कि जनसामान्य ने ऐसे रसहीन कृत्रिम साहित्य से दूरियाँ बढ़ा ली हैं। इन सबके बीच एक सुखद एवं आशा भरी बात यह है कि श्रेष्ठ और मूल्यपरक रचनाएं सदैव से ही पढ़ी जाती रही हैं। और आगे भी इनका महत्व कम नही होगा। इस दृष्टि से लेखक, प्रकाशक को एक बार पुनः सोचना होगा।

पठन–पाठन एवं साहित्य के प्रति रूझान को दर्शाते हुए लेखक का मानना है कि साहित्य केवल समय बिताने का माध्यम न हो, बल्कि उसे पढ़कर पाठक को संतुष्टि एवं समय की सार्थकता की अनुभूति होनी चाहिए। जिससे वह अपने मित्रों को भी पठन हेतु प्रेरित कर सके। विकृत मानसिकता से परहेज होना चाहिए। वर्तमान युग कम्प्यूटर का युग है। श्रेष्ठ साहित्य इण्टरनेट पर भी उपलब्ध होना चाहिए और इसकी सामान्य पाठक के लिए साहित्य की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए। इसमें सरकार की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो सकती है। सरकार द्वारा पुस्तकालयों एवं वाचनालयों की व्यवस्था और अच्छी तरह होनी चाहिए।

अनेक अमूल्य सुझावों को दर्शाते हुए इस पुस्तक के लेखक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि चूंकि साहित्य मानवीय संबधों, संवेदनाओं को परिष्कृत कर उदात्त जीवन मूल्यों की स्थापना करता है। इसलिए अश्लील, अगंभीर साहित्य पर प्रतिबंध लगाना होगा। प्रारंम्भिक पाठ्यक्रम में प्रेरणादायी महापुरुषों की जीवन गाथाएं होनी चाहिए, जिनके जीवन में संघर्ष एवं पुस्तकों ने कमाल दिखाया है। डॉ0 वीरेन्द्र अपनी बात को बढ़ाते हुए आगे लिखते हैं कि इक्कीसवीं शताब्दी में पाठक और लेखक के बीच ऐसा संवाद होना चाहिए जो गहरी चिंता एवं मानवीय संवेदनाओं के साथ व्यक्त हो और उस पर औपचारिक भाषण छोड़ ईमानदारी से सोचें। हो सकता है कि हम साहित्य में समाधान नहीं निकाल पायें, यह जरूरी भी नहीं है लेकिन हम आम जन को होशियार कर सकते हैं। साहित्य से समाधान की उम्मीद भी नहीं करनी चाहिए। लेकिन समाधान की ओर चलने की उम्मीद तो करनी ही चाहिए। जो इस ओर चलने का भी विरोध कर रहे हैं – वे स्वयं भी गलत दिशा में जा रहे हैं और अपने पाठकों को भी ले जा रहे हैं। साहित्य के इन्हीं कुछ बिन्दुओं एवं समस्याओं को समेटे हुए डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की प्रस्तुत पुस्तक कुछ जिज्ञासाओं का समाधान करती नजर आती है। जो सामान्य जन के लिए उपयोगी हो सकती है।

पुस्तक : साहित्य के बदलते परिप्रेक्ष्य : दशा एवम् दिशा
लेखक : डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव
ISBN : 978-93-82302-86-5
संस्करण : प्रथम. 2013
मूल्य : 695.00
प्रकाशक : अल्फा पब्लिकेशन्स 4398/5, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

हिन्दी साहित्य में समय, समाज और संवेदना के विविध परिदृष्य

डॉ0 आषा वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
डी.बी.एस. कालेज, गोविन्द नगर, कानपुर, उ.प्र.

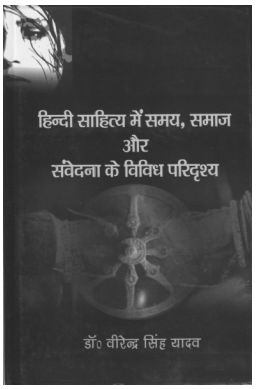

जनकल्याण की भावना के कारण साहित्यकार समाज सापेक्ष होता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि सच्चा साहित्य साधक वही होता है। जो अपने साहित्य के माध्यम से समाज की अच्छाइयों और बुराइयों को अपनी लेखनी से जन मानस तक पहुँचाता है।

वर्तमान समय की बात करें तो आज के साहित्य में अराजकता, आतंकवाद और भ्रष्टाचार, पूँजीपतियों के अत्याचारों और कर्ज के भार से दबा आम आदमी अर्थात् जनता की करुण अवस्था का चित्रण व्यापक पैमाने पर देखने को मिलता है। दीन–दुखी जनता की भावनाओं को वाणी "श्वानों को मिलता दूध–वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं", कहकर दी गई। नागार्जुन आज व्यक्ति की पीड़ा का वर्णन इस प्रकार करते हैं –"मकान नहीं खाली है/दुकान नहीं खाली है/स्कूल नहीं खाली, खाली नहीं कॉलेज/खाली नहीं टेबल, खाली नहीं मेज/खाली अस्पताल नहीं/खाली हाल नहीं/खाली है चेयर नहीं, खाली नहीं सीट/खाली नहीं फुटपाथ, खाली नहीं स्ट्रीट/खाली नहीं ट्राम, खाली नहीं ट्रेन/खाली नहीं माइण्ड, खाली नहीं ब्रेन/खाली है हाथ, खाली है पेट/खाली है थाली, खाली है प्लेट।

वर्तमान युग में वैज्ञानिक विचारधारा की असाधारण सूचना संचार का फैलता मायाजाल प्रगति और अन्वेषण के विस्तार से आधुनिकता के आग्रह उत्तरोत्तर विकसित हो रहे हैं। इसके परिणाम स्वरूप इसमें मनुष्य की गरिमा का नये स्तर पर उदय हुआ है तथा माना जा रहा है कि मनुष्य अपने में स्वतः सार्थक, सम्पूर्ण और मूल्यवान है। वह आन्तरिक शक्तियों से सम्पन्न साथ ही चेतन–स्तर पर अपनी नियति के निर्माण के लिए स्वतः निर्णय लेने वाला स्वम्भू है। इसलिए आज सृष्टि के केन्द्र में यही प्राणी बैठा है। अतः सृष्टि के हर क्रिया–कलाप मनुष्य के पोषण और संवर्धन के लिए ही हैं। 'सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया' के औपनिषदीय मन्त्र सिर्फ उच्चारण के लिए रह गये हैं। इन सभी का हनन कर खुद को सुखी बनाना जीवन का मन्त्र हो गया है। इसकी मूल वजह यह है कि अप्रत्याशित तकनीकी उपलब्धियों ने मानव को जीवन की सम्पन्नता और समग्रता का पर्याय बना दिया है। सामाजिक, राजनैतिक, बौद्धिक, मानसिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में उसमें प्रभाव प्रकट हुए हैं। निरन्तर परिवर्तनशील–फैशन के सतही रूपों से लेकर स्थायी मानव–मूल्यों के निर्माण तक उसमें लम्बे हाथों की पहुँच हो गयी है। जो विचार उसके विरोधी हैं, वे पुरातन–पन्थी एवं दकियानूसी कहलाते हैं। भौतिकवाद के समस्त उपकरणों को समेटकर जीवन की सुविधाओं को एकत्रित करना ही उसका आदर्श है। इसीलिए तो स्वार्थ साधना के स्वर्ण–स्वप्न से जागने वाली कोई भी ध्वनि उसे कर्कश और अनुचित नहीं लगती है।

इन विषम परिस्थितियों में साहित्यकारों का दायित्व बढ़ जाता है कि आखिर वह ऐसा क्या करें कि जिससे स्थिति में सन्तुलन बना रहे। अब समय आ गया है कि हमें व्यक्तिगत रूप से अपने शाश्वत् मूल्यों की रक्षा करनी होगी, अन्यथा इस तरह के साहित्य से हमारा आँचल मैला हो जाएगा। साहित्य का सौन्दर्य शारीरिक धरातल तक ही सीमित न रहे बल्कि आत्मा की गहराई में प्रवेश करे, इस बात की ओर अधिक सावधानीपूर्वक केन्द्रित कर हमें आने वाले साहित्य की अनिवार्यता तलाश करनी होगी। साहित्य के बदलते परिदृश्य एवं इन यक्ष प्रश्नों के समाधान हेतु इस पुस्तक की कल्पना की गई है।

इस पुस्तक में डॉ. वीरेन्द्र की विचारधारा के विविध आयामों को रेखांकित किया गया है; अर्थात् साहित्य की प्रारम्भिक समझ से लेकर वर्तमान दौर तक की सोच एवं अन्तर्मन के अनेक उतार–चढ़ाव देखने को मिलेंगे। जो समकालीन परिवेश को दृष्टिगत रखते हुए सृजित किए गये हैं। लेखक अपने इस प्रयास में कितना सफल हुए हैं, इस हेतु आपकी प्रतिक्रिया हमाारे लिए प्रेरणास्रोत का कार्य तो करेगी।

पुस्तक : हिन्दी साहित्य में समय, समाज और संवेदना के विविध परिदृश्य
लेखक : डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव
ISBN : 978-93-81604-53-3
संस्करण : प्रथम.2013 मूल्य : 895.00
प्रकाशक : विस्टा इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस वी0–196,सी0–11, शिवसाधना मन्दिर के पास,यमुना विहार दिल्ली–110053

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

हिन्दी साहित्य में हाशिए का विमर्ष : संघर्ष और मुक्ति के अभिनव क्षितिज

डॉ0 देवेनबरा
आसाम

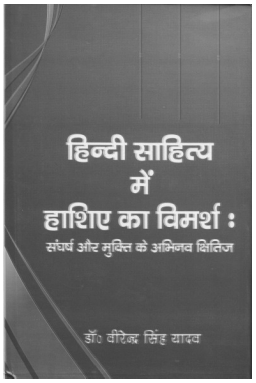

समकालीन साहित्य की रचना प्रक्रिया में भी इस तथ्य पर निरन्तर दृष्टि रही है कि वह जन– मन तक पहुँच सके। इसलिए उसमें कला का विशेष आग्रह नहीं दिखाई देता है, आज के साहित्य में प्रतीकों की जटिलताओं को स्थान न देकर सीधे सहज रूप में आदमी की बात को आम आदमी तक पहुँचाने का प्रयास है। कोई भी साहित्य में जब तक तन्मय करने, संवेदित करने या गंभीर सोच के लिए प्रवृत्त करने वाली बुद्धि, राग–समन्वित भाव प्रणाली विकसित नहीं होती, तब तक पाठक तक वह समग्रता में नहीं पहुँच पाता है क्योंकि ऐसी स्थिति में लेखन का जो रूप होता है वह काम चलाऊ होता है। जीवन का वैविध्य, उसका राग, शोक, कर्म दर्शन, उत्कर्ष, अपकर्ष, सफलता, असफलता, तात्कालिक समस्या यानी एक तरह का सम्पूर्ण परिवेश साहित्य का क्षेत्र नहीं होता, तब तक जनजीवन में साहित्य की भागीदारी संभव नहीं होती। जनजीवन में आत्मसात् होकर ही लेखक उसे बदल सकता है, जो उसके भीतर विवेक, प्रतिरोध और उत्पीड़न की शक्तियों को विकसित करने की सही प्रक्रिया को प्रारम्भ कर सकता है। इस दृष्टि से समकालीन लेखन को देखा परखा जाय तो वह पूर्णतः खरा उतरता है।

उत्तर आधुनिक युग में सृजनात्मकता का मूल्य बोध समाप्त नहीं तो क्षतिग्रस्त अवश्य हुआ है। आज के उपयोगितावादी दृष्टिकोण में इन मूल्यों के लिए स्थान नहीं रहा। देरिदा ने भी कविता, विज्ञापन, सिनेमा इत्यादि को केवल एक 'पाठ' घोषित कर, इन सबको एक ही श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है।

उत्तर आधुनिकतावाद प्रत्येक प्रकार के केन्द्रवाद से परे है। उसका पूरा चक्र केन्द्र से परिधि के मध्य है। समाज का वह वर्ग जो केन्द्र से हाशिए पर धकेल दिया गया। अब केन्द्र बिन्दु की ओर अग्रसर है। दलित और स्त्री इसके प्रमुख उदाहरण हैं। उत्तर आधुनिकता में नैतिक और अनैतिक का भेद समाप्त प्रायसा हो गया है। कला, साहित्य, संस्कृति और भाषा से किसी प्रकार की नैतिकता की भी अपेक्षा उत्तर आधुनिक को नहीं है। यहाँ सब कुछ विराट स्तर पर उपभोग के लिए तैयार किया जा रहा है। अतः किसी कला का कोई गहरा अर्थ अब यहाँ बहुत मायने नहीं रखता है।

दलित, आदिवासी, मुस्लिम एवं स्त्री विमर्श साहित्य के समाजशास्त्र का अत्यधिक संभावनाओं से भरा पक्ष है। वर्तमान साहित्य में इन ज्वलंत मुद्दे को लेकर कई प्रकार की समानान्तर विचारधारायें भी सक्रिय दिखती हैं। समाज के दलित, पिछड़े वर्ग के लोग भारत में लम्बे समय तक हाशिये पर रहे हैं और पीढ़ी–दर–पीढ़ी उनका शोषण होता रहा है। इसकी प्रतिक्रिया किसी न किसी रूप में आनी स्वाभाविक है। भारत में एक बड़ी जनसंख्या जनजातीय समुदाय की है लेकिन इसे मुख्य धारा में नहीं सम्मिलित किया गया है। आज भी झारखण्ड एवं उड़ीसा के जनजातीय समुदाय के लोग निर्धनता और एकाकीपन के शिकार हो रहे हैं। कहने को तो इस वर्ग के लोगों को समाज की मुख्य धारा में रखा गया है लेकिन उन्नति के समान अवसर उन्हें लम्बे समय से नहीं मिल पा रहे हैं। यही कारण है कि साहित्य ने इन्हें अपने साथ जोड़ने का मौका दिया और समाज के अन्य वर्ग भी निर्धनता का शिकार होने पर सहजतापूर्वक हाशिए के साहित्य के समर्थक बन रहे हैं या अन्य अपने साथ होने वाली गतिविधियों के साथ अपनी हकीकत बंया कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य जगत की मुख्यधारा के लेखन में साधन सम्पन्न लेखकों की एक लम्बी फेहरिस्त है, ये ऐसे लेखक हैं जिनको किसी पहचान की जरूरत नहीं है, इनकी रचनाएं इनके विचारों का उद्‌गार होती हैं जिन्हें हर वर्ग के पाठक पढ़ना पसंद करते हैं, वहीं दूसरी ओर लेखकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो अपने आत्म–सम्मान, अपनी अस्मिता की सकारात्मक छवि निर्माण के लिए लेखन कार्य में जुटा हुआ है, ये साहित्यकार अपने उद्‌गारों से कहीं बढ़कर अपने भोगे हुए पीड़ादायक अनुभवों को अपनी लेखनी में पिरोकर प्रस्तुत करने के लिए संघर्षशील हैं, भारतीय समाज में जातीय अस्मिता जातियों की एक प्रकार से सामूहिक एवं सामाजिक अस्मिता के रूप में रही है, इनकी अभिव्यक्ति विभिन्न कालखंडों में रचे गए जातीय इतिहास से होती है, इतिहास लेखन के प्रारम्भिक दौर में अन्यों से संवाद की स्थिति बनी रही, वहीं बाद में यह टकराव संवादी ढ़ांचा के रूप में उभरता है।

पुस्तक : हिन्दी साहित्य में हाशिए का विमर्श : संघर्ष और मुक्ति के अभिनव क्षितिज
लेखक : डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव
ISBN : 978-93-81604-55-7
संस्करण : प्रथम. 2013, मूल्य : 1295.00
प्रकाशक : विस्टा इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस वी0–196,सी0–11, शिवसाधना मन्दिर के पास,यमुना विहार दिल्ली–110053

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

विकासशील भारत में उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियाँ

डॉ0 विजय कुमार वर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग
उ0प्र0 विकलांग उद्धार डॉ0 शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ–226017

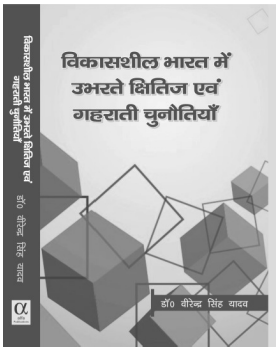

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की प्रस्तुत पुस्तक में विकासशील भारत में उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियों जैसे विभिन्न महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दों को उठाकर उसके समाधान की कोशिश करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

भारत में सामाजिक–आर्थिक प्रणाली की स्पष्ट असमानताओं के बावजूद हमारे यहाँ स्वतंत्रता प्राप्त करने के क्रम में या उसके बाद कोई हिसंक क्रांति नही हुई। क्या यह भी हमारे अंतर्निहित अहिंसक स्वभाव का प्रमाण है, या इसका उत्तर कहीं और निहित है। महात्मा गाँधी की ईमानदारी को अपना आदर्श मानने वाला देश इतनी तेजी से, इतने अविश्वसनीय ढंग से भ्रष्ट कैसे हो गया ? क्या हम वास्तव में उचित तरीकों के पक्ष में अंत का अवमूल्यन करते हैं, या हम केवल अंतिम परिणाम के बारे में चिंतित होते हैं, चाहे अपनाए गये उपाय जो भी रहे हों ? हिंदू अपने ही धर्म के सबसे बड़े वर्ग के खिलाफ छुआछूत मानते आ रहे हैं। तो फिर क्या उन्हें सहिष्णु कहलाने का दावा करना चाहिए। और अंत में भारतीय लोकतंत्र पर संदेह व्यक्त करते हुए, भारतीय लोकतंत्र को स्वाभाविक ढंग से लोकतांत्रिक देश नहीं मानते तो हमारा संसदीय लोकतंत्र कैसे जीवित है ? नौकर को घर में पीट–पीटकर मौत के मुँह में पहुँचा देने वाले, अपराध स्वीकार करने के लिए कैदियों को अंधा बना देने वाले, अधिक दहेज के लिए अपनी पत्नियों को जला देने वाले भारतीय शिक्षित कहे जाने वाले लोग अपनी प्रकृति में क्या इतने अहिंसक हो सकते हैं ? यदि नहीं तो कैसे अहिंसा की गाँधीवादी रणनीति सफल हुई और सुभाषचन्द्र बोस या भगत सिंह के क्रांतिकारी जोश को इतने कम अनुयायी मिले,यह शोध एवं चिन्तन–मनन का विषय हो सकता है।

लेखक का मानना है कि इक्कीसवीं सदी में स्त्रियाँ सही मायने में अपनी क्षमता के अनुरूप शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। अब नारी अबला नहीं सबला है। हमारे देश में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है जहां नारी अपनी उपस्थिति पूर्ण क्षमता के साथ दर्ज न करवा रही हों। इसका पूरा का पूरा श्रेय शिक्षा को दिया जाना चाहिए। इक्कीसवीं सदी में शिक्षा में अनेकों ऐसे आयाम विकसित हुए हैं, जिनके बारे में हम आज से कुछ समय पहले तक कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उदाहरण के रूप में पूरे देश में कम्प्यूटर ने शिक्षा क्षेत्र में क्रान्ति ला दी है। प्रधानमंत्री स्व0 राजीव गाँधी का सपना था कि हमारा देश आईटी के क्षेत्र में उन्नतिशील कदम रखे। घर–घर फोन हों, घर–घर टी0वी0 हों, घर–घर कम्प्यूटर हों, और हम उसके माध्यम से पूरी दुनियां से जुड़ जायें। इसलिए आज शायद यह कहने में कोई गुरेज या परहेज हमें नहीं है कि स्व0राजीव जी का सपना सच हो गया है जो विश्व में भारत के स्वर्णिम कदम को आगे बढ़ाने में सहायक हुआ है। खास तौर पर वे सभी को शिक्षित देखना चाहते थे। विशेष रूप से कम्प्यूटर के क्षेत्र में भारत की अनेक प्रतिभाओं ने शिक्षित होकर पूरी दुनिया में नाम किया है। विज्ञान के क्षेत्र में भी विश्व में हम सफलता के उच्चतम सोपानों को छू रहे हैं। भारतीय आज शिक्षित होकर न सिर्फ देश में ही व्यवसाय कर रहे हैं, बल्कि दूसरे ग्रहों पर जाकर ब्रह्मांड के रहस्यों को भी खोलने में सहायक हो रहे हैं और पूरी दुनिया को अपनी योग्यता से चकाचौध कर रहे हैं।

सामाजिक विषमता को हटाने का एक ही रास्ता है, अमीर–गरीब, सभी को समान अवसर प्राप्त हों। यह तभी संभव है जब शिक्षा को जन–जन तक पहँचाया जाए, इसके साथ ही शिक्षा का माध्यम देशी भाषायें हों, विशेषकर राष्ट्रभाषा हो। इसलिये अच्छी पाठ्य पुस्तकें, अच्छा पाठ्यक्रम, अच्छे अध्यापक तैयार करने होंगे। विदेशी भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये, वे हमारी बैसाखी न बनकर हमें विदेशों का ज्ञान एवं युगीन जानकारियाँ कराएंगी। वे 'पुस्तकालीय' भाषायें होगी।

पुस्तक : विकासशील भारत में उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियाँ
लेखक : डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव
ISBN : 978-93-82302-85-8
संस्करण : प्रथम, 2013, मूल्य : 995.00
प्रकाशक : अल्फा पब्लिकेशन्स 4398/5, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लोकनायक : स्वामी विवेकानन्द

डॉ. हरिनिवास पाण्डेय
प्रवक्ता –हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अ. प्र.)

पुस्तक का नाम– सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लोकनायक : स्वामी विवेकानन्द
संपादक– डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
ISBN-978-93-82302-71-1
संस्करण–प्रथम. 2013, मूल्य–610.00
अल्फा पब्लिकेशन्स 4398/5 ,अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली,110002

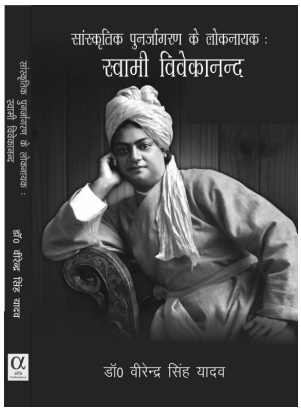

स्वामी विवेकानन्द का जीवन और पहाड़ जैसा विराट आपका व्यक्तित्व व आपके द्वारा किए गए कार्य संपूर्ण मानवता के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। इसीलिए 150 वर्षों के इतिहास में आज भी आपका चिंतन प्रासांगिक है। स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों पर दृष्टिगत हों तो आप अपने समय से बहुत आगे थे। आपका विचार था कि विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों के बीच संवाद हो। आप विभिन्न मतों–पंथों की अनेकरूपता को जायज मानते थे। वर्तमान समय के अनेक विवादों और कलह से ग्रस्त लोगों के लिए स्वामी विवेकानन्द जी के विचार बड़े महत्व के हैं। आपका यह मानना था कि वेदांत दर्शन न तो ब्राह्मण दर्शन है न बौद्ध न ईसाई न मुस्लिम, यह इन सभी धर्मों का सार तत्व है।

आज विश्व को विशेषकर भारत जैसे देश को एसे विचारकों, चिंतकों और समाज विज्ञानियों की जरूरत है जो नये युग की चुनौतियों को परिभाषित कर सके। सच तो यह है कि जिस तेजी से पुरानी अवधारणाएं टूटती हैं उस तेजी से नई अवधारणाओं का सृजन नहीं हो पाता। जरूरत इस बात की है कि कहीं से भी अगर कोई एक अन्तर्दृष्टि निकल रही हो या इसके कुछ संकेत भी मिल रहे हों, चाहे वह एक सीमित अर्थ में धर्म और आध्यात्म से ही क्यों न मिल रहे हों तो उन्हें समेटकर एक नये प्रयास की ओर बढ़ने के प्रयास किये जायें। जो भी नये सर्वमान्य विचार उभर रहे हैं उन्हें बिना किसी पूर्वाग्रह के ग्रहण करें। यही बात स्वामी विवेकानन्द ने भी कही थी। इस नई विश्वदृष्टि की तलाश में हमें सभी प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठना होगा और ऐसे संकीर्ण राष्ट्रवाद या पुनरूत्थानवाद से भी हमें मुक्त होना होगा जो पूर्व और पश्चिम की या विभेद को अति कट्टर रूप में देखता है। यह संकीर्ण राष्ट्रवादी दृष्टिकोण नैतिक बल या साहस से नहीं उपजा है, यह अपनी हीनता की प्रवृत्ति से जन्मी एक मिथ्या आत्मरक्षात्मक प्रतिक्रिया का फल है। यह उतना ही खतरनाक और हानिकारक है जितना "सर्वदेशीयता" या "कॉस्मोपोलिटेनिज़्म" का छिछला सिद्धांत जो अपनी देशीय या जातीय जड़ों को काटकर एक ऐसी साजिश में भागीदार हो जाता है जहाँ विचारों का आदान–प्रदान नहीं, दो तरफा संवाद नहीं, एक दूसरे के लिए सम्मान नहीं, स्वीकार की तत्परता के साथ–साथ अस्वीकार का साहस नहीं और जहाँ सांस्कृतिक सहयोग वास्तव में सक्षम द्वारा अक्षम को अपने त्यागे हुए वस्त्रों से संवारने और अपने उच्छिष्ट तत्वों को पिछड़े लोगों के योग्य मानसिक भोजन के रूप में प्रस्तुत करने का दुस्साहस या कुप्रयास मात्र है।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित इस पुस्तक को 17 अध्यायों एवं आठ खण्डों में विभाजित है–जो इस प्रकार है– स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व एवम् कृतित्व, सामाजिक–सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लोकनायक–स्वामी विवेकानन्द, स्वामी विवेकानन्द का धर्म–दर्शन, स्वामी विवेकानन्द : तेजस्वी विचारों के प्रखर प्रवक्ता, युवा पीढ़ी एवं शैक्षिक उन्नयन के महानायक– स्वामी विवेकानन्द, स्वामी विवेकानन्द के विचारों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता, मानवतावाद एवं विश्वात्मा के रूप में स्वामी विवेकानन्द, युग एवं राष्ट्रनिर्माण में स्वामी विवेकानन्द के अमृतमय विचारों का योगदान आदि में स्वामी विवेकानन्द के सैद्धान्तिक पक्ष एवं व्यवहारिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक में देश भर के विद्वान प्राध्यापकों, बुद्धिजीवियों, साहित्य मनीषियों की लेखनी का प्रतिफल है जिन्होंने युगपुरुष स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व एवम् कृतित्व जैसे अति महत्वपूर्ण युगपुरुष पर तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से चिन्तन–मनन कर अपने विचार रखे हैं। कुल मिलाकर लेखनी के धनी डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित इस पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द के विचारों को बहुत व्यापकता के साथ हमारे समक्ष रखती है जो मठों की परम्परा को तोड़कर एक नई समझ तथा नई बहस को जन्म देती है यही इस पुस्तक की सफलता और उपलब्धि भी कही जा सकती है ।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

आज का भारत : वैचारिकी एवं समकालीन विमर्श

डॉ. मनजीत सिंह
जवाहर नवोदय विद्यालय मल्हार बिलासपुर (छत्तीसगढ़) पिन–495551

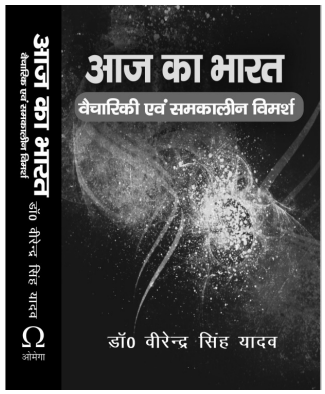

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव की इस पुस्तक को 64 विद्वानों के लेख एवं पन्द्रह खण्डों में विभाजित किया गया है। धर्म, संस्कृति, अध्यात्म, नैतिकता एवं योग में भारत के बदलते परिप्रेक्ष्य, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य में भारत के स्वर्णिम क्षितिज, अछूते सन्दर्भ, अप्रवासी सृजन, अर्थव्यस्था की दृष्टि से व्यापार पर्यटन एवं उद्योग में भारत की भूमिका, सुलगते सवाल एवं ज्वलंत प्रश्न, राज एवं राजनीति के बदलते अभिप्राय, नन्हें से जीवन की करुण कहानी, शिक्षा के बदलते परिदृश्य एवं गहराती चुनौतियाँ, महिला सशक्तिकरण का स्याह यथार्थ, भारत के निर्माण में अग्रज एवं अनुज पीढ़ी का योगदान, इतिहास के झरोखे, शताब्दी सिनेमा के विविध सरोकारों का सच, समय से हस्तक्षेप करता साहित्य, समकालीन साहित्य में आधी दुनिया की दस्तक।

पुस्तक की मान्यता है कि परिवर्तन के इस परिप्रेक्ष्य को यदि वर्तमान समय में की जाए तो देश में इतनी तेजी से बदल रहे घटनाचक्र को देखते हुए उनके घटने के निहितार्थ एवं उसके घटित होने की पृष्ठभूमि के सोचने का अवसर ही नहीं मिल पाता है लेकिन फिर भी इन सब परिस्थितियों के बीच इतना तो कहा ही जा सकता है कि सब कुछ सामान्य तो नही ही घटित हो रहा है। महंगाई घटने के बजाए बढ़ती जा रही है। दुनिया के बाजार में रुपये का मूल्य गिरता जा रहा है। प्रधानमंत्री का कहना है कि बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के कारण ऐसा हो रहा है। अर्थव्यवस्था की गम्भीर जानकारी रखने वाले प्रधानमंत्री यदि कहें तो इससे दुःखद देश के लिए और क्या हो सकता है ? इन परिस्थितियों में अनेक आन्दोलन होने के बावजूद जनता सोच नहीं पा रही है कि आखिर किसकी ओर देखा जाए ? हर कोई कथनी और करनी में फर्क को मिटाता जा रहा है। आजादी के लिए शहीद हुए नेताओं में मतभेद के बावजूद समन्वय इसलिए था, क्योंकि उनकी कथनी और करनी में एकरूपता थी, पारदर्शी जीवन था। किसी व्यक्ति, संगठन अथवा समाज में इस आचरण की पैठ ही उसका उद्धार कर सकती है मुखौटा नहीं क्योंकि अनुशासन नेतृत्व के प्रति आदर, पद लोलुपता न होने जैसे गुणों के कारण लोग अपनी पहचान कायम कर पाते हैं।

पुस्तक में केवल निराशा ही नहीं है बल्कि आशा की किरण के रूप में इसे सुखद ही कहा जाएगा कि कुछ साल पहले कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि कैबिनेट मंत्री, ताकतवर राजनेता, भगवान कहे जाने वाले न्यायाधीश, डॉक्टर, मुख्यमंत्री के बेटे, वरिष्ठ अधिकारी और कम्पनी के सी.ओ. भ्रष्टाचार के आरोप में जेल की हवा खा रहे होंगे। रही बात इससे (भ्रष्टाचार से) निपटने की तो यह सर्वविदित है कि सी0 बी0 आई0 बेहद प्रभावशाली लोगों की गिरफ्तारी से भी नहीं डर रही है। शायद इसका प्रमुख कारण आत्मविश्वास से भरपूर मध्यम वर्ग की प्रतिक्रिया, सुप्रीमकोर्ट व कैग की सक्रियता और इनका समर्थन करने वाले मीडिया के कारण आया है, न मीडिया का अधिकतर भाग बाबा रामदेव एवं अन्ना हजारे के आन्दोलन को उद्घोष को जाता है। इसके साथ ही भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए अनेक कदम उठाने की आवश्यकता में से एक प्रशासनिक, न्यायपालिका और पुलिस सुधारों की आवश्यकता है। साथ ही भ्रष्टाचार का जबाव है आर्थिक सुधार। क्योंकि भारत में अनेक सुधार अधूरे हैं, विशेष रूप से यहाँ अधिक भ्रष्टाचार पाया जाता है जैसे खनन, रियल एस्टेट, शिक्षा, ढाँचागत सुविधाओं का निर्माण और सरकारी खरीद।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव ने सम्पादकीय में कुछ गम्भीर प्रश्नों को उठाया है– बुद्धिजीवियों एवं माननीयों जी से यहाँ एक प्रश्न पूँछा जा सकता है कि हर छोटी–बड़ी आर्थिक समस्या के लिए यूरोपीय संकट को जिम्मेदार आखिर क्यों ठहराया जाता है और इसका हमारे कर्णधार नेताओं के पास कोई सटीक उत्तर भी नहीं है क्योंकि हमारे माननीय बताने की स्थिति में नहीं हैं कि अन्य एशियाई देशों की तुलना में भारतीय मुद्दा का इतना अवमूल्यन क्यों हो रहा है ? क्या कारण है कि रिजर्व बैंक भी रुपये को गिरने से रोक नहीं पा रहा है ? कहीं इसके पीछे कोई राजनीतिक चाल तो नहीं ? ये ही यक्ष सवाल हैं जिनके जबाव सामने आने ही चाहिए ?

अनेक सुझावों एवं समाधान करती यह पुस्तक जीवन जीने की कला को भी दर्शाती है। साझा सूचियां, समान सोच, स्वभाव, संवेदना, विनोदप्रियता, क्या ये सब मायने नहीं रखते ? हम तो यही कहेंगे कि अपने शेष जीवन के वित्तीय, भावनात्मक और मानसिक तीनों पक्षों पर खूब सोच–विचारकर व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को आगे बढ़ना चाहिए। महाभारत में लिखा है कि मुहर्ते ज्वलितं श्रेयः न धूमायित चिरम, अर्थात जिंदगी भर धुंआ देते रहने से एक बार चमककर बुझ जाना बेहतर है। वस्तुतः यही जीवन जीने का सही सलीका है। इसी पर बल देते हुए जैन धर्म के प्रवर्तक भगवान महावीर ने कहा था, अप्पदीपो भव अर्थात आत्म दीप बनें।

वर्तमान भारत की विभिन्न समस्याओं से रूबरू करवाती डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की इस प्रस्तुत पुस्तक में न केवल विशय विशेषज्ञों, शोधार्थियों, प्राध यापकों एवं सामाजिक चिंतकों, बल्कि आम–जन के लिए भी उपयोगी एवं प्रेरणास्पद सिद्ध होगी।

पुस्तक : आज का भारत : वैचारिकी एवं समकालीन विमर्श
लेखक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक : ओमेगा पब्लिकेशन्स 4373/4 बी., जी. 4, जे.
एम. डी. हाउस, मुरारी लाल स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
मूल्य : 995.00 संस्करण : 2013 ISBN : 978-81-8455-446-5

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

स्वामी विवेकानन्द : सांस्कृतिक चेतना के वैश्विक प्रहरी

डॉ. अजीत सिंह राही
पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस.डब्ल्यु., आस्ट्रेलिया

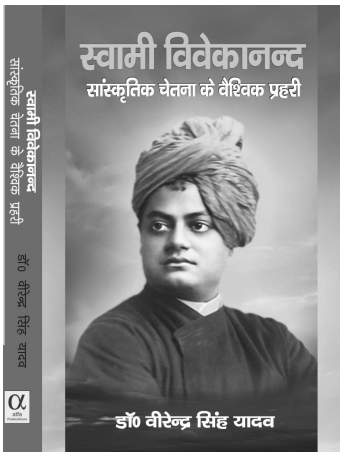

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित इस पुस्तक को 16 अध्यायों एवं आठ खण्डों में विभाजित है–जो इस प्रकार है–व्यक्तित्व एवम् कृतित्व के आईने में स्वामी विवेकानन्द, स्वामी विवेकानन्द का धर्म–दर्शन एवं राजनीति, तेजस्वी विचारों के प्रखर प्रवक्ता : स्वामी विवेकानन्द ,स्वामी विवेकानन्द और उनका शैक्षिक दर्शन, स्वामी विवेकानन्द के विचारों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता, नारी मुक्ति की अवधारणा और स्वामी विवेकानन्द, युवा पीढ़ी, आध्यात्मिकता एवं आधुनिकता के महानायक–स्वामी विवेकानन्द, युग एवं राष्ट्रनिर्माण में स्वामी विवेकानन्द के अमृतमय विचारों का योगदान आदि में स्वामी विवेकानन्द के सैद्धान्तिक पक्ष एवं व्यवहारिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

स्वामी विवेकानन्द बहुमुखी प्रतिभा के धनी महामानव थे। आपने न केवल भारत की सामाजिक स्थिति पर अपने विचार प्रस्तुत किये बल्कि आपने राजनैतिक, शैक्षिक, दार्शनिक समाजवादी एवं अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर बेहद सारगर्भित विचार बार–बार विश्व के समक्ष रखकर एक आदर्श प्रस्तुत किया। विवेकानन्द के सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा जीवन दर्शन को समझने के लिए उनके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में दिये गये विचारों का अवलोकन करना आवश्यक है। आज से प्रायः एक सौ पचास साल पहले पराधीन और पददलित भारत के जिस एकांकी और अकिंचन योद्धा सन्यासी ने हजारों मील दूर विदेश में नितान्त अपरिचितों के बीच अपनी ओजमयी वाणी में भारतीय धर्म साधना के चिरन्तन सत्यों का जयघोष किया, ऐसे उन समर्थ व्यक्तित्व और कृतित्व का श्रद्धापूर्वक स्मरण, मनन और अध्ययन हर पीढ़ी के लिये आवश्यक है क्योंकि उसका संदेश देश और काल की सीमाओं को लांघकर प्रेरणा का स्रोत बन गया है। यह सन्देश न कभी पुराना पड़ सकता है, न कभी मर सकता है, वह पुनर्नवा है, वह आज के लिये भी है, वह कल के लिये भी है। स्वामी विवेकानन्द का सन्देश बहुआयामी है। उसमें आत्मा की भूख मिटाने के लिये धर्मों और संस्कृतियों से सनातन सिद्धान्तों का संगीत है, उसमें व्यक्ति जीवन के आमूल रूपान्तरण के लिये साधना की एक पद्धति है, उसमें समाज और समूची मानव जाति को नये सिरे से गठित करने की अपूर्व क्षमता है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य मानव निर्माण माना है। राष्ट्र निर्माण अथवा विश्व निर्माण की दिशा में यह पहला कदम है।

स्वामी विवेकानन्द ने लोगों को उत्साहित करमें हुए कहा था कि आज मैं तुम्हें भी अपने जीवन का मूल मंत्र बताता हूँ, वह यह है कि प्रयत्न करते रहो, जब तुम्हें अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखता हो, तब भी मैं कहता हूँ कि प्रयत्न करते रहो! किसी भी परिस्थिति में तुम हारो मत, बस प्रयत्न करते रहो! पीछे मत देखो, आगे देखो, अनंत ऊर्जा, अनंत उत्साह, अनंत साहस और अनंत धैर्य तभी महान कार्य, किये जा सकते हैं। तुम्हें तुम्हारा लक्ष्य जरूर मिलेगा, इसमें जरा भी संदेह नहीं ! स्वामी विवेकानंद जी ने सुसुप्त भारत की आत्मा को जागृत करने, उसे स्वयं पर आत्म विश्वास करने और मुक्ति का मार्ग दिखाने की दृष्टि से विवेकानन्द का योगदान चिर स्मरणीय है तथा इतिहास के स्वर्ण अक्षरों में उल्लिखित किये जाने योग्य है। स्वामी विवेकानंद जी भारतीय होते हुए भी भारत के ही नही, विश्व के उद्धारक थे जिन्होंने सर्वधर्म सद्भाव का संदेश दिया। एक नये सुखी–समृद्ध विश्व की स्थापना में नेतृत्व प्रदान करने वाली भूमिका का निर्वहन किया तथा विभाजित विश्व को एकताबद्ध होने की प्रेरणा तथा संदेश प्रदान किया। इसके लिए भारत ही नही बल्कि सम्पूर्ण विश्व उनका चिर ऋणी रहेगा।

प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक में देश भर के विद्वान प्राध्यापकों, बुद्धिजीवियों, साहित्य मनीषियों की लेखनी का प्रतिफल है जिन्होंने युगपुरुष स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व एवम् कृतित्व जैसे अति महत्वपूर्ण युगपुरुष पर तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से चिन्तन–मनन कर अपने विचार रखे हैं। कुल मिलाकर लेखनी के धनी डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित यह पुस्तक स्वामी विवेकानन्द के विचारों को बहुत ही व्यापकता के साथ हमारे समक्ष रखती है जो मठों की परम्परा को तोड़कर एक नई समझ तथा नई बहस को जन्म देती है यही इस पुस्तक की सफलता और उपलब्धि भी कही जा सकती है ।

पुस्तक	:	स्वामी विवेकानन्द : सांस्कृतिक चेतना के वैश्विक प्रहरी
संपादक	:	डॉ0 वीरेन्द्रसिंह यादव
ISBN	:	978-93-82302-72-8
संस्करण	:	प्रथम–2013
मूल्य	:	750.00
प्रकाशक	:	अल्फा पब्लिकेशन्स 4398/5, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली,110002

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

डॉ0 राममनोहर लोहिया : वैचारिक विमर्श

डॉ. सुरेश एफ. कानडे
प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम, हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)

प्रस्तुत पुस्तक की सम्पादकीय में डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि डॉ0 लोहिया निजी एवं सार्वजनिक जीवन में एकीकरण चाहते थे। डॉ0 लोहिया के ये दोनों जीवन एकीकृत थे। डॉ0 लोहिया के वास्तविक जीवन में इनका पूर्ण सामंजस्य था। डॉ0 लोहिया का मानना था कि जब हमारा नेतृत्व आदर्श और अनुकरणीय होगा तो समाज में सुख–शान्ति आयेगी क्योंकि सीधा सा सिद्धान्त है–''यथाराजा तथा प्रजा'' वे प्लेन लिविंग एण्ड हाई थिंकिंग के जीवंत प्रतीक थे। डॉ0 लोहिया का जीवन एक फकीराना जीवन था , डॉ0 लोहिया का मानना था कि ''अगर मनुष्य व्यवहार को बिलकुल तोड़कर आदर्श को अपना लेता है, तब उसको कहना चाहिए, थोड़ा बहुत पागल है। और अगर मनुष्य आदर्श को तोड़कर व्यवहार को बिलकुल अपना लेता है तब उसको कहना चाहिए, मौकेबाज है। आदर्श और व्यवहार का हमेशा हर जगह फैसला करना पड़ेगा। किसी राजनीतिक पार्टी में रहने वाले किसी भी आदमी को आदर्श और व्यवहार के बीच में कोई ऐसी जगह ढूंढनी चाहिए जो आदर्श को भी बढ़ाती हो और व्यावहारिकता को भी।''

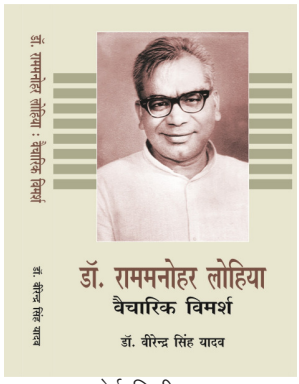

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के विपरीत डॉ0 लोहिया अपव्यय और खर्चीली राजनीति को देश के लिए अहितकर मानते थे। आप नेताओं के शाही मुगलिया ठाठ–बाठ के खिलाफ थे। डॉ0 लोहिया खर्च की एक सीमा के हिमायती थे। फर्रूखाबाद से सांसद चुने जाने तक उनके नाम से देश में कहीं भी कोई खाता नहीं था। सांसद चुनने के पश्चात् देय भत्ता के लिए उनका खाता खोला गया था। डॉ0 लोहिया का अपना कोई निजी वाहन न था। डॉ0 लोहिया रिक्शे से नहीं चलते थे। इस प्रकार डॉ0 लोहिया का जीवन कर्म और विचार का अद्वैत था। डॉ0 लोहिया दुविधा विभक्त नहीं थे।

प्रस्तुत डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की यह पुस्तक 25 विद्वानों के लेखों एवं सात खण्डों में विभाजित निम्न उपशीर्षकों में व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आईने में डॉ0 राममनोहर लोहिया, डॉ0 राम मनोहर लोहिया के स्त्री सशक्तीकरण सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन, लोकतंत्र और डॉ0 राम मनोहर लोहिया का समाजवाद : एक मूल्यांकन, डॉ0 राम मनोहर लोहिया के भाषा सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन, डॉ0 राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक सम्बन्धी विचारों का अवलोकन, डॉ0 राम मनोहर लोहिया के व्यक्तित्व से जुड़े विविध पहलुओं का मूल्यांकन,वर्तमान परिपेक्ष्य में डॉ0 राम मनोहर लोहिया के विचारों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता में बांटी गई है।

विकल्प के रूप में डॉ0राममनोहर लोहिया को अपनाकर ही देश का विकास सम्भव हो सकता है। क्योंकि डॉ0 लोहिया वर्तमान भारतीय सरकार एवं उस व्यवस्था के सार्थक विकल्प हैं। डॉ0 लोहिया हमारी पीढ़ी के प्रेरणास्रोत हैं। और व्यवस्था एवं तमाम खामियों की तरफ इशारा करने वाले एक विरले साहस का प्रतिमान हैं। आज जब सत्ता–पक्ष की भूमिका एक बने–बनाए ढ़ांचे में फिट होकर काम करने भर की रह गई है, और विपक्ष की पूरी भूमिका ही गौण हो गई है तो लोहिया जी एक ऐसे उदाहरण के रूप में हमारे समक्ष आते हैं जिनकी मिसाल देकर सार्थक समाजवाद और बेहतर लोकतंत्र की दिशा में कदम बढ़ाया जा सकता है। डॉ0 लोहिया के पास एक तरफ जहां सम्पूर्ण विकास की कार्ययोजना थी तो दूसरी तरफ उनकी संसदीय भागीदारी देखकर सीखा जा सकता है कि सशक्त विपक्ष की भूमिका कैसे निभाई जाती है। डॉ0 लोहिया जी अन्य राजनेताओं और बुद्धिजीवियों की तरह केवल नियम गिनाते भर नहीं हैं बल्कि नीतियों पर तत्काल अमल करने की बात भी दोहराते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में भारत के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों,समाजवादियों, भूगोलवेत्ताओं,मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों के डॉ0 राममनोहर लोहिया पर सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है। आशा है कि समाजवादी विचारधारा से सम्बंध रखने वाले लोगों को यह पुस्तक अवश्य पसंद आएगी।

पुस्तक – डॉ0 राममनोहर लोहिया : वैचारिक विमर्श
लेखक – डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक – आराधना ब्रदर्स पब्लिकेशन्स ,कानपुर
मूल्य – 600.00
पेज – 272, संस्करण–2013
ISBN – 978–81–89076–55–9

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

डॉ0 राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता

डॉ0 हितेन्द्र जे मौर्या
प्रवक्ता, इतिहास विभाग, महा स0 राव विश्वविद्यालय, बड़ोदरा (गुज.)

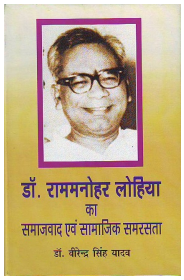

पुस्तक	–	डॉ0 राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता
लेखक	–	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	–	आराधना ब्रदर्स पब्लिकेशन्स ,कानपुर
मूल्य	–	600.00
पेज	–	290, संस्करण–2013
ISBN	–	978–81–89076–56–6

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की यह पुस्तक 22 विद्वानों के लेखों के साथ आठ खण्डों में विभाजित है। जिसमें विशेष आकर्षण का केन्द्र इसके उपशीर्षक हैं। डॉ0 राममनोहर लोहिया का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ0 राम मनोहर लोहिया के शिक्षा एवं साहित्य सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन, डॉ0 राम मनोहर लोहिया का स्त्री सशक्तीकरण सम्बन्धी विचारों का मूल्यांकन, डॉ0 राम मनोहर लोहिया के राष्ट्रवाद एवं धार्मिक सम्बन्धी विचारों की समीक्षा, वर्तमान परिपेक्ष्य में डॉ0 राम मनोहर लोहिया के विचारों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता, डॉ0 राम मनोहर लोहिया के भाषा सम्बन्धी विचार, डॉ0 राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक सम्बन्धी विचारों का अवलोकन, डॉ0 राम मनोहर लोहिया के व्यक्तित्व से जुड़े विविध पहलुओं का मूल्यांकन आदि प्रमुख हैं।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव सम्पादकीय में लिखते है कि डॉ0 राममनोहर लोहिया बींसवीं सदी के एक तिलस्मी व्यक्तित्व और विलक्षण प्रतिभा के धनी महान समाजवादी विचारक ही नहीं बल्कि एक महान लेखक और निर्भीक जुझारू पत्रकार भी थे। उनका जीवन दुखी, पीड़ित और शोषित जनता को समर्पित था, जीवन भर वे उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील रहे, उनका मन भारत की गरीबी से विक्षुब्ध था लेकिन उन्होंने कभी भी अपने को केवल भारत की भूख तक ही सीमित नहीं रखा, समस्त मानव जाति की भूख उनके विचार और दुख का कारण बनी, उनके सपनों में एक ऐसा विश्व था–जिसमें गोरे–काले, स्त्री–पुरुष, गरीब–अमीर और ऊँच–नीच के बीच कोई भेद न हो। डॉ0 लोहिया अनेक सिद्धान्तों, कार्यक्रमों और क्रान्तियों के जनक हैं। वे सभी अन्यायों के विरूद्ध एक साथ जेहाद बोलने के पक्षपाती थे।

अनेक बिन्दुओं को रेखंकित करती इस पुस्तक की मान्यता है कि इसमें कोई दो राय नहीं कि डॉ0 लोहिया एक मिशन के साथ आते हैं और अपना कार्य पूरा करके विदा हो जाते हैं उनके कर्म, जीवन, विचार, सिद्धान्त और मूल्य अनुकरणीय बन जाते हैं। डॉ0 लोहिया भावी पीढ़ी को दिशा–निर्देश एवं मार्ग दर्शन करते हैं। जिन्होंने अमीरी–गरीबी, दबे–कुचले, शोषित, पीड़ित, खेतिहर, मजदूर, किसान और दलितों के लिए डटकर संघर्ष किया और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। डॉ0 लोहिया के इस मिशन में समाजवादी विचार धारा के पैरोकार अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, जे0पी0, आचार्य नरेन्द्र देव, लाड़ली मोहन निगम इत्यादि थे। किन्तु इन सभी में सर्वाधिक मुखर और प्रखर वक्ता, सिद्धान्त की तार्किक प्रस्तुति करने वाले डॉ0 राममनोहर लोहिया ही एक मात्र प्रौढ़ चिन्तक थे। डॉ0 लोहिया ने स्पष्ट रूप से कहा भी था कि ''मुझे आशा है कि मैं कभी कोई राज सत्ता पद ग्रहण नहीं करूंगा। मैं चाहता हूँ कि सारी दुनिया में कुछ ऐसे राजनयिक तैयार हों, जो शासन सत्ता में पद ग्रहण किये बिना अपने कर्तव्य पालन की विशेषता प्राप्त करें।

डॉ0 लोहिया का मशहूर जुमला है कि जिंदा कौमें पांच साल इंतजार नहीं करतीं ? लेकिन हम पिछले छाछठ सालों से इंतजार कर रहे हैं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और कच्छ से लेकर कामरूप तक फैले इतने बड़े मुल्क में अलग–अलग विचारधाराओं को मानने वाले लोग बसते हैं लेकिन एक अरब से ज्यादा की आबादी को वैकल्पिक रास्ता दिखाने वाले किसी भारतीय विचारक की कल्पना डॉ0 लोहिया के बगैर संभव नहीं है। आजादी मिलने के तुरंत बाद सदियों से सताए लोगों के मन में सत्ता से उम्मीदें जगी थीं। एक नवस्वतंत्र राष्ट्र के लिए ऐसा स्वाभाविक भी था। लेकिन गुजरते वक्त के साथ वे तमाम उम्मीदें पीछे छूट गईं जिन्हें पूरा करने के लिए आजादी की जंग लड़ी गई थी। नतीजा–देश में समस्याओं का अंबार बन गया। और आजादी के इतने साल बाद भी भारत की जनता के हिस्से कुछ न आया। अब तो हालात ऐसे हैं कि बेहाल भूखी जनता के मुंह से भ्रष्टाचारी सुख के निवाले निकालने में लगे हैं। ऐसे वक्त में युवाओं का एक बड़ा तबका जब निराशा करता है तो उसे बस डॉ0 राममनोहर लोहिया ही नजर आते हैं।

प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक देश भर के विद्वान प्राध्यापकों, बुद्धिजीवियों, साहित्य मनीषियों की लेखनी का प्रतिफल है। इस आशा विश्वास एवं नेह के साथ कि प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक डॉ0 राममनोहर लोहिया जी जैसे महान एवं समतामूलक समाजदृष्टा व्यक्तित्व पर आम–जन के मध्य जिज्ञासा एवं उत्सुकता पैदा करेगी, तो इसे हम लेखक की मेहनत का प्रतिफल समझेंगें।

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

डॉ0 राम मनोहर लोहिया : समाजवादी विमर्श

डॉ0 बिनोद कुमार पाल
इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार

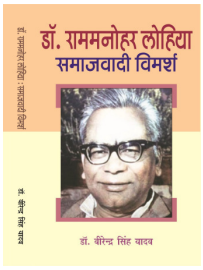

समाजवाद पर विमर्श करती इस पुस्तक को डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव ने 23 विद्वानों के साथ तेईस अध्यायों में विभाजित किया है। सामाजिक समानता पर बल देकर डॉ0 लोहिया अमीरी, गरीबी, समान शिक्षा एवं स्वास्थ्य में बराबरी के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। उन्हें किसी भी प्रकार की गैर बराबरी पसन्द ना थी। उनका विचार था कि समान अवसर के बजाय विशेष अवसर देकर दबे–कुचले तपके के लोगों को ऊपर उठाया जाय क्योंकि हजारों वर्ष की अमीरी, गरीबी समान अवसर से समाप्त नही होगी। हॉ, इतना अवश्य है कि विशेष अवसर देकर उनमें योग्यतम को उचित स्थान दिया जाय। उनका विचार था कि सभी को समान शिक्षा और स्वास्थ्य पाने का अधिकार है। कोई भी व्यक्ति इससे वंचित नही होना चाहिए। गरीबी के आधार पर प्रतिभा का पलायन हो या कुंठित हो ऐसा नहीं होना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा और स्वास्थ्य की व्यवस्था के लिए वे रूस की व्यवस्था से प्रभावित थे। उनका विचार था कि गरीबी के कारण कभी–कभी प्रतिभा निरूद्ध हो जाती है। उसे आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिलता है अथवा अर्थ के अभाव में स्वास्थ्य से हाथ धोना पड़ता है। ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित होना चाहिए जिसमें सुदामा और कृष्ण सहपाठी बन सकें। अपना –अपना विकास अपने ढ़ग से कर सके। ऐसी व्यवस्था से अच्छे डाक्टर, वैज्ञानिक, इंजीनियर, अनुसंधाता, प्रोफेसर और कुशल कारीगर बन सकते हैं। तभी राष्ट्रीय चरित्र और स्वास्थ्य सर्वथा सुदृढ़ और सुन्दर होगा। ऐसा उनका विश्वास था।

वर्तमान व्यवस्था के प्रति इस पुस्तक की मान्यता है कि डॉ0 लोहिया का जीवन, विचार, कर्म हमें समाजवादी व्यवस्था की तरफ बढ़ा सकते हैं। डॉ0 लोहिया ने कार्लमार्क्स के साम्यवाद में पूंजी के सम्बन्ध में अर्थ की ही वितरण व्यवस्था को असफल देख करके समाजवादी दर्शन को जन्म दिया था। मार्क्सवाद में जाति का कोई उल्लेख नही मिलता है। वे केवल पूंजी की बात करते हैं जबकि भारत में जाति–प्रथा एक ऐसा कारक/कारण है जिसके इर्द–गिर्द अनेक समस्यायें घूमती हैं। अतः यह प्रमुख विचारणीय बिन्दु है। डॉ0 लोहिया अपने को समाजवाद का अन्वेषक नहीं मानते थे। डॉ0 लोहिया का विचार था कि भारत में इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं और विश्व में भी इसका जन्म बहुत पहले हो चुका था। डॉ0 लोहिया इसका मूल्य गीता के अनासक्ति योग को मानते हैं। उन्होंने समाजवादी आन्दोलन के इतिहास में लिखा है कि –''समाजवादी आन्दोलन की शुरूआत भारत में और दुनिया में एक अर्थ में तो बहुत पहले हो जाती है। वह अर्थ है अनासक्ति का, मिलकियत और ऐसी चीजों के प्रति लगाव खत्म करने या कम करने का, मोह घटाने का। इस अर्थ में समाजवादी आन्दोलन का आरम्भ भारत में और विश्व में बहुत पहले से है किन्तु जब से समाजवाद के ऊपर कार्लमार्क्स की छाया पड़ी है तबसे एक दूसरा अर्थ ज्यादा सामने आ गया। वह है सम्पति की संस्था को खत्म करने का, सम्पत्ति रहे, चाहे कानून से, चाहे जन शक्ति से। पहला अर्थ था सम्पत्ति के प्रति मोह न रहे और अब अर्थ हुआ है कि सम्पत्ति रहे ही नहीं।

उनका विचार था कि समाजवादी समाज बनाने के लिए व्यक्ति सम्पत्ति के दायरे को लगातार सीमित करते जाना होगा। ''बिना दूसरे को नौकर रखें, जो व्यक्तिगत सम्पत्ति चल सकती है, उसके अलावा बाकी सब सम्पत्ति को यथासंभव, यथाशीघ्र सामूहिक बनाना और समाज में गैरबराबरी को मिटना या कम से कम अनवरत घटाते रहना होगा। लेकिन यहां यह भी नहीं भूलना चाहिए कि उन्होंने मानव में सम्पत्ति के प्रति गहरे मोह को नकारा भी नहीं है। उनका मानना है कि इस मोह या आसक्ति को समाप्त किये बगैर समाजवादी समाज की स्थापना शायद ही हो सकेगी। डॉ0 लोहिया की आचार–संहिता में निजी सम्पदा के अस्तित्व और उसकी शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी से जुड़ा हुआ मामला आर्थिक समता और नियोजित उत्पादन का भी है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'इकानामिक्स आफ्टर मार्क्स' में आर्थिक विषमता के कारणों की बुनियादी छानबीन की और विषमता के सभी रूपों पर कड़े प्रहार कर देश के शोषितों–दलितों में समता की चेतना जगाने तथा उसे तीव्रतर करने का दायित्व बखूबी निभाया। वह संघर्ष आज भी चल रहा है।

आज का दौर विचारधाराओं के अतिक्रमण का और विचारधाओं का स्वघोषित रहनुमा बताने वाले बामपंथी सत्ता के लिए हर मूल्य की बलि देने की होड़ में लगे हैं। तथाकथित वामपंथी जन किसी भी बड़ी–छोटी कंपनियों के जरिए महज थोड़े से लाभ के लिए देश में कहीं भी कभी भी नंदीग्राम बनाने को तैयार बैठे हैं। अब तो गरीबों के हक की सशस्त्र लड़ाई लड़ने वाले नक्सल आंदोलनकारी भी संदेह में घिरने लगे हैं। ऐसे वैचारिक तंगी के दौर में जब युवाओं का एक बड़ा तबका निराशा के गर्त में गिरता जा रहा है, तो लोहिया जी आते हैं, और उनकी याद कोई संयोग नहीं है, बल्कि दुनिया के सबसे ज्यादा भूखे और बेरोजगारों के इस 'शाइनिंग नेशन' की मजबूरी है। डॉ. राममनोहर लोहिया ने जिन चुनौतियों से सालों पहले आगाह किया था, इतने दिनों बाद उन्हीं की नजर से समाधान नजर आता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक में भारत के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, समाजवादियों, भूगोलवेत्ताओं, मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों के सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है। जिसमें बींसवीं सदी के तिलस्मी व्यक्तित्व और विलक्षण प्रतिभा के धनी महान समाजवादी विचारक डॉ0 राममनोहर लोहिया के विचारों को रखा गया है। इस उम्मीद के साथ कि प्रस्तुत माननीय जनों एवं समाजवादी विचारधारा के लोगों को अवश्य पसंद आयेगी।

पुस्तक	:	डॉ0 राम मनोहर लोहिया : समाजवादी विमर्श
लेखक	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	:	आराधना ब्रदर्स पब्लिकेशन्स, कानपुर
मूल्य	:	600.00
पेज	:	280, संस्करण–2013
ISBN	:	978-81-89076-57-3

❖❖❖

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 13–14, वर्ष : 07, जनवरी–दिसम्बर 2014

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत
'कृतिका' – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व
तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा–पत्र

(फार्म–4)

1.	प्रकाशन स्थल	:	1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5.	सम्पादक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जनवरी 2014

हस्ताक्षर
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स,
15, आजाद नगर, उरई (जालौन)

☞ सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सदस्यता पत्रक

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 13–14, वर्ष : 07, जनवरी–दिसम्बर 2014

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय – उ.प्र. विकलांग उद्धार डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226017

पत्रांक– दिनाँक–

श्रीमान सम्पादक
कृतिका
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
उ.प्र. विकलांग उद्धार डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, मोहान रोड,लखनऊ, उ.प्र. 226017
महोदय,

निवेदन है कि मैं या हमारा विश्वविद्यालय/महाविद्यालय कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली "ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज, ISSN : 0975-0002, RNI: UPHIN/2008/30136 (साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका) की वार्षिक संस्थागत' सदस्य बनना चाहता है। मैं या हमारी संस्था सम्पादक कृतिका, उरई (ORAI) S.B.I. के नाम व्यक्तिगत या संस्थागत सदस्यता बैंक ड्राप्ट या खाता सं. 30358537228, सम्पादक कृतिका, उरई (ORAI) S.B.I. में नकद जमा कर रहा हूँ या रही है।

नाम एवं पद का नाम .....

संस्था का नाम .....

पत्र व्यवहार का पूरा पता पिन कोड सहित .....

फोन/मो. नं. ..... EMAIL.....

स्थान एवं दिनांक .....

पद

हस्ताक्षर

i/kku lEikndh; dk;kZy;
Mk- ohjUnz flag ;kno
रीडर–हिन्दी विभाग, उ.प्र. विकलांग उद्धार
डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय,
मोहान रोड, लखनऊ, 226017
दूरभाष–07607782917, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com

izcU/ku
vkjk/kuk cqDl
(प्रकाशक एवं वितरक)
124/152–सी ब्लाक, गोविन्दनगर,
कानपुर–208006, उ.प्र.
दूरभाष – 09935007102, 05122651490
Email : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका पत्रिका की वार्षिक संस्थागत सदस्यता से तात्पर्य प्रिन्टिड उतने मूल्य की प्रति या प्रतियाँ (किसी भी अंक की)

आराधना ब्रदर्स कानपुर के नवीनतम् प्रकाशन

भारत का समाजवाद : दशा एवं दिशा	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं वैचारिक विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवादी विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं अर्थ दर्शन	डॉ. यतीन्द्र नाथ शर्मा	500/-
डॉ. अंबेडकर : वैचारिकी एवं दलित विमर्श	डॉ. कालीचरण स्नेही	600/-
हिन्दी भाषा एक अबाध प्रवाह	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
आधुनिक हिन्दी कविता में लोक चेतना	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
रेणु का कथा साहित्य	डॉ. सुरेश चन्द्र मेहरोत्रा	500/-
रामचंद्रिका में वक्रोक्ति सिद्धांत का अनुशीलन	डॉ. ममता गंगवार	500/-
बुंदेलखण्ड के साहित्यकारों का साहित्यिक अवदान	डॉ. छाया राहुल	700/-
बुन्देलखण्ड की साहित्य सर्जना	डॉ. किरण शर्मा	350/-
आधुनिक बुन्देली काव्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	300/-
जायसी और कबीर : सामासिक संस्कृति के संदर्भ में	डॉ. डी.आर. राहुल	600/-
समीक्षा रेखायें	डॉ. कामिनी	320/-
उरैन	डॉ. कामिनी	350/-
आलेख	डॉ. कामिनी	350/-
हाशिये पर (कहानी संग्रह)	डॉ. कामिनी	150/-
मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी	डॉ. भारती	400/-
वृंदावन लाल वर्मा के उपन्यासों में नारी	डॉ. रामप्रकाश जाटव	350/-
गुलदस्ता	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	350/-
प्रदोष नृत्य	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	250/-
मृत्यु पर विजय	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	300/-
रामाश्रय (खण्डकाव्य)	डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा	550/-
प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास लेखिकाएँ और उनका रचना संसार	डॉ. संध्या शर्मा	350/-
हिन्दी यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ. संध्या शर्मा	450/-
'अंधेरे में' में आख्यान का स्वरूप	डॉ. आकांक्षा	200/-
पं. श्रीवर चतुर्वेदी : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति	डॉ. रामकिशोर यादव	370/-
बाल कविता में सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना	डॉ. शिरोमणि सिंह 'पथ'	500/-
हिन्दी बाल साहित्य में मनोरंजन एवं नैतिकता	श्री राम शर्मा	500/-
बाल समस्याएँ कारण और निदान	जयजयराम आनन्द	500/-
हिन्दी बाल कविता की प्रवृत्तियाँ	डॉ. उदय सिंह जाटव	500/-
मयंक का हिन्दी बाल साहित्य	डॉ. कंचनलता यादव	550/-
जैनेंद्र का कथालोचन	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	350/-
उ. प्र. के पंचायत चुनावों में महिलाओं की सहभागिता	डॉ. अनीता	400/-
'रामायण' और 'महाभारत' में राजनीतिक विचार	डॉ. कान्ती शर्मा	600/-
विश्व पर्यावरण एवं राजनीतिक संघर्ष	डॉ. आर.के. त्रिपाठी	400/-
स्थानवाची नामों का समाजभाषाशास्त्रीय विश्लेषण	डॉ. कमलेश प्रजापति	300/-
राजाराम मिश्र 'कमलेश' : व्यक्तित्व कृतित्व	डॉ. प्रदीप मिश्र	200/-

शिवानी के उपन्यासों में कूर्मांचलीय लोक संस्कृति	डॉ. अलका मिश्र	300/-
महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन	डॉ. प्रदीप मिश्र	400/-
शृंगार शिरोमणि का रस–भाव विवेचन	डॉ. प्रदीप मिश्र	500/-
शिवानी के उपन्यासों के पात्र	डॉ. सुषमा पुरवार	400/-
कालजयी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र	डॉ. मंजुला श्रीवास्तव	400/-
भारतीय नारी का धर्मशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	300/-
तुम न आये सितारों को नींद आ गई	मंजुल मयंक	300/-
मेरी हम जिन्दगी मेरी हमशाइरी	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	200/-
गीत से नवगीत	डॉ. शुभा श्रीवास्तव	250/-
उर्वशी काव्य में नारी चेतना	डॉ. मीता अरोरा	200/-
उठी हाट के हम व्यापारी	रामस्वरूप	80/-
सबका अंतरिक्ष	डॉ. सीता किशोर	150/-
इस दौर से गुज़रे हैं हम	डॉ. सीता किशोर	200/-
सिर्फ रेत ही रेत	डॉ. कामिनी	100/-
सहमे सहमे अक्षर	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	300/-
अनाम सखे	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	150/-
नारी स्वर	ज्ञानचन्द्र गुप्त	200/-
पुरवा	मंजु सिंह	200/-
मनन और मूल्यांकन	डॉ. विश्वम्भरनाथ	250/-
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी	150/-
स्थान नाम बोलते हैं	डॉ. कामिनी	75/-
जन्म जन्मान्तर	मंजु सिंह	200/-
महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनि तत्व	डॉ. शिवबालक द्विवेदी	225/-
पं. बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	400/-
वासुदेव गोस्वामी और उनका साहित्य	डॉ. श्रीमती गीता पाण्डेय	150/-
विचार–वीथी (निबन्ध–संग्रह)	डॉ. पुरुषोत्तम बाजपेयी	75/-
बुंदेलखंड की पूर्व रियासतों में पत्रपांडुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. सीता किशोर	250/-
अपराधी कल्याण के विविध आयाम	डॉ. ए. एन. अग्निहोत्री	300/-
दतिया जिले में पत्र–पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. कामिनी	120/-
ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. सीता किशोर	200/-
भदावरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. श्यामसुन्दर सौनकिया	150/-
हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी	डॉ. हरिशंकर शर्मा	140/-
संस्मरण और संस्मरणकार	डॉ. मनोरमा शर्मा	60/-
ब्रजनंदन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. ओमप्रकाश सिंह	60/-

नोट : (1) हमारी संस्था महाविद्यालय/विश्वविद्यालय एवं सार्वजनिक पुस्तकालय हेतु समस्त विषयों में समस्त प्रकार की पुस्तकों की आपूर्ति आपकी माँग के अनुसार करती है।

(2) पुस्तकों का आदेश भेजते समय अपना नाम, पता, पिनकोड व फोन नं. लिखें या मेल करें।

आराधना ब्रदर्स प्रकाशक एवं वितरक

124/152–सी ब्लाक, गोविन्द नगर, कानपुर–208 006 (उ.प्र.)

दूरभाष : 09935007102, 09889121111, 0512-2651490 **ईमेल :** aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका इण्टरनेषनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोषल साइंसेज
ISSN – 0975–0002 वाल्यूम : 13–14, वर्ष : 07, जनवरी–दिसम्बर 2014

कृतिका परिवार

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- डॉ. आनन्द कुमार खरे, एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ.प्र.
- डॉ0 रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रीडर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी.जी.) महाविद्यालय, पुखरायां, कानपुर देहात (उ.प्र.)
- डॉ. आदित्य कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ.प्र.

प्रमुख प्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. सरिता बुधू, अध्यक्ष भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन,मॉरीशस
- डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, 64 लांगसवर्ड, ड्राइव,स्कारबोरो ओनटारियो, कनाडा, एम.आई.वी.3ए.3
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस. डब्ल्यु., आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाज़ल वेग 15ए 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर, नेहरू सेन्टर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन–डब्ल्यु 1 के 1 एच.एफ.

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. हेमा देवरानी, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबू शो0 कला महा., अलवर, राजस्थान
- डॉ. ज्योति सिन्हा, प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी.जी. कॉलेज, जौनपुर (उ.प्र.)
- डॉ. सविता मसीह, सहा0 प्रध्यापक–हिन्दी विभाग, शा0 स्ना0 महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- डॉ. शशि त्रिपाठी, प्रो.–राजनीति विज्ञान, शास. ठा. रणमत सिंह स्वशासी महा., रीवा (म.प्र.)
- डॉ. विनोद कुमार पाल, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार।
- डॉ. शारदा दुबे, विभागाध्यक्ष–समाजशास्त्र, शासकीय माता शबरी नवीन कन्या, महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
- डॉ. अलका द्विवेदी, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स कालेज, कानपुर
- डॉ. अंजु दुआ जैमिनी, 839ए सेक्टर–21 सी. पार्ट–2, फरीदाबाद (हरियाणा)
- डॉ. हरिनिवास पाण्डेय, प्रवक्ता हिन्दी, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अ.प्र.)
- डॉ. शुभा जौहरी, रीडर, इतिहास विभाग, राष्ट्र संत तु0म0 नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (म0)
- डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह, प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर, चमोली (उत्तराखंड)
- डॉ. आशा वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. कालेज, कानपुर
- डॉ0 अशोक एम0 पवार, हिंदी विभाग, गजमल तुलशीराम पाटील महाविद्यालय, नंदुरबार (महा.)

मुख्य सम्पादक मण्डल

- डॉ. सुरेश एफ. कानडे, प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक–422013 (महाराष्ट्र)

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. अजय सिंह, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, हंडिया कालेज, हंडिया, इलाहाबाद
  मो. : 09415638535 – ई-मेल : drajaysingh@gmail.com
- डॉ. सियाराम, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया
  मो. : 09219828316, ई-मेल : siyaramhindi@rediffmail.com
- डॉ. रणविजय सिंह, प्रवक्ता-राजनीति विज्ञान विभाग, एल.डी. आर.एस.वाई. महाविद्यालय, उसरगाँव, कालपी (जालौन, उ.प्र.)
  मो. : 09919123763 – ई-मेल : rajuranvijay@gmail.com

सम्पादक

- डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
  रीडर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग उ.प्र. विकलांग उद्धार
  डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ,
  सम्पर्क : 07607762917, 09415924888,
  Email : dr.virendrayadav@gmail.com
  Email : kritika_orai@rediffmail.com
  Email : virendra_kritika@rediffmail.com
  http://kritika-shodh.blogspot.com

प्रबन्धन

- अरविन्द शुक्ल
  आराधना ब्रदर्स
  (प्रकाशक एवं वितरक)
  124 / 152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208006, उ.प्र.
  दूरभाष –09935007102, 05122651490
  Email : kritika_orai@rediffmail.com,
  aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975–0002 वाल्यूम : 13–14, वर्ष : 07, जनवरी–दिसम्बर 2014

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

समाजवादी विमर्श–विशेषाँक–2014–2015

भारत में समाजवाद : दशा एवं दिशा (भारत के भविष्य के लिए आम आदमी की चिन्ता)

- समाजवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि, इतिहास एवं परम्परा के बदलते प्रतिमान
- समाजवाद के प्रमुख सम्प्रदाय, प्रमुख सामाजिक विचारधाराएँ एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत
- समाजवाद ही क्यों ?
- वैश्विक समाजवाद के बदलते परिदृश्य : दशा एवं दिशा
- भारतीय समाजवाद : चिन्तन–चिन्ता के विविध परिदृश्य
- भारतीय राजनीति में समाजवाद की भूमिका,नया समाज,नयामन
- राष्ट्रीयता और समाजवाद,समाजवाद और हिन्दूवाद
- प्रमुख पाश्चात्य समाजवादी चिन्तक, आधुनिक भारतीय समाजवादी विचारक
- समाजवाद के आधार स्तम्भ एवं प्रमुख भारतीय समाजवादी चिन्तक / विचारक, जयप्रकाश नारायण, युसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द, डॉ0 राममनोहर लोहिया
- समाजवादी दर्शन और डॉ0 राममनोहर लोहिया
- भारतीय समाजवाद और आचार्य नरेन्द्र देव
- राजनारायण का समाजवादी व्यक्तित्त्व
- नव समाजवाद की परिकल्पना एवं सप्तक्रांति
- समाजवाद और चौखम्भा व्यवस्था
- बहुआयामीय सांस्कृतिक क्रान्ति और समाजवाद
- भारतीय समाजवाद के नये क्षितिज, छोटे लोहिया कहवाने वाले जनेश्वर मिश्र, चंद्रशेखर, मुलायम सिंह यादव व अखिलेश यादव

दुनिया को बेहतर और मानवीय बनाने तथा मानव अस्तित्व को नये विस्तार देने के उद्देश्य से समय–समय पर अनेक सिद्धांतकारों और सैद्धांतकियों के सक्रिय हस्तक्षेप समाज में निरंतर विद्यमान रहे हैं, जिनका सारतत्व मानवीय गरिमा को स्थापित करने तथा समतामूलक समाज बनाने में रहा है, इस बुनियादी एकरूपता के बावजूद किसी एक दर्शन पर बात समाप्त नहीं हुई, बल्कि भिन्न–भिन्न सैद्धांतिकयों निर्मित होती रहीं जो सामाजिक संरचना के वैविध्य को तथा विचारधाराओं की गतिशीलता का प्रमाण हैं।

आधुनिक युग में समाजवाद एक ऐसा शब्द एवं ऐसी विचारधारा है, जिससे अधिकांश विचारक स्वयं को जोड़कर गौरवान्वित महसूस करते हैं। यह एक ऐसा सपना है जिसने बीसवीं सदी में दुनिया को सर्वाधिक आन्दोलित किया तथा वर्तमान सदी में भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अलग–अलग ढंग से व्यक्ति, संस्थाएँ एवं सरकारें जूझ रही हैं। हालांकि समाजवादी आंदोलन का आरम्भ यूरोप से माना जाता है, किन्तु उसका देशी भारतीय संस्करण जयप्रकाश नारायण, युसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द आदि की भाँति डॉ0 राममनोहर लोहिया भी भारतीय राजनीति के अन्य महान समाजवादी प्रणेताओं में से एक थे। यह सब महान स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, निर्भीक वक्ता, लोकतंत्र के रक्षक, एवं आम आदमी की आवाज के यथार्थवादी प्रखर प्रवक्ता एवं चिन्तक थे, जो आजीवन एक सच्चे समाजवादी के रूप में जाने जाते हैं। यह सत्य है कि व्यक्ति का शरीर अवश्य समाप्त हो जाता है, किन्तु उसके शाश्वत विचार एवं कर्म अजर–अमर होकर प्रकाश स्तम्भ की भाँति जन–जन को आलोकित करते रहते हैं।

- **कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।**